कुमाऊँ का इतिहास

लेखक:
बद्रीदत्त पाण्डेय

1937

लेखक की भूमिका

कुमाऊँ का एक क्रमबद्ध (सिलसिलेवार) इतिहास हिन्दी में लिखने की इच्छा मेरी बहुत दिनों से थी। क्योंकि हिंदी में कोई पुस्तक ऐसी नहीं है, जिससे कुमाऊँ का इतिहास अच्छी तरह से जाना जाय। किंतु २२ वर्ष (सन् १९१० से १९३२) तक राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करने से मेरी यह इच्छा पूरी न हो सकी। कई बार जेल में भी इतिहास लिखने का विचार किया, किंतु वहाँ पूरी-पूरी सामग्री प्राप्त न होने से वह संकल्प कार्य-रूप में परिणत न हो सका। जब २४ अगस्त १९३२ को कुछ कौटुम्बिक दुर्घटनाओं के कारण मैं जेल से मुक्त किया गया, तो चित्त सहसा अधीर हो गया। किसी भी काम में मन न लगता था। तब मैंने इस ओर अपनी चित्तवृत्ति को दौड़ाया। किंतु, जब देखा तो काम कठिन प्रतीत हुआ। कूर्मांचल का जो कुछ भी इतिहास लिखा गया है, वह हिंदी में तो नहीं के बराबर है। अँगरेज़ी में जो कुछ है, वह सिद्धहस्त राजनीतिज्ञों द्वारा किसी मतलब से लिखा गया है।

देश की उन्नति के लिये देश के इतिहास का ज्ञान लाभदायक ही नहीं, बल्कि अत्यंत आवश्यक है। इस पुस्तक का नाम यद्यपि मैंने 'कुमाऊँ का इतिहास' रक्खा है, तथापि मुझे स्वयं ही इस नामकरण में संकोच है। इस पुस्तक को इतिहास कहना इतिहास की महिमा को घटाना होगा। क्योंकि इसको इतिहास उस अर्थ में नहीं कहा जा सकता, जिसमें सर जदूनाथ सरकार ने 'औरंगज़ेब' तथा 'शिवाजी' लिखे हैं। या श्री सरदेसाई ने मरहटों के इतिहास लिखे हैं। उनको अँगरेज़ सरकार ने सारे दफ़्तर के पुराने काग़ज़ात देखने की आज्ञा दे दी थी; किंतु मुझे ऐसी सुविधायें कहाँ प्राप्त हो सकती थीं! [illegible]

लेखकों ने पद-पद में ऐतिहासिक प्रमाण दिये हैं, पर मेरे लिये यह काम असंभव-सा था। इस रचना में मैंने कुमाऊँ-संबंधी प्रायः सब बातों का दिग्दर्शन कराया है, और उसी में कूर्मांचल का ज्ञात इतिहास भी आ गया है। इसलिये मैंने अंत में यही नाम रखना उचित समझा है। यद्यपि इसको कूर्मांचल-सर्वस्व (All about kumaon) कहना ज्यादा सार्थक होता।

इस देश का प्राचीन तो क्या, अर्वाचीन इतिहास तक किस घोर अंधकार में पड़ा है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। स्वदेश, स्वधर्म, स्वजाति का इतिहास राष्ट्रभाषा हिंदी में तैयार करना, एक आवश्यक सार्वजनिक कार्य है। पहले मेरा विचार एक छोटा-सा इतिहास लिखने का था, पर ज्यों-ज्यों मैंने लेखनी उठानी शुरू की, और अन्वेषण का कार्य आरंभ किया, तो जहाँ एक भाग में इस काम को समाप्त करने की इच्छा थी, वहाँ सात भागों में भी यह काम पूरा न हो सका। मैंने कूर्मांचल के इतिहास का एक छोटा-सा खाका खींचा है। केवल संकेत-रूपेण यह कार्य किया है, क्योंकि मेरी बुद्धि व विद्या की सीमाएँ परिमित हैं। यह काम वास्तव में मुझसे ज्यादा विद्वान्, बुद्धिमान्, गुणवान् तथा धीमानों का है। मुझे तो इसलिये यह काम करने का साहस हुआ कि इस ओर हमारे प्रांत के लोगों का ध्यान नहीं गया है। बड़े-बड़े विद्वान् व गुणवान् पुरुषों ने इस देश का गौरव बढ़ाया है। किन्तु ऐतिहासिक साहित्य-कला की ओर उनकी रुचि कम हुई है। कुछ लोगों का कहना है कि इस प्रान्त का प्राचीन इतिहास कुछ भी नहीं है। कम-से-कम लिखने योग्य नहीं है। उनका कहना है कि कुमाऊँ का इतिहास प्राचीन कलहों, डोटी-कुमाऊँ व कुमाऊँ-गढ़वाल के परस्पर युद्धों से भरा है। या कूर्मांचली महर फरत्याल मंत्रि-मंडलों के आपसी वैमनस्य व हत्याकांडों की झलक उसमें बराबर देखने में आती है। जैसे आँख निकालने की दुर्घटना तथा बाली घाट का हत्याकांड। या 'हम बड़े वह छोटे' ऐसे दंभ-पूर्ण जात्याभिमानों का खज़ाना

है या यह ग्राम-देवताओं के 'जागर' स्यूरिया, पूरिया, गंगानाथ, भोलानाथ, ऐड़ी आदि देवताओं की महिमा का उद्घोष है। इन बातों के दिग्दर्शन से क्या लाभ है ?

वह कौन-सा देश है, जहाँ के इतिहास में मार-काट, राजनीतिक षड्यंत्र तथा दंभ-पाखंड व येन-केन प्रकारेण, राज-शक्ति प्राप्त कर अपने शत्रुओं का मान-मर्दन करने की अभिलाषा आदि-आदि बातों की झलक न रही हो। भारत के प्रायः सारे प्रदेशों का इतिहास जहाँ पर उज्ज्वलताओं से परिपूर्ण है, वहाँ घोर अंधकारमय भी है। इसी प्रकार कुमाऊँ के इतिहास में भी यदि कहीं-कहीं अमानुषिक अत्याचारों तथा देश-द्रोह का चित्रपट देखने में आवेगा, तो कहीं-कहीं उज्ज्वल व रोचक चित्रांक भी देखने में आवेंगे।

मेरा उद्देश्य इतिहास लिखने का एक ही है। कुमाऊँ के नवयुवक जानें कि उनके प्रान्त का प्राचीन काल कैसा रहा है, और भविष्य में तमाम कूर्माचल को भारतीय राष्ट्रीयता के महासागर में संलग्न करने के लिये किन बातों का सुधार हो, और किन बातों को क़ायम किया जावे, तथा किन प्रथाओं को दूर किया जावें इत्यादि विषयों के विवेचन में उनको सहायता मिले। राष्ट्रीयता के लिये यह अत्यन्त ज़रूरी है कि देश में जहाँ तक हो एक भाषा, एक भेष, एक भाव तथा एक धर्म का प्रचार हो।

किन्तु भारत ऐसे देश में जहाँ मनुष्य व समाज नाना वर्ग, जाति तथा सम्प्रदाय में विभाजित हो, वहाँ राष्टीयता को स्थिर करना एक उच्च कोटि के राष्ट्र-निर्माता का गौरव-पूर्ण कार्य है। समाज-सुधारक व राष्ट्र-निर्माता को यह आवश्यक है कि वह अपने देश या प्रांत की सब बातों, रीति-रस्मों तथा रिवाजों को जाने। वहाँ के मनुष्यों के जाति-पाँति-विषयक विचारों से भी परिचित हो। उनके देवी-देवताओं व भूत-प्रेतों के प्रति श्रद्धा व विश्वास को भी जाने, और यह देखे कि सुधार कहाँ से हो।

सुधारक व राष्ट्र-निर्माता का यह काम नहीं है कि वह दूसरे मुल्कों की नक़ल करता रहे, बल्कि वह देखे कि उसके यहाँ जो कुछ अच्छा है, उसकी रक्षा करे, और जो कुछ बुरा है, उसे दूर करने की चेष्टा करे। इसी दृष्टि से यही पुस्तक लिखी गई है।

अनेक सदियों से अज्ञानता में डूबे, अविद्यान्धकार में पड़े तथा अनेक अन्ध-विश्वासों से जकड़े लोग किस प्रकार आत्म-सम्मानी, आत्म विश्वासी तथा आत्मनिर्णयी हों, यही ध्येय सामने है। यह प्रांत भी भारतीय राष्ट्रीयता के महासागर में एक सिद्धहस्त तैराक हो जाय, और यहाँ की भिन्न-भिन्न जातियाँ एक ही राष्ट्र में विलीन हो जावें, यही वांछा है।

थोड़ी-बहुत मेहनत करने पर भी पुस्तक में अनेक दोष रह गये होंगे, और वे प्रेमी-पाठकों को दिखाई देंगे। एक सच्चे इतिहासकार की योग्यता, मैं कह चुका हूँ कि मुझमें नहीं है। इसीलिये भिन्न पुस्तकों से जो कुछ मसाला मुझे कुमाऊँ के बारे में मिला, वही मैंने इस पुस्तक में संकलित कर दिया है। अन्वेषक का काम बड़ा कठिन है। पश्चिम में अन्वेषण, समालोचना तथा साहित्य-कला का आदर किया जाता है। यहाँ अभी यह कला उस ऊँचे दरजे को नहीं पहुँची है। न मनुष्य-प्रकृति ही इतनी उदार व सुसंस्कृत हो गई है कि वह मार्मिक आलोचना तथा सच्ची साहित्यिक खोज के महत्व को ठीक-ठीक पहचाने। मुझसे अधिक विद्वान् व अधिक कुशल लेखक मेरी अपेक्षा एक उत्तम पुस्तक पाठकों को भेंट करते—इसमें संदेह की कोई बात नहीं, किन्तु उनके ऐसा न करने से मानों मैंने उनको एक अच्छी पुस्तक तैयार करने को चुनौती दी है।

जिन पुस्तकों के आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है, उनकी नामावली पुस्तक में दे दी गई है। उन पुस्तकों के लेखकों का मैं सर्वथा आभारी हूँ। विशेषकर श्रीअठकिन्सन साहब का, जिन्होंने वास्तव में कूर्माचल-संबंधी अन्वेषण बहुत गम्भीरता से किया है।

इस काम में मुझे पं० रामदत्त ज्योतिर्विद् महामहोपदेशक सनातनधर्म महामंडल ने विशेष सहायता दी है, और बाबू गंगाप्रसाद खत्री ने अनेक प्राचीन पुस्तकों से मेरी सहायता की है, इससे मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

राष्ट्रीय नेता मा० पं० गोविन्दबल्लभजी पंत ने कृपाकर इस पुस्तक के कुछ अंशों को पढ़कर उसके दोषों की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट कर मुझे उनको सुधारने की जो शुभ सम्मति दी है, उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। अतः इसमें अब जो कुछ भी दोष बाक़ी हैं, वे मेरे हैं। उनका ज़िम्मेदार मैं हूँ। मैं फिर भी कहता हूँ कि देश, राष्ट्र व समाज के हित के लिए मैं ने यह पुस्तक लिखी है, और जहाँ तक हो सका है, सत्य को सामने रख कर यह लिखी गई है।

ठा० देवीसिंह कुँवर ने चित्र-संग्रह में तथा पं० तारादत्त उप्रेतीजी ने इसके प्रूफों का संशोधन करने में जो सहायता दी है, उसका मैं कृतज्ञ हूँ।

जो कुछ पुरानी बातें इसमें संगृहीत हैं, वे अठकिन्सन गजेटियर तथा स्व० पं० रुद्रदत्तजी पंत द्वारा हस्त-लिखित प्रति से तथा कुछ अन्य पुराने काग़ज़ातों के आधार पर अंकित की गई हैं। पं० रुद्रदत्तजी पंत ने अठकिन्सन गजेटियर लिखे जाने में तमाम कुमाऊँ में ऐतिहासिक अन्वेषण का काम किया था। आपने पुरानी बातें राजा नंदसिंह, पं० हर्षदेव जोशी तथा अन्य पुराने ज़माने के लोगों से प्राप्त की थीं। बहुत सज्जनों से मैंने प्राचीन लेख माँगे, पर नकारात्मक उत्तर मिला।

यह देश शिक्षित हो, सभ्य हो, धन-धान्य से परिपूर्ण हो, इस देश के लोग निज कर्तव्याभिमानी हों, स्वराज्य सेवी हों, उनमें देशोत्थान की लगन हो, इन शुभ कामनाओं को सामने रख मैं समस्त देश, समाज व राष्ट्र-प्रेमियों के कर-कमलों में इस ग्रंथ को सादर समर्पित करता हूँ।

प्रेम-कुटी,
अल्मोड़ा
२६—११—१९३७

बदरीदत्त पांडे।

सहायक सामग्री

इस पुस्तक को बनाने में निम्न-लिखित ग्रंथों से सहायता ली गई है, जिनका नाम कृतज्ञता-सहित व धन्यवाद-पूर्वक यहाँ दिया जाता है:—

१. अँगरेज़ी

१. अठकिन्सन साहब के गजेटियर जिल्द १०, ११, १२ (जो हिमालय पर्वती प्रान्त १, २, ३ के नाम से भी कहे जाते हैं।)

२. गजेटियर अल्मोड़ा (१६११) मि० बालटन द्वारा रचित।

३. गजेटियर नैनीताल (१६०४) मि० नेभिल द्वारा रचित।

४. हैमिल्टन साहब के ईस्ट इन्डिया गजेटियर १८१२-१८२८।

५. इम्पीरियल गजेटियर।

६. कनिंघाम साहब की आरचियोलौजिकल सर्वे ऑफ़् इन्डिया १८६२-६३-६४-६५ जिल्द १।

७. खस फैमिली लौ—डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशी बी० एस० सी०, एल्-एल्० बी०, एल्-एल्० डी० बैरिस्टर रजिस्ट्रार हाईकोर्ट।

८. पश्चिमी तिब्बत तथा कूर्मांचली सरहद—मि० शेरिंग डिप्टी-कमिश्नर, अल्मोड़ा।

Himalayan Travels.

९. (हिमालय यात्रा)—ठा० जोधसिंह नेगी।

Aurenzeb by Sir Jadunath Sircar.

१०. औरंगज़ेब—सर जदूनाथ सरकार।

(५ जिल्दें) 5 Vols.

(Kumaon Local customs)

११. कुमाऊँ के रस्म-रिवाज—श्रीपन्नालाल।

१२. कुमाऊँ बाबत रिपोट—श्रीवैटन।
१३. Twelve Indian Statesmen — डॉ० जॉर्ज स्मिथ (१२ भारतीय राजनीतिज्ञ)।
१४. गढ़वाल—प्राचीन व अर्वाचीन—डॉ० पातीराम (Garhwal ancient & Modern by Dr. Pati Ram)
१५. Notes on the Garhwal Dist by Rai P. Dharma Nand Joshi Bahadur M. B. E.
(गढ़वाल जिला—राय पं० धर्मानंद जोशी बहादुर)
१६. Wanderings in the Himmala by Pilgrim.
(हिमालय भ्रमण—पिलग्रिम (वैरन साहब)
१७. स्टौवेल मैन्युएल—दो भाग।
१८. फ़ौरेस्ट फ्लोरा—श्री बसन्तलाल गुप्त।
१९. नैनीताल—श्री जे० यम० क्ले
२०. नैनीताल व कुमाऊँ—मि० सी० डब्ल्यू० मर्फी १९०६, १९१४।
२१. Historical and Political Notes on Kumaon by Mr. D. D. Tewari.
२२. Memoriors of Races.
N. W. P.—सर, यच० यम० इलियट (दो जिल्द।)
२३. Holy Himalaya—Mr. E. S. Oakley M. A.
२४. Macrindle's Ancient India.
२५. Rajtarangini by Sir Auriel Stein राजतरंगिणी।
२६. Smith's ancient Histroy.
२७. Castes and Tribes in Nepal by Sir A. Brines
२८. Tribes and Castes in the Punjab.
२९. Nesfields Castes and Tribes in U. P.
३०. Encyclopedia Brittanica.

३१. The Tribes and Castes in the N. W. P. by W. Croke.

३२. Ancient Geography of India by Cunningham.

३३. Indo-Aryans by Mr. R. L. Mitter.

३४. Wrights Histroy of Nepal.

३५. The Khasis by Major Gurdon.

३६. Kingdom of Nepal by Francis Hamilton.

३७. Report on the Industrial survey of the Naini Tal Dist. of the U. P. by P. Lokmani Joshi.

३८. ,, ,, Almora.

३९. Land Revenues settlements in U. P. by M. Fashiuddin B. A., M. L. C.

४०. The Forest Problem in Kumaon by P. Govind Ballabh Pant B. A., L. L. B. Advocate (Ex. M. L. C.)

४१. Notes on the Economic Mineralogy of the Hill Districts of the N. W. P. of India by Mr. Atkinson I. C. S.

४२. Proverbs & Folklore of Kumaon & Garhwal by P. Ganga Datt Upreti.

४३. Martial Castes of the Almora Dist. by P. Ganga Datt upreti.

४४. Commercial policy of Mogals by Dr. D. Pant. Phd. B. Com.

हिन्दी व संस्कृत

१. रामायण।

२. महाभारत।

३. श्रीमद्भागवत।

४. शंकर दिग्विजय।

५. मानसखंड (अप्रकाशित)

६. संक्षिप्त कूर्माचल-राजवर्णन और सीमाल्टीय पांडेय वंशावली ज्योतिषाचार्य पं० मनोरथ पांडेय शास्त्री।

७. मुक्तेश्वर लैबोरेटरी—पं० कृष्णानंद जोशी।

८. सप्तखंडी जाति-निर्णय—पं० छोटेलाल शर्मा।

९. प्राचीन मुद्रा—श्रीरामचन्द्र वर्मा।

१०. जाति भास्कर—पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र।

११. भूगोल ज़िला अल्मोड़ा।

१२. रघुवंश—कालिदास।

१३. इतिहास कुमाऊँ प्रदेश—बा० देवीदास कायस्थ।

१४. थर्ड गोरखा राइफल्स को इतिहास—हवलदार भीमसिंह थापा।

१५. नैपाल का इतिहास—खेमराज-श्रीकृष्णदास, स्टीम-प्रेस, बम्बई।

१६. पर्वतीय भाषा प्रकाशक—पं० गंगादत्त उप्रेती।

१७. हालात कोह हिमालया—पं० चिंतामणि जोशी।

१८. हिंदी शब्द-सागर।

१९. कत्यूर का इतिहास—पं० रामदत्त तिवारी।

२०. श्यैनिक शास्त्र—राजा रुद्रदेव या राजा रुद्रचन्द।

अप्रकाशित लेख—

१. पं० रुद्रदत्त पंत।

२. पं० रामदत्त ज्योतिर्विद्।

३. पं० दुर्गादत्त पंत (काशीपुर संबंधी)।

४. श्रीनैनसिंह सी० आई० आई० की आत्म-जीवनी (जोहार व तिब्बत बाबत)

पुराने लेख, ताम्रपत्र सरकारी रिपोर्टें, मर्दुमशुमारी, पुलिस, आबकारी, डॉक्टरी, जंगलात, बंदोबस्त आदि-आदि।

"शक्ति" तथा "अल्मोड़ा अख़बार।"

कुमाऊँ का इतिहास

(सात भागों में)

नैनीताल पर्वतारोहण पुस्तकालय
को भेंट।

जगदीश कुमार [illegible]
इन्द्रा कॉटेज, तल्लीताल
नैनीताल
1-12-80

कुमाऊँ का इतिहास

प्राचीन व अर्वाचीन

साधारण भौगोलिक व ऐतिहासिक वर्णन

(पहला भाग)

इस भाग में कूर्माचल के परगनों व पट्टियों के साधारण भौगोलिक व ऐतिहासिक वर्णन के अतिरिक्त उन बातों का भी दिग्दर्शन किया गया है, जो कुमाऊँ के संबंध में ज्ञात हैं। यह इसलिये किया गया है कि इससे कुमाऊँ की प्राचीन व अर्वाचीन स्थिति को समझने में सहायता मिले। हमने इस भाग में भौगोलिक विवरण भी यद्यपि सूक्ष्मतया दे दिया है, परन्तु ऐतिहासिक वर्णन को ही विशेष महत्त्व दिया है; क्योंकि कुमाऊँ की प्राचीन ऐतिहासिक बातों का प्रचार करना ही हमारा मूल उद्देश्य है।

प्रेम-कुटी, अल्मोड़ा
२६-११-३७

बदरीदत्त पांडे

कुमाऊँ का इतिहास
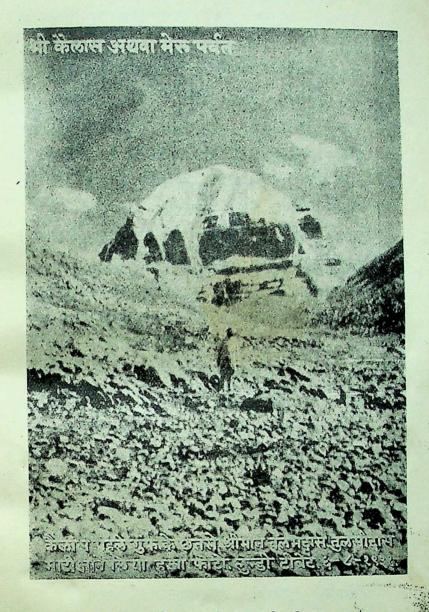
"उदीचीदीपयन्नेष दिशं तिष्ठतिवीयवान् ।
महां मेरुर्महाभाग शिवो ब्रह्मविदां गतिः ॥ १२ ॥
यस्मिन् ब्रह्म सदश्चैव भूतात्माचाव तिष्ठते ।
प्रजापतिः सृजन सर्वं यत्किञ्चिज्जङ्गमागमम् ॥ १३ ॥

यानाहुर्ब्रह्मणः पुत्रान् मानसान् दक्ष सप्तमान् ।
तेषामपि महामेरुः शिवं स्थान मनामयम् ॥ १४ ॥
अत्रैव प्रतितिष्ठन्ति पुनरेवोदयन्ति च ।
सप्तदेवर्षगनस्तान वशिष्ठ प्रमुखास्तदा ॥ १५ ॥
देशं विरज संपश्य मेरोः शिखरमुत्तमम् ।
यत्रात्म तृप्तैरध्यास्ते देवैः सह पितामहः ॥ १६ ॥
यमाहुः सर्व भूतानां प्रकृतेः प्रकृतिं ध्रुवाम् ।
अनादिनिधनं देवं प्रभुं नारायणं परम् ॥ १७ ॥
ब्रह्मणः सदनात्तस्य परंस्थानं प्रकाशते ।
देवोपि यन्न पश्यन्ति सर्व तेजो मयं शुभम् ॥ १८ ॥
अत्यर्कानलदीप्तन्तन् स्थानं विष्णोर्महात्मनः ।
स्वयैवप्रभया राजन् दुष्प्रेक्ष्यं देवदानवैः ॥ १९ ॥
प्राच्यां नारायणस्थानं मेरावति विराजते ।
यत्र भूतेश्वरस्तात सर्व प्रकृतिरात्मभूः ॥ २० ॥
भासयन् सर्व भूतानि सश्रियाभिविराजते ।
नात्र ब्रह्मर्षयस्तात कुतएवमहर्षयः ॥ २१ ॥
प्राप्नुवन्ति गतिं ह्येतां यतीनां कुरुसत्तम ।
नतं ज्योतिंषिसर्वाणि प्राप्य भासन्ति पाण्डव ॥ २२ ॥
स्वयं प्रभुरचिंयात्मा तत्र ह्यति विराजते ।
यतयस्तत्रगच्छन्ति भक्त्या नारायणं हरिम् ॥ २३ ॥
परेण तपसायुक्ता भविताः कर्मभिः शुभैः ।
योग सिद्धा महात्मानस्तमो मोह विवर्जिताः ॥ २४ ॥
तत्रगत्वा पुनर्नेमं लोकमायान्ति भारत ।
स्वयंभुवं महात्मानं देव देवं सनातनम् ॥ २५ ॥
स्थान सेतन्महाभाग ध्रुवमक्षयमव्ययम् ।
ईश्वरस्य सदाह्येतत प्रणमात्र युधिष्ठिर ॥ २६ ॥"

(महाभारत, वनपर्व, अध्याय १६३ ।)

अर्थात् "यह देखो सुमेरु पर्वत उत्तर दिशा को प्रकाशित कर रहा है, जहाँ केवल ब्रह्मज्ञानियों की ही गति है। इसी पर्वत पर ब्रह्मलोक है, जहाँ सब चर-अचर जीवों के उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजी रहते हैं। (१२, १३) और दक्ष आदि ब्रह्माजी के मानसी पुत्रों का भी कल्याणरूप और उपाधि-रहित स्थान इसी पर्वत पर है। (१४) यहीं वशिष्ठ आदिक सप्तऋषि भी उदय होते हैं। (१५) और मेरु पर्वत के उस शिखर के देशों को देखो, जो रज-रहित दीखता है। उसी स्थान पर ब्रह्माजी सब देवताओं सहित रहते हैं। (१६) और इस ब्रह्मलोक से परे जो शुभ और सर्व तेजोमय स्थान दिखाई देता है वह सूर्य और अग्नि के विना अपने ही तेज से प्रभासित हो रहा है और वह विष्णु भगवान् नारायण का स्थान है, जो सब भूतों के कारण और आदि अंत रहित हैं। देवता व दानव उस स्थान को दुःख से देख सकते हैं (१७-१९) नारायण का यह स्थान मेरु पर्वत पर पूर्व की ओर हट कर है। वहाँ सब प्राणियों के ईश्वर और सब के उत्पन्न करनेवाले विष्णु भगवान् लक्ष्मी-सहित सब प्राणियों पर अपने तेज का प्रकाश करते हुए विराजमान हैं। वहाँ केवल यती और योगी लोग ही जा सकते हैं। ब्रह्मऋषियों की भी गति वहाँ नहीं है, और महाऋषियों की तो कौन कहे। (२०-२२) क्योंकि वहाँ सर्वव्यापी अचिंत्यात्मा विष्णु भगवान् आप विराजमान हैं। जो योगी व यती लोग बड़ी तपस्या और अनेक शुभ कर्म करते हैं और मोह, अज्ञान से छूटकर उस अपने आप उत्पन्न होनेवाले सनातन नारायण लोक में जाते हैं, वे फिर लौटकर संसार में जन्म नहीं लेते हैं। (२५) यह स्थान सनातन है न कभी बिगड़ता है, न बनता है, न छोटा-बड़ा होता है। हे युधिष्ठिर ! तुम इस स्थान को प्रणाम करो।"

---
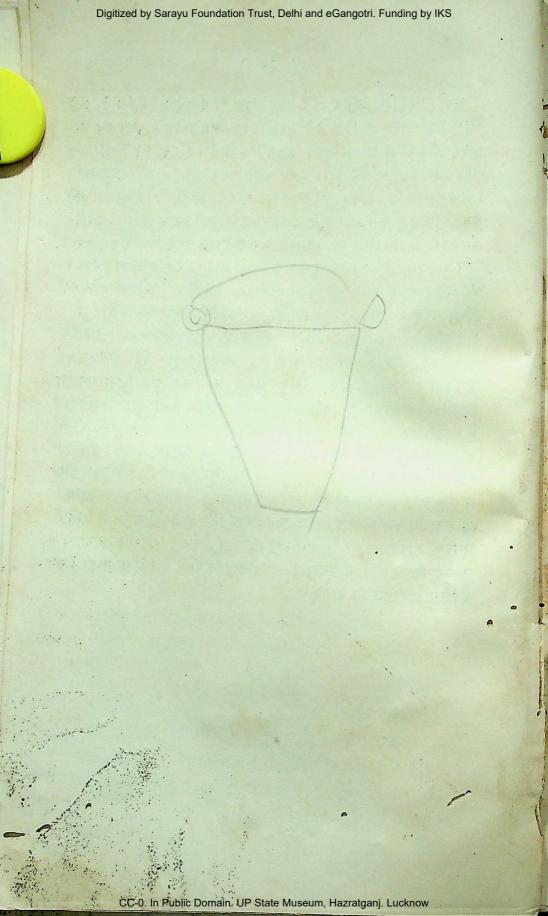
१. प्रदेश का नाम कुमाऊँ या कूर्मांचल कैसे हुआ ?

इस प्रान्त का नाम कूर्मांचल या कुमाऊँ होने के विषय में यह किम्वदन्ती कुमाऊँ के लागों में प्रचलित है कि जब विष्णु भगवान् का दूसरा अवतार कूर्म अथवा कछुवे का हुआ, ता वह अवतार कहा जाता है कि चंपावती नदी के पूर्व कूर्म-पर्वत में (जिसे आजकल कांडादेव या कानदेव कहते हैं) ३ वर्ष तक खड़ा रहा। उस समय हाहा हूहू देवतागण तथा नारदादि मुनीश्वरों ने उसकी प्रशंसा की। उस कूर्म(कच्छप)-अवतार के चरणों का चिह्न पत्थर में हो गया, और वह अब तक विद्यमान होना कहा जाता है। तब से इस पर्वत का नाम कूर्मांचल (कूर्म + अचल) हो गया। कूर्मांचल का प्राकृत रूप बिगड़ते-बिगड़ते 'कुमू' बन गया, और यही शब्द भाषा में 'कुमाऊँ' में परिवर्तित हो गया। पहिले यह नाम चंपावत तथा उसके आसपास के गाँवों को दिया गया। तत्पश्चात् यह तमाम काली कुमाऊँ परगने का सूचक हो गया, और काली नदी के किनारे के प्रान्त—चालसी, गुमदेश, रेगड़ू, गंगोल, खिलफती और उन्हीं से मिली हुई ध्यानिरौ आदि पट्टियाँ भी काली कुमाऊँ नाम से प्रसिद्ध हुईं। ज्यों-ज्यों चंदों का राज्य-विस्तार बढ़ा, तो कूर्मांचल उर्फ़ कुमाऊँ उस सारे प्रदेश का नाम हो गया, जो इस समय ज़िला अल्मोड़ा व नैनीताल में शामिल है। अँगरेज़ी राज्य में तो किस्मत कुमाऊँ में कभी देहरादून ज़िला भी शामिल था, और इस समय गढ़वाल ज़िला भी इसी के भीतर है। पर वास्तव में कुमाऊँ प्रान्त से जिस मुल्क या प्रदेश का बोध होता है, वह अल्मोड़ा व नैनीताल के पहाड़ी ज़िले हैं। इस समय परगना काली कुमाऊँ में गंगोली और चौगर्खा भी शामिल हैं, पर गंगोली और चौगर्खा के लोग वास्तव में कुमय्यें नहीं कहे जाते। वे गंगोला और चौगर्खिये कहलाते हैं। पहले परगना काली कुमाऊँ के लोग ही 'ठेठ कुमय्यें' कहे जाते रहे हैं, किन्तु अब यह शब्द अल्मोड़ा और नैनीताल के तमाम लोगों के लिये काम में लाया जाता है। चंद राजाओं ने ही इस नाम को सब में प्रख्यात किया।

सब लोगों में यही बात प्रचलित है कि कुमाऊँ का नाम कूर्मपर्वत के कारण पड़ा, पर ठा० जोधसिंह नेगीजी 'हिमालय-भ्रमण' में लिखते हैं—"कुमाऊँ के लोग खेती व धन कमाने में सिद्धहस्त हैं। वे बड़े कमाऊ हैं, इससे

इस देश का नाम कुमाऊँ हुआ।" और भी आप कहते हैं कि काली कुमाऊँ का नाम काली नदी के कारण नहीं, बल्कि कालू तड़ागी के नाम से पड़ा, जो कभी वहाँ का शासक था। देवदारु और बाँझ की घनी, काली झाड़ियों से भी इसका विशेषण 'काली' जोड़ा गया हो। पर ये दलीलें निराधार-सी ज्ञात होती हैं।

चंद-राजाओं के समय ऐसा भी हमें मालूम हुआ है कि कूर्मांचल में तीन शासन-मंडल थे—(१) काली कुमाऊँ जिसमें काली कुमाऊँ के अतिरिक्त सोर, सीरा अस्कोट भी शामिल थे। (२) अल्मोड़ा—जिसमें सालम, बारामंडल पाली तथा नैनीताल के वर्तमान पहाड़ी इलाक़े थे। (३) तराई भावर का इलाक़ा या माल। ये शासन-मंडल उस समय थे, जब चंद-राज्य चरम सीमा को पहुँच गया था।

कुमाऊँ को हूणदेश वाले 'क्युनन' अँगरेज़ 'कमाऊन' (Kumaon), देशी लोग 'कमायूं' यहाँ के रहनेवाले 'कुमाऊँ' और संस्कृतज्ञ 'कूर्मांचल' कहते हैं। खास काली कुमाऊँ में चंपावत का नाम 'कुमू' कहा जाता है। वहाँ अब भी लोग चंपावत को 'कुमू' कहते हैं।

---

२. कुमाऊँ का विस्तार व क्षेत्रफल

कुमाऊँ या कूर्मांचल इस समय दो ज़िलों में विभाजित है। (१) अल्मोड़ा, (२) नैनीताल। यह उत्तरी अक्षांश २८°—१४′-४५″ व ३०′-५०″ के तथा देशान्तर ७६°—६′-३०″ व ८०′-५८′-१५″ के बीच है। इसका वर्गफल ३,६८०,००० एकड़ अर्थात् ८००० वर्गमील के लगभग है। इसमें लगभग २ लाख एकड़ ज़मीन आबाद व १ लाख एकड़ तक आबादी के योग्य है। इसमें ४००००—५०००० एकड़ तक भूमि "तलाऊँ" या जल-सिंचित है।

८००० वर्गमील का ब्यौरा इस प्रकार होगा—

बर्फ़ से ढका प्रान्त लगभग—	२००० वर्गमील
वीरान, चट्टान, घाटी वग़ैरह खेती के अयोग्य—	२००० वर्गमील
भूमि जिसमें खेती होगी—	१६०० वर्गमील
वीरान जिसमें जंगल हैं—	२१०० वर्गमील
	८००० वर्गमील

---

३. अल्मोड़ा ज़िला

अल्मोड़ा ज़िला अक्षांश २८°-५६′ और ३०′-४६″ उत्तर तथा देशान्तर ७६°-२′ और ८१°-३१′ पूर्व के बीच है। अल्मोड़ा का विस्तार प्रायः ५३९० वर्गमील है। क्षेत्रफल के हिसाब से अल्मोड़ा ज़िला नैनीताल ज़िले से प्रायः दूना है।

अल्मोड़ा की सरहदें—उत्तर में हिमालय की गगनचुंबी चोटियाँ इसे तिब्बत-प्रान्त से भिन्न करती हैं। पश्चिम में इसके ज़िला गढ़वाल है। दक्षिण में नैनीताल ज़िला तथा पूर्व में वेगवती काली नदी कुमाऊँ व नैपाल-राज्य के बीच में अनादि काल से बहती चली आई है।

अल्मोड़ा के हिम-पर्वत बड़े ही सुन्दर तथा दर्शनीय हैं। कौसानी, शिखर, देवीधुरा तथा बिनसर से जो दृश्य दिखाई देते हैं, वे बड़े ही मनोहर व गंभीर हैं। सन् १९२९ में महात्मा गांधी*अल्मोड़ा में आये थे और कौसानी में ठहरे थे। वहाँ के अतुलनीय दृश्यों को देखकर महात्मा गांधी व उनकी धर्म-पत्नी ने उस पवित्र व उच्च पर्वतमाला को प्रणाम किया। महात्माजी ने कहा—"परमात्मा ने कितनी स्वच्छ रुई मेरे चरखे के वास्ते एकत्र कर रखी है।" अल्मोड़ा में हिम-पर्वत की चोटियाँ १६८०० से लेकर २५६८६ फ़ुट तक ऊँची चली गई हैं—

नंदादेवी २५६८९′ ; त्रिशूल २३३६०′ ; नंदाकोट २२५३०′ ;
पंचचूली २२५३०′ ; परशुराम २१७७२′ ; बणकट्टर २२९४०′ ;
इरग्यानजुंग २०४५५।

पिंडारी ग्लेशियर जो अल्मोड़ा का निकटवर्ती गल है, वह १३०००—१४००० फ़ुट ऊँचा है। यह अल्मोड़ा से ६६ मील दूर है। ऊँटाधुरा दर्रा

---

* **ALMORA IMPRESSION.**

(By Mahatama M. K. Gandhi)

In these hills, nature's hospitality eclipses all man can ever do. The enchanting beauties of the Himalayas, their bracing climate and the soothing green that envelopes you leaves nothing more to be desired. I wonder whether the scenery of these hills and the climate are to be surpassed, if equalled, by any of the beauty spots of the world. After having been nearly three weeks in Almora Hills, I am more than ever amazed why our people need go to Europe in search of Health.

YOUNG INDIA,
July 11th, 1929.

जहाँ से जोहारी लोग तिब्बत को जाते हैं १७५००′ ऊँचाई पर है। छोटे पर्वतों में बिनसर ८१३० फ़ुट ऊँचा है। कालमुनि १३०००′, शिखर १००००′ व छिपिलधुरा १३०००′ के लगभग हैं।

बड़ी नदियाँ—काली, सरयू, गोरी, कोशी व दो रामगंगाएँ हैं। छोटी-छोटी नदियों के नाम परगनों के वृत्तान्त में आवेंगे।

पनढाल (Water parting)—परगने अस्कोट, सोर, सीरा, जुहार दार्मा की नदियों का पानी काली नदी में बहता है। कत्यूर, दानपुर, दारुण, गंगोली, चौगर्खा के बीच का पानी सरयू में चला जाता है। सालम के पानी को पनार सरयू में ले जाती है। बारामंडल का पानी छोटी कोशी तथा सुआल द्वारा बड़ी कोशी में मिल जाता है। पाली पछाऊँ में गगास, सब छोटी नदियों का पानी अपने में एकत्र कर भिकियासैण के पास रामगंगा में मिल जाती है। इन सब नदियों का पानी अन्त में गंगाजी में मिलकर गंगासागर में चला जाता है।

---

४. ज़िला नैनीताल

नैनीताल उत्तरी अक्षांश २८°-५१′ और २९°-३७′ तथा देशान्तर ७८°-४३″ और ८०°-५′ के बीच है। इसका क्षेत्रफल १७०१०६३ एकड़ अर्थात् २६५८ वर्गमील है।

सरहदें—उत्तर में अल्मोड़ा व गढ़वाल ज़िले हैं। अल्मोड़ा व नैनीताल के बीच कुमनियाँ, कोशी व सुआल नदियाँ बहती हैं। कोशी व सुआल में खैरना व घुराड़ी में पुल हैं। ये प्रायः प्राकृतिक सरहदें हैं। पश्चिम में गढ़वाल व बिजनौर ज़िले हैं। पूर्व में अल्मोड़ा व नैपाल ज़िले हैं; दक्षिण में पीलीभीत, बरेली, रामपुर रियासत तथा मुरादाबाद ज़िले हैं। नैनीताल व अल्मोड़ा ज़िले के बीच की सरहदें कहीं-कहीं कृत्रिम, कहीं प्राकृतिक हैं। उत्तर में अल्मोड़ा के चार परगने—पालीपछाऊँ, फल्दाकोट, बारामंडल और चौगर्खा हैं। पूर्व में काली कुमाऊँ व तल्लादेश भावर। नैपाल व नैनीताल के बीच में शारदा नदी है। जिसमें बनबसा के पास एक बड़ा पुल व बाँध बाँधा गया है और नहर निकाली गई है। पीलीभीत के ये परगने इससे मिले हैं—पूरनपुर, पीलीभीत, जहानाबाद। बरेली के रिच्छा व चौमहला परगने नैनीताल की सरहद में हैं। रियासत रामपुर की बिलासपुर व सुआर तहसीलें रामपुर व नैनीताल

की सरहद में हैं। मुरादाबाद की ठाकुरद्वारा तहसील इससे मिली है। बिजनौर व इसके बीच फीका नदी है। आगे अफ़ज़लगढ़ परगना है।

पर्वत—यहाँ पर हिमालय की ऊँची चोटियाँ नहीं हैं, पर बाहरी हिमालय की कुछ ऊँची चोटियों की ऊँचाई इस प्रकार है—

सैचोलिया पर्वत	८५०५′	चीनापहाड़	८५६८′
बधान पातल	८४०८′	मुक्तेश्वर	७६०२′
बूढ़ा पातल	८२४४′	पत्थरगढ़ी	७५३५′
बधानटोला	८६१२′	चौगढ़	६१२८′
विनायकधुरा	८१८६′	चूड़ियागढ़	७६५७′

कोटा के पास देहरादून के सिवालिक पहाड़ों की तरह पहाड़ी के बाद एक उप-पहाड़ी है। बीच में मेज़ की तरह ऊँची जगह है, जो बड़ी सुन्दर व रमणीक दिखाई देती है।

तराई में रुद्रपुर व गदरपुर सबसे नीची जगहें हैं। ये समुद्र-सतह से ७२० फ़ुट ऊँची हैं। तराई प्रायः ७२० से लेकर ७६५ फ़ुट तक ऊँची है। हल्द्वानी १३८० तथा काठगोदाम १७०० फ़ुट ऊँचाई पर हैं। इसी प्रकार ऊँचाई क्रम-क्रम से बढ़ती जाती है। तराई भावर में साधारण दृष्टि से यह ऊँचाई मालूम नहीं होती, पर एक मील में क़रीब १२ फ़ुट की ऊँचाई जाँची गई है। नदियाँ जब ऊँची भूमि से नीचे की ओर जल-प्रपात के रूप में गिरती हैं, तब यह ऊँचाई तथा निचाई स्पष्टतया ज्ञात होती है।

नदियाँ—नैनीताल में ऐसी बड़ी नदियाँ कोई नहीं हैं, जिनका उद्गम हिमालय-पर्वत से हो। कोशी व रामगंगा अल्मोड़ा ज़िले से बहकर आती हैं। अन्य नदियों का वर्णन अन्यत्र आवेगा।

---

५. जलवायु

पर्वतों में नाना प्रकार की जल-वायु पाई जाती है। बर्फ़ानी जगहों में हमेशा प्रचंड शीत होता है। ऊँची चोटियों में भी ६ हज़ार फ़ुट से ऊँचे में गर्मियों में अच्छी ठंडक रहती है, ख़ासकर सुबह व शाम को। जब कि मई-जून की गरमी में देशों में बिजली के पंखे व ख़स की टट्टियों में चैन नहीं मिलता, पर्वतों में वास्तव में बड़ा आनन्द रहता है। २-३ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर हवा गर्म होगी, पर लू नहीं चलती। पहाड़ की घाटियों की आबहवा अच्छी नहीं होती। वहाँ

जाड़ों में सरदी व गर्मियों में गरमी ज़्यादा होती है। पर पहाड़ की चोटियों की आबहवा सूखी, सुंदर, सुखद व स्वास्थ्य-वर्द्धक होती है। कई प्रकार की बीमारियों, ख़ासकर क्षय (तपेदिक़) के लिये अल्मोड़ा, भवाली आदि स्थानों की हवा जहाँ चीड़ के पेड़ बहुतायत से हैं, अच्छी समझी गई है। हिमालय में तो प्रायः कुछ समय छोड़कर जब कभी पानी पड़ता है, तो बर्फ़ गिरने लगती है। जाड़ों में ५ हज़ार से ऊँचे पर्वतों में भी बर्फ़ पड़ जाती है, बल्कि उत्तरी हिस्सों में तो प्रचंड तिब्बती जाड़ा पड़ता है। सब भूमि हिमालय के पास १० हज़ार से ४००० फ़ुट तक बर्फ़ से ढक जाती है। बाहरी हिमालय में कभी ५००० फ़ुट के नीचे पर्वतों में भी बर्फ़ गिर जाती है, पर ठहरती कम है। गर्मी में १८००० फ़ुट तक तो बर्फ़ बराबर रहती है। नीचे की ओर ऊँचे-ऊँचे पर्वतों की निर्ग्राम (सेली) जगहों में ७-८ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई में अप्रैल-मई तक बर्फ़ रहती है, बाद को नहीं। यह भी उस साल, जब शीत प्रचंड पड़ा हो। नीचे की ओर बर्फ़ अक्सर तीसरे साल दिसम्बर व मार्च के बीच पड़ती है। जनवरी व फ़रवरी में शीत बहुत ज़्यादे होता है। बर्फ़ का गिरना भी एक ऐसा दृश्य है, जो खिलाड़ी प्रकृति के आश्चर्यजनक कौतुकों में से एक है। जब बर्फ़ गिरती है, तो तमाम प्रकृति चुप हो जाती है। कोई शब्द बर्फ़ गिरने में नहीं होता। रूई के फूलों की तरह हिमकण तमाम पेड़-पौधों, ज़मीन व मकान की छतों में जम जाते हैं। चहुँ ओर श्वेत ही श्वेत दिखाई देता है। बर्फ़ के बाद यदि एकदम धूप निकल आवे, तो आँखों में चकाचौंध हो जाती है।

बरसात व गर्मी में तराई भावर की आबहवा अच्छी नहीं होती। भावर की आबहवा उतनी ख़राब नहीं है, पर तराई में तो प्रायः लोग मलेरिया (ताप) ज्वर से पीड़ित रहते हैं। तिल्ली बढ़ जाती है। यहाँ मच्छर बहुत होते हैं। भावर के ऊपर ३-४ हज़ार फ़ुट ऊँचे पहाड़ों में भी आबहवा गर्म रहती है। पर वहाँ बर्फ़ नहीं गिरती।

---

६. तापमान

नैनीताल में तापमान का पारा गर्मी में ८५° से ज़्यादा नहीं जाता और जाड़ों में ३०°-३२° तक नीचे चला जाता है। मुक्तेश्वर में २५-५° तक नीचे जाता देखा गया है। अल्मोड़ा में, जो ५५०० फ़ुट समुद्र-सतह से ऊँचा है—पारा ६७° तक गर्मी में हो जाता है। धूप में किसी-किसी घाटियों में ११०°

तक तापमान चला जाता है। तराई में दिन में कहीं-कहीं ११६°-११७° गर्मी (छाया में) पड़ती है। शाम को कुछ कम हो जाती है।

गर्मी में नैनीताल, चौबटिया, बिनसर आदि पर्वतों में, बरसात में अल्मोड़ा में और जाड़ों में हल्द्वानी बहुत ही सुहावना मालूम होता है।

७. जल-वर्षा

बहुत ऊँचे पर्वतों में जल कम पड़ता है। पड़ता भी है, तो हौले-हौले। नीचे भाग के ऊँचे पर्वत बरसाती बादलों को खींच लेते हैं। उन्हीं में और उनके पास की जगहों में पानी खूब बरसता है। छोटी पहाड़ियों व घाटियों में पानी ज़्यादा नहीं पड़ता, यद्यपि कभी-कभी ज़ोर से बरसता है।

नैनीताल में सालाना औसत पानी की ६८" तक है। सन् १८६३ में १५४ इंच पानी पड़ा था। काठगोदाम में हर साल प्रायः ६१", हल्द्वानी में ८१", रामनगर में ६५", किलपुरी में ६४", रुद्रपुर में ५७" तथा काशीपुर में ४६" इंच पानी पड़ता है।

अल्मोड़ा ज़िले की औसत वर्षा ६०" है। अल्मोड़ा खास में ४०"-५०" से ज़्यादा पानी साल में नहीं पड़ता है। यही हाल रानीखेत का भी है। अल्मोड़े का पानी बिनसर, गागर, मुक्तेश्वर, स्याहीदेवी आदि पर्वत खींच लेते हैं। कभी-कभी अल्मोड़े में धूप होती है और इधर-उधर ज़ोरों से पानी पड़ता है। पाली पछाऊँ में पानी कम पड़ता है। वहाँ की औसत ४०" से ६०" के बीच है। कौसानी में ५०"-६०", बेनीनाग में ७२" तथा चौकोड़ी में ६२" पानी पड़ता है। जब बंबई में बरसात आरंभ होती है, तो प्रायः पर्वतों में ज़ोरों से पानी बरस जाता है। इसे छोटी बरसात कहते हैं। पर्वतों में प्रायः हर महीने पानी पड़ता रहता है।

८. बीमारियाँ

तराई भावर उष्ण प्रदेश हैं। वहाँ बीमारियाँ हों तो कोई आश्चर्य नहीं, पर प्राणवायु से परिपूर्ण पर्वतों की सुन्दर व स्वच्छ जलवायु में बीमारियों का नाम भी लोगों को मालूम न रहना चाहिये था। खेद है कि ऐसा नहीं है। योरपीय देशों ने वैज्ञानिक शिक्षा ग्रहण कर अपने देशों से मल, मच्छर, मक्खी आदि

बीमारी फैलानेवाले कुपात्रों को भगा दिया है, पर हमारा रहन-सहन, खान-पान वैज्ञानिक न होने से तथा स्वच्छतापूर्वक रहने की शिक्षा के अभाव के कारण तमाम रोग, शोक, दुःख, दारिद्र्य भारतवासियों के ज़िम्मे आ गये हैं। चाहे वे गंदी आबहवा में रहें, चाहे शुद्ध जलवायु-परिपूर्ण आबहवा में! वे हट्टे-कट्टे, खूबसूरत तथा फुर्तीले कम दिखाई देते हैं। कारण (१) बाल-विवाह की कुप्रथा, (२) कसरत की कमी, (३) वैज्ञानिक क्या किसी भी शिक्षा का अभाव, (४) कुछ-कुछ दरिद्रता आदि मुख्य कारण हैं कि कुमाऊँ के शहरों में क्या देहातों में भी बीमारियाँ कम नहीं होतीं। यहाँ की विशेष बीमारियाँ कफ, पित्त, वात-ज्वर हैं। 'सनजर' भी बहुत होता है। दस्त व आँव की बीमारियाँ तो पर्वत-वासियों की मौरूसी हो गई हैं। प्लेग व चेचक भी यदा कदा फैल जाते हैं। हैज़ा ज़्यादातर यात्रा लाइन, या किसी मेले से फैलता है अथवा कभी प्रचंड गर्मी पड़ गई और पानी बरसने में देर हुई, तो यह कहीं-कहीं संक्रामक रूप धारण कर लेता है। गलगंड (गला फूलना) व कोढ़ रोग भी बहुतायत से देखने में आते हैं। बीमारी को अभी बहुत-से लोग देवी-देवताओं का कोप समझते हैं और 'जागर' लगाकर या देवताओं का पूजन कर रोग-मुक्त होना मानते हैं।

यदि लोग कुछ स्वच्छतापूर्वक रहें, व्यायाम की महिमा को जानें, घर, गौशाला व जलाशयों को साफ़ रखें, नित्य स्नान की आदत डालें तथा खाद को मकानों से कुछ दूर पर खड्डु खोदकर रखें और मल-मूत्र को मकानों से कुछ दूर खड्डों में करें, जिन्हें मिट्टी से ढक दें, तो बहुत-सी बीमारियाँ दूर हो जावें।

क्षय रोग यहाँ सुना भी न जाता था, किन्तु जब से यहाँ की जलवायु क्षय रोग के लिये हितकर बताई गई और यहाँ पर 'सेनिटोरियम' खुले, तब से यहाँ क्षय रोग बढ़ गया है। लोगों ने किराये के लालच से मकान रोगियों को दे दिये, किन्तु वैज्ञानिक ढंग से वहाँ सफ़ाई न हुई। बस क्या था, कीटाणु सर्वत्र फैल गये। कुमाऊँ में अस्पताल व औषधालय सरकारी व निजी दोनों हैं। जिनका वर्णन अन्यत्र आवेगा।

एक बुखार जिसे 'सनजर' कहते हैं, देहातों में बहुत होता है। यह संक्रामक होता है। इससे बहुत लोग मरते हैं। नई सभ्यता के साथ 'टाइफ़ोइड' ज्वर का प्रकोप नगरों में बहुत बढ़ गया है।

कोढ़ रोग की भी यहाँ कमी नहीं है। सन् १८४० में २० कोढ़ियों से कोढ़ी-ना खुला था। सन् १९११ में ९ २७ (?) कोढ़ी थे। सन् १९३५ में ९५ थे।

टीका लगाने की रीति यहाँ बहुत पहले से प्रचलित है। चेचक का टीका लगाने की रीति अँगरेज़ों ने चलाई। अब तो हैज़े व प्लेग के टीके भी चल गये हैं। प्लेग भी यहाँ कई बार हुआ। इसे 'पुटकिया' कहते हैं। यह चूहा-प्लेग से कुछ भिन्न होता है। लोग गाँव छोड़कर जंगलों में भागे जाते हैं।

---

९. पशु

तराई में हिमालय तक का प्रांत नाना प्रकार की जलवायु से परिपूर्ण होने के कारण यहाँ नाना प्रकार के पशु पाये जाते हैं।

पालतू जानवर—हाथी, ऊँट (तराई-भावर में), घोड़े, खच्चर, गधे, गाय, भैंस, बैल, सुअर, भेड़, बकरी, चँवरगाय, झूपू, कुत्ते। भोटिये कुत्ते बड़े ही ज़बरदस्त होते हैं। जानवरों की बीमारियों में "मान व खुरिया" रोग पर्वत में ज्यादे होते हैं।

जंगली जानवर—जंगली हाथी तराई-भावर में होते हैं। हरिद्वार के पास चिल्ला जंगल से लेकर कुमाऊँ के कोटा भावर व सारदा प्रांत तक पाये जाते हैं। खेती को कभी-कभी कुचल जाते हैं। इनको खेदे से या खड़खोद-कर पकड़ते थे। पहले नवाब रामपुर तथा महाराजा बलरामपुर हाथी पकड़ा करते थे, पर अब बिना सरकार की आज्ञा के हाथी पकड़ना या मारना मना है। जंगली ऊँट तराई-भावर में नहीं होता। जंगली घोड़े, गदहे, क्यांग, याक, तिब्बती भेड़िये तिब्बत की तरफ़ पाये जाते हैं। वहाँ चँवरगाय व झूपू भी जंगली हालत में मिलते हैं। इनमें से बहुत-से पकड़कर पाले भी जाते हैं। तराई में बेत की झाड़ियों या भावर की घास में नर-भक्षक धारीदार बड़ा बाघ रहता है। लोग इसे शेर कहते हैं। पर वास्तव में यह बंगाली बाघ कहा जाता है। बाघ और भी कई क़िस्म के होते हैं—गुलदार, लकड़बग्घा, चीता, तेंदुवा आदि। हिमालय के बरफ़ानी इलाक़े में सफ़ेद बाघ भी होता है, जिसे 'ई' या थाङ्ग बाघ भी कहते हैं। वहाँ एक प्रकार का सफ़ेद भालू भी कभी-कभी पाया जाता है, पर ज्यादेतर काला भालू ही पहाड़ों में देखा जाता है। जोहार, दार्मा, व्यास में लाल रंग का भालू भी होता है। भावर में भूरे रंग का भालू देखने में आता है। नीलगाय व हिरन तराई भावर में कई प्रकार के होते हैं। बारहसिंगे, चीतल, पाड़ा आदि तथा घुरड़, काँकड़, बरड़, सुरो आदि पहाड़ में होते हैं। बरड़ बड़ा तेज़ जानवर होता है।

कई हज़ार फ़ुट नीचे कूद जाता है। शिकारी लोग इसे कूदने में गोली मारते हैं। इसका शिकार बड़ा रोमाञ्चकारी (Thrilling) होना कहा गया है। चौसिंगा हिरन, जड़ाऊ साँभर, गौड़ पाड़ा, सब प्रकार के पाये जाते हैं। भेड़िये उतने ख़तरनाक नहीं होते, जितने जंगली कुत्ते (शिकारी-बौंस व लद-बौंस) होते हैं। ये बाघ तक को मार डालते हैं। हिरन, चीतल, साँभर, जो कुछ मिला, चट कर जाते हैं। लोमड़ी व शृगाल भी कई क़िस्म के पाये जाते हैं, और तराई-भावर में ये बहुत होते हैं। शेर, बाघ, चीता, और भालू मारने में इनाम भी दिया जाता है। सैकड़ों हर साल मारे जाते हैं, तो भी जंगलों की बहुतायत के कारण कई मनुष्यों व डंगरों को बाघ मार डालते हैं। तराई - भावर के जंगल प्राचीन काल में राजाओं और नवाबों के शिकारगाह थे, अब अँगरेज़ों के शिकारगाह हैं। बंदर यहाँ दो क़िस्म के हैं—(१) 'रतुवा' या हनुमान्, जिसका मुँह व नितम्ब लाल होते हैं। (२) लंगूर, जिसकी दुम लंबी व मुँह काला होता है। भावर के तथा पर्वत के लंगूर में कुछ फ़र्क़ होता है। चुथरौल यहाँ का एक बड़ा अजीब व ख़ूबसूरत जानवर होता है। इसका पशम मुलायम होता है।

अन्य जानवरों में ख़रगोश, जंगली सुअर तराई का छोटा सुअर, जंगली बिल्ली, चमगीदड़ चूहे, गिलहरियाँ, नेवला 'ग्वाए', सेई आदि हैं। सेई जिसे 'सौला' कहते हैं, पहाड़ों में बहुत होती है। यह तीर छोड़ती है, और खेती को खासकर आलू को बहुत नुक़सान पहुँचाती है। तराई में जो छोटे क़द का सुअर होता है, उसका मांस थारू व बोक्से बहुत खाते हैं।

कस्तूरामृग ८ हज़ार फ़ुट के ऊँचे पर्वतों में पाया जाता है। कस्तूरी-औषधि उसके नाभी में होती है, जो नाभा कहलाता है। कभी-कभी एक नाभे में दो तोले तक कस्तूरी निकलती है। कस्तूरामृग छोटा, पर बड़ा तेज़ होता है। जब यह पेशाब या टट्टी करता है, तो कहते हैं कि इसकी मादा उसे ढक देती है, ताकि ख़ुशबू से शिकारी टोह न लगा लें। इसके बाल बड़े सख़्त होते हैं। कहते हैं कि यह कस्तूरी के मद में मस्त रहता है। पर्वती लोग इसे जाल में फाँसकर मारते हैं, तब नाभे को निकाल लेते हैं। मांस खानेवाले कहते हैं कि इसके मांस में से कस्तूरी की ख़शबू नहीं आती। मारते ही यदि नाभा जल्द न निकाला जाय, तो कहते हैं, ख़राब हो जाता है। सरो बड़ा तेज़ भागनेवाला जानवर है। ऊँची कंदराओं व घनी झाड़ियों में रहता है।

पहले पर्वती लोग खेदे से जंगली जानवरों को मार डालते थे, पर अब

शिकार के नियम बड़े कड़े हैं। जिनके पास लाइसेंस हैं, वे ही शिकार नियम-पूर्वक मार सकते हैं, अन्य नहीं। रामगंगा व कोसी नदियों के बीच एक २०० वर्गमील का जंगल जंगली जानवरों के लिये १९३५ से सुरक्षित रखा गया है। यहाँ जीव-जन्तु स्वच्छन्द रहेंगे। कोई उन्हें मार न सकेगा।

---

१०. चिड़ियाँ

दोनों पर्वत व भावर में नाना प्रकार की चिड़ियाँ होती हैं। अल्मोड़ा ज़िला तो चिड़ियों के लिये बड़ा धनी है। मानसरोवर के राजहंस की प्रशंसा तो पुराणों में भी है, क्योंकि शिव उस रूप में रहते हैं।

शिकारी चिड़ियाँ गिद्ध, उक़ाब, चील, बाज़, शिकरे सब होते हैं। यहाँ बाज़ पालने का चलन पहले बहुत था। यहाँ से वे बिक्री को जाते थे और शाही दरबार में भी। कूर्माचलाधिपति राजा रुद्रचंद ने 'श्यैनिक् शास्त्र' लिखा है, जिसमें शिकार खेलने के सब ढंग दर्शाये गये हैं।

आड़, मच्छी आड़, हंस, कबूतर, कई प्रकार के जंगली कबूतर (मल्या), फ़ाख़्ते, गौरैया, कोयल, कठकोरा, 'सिटौला', 'घिनौड़े', कौवे आदि-आदि होते हैं। लुंगी १२००० फ़ुट की उँचाई में तथा मुनाल-८००० से १२००० तक और ककलांस या पोखराज मुर्ग़ियाँ ५००० से १०००० तक की उँचाई में होती हैं। ये देखने में बड़ी सुन्दर होती हैं। साधारण कालिज मुर्ग़ी तो भावर व तराई तथा निचले पर्वतीय इलाक़े में सर्वत्र पाई जाती है। 'सिमकुकड़' एक बड़ी सुन्दर चिड़िया मुर्गे की तरह होती है। तीतर, बटेर, चकोर, बुलबुल, चाँचर, 'मुसभ्याकुड़', उल्लू, 'भ्यापकुस्यौड़' आदि अन्य चिड़ियाँ भी सर्वत्र होती हैं। जल-मुर्ग़ियाँ भी बहुत होती हैं। तराई-भावर में सारस, बगुले भी अनेक क़िस्म के होते हैं। भावर में मोर बहुत होते हैं। ४५० प्रकार की चिड़ियाँ इस ज़िले में होनी कही जाती हैं।

---

११. साँप और कीड़े-मकोड़े

८-९ क़िस्म की छिपकलियाँ होती हैं। गिरगिट भी बहुत दिखाई देता है। यह ज़हरीला समझा जाता है, पर वास्तव में विषहीन होता है। 'ग्वाण' या

गोह भावर में ज़्यादा पाई जाती है, जो पानी के पास रहती है व ४ फ़ुट तक लंबी होती है। साँपों की २५-३० क़िस्में होती हैं, इनमें कई विषधर होते हैं और कई विषहीन। भावर में अजगर भी होते हैं, जो २५-३० फ़ुट तक लंबे होते हैं, और एक बड़े चीतल को निगल जावेंगे। कोई-कोई सर्प बड़े खूब-सूरत होते हैं। काले, लाल, हरे, चितकबरे सभी क़िस्म के होते हैं। बेतियाँ साँप भी कहीं-कहीं पाये जाते हैं। काले साँप ज़्यादा विषैले होते है। जोंकें बरसात में जंगलों में बहुत होती हैं। नंगे पैरों में चिपट जाती हैं। जानवरों के नाकों में घुस जाती हैं। 'मूरे' याने छोटे मच्छर भी बरसात में बहुत होते हैं।

---

१२. जलचर

मछलियाँ अनेक प्रकार की होती हैं। कुछ ब्राह्मण तथा कुछ वैश्यों को छोड़कर प्रायः सब लोग खाते हैं। ये अनेक प्रकार से 'गोदों' द्वारा या 'मैन' डालकर मारी जाती हैं। कुछ लोग बलछियों से भी मारते हैं। थारू व बोक्से मछलियाँ खूब उड़ाते हैं। रामगंगा, कोसी व सरयू में बड़ी-बड़ी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। मगर व सूस देशी इलाक़े में होते हैं, पहाड़ी इलाक़ों में नहीं होते।

---

१३. कुमाऊँ के परगनों का प्राचीन व अर्वाचीन इतिहास

कुमाऊँ के परगनों का ज़िक्र कुमाऊँ के इतिहास में आया है। इससे उनका थोड़ा-सा प्राचीन व अर्वाचीन ऐतिहासिक व भौगोलिक वर्णन देना आवश्यकीय है, ताकि इतिहास को समझने में मदद मिले। इस पुस्तक में जिन पट्टियों व परगनों का ज़िक्र आया है, वे चंद-राजाओं के समय की हैं। अँगरेज़ों के समय का इतिहास बाद को यत्र-तत्र संक्षेप में जोड़ा गया है।

---

१४. काली कुमाऊँ

इस परगने की हदबंदी इस तरह है—पूर्व में काली नदी। उत्तर में सोर,

गंगोली, व सरयू नदी। पश्चिम की तरफ़ ध्यानीरौ। दक्षिण में लधिया नदी।

पट्टियाँ—रेगड़ू, गुमदेश, सुई, बिसुंग, चार आल, तल्लादेश, पाल बिलौन, सिपटी, गंगोल, अस्सी, फड़का, वालसी।

पुरानी दन्त-कथा सतयुग में इस परगने में देवताओं का वास था। पीछे दानव व दैत्य (राक्षस) रहने लगे। रामायण से ज्ञात है कि त्रेतायुग में जब श्रीरामचंद्रजी ने लंका में रावण व कुम्भकर्ण को मारा, तो कुम्भकर्ण का सिर कूर्माचल में फेंका इसलिये कि वहाँ राक्षसों की जगह है। विचार यह था कि सिर को वहाँ फेंकने से पानी बहुत होगा, जिसमें दानव वग़ैरह डूब मरेंगे। कहते हैं कि ऐसा ही हुआ।

तत्पश्चात् द्वापर के अन्त व कलिकाल के आरंभ में जब कृष्णावतार हुआ, तो पांडवों ने तमाम जगत् में दिग्विजय का डंका बजाया। उस समय, कहते हैं, उनकी लड़ाई यहाँ क्षत्रियों से हुई थी। यह बात लगभग ५,००० वर्ष की है। यह भी कहते हैं कि हिडिम्बा राक्षसी से उत्पन्न भीमसेन का पुत्र घटोत्कच्छ, जो महाभारत में कर्ण के हाथ मारा गया था, यहीं का रहनेवाला था। अतः उसकी मृत्यु के बाद भीमसेन ने उसकी यादगार में एक मंदिर चंपावत के पास बनाया। वहाँ पर उसने कुम्भकर्ण की खोपड़ी फोड़ डाली, जिससे गंडकी उर्फ़ गिड़या नदी बह निकली। बाद चंपावत से पूर्व १ मील के फ़ासले पर, फुंगर पहाड़ में, घटोत्कच्छ का मंदिर बनाया, जिसको इस समय 'घटकू देवता' कहते हैं। उसके नीचे १ मील पर हिडिम्बा रानी के वास्ते महल (मंदिर) बनाया। वह अब तक प्रसिद्ध है। यह भी कहते हैं कि घटोत्कच्छ (घटकू) देवता पर चढ़ाये बकरे का ख़ून पानी मिला हुआ पहाड़ के भीतर-ही-भीतर होकर हिडिम्बा के मकान से प्रकट होता है। वहाँ लाल-लाल पानी निकलता है। शायद हरताल या लाल मिट्टी की खान हो। घटकू उर्फ़ घट्टू देवता के नाम से बत्तियाँ जलाने से पानी नहीं बरसता।

इस परगने का पुराना नगर सुई पट्टी में था, जहाँ अब देवदारु के वृक्षों का वन है, और उसके भीतर सूर्यदेवता का मंदिर अब तक विद्यमान है। यह सूर्यवंशी राजाओं का बनाया हो। इस पहाड़ की तलेटी में बाद को अँगरेज़ों ने लोहाघाट बसाया, जहाँ पहले कम्पनी-राज्य के समय फ़ौज भी रहती थी। जब सुई में नगर बसा था, तो चंपावत में घना जंगल था। बाद चंपावत के पश्चिम तरफ़ नगर बसा, और वहाँ पर रावत क़ौम के राजा ने दौणकोट नाम का क़िला भी बनाया। इस नगर के भग्नावशेष अब भी कोतवाल-चबूतरा व सिंगार-चबूतरा कहलाते हैं। इस दौणकोट के रावत

राजा की संतानें अभी पट्टीतल्ला देश गाँव सल्ली में और गुमदेश में रहती हैं। सोमचंद राजा ने दौणकोट उजाड़कर चंपावत बसाया। अँगरेज़ों ने यहाँ नगर न बसाकर लोहाघाट को आबाद किया। चंपावती नदी के किनारे होने से चंपावत नाम पड़ा। इसमें राजा सोमचंद ने राजबुंगा नाम का क़िला

चंपावत

बनाया। यहाँ आजकल तहसील का दफ़्तर है। सबसे पुराना क़िला कौटौल गढ़ है, जिसको कहते हैं कि बाणासुर दैत्य ने अपने लिये बनाया था। जब वह विष्णु से न मारा गया, तो महाकाली ने प्रकट होकर उसे मारा। सुई

डाक-बँगले से चंपा -क़िले का दृश्य

को श्रोणितपुर भी कहते हैं। लोहा नदी उसी दैत्य के लोहू से निकली। वहाँ की मिट्टी, कुछ लाल, कुछ काली है। कहा जाता है कि दैत्य के खून से वह ऐसी हुई। और भी सुईकोट, चुमलकोट, चंडीकोट, छतकोट, बौनकोट क़िले कहे जाते हैं, जो खँडहर के रूप में हैं। ये छोटे-छोटे मांडलीक राजाओं द्वारा बनाये गये थे। खिलफती जहाँ अखिलतारिणी देवी हैं और वाराहीदेवी जिसको 'दे' भी कहते हैं, इसी पहाड़ पर हैं। वाराही देवी देवीधुरे में हैं। हिंगना व चंपावती देवी भी विद्यमान हैं। देवीधुरा में श्रावणी को मेला होता है। चंपावत के पूर्व की तरफ़ बड़ा ऊँचा पर्वत है, जिसमें क्रान्तेश्वर महादेव हैं। यहीं कूर्मपाद भी हैं। इसे कानदेव भी कहते हैं। पहाड़ की सलामी में मल्लाड़ेश्वर महादेव भी देवदार के जंगल के भीतर हैं। पश्चिम की तरफ़ हिंगुलादेवी का तथा सिद्ध का ऊँचा डाँडा है। यहाँ नृसिंह देवता का मंदिर है, जो सिद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। चंपावत में बालेश्वर का मंदिर तथा बावड़ी देखने योग्य
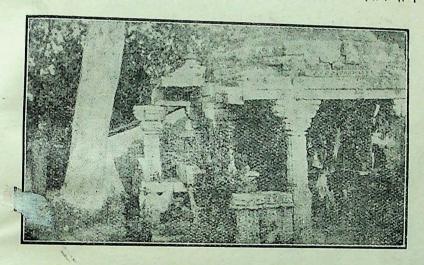
बालेश्वर-मंदिर का दृश्य—उत्तर से

हैं। अन्य मंदिर ताड़केश्वर, बनलेख, हरेश्वर, मानेश्वर, डिप्टेश्वर, ऋषेश्वर, रामेश्वर, पचेश्वर आदि हैं। मायावती यहाँ पर बड़ी सुन्दर तपोभूमि है। यहाँ स्वामी विवेकानंद द्वारा स्थापित रामकृष्ण-मिशन का मठ है। यह प्रान्त बड़ा ठंडा है। यहाँ का जलवायु बड़ा हितकर है। यहाँ की बोली सबसे प्यारी लगती है। यहाँ की नदियाँ लधिया, गिंडकी (गिड़िया), लोहावती तथा चंपावती हैं। कई जंगल भी यहाँ के बहुत घने हैं।

इतिहास—काली कुमाऊँ के बीच सुई या दौणकोट में बसनेवाला राजा

ध्यानीरौ व चौभैंसी का भी मालिक होता था, तो भी उसके नीचे प्रत्येक पट्टी का नेता एक पट्टीदार भी होता था, जिसका काम मालगुज़ारी वसूल करना तथा राजा की आज्ञानुसार चलना था। चंद-राजा के समय इनका पद बूढ़ा, सयाना या कमीन कहा जाने लगा। फुंगर व चौकी के बौरे अपने को यहाँ
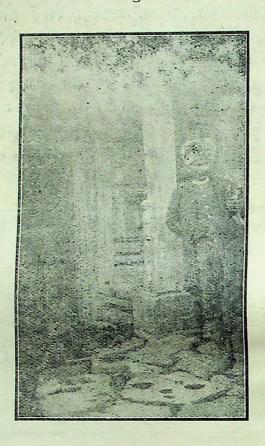
बागेश्वर-मंदिर का दृश्य—सामने से

का सबसे पुराना बाशिंदा या 'थातवान' बताते हैं। जाड़ों में गेहूँ बोकर यहाँ के लोग कदीम से भावर को जाते रहे हैं।

'दस दशैं बीस बगवाल, कुमूँ फुत्त भाँग भँगवाल।'

यह क़िस्सा था। अब लोग भावर कम जाने लगे हैं। पहाड़ी काग़ज़ यहाँ मुद्दत से बनता आया है। राजा के समय खतेड़ा गाँव की चरस बहुत मशहूर थी। फोर्ती गाँव से नित्य राजा के लिये तीतर शिकार को जाते थे। गोस्नी से हरा धनिया जाता था। कलरव्वाण का 'चोता' यानी मूली, चौगाल

के 'पिनालू' (घुइयाँ), सुई के 'गावा', पाड़ास्यूँ का दही, मछियाड़ के गेहूँ
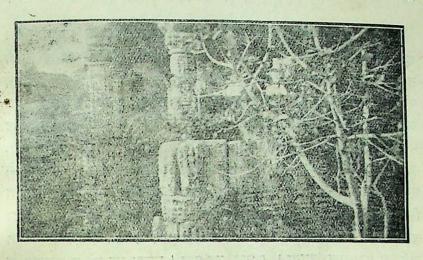
बालेश्वर-मंदिर का दृश्य—दक्षिण से

व नारंगी, सालम से बासमती आदि चीज़ें राजा के लिये जाती थीं। अब भी ये पदार्थ उन प्रांतों के प्रसिद्ध हैं।

---

१५. ध्यानीरौ

यह परगना काली कुमाऊँ के पश्चिम तरफ़ था, अब पट्टी है। इसमें मात्र दो पट्टियाँ थीं—तल्ली व मल्लीरौ। लधिया नदी इन्हीं पहाड़ों में से निकलकर बही है। तल्लीरौ में किमूखेत में ताँबे की खान है, और इसी पट्टी में मंगललेख-नामक गाँव में लोहे की खान है। यहाँ का लोहा बहुत उत्तम बताया जाता है। कायलकोट व कैड़ाकोट नाम के दो क़िले वीरान हैं। लोहाखाम व कैलास नाम के पहाड़ बहुत ऊँचे हैं। मल्लीरौ में गुराना, बड़ेत गाँव तथा जोस्यूड़ा का हिस्सा वाराहीदेवी को गूँठ में चढ़ाए हैं। यहाँ बौरा व कैड़ा लोग ज़्यादातर रहते हैं। यही वीर लोग चंद राजाओं की फ़ौज में भर्ती होकर बौरारौ, कैड़ारौ व पाली पछाऊँ जीतने को भी गये थे।

---

१६. चौभैंसी

यह परगना ध्यानीरौ से पश्चिम को था। अब यह भी एक पट्टी है। छखाता से मिला हुआ था। इसके बीच में गौला नाम की नदी है। यहाँ सतलिया का डाँडा बहुत टंडा है। सुराई के पेड़ यहाँ बहुत होते हैं। इस परगने के अंत में मलुवा ताल है। मलुवा ताल का क़िस्सा इस प्रकार कहा जाता है—श्रीमलुवा रैक्काल जाति का छखाते का एक ज़मींदार था। वह बड़ा बलवान् था। अपने को पैका (पहलवान) कहता था। जो मन में आता, करता था। जिसकी जो चीज़ अच्छी देखता, छीन लेता था। एक बार मलुवा ने एक किसान की ख़ूबसूरत औरत को भगाकर उसे पहाड़ की गुफा में छिपा लिया, और आप भी वहीं जा बैठा। तमाम जगहों से अच्छी-अच्छी चीज़ें उठा लाता था। जिसने चूँ की, उसे मार डालता था। बरसात में एक बार बहुत वर्षा हुई। भूचाल आया। पहाड़ टूट पड़ा। मलुवा मय स्त्री व असबाब के नीचे गौला नदी में बह गया। गौला नदी भी कई दिनों तक बंद हो गई। बाद को फूट निकली। जहाँ पहाड़ गिरा था, वहाँ तालाब हो गया। मलुवा के नाम से वह ताल मलुवा ताल कहलाया। पहले ये दो पट्टियाँ परगने काली-कुमाऊँ में थीं, बाद को ये परगनों में तब्दील की गईं।

इस समय काली कुमाऊँ के परगना अफ़सर लोहाघाट में रहते हैं। यह छोटी-सी बस्ती है। चंपावत के राजबुंगा क़िले में इस समय तहसील है। अबटमंट में कुछ किरानियों (Angio Indians) की बस्ती है। सन् १६१३ में यह पर्वत कमिश्नर साहब ने किरानियों को बसने को दे दिया। मायावती में स्वामी विवेकानंद का आश्रम है। खेतीखान में भी अच्छी बस्ती है। यहाँ मिडिल स्कूल है। चंचल जगह है।

---

१७. सोर

सरहद—पूर्व में काली, दक्षिण में सरयू, पश्चिम में रामगंगा, उत्तर में अस्कोट, कंडाली छीना तथा सीरा।

पहली पट्टियाँ—सेटी, खड़ायत, सातसिलंगी, महर, सौन बल्दिया, रौल।

'सैणी सोर' व सोर दो नाम से यह परगना बसा है। जहाँ मैदान है, वहाँ 'सैणी सोर' कहा जाता है, अन्यत्र जहाँ पर्वत हैं वहाँ सोर।

ऊँचे पर्वत—धज, कवालेख, उदयपुर, अर्जुनेश्वर, हीनापानी, असुरेश्वर या असुरचुल, चंडाक, थलकेदार, बसारुड़ी, बमद्यौन।

नदियाँ—सरयू, काली, रामगंगा (पूर्वी) आदि बड़ी नदियाँ इसकी सरहद में बहती हैं।
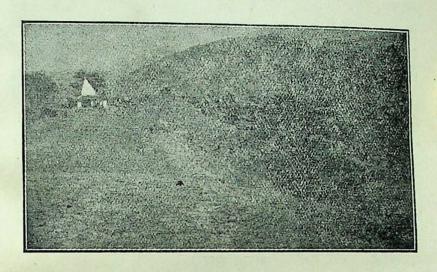
पिठौरागढ़

यहाँ एक जगह लाल मिट्टी निकलती है, जो गुलाल की तरह होती है। काग़ज़ पहाड़ी भी बनता है, पर मोटा होता है। काग़ज़ 'बड़ुवा' पेड़ से बनता है। इसके पत्ते लंबे, पौधा छोटा, फूल सफ़ेद व फल पकने पर लाल होते हैं। इसकी जड़ से जुलाब की दवा भी बनती है।

देवताओं के नाम ध्वजेश्वर, पचेश्वर, स्थलकेदार, गोकर्णेश्वर आदि महादेव हैं। वैष्णवी व कोटवीदेवी हैं। धज में जयन्तीदेवी हैं। यह भी कहा जाता है कि देवीजी ने चंड मुंड नामक दैत्यों को यहाँ पर चंडघात उर्फ़ चंडाक में मारा था। श्रीअठकिन्सन साहब तथा श्रीरुद्रदत्त पंतजी ने यहाँ के दो क़िस्से लिखे हैं—

सोरैकि नाली कत्यूरिया माणो,
ज्वेजै ठूली खसम जै नानो।

जिससे ज्ञात होता है कि यहाँ पर पुरुष से स्त्रियों की प्रभुता ज़्यादा है। उन्होंने एक क़िस्सा और भी लिखा है, जो अश्लील होने से हमने नहीं लिखा।

सोर बहुत दिनों तक डोटी राज्य के अधीन रहा। सोर में पहले ६ राजा थे, इसलिये इसे "ना ठुकुर सोर" भी कहते हैं। उन राजाओं के नौ क़िले थे—
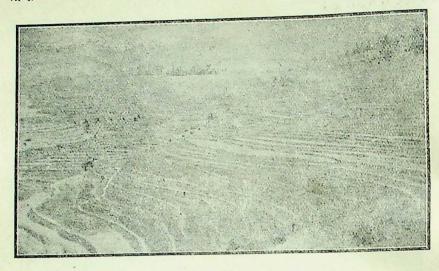
लीलू (सोर)

(१) उचाकोट—पंगूट व हुड़ती गाँव के बीच।

(२) भाटकोट—पिठौरागढ़ से पूर्व चैसर व कुमौड़ गाँव के उत्तर आधे कोस पर।

(३) बैलरकोट—मौज़े थरकोट के निकट।

(४) उदयपुरकोट—बाज़ार से पश्चिम को मौज़े पयदेव व मजेड़ा के ऊपर।

(५) डुंगराकोट—मौज़ा धारी व पामैं के पास।

(६) सहजकोट—बाज़ार के उत्तर मौज़ा पंडा व उर्ग पहाड़ के ऊपर।

(७) बमुवाकोट—बाज़ार के दक्षिण तरफ़ पहाड़ की चोटी पर।

(८) देवादारकोट—वलदिया पट्टी में मौज़े सिमलकोट के निकट।

(९) दुनीकोट मौज़े दुनी व कासनी के नज़दीक छावनी से पूर्व तरफ़।

अब इन राजाओं का कुछ भी पता ज्ञात नहीं। इनके क़िले वीरान पड़े हैं, खँडहर-मात्र हैं। इन सब राजाओं को परास्त कर तमाम सोर में एक बार बम राजा का राज्य हो गया था। चंदराज्य के समय यहाँ पीरू उर्फ़ पृथ्वी गुसाईं ने पिठौरागढ़ क़िला बनाया, तब से इसी नाम से प्रख्यात हुआ। सोर व डोटी (नैपाल) के बीच काली नदी है। काली बड़ी तेज़ व गहरी नदी है। इसे

पार करना कठिन है। क़िस्सा भी है—"काली हूँ जनार नै, स्वर्ग सूँ ठँगार नै"। झूलाघाट के पास नदी तंग है। इसे पहले जूआघाट भी कहते थे। कहते हैं कि यहाँ नदी इतनी तंग थी कि लोग बैलों का जूआ रख नदी पार कर लेते थे। अब तो फाट बहुत चौड़ा हो गया है। अब वहाँ लोहे का पुल या झूला होने से झूलाघाट कहलाता है। काली में स्नान करने का कुछ भी पुण्य नहीं कहा जाता, "काली नयो, भालू खयो।"

सोर में शहद याने मधु बहुत होता है। केला भी यहाँ का मीठा होता है। नारंगी गंगोली से कुछ खट्टी होती है। ग़ल्ला व घी भी यहाँ और जगहों से सस्ता बिकता है। घी यहाँ से बाहर को भी जाता है। फुलुवा व च्यूरे का गुड़ भी यहाँ नैपाल से आता है। कुछ पेड़ यहाँ भी हैं।

आधुनिक काल में यहाँ पर एक अँगरेज़ी हाईस्कूल, एक मिशन तथा एक हिंदी-मिडिल स्कूल है। कन्या-पाठशालाएँ भी हैं। परगना-अफ़सर भी रहते हैं। डाकबँगला व अस्पताल भी हैं। तार, डाकख़ाना व तहसील भी हैं। सन् १८४६ तक यहाँ पलटन भी रहती थी। पलटनों के बहुत सिपाही व पेंशनर यहाँ रहते हैं। मिशन की भी बड़ी बस्ती है। दो छोटे क़िले हैं, जो लंदन व विल्कीगढ़ कहलाते हैं। चंडाक से दृश्य सुंदर दिखाई देता है। वहाँ एक कोढ़ीख़ाना भी है। ओड्डा में एक अच्छी बस्ती है।
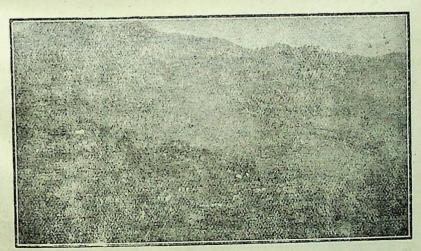
सिनचौड़ (सोर)

चंडाक के पास मोस्ट माणू में बहुत बड़ा मेला होता है। रामगंगा से बास तक बड़ी सख़्त चढ़ाई है। कालछिन के ऊपर गोरंग भी एक अच्छी

ख़ूबसूरत जगह है। लीलू, सिनचौड़, नैनी, नायकाना आदि गाँवों में नायक रहते हैं।

---

१८. सीरा

सरहद—पूर्व में हलाबाँज व कंडाली छीना इसे अस्कोट से अलग करते हैं। उत्तर में इसके व जोहार के बीच गोरीगंगा तथा कोटाली सुजान बुंगा हैं। पश्चिम में रामगंगा इसे गंगोली से भिन्न करती है। दक्षिण में इसके व सोर के बीच रसलापाटा तथा विछिलका बिरखम नामक पर्वत हैं।

पुरानी पट्टियाँ—आठबीसी, बारबीसी, डिंर्ड हाट, माली, कसाण (यह पट्टी अब नहीं है)।

ऊँचे पर्वत—खांडाधुरा, देवचुला, सीराकोट, सिरथाम, सानदेव, जुड़ंग, सिंगारपुर, जतियाखान, दरदेव का डाँड़ा, मसूरदेव का धुरा, गुडिला और परीखान।

नदियाँ डिंडेश्वर, बालआँति, भाड़ीगाड़, रैतिस, ठुलीगाड़, परगाड़, डोका, पाला, ककडाली आदि। पर सबसे बड़ी नदी रामगंगा है, जो रामेश्वर में सरयू के साथ मिलती है।

देवता खाड़ाधुरा में घंटेश्वर महादेव हैं। इस जगह रैका राजा के वक़्त में डोटी, बंजाग, अछाम तक के आदमी मेले में जमा होते थे। अक्सर इस देवता को घंटे चढ़ाये जाते हैं। चंद राजाओं के समय से यह मेला कम हो गया। अब काली पार के लोग राज्य बदल जाने से नहीं आते। देवचुला पहाड़ में भागालिंग महादेव हैं। हर साल भादों में मेला लगता है। रामगंगा के किनारे बालीश्वर महादेव हैं। कहते हैं कि त्रेतायुग में इस लिंग की स्थापना वानरों के राजा बाली ने की थी।

यहाँ चैत्र महीने की पूर्णमासी को मेला होता था। अब विषुवत् संक्रांति को होता है। यह तिजारती मेला है। भोट व देश का माल यहाँ पर बिक्री को आता है। जोहार, दार्मा, व्यांस, चौदांस, दानपुर, सोर, सीरा, अस्कोट, गंगोली, काली कुमाऊँ के लोग तथा अल्मोड़ा के महाजन यहाँ जमा होते हैं। सुहागा, नमक, पश्मीने, कंबल, पंखियाँ, मुश्क नाभे, चँवर, निरबीसी, कटुकी, माँसी, मूंगा, गंद्रेणी, जंबू, मोती, कपड़े, मिसरी, मेवे, गोले, दाख, बादाम, छुहारे, पान, सुपारी इत्यादि चीज़ें बेची व ख़रीदी जाती हैं।

डिंडीहाट यहाँ का मुख्य स्थान है। ऊँची व ठंडी जगह में है। दो पहाड़ों के बीच नदी के किनारे धूप सेकने को रैका राजा जाड़ों में यहाँ आते थे। यहाँ बाज़ार भी था। पुराना महल टूटा पड़ा है। कई अन्य खँडहर भी है। डिंडीहाट के ऊपर दिगतड़ एक मैदान जगह है। रैका राजा के वक्त यहाँ पर बड़ा मेला लगता था। चंद राजाओं ने इसे बंद कराकर गंगोली में जारी किया था, जो अब फिर बालीश्वर रामगंगा में होने लगा है। बाराबीसी पट्टी में ताँबे की खान बहुत बड़ी है। इसे राजखान कहते हैं। यहाँ ताँबा बहुत अच्छा निकलता था। एक और ताँबे की खान बमनगाड़ में है, लेकिन वह पुरानी है। पट्टी माली के मुसमोली गाँव में एक पेड़ नागकेशर का बहुत पुराना है। इसके फूल राजदरबार में आते थे। यह हैज़े की दवाई भी होनी कही जाती है।

यह परगना रैका राजा हरमल्ल के समय तक डोटी में शामिल था। बाद को कुमाऊँ में शामिल हो गया। दिगतड़ पाटा के ऊपर पश्चिम तरफ़ पहाड़ की चोटी पर सिराकोट अब तक विद्यमान है। इसमें रैका राजा रहते थे। इसके भीतर देवी व भैरव के मंदिर भी थे, जो टूटे पड़े हैं। इस क़िले से नीचे नदी के भीतर-ही-भीतर दो मील की सुरंग है, जो अब टूटी पड़ी है। इस क़िले को सेनापति पुरुषपंत ने जीता था। जब से चंद-राजाओं के हाथ आया, यह बड़ा क़सूर करनेवाले लोगों के लिये कारागार नियुक्त किया गया। इसी के पास एक नया क़िला भी है। पर अब दानों टूटे पड़े हैं। नया क़िला बनाने की बाबत यह कहावत है कि एक दिन जब राजा शिकार को गये थे, तो चोटी के ऊपर हिरन (कांकड़) ने राजा पर हमला किया। राजा ने कहा, हिरन की हिम्मत हमला करने की कैसे हो सकती है। यह भूमि का गुण है। अतः वहाँ पर क़िला बनाया गया। इसी सीराकोट क़िले में राजा दीपचंद मय दो पुत्रों के क़ैद किये गये थे। बाद को राजा मोहनचंद के हुक्म से मारे गये।

इस प्रान्त में पहले केले बहुत होते थे। लोग केले की फलियाँ तोड़ने को ढोल, नक़ारे बजाते तथा बंदूक़ें छोड़ते जाते थे, इसलिये कि कहीं केले के वृक्षों में बाघ न घुसा हो। बालीश्वर के ऊपर एक सुन्दर मंदिर है, जिसे कहते हैं कि एक हाथवाले कारीगर ने बनाया था। इक़रार यह था कि मंदिर रात ही में बनेगा, रात ही में प्रतिष्ठा होगी। पर मंदिर बनाते-बनाते सुबह हो गई, इससे प्रतिष्ठा रह गई।

यहाँ पर तड़ शब्द से विभूषित बहुत सी जगहें विद्यमान हैं। यथा—दिगतड़, लिखतड़, धिंगतड़, पीपलतड़, दुबतड़, अमतड़, बलतड़ आदि।

रामगंगा के किनारे थल तथा लगभग ८००० फ़ीट की उँचाई पर डिंडीहाट, ये ही दो स्थान इस पट्टी में प्रधान हैं। डिंडीहाट में इस समय एक मिडिल स्कूल है।

---

१९. अस्कोट

अस्कोट प्राचीन कत्यूरी राजाओं के राजवंश की एक छोटी-सी, पर प्रतिष्ठित राजधानी है। विराट् कत्यूरी साम्राज्य का अब यही एक स्मारक है।

ऊँचे पर्वतों के नाम—धज, साज, गोब्रस, लेख, सिंहालीखान, नाकोट,

अस्कोट

चंफाचल, जमतड़ी, हैड़ीखान, छिपलाधुरा, दारचुला, पर्यांपौड़ी। इन सबमें छिपला व धज पर्वत सबसे ऊँचे हैं।

नदियाँ—सांगकी नदी गोब्रस पहाड़ से, चर्मा नदी डिंडीहाट से, गोमती अस्कोट से, गोरी जोहार से और रौतिस सीराखेत गाँव से निकलकर काली में मिल जाती हैं। गलांती खेती, फुला, रेलागाड़ छोटी-छोटी नदियाँ हैं। काली व गोरी इस इलाक़े की बड़ी नदियाँ हैं। इनका संगम जौलजीवी में होता है। यहाँ पर सन् १९१३ से कार्त्तिक संक्रान्ति को एक तिजारती मेला होने लगा है।

छिपुला (१३०००) उर्फ़ नाजुरकोट के पहाड़ में एक बहुत बड़ी गुफा है। तीसरे साल जाड़ों के मौसम में वहाँ मेला होता है। पूजा के समय पुजारी
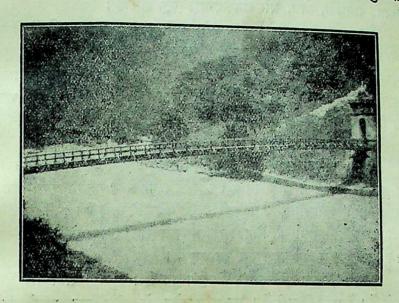
गोरी गंगा पुल—गर्जिया, अस्कोट

लोग शंख, घंट और भेरी वग़ैरह बाजे बजाते हुए उस गुफा में घुसते हैं। वहाँ पत्थर में से एक लोटा पानी निकलता है, फिर बंद हो जाता है। इसमें देवता की बड़ी करामात मानकर पूजा करते हैं। यहाँ एक तालाब भी है। इसमें भी तीसरे साल वर्षा-ऋतु में मेला लगता है। छिपुला देवता की पूजा होती है। उस ओर के जमींदार अपने लड़कों का जनेऊ भी करते हैं। इसी तालाब में एक छोटा-सा मकान पत्थरों का बना है। इसमें वही जा सकता है, जिसके ऊपर देवता नाचता है। यह तालाब सिर्फ़ बरसात में भरा रहता है। गरमी और जाड़ों में सूख जाता है।

चंफाचल पहाड़ में मल्लिकार्जुन महादेव हैं। यहाँ साल में दो बार मेला होता है। इस मेलेवालों को खाना रजबार देते थे। कारण यह है कि पहले इस महादेव की पूजा डोटी के इलाक़े में होती थी। सौ वर्ष से ज्यादा हुए, जब रजबार अस्कोट को स्वप्न हुआ था कि अब से पूजा चंफाचल पर्वत में होगी। तब से वहीं मंदिर बनाया गया।

लखनपुर कोट—यह कोट चंफाचल पहाड़ अस्कोट के पूर्व तरफ़ काली गंगा के किनारे है। अस्कोट बसने से पहले अस्कोट के राजा इस कोट में

रहते थे। इसी कोट के पास बगड़ीहाट नामक बाज़ार था, पर अब यहाँ पर खँडहर-मात्र हैं। काली के किनारे की भूमि .खूब उपजाऊ है । घी, शहद केला, बासमती, आम, और अमरूद यहाँ .खूब होते हैं।

मुख्य स्थान—अस्कोट ख़ास को, जहाँ रजबार साहब रहते हैं, देवल भी कहते हैं। यहाँ रजबार तथा उनके भाइयों के भवनों के अतिरिक्त कुछ दुकानें, डाकख़ाना और फौरेस्ट बँगला हैं। गर्खा, सिंहाली, मलाना, कनाली-छीना, धारचूला और बलुवाकोट अस्कोट के मुख्य स्थान हैं। यहाँ पाठ-शालाएँ भी हैं। धारचूला में जाड़ों के दिनों में भोटियों के नीचे आने से काफ़ी चहल-पहल रहती है।

लोग—तल्ला अस्कोट में चारों वर्ण के हिंदू विद्यमान हैं। मल्ला अस्कोट में अधिकतर डोटी के लोग बसे हैं। ऊँचे-ऊँचे पर्वतों में राची, जुमा, कनार आदि गाँवों में प्राचीन निवासी रहते हैं, जो बड़े सीधे-सादे हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ के आदि निवासी भी, जिनको रावत, राजी या किरात कहते हैं, कहीं-कहीं पाये जाते हैं। ये अब बहुत कम रह गए हैं।

पेशा—मुख्यतः कृषि-कर्म और पशु-पालन है। बहुत-से लोग नौकरी भी करते हैं। सेना में सिपाही हैं। मल्ला अस्कोट के लोग ऊन कातते तथा बकरियाँ पालते हैं। ऊन, नमक और सुहागे का व्यापार भी करते हैं। यहाँ चटाइयाँ भी अच्छी बनती हैं। रावत लोग काठ के बर्तन सुन्दर बनाते हैं।

प्रबंध—तल्ला व मल्ला अस्कोट में करीब १४२ गाँव हैं। तल्ला अस्कोट में केवल ४-५ गाँव हिस्सेदारी के हैं, शेष खायकर हैं। मल्ला अस्कोट में ५-६ ग्राम खायकरों के हैं, शेष में सिरतान हैं।

यह परगना पहले डोटी में शामिल था। बाद को कत्यूरी राजाओं की एक शाख यहाँ आई। पहले उनको डोटी के अधीन रहना पड़ा, बाद को वे चंदों के नीचे मांडलीक राजा हो गये। अँगरेज़ी राज्य में वे रजबार कहलाते हैं। काशीपुर को छोड़कर कुमाऊँ के सब ज़मींदारों में प्रतिष्ठित समझे जाते हैं, क्योंकि यहाँ पर बड़े भाई को गद्दी मिलने का नियम है। रियासत के बटवारे का नियम नहीं है। छोटे भाई के वंशवालों को गुज़ारा मिलने का नियम है।

रजबार या राजबार की दो उत्पत्तियाँ हमारे सुनने में आई हैं—(१) राज + वर = राजवर, राजाओं में श्रेष्ठ। (२) राज + बारह याने १२ राजाओं में से एक। उस समय १२ राजा थे, यथा कत्यूरी, चंद, खस, शाई, मल्ल, बम, मणकोटी, बशेड़ा आदि। अतः १२ राजाओं में से एक राजा रजबार कहलाये। कह नहीं सकते, इनमें से कौन उक्ति ठीक है।

विकेट साहब के बंदोबस्त के समय जितने हिस्सेदार अस्कोट के थे, वे प्रायः सब खायकर बनाये गये, और खायकर सिरतान बनाये गये। रजबार साहब एक छोटे से ताल्लुक़ेदार क़रार दिये गये। यहाँ सिरतनों को अनेक तथा खायकरों को भी कई कष्ट कृषि और लगान-संबंधी हैं। सिरतानों को रजबार साहब जब चाहें निकाल सकते हैं, जितना लगान चाहें लगा सकते हैं। दीन प्रजा से एक प्रकार की बेगार ली जाती है, जिसे 'विसौंदी' कहते हैं। इस बेगार द्वारा इन असामियों से बाज़ार भाव से चौथाई मूल्य पर ग़ल्ला लिया जाता है। इस समय विसौंदी में घी एक रुपये का तीन सेर, चावल एक रुपये के २४ सेर, गेहूँ ४० सेर, जौ ६० सेर के भाव लिये जाते हैं। इनके अलावा नज़राना, बेलीबासा, बिसासौ, भगुली, टीका, सिरती आदि टैक्स दिये जाते हैं। बेगार ली जाती है। मछलियाँ मारनी होती हैं। जौलजीवी के मेले में भी बेगार ली जाती है तथा रजबार साहब ३० - ४० आदमियों को लेकर गाँव-गाँव में दौरा करते हैं। उनका खर्च उठाना पड़ता है। इस प्रकार प्रजा को अनेक कष्ट हैं। किंतु जब तक कृषक क़ानून ठीक-ठीक तौर से तरमीम न किया जाय, तब तक प्रजा को सुख नहीं मिल सकता। रजबार अच्छी प्रकृति के हुए, तो वे प्रजा को प्रसन्न रखते हैं, अन्यथा यदि सख्त मिज़ाज के हुए, तो प्रजा असंतुष्ट रहती है।

इतिहास—पहले यहाँ किरात और नाग पूजक लोग रहते थे। पीछे खस-जाति के अभ्युदय के समय यहाँ उनका प्रभुत्व रहा। उनमें कोई बड़ा शासक न था, बल्कि छोटे-छोटे राजा थे। अस्कोट के अस्सीकोट उसी समय के हैं, यद्यपि इस समय कुछ अस्कोट के बाहर भी हैं।

जब सोमचंद द्वारा स्थापित चंद-राज्य कालीकुमाऊँ में वृद्धि को प्राप्त हो रहा था, गंगोली में मणकोटी राजा अपनी अंतिम साँसें ले रहे थे, और पड़ोस के सीराकोट में मल्ल राजा सिंहासनासीन थे। उस समय अस्कोट में अस्सी खस-राजा राज्य करते थे। कोई शक्तिशाली शासक वहाँ न था। उस समय कत्यूर का राज्य भी छिन्न-भिन्न हो गया और वहाँ के अन्तिम सूर्यवंशी महाराजा बिर-देव या ब्रह्मदेव के वंशज यत्र-तत्र राज्य के हिस्से करने लगे थे। इन्हीं में से ब्रह्मदेव के पोते तथा त्रिलोकपाल के पुत्र राजा अभयपाल सन् १२७६ में यहाँ आये। खस-राजाओं से अस्सीकोट लेकर अस्कोट राज्य क़ायम किया। सन् १२७६ से १५८८ तक अभयपाल के वंशज यहाँ के शासक रहे। इस बीच का इतिहास अलभ्य है। सन् १५८८ में राजा रायपाल श्री गोपी ओझा द्वारा मारे गये। केवल एक छोटे बालक महेन्द्रपाल 'ग्वाल'-जाति की एक स्त्री

के द्वारा सुरक्षित होने से किसी प्रकार बच निकले। यह छोटे राजकुमार राजा रुद्रचंद के पास भेजे गये। इन्होंने ३००) रु० वार्षिक कर पर कुँ० महेन्द्रपाल को अपना करद राजा बनाया। राजबार महेन्द्रपाल से अभयपाल (२) तक का इतिहास भी अप्राप्य है। सन् १७४२ में राजबार उच्छत्रपाल गद्दी पर बैठे। सन् १७७८ में जब कुमाऊँ में गोरखा राज्य स्थापित था, तो गोरखों ने मालगुज़ारी ३००) से २०००) कर दी। राजबार रुद्रपाल और महेन्द्रपाल में युद्ध हुआ। ये दोनो गोरखा सरकार से अपनी प्रभुता स्थापित कराना चाहते थे। ⅓ हिस्सा राजबार रुद्रपाल के पास था। अँगरेज़ी सरकार के समय भी मुक़द्दमेबाज़ी हुई। सन् १८४३ में वह तीसरा हिस्सा भी बिक गया। १८५५ में इसको राजबार पुष्करपाल ने लाला तुलाराम साह ख़ज़ांचीजी से ख़रीदा। राजबार रुद्रपालजी के वंशज अब गंगोली के रौलखेत नामक गाँव में रहते हैं।

१८४० में राजबारी के लिये झगड़ा हुआ। अन्त में बहादुरपाल राजबार बनाये गये। तभी से यह फ़ैसला हुआ कि गद्दी का बटवारा नहीं होगा। सन् १८७१ में राजबार बहादुरपाल के मरने पर राजबार पुष्करपाल गद्दी पर बैठे। यह अच्छी प्रकृति के पुरुष बताये जाते हैं। यह ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी बनाये गये। इनके बाद राजबार गजेन्द्रपाल गद्दी पर बैठे। इनके बड़े पुत्र कुँ० भूपेन्द्रपाल का १९२४ में देहान्त होने से इनके द्वितीय पुत्र कुं० विक्रमबहादुर-पाल सन् १९२६ में गद्दी पर बैठे।

(इस खानदान में कुँ० खड्गसिंहपाल साहब ने भी अच्छा नाम कमाया। आप तिब्बत के पोलिटिकल पेशकार थे। बाद को डिप्टी कलेक्टर हो गये। अस्कोट का चित्र हमें आपकी ही कृपा से प्राप्त हुआ।—लेखक)

---

२०. फल्दाकोट

सरहद—पूर्व तरफ़ काकड़ीघाट में कोशीनदी, उत्तर में स्याईदेवी का डाँडा। पश्चिम को ताड़ीखेत और दक्षिण में सल्ट पट्टी।

पट्टियाँ—कंडारखुवा, धुराफाट, चौगौं, मल्लीडोटी और कोश्यां।

पर्वत-चोटियाँ—शेर का डाँडा, हरपाली का डाँडा, मुस्योली का डाँडा, मुल्या की नौ का डाँडा, भुलादेई का डाँडा, कूमपुर का डाँडा और ताड़ीखेत (पुराने क़ाग़ज़ों में ताड़ाखेत लिखा है) आदि ऊँचे पर्वत हैं।

नदियाँ—कोशी, कुंजगाड़, और सिरौत।

देवता—काँकड़ेश्वर, महारुद्र, ब्रिल्वेश्वर महादेव हैं। झुलादे देवी हैं। ताड़ीखेत में गोरिल हैं। भुजाण में भैरव हैं। कलिविष्ट ग्रामदेवता भी हैं।

इस परगने में फल्दाकोट नाम का बड़ा क़िला था, अब वीरान है। इसी से सारा परगना फल्दाकोट कहलाता है। इस परगने में पहले कत्यूरी राजाओं का राज था। बाद जब कत्यूरियों का साम्राज्य छिन्न भिन्न हुआ, तो उन्हीं के खानदान में से खाती-जाति का राजा हुआ। खाती सूर्यवंशी कहे जाते हैं। उनकी संतान अब भी हैं। खाती-वंश को पछाड़कर चंद-राजाओं ने फल्दाकोट को अपने राज्य में मिला लिया। फल्दाकोटवाले बड़ी वीरता से लड़े थे। प्रत्येक गाँव के लोग लड़ने को आये थे, पर चंदों की शिक्षित सेना के सामने उनकी एक न चली।

इस प्रांत के लोग अच्छे व्यापारी हैं। बोझ उठाने तथा लड़ने में भी वीर होते हैं। पहाड़ में ठंडी जगह के आदमी खूब मज़बूत होते है।

वोदे—इस परगने में एक क़िस्म के जानवर होते हैं, जो वोदे कहलाते हैं। ये मछली मारकर जीते हैं। १०-२०-२५ वोदे मिलकर मछली मारते हैं। एक जगह जमा करते और मनुष्यों की तरह आपस में बाँटते हैं। कभी-कभी लोग छिपे रहते हैं, और इनकी मारी मछलियां को छीन लेते हैं। अगर वोदों ने मछलियों पर पेशाब कर दी, तो वे फ़ौरन् सड़ जाती हैं। ऐसा पंडित रुद्रदत्त पंतजी ने लिखा है।

इस परगने में कुछ लोग काली कुमाऊँ के और कुछ यहीं के हैं। कोशी के किनारे बालू धोने से सोना मिलता है।

---

२१. धनियांकोट

यह परगना कोटौली, छखाता, कोटा और फल्दाकोट के बीच में है।

पट्टियाँ—धनियांकोट, उचाकोट और च्यूनीचौथान हैं।

नदियाँ—काशी, खैरना, रामगाड़ और घटगाड़ आदि।

पर्वत—गागर, बुधलाकोट और लोहाली आदि।

कोट यानी क़िले—इस छोटे से परगने में कई कोट यानी क़िले हैं। तल्लाकोट, मल्लाकोट, माजकोट और बुधलाकोट । इन कोटों में इन दिनों गाँव बसे हैं। धनियांकोट पट्टी में बज्योली, उपनियाँ ढुंगा, टटाइल, खैरना और उचाकोट पट्टी में हरखनौली, कलुवागाड़ प्रभृति कुल छः लोहे की खानें हैं।

खाती-राजा के समय में धनियां कोट भी फल्दाकोट राज्य में शामिल था। जब फल्दाकोट खाती-राजा से छीना गया, तो धनियांकोट परगना अलग किया गया।

इस परगने में गोरिल देवता की पूजा बहुत होती है। यह परगना कहीं ठंडा, कहीं गरम है। आम और खजूर के पेड़ भी यहाँ हैं। बांझ, कटौंज और सुरई के वृक्ष भी हैं।

पंडित रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं—

"गागर में बौंस (जंगली कुत्ते) होते थे। अब कम हैं। इनका १०-१५ का गिरोह चलता है। रात को जब चलते हैं, तो पीछे का 'बौंस' आगे हो जाता है। इस प्रकार रात को सोते-सोते ये कुत्ते ४-६ कोस जगह तय कर जाते हैं। कहते हैं, 'बौंस' भी वोदों की तरह जब किसी जानवर को मारते हैं, तो मांस बराबर बाँट लेते हैं।"

---

२२. छखाता

यह परगना कालीकुमाऊँ, महरूड़ी, धनियांकोट, कोटा और तराई के बीच में है। दो विभागों में यह परगना विभाजित है। मल्लाछखाता को पहाड़ छखाता तथा तल्लाछखाता को भावरछखाता कहते हैं। यहाँ सबसे बड़ा पहाड़ गागर है।

सबसे बड़ी नदी गौला है। छोटी नदियाँ सूकी, कलिया की वोग, पथराई, चकरघटा, नरा, धीमरी, खैर और तलिया वग़ैरह हैं।

देवता—भीमेश्वर, चित्रेश्वर, कर्कोटकेश्वर, गर्गेश्वर और कैलास महादेव हैं। कात्यायनी, शीतला और नारायणी देवी हैं। कर्कोटक नाग देवता हैं। यह ऊँचे टीले पर हैं। जहाँ तक इनकी दृष्टि पड़ती है, कहते हैं, साँप के काटे का ज़हर मनुष्य को नहीं लगता। भीमेश्वर महादेव को धर्मराज युधिष्ठिर के छोटे भाई भीमसेन का स्थापित किया हुआ बताते हैं। ताल भी उन्हीं

के नाम से भीमताल कहलाया। भीमेश्वर भीमताल के किनारे है। चित्रेश्वर महादेव गौला-नदी के किनारे विश्वकर्मा का बनाया है। चित्र-

भीमताल
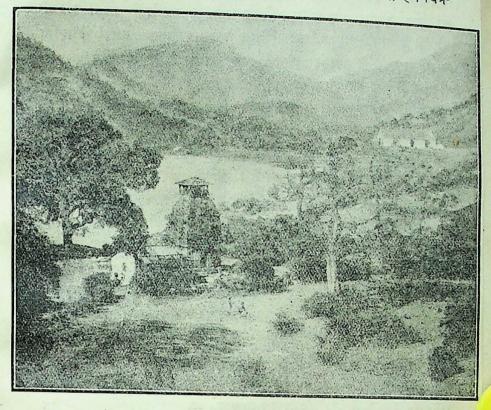
शिला के ऊपर पर्वत की चोटी पर पश्चिम की ओर मार्कंडेय ऋषि का आश्रम था। इसका उल्लेख श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कंध व अध्याय ८ में है—

तेवै तदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः पार्श्व उत्तरे।
पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्राख्या च शिला विभो ॥ १७ ॥

इस परगने में ६० तालाब होने कहे जाते हैं, जिससे परगने का नाम षष्टिखाता उर्फ़ छखाता पड़ा।

इन ६० तालों में से कितने ताल मट्टी से दबकर सूख गए, कहा नहीं जा सकता। इस समय जो ताल विद्यमान हैं, उनके नाम ये हैं—मलुवाताल, नौकुचियाताल, सप्तऋषियों के सातताल, नैनीताल, खुरपाताल, कुहड़ियाताल, सूखाताल, सड़ियाताल और नल-दमयंतीताल। इनमें नैनीताल, भीमताल और नौकुचियाताल बड़े तथा प्रसिद्ध हैं। नल-दमयंतीताल के बारे

में एक किंवदंती इस प्रकार है कि जब राजा नल जुए में सारी सम्पत्ति और अपना राज्य हारकर जंगल में भटकने लगे, तो यहाँ भी आये। यहाँ खाने को कुछ न पाया। राजा नल ने तालाब से मछलियाँ पकड़ीं। रानी दमयंती ने उनको नमक, हल्दी, मिरच-मसाला लगाकर कढ़ाई में पकाना चाहा, तो रानी के हाथ में अमृत होने से सब मछलियाँ उनका हाथ लगते ही जी उठीं और कूद-कूदकर तालाब में चली गईं।

जब भाग्य फिरता है, तो ऐसा ही होता है। राजा नल की मारी और कटी-कटाई मछलियाँ भी ताल में कूद गईं! ये मछलियाँ और मछलियों से रंग-रूप में कुछ लाल, दुम व मुँह की तरफ़ चौड़ी हैं, इसी कारण इनको कटे टुकड़ों से बनी मछली बताते हैं। तभी से इस तालाब का नाम नल-दमयन्तीताल पड़ा। यहाँ कुछ मूर्तियाँ भी हाल में निकली हैं।

गागर पर्वत पर गर्ग ऋषि ने तपस्या की थी। इसी कारण पुराणों में इसका नाम गर्गाचल, गर्गगिरि, गर्गाद्रि आदि पड़ा। अब भाषा में इसे गागर कहते हैं।

भीमताल के ऊपर, उत्तर की तरफ़, पहाड़ के सिरे पर, कर्कोटक नाम नाग यानी साँप देवता हैं। कहते हैं, मल्लाछखाता में साँप बहुत ज़हरीले होते थे। इनमें बेतिया साँप बड़ा भयंकर होता था। इसका काटा मनुष्य कदापि न बचता था। किसी समय एक फ़क़ीर उस रास्ते आया और उसका चेला भी साथ में था। उस चेले को बेतिया साँप ने काटा। तब गुरु ने अपने मंत्र बल से उसे बचाया। पश्चात् एक नक़्क़ारा मँगाया। फिर घंटा और झंडा हाथ में लेकर उसने मंत्र पढ़े और नक़ारा बजाया। कहा, जहाँ तक इस डंके की चोट सुनाई देगी, साँप का ज़हर न चढ़ेगा। अब तक लोग ऐसाही मानते हैं। यह मंत्र उस साधु ने पत्थर में भी लिखा था।

पट्टी छब्बीसदुमोला वर्तमान पूर्वी छखाता के बल्याड़गाँव में सम्मल ज़मींदारों से राजा त्रिमलचंद का युद्ध हुआ था। पीरासम्मल प्रधान 'पैक' यानी मुख्य योद्धा था। पीरासम्मल और उसके बाग़ी साथी जहाँ चंद-राजा द्वारा मारे गए, वह जगह अभी तक वीरान पड़ी है, आबाद नहीं की जाती। एक गर्भवती स्त्री को छोड़कर सब सम्मल मारे गए। उससे फिर वंश चला। पीरासम्मल जिस पत्थर पर बैठकर राजकाज करता था, वह अभी तक प्रसिद्ध है। इनकी ज़मींदारी कई गाँवों में है।

गौला पार खेड़ागाँव के पास पहाड़ी चोटी पर विजयपुर (बिजेपुर)

ग्राम है। राजा विजयचंद की यहाँ गढ़ी थी। इसके क़रीब ही कालीचौड़ का मैदान है। कालीदेवी की खंडित मूर्तियाँ यहाँ मिलती हैं। संभव है, मुग़लों और रोहिलों ने उन्हें खंडित किया हो।

रानीबाग़ में कत्यूरी राजा धामदेव और ब्रह्मदेव की माता जियारानी का बाग़ था। कहते हैं, यहाँ गुफा में जियारानी ने तपस्या भी की थी। कत्यूरियों का यह पवित्र तीर्थ है। उत्तरायणी को सैकड़ों मनुष्य यहाँ आते हैं। रात्रि-भर जागरण करते हैं। जय+जिया या 'जै जिया' कहकर जियारानी की जय बोलते हैं।

काठगोदाम के ऊपर, गुलाबघाटी के पश्चिम में, शीतलादेवी का स्थान है। यहाँ पर चंद-राज्य के समय शीतलाहाट-नामक बाज़ार भी था। बीच में नदी है। नदी के उस पार 'बटोखरी' की प्रसिद्ध गढ़ी थी, जिसे अब 'बाड़खाड़' कहते हैं। यह गोरखा-काल में नष्ट हो गई। कहते हैं, यहाँ से कोटा-पर्यंत ग्रामवासियों की घनी बस्ती थी। यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—"हाट कि नालि काटा, काट कि नालि हाट।" अर्थात् हाथोंहाथ नाली हाट से कोटा और कोटा से हाट तक घूमती थी। उजड़े हुए घर, पत्थर में खुदे हुए ऊखल और बस्ती के चिह्न पहाड़ की तलहटी में मिलते हैं।

शीतलादेवी को बदायूँ के वैश्य लोग देश से लाये थे। ये हाट के साह लोग छखाते के साह हैं। ढुंगसिला ग्राम में रहते हैं। रानीबाग़, चौघाणा-पाटा ग्राम भी इन वैश्यों के हैं।

बल्यूटी के चकुड़ायत भी शीतलाहाट के चकुड़ायत हैं।

भीमताल ढुंगसिला गाँव में राजा भीष्मचंद का स्थान है। अब यह 'भूमियाँ' याने भूमि का रक्षक माना जाता है।

पर्वतीय इलाक़े में वर्णन-योग्य तीन नगर हैं—(१) ननीताल, (२) भवाली और (३) भीमताल।

२३. नैनीताल

यह नगर अँगरेज़ों का बसाया हुआ है। सन् १८४१ से यह बसने लगा। इससे पहले यहाँ जंगल था। सिर्फ़ नैनादेवी के मंदिर में मेला लगता था। सन् १८४१ में रोजा-शराब-फ़ैक्टरी के साहब मिस्टर बैरन ने इसे देखा। इससे पहले कुमाऊँ के दूसरे कमिश्नर मिस्टर ट्रेल ने भी देखा था। बैरन साहब ने 'हिम्माला'-नामक पुस्तक में लिखा है कि वहाँ के थोकदार नरसिंह नैनीताल को पवित्र देवता की भूमि समझकर

अँगरेज़ों को नहीं देना चाहते थे। पर उन्होंने उनको अपनी नाव में बिठाया, और कहा कि वह उनकी नोटबुक में दस्तख़त करें कि नैनीताल में
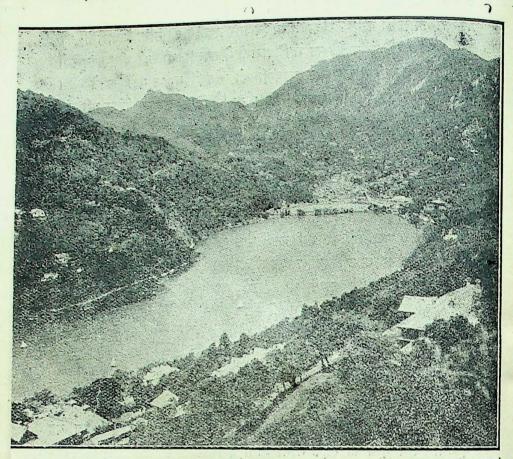
नैनीताल का एक दृश्य

उनका कुछ हक़ नहीं, अन्यथा वे उन्हें डुबा देंगे। नरसिंह ने डर के मारे दस्तख़त कर दिये। तालाब के किनारे बहुत-से आदमी खड़े थे। उन्होंने नोटबुक के लेख को आश्चर्य से देखा। बाद को यही थोकदार नरसिंह ५) रु० माहवार में नैनीताल के पटवारी बनाये गये। १८४१ से नैनीताल बनना शुरू हुआ। श्रीलशिंटन कमिश्नर ने एक कोठी बनवाई। भारतीयों में सबसे पहले लाला मोतीराम साहजी ने कोठियाँ बनवाई। उस समय ॥।) ऐकड़ ज़मीन बेची गई थी।

प्रान्तीय लाट यहाँ सन् १८५७ के पश्चात् रहने लगे। सन् १८६२ में,

रामज़े - अस्पताल के पास उनकी कोठी बनी। बाद सन् १८७६ से १८६५ तक लाट साहब की कोठी सेन्ट लू में रही। सन् १८८५ में दरारें पड़ने से
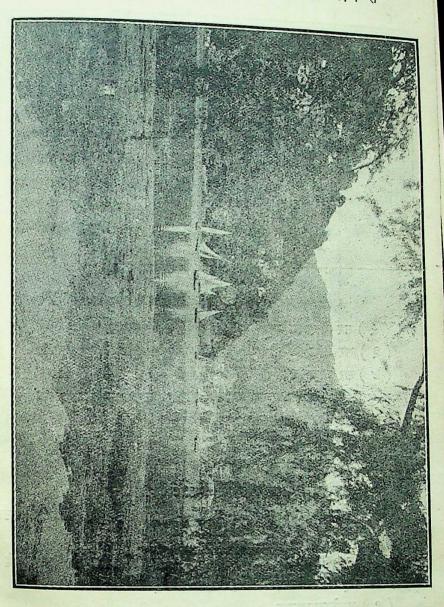
नैनीताल (दूसरा दृश्य)

वह भवन खतरनाक समझा गया। लाट साहब शेरउड में रहे। १६०० में नया वर्तमान विशाल भवन बनवाया गया। लाटों में सबसे पहले यहाँ (१) माननीय डूमंड साहब आये। सन् १८६५ में उन्होंने शेर के डाँडे में घर

बनवाया। १८७६ में उसे बेचकर चले गये। इस मकान में किराये पर ये लाट रहे—
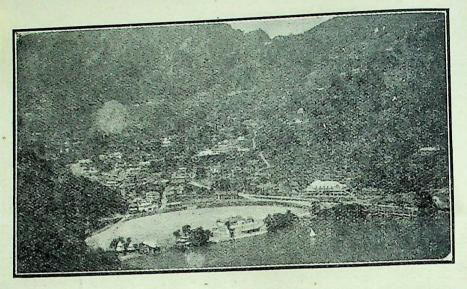
नैनीताल (तीसरा दृश्य)

(२) सर विलियम म्यूर
(३) सर जॉन स्ट्रेची
(४) सर जॉर्ज कूपर
सर जॉर्ज कूपर ने सेंट लू में भवन बनवाया। उसमें उनके बाद
(५) सर अलफ्रेड लायल,
(६) सर आकलैंड कालविन,
(७) सर चार्ल्स क्रोस्वेट और
(८) सर ऐन्टनी मैकडानल प्रभृति लाट रहे।

सन् १८६५ में यह भवन छोड़ा गया। १८६५ से १६०० तक आप 'शेरउड हाउस' में रहे।

सन् १६०० में नया भवन बना। सर ऐन्टनी मैकडानल उसमें रहे। उनके पश्चात् ये लाट साहबान वहाँ रहते आये हैं—

(९) सर जेम्स लाटूश
(१०) सर जॉन हिवेट
(११) सर जेम्स (अब लॉर्ड) मेस्टन
(१२) सर हारकोर्ट बटलर

(१३) सर विलियम मैरिस
(१४) सर ऐलेक्ज़ेंडर म्यूडीमैन
(१५) सर मालकम हेली ।
(१६) सर हैरी हेग (वर्तमान)

हमने अस्थायी लाटों का नाम नहीं दिया, पर नवाब सर सैयद अहमदखाँ
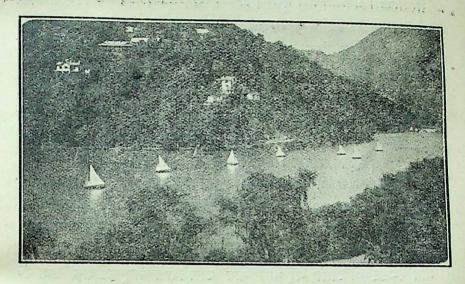
नैनीताल (चौथा दृश्य)

(नवाब छतारी) का ज़िक्र करना आवश्यक है, क्योंकि इस प्रांत के भारत-वासियों में वह सबसे प्रथम हैं, जो ४ माह तक यहाँ सर म्यूडीमैन के मरने पर लाट रहे, और सन् १९३३ में भी एप्रिल से लेकर साल के अंत तक लाट रहे।

पहला असेम्बली रूम सन् १८८० में पहाड़ खिसकने से दब गया, तब दूसरा असेम्बली रूम (नाचघर) सन् १८८१ में बना। सन् १९३० में आग से जल जाने के कारण वर्तमान असेम्बली रूम १९३२ में १८८०००) की लागत से बना।

रामज़े अस्पताल सन् १८९२ में बना, और क्रौस्वेट अस्पताल सन् १८९६ में। ये दोनों चंदे से बने। सन् १८८० में १५०″ से भी ज्यादा वर्षा हुई। पहाड़ खिसका। कई मकान दब गये। बहुत आदमी मरे। तब से पहाड़ में ठौर-ठौर में नोलियाँ बनाई गईं, जिनसे पर्वत टूटने से बच गया। चुंगी-बोर्ड सन् १८४५ से जारी हुआ। तब आमदनी लगभग ८००-९०० रुपये की थी। अब (१९३२ में) ५,०५,१२४) है। पहली कमेटी के सभापति जनरल रिचार्ड

थे। मेम्बरान मि० लशिंटन, मि० आरनौड, कप्तान वाह और कप्तान बैरन। १९१६ से बिजली का काम आरंभ हुआ और पहली सितंबर १९२२ में बिजली की रोशनी नगर में हो गई। सन् १८४२ में कुल ४० बँगले और घर थे, जो सन् १९२७ में बढ़ते-बढ़ते इस प्रकार हो गये हैं—३९६ बँगले, २९० घर मल्लीताल बाज़ार में और २७६ घर तल्लीताल में। अभी नैनीताल बोर्ड में ग़ैर सरकारी चेयरमैन नहीं हुआ। वहाँ के चेयरमैन १९३४ तक डि० कमिश्नर ही थे। सन् १९३४ से नामज़द चेयरमैन बनाने का नियम बना है। सबसे पहली कोठी बैरन साहब ने बनवाई। इसका नाम 'पिलग्रिम लॉज' है। यह १८४१ में बनी थी।

शिक्षालय—सबसे प्रथम मिशनवालों ने, सन् १८५० के लगभग, मिशन स्कूल खोला। तब छात्र-संख्या ५० से कम थी। १९०४ में यह इम्फ्री-हाईस्कूल हो गया। १९२५ में सरकार ने स्कूल-भवन ७५०००) में खरीदा। १९२७ तक स्कूल चलाया। सन् १९२८ में स्व० दानवीर लाला चेतराम साह हुलघरियाजी ने ५०,०००) का दान दिया। अतः आक्टोबर-१९२८ से इसका नाम चेतराम हाईस्कूल हो गया। इसका प्रबंध एक कमेटी करती है। सन् १९२३ में छात्र-संख्या ९६, और सन् १९३३ में २८३ थी।

सरकारी स्कूल—वर्तमान सरकारी स्कूल १९१० में सरकारी हुआ। इसकी नींव १८९९ में डाली गई थी। नींव डालनेवाले बाबू कृष्टोदास, तथा पं० वाचस्पति पंत वकील थे। पहले यह डाइमन्ड जुबली स्कूल के नाम से कहलाता था। वर्तमान भवन १९२४ में बना। १ अगस्त १९१० को छात्र-संख्या १०६ थी। सितंबर १९३३ में २८९ छात्र शिक्षा पाते थे।

यहाँ तीन कन्या-पाठशालाएँ हैं—(१) मॉडल गर्ल्स स्कूल, (२) मिशन ज़नाना स्कूल और (३) भवानी कन्या-पाठशाला।

सन् १९२८ से चुंगी-बोर्ड ने बालकों के लिये शिक्षा अनिवार्य कर दी है। चुंगी-बोर्ड ये स्कूल अपने खर्च से चलाती है—

नाम स्कूल	छात्र-संख्या
चुंगी-प्राइमरी स्कूल, मल्लीताल	३५०
,, ,, ,, तल्लीताल	२५०
,, ,, ,, बब्रोलिया (हरिजन !)	६०

इसके अलावा चुंगी-बोर्ड ४००) रुपये चेतराम साह-हाईस्कूल को तथा १५०) मिशन-गर्ल्स स्कूल को इमदाद देती है।

यहाँ पर कई अँगरेज़ी स्कूल भी हैं:—

१. डायोसेसन स्कूल १८६६ में बना।
२. फ़िलेंडर स्मिथ ,, १८५५ ,,
३. ओक ओपनिंस ,, १८८५ ,,
४. सेंट जोज़ेफ़ कॉलेज १८८८ ,,

अँगरेज़ी कन्या-पाठशालाएँ

१ डायोसेशन-गर्ल्स स्कूल १८७४
२ सेंट मेरी कनभेंटरामनी पार्क १८७८
३ बेलेज़ली-गर्ल्स स्कूल ...

इन स्कूलों में योरपियन और किरानी पढ़ते हैं। अब वे हिन्दोस्तानी लड़के भी पढ़ सकते हैं, जिनकी सिफ़ारिशें चल गईं, और जो अँगरेज़ी फ़ैशन में रहते हों।

नैनीताल अच्छी बस्ती है। लाट, कमिश्नर, डिप्टी कमिश्नर, जंगलात गढ़-कप्तानी के अलावा यहाँ फ़ौज के बड़े-बड़े दफ़्तर हैं। एक छोटी-सी छावनी भी कैलाखान में है। ताल के किनारे उम्दा सड़कें हैं। नैनादेवी का मंदिर, बैरन साहब लिखते हैं कि पहले तल्लीताल डाँट के पास था,
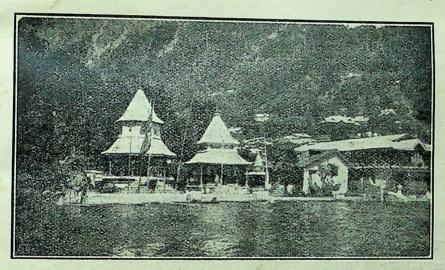
नैनादेवी का मंदिर (नैनीताल)

जहाँ शायद अब डाकघर है। बाद को वह आजकल के बोट-हाउस के पास बनाया गया। पर उसके दब जाने से लाला मोतीराम साहजी ने इसे १८८० में वर्तमान जगह में बनाया।

ताल की लंबाई १५६७ गज़ और चौड़ाई ५०६ फ़ीट है। सबसे ज़्यादा गहराई पाषाणदेवी के निकट है, जो ६३ फ़ीट के लगभग है। ताल ६३५० फ़ीट की उँचाई में है।

आस-पास के ऊँचे पर्वतों की उँचाई इस प्रकार है—अयांरपाटा ७६८६′, देवपाटा ७९८९′, हानीबानी ७१५३′, चीना ८५६८′, आल्मा ७६८०′, लड़िया कांटा ८१४४ और शेर का डाँडा ५८६९′।
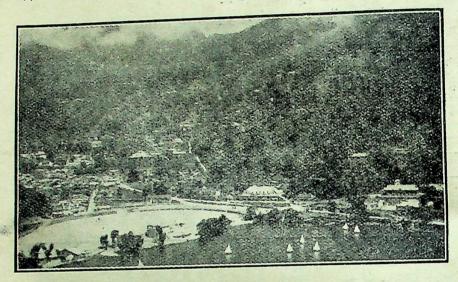
मल्लीताल बाज़ार (नैनाताल)

बड़े-बड़े होटल दोनों अँगरेज़ी और भारतीय भी हैं। दृश्य यहाँ के बड़े सुहावने हैं। चीना पहाड़ से दूर-दूर तक के देश और पहाड़ दिखाई देते हैं। खेलकूद के लिये मल्लीताल में अच्छी भूमि (Flats) है। रात को बिजली की रोशनी में ताल की चमक से यह नगरी इन्द्रपुरी-सी ज्ञात होती है।

२४. भवाली

यह नया नगर है। सन् १८८५ में यहाँ गढ़कप्तानी का बँगला बना। सन् १९१२ में सेनिटोरियम खुलने से इस नगर की विशेष उन्नति हुई है। १८९५-१८९७ में तारपीन-फैक्टरी बनने से यहां अच्छी चहलपहल हो गई थी। पर १९१८ में इसके कलक्टरगंज बरेली को बदल जाने से नगर की रौनक़ कम हो गई। पहले यहाँ पर श्रीमलिन और श्रीन्यूटन साहबान ने चाय और फलों के बग़ीचे लगाए थे। १९१७ तक यह भीमताल नोटीफ़ाइड एरिया में शामिल रहा। बाद को १९२३ से यहाँ अलग ही नोटीफ़ाइड एरिया बन गई

भवाली-सैनिटोरियम

भवाली-सैनिटोरियम

यहाँ पर पलटन का पड़ाव भी है। अब यहाँ दूकानदारों व बँगलेदारों के अलावा क्षय-रोग के रोगी ज़्यादातर रहते हैं। भारत के सैनिटोरियमों में

भवाली-बाज़ार
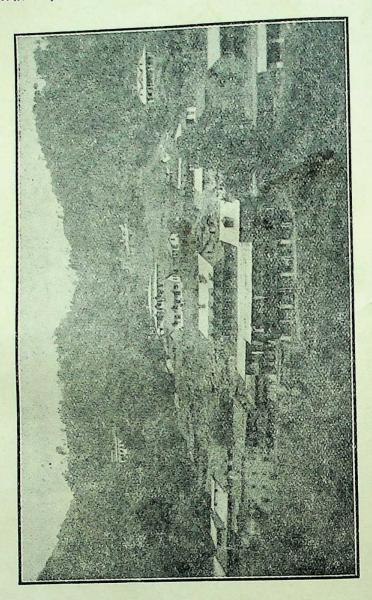
यह सबसे बड़ा व नामी है। भवाली से कुछ दूरी पर गेठिया से आगे हिल-क्रेस्ट-नामक सैनिटोरियम एक और बन गया है।

---

२४. भीमताल

चंद-राजाओं के समय से यहाँ पर अच्छी बस्ती होती आई है। बाद को कुछ चाय के बग़ीचे भी लगे। ताल ४५०० फ़ीट की उँचाई में है। मोटरों के चलने से यहाँ की रौनक़ कम हो गई है। यहाँ के ताल में एक पक्का डाँट बना है, जिससे भावर की सिंचाई होती है। राजा बाजबहादुरचंद का बनवाया हुआ भीमेश्वर महादेव का मंदिर ताल के किनारे है। साम्प्रत में भीमताल में महाराज जिन्द का ग्रीष्म-निवास महल व अनेक कोठियाँ हैं। तल्लीताल और मल्लीताल बाज़ार, मिडिल स्कूल, पुलिस-चौकी, अस्पताल-तारघर, डाकघर आदि हैं।

अन्य बस्तियाँ—गरम पानी में छोटा बाज़ार है। ज्योलीकोट तथा भूमियाँ-धार छोटी-छोटी बस्तियाँ हैं। बीरभट्टी में पहले अच्छी बस्ती थी, पर पहाड़ टूटने से यह वीरान हो गई है। शराब की भट्टी भी बंद है। रामगढ़ फलों तथा गर्मियों में अपनी स्वच्छ तथा स्वास्थ्यदायक जलवायु के लिये प्रसिद्ध है। एकांत स्थान है। श्रीनारायण स्वामी ने यहाँ पर आर्य-समाज भी खोला है।

मुक्तेश्वर—जिसे मोतेश्वर कहते हैं, ७५०० फ़ीट ऊँचे पर्वत पर बसा है। यह नैनीताल से २३ मील तथा अल्मोड़ा से १४ मील है। यहाँ एक प्रसिद्ध लेबोरेटरी (प्रयोगशाला) है, जिसमें जानवरों के रक्त को शुद्ध कर दवाइयाँ बनती हैं। १८९३ से यहाँ इसकी स्थापना हुई। अब यहाँ एक छोटी-सी अच्छी बस्ती है। स्थान रमणीक है। यहाँ बड़ी-बड़ी इमारतें बनी हैं।

---

२५. कोटोली

यह परगना अब एक छोटी पट्टी है। यहाँ कालीगाड़ का पर्वत बड़ा है। करतियागाड़ नदी है और छोटे-छोटे नाले (गधेरे) हैं। कुमारेश्वर महादेव भी यहाँ हैं।

इस पट्टी के जिना जाति के सैनिक (सिपाही) पहले से प्रसिद्ध रहे हैं। नेगी वग़ैरह भी अन्यत्र से आ बसे हैं। यह सारी पट्टी बदरीनाथजी को गूँठ में चढ़ाई हुई है। गोरखों ने गूँठ में चढ़ाई थी। सरकार कंपनी बहादुर ने भी बहाल रखी। इसकी आमदनी से यात्रियों को सदाबर्त मिलता था। इस
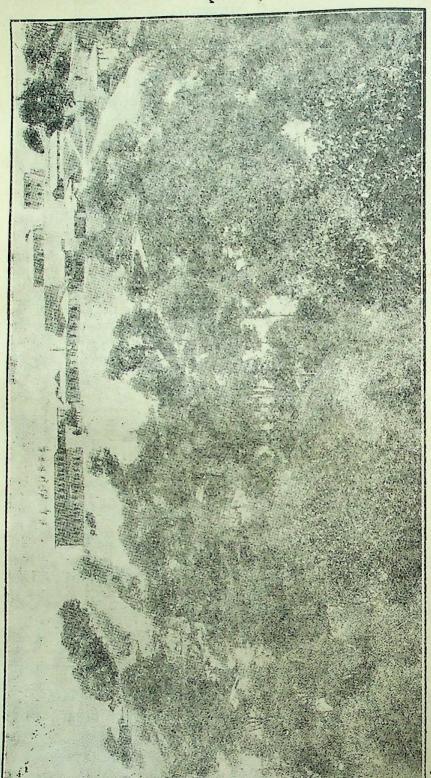
मुक्तेश्वर प्रयोगशाला (Laboratory)

मुक्तेश्वर का दृश्य

परगने में कोटोली गढ़ क़िला था, और यहाँ का खस-राजा चंदों के साथ लड़ाई में बहादुरी से लड़ा था, पर मारा गया, और यह परगना चंदों के हाथ आ गया।

---

२६. महरूड़ी

यह भी एक छोटी-सी पट्टी है। यहाँ के गाँव दूर-दूर हैं। कारण यह है कि आस-पास के परगनों में से दो-दो चार-चार गाँव निकालकर यह पट्टी बनाई गई। इसीलिये क़िस्सा भी है कि "जोड़ी-ज़ोड़ी बेर की महरूड़ी।" काली-कुमाऊँ से भी इसकी सरहद मिली हुई है। इस पट्टी के गाँव गागर में, डोल के डाँडे में, बानणी और कालीगाड़ के डाँडों में जगह-ब-जगह हैं।

नागदेव या सर्प देवता की पूजा यहाँ होती है। कई एक बड़े-बड़े पत्थरों के 'ओड्यार' (गुफाएँ) हैं, जिनमें ये देवता स्थापित हैं।

मंहरूड़ी-कोट-नामक क़िला यहाँ पर था। इस पट्टी का छोटा राजा भी चंदों से लड़ा था, पर मारा गया। महरूड़ी चंद राजाओं के हाथ में आई। यह पट्टी मंदिर केदारनाथ को गूँठ में चढ़ी है। इसकी आमदनी केदारनाथ के यात्रियों को सदाव्रत के लिये गोरखा-सरकार ने चढ़ाई थी। अंगरेज सरकार ने भी बहाल रक्खी है।

---

२७. तराई-भावर

सरहद—पूर्व में टनकपुर की ओर शारदा उर्फ़ सरयू नदी है, जो इसको नैपाल से अलग करती है। पश्चिम में लालढांग का इलाक़ा तथा फीका नदी गढ़वाल भावर व कुमाऊँ भावर के बीच में हैं। इस ओर कुछ इलाक़ा बिजनौर व मुरादाबाद का भी है। दक्षिण में मुरादाबाद, रियासत रामपुर, बरेली व पीलीभीत के ज़िले हैं। उत्तर में कुमाऊँ की पर्वत-मालाएँ हैं।

नदियाँ फीका, तुमड़िया, नत्थावाली, ढेला, कोशी, घूघा, डबका, बोर, निहाल, भाकड़ा, धीमरी, बैगुल पश्चिमी, गौला, धौरा, बैगुल पूर्वी, कैलास, देवा, खाकरा, लोहिया, जगबूढ़ा और शारदा। इन नदियों में ढेला व देवा को छोड़ प्रायः सबमें पुल हैं। कोशी व गौला में रेल के बड़े पुल हैं। शारदा

में बनबसा के पास बड़ा भारी बाँध है, जिसके ऊपर दोहरा पुल है। शिल्प-शास्त्र का अद्भुत नमूना है। काठगोदाम के पास गौला नदी के ऊपर हार्डिंग-पुल भी देखने योग्य है। यह सिमेंट-कंकर का बना है। नीचे से पानी की नहर है, ऊपर आदमी जाते हैं।

नैनीताल-ज़िला तीन प्राकृतिक हिस्सों में विभाजित है--

(१) पहाड़ी इलाक़ा-- इसमें पहाड़ छखाता, धनियांकोट, पहाड़ कोटा, कोटोली, रौ, चौभेंसी, महरूड़ी और ध्यानीरौ परगने हैं।

(२) भावरी इलाक़ा—इसमें ये परगने हैं—भावर कोटा, छखाता भावर, चिलकिया और चौभेंसी भावर।

(३) तराई इलाक़ा- इसमें ये परगने हैं--काशीपुर, बाजपुर, गदरपुर, रुद्रपुर, किछहा (किलपुरी) नानकमता और बिलारी।

तराई की नीची तथा भावर की जल-हीन व रेतीली भूमि के बाद पहाड़ी इलाक़ा आरंभ होता है। १७०० फ़ीट तक भावर की उँचाई है। उसके ऊपर २-३ बल्कि ४ हज़ार फ़ीट तक का इलाक़ा एक प्रकार की भावरी आबहवा वाला है। प्रायः वही वनस्पति वहाँ पैदा होती है। ४-५ हज़ार के ऊपर फिर वनस्पति बदलती है। यहाँ से चीड़ और बाँझ के पेड़ दिखाई देते हैं। और ये अनन्त पर्वत-मालाएँ—कहीं ऊँची, कहीं नीची, अनेक घाटी, कंदरा, गुफा तथा प्राकृतिक दृश्यों से भरी हुई— हिमालय पर्वत तक चली गई हैं।

पर्वत की जड़ में भावर है। कहीं-कहीं यहाँ भी छोटी-छोटी ऊँची टिबरियों पर गाँव बसे हैं। इन्हें 'कोरे' कहते हैं। मैदान जगह भावर कहलाती है। यह तराई से ऊँची है। यह रामनगर से लेकर टनकपुर तक है। सदियों से पहाड़ों से मट्टी व पत्थर बहकर मैदानों की तरफ़ आते रहे हैं, और नदियों द्वारा वे कभी कहीं, कभी कहीं जमा किये जाते हैं। नदियाँ भी अपना बहाव या फाट बार-बार बदलती रहती हैं। तमाम भावर में गोल गोल बड़े-बड़े पत्थर यत्र-तत्र पाये जाते हैं, जिनसे साफ़ प्रकट है कि ये पत्थर नदी में लुढ़ककर आये होंगे। भावर में पत्थर, मट्टी व बालू की तहें एक के ऊपर दूसरी पाई जाती हैं। पानी यहाँ नहीं मिलता। खोदने पर कठिनाई से कहीं दूर निकलता है। यह खुश्क या सूखी भूमि है। कभी-कभी सारी नदियाँ इसमें लुप्त हो जाती हैं, और वे नीचे तराई में प्रकट होती हैं। यह भूमि बड़े-बड़े वृक्षों व घनी झाड़ियों के जंगलों से भरी है, पर तराई की-सी घास यहाँ नहीं होती। भावरी इलाक़ा १२०० से १७-१८०० फ़ीट तक ऊँचा है। यहाँ पर जंगलों को काटकर तथा नदियों से

बड़ी-बड़ी नहरें व गूलें ले जाकर खेती की गई है। खेती अच्छी होती है, पर कई दिनों से लिन्टाना घास या कुरी ने किसानों को परेशान कर रक्खा है। हौलम्बरी साहब इसे आफ्रिका से बग़ीचों की बाढ़ के लिये लाये थे। अब यह तमाम में फैल गई है। काटने व जलाने पर भी नष्ट नहीं होती। भावड़ नाम की लंबी घास यहाँ होती है, जिससे काग़ज़ बनता है, इसी से इसका नाम भावर पड़ा।

---

२८. तराई

भावर के बाद तराई का हिस्सा है। इसकी उत्पत्ति दो प्रकार से हो सकती है—हिन्दी 'तर' याने नीचे तराई या उर्दू तरी + आई = तराई। यहाँ पर भावर की पथरीली व रेतीली भूमि में छिपा हुआ पानी आप से आप निकल आता है। यह भूमि ७०० से लेकर ७९५ फ़ीट तक ऊँची है। यहाँ पानी की इफ़रात है। ठौर-ठौर पर पानी सोतों से निकल पड़ता है। इन्हें 'झांते' कहते हैं ५-७ हाथ ज़मीन खोदने पर पानी निकल आता है। कहीं-कहीं बरसात में कुएँ ऊपर तक भर जाते हैं। पानी में तेल की-सी काई जमी रहती है। यहाँ लम्बी-लम्बी घास व बेत की झाड़ियाँ बहुत हैं। वनस्पति यहाँ बेशुमार होती है। यहाँ जाड़ों में प्रचंड जाड़ा और गरमियों में प्रचंड गरमी पड़ती है। दिन में गरमी, रात को जाड़ा होता है। मच्छर बहुत होते हैं, जिनसे मलेरिया (ताप) ज्वर बहुत होता है। हाथ-पैर पतले हो जाते हैं, पेट बढ़ जाता है। तिल्ली भी बढ़ जाती है। यहाँ की बुरी आबहवा को केवल थाड़ू व बोक्से किसी क़दर जीत सके हैं। ये ही यहाँ के पुराने व ज़बर-दस्त कृषक हैं।

---

२९. भावर की बस्तियाँ

भावर में रामनगर, कोटा, कालाढूँगी, हल्द्वानी, काठगोदाम, चोरगल्या तथा टनकपुर प्रसिद्ध मंडियाँ हैं।

रामनगर—पहले बस्ती चिलकिया में थी, बाद को कोशी के किनारे रामजी साहब के नाम से १८५० में रामनगर बसाया गया। अच्छी तिज़ारती

मंडी है। यहाँ के दृश्य अच्छे हैं। कोसी से नहर निकालकर ५-७ मील की भूमि आबाद की गई है। यहाँ थाना व छोटी तहसील है। चुंगी याने नोटीफ़ाइड एरिया भी है। रेल, तार, डाक सब हैं। फल-फूल विशेषकर पपीते के बग़ीचे काफ़ी हैं। ऊँचे टीले पर बसा है। नदी व जंगलों का दृश्य बड़ा सुहावना लगता है। यहाँ से एक गाड़ी-सड़क रानीखेत को जाती है। लकड़ी की तिज़ारत काफ़ी होती है। जंगलात का दफ़्तर भी है। बदरीनारायण के यात्री यहीं होकर लौटते हैं। पर्वत जाने का यह पुराना रास्ता है। अँगरेज़ों की फ़ौज इसी रास्ते कुमाऊँ पर चढ़ी थी।

---

३०. कोटा भावर या परगना कोटा

सरहद—दक्षिण में तराई, पूर्व में कालाढूँगी, उत्तर में धनियांकोट, पश्चिम में रामनगर।

इसमें दो हिस्से हैं—(१) पहाड़ कोटा (२) भावर कोटा। पहाड़ कोटा किसी क़दर ठंडा है। ५-७ गाँवों की पहले एक चूकम पट्टी भी थी, पर अब नहीं है। पहाड़ बड़ा यहाँ पर गागर का ही सिलसिला है। इसी पहाड़ से छोटी-बड़ी बहुत-सी नदियाँ निकलकर इस परगने में बहती हैं। यथा डबका, बौर, नहाल, भाकड़ा, चहल व कालीगाड़।

देवता—सीतेश्वर, वामेश्वर महादेव हैं। टीट की देवी व कालिका देवी हैं। सीतेश्वर का नाम सीतावनी भी है। कहते हैं, त्रेतायुग में मर्यादा-पुरुषोत्तम महाराजा रामचंद्र की रानी सीता ने यहाँ तपस्या की थी। वह स्थान वाल्मीकि-आश्रम भी कहलाता है। पारकोट नाम का क़िला भी यहाँ पर था। यह परगना लंबा ज़्यादा है, चौड़ा कम। कारण यह है कि पिछले दिनों देश का बहुत-सा इलाक़ा इसमें शामिल था। चंद-राज्य के अंतिम शासन-काल में देश का हिस्सा इससे अलग हो गया, अतः यह लंबा ज़्यादा हो गया, चौड़ा कम।

इन जगहों में बीमारी बहुत होती है। खासकर पहाड़ के आदमी इन जगहों में कठिनाई से रहते हैं। राजाओं के समय जो अपराधी यहाँ आ बसा, वह राजा का खास आसामी गिना जाता था और छोड़ दिया जाता था। यहाँ की बुरी आबहवा में रहना ही उसके लिये काफ़ी सज़ा समझी जाती थी। पहले देशनिकाले की सज़ा जिसे दी जाती थी, वह भावर में फेंक दिया जाता था।

कोटा के नज़दीक़ ढिकुली में बहुत पुराने, टूटे-फूटे, जीर्ण-शीर्ण खँडहर हैं। वहाँ देवताओं के टूटे मंदिर भी हैं। कुँआ भी है। शायद गूल से उसमें पानी जाता हो। ईंट की बनी ईमारतें भी बहुत हैं। इनका कुछ वर्णन ऐतिहासिक खंडों में आवेगा। अब इन जगहों में बड़े-बड़े पेड़ साल, साज, कुसुम, हरड़, बहेड़ा व आँवले के खड़े हैं।

कत्यूरी व चंद-राजा दोनों यहाँ जाड़ो में धूप सेकने को आया करते थे। चंद-राजाओं के समय के महल टूटी हालत में हैं। देवीचंद के नाम से देवीपुरा अभी विद्यमान है। यहाँ के मंदिर भी कत्यूरियों के बनाये मंदिरों के से हैं, अतः स्पष्ट है कि यहाँ कत्यूरी राजाओं के समय भी आबादी रही हो। ठौर-ठौर में यहाँ पुरानी बस्तियों के चिह्न हैं। पहले यहाँ बुक्सा ज़्यादा रहते थे, अब तो पर्वती भी बहुत रहते हैं। बुक्सों का वर्णन जाति-खंड में मिलेगा। यहाँ ग़ल्ला खूब पैदा होता है। शाखू उर्फ साल, शीशम, कुसुम, आबनूस, पापड़ी, हल्दू व खैर की लकड़ी दूर-दूर को भेजी जाती है। दवाएँ जैसे हरड़, बहेड़ा, आँवला, पीपल, रोली, चिरौंजी, छैल छबीला, हंसराज, कपूर कचरी, चिरायता आदि जंगलों में होते हैं, और देश - देशान्तरों को भेजे जाते हैं। शेर (Bengal tiger) भी यहाँ काफ़ी होते हैं। जंगली हाथी भी दिखाई देते हैं। हिरन, चीतल, बारासिंघा, सुअर, नीलगाय, भालू, बौंस वग़ैरह काफ़ी होते हैं।

सीतेश्वर में चंद-राजाओं के समय की गूँठ थी, जो अब जंगलात ने झगड़े में डाल रक्खी है। यहाँ अशोक के वृक्ष भी बड़े सुन्दर हैं। गरम जल के सोते भी सीताबनी के मंदिर के पास हैं। वहीं पर एक जगह का नाम तीन गढ़ हैं, जो राम के नाम से रामपुर, लछमन के नाम से लछमपुर और भरत के नाम से चैतान कहलाते हैं। यहाँ चीड़ के पेड़ भी हैं। यह स्थान सिद्धों का माना जाता है। उन सोतों से जो नदी निकलती है, उसका नाम पहले कालीगाड़ और चहल कहा जाता है। नीचे वह खिचड़ी नदी कहलाती है। इसके पानी से क्यारी, पत्तापाणी, गैबुवा, बैलपड़ाव आदि इलाक़े आबाद हैं।

कमौला-धमौला में भी कहते हैं, पहले राजस्थान था। वहाँ पुरानी टूटी-फूटी इमारतें भी हैं। कहते हैं, वहाँ हल चलाने में कभी अशर्फ़ियाँ भी निकली थीं। देचौरी में लोहे की खान थी व कारख़ाना भी था। चूनाखान से गट्टी का अच्छा चूना देशान्तरों को भेजा जाता था।

कालाढूँगी—छोटी - सी बस्ती है। पहले तहसील थी, अब नहीं है। रेल

बनने के पूर्व यह मुरादाबाद से नैनीताल जाने का आम रास्ता था। ताँगे चलते थे। ठहरने का प्रबंध भी था।

हल्द्वानी—भावर की मंडियों में सबसे बड़ी है। कुमाऊँ का अब सबसे बड़ा नगर है। सन् १८३४ में ट्रेल साहब ने इसे बसाया। पहले बस्ती मोटा हल्दू में थी। पहले फूस के छप्पर बने थे। १८५० से पक्के मकान बनने लगे। अब दिन-दिन तरक़्क़ी है। रेल, तार, डाक, स्कूल सब हैं। जाड़ों में नैनीताल के दफ़्तर यहाँ आते हैं। १२ हज़ार से ज़्यादा की बस्ती है। यहाँ से अल्मोड़ा, रानीखेत, नैनीताल भवाली को लारियाँ जाती हैं। भीमताल, मुक्तेश्वर, रामगाड़ को घोड़ों में माल जाता है। जाड़ों के लिये यह स्थान स्वर्ग है। यहाँ जाड़ा कम होता है। नल का पानी आने से अब तो बरसात में भी बहुत लोग रहते हैं। तेल का कारखाना भी यहाँ पर है। पं० देवीदत्त जोशीजी ने रामलीला का हाता व मंदिर चंदे से बनाये (सन् १८८४-८६)। इसमें संवत् १९७७ में ला० चोखेलाल मुरलीधरजी ने एक सुन्दर भवन बनवाया है। आर्यसमाज-भवन सन् १९०१ में बाबू रामप्रसाद मुख़्तार (वर्तमान स्वामी रामानंद) ने बनाया। आर्य-अनाथालय को संवत् १९८५ में श्रीमती त्रिवेणी देवीजी ने बनवाया। सेवा-समिति का सुन्दर भवन चौ० कुन्दनलाल वर्मा ने संवत् १९८० में बनवाया।

एक अँग्रेज़ी मिडिल स्कूल भी १८३१ में ला० बाबूरामजी के धन से बना। १८८५ में यहाँ टाउन ऐक्ट जारी हुआ। १ फ़रवरी, १८९७ को यह म्युनिसिपैलिटी बनाई गई; पर १९०४ में यह नोटीफ़ाइड एरिया क़रार दी गई। सन् १९००-१९०१ में १०,१४९) आमदनी थी। अब ४०,०००) से ज़्यादा है। पं० बेणीराम पांडेजी ने यहाँ पर सन् १९३२ में शिव का मंदिर बनवाया, जिसका नाम बेणीरामेश्वर है। श्री बचीगौड़ ने सन् १८९४ में धर्मशाला बनवाई तथा संवत् १९५२ में राममंदिर की परिक्रमा भी बनवाई। सनातन धर्म-सभा सन् १९०२ में पं० छेदालाल पुजारी तथा पं० रामदत्त ज्योर्तिविदजी के उद्योग से खुली। हल्द्वानी अब काशीपुर से भी बड़ा नगर है।

काठगोदाम रेल का अन्तिम स्टेशन है। पहले यह बमौरी घाटा (दर्रा) कहलाता था। रेल के आने से काठगोदाम कहलाया। यहाँ काठबाँस की चौकी पहले थी। साथ ही लकड़ी का गोदाम (भंडार) होने से यह काठगोदाम कहलाया। रेल २४ अप्रैल सन् १८८४ को आई। पहले हल्द्वानी तक थी, बाद को यहाँ तक लाई गई। अब यह एक छोटी बस्ती है। तार, डाकघर दोनों हैं। भोजनालय व विश्रामालय भी हैं। चुंगी भी है। यह

हल्द्वानी का एक हिस्सा है। यहाँ हवा खूब चलती है। यहाँ पर एक बड़ा पुल गौला नदी पर है। वह सीमेंट व कंकड़ का बना है। ३५० फ़ुट लंबा है। मेहराबदार है। उसमें सड़क के साथ गौला-पार भावर को नहर भी जाती है। सन् १६१३-१४ में यह बना था। लार्ड हार्डिंग ने इसे खोला था। उन्हीं के नाम से यह प्रसिद्ध है।

चोरगल्या—चौभैंसी के भावर के लोगों की यह जगह है। यहाँ नंदौर से नहर निकाली गई है और दृश्य यहाँ के बड़े सुहावने हैं। जाड़ों में अच्छी चहलपहल रहती है। पहले यहाँ चोरों के छिपने की जगह थी, इससे चोरगल्या नाम पड़ा।

टनकपुर—शारदा (सरयू) के किनारे की मंडी है। जाड़ों में अच्छी बस्ती रहती है। गर्मी व बरसात में बहुत ही कम लोग यहाँ रहते हैं। यहाँ एक बड़ा कुआँ है, जो सिमेंट का बना है। इसमें एंजिन लगा है, और उसी से पीने का पानी ऊपर को खींचा जाता है। इसके पार नेपाल की ब्रह्मदेव मंडी है। जो राजा ब्रह्मदेव कत्यूरी ने बसाई थी। पहले टनकपुर से ३ मील ऊपर भी ब्रह्मदेव मंडी थी, जहाँ पहाड़ के टूटने (पैर पड़ने) से १८८० में टनकपुर बसाया गया। इसका नाम ग्रास्टीनगंज पहले रक्खा था, पर वह चला नहीं। यह काली कुमाऊँ, पिठौरागढ़ तथा कैलास जाने का मार्ग है। यहाँ से थोड़ी दूर में पुण्यागिरिदेवीजी का मंदिर है। यहाँ जाड़ों में गश्ती अस्पताल रहता है। एक राष्ट्रीय औषधालय भी है। नहर के टूटने से लोगों को बड़ा कष्ट है। यहाँ से नेपाल को काफ़ी तिजारत होती है। यहाँ रेल भी है। भोटियों के ऊन बेचने की मंडी भी है।

---

३१. तराई का वृत्तान्त

तराई का लगभग १०-१२ मील का एक चौड़ा टुकड़ा काशीपुर से लेकर उधर शारदा के किनारे बनबसा तक चला गया है। किच्छहा से लेकर बनबसा तक ज़्यादातर थारुओं की बस्ती है। इसे बिलारी भी कहते है। यहाँ के मुख्य स्थान खटीमा, बनबसा, सतारगंज, किच्छहा, नानकमता हैं। खटीमा में बाज़ार, स्कूल, तहसील हैं। नहर भी गई है। बनबसा में शारदा नहर का मूल-स्थान है। यहाँ का पुल व नहर का बाँध देखने योग्य हैं। मलेरिया यहाँ मूर्तिमान् दिखाई देता है। सतारगंज व किच्छहा सदर मुक़ाम हैं। नानकमता

में सिखों का गुरुद्वारा है। कहते हैं कि गुरु नानक यहाँ आये थे। रुद्रपुर राजा रुद्रचंद के और बाजपुर राजा बाजबहादुरचंद के समय के बसाये हुए नगर हैं। रुद्रपुर में पहले तहसील थी, अब नहीं है। यहाँ पांडवों के वक़्त की इमारतें हैं। ऊँचे टीले हैं। मूर्तियाँ भी निकलती हैं। जशपुर को, कहते हैं कि कुमाऊँ के राजमंत्री यशोधर जोशीजी ने बसाया था। यह एक छोटा-सा नगर है। काशीपुर से ८½ मील दूर है। १८५६ से यहाँ पर टाउन ऐक्ट लगाया गया। यहाँ कपड़ा बनता है। छपाई का काम भी अच्छा होता है। जशपुर तराई नहीं कही जाती। यहाँ की आबहवा अच्छी बताइ जाती है। यह पक्का इलाक़ा है। अकबर के ज़माने में इसका नाम शहजगीर था।

---

३२. काशीपुर

तराई-इलाक़े का सबसे प्रसिद्ध व पुराना शहर काशीपुर है। लोक-विदित चीनी यात्री ह्यूनसांग यहाँ आये थे। उन्होंने काशीपुर के बारे में जो कुछ लिखा है, उसका सारांश हम यहाँ पर कनिंघम साहब की पुस्तक से उद्धृत करते हैं :—"मादीपुर से चलकर वह (ह्यूनसांग) ६६ मील की दूरी पर गोविषाण नामक स्थान में पहुँचा। यह राजधानी २½ मील की गोलाई में थी। यह ऊँची भूमि पर थी। इसकी भूमि मज़बूत थी। वहाँ कठिनता से पहुँच सकते थे। वह स्थान बग़ीचों, तालाबों तथा मछली के कुंडों से घिरा था। वहाँ दो मठ थे, जिनमें १०० साधु बौद्धधर्म के थे। ३० ब्राह्मणी धर्म के मंदिर भी थे। शहर के बाहर बड़े मठ में २०० फ़ुट ऊँचा अशोक का स्तूप था। यहाँ बुद्धदेव ने लोगों को धर्म का उपदेश दिया था। यहाँ दो और छोटे-छोटे स्तूप थे, जिनमें बुद्ध भगवान् के नख व बाल थे। विशप हेबर ने लिखा है कि काशीपुर हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है, जिसको परमात्मा ने ५००० वर्ष पहले बनाया। यह बात ग़लत है, क्योंकि काशीपुर को सन् १७१८ (?) में कुमाऊँ के राजा देवीचंद के तराई के लाट श्रीकाशीनाथ अधिकारी ने अपने नाम से बसाया। पुराना क़िला उज्जैन कहलाता है। इसके निकट द्रोणसागर है। यह सागर क़िले से पहले का बना है। अब भी यह इसी नाम से पुकारा जाता है। अब भी यहाँ यात्री आते हैं। इसे पांडवों ने अपने गुरु द्रोणाचार्य के लिये बनाया था। यह ६०० फ़ुट के लगभग चौकोर है। गंगोत्री जाने पर

यात्री यहाँ आते हैं। इसके किनारे सती नारियों के स्मारक हैं। इस क़िले की दीवारें ३० फ़ुट ऊँची हैं। ईंटें इसमें १५"×१०"×२½" की हैं। ६०० फ़ुट क़िले के इधर ज्वालादेवी हैं, जो उज्जैनीदेवी भी कहलाती हैं। यहाँ चैत्र के महीने में मेला लगता है। भूतेश्वर, मुक्तेश्वर, नागनाथ, जागीश्वर नाम के मंदिर हैं, जो शायद बाद को बने हैं। यहाँ पर एक टीले का नाम भीमगदा है, जो शायद महादेव का लिंग हो। यहाँ पर एक महल के खँडहर दिखाई दिये। १४-१५ खँडहर मंदिरों के दिखाई दिये, अर्थात् उनके आधे, जितने ह्यूनसांग ने लिखे हैं। बड़े बौद्ध-स्तूपों के चिह्न न दिखाई दिये, सिर्फ़ इसके कि जागीश्वर महादेव के पास एक २० फ़ुट ऊँचा ईंटों का टीला दिखाई दिया। जो उन बड़े स्तूपों के समान नहीं हो सकता, जिनका ज़िक्र ह्यूनसांग ने किया था, यद्यपि ये स्तूप बौद्ध-स्तूपों के समान हैं।" यद्यपि श्रीकनिंघम साहब को ह्यूनसांग के लिखे-मुताबिक़ ठीक-ठीक चीज़ें न मिलीं, और इतनी मुद्दत बाद मिलतीं भी कैसे ? तथापि उन्होंने जो उपर्युक्त अन्वेषण ह्यूनसांग के लेख का किया, उसमें उन्होंने कहा है कि गोविषाण वह जगह थी, जहाँ पर अब काशीपुर बसा है। वहाँ बुद्ध भगवान् आये थे, और उन्होंने धर्मोपदेश दिया था। ऐसा ह्यूनसांग ने लिखा है।

गोविषाण के उत्तर में ब्रह्मपुर या ब्रह्मपुरा राज्य था। यह शायद कत्यूरी राजाओं का राज्य था। ह्यूनसांग लखनपुर तक गये हैं, जो ब्रह्मपुर राज्य की राजधानी थी। ह्यूनसांग छठी शताब्दी में यहाँ आये। लगभग १६ वर्ष यहाँ रहकर सन् ६४५ में चीन को लौटे।

काशीपुर की ज्वालादेवी को इस समय बालसुंदरी देवी कहते हैं। इसके पास गुसाईं का टीला है। यहाँ तालाब व बग़ीचे अब भी बहुत हैं। यहाँ की आबादी १५,००० के लगभग थी, अब १२,००० है। यहाँ १७ मुहल्ले हैं।

कूर्माचली ब्राह्मणों में पंत, पांडे, जोशी, भट्ट, लोहनी आदि प्रायः कुमाऊँ से जाकर वहाँ बसे हैं। वे चंदों के राजकर्मचारी थे। कुछ राजा लालचंद के खानदान के कारबारी रहे। अब भी प्रतिष्ठित पदों पर हैं। इनके अलावा चौबे-खानदान वहाँ का बहुत पुराना व सम्मानित है। खत्री व अग्रवाल वैश्य भी बहुत धनी व सम्माननीय हैं। खत्रियों के हाथ में कपड़े की तिजारत है। क्वारतने भी धनी-मानी हैं।

सन् १८७२ से यहाँ पर म्युनिसिपैलिटी की स्थापना हुई। सन् १९१५ में उदयराज व जगतलक्ष्मी हाईस्कूल की स्थापना हुई। जिसके बनाने में रानी जगतलक्ष्मी ने १०००) नक़द दिये, और राजा उदयराजसिंहजी ने एक

गाँव भी दिया। नगर के लोगों ने चंदा भी दिया। इसके बनवाने में पं० गोविन्दवल्लभ पंत तथा श्रीमुकुन्दराम जोशीजी ने खूब प्रयत्न किया। यहाँ पर एक टाउन स्कूल भी है। चुंगी के भीतर अनिवार्य शिक्षा का भी प्रचार है।

श्रीकनिंघम ने इसके बसने की तारीख़ ग़लत दी है। इसे सन् १६३६ में नये सिरे से कुमाऊँ राज्य के लाट श्रीकाशीनाथ अधिकारी ने बसाया। उनके बाद उनके पुत्र या पौत्र (?) श्रीशिवनाथ अधिकारी सन् १७४४ तक वहाँ के लाट थे। सन् १७४५ में पं० शिवदेव जोशीजी ने काशीपुर में क़िला बनवाया और पं० हरिराम जोशीजी को लाट व बक्सी (सेनापति) बनाया। उनके ठीक काम न करने पर श्रीशिरोमणिदास को वहाँ का लाट बनाया। उनके बाद उनके पुत्र श्रीनंदराम व श्रीहरगोविंद बारी-बारी से लाट हुए। इन्होंने नवाब अवध से संधि कर ली। कुमाऊँ के राजा से विश्वासघात किया। अँगरेज़ों के आने पर सन् १८१४ में राजा शिवलाल, जो हरगोविंद के पुत्र थे, यहाँ के शासक व ज़मींदार थे। वे क़िले में रहते थे। राजा शिवलाल ग़दर में मारे गये। इनकी रानी भवानी सती हुईं। इनके नाम से रानी-भवानी-मठ भी है। काशीपुर-नरेश के पुरखे पहले रुद्रपुर के क़िले में रहते थे। सन् १८४० में पांडे ज़मीदारों से ज़मीन लेकर उन्होंने यहाँ कोठी बनवाई। राजा शिवराजसिंहजी बड़े प्रतापी पुरुष हुए हैं। राजा-प्रजा दोनो में उनका सम्मान था। सन् १८५७ के गदर में उन्होंने सहायता दी। इससे सी० आई० ई० की उपाधि भी पाई। वह बड़े लाट की कौंसिल के मेम्बर भी थे। उनका महल, जो तालकटोरा के पास था और उनका बाग़, जो महल के पीछे था, दोनों देखने योग्य थे। विजयादशमी को गद्दीनशीन नरेशों की तरह उनका जुलूस निकलता था। उनके नाम से अल्मोड़ा की शिवराज-संस्कृत-पाठशाला अब तक विद्यमान है। वर्तमान अस्पताल भी आपकी ही उदारता से बना।

कूर्माचल के प्रसिद्ध कवि श्रीगुमानी पंतजी काशीपुर में पैदा हुए थे। उन्होंने काशीपुर नगर का वर्णन बड़ी रोचक भाषा में किया है—

> कथावाले सस्ते फिरत धर पोथी बगल में।
> लई थैली गोली घर-घर हकीमी सब करें॥
> रँगीला-सा पत्रा कर धरत जोशी सब बने।
> अजब देखा काशीपुर शहर सारे जगत में॥ १॥

जहाँ पूरी गरमा - गरम, तरकारी चटपटी।
दही बूरा दोने भर-भर भले ब्राह्मण छकें॥
छहे न्यौतेवारे सुनकर अठारे बढ़ गए।
अजब देखा काशीपुर शहर सारे जगत में॥ २॥
जहाँ ढेला नद्दी ढिग रहत मेला दिन छिपे।
जहाँ पट्टी पातुर झलकत परी-सी महल में॥
तले ठोकर खाते फिरत सब गब्रू गलिन में।
अजब देखा काशीपुर शहर सारे जगत में॥ ३॥
कदो जसपुर पट्टी फिरकर कदी तो चिलकिया।
कदी घर में सोते भर नयन भोरे उठ चले॥
सभी टट्टू लादें इनज रुजगारी सब बनें।
अजब देखा काशीपुर शहर सारे जगत में॥ ४॥
यहाँ ढेला नद्दी उत बहुत गंगा निकट में।
यहाँ भोला मोटेश्वर रहत विश्वेश्वर वहाँ॥
यहाँ संडे दंडे कर धर फिरें साँड उत ही।
फ़रक़ क्या है काशीपुर शहर काशी नगर में॥ ५॥

---

३३. तराई का इतिहास

कत्यूरी राजाओं का अधिकार तराई में था, यह बात निर्विवाद है। ह्यूनसांग ने गोविषाण राज्य का ज़िक्र किया है, पर ऐसा नहीं लिखा है कि वहाँ का राजा कौन था। किन्तु यह लिखा है कि वहाँ कोई शासक रहता था, राजा अन्यत्र रहता था। राजा पर्वत में रहते थे, और उनका प्रतिनिधि या लाट काशीपुर में रहता था। गानेवाले 'जगरिए' (एक क़िस्म के भाट) कहते हैं— "आसन वाका बासन वाका सिंहासन वाका वाका ब्रह्म वाका लखनपुर।"

इस पद में ब्रह्म व लखनपुर राजधानी का ज़िक्र आया है। ब्रह्मपुर राज्य कत्यूरियों का था। लखनपुर उसकी राजधानी थी। यह लखनपुर पाली पछाऊँ का लखनपुर होगा। यह गोविषाण (काशीपुर) के उत्तर में है। ह्यूनसांग के नक़्शे में यही दर्शाया गया है। लखनपुर गरमी की राजधानी और जाड़ों की राजधानी ढिकुली थी। पर उन राजाओं की बातें ज़्यादा ज्ञात नहीं। विशेष वर्णन 'कत्यूरी-शासन-काल' में मिलेगा।

नैनीताल के श्रीनेमिल साहब के गज़ेटियर में लिखा है—"मुसलमान-साम्राज्य की नीव पड़ने के समय कुमाऊँ-राजा तराई के स्वतंत्र अधिकार में थे। देश के किसी राजा के मातहत न थे। अतः इस बात में शक नहीं कि तराई में कत्यूरी राजाओं का अधिकार था।" पर्वतीय लोग अनन्त काल से जाड़ों में तराई भावर में उतरते रहे हैं। तराई भावर बहुत कुछ उन्हीं की आबाद किया है। कत्यूरियों के समय में तराई बहुत आबाद थी। उस ज़माने के स्तम्भ व खँडहर बहुत दिखाई देते हैं।

पर तराई भावर की आबादी का विशेष वर्णन हमको १५वीं शताब्दी से ज्ञात है। १६वीं शताब्दी में यहाँ बहुत आबादी थी।

---

३४. कठेर उर्फ़ रोहिलखंड

कठेर उर्फ़ रोहिलखंड से तराई का इतिहास मिला है। रोहिलखंड का पहला नाम कठेर था। वहाँ पर बड़ा जंगल था। अहीर लोग रहते थे। बरेली का नाम उस वक़्त टप्पा अहीराँ था। वहाँ के मालिक अहीर थे। ये ज़बरदस्त लड़ाके थे। जब तैमूर के हाथ भारतवर्ष आया, तो उसने तिरहुत के राजा खड़कसिंह और राव हरीसिंह को इन्हें दबाने को भेजा। ये राजा कठेर जाति के थे। अतः इनके नाम से यह प्रांत कठेर या कठैड़ कहलाया। बाद को रोहिलों के आने से यह रोहिलखंड कहा गया। कठेरो में से कुछ लोग पुवायाँ, खरल, काठ व गोला में बसे। पहले शाहजहाँपुर का नाम काठ व गोला था। बाद को बादशाह शाहजहाँ के नाम से शाहजहाँपुर कहलाया। कुछ लोग चौपला में बसे, जो शाहजहाँ के पुत्र मुराद के नाम से मुरादाबाद कहा गया। कठघर जो अब कहलाता है, वह कठेर का ही दूसरा रूप है। क्योंकि वहाँ राजा नरपतिसिंह कठेरिये रहते थे। कठेरी राजपूतों में दो भाई वासुदेव व बरलदेव हुए, जिनके संयुक्त नाम से बाँसबरेली नाम का नगर बसा। कठेरी राजपूतों की राजधानी लखनौर में थी।

कठेरिया राजा खड़गू ने सन् १३८० में बदायूँ के नवाब सैयद मुहम्मद-दीन को मार डाला। तब सुल्तान फ़ीरोज़ तुग़लक के चढ़ाई करने पर वह तराई को भागा। वहाँ कुमाऊँ के महतों ने उसकी सहायता की। १४१८ में सुल्तान खिज्रखाँ ने राजा हरीसिंह को हराकर रामगंगा के पार भगा दिया, पर पहाड़ों के डर से वह लौट गया। अतः नीचे के मुसलमानों के सताये जाने

पर कठेरिये राजपूतों ने तराई में शरण लेनी चाही, और उसे दबाना शुरू किया। सन् १३६७ में राजा गरुड़ ज्ञानचंद दिल्ली-दरबार में गये, और सुल्तान से कहा कि तराई-प्रान्त क़दीम से कुमाऊँ के राजाओं का रहा है, उस पर उन्हीं का अधिकार होना चाहिए।

सुल्तान ने उनकी बड़ी ख़ातिर की, और गंगा तक का प्रान्त कुमाऊँ के राजा को दे दिया।

कुछ दिनों बाद संबल के नवाब ने तल्ला देश भावर को छीना, पर वीर सेनापति नीलू कठायत ने मुसलमानों को वहाँ से मार भगाया।

राजा कीर्तिचंद ने सन् १४८६ में काशीपुर परगने में जसपुर के पास एक क़िला बनवाया और उसका नाम कीर्तिपुर रक्खा।

सन् १५६८ में काठ व गोला के नवाब हुसैनख़ाँ टुकड़ियाँ ने तराई भावर पर अधिकार किया, पर वह पहाड़ों में न गया। उस समय कुमाऊँ का राजा बड़ा धनी गिना जाता था। उसका राज्य-विस्तार तिब्बत से लेकर संबल तक था, ऐसा 'फ़िरेश्तो' नामक इतिहास में लिखा है। मुसलमान इतिहासज्ञों ने तराई भावर को 'दामन-कोह' या 'दामन-ए-कोह' के नाम से संबोधित किया है। कहा जाता है कि एक बार अकबर के सेनापति सुल्तान इब्राहीम ने इसको जीता था।

राजा रुद्रचंद ने (स० १५६८—१५६७) पर्वतीयों की सेना एकत्र कर तराई से मुसलमानों को हटा दिया, और सन् १५८८ में वह अकबर बादशाह के पास गये, और तराई के बारे में शिकायत की। राजा ने नागौर की लड़ाई में बहादुरी दिखाई। कुमय्यां सेना विजयी रही। अतः अकबर ने फिर तराई भावर परगने का फ़रमान राजा को दे दिया। इन्हीं राजा रुद्रचंद ने तराई भावर का पक्का प्रबंध किया, और सन् १६०० के क़रीब रुद्रपुर नगर बसाया।

बादशाह अकबर के 'आईने-अकबरी' में सरकार कुमाऊँ भी एक सूबा था। उसमें पहाड़ी इलाक़ा शामिल न था। न-जाने क्ले साहब नैनीताल के इतिहास में यह क्यों कहते हैं कि ग़रीबी के सबब पहाड़ का ख़िराज कुमाऊँ के राजा को माफ़ था, जब कि खुद बादशाह अकबर के ज़माने के इतिहासज्ञों ने बराबर लिखा है कि कुमाऊँ का राजा काफ़ी धनी था। आईने-अकबरी में सरकार कुमाऊँ का वृत्तांत इस प्रकार दिया हुआ है :—

"सरकार बदायूँ के बाद सरकार कमायूँ है। फ़ारसी-लेखक इसे कुमाऊँ नहीं, बल्कि कमायूँ लिखते आए हैं।"

---

३५. सरकार कुमाऊँ

[२१ मुहाल]

मालगुज़ारी ४०४३७७०० दाम

(एक दाम बराबर $\frac{१}{४०}$ रुपए के होता था, अतः इस समय के हिसाब से कुल मालगुज़ारी १०२१८८५) हुई)

अदौन	४०००००	दाम
बुकसी व बुकसा दो मुहाल	४०००००	„
बसटारा	२०००००	„
पंचोतर	४०००००	„
भिखनदिवार	२०००००	„
भक्ति भूरी	११००००००	„
रटिला	१००२५०००	„
चटकी	४०००००	„
जकराय	५००००००	„
जरदा	३००००००	„
जावन	२५०००००	„
चौली या चटकी, सेहुजपुर, गुजरपुर, द्वाराकोट, मुलवारे	२५०००००	„
मालाचौर, सिताचौर, कामौस या कामूस	५०३७७००	„

इस सूबे को उक्त मालगुज़ारी के अलावा ३००० सवार तथा ५०००० पैदल सेना देनी पड़ती थी।

इससे ज्ञात होता है कि अकबर की सरकार कुमाऊँ का विस्तार तब देहरादून से लेकर शायद काली के उस तरफ़ तक था। इसमें से अन्य मुहाल पीलीभीत, खेरी, बरेली, रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर तथा देहरादून में हैं। केवल ये प्रान्त कुमाऊँ में होने कहे जाते हैं:—

(१) बुकसी या बुकसा—इसका नाम इस समय भी बुकसाड़ है। इसमें रुद्रपुर व किलपुरी के इलाक़े शामिल हैं।

(२) सेहूजपुर, सहजगढ़ वर्तमान जसपुर है।

(३) गुजिरपुर अब गदरपुर हो गया है।

(४) सीताहूर, सीताचौर, मालाचौर—यह शायद कोटा हो।

(५) छखाता, चोरगल्या व अन्य भावरी इलाक़े हैं। संभव है, तब कोटे का नाम सीताचौर या सीताहूर हो, जो अब सीताबनी कहलाती है।

(६) भक्ति भूरी—यह बक्सी हो, जो नानकमता का पहला नाम था।

(७) चौली या चटकी –यह चिनकी का नाम हो, जो सरबना भी कहा जाता था।

(८) कामौस या कामूस—डा० डी० पंत लिखते हैं कि अकबर के राज्य की सीमा माउन्ट इमान्स थी, जो हिमाचल या हिमांस का रूपान्तर हो। कुमाऊँ पर्वत इसी नाम से कहा जाता था। कुमाऊँ को कुमाऊनियस कहते थे। [The limits of Akbar's Empire were, "on the north bounded by Mount Imans (the Kumaon then spelt as cumaunius) (page 39 of the Commercial policy of Moguls.)]

वर्तमान कुमाऊँ के जो प्रान्त अकबर की सरकार कुमाऊँ में शामिल थे, उनकी मालगुज़ारी क़रीबन १,७३,४४५) थी।

राजा रुद्रचंद के समय तराई भावर का नाम चौरासीमाल या 'नौलखियामाठ' कहलाता था, क्योंकि शारदा से पीलीभीत तक यह ८४ कोस का टुकड़ा माना गया है और इसकी मालगुज़ारी उस समय नौ लाख रुपए थी। पाटिया के नौलखिया पांडे यहाँ के खज़ांची थे। इसी से नौलखिया कहलाए। उस समय के परगने ये थे -

तब	अब
सहजगिर या सहजगढ़	जसपुर
किलपुरी	रुद्रपुर
बुकसाड़	रुद्रपुर
गदरपुर	गदरपुर
चिनकी	बिलारी
बक्सी	नानकमता
मुंडिया	बाजपुर
कोटा	जिसमें काशीपुर प्रांत भी शामिल था।

राजा बाजबहादुरचंद के समय तराई भावर प्रांत बहुत आबाद था। दरअसल नौ लाख रुपये उस समय मालगुज़ारी में वसूल होते थे, ऐसा अँगरेज़ लेखक भी मानते हैं।

सन् १६३६ में काशीनाथ अधिकारी ने काशीपुर बसाया। १६५१-५२ में कठेड़ियों ने तराई के गाँव दबाये। १६५४ में राजा बाजबहादुरचंद दिल्ली में शाहजहाँ के यहाँ गये। १६५४-५५ में वह गढ़वाल की लड़ाई में भेजे गये। वहाँ बहादुरी दिखाने से बहादुर का तथा महाराजाधिराज का पद पाया। चौरासी माल की सनद मिली। पर फ़रमानों में वह तराई के ज़मींदार कहे गये हैं, यद्यपि कुमाऊँ के राजा कहे जाते थे। उस समय बड़े-बड़े राजा-महाराजा ज़मींदार कहे जाते थे। राजा बाजबहादुरचंद ने रुस्तमख़ाँ (जिसने मुरादाबाद बसाया) की सहायता से कठेड़ियों को तराई से हटाकर अपना अधिकार जमाया, और बाजपुर नामक नगर भी बसाया, जो अब तक विद्यमान है। बाद को वहाँ अस्पताल बनने से वह शफ़ाख़ाना भी कहा जाता है। बाजबहादुर के समय तराई भावर के शासक जाड़ों में रुद्रपुर व बाजपुर में रहते थे और गर्मियों में कोटा व बाड़ाखेड़ी में चले आते थे। पर बड़े शासक की राजधानी कोटा में थी। पुलिस का प्रबंध हेड़ी व मेवाती लोगों के हाथ था। ये मुसलमान थे। राजपूताना से आये थे। (मेवाती वर्तमान मेवों के वंशज होंगे, जिन्होंने सन् १६३४ में अलवर में ग़दर मचाया था।) राजा उद्योतचंद ने तराई में ठौर-ठौर पर आमों के बग़ीचे लगवाये। वह वहाँ की खेती में बहुत दिलचस्पी लेते थे। राजा जगतचंद के समय भी आमदनी नौ लाख थी।

राजा देवीचंद ने १७२३ में कोटे में देवीपुरा नगर बसाया। वहाँ महल भी बनवाया। इसके बाद कुमाऊँ में गैड़ा गर्दी व जोशी गर्दियाँ आरंभ हुईं, जिनसे देश बरबाद हुआ। १७३१ में अवध के नवाब मंसूरअलीख़ाँ ने सरबना व बिलारी परगनों पर अपना अधिकार कर लिया। सरबना अब पीलीभीत ज़िले में शामिल है। पं० शिवदेव जोशीजी भावर के लाट बनाये गये। पं० रामदत्त अधिकारी कोटा भावर के लाट हुए। रोहिलों ने १७४३ में कुमाऊँ व भावर में ७ माह तक क़ब्ज़ा किया। तीन लाख राजा से दंड में लिये, मंदिरों व मनुष्यों को लूटकर वे चले गये। दूसरी बार सन् १७४५ में फिर आये, पर बाड़ाखोड़ा के क़िले के पास राजीबख़ाँ रोहिला नेता को शिवदेवजी ने मार भगाया। राजा कल्याणचंद शिवदेवजी को लेकर दिल्ली के बादशाह के पास गये, जिस पर फिर तराई भावर की बहाली की सनद मिली।

अवध के नवाब सफदरजंग ने फिर सरबना इलाका छीन लिया। तेजू गौड़ चकलेदार से लड़ाई में घायल होकर शिवदेव जोशीजी एक साल तक बंगला (फ़ैज़ाबाद) में क़ैद रहे। राजा कल्याणचंद ने बादशाह को लिखा, तब शिवदेवजी छूटे और उन्होंने तराई में रुद्रपुर व काशीपुर में क़िले बनवाये। सब जगह शासक नियुक्त किये। सरबना, बिलारी व धनेर प्रान्त बड़वायक (थाड़ू) खानदान को ज़मींदारी में दिये गये। तल्लादेश भावर लूलों को दिया गया।

राजा दीपचंद के समय में भी तराई में खूब आबादी थी। सन् १७७७ में राजा दीपचंद मारे गये। राजा मोहनचंद ने काशीपुर के लाट नंदराम से संधि की। तराई में उसका अधिकार हो गया। नंदराम ने नवाब अवध से मित्रता कर, तराई का मालिक उनको बना, कुमाऊँ के छत्र को ठुकरा दिया। सन् १८०२ तक नंदराम के भतीजे तराई के अधिकार में थे। बाद को अँगरेज़ों ने इस पर क़ब्ज़ा कर लिया। भावरी इलाक़ा सदैव कुमय्यों के अधीन रहा।

अँगरेज़ी राज्य क़ायम होने पर चंदों के खानदानवालों को गद्दी न मिली। पश्चात् उन्होंने यह दावा किया कि तराई-भावर चंदों की खानदानी ज़मींदारी याने उनकी निजी सम्पत्ति है। सरकार ने इस बात को भी न माना। राजा लालसिंह के खानदान को १७ गाँव चांचट में मिले थे, और उनकी कुछ ज़मींदारी रुद्रपुर व किलपुरी इलाक़े में थी, पर उनका प्रबंध ठीक न होने व मालगुज़ारी अदा न होने से सरकार ने उनको इलाक़ा बदल लेने का हुक्म दे दिया। गोरखों ने तराई भावर में ज़्यादा शासन नहीं किया। यद्यपि भावर में उनका अधिकार था, पर तराई में उनका अधिकार न रहा।

अँगरेज़ों के अधिकार में आने पर तराई भावर का पक्का-पक्का प्रबंध किया गया। भावर का जीर्णोद्धार तो रामजी साहब ने किया। प्रायः सब नहरें, सड़कें व नगर उन्हीं के समय में बने। भावर का कुल प्रबंध उनके हाथ में था। अपने निजी बग़ीचे की तरह वह इसका प्रबंध करते थे। आमदनी-खर्च का हिसाब कुल कहा जाता था कि उनके अपने हाथ में था, अलग कुछ नहीं था। जो बचत देखी, वह खज़ाने में जमा कर दी। जो मन में आया, खर्च किया। पुलिस, जंगलात, सफ़ाई, शिक्षा, नहर, कोष, सब उनके अधीन था। विना उनके पूछे कुछ काम न होता था, साल में तीन-चार महीने वह भावर में रहते थे।

तराई का प्रबंध सबसे पहले श्रीमैकडानल साहब ने, जो वहाँ के पहले

सुपरिन्टेन्डेन्ट थे, किया। उनको भी पूरे-पूरे अधिकार थे। वह रामजी साहब के भांजे बताये जाते हैं। बाद को रामजी साहब का उनसे झगड़ा हो गया। मैकडालन साहब का नाम अब भी तराई में आदर से लिया जाता है। काश्तकारों, विशेषकर थारुओं, बोक्सों से वह बड़ी सहानुभूति रखते थे।

नहर के पहले इंजीनियर श्रीट्रेल थे। उस समय तराई प्रान्त बरेली में शामिल था। तराई भावर के पहले इंजीनियर श्रीडबल्यू० क्रौसवेल थे।

चंदों के समय यह एक ज़िला था, जो कभी मध्यदेश माल या 'मटै की माल' कहलाता था।

अँगरेज़ों के समय भी एक बार तराई ज़िला अलग रहा, पर नैनीताल ज़िला सन् १८९१ में बनने से तराई उस ज़िले का एक परगना या सब-डिवीज़न हो गया।

पहले तराई के पूर्वीय परगने खटीमा, बिलारी आदि पीलीभीत में शामिल थे। मध्य के परगने किछहा, किलपुरी बरेली में शामिल थे, पश्चिम के परगने काशीपुर, जसपुर आदि मुरादाबाद के अन्तर्गत थे।

१८३१ तक अँगरेज़ों ने इस भाग पर ज़्यादा ध्यान न दिया। १८३१ में श्रीबोल्डरसन ने बंदोबस्त किया। तब से इसकी आबादी पर ध्यान दिया जाने लगा। सन् १८५१ में कप्तान जोन्स ने यहाँ नहर-संबंधी सुधार किये। सन् १८६१ में तराई ज़िला बनाया गया। बाद को सन् १८७० में यह प्रान्त कुमाऊँ के भीतर शामिल किया गया।

---

३६. पैंठ (बाज़ारें)

तराई भावर में कई ठौरों में बाज़ारें या पैंठ लगती हैं। यथा—

भावर में

स्थान	वार
हल्द्वानी	मंगल
चोरगल्या	शुक्र
रामनगर	शुक्र व बुध
कालाढूंगी	शुक्रवार
बैल पड़ाव	बृहस्पति
आँवलाकोट	शनिवार

तराई में

स्थान	वार
किछ्छा	सोमवार व शुक्र
बढ़ा	रविवार व बुध
दरावो	बुध
चकोटी	मंगल
बाड़ाखेड़ा	रविवार
सकेनियाँ	बुध
शफ़ाखाना	सोमवार
सुल्तानपुर	बुध
सतारगंज	इतवार व बृहस्पति
नानकमता	सोमवार व शुक्र
हल्दुवा	मंगल व शुक्र
बिंजटी	बुध व शनि
खटीमा	मंगल व शुक्र
मझौला	सोमवार व बृहस्पति
काशीपुर	मंगल व शनिश्चर
रायपुर	कोटारी शनिवार
मेवाखेड़ा	रविवार
भावरा	बृहस्पति

३७. भोट की बातें

(१) दारमा

व्यास चौदास पट्टियाँ भी इसी दारमा के भीतर गिनी जाती हैं। सरहद इस परगने की इस प्रकार है—पूर्व की तरफ़ काली गंगा, तिंकर गाँव के पहाड़, पलमजुंग, छवांगरू व काली पानी, तारा इसको नैपाल राज्य से अलग करते हैं। दक्षिण में अस्कोट व इलंगगाड़ अस्कोट से इसे अलग करते हैं। पश्चिम में इसके जोहार परगना है। उत्तर की ओर नवे डांडा व लिपुडांडा इसे तिब्बत से अलग करते हैं।

पर्वत-मालाएं—पंचाचुली, पलजुंग, तारा, लिपु, लांगा, तिंकर, मर्मा-धुरा, निरपनियाँ।

नदियाँ—धौली, रामा, न्यौला, गलछ्या, सोबला, ज्यूँती, गलागाड़, काली ।

(२) व्यांस

इस पट्टी की सरहद हुणदेश याने तिब्बत के तकलाखाल से मिली हुई है । सरहद के पर्वतों के नाम ये हैं:—(१) लिपुधुरा, जिसमें लिपीश नामक महादेव रहते हैं, (२) ताराधुरा, जिसमें तारकालय शिव हैं । इन पहाड़ों के उत्तर तरफ़ को हरताल, सुहागा व नमक की खानें हैं । कहते हैं, सोने की खान भी उस तरफ़ को है । ये खानें तिब्बत-सरकार के क़ब्ज़े में बताई जाती हैं । तारा पहाड़ के नीचे कालीपानी गाँव है । उसमें श्यामा कुंड है । जिससे कालीनदी निकलती है । उसी कुंड के किनारे व्यास ऋषि ने तपस्या की थी । इसी से इस पट्टी का नाम व्यास कहलाता है । कुटी गाँव के ऊपर मंगश्यांग नामक पहाड़ से श्यामा नदी आती है । श्यामा व काली का संगम मौज़े गुंजी व कवा के निकट होता है । जब तक व्यांस कुमाऊँ राज्य के भीतर शामिल न हुआ था, व्यांसी लोग जाड़े के मौसम में धूप सेंकने पट्टी चौदांस भीतर गल्लागाड़ में आते थे । चौदांस के बूढ़ा मार्फ़त रक़म धूप सेंकने की १७००) रु० चंद-राजाओं के ख़ज़ाने में दाख़िल करते थे । गल्लागाड़ से नीचे आने की आज्ञा उनको न थी । आज्ञा लेकर आते थे । व्यांस व दार्मा के बीच सरहदी पहाड़ ज्योलंका है । ऊपर लिपुधुरा है । व्यांसी लोग कहते हैं कि जब उनके मुल्क में वर्षा नहीं होती, तो वे श्यामा कुंड में सत्तू डाल देते हैं, उस सत्तू को जूठा समझकर गंगाजी वर्षा बरसा देती हैं, ताकि वह सत्तू बह जावे । आजकल भी लोग ऐसा करते हैं ।

(३) चौदांस

इस पट्टी में चतुर्दंष्ट्र शिव हैं । इसी कारण इस पट्टी को चौदांस कहते हैं । इसी पट्टी में ह्यांकी वंश के भोटिये हैं । वे कहते हैं कि चौदांस पहले बिलकुल वीरान था । आसमान से एक आदमी उस मुल्क में बरसा । उसने मुल्क आबाद किया । उस आदमी की सन्तान बहुत बढ़ गई । कई पुश्त तक उसके बदन से ज़ख़्म होने पर ख़ून के बदले दूध निकला । बाद को ख़ून निकला । उस आसमान से बरसे हुए की संतान में से ह्यांकी लोग अपने को बताते हैं ।

दार्मा व जोहार के बीच पंचचूली नामक बर्फ़ से भरा हुआ पहाड़ है । ये पाँचो चूलियाँ या चोटियाँ दूर-दूर से दिखाई देती हैं । इनको पांडवों की पाँच 'चूलियाँ' यानी रसोइयाँ कहते हैं । (पर्वतीय भाषा में चूलियों को रसोई भी कहते हैं) ।

इनके उस तरफ़ यानी जोहार पट्टी में दो गाँव अटासी व बलाँती हैं। कहते हैं कि पहले यह गाँव दार्मा के सुनपति सौका के 'घाटे' (दर्रे) के भीतर थे। उस सौके का यह 'घाटा' (दर्रा) अपने प्रान्त जोहार से अटासी बलाँती का पहाड़ उल्लंघन कर दार्मा के शिबू गाँव होकर हूणदेश यानी तिब्बत जाने का था, पर अब बर्फ़ से ढक गया है। जिन दिनों खुला था, कहते हैं कि इतना नज़दीक था कि अटासी बलाँती से कुत्ता गर्म रोटी मुँह में लेकर शिबू गाँव में आता था।

यहाँ पर न्यवे धारा, शिबू तथा पंचचूली से तीन धाराएँ निकलती हैं, जो धौली गंगा के नाम से प्रसिद्ध हैं।

देवता—गब्रीला, छिपुला, हरद्योल ग्राम-देवता हैं। कार्त्तिक, भादों व जेठ महीनों में तीन बार इनकी पूजा होती है। इनकी पूजा को भोटिये मर्द, बुढ़िया औरतें तथा लड़कियाँ जाती हैं। जवान औरतों को जाने का हुक्म नहीं है। पजा में बकरे मारे जाते हैं तथा एक प्रकार की शराब (ज्वाँण) चढ़ती है। और पूरी-भात खाने के लिये बनाते हैं। शिकार पूरी-भात खाकर, शराब पीकर खूब नाचते व कूदते हैं। ब्याँस चौदाँसवाले भी इसी तरह गब्रीला व छिपुला को पूजते हैं।

तिजारत—इन लोगों की तिजारत हूण-देशवालों के साथ सदियों से होती आई है। तिजारती मंडियाँ तकलाकोट, करदभकोट, दरचन और गढ़तोक हैं। सबसे बड़ी मंडी गढ़तोक है। दस्तूर है कि जिस भोटिये की आढ़त जिस हुणिये या लामा से हुई, उसका लेन-देन उसी के साथ होगा। दूसरे के साथ नहीं होने पाता। यह दस्तूर कभी खिलाफ़ हो पड़ा, तो जहाँ झगड़े की बिनाय हुई, उसी देश की अदालत में दावा पेश होता है। पुरानी अदालतवाला डिक्री पाता है। बल्कि यह आढ़त यहाँ तक पक्की समझी जाती है कि भोटिये लोग अपनी आढ़त को दूसरे के हाथ बेच डालते हैं। बाद को खरीदार उसके हाथ सौदागिरी करता है। हुणियों व भोटियों के बीच सौदागिरी होने के पूर्व खाना-पीना साथ होता है, कोई परहेज़ नहीं होता। किन्तु कुमय्याँ लोगों के साथ बातचीत में भोटिये अपने को बड़ा तथा हुणियों को अपने से कम समझते हैं। तिजारत बकरियों व झूपू जानवरों में होती है।

फ़सल सिर्फ़ एक खरीफ़ की होती है। रब्बी के समय ज़मीन बर्फ़ से ढकी रहती है। जाड़ों में बर्फ़ बहुत पड़ती है। नदियाँ जम जाती हैं, उनके बहाव का शब्द जो गर्मी व बरसात में मीलों तक सुनाई देता है, बिलकुल नहीं सुनाई देता। गर्मियों में बर्फ़ गलती है। बड़ी-बड़ी दरारें पड़ जाती हैं। चलनेवाले

उनमें गिर पड़ते हैं। इससे कमर में एक लकड़ी तिरछी करके बाँध लेते हैं, ताकि गिर पड़ें तो लकड़ी के सहारे अटक जावें। बर्फ़ की चकाचौंध से आँखों को बचाने के लिये चँवरगाय के बालों के चश्मे बनाते हैं, जिनको 'मुंगरा' कहते हैं। ऐसा बड़ा हिम का पर्वत होने तथा तमाम उत्तरीय भारत का पानी का ख़ज़ाना होने पर भी यहाँ एक पर्वत है, जिसमें पानी का नामोनिशान नहीं। इसे 'निरपनियाँ धुरा' कहते है। इसे पार करने में मारवाड़ की तरह पानी लेकर चलना पड़ता है। यहाँ की सड़कें बड़ी दुर्गम हैं। कहीं-कहीं पहाड़ों को खोद कर रास्ता बनाया गया है। ये लोग धन्य हैं, जो ऐसे कठिन मार्गों में जाकर तिजारत करते हैं।

इस परगने की नदियों के किनारे की मिट्टी को धोने से कहीं-कहीं सोना निकलता है।

इस परगने में मांसी, कटुकी, अतीस, जहर, गाँठवाला डोलू उर्फ़ खेत-चीनी, जंबू, गंद्रायणी बहुत होती हैं। कस्तूरी, मृग, चँवरगाय, भूपू, भेड़, बकरियाँ भी जंगली व पालतू दोनों पाये जाते हैं। डफिया, मुनाला, लुंगी वग़ैरह चिड़ियाँ देखने में बड़ी सुन्दर होती हैं।

यहाँ से कैलास व मानसरोवर का रास्ता है। लोग अक्सर इन्हीं भोटियों के साथ वहाँ जाते हैं। ये लोग यात्रियों की अच्छी ख़ातिर करते हैं। गरब्यांग इस दर्रे में अँगरेज़ी राज्य की आख़िरी बस्ती है।

(४) जीवार उर्फ़ जोहार

यह सुन्दर, जंगली व भयंकर दृश्यों से परिपूर्ण परगना भी हिमालय पर्वत से मिला हुआ है। उत्तर में इसके हिमालय की गगनचुंबी पर्वत-मालाएँ तिब्बत-राज्य से इसे जुदा करती हैं। पश्चिम में इसके गढ़वाल है। पूर्व में दार्मा तथा दक्षिण में दानपुर व सीरा हैं। इस परगने में तीन पट्टियाँ हैं—मल्ला व तल्ला जोहार तथा गोरीफाट। इन पट्टियों के आदमी अलग-अलग जाति के कहे जाते हैं। पहले दो पट्टियाँ शायद एक हों, पर चंद-राज्य में ये दोनों पट्टियाँ एक में शामिल की गई हैं। जोहारी लोग अपने देश को बहुत बड़ा होना मानते हैं। उनके यहाँ क़िस्सा है—

"आधा संसार, आधा मुन्स्यार।"

यानी आधे में तो परमात्मा ने मुन्स्यार या जोहार के ग्राम बसाये हैं और आधे में शेष जगत्। गोरी नदी के दाहिने तरफ़ बर्फ़ का ढका पहाड़ है। उसका नाम पुराणों में जीवार है, इसी से इस परगने का नाम जोहार पड़ा।

गरब्यांग
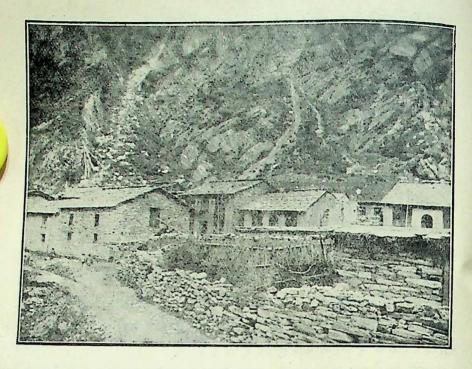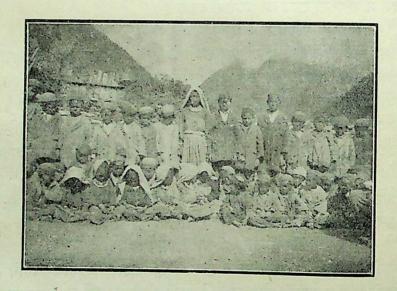
गरब्यांग-स्कूल के विद्यार्थी।

पहाड़ों के नाम—ऊँटाधुरा, लसरधुरा, कोलकांग धुरा, स्यांगब्रिल, रोगस, बाती का धुरा, खुनियाँधुरा, कालछ्य ू, सुकाधुरा, गुफधुरा, महनफैला, नंदादेवी, सलंग डांडा, बरजी कांग, लहाछू, संखधुरा, बनकटिया, तिरसूल, मूर्च डांडा, खरसा, हरदेवल, हांसालिंग। ये बड़े पहाड़ हैं। प्रायः इनमें हमेशा बर्फ़ जमी रहती है। हिन्दोस्तान की बहुत-सी बड़ी नदियों के उद्‌गम-स्थान यहीं पर हैं।

नदियाँ—हरएक पहाड़ के गल अर्थात् बर्फ़ के गलने की जगह से नदियाँ पैदा होती हैं। जिस गाँव से जो नदी बही, उसी के नाम से वह गंगा कही जाती है। जैसे पाछुगाँव के नीचे बहनेवाली नदी को पाछुगंगा कहते हैं। इन सब नदियों में प्रसिद्ध गोरी गंगा है, जिसमें जोहार की सब नदियाँ मिल जाती हैं। यह नदी अस्कोट के नीचे काली में मिल जाती है। पुराणों में इसका नाम गौरी है, और कहा गया है कि वह जीवार पर्वत को तोड़कर निकलती है। छोटी-छोटी नदियों के नाम ये हैं:—गुंखा, पाछुगंगा, बुर्फु गंगा, बिलजु गंगा, मर्तोली गंगा, बोगड्यार, लसपा गंगा, रालम नदी, रड़गाड़ीगाड़, जमीघाट, आदि।

जोहार का पुराना इतिहास

जोहार के बसने के बारे में जो किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं, वे बड़ी ही रोचक और आश्चर्यजनक हैं। इन दिनों ऐसी कहानियों में कोई विश्वास भी नहीं करता, किन्तु उनका ज़िक्र दोनों मि० अठकिन्सन तथा पं० रुद्रदत्त पंतजी ने किया है। इससे हम उन्हें अविकल रूप से उद्धृत करते हैं :—

हल्दुवा व पिंगलुवा का क़िस्सा

जोहार में यह किम्वदन्ती है कि वहाँ पहले दो गिरोह (धाड़े) के लोग रहते थे। एक गिरोह का नेता हल्दुवा और दूसरे का पिंगलुवा था। इन दोनों नेताओं के व इनकी सन्तान के तमाम बदन में ही नहीं, बल्कि जीभ में भी बाल थे !!

कहते हैं, पट्टी मल्ला जोहार इन दोनों नेताओं के बीच आधी-आधी बटी हुई थी। मौजे मापा से ऊपर हल्दुवा के और मापा से नीचे लसपा तक पिंगलुवा के हिस्से में था। उस वक़्त जोहार का दर्रा (घाटा) खुला हुआ न था। इस कारण हुणियों (लामाओं) तथा हल्दुवा व पिंगलुवा के आपस में सौदागिरी कुछ न होती थी, बल्कि आमदरफ़्त भी जारी न थी। चौलाई (चूआ) व फाफर (उगल) की खेती से अपनी गुज़र करते थे। उस समय वहाँ एक नभचर (पक्षी) गोरी नदी के उद्‌गम-स्थान के पहाड़ से पैदा

हुआ। उसके पर इतने बड़े थे कि नदी के ऊपर उड़ते-उड़ते लसपा गाँव के नीचे मापांग नामक जगह में, जहाँ घाटी तंग है, वे अटक जाते थे। अतः वह पक्षी वहाँ से ऊपर को लौट जाता था। वह मनुष्यों को खाया करता था। उसने हल्दुवा व पिंगलुवा के बाल-बच्चे खाने शुरू कर दिये, और अन्त में दोनों नेताओं को भी खा गया। उन दिनों जोहार के उस पार हुणदेश की लपथिल नामक गुफा में एक शकिया लामा रहता था। हुणदेश में लामा की माने सन्त या साधु-महात्मा के हैं। अस्तु। वह लामा सुबह अपनी गुफा से उड़कर लपथिल में आता, वहाँ दिन-भर परमात्मा का भजन कर शाम को अपनी गुफा को लौट जाता। उस लामा की टहल में एक मनुष्य रहता था। उस पर प्रसन्न होकर एक दिन लामा ने कहा, "तू दक्षिण में जोहार को जा, वहाँ एक पक्षी ने सब आदमियों को खा लिया है। तू उसे मारकर मुल्क को फिर आबाद कर ले, और मैं तुझे तीर-कमान तथा एक पथ-दर्शक देता हूँ। पथ-दर्शक चाहे कोई रूप रक्खे, किन्तु तुझे न घबराना, न साथ छोड़ना चाहिये।" अतएव लामा ने एक शिष्य उस सेवक के साथ किया। आगे-आगे वह शिष्य, पीछे वह मनुष्य तीर-कमान लेकर चलता था। थोड़ी दूर में शिष्य कुत्ता बन गया। उस स्थान का नाम खिंगरु रक्खा गया। कुछ दूर जब वह आदमी उस कुत्ते के साथ गया, तो वह दोलथांग (बारहसिंहा याने जड़या) बन गया। अतः उस ठौर का नाम दोलथांग पड़ गया, बारसिंहे के पीछे कुछ दूर चलने से वह टोपीढु (भालू) हो गया, जिससे उस जगह का नाम टोपीढुंग पड़ गया। भालू कुछ दूर चलकर ऊँट बन गया, जिससे उस जगह का नाम ऊँट्टा या ऊँटाधुरा हो गया। बाद को चलते-चलते वह दुङ (बाघ) बन गया। जिससे उस जगह का नाम दुङ उड्यार कहते हैं। पश्चात् वह बाघ (दुङ) हल्दुवा व पिंगलुवा के देश में आकर समगाऊ यानी ख़रगोश बन गया और वहीं पर वह अन्तर्धान हो गया। वह जगह अब तक समगाऊ कहलाती है। वहाँ उस मनुष्य ने मकान वग़ैरह सब देखे, किन्तु कोई आदमी न पाया। सिर्फ़ हड्डियों के ढेर थे। तब उसे उस पक्षी की याद आई। डर के कारण वह एक मकान में घुसने लगा, तो वहाँ एक बुढ़िया नज़र आई जिसके बदन में बाल थे। उससे पछने पर बुढ़िया ने सारा हाल हल्दुवा व पिंगलुवा का बताया। कहा — "आज मेरी बारी है। कल के लिये तू शिकार होगा। तू यहाँ क्यों आया, अकारण जान देने को।" तब उस आदमी ने शकिया लामा का सारा वृत्तान्त कह सुनाया, और तीर-कमान दिखाकर कहा कि वह उस पक्षी को मारेगा। जोहार के बाबत पूछने पर बुढ़िया ने कहा—"यहाँ चूआ, फाफर, लाई आदि

चीज़ें पैदा होती हैं। बर्तन, मकान व अन्य सामग्री सब कुछ है, किंतु नमक नहीं है।" इतने में वह पक्षी बड़े ज़ोर-शोर से आया, और बुढ़िया को उठा ले गया। चोंच से ज्यों ही उसने बुढ़िया की छाती तोड़ी उस मनुष्य ने तीर से उस पक्षी को मार डाला। फिर एक जगह आग जलाकर यह कहा कि यदि यह आग मेरे आने तक जलती रही, तो यह देश मुझे फलीभूत होगा, अन्यथा नहीं। आप नमक के बाबत लामा से पूछ-ताछ करने को गया। लामा ने कहा कि—"नमक की खानें वहाँ बहुत हैं, पर दूर हैं। मैं तेरे वास्ते नमक इसी लपथिल में पैदा कर देता हूँ।" बाद को लामा ने थोड़ा-सा नमक मँगाकर वहाँ बोया। तब से कहते हैं कि वहाँ नमक की तरह सोरा बराबर दिखाई देता है, जिसे जानवर चाटते हैं। उस दिन से कहते हैं कि लामा उड़कर गुफा से बाहर न आया। क्योंकि करामात बड़ी तपस्या से प्राप्त होती है। विना ईश्वरीय आज्ञा के करामात दिखाना मना है। उक्त काररवाई करने से लामा की शक्ति क्षीण हो गई।

शकिया लामा के गुफा में चले जाने के बाद वह आदमी ऊँटाधुरा की राह उसी जगह को लौटा, जहाँ उसने पक्षी को मारकर आग जलाई थी। आग जल रही थी। उसने इधर-उधर से लोगों को बुलाकर वहाँ बसाया और शकिया लामा की पूजा चलाई, जो अब तक जारी है। तभी से इन लोगों को शौका कहते हैं। इन्हीं की सन्तान में एक वीर सुनपति शौका पैदा हुआ। उसने मंदाकिनी के निकटवर्ती प्रांत को बसाया और तिजारती रास्ते (घाटे) खुलवाए। अब इनकी सन्तान में कोई नहीं है, ऐसा कहते हैं। ये बातें कत्यूरी राजाओं के भी पूर्व की हैं।

जब सुनपति की सन्तान का अन्त हो गया, तब फिर जोहार वीरान पड़ा और तिब्बती रास्ते (घाटे) बंद हो गए। उस समय मिलम्वालों का मूल-पुरुष हुणदेश की तरफ़ से जोहार में आया, जिसका वर्णन मिलम्वाल इस प्रकार करते हैं कि पश्चिम की ओर से कोई राजपूत आया और वह गढ़वाल के राजा के यहाँ नौकर हो गया। वह रावत क़ौम का था। उसे बधान के परगने में जोलागाँव जागीर में मिला। वहाँ उसकी सन्तान बढ़ी। उनमें से एक शाख जौला गाँव से उठकर कुछ वर्ष तक नीती में रही। हुणदेश में उन दिनों एक सूर्यवंशी राजा गड़तोक में राज्य करते थे। उनके यहाँ एक रावत नौकर हो गया। एक दिन वह रावत शिकार खेलते हुए एक जानवर के पीछे दौड़ा, और ऊँटाधुरा की तरफ़ से होकर गोरी व गुंखा नदी के संगम के पास वह जानवर अदृश्य हो

गया। वह रावत हारकर उसी जगह बैठ गया। तब से उस स्थान का नाम मीडूम हो गया (मी = आदमी + डूम = थकने या पैर ढीले पड़ने के हैं।), जो अब मीलम कहलाता है। वहाँ के आदमी मिलम्वाल कहलाते हैं।

रावत ने लौटकर गढ़तोक में राजा से सब हाल कहा। राजा ने कहा कि रावत जाकर उस प्रदेश को आबाद करे, और रास्ता खुलवावे, तो उनको व्यापारियों से "छोंकल" (जकात) मिला करेगा, और शराब पीने को, भोजन को तथा डाक व सवारी को सब सामान रियासत से मिलेगा। रावत महाशय ने इसी तरह सारा कार्य किया। आप मिलम में बसे, अन्य लोगों को

मिलम-ग्राम

अन्य गाँवों में बसाया, जो बुर्फाल, जंगपांगी, बिज्वाल, मपाल वग़ैरह के नाम से पुकारे जाते हैं। इन्होंने तिजारती घाटे (रास्ते) भी खुलवाये, जिससे इनको अब तक तिब्बत में कुछ दस्तूरी मिलती है। हुणदेश की ओर से जो हाकिम या हुणिया आता है, उसे भी भोजन व मदिरा वग़ैरह जोहारी देते हैं और कुछ "रक़म" मालगुज़ारी भी हुणिया राजाओं को देते हैं। जोहारियों से तिब्बत-

सिलम-स्कूल के विद्यार्थी
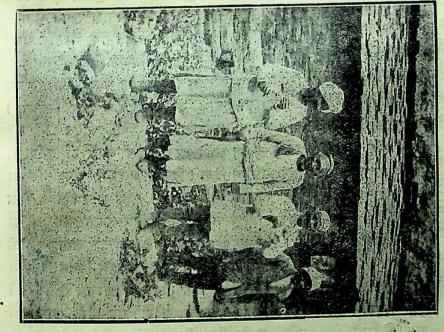
सिलम-निवासी

दरबार में कुछ मुचलके (?) भी लिये जाते हैं। तिब्बती राजा के प्रतिनिधि मिलम में आने पर तीन सवाल पूछते हैं—

(१) जोहार में कोई बीमारी है या नहीं ?

(२) किसी दुश्मन की ओर से लड़ाई है या नहीं ?

(३) सुकाल है या अकाल ?

इन प्रश्नों का ठीक-ठीक जवाब देना चाहिये। यदि जोहरी कोई दग़ाबाज़ी उत्तर देने में करें, तो दंडित होते हैं। इस शर्तनामे को 'गमगिया' कहते हैं। 'गमगिया' का दस्तूर इस प्रकार है कि एक पत्थर के दो टुकड़े करते हैं। तोलने के बाद पत्थर के प्रत्येक टुकड़े को काग़ज़ में लपेटकर उसमें दस्तख़त व मोहर कर देते हैं। एक टुकड़ा जोहारियों के, दूसरा तिब्बतियों (हुणियों) के पास रहता है। शर्तनामे के खिलाफ़ काररवाई करने पर शर्तनामा तोड़नेवाले को पत्थर के बराबर सोना तोलकर जुर्माने में दाखिल करना पड़ता है।

ये बातें १८३५ की हैं। सन् १८८३ में श्रीनैनसिंह पंडित सी० आई० ई० ने जो आत्मजीवनी लिखी है, उससे यह बातें हम प्रकाशित करते हैं। आत्मजीवनी हस्त-लिखित है, उसमें ये बातें आई हैं:—

"मिलम्वाल क़ौम की उत्पत्ति धारानगर के क्षत्रिय पँवार-वंशियों से है। जब पँवार-वंश की वृद्धि हुई, तो कुछ लोग हरिद्वार के पास बुटौलगढ़ में गये। बुटौले रावत कहलाये, उनमें से कुछ रावत गढ़वाल के बधाण परगने के मौज़े ज्वाला व सोलन में आ बसे। इनमें से श्रीधामसिंह रावत तथा श्रीहीरू रावत श्रीबदरीनाथ की यात्रा को आये। श्रीहीरू रावत तो पैनखंड ज़िला गढ़वाल में बस गये। श्रीधामसिंह रावत गढ़तोक के राजा बोतछ्योगल के यहाँ सेनापति बन गये। उन्होंने लछाखियों को हराकर इलाक़े ङरी कुरसम से बाहर निकाला। जिस महान् सेवा के लिये राजा बोतछ्योगल ने श्रीधामसिंह रावत को (१) थोपतांग, (२) तौल (३) छोकल आदि कर लेने का हुक्म दोंगपू, दावा, खिंगलुंग व डोकठोल वग़ैरह मौज़ों से दिया। तिब्बती भाषा में थोपतांग खाना तथा बरदाइश को कहते हैं। तौल के माने सरकारी काम को बे किराया घोड़ा देने के हैं। छौंकल उस दस्तूर को कहते हैं, जो किसी राजभक्त कर्मचारी को व्यापार के कर में से मिले। इन सबसे श्रीधामसिंह को अच्छी आमदनी होती थी। बाद को वह राजा की आज्ञा से हिमालय के इस ओर मिलम गाँव में आकर रहने लगे। उस समय जोहार में सिर्फ़ तीन गाँव आबाद थे—(१) बुर्फू में बुर्फाल जंगपाँगी (२) ल्वां में ल्वांल, (३) रालम में रलम्वाल। इतनी तिजारत, भेड़-बकरियाँ आदि भी न थीं। अस्कोट आकर धान का बाल

लेकर औरतों को दिखाते थे और कहते थे कि वह देश (माल) हो आये। लोग सीधे-सादे, भोले-भाले थे। ब्याह छोटे-छोटे लड़के-लड़कियों का नहीं करते थे। युवा होने पर आपस में गीत गाते हुए जब वर-कन्या दोनों हिल-मिल जाते, तब विवाह करते थे।

बूर्फू गाँव के चरखमियाँ जंगपांगी अपने तईं नागवंशी बतलाते हैं। जंगपांगी बूर्फालों का बुजुर्ग गलीया काला नाम का था। उसकी स्त्री अपने दो लड़कों के साथ बूर्फ नदी के सिरहाने ग्वाड़ में रहती थी। संयोग से एक नाग वहाँ आया। कहते हैं कि उसकी दृष्टि के प्रताप से एक पुत्र उस स्त्री के उत्पन्न हुआ।

विक्रम के समय में तातार देश के शक लोगों ने इस देश पर भारी चढ़ाई की। सम्राट् विक्रमादित्य ने उनको हराया, इससे विक्रम शकारि कहलाये। ये शक लोग नागों की पूजा करते थे। नाग ही उनका राज व धर्म-चिह्न था। संभव है, इन्हीं नागवंशी शकों में से किसी ने गलीया काला की स्त्री से नियोग या विवाह किया हो। श्रीधामसिंह के जोहार आने से पहले जोहार में आबादी बहुत कम थी। मिलम के बाद बिलजू, मापा, मरतोली गाँव आबाद हुए।

आरंभ में तिजारत भी बहुत कम थी। सिर्फ़ थोड़ी सी भेड़-बकरियों पर अनाज लादकर हुणदेश के खिंगलुंग, दोंगपू वग़ैरह गाँवों में बेच आते थे। उसके बदले में ऊन व सोना लाते थे। तिजारत में से $\frac{१}{१०}$ हिस्सा महसूल तिब्बत के हाकिम को देना पड़ता था। श्रीधामसिंह रावत ने सूर्य-वंशी राजा बोतछयोगल से कहकर यह कर माफ़ कराया। जोहारवाले यह टैक्स नहीं देते। नीती, माणा, दार्मावालों को अभी तक देना पड़ता है।

कहते हैं, यह राजा बोतछयोगल सूर्यवंशी राजा था। तिब्बती भाषा में बुधछोगल बुद्ध-मत के राजा को कहते हैं। उन दिनों तिब्बत चीन के अधीन न था। वहाँ छोटे-छोटे राज्य थे। यह राजा हुणदेश का नहीं, बल्कि भारतवर्ष का था। अतः अपने जीवन-काल ही में यह राजा अपना डरी कुरसुम का राज्य तिब्बत के लामा को सौंपकर अपने आप समाधिस्थ हो गया। श्रीधामसिंह तमाम जोहार के सिरगिरोह बन गए।

संवत् १५९५ में राजा बाजबहादुरचन्द जोहार के रास्ते तिब्बत में ताकला-खर, मानसरोवर, कैलास आदि तक गये और व्यांस के रास्ते अपनी राजधानी अल्मोड़ा को लौटे। साथ में पथदर्शक श्रीभादूबूढ़ा तथा श्रीलोरू बिलज्वाल थे। इनको कुछ गाँव (पाछू नाका, बुई पातूँ, धापा और तेली मवाज़ात) जागीर में दिये। श्रीलोरू बिलज्वाल को कोश्यारी बाड़ा मिला।

सन् १७३५ में राजा दीपचंद ने मौज़ा गोलमा, कोटालगाँव की जागीरें श्रीधामाबूढ़ा को दीं। सन् १७४१ में राजा मोहनचंद ने कुईंठी, शैमली खेती, तल्ला भैंसकोट और गिरगाँव की जागीरें भी श्रीधामाबूढ़ा को दीं।

श्रीजसपालबूढ़ा के समय गोरखों ने चंदों का राज्य छीन लिया। जसपाल बराबर चंदों को बुलाते रहे। दस वर्ष तक परगने को नैपालियों को न दिया। बड़ी लड़ाई हुई। बहुत से जोहारी व गुर्खा मारे गये। तब नैपाल की तरफ़ से श्रीहर्षदेव जोशीजी जोहार पर चढ़ आये। सिपाहियों को नीचे छिपाकर, आप कुछ बहाना कर जोहार में आये। श्रीजसपाल बूढ़ा ने श्रीहर्षदेव जोशी को बेड़ी पहनाकर क़ैद में रक्खा, फिर चंद-राजा से जान से न मारने का वचन लेकर छोड़ दिया।

इस बीच नैपाल का राज्य तमाम कुमाऊँ ही क्या, कांगड़े (व शिमले ?) तक हो गया। नैपाल-दरबार से बूढ़ाचारी की पगड़ी जसपाल के लड़के श्रीविजयसिंह के नाम आई, पर सरकारी कर बढ़ता-बढ़ता १६०००) तक हो गया। रय्यत तंग हो गई। श्रीविजयसिंह सन् १८१० में नैपाल गये। मालगुज़ारी १७०००) से ७८००) करवा लाये। सन् १८१२ के अगस्त महीने में श्रीमूर क्रैफ़्ट साहब तिब्बत के मुक़ाम दावा में पकड़े गये। देबूबूढ़ा ने १० हज़ार की ज़मानत देकर उन्हें छुड़ाया।

नैपाल के महाराजा के सूबेदार बड़े बमशाह चौंतरिया के १७९८ के ताम्रपत्र के अनुसार १२ गाँव की जागीरें श्रीधामाबूढ़ा वे० श्रीजसपाल बूढ़ा के नाम थीं। सन् १८१५ में कुमाऊँ अँगरेज़ों के हाथ आया। पहले कमिश्नर कर्नल गार्डनर ने १२ गाँव जागीर में छोड़ बाक़ी २८ गाँवों की ५००१) मालगुजारी जोहार की ठहराई। सन् १८२१ में ट्रेल साहब ने सब हक़ जागीरों के काटकर केवल एक गाँव पाछू मुआफ़ी में रक्खा। ..... ।"

इस प्रान्त की चोटियाँ सदा बर्फ़ से ढकी रहती हैं। जाड़ों में तो सर्वत्र में बर्फ़ गिर जाती है। तमाम भोटिये नीचे उतर जाते हैं। हिमालय पर्वत जल का ख़ज़ाना है। उत्तरी भारत की सब बड़ी नदियाँ यहीं के गलों से निकलती हैं। यहाँ ऐसे भी स्थान हैं, जहाँ चलने में जोर से नहीं बोलते, नक्कारे या बंदूक़ की आवाज़ नहीं होने देते। कारण कि ज़रा भी कोई धमाके की आवाज़ हुई, तो बर्फ़ खिसक पड़ती है। और वह अपने साथ बड़े-बड़े पर्वतों के टुकड़ों को तोड़कर ले आती है, कहीं-कहीं पत्थर व मिट्टी बराबर गिरते रहते हैं। राह चलते आदमी व जानवर दबकर मर जाते हैं। अतः वहाँ पर बड़ी सावधानी से

चलना पड़ता है। यहाँ पर सवारी पहाड़ी घोड़ों व खच्चरों पर करते हैं। झुपू व चँवरगायों पर भी सवारी करते व सामान लादते हैं।

ऊन, ग़ल्ला, नमक कपड़ा वग़ैरह भेड़-बकरियों पर भी लादते हैं। भेड़-बकरियों के झुंड के झुंड पर्वतों में जाते हुए बड़े सुन्दर दिखाई देते हैं। इन बकरियों को जोहारी लोग मल्ला दानपुर, गढ़वाल, चंबा, बेशहर आदि जगहों से ले आते हैं।

दवाइयाँ—कटुकी, मासी, गठिया, ज़हर, अतीस, डोलू वग़ैरह यहाँ मिलती हैं।

जानवर—जानवरों में कस्तूरी-मृग, बरड़, बरजिया, भालू, थड़ुवाबाग़ तथा हाजे यानी जंगली कुत्ते आदि होते हैं।

डफिया, मुनाला, लुंगी वग़ैरह बड़े ही सुन्दर पक्षी यहाँ पाये जाते हैं।

खानें—रालमधुरा में एक खान हरताल की है। मिलमगाँव के सामने दुद्दापानी में ताँबे की खान है। ऊँटाधुरा से आनेवाली नदी में, गोरी गंगा के किनारे तथा मिलमगाँव की सलामी में मिट्टी धोने से सोना मिलता है। पर सोने की खान देखने में कहीं नहीं आई है।

देवता—हरएक गाँव में नंदादेवी स्थापित हैं। इनके अलावा साई, रागा ग्राम-देवता हैं। इन दोनों में से साई देवता को सबसे बड़ा समझते हैं। एक समय मिलम के ऊपर दुश्मन चढ़ आया। तब साई देवता ने, कहते हैं, बड़ी ऊँची आवाज़ से पुकारा—"मिलम्वालो! भागो, दुश्मन चढ़ आया।" तब सब लोग माल-असबाब छिपाकर भाग गये, और दुश्मन कुछ भी न कर सका। तब से इस देवता को बड़ा समझकर औरों से इसके यहाँ एक बकरा ज़्यादा चढ़ाते हैं।

---

३८. गंगोली

सरहद—पूर्व, पश्चिम व दक्षिण में इसके रामगंगा व सरयू हैं। उत्तर की ओर दानपुर का परगना है। यहाँ को तथा सोर परगने को जाने में बड़ी कड़ी चढ़ाई का सामना करना पड़ता है। यहाँ पर १० मील की चढ़ाई तथा उतार है। यहाँ की चढ़ाई जो सरयू से आरंभ होती है, उसे देख एक परदेशी ने पूछा था कि अब कितनी दूर गंगोली-हाट है, तो वहाँ पर किसी मनुष्य ने कहा—

"गोल गाँव की सोल धार!
कहाँ हाट कहाँ बाज़ार !!"

वह परदेशी घबराकर लौट गया। एक अंग्रेज़ी लेखक ने लिखा है कि सोर-गंगोली की चढ़ाई अंग्रेज़ी अक्षर W की तरह है।

नदियाँ—सरयू, रामगंगा, नरगूल व पातालगंगा हैं। इसीलिये इस परगने का नाम संस्कृत में गंगावली है अर्थात् गंगाओं की भूमि या दो गंगाओं के बीच की भूमि।

पर्वत—दियारी, भेरंग का डांडा, लुवाथल का धुरा, झलतोला, धौलीनाग, कालीनाग, पिंगलनाग, बेनीनाग आदि।

देवी-देवता—श्रीकालिका या महाकाली का मंदिर गंगोलीहाट के पूर्व तरफ़ देवदारु बनी के बीच बना है। बड़ा ही रमणीक स्थान है। कहते हैं कि यह देवी कभी-कभी रात के समय ऊँची आवाज़ से 'कीर्ति बागीश्वर' महादेव को पुकारती थी। उस वाणी को जो कोई सुनता था, वह उसी वक़् मर जाता था। इस कारण आस-पास के लोग तंग होकर दूर जा बसे थे। जब से श्रीशंकराचार्य ने आकर इस देवता को दूसरे पत्थर से ढक दिया, तब से देवीजी का पुकारना बंद हो गया है, और लोग भी आस-पास रहने लगे हैं। यहाँ वैसे हर अष्टमी को लोग आते हैं, पर चैत्राष्टमी व कुँआर की अष्टमी को विशेष मेला होता है।

महिषासुर-मर्दिनी देवी की पीठ यहाँ है। कहते हैं कि देवीजी के साथ महिषासुर ने युद्ध इस गंगोली में किया था। जिसमें महिषासुर, चंडमुंड, रक्तवीर्य आदि बहुत से दैत्य मारे गये थे।

काली देवीजी के मंदिर की जड़ में पातालगंगा बताई जाती हैं। एक पहाड़ पर चढ़कर फिर गुफा के भीतर मशाल (छिलुके) लेकर जाना पड़ता है। वहाँ हवा तेज़ चलती है और नदी भी ज़ोर से बहती है, बल्कि हवा से मशाल बुझ जाती है। यदि इसमें लाल या सफ़ेद मिट्टी घोली जावे, तो २ मील में वह बाहर निकलकर प्रकट हो जाती है। भीतर-ही-भीतर गुफा में नदी बहती है। सरयू व रामगंगा के संगम में रामेश्वर महादेव का मंदिर है। कहते हैं, इस मंदिर की स्थापना श्रीरामचन्द्रजी ने की थी! यहाँ भी मेला होता है।

गंगोलीहाट से उत्तर की ओर पाताल-भुवनेश्वर हैं। एक गुफा के भीतर दूर तक जाना पड़ता है। लोग इसे ताँबाखान भी कहते हैं। पहले रास्ता तंग, बाद को अच्छा है। भीतर पानी भी है। प्रकाश लेकर जाना होता है। यहाँ बहुत सी उप-गुफाएँ हैं। एक जगह शिव-पार्वतीजी जुआ खेल रहे हैं।

गरुड़ का मुँह टेढ़ा है, क्योंकि जब उसने अमृत को जूठा करना चाहा, तो भगवान् ने चक्र से मारा। कहते हैं, "एक रास्ते से एक हिरन (कांकड़) के पीछे एक कुत्ता गया था। बाद को वे काशी पहुँचे।" इसका वर्णन मानसखंड में भी आया है।

कोटेश्वर में भी गुफा के भीतर महादेव हैं। पुंगेश्वर व छीड़ेश्वर दो अन्य शिवमंदिर हैं, जो कोटेश्वर के निकट हैं। कोटेश्वर में शिवरात्रि को तथा कार्त्तिक के महीने में मेला होता है। सानीउड्यार में कहा जाता है कि शांडिल्य-ऋषि ने तपस्या की थी। इस समय यहाँ बगीचा है। जोहारवाले मिलम के पास गोरी नदी के गल के पास भी शांडिल्य ऋषि का आश्रम होना कहते हैं। सानीउड्यार से क़रीब दो मील की दूरी पर भद्रकाली देवी का मंदिर है। यहाँ चैत्राष्टमी को मेला लगता है।

पुष्करिया पोखरी—रामगंगा के पश्चिम तरफ़ पहाड़ पर एक पोखर या तालाब था। तालाब बहुत बड़ा था, जिसके कारण उसके आसपास के आबाद गाँव का नाम पोखरी हो गया। कहते है, एक समय कुमाऊँ में कोई जाट राजा भी रहता था। उसने उस तालाब के पूर्व तरफ़ एक नाली पहाड़ में काटकर तमाम पानी तालाब का बहा दिया। वहाँ पर अब सुन्दर खेती होती है। यह नाली अब तक होनी कही जाती है। इस पोखरी के ऊपर टिबरी में एक गढ़ी है। उसके चारों तरफ़ पत्थर में खाई खुदी है। वह गढ़ी भी कहते हैं कि जाट राजा ने बनाई थी। उसी के निकट चामुंडादेवी का मंदिर है। इन दिनों इस गढ़ी में घास जमी है और जंगली जन्तु रहते हैं। एक पहाड़ दिआरी नाम का बहुत ऊँचा है। वहाँ हिम के निकट के वृक्ष पांगर वग़ैरह होते हैं। कस्तूरी-मृग भी दिखाई देता है। इसी पहाड़ के नीचे सरयू व रामगंगा के किनारे साल के वृक्ष भी हैं। इस पहाड़ के उत्तर तरफ़ को एक बहुत बड़ी ताँबे की खान है, जिसे रै यानी राजखान कहते हैं। दूसरी ताँबे की खान पश्चिम की ओर है। दो ताँबाखान अठिगाँव पट्टी में हैं। लेकिन इनमें तीन खानें बड़ी हैं, एक छोटी है। लोग दूर तक नहीं खोदते। ऊपर से धातु को निकाल लेते हैं, पत्थर दिखाई दिया, तो फिर नहीं खोदते। सन् १८३५ में ५०) में इन चार खानों की बोली बोलनेवाला कोई न मिला।

नागों का वर्णन—अठिगाँव, बड़ाऊँ व पुंगराऊँ में नागों के बहुत मंदिर हैं—कालीनाग, बेनीनाग, पिंगलनाग, धौलनाग, फेनीनाग, खरहरीनाग, अठगुलीनाग। इन नागों की पूजा होती है। जब कालीय नाग को जमुनाजी में श्रीकृष्णजी ने बहुत मथा, और वहाँ से निकल जाने को कहा, तो उसने

कहा कि गरुड़ से उसकी दुश्मनी है। तब श्रीकृष्ण भगवान् ने उसके सिर में

बेनीनाग
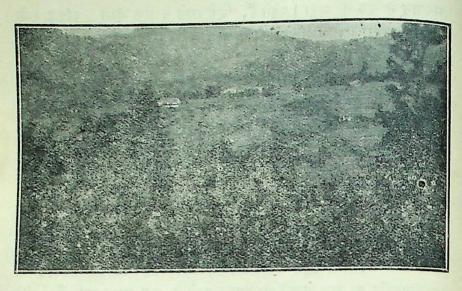
कुछ चिह्न बना दिया, और कालीनाग को कहा कि वह बर्फ़ानी पहाड़ों को चला जावे। कालीनाग महाशय कुमाऊँ में आ गए, और उनके मुसाहिब पिंगल-

बेनीनाग
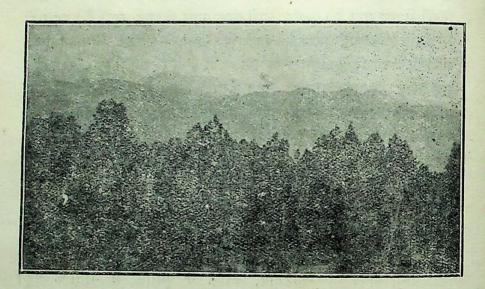
नाग, धौलनाग भी यहीं आ बसे और यहाँ पूजे जाने लगे। (पर भागवत

में तो कालीनाग के रमणक द्वीप में जाने का वर्णन है। न-जाने यह रमणक द्वीप कौन था।)

गंगोलीहाट में एक पुराना नौला (बाँवरी) है, जिसको जाह्नवी का नौला कहते हैं। इसको रैका राजा ने बनवाया था। इसका जल उत्तम है।

पैदावार—यहाँ की भूमि खूब उपजाऊ है। यहाँ का जमोल चावल बहुत मीठा होता है। घी, शहद भी अच्छा होता है। केले, नारंगी प्रसिद्ध हैं। यहाँ मधु-मक्खियाँ बहुत पाली जाती हैं।

कविवर गुमानीजी ने अपने स्वदेश गंगावली की गुण-गरिमा गाकर उसको अमर बना दिया है। कूर्मांचली-भाषा में ऐसी रसीली कविता करनेवाले कवि कूर्माचल में कम देखे गये हैं—

"केला, निम्बू अखोड़ दाड़िम रिखू नारिंग आदो दही।
खासो भात जमालिको कलकलो भूना गडेरी गवा।
च्यूड़ा सद्य उत्योल दूध बाकलो घ्यू गाय को दाणादार।
खांनी सुन्दर मौणियाँ धबड़वा गंगावली रौणियाँ॥"

❀ ❀ ❀

"बने बने काफल किल्मड़ोछ, बाड़ा मणी दाड़िम काकड़ोछ।
गोठन में गोरू लैण बाखड़ोछ, स्थातिन में है उत्तम उप्रड़ोछ।"

प्राचीन इतिहास—जमणकोट नामक एक क़िला है, जो वीरान है। यहाँ पर कहते हैं कि थोड़े दिनों को एक पल्याल-जाति का राजा हुआ था, उसकी संतान अब पाली गाँव के पल्याल कहाते हैं।

कत्यूरी-राज्य के समय तमाम गंगोली का एक ही राजा था। उसके नगर व क़िले का नाम मणकोट था। राजा भी मणकोटी कहलाता था। मणकोट का अब थोड़ा-सा चिह्न ही मात्र है। कुछ टूटे मकान, सीढ़ियाँ तथा देवताओं के टूटे मंदिर हैं। ८ पुश्त तक इस वंश के राजा ने राज्य किया। ये भी चंद्रवंशी थे। बाद को चंद-राजाओं ने इन्हें हराकर इनका राज्य कुमाऊँ में शामिल किया। ये लोग नैपाल के पिऊठणा नामक स्थान को चले गये। अब भी इनकी सन्तान वहाँ पर है। मणकोट के पश्चिम तरफ़ गंगोलीहाट नामक बाज़ार था, जो अब भी गंगालीहाट कहा जाता है। यहाँ अब भी छोटा-सा बाज़ार है। डाकघर व डाक-बँगला है। मिडिल स्कूल भी है।

यहाँ बाघ बहुत होते थे। क़िस्सा भी है, "खत्याड़ी साग गंगोली बाघ।" पहले यहाँ के लोग इतने सीधे थे कि सरकारी चपरासी से ज़्यादा डरते थे, बनिस्बत बाघ के, पर अब यहाँ के ज़्यादातर लोग विद्वान्, धनवान् व गुणवान् हैं।

देश-देशान्तरों में उच्च पदों पर हैं। बाबा लक्ष्मणजंगम नामक साधु यहाँ रहते हैं, उन्होंने एक संस्कृत-पाठशाला भी खोली है।

गंगोली के मुख्य स्थान बेनीनाग, (चित्र पृष्ठ ८० पर देखें) गंगोलीहाट हैं। छोटे-छोटे स्थान चौकोड़ी, धर्मघर, झलतोला, कांडा व सानीउड्यार हैं। कांडा में पुराना हिन्दी मिडिल स्कूल है। अब बेनीनाग व गंगोली में भी मिडिल स्कूल हैं। यहाँ डाकबँगले व दूकानें भी हैं।

३९. चौगर्खा

यह परगना गंगोली, काली कुमाऊँ, बारामंडल तथा कत्यूर के बीच में है। इसकी पट्टियाँ ये हैं—रीठागाड़, लखनपुर, दारुण, रंगोड़, सालम, खरही।

पहाड़—ऊँचे पहाड़ जागीश्वर, बिनसर, मोरनौला है।

नदियाँ – पूर्व तरफ़ सरयू तथा सालम में पनार है। पनार की मिट्टी धोने से भी सोना निकलता है। सुआल नदी भी इसकी सीमा को चाटती हुई बहती है।
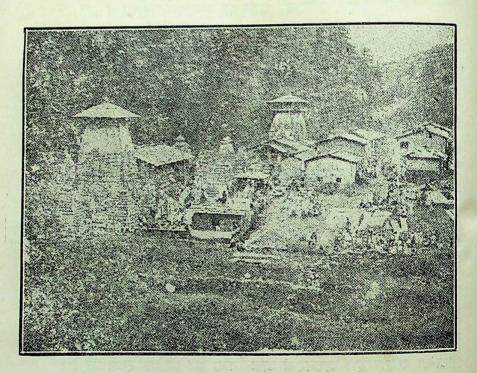
जागीश्वर

देवता—जागीश्वर में अनेक देवता हैं। इसीलिये क़िस्सा है—

"देवता देखण जागेश्वर, गंगा नाणी बागेश्वर।"

जागीश्वर शिव की तपस्या का स्थान है। दक्षप्रजापति के यज्ञ को विध्वंस कर सती की राख लपेटकर यहाँ पर झांकरसैम में शिव ने तपस्या की थी। यह पौराणिक कथा है। जागीश्वर में दो मंदिर हैं। एक वृद्ध जागीश्वर का मंदिर ऊपर चोटी में हैं। दूसरे तरुण जागीश्वर देवदारु की घनी बस्ती के भीतर हैं। यह विष्णु भगवान् के स्थापित किए हुए १२ ज्योतिर्लिंगों में से एक हैं। इस मंदिर में सोने-चाँदी का ज़ेवर, बर्तन वग़ैरह बहुत थे। चंद-राजाओं के समय एक बार ६ लाख का बीजक बना था। इस मंदिर में एक पीतल की मूर्ति है, यह पौन राजा की बताई जाती है। इस राजा को बहुत पुराना राजा बताते हैं, जिसने कुमाऊँ व गढ़वाल में राज्य किया था। इसी राजा ने, कहते हैं, गढ़वाल में गोपेश्वर का मंदिर भी बनवाया था। राजा दीपचंद की मूर्ति भी यहाँ बताई जाती है। पौन राजा कत्यूरी राजाओं में थे? यहाँ पर मृत्युञ्जय महादेव के मंदिर का कहते हैं कि स्वामी शंकराचार्य ने ढक दिया था।

पुष्टिदेवी के मंदिर में भी लाखों का ज़ेवर था। राजाओं ने इसे खर्च किया बदले में गाँव दिये गये।

दंडीश्वर शिव का मंदिर बहुत पुराना है। अब टूटी हालत में है। मंदिर के ऊपर देवदारु-बनी में झांकरसैम हैं। यहीं शिवजी ने तपस्या की थी। यहाँ भी मेला होता है। अन्य मंदिरों का वर्णन अन्यत्र भी आवेगा।

अक्सर चंद-राजा मरने पर इसी तीर्थ में जलाये जाते थे, और उनके साथ उनकी रानियाँ भी १-२ नहीं, कभी-कभी ८-१० तक सती होती थीं। यहाँ दो बार चतुर्दशी को मेला भी होता है। यहाँ जो शिव का मंदिर है, वह कहते हैं कि कत्यूरी राजा शालिवाहनदेव का बनवाया हुआ है।

खानें—लोहे की खानें बहुत हैं। सालम में मौज़ा कुरी पाली में। रंगोड़ में मौज़े माडम, चाहला, पोखरी, निरतोली, बना और सेला इजर में। लखनपुर में मौज़े भरे, साली, चामी, मञ्या, तोली और लोबगड़ में। दारुणपट्टी भीतर मौज़ा चलथी, खैरागाड़, माडम, धुरकुंडा, गोरड़ा, काफ़ली, मगरौ और पोखरी में। खरही में मौजे लोब तथा मिरौली व पालड़ी में। कहीं-कहीं चुम्बक पत्थर भी निकलता है। खरही में दो जगह ताँबे व शीशे की भी खानें हैं, पर सब वीरान पड़ी हैं।

इस परगने में घेघे (गना) की बीमारी बहुत होती है।

यहाँ पर एक क़िला पञ्यारकोट के नाम से ऊँचे पहाड़ पर था। उसमें पञ्यार क़ौम का राजा रहता था। वह इस परगने का मालिक था। पञ्यार के हाथ से चंद-राजाओं ने चौगर्खा छीन लिया।

इस परगने में भी कहीं-कहीं राजी लोग रहते थे। वे अब रौत कहलाते हैं।

यहाँ की भंग व चरस मशहूर है। 'भांगा' भी होता है। घी भी बहुत होता है। सालम की बासमती प्रसिद्ध है।

पालीटय्याँ, धौलछीना, बाड़ेछीना, पनुवाँनौला, जागीश्वर व नैनी यहाँ के मुख्य पड़ाव है। जहाँ छोटी-छोटी बस्तियाँ, दूकानें व डाकबँगले हैं। पनुवाँनौला में माई चक्रवर्ती तथा साधु कृष्णप्रेम वैरागी (Mr. Nixon) ने उत्तरी वृंदावन २-३ वर्ष पूर्व बसाया है।

४०. बारामंडल

यह परगना कत्यूर, पाली, फल्दकोट, कुटौली तथा महरूड़ी के बीच है।

इसके पुराने १२ मंडल इस प्रकार थे—(१) स्यूनरा (२) महरूड़ी (३) तिखौन (४) कालीगाड़ (५) बौरारौ (६) कैड़ारौ (७) अठागुली (८) रिऊणी (९) द्वारसौं (१०) खासपरजा (११) उच्यूर (१२) बिसौत। इसी से यह परगना बारह मंडल कहलाया। बारह मांडलीक राजा इन मंडलों में राज्य करते थे।

खासपरजा की उत्पत्ति इस प्रकार की जाती है। यहाँ पर कहते हैं कि चंद-राजाओं के खास याने निजी कारदार या कर्मचारी रहते थे, इससे यह परगना खासपरजा कहा गया।

बड़े पहाड़—बिनसर, गणनाथ, पीनाथ, भटकोट, स्याई, बानणी, ऐड़द्यो, कलमटिया आदि।

देवता—पिंगनाथ, गणनाथ, सोमेश्वर, शुकेश्वर महादेव हैं। बड़ादित्य नामक कटारमल में सूर्य-मंदिर है। श्यामा उर्फ़ स्याही, वृन्दा याने बानणी देवी हैं। बदरीनाथ बयाला तथा बदरीनाथ कुंवाली विष्णु-मंदिर हैं। और भी कई देवताओं के मंदिर हैं। बड़ादित्य के सूर्य-मंदिर को सूर्यवंशी कत्यूरी राजा कटारमल्ल देव ने बनवाया था।

इस मंदिर के बर्तनों को साफ़ करने के लिये भिलमोड़ा नामक खट्टा घास (अल्मोड़ा, चल्मोड़ा, भिलमोड़ा, किलमोड़ा प्रभृति अम्ल घास-पत्तियाँ) खसियाखोला के पुराने बाशिन्दे जिनको अल्मोड़िया कहते थे, रोज-रोज़ कटारमल पहुँचाते थे। खस-जाति का गाँव उस जगह पर था, जहाँ पर अब अल्मोड़ा शहर है। जो पहले खसियाखोला कहलाता था। वह अब उप्रेती-खोला कहलाता है। अल्मोड़ा घास ले जाने से वे अल्मोड़िये कहलाये, और उनके नाम से इस शहर का नाम अल्मोड़ा प्रसिद्ध हुआ।

अल्मोड़ा

अल्मोड़ा नगर बसने के पूर्व यहाँ पर कत्यूरी राजा बैचलदेव का अधिकार था। उन्होंने बहुत सी ज़मीन संकल्प करके गुजराती ब्राह्मण श्रीचंद तेवाड़ी को दे दी। पश्चात् बारामंडल में चंद-राज्य स्थापित होने पर नाप द्वारा श्रीचंद की ज़मीन अलग कर चंद-राजाओं ने और जगह में अपने महल बनवाए और शहरवालों के मकान बनवाये, जिसका वर्णन ऐतिहासिक खंड में भी आवेगा। अल्मोड़ा शहर वास्तव में चंद-राज्य के मध्य में होने के कारण बसाया गया। पर एक लोकोक्ति यह भी है कि जब राजा कल्याणचंद सन् १५६० में अल्मोड़ा के पर्वत में शिकार खेलने को आये, तो वहाँ पर एक खरगोश दिखाई दिया, जो अल्मोड़ा के भीतर की भूमि में बाघ में बदल गया। इस पर ज्योतिषियों ने कहा कि यह भूमि सिंह के समान है। यह शक्तिशाली होगी। यहाँ नगर बसने से शत्रु ऐसे ही भयभीत होंगे, जैसे लोग बाघ से भयभीत रहते हैं। अतः यहाँ पर नगर की नींव डाली गई। लोहे की शलाका शेषनाग के सिर तक पहुँच गई। विज्ञ लोगों ने कहा कि राज्य स्थायी होगा, पर राजा को भ्रम हुआ। मना करने पर भी लोहे की कील उखाड़ी गई। उसमें लोहू लगा था। इस पर ज्योतिषियों ने कहा, चूँकि कील उखाड़ी गई है, इसलिये अब यह राज्य स्थिर न रहेगा! मानसखंड में अल्मोड़ा नगरी जिस पर्वत पर बसी है, उसका वर्णन इस प्रकार है—

कौशिकी शाल्मली मध्ये पुण्यः काषाय पर्वतः।
तस्य पश्चिम भागे वै क्षेत्र विष्णो प्रतिष्ठितम्॥

(मानसखंड, अध्याय २)

चंद-राजाओं के समय इसको राजापुर कहते थे। कई ताम्रपत्रों में राजापुर लिखा है। अल्मोड़ा पर्वत की पीठ पर बसा है। इसकी उँचाई ५२००′ से लेकर ५५००′ तक है। जेल ५४३९′ फ़ुट, गिर्जा ५४६५′ कालीमाटी ६४१४′ तथा शिमतोला की उँचाई ६०६६ फ़ुट है। बड़ी ही चंचल जगह है। इसके दो हिस्से हैं—(१) तैलीफाट (२) सेलीफाट।

क़रीब सवा मील लंबी बाज़ार है, जो पत्थरों से पटी है। पहले वर्तमान छावनी की जगह लालमंडी बसी। वहाँ क़िला, राजमहल तथा तालाब, मंदिर आदि थे। क़िला लालमंडी के नाम से पुकारा जाता था, अब फ़ोर्ट मौयरा कहलाता है। लॉर्ड मौयरा के समय में नगर व क़िला अँगरेज़ों के हाथ आया, इसी से नाम बदला गया। जहाँ कचहरी है, वहाँ चंद-राजाओं का मल्ला

महल था, और जहाँ पर अब अस्पताल व मिशन स्कूल है, वहाँ चंदों का
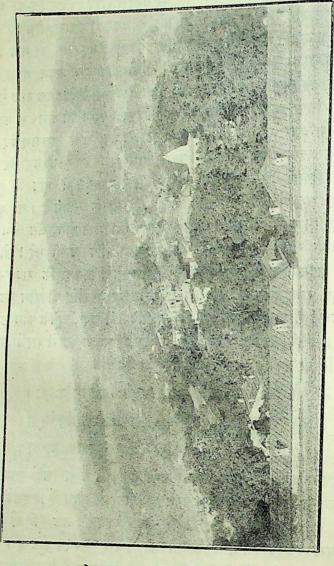
अल्मोड़ा-शहर

तल्लामहल था। बाद को तल्लामहल में हवालात भी रही। कविवर गुमानी कहते हैं—

विश्नु का देवाल उखाड़ा, ऊपर बँगला बना खरा।
महाराज का महल ढवाया, बेड़ीख़ाना तहाँ धरा॥
मल्ले महल उड़ाई नंदा, बंग्लों से भी तहाँ भरा।
अंग्रेज़ों ने अल्मोड़े का नक़शा और ही और करा॥

अल्मोड़ा के प्रधान मुहल्ले इस प्रकार हैं—

बाजार के—लाला बाज़ार, कारख़ाना बाज़ार, खज़ांची मुहल्ला
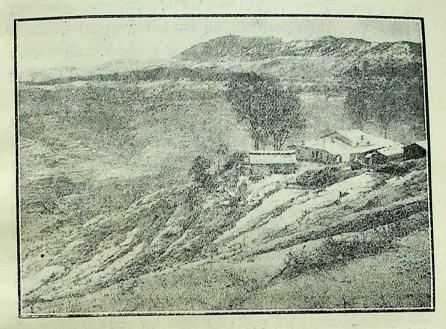
अल्मोड़ा के निकट सिटौली व कलमटिया (बरफ़ में)

(पहले खौंकी मुहल्ला था), सुनार उर्फ़ जौहरी मुहल्ला, मल्ली बाज़ार, थाना बाज़ार।

सेलीफाट—जोशीखोला, शेलाखोला, ड्योढ़ीपोखर, थपलिया, खोल्टा, चंपानौला, गुरानीखोला, चौंसार, गल्ली, करड़िया खोला, कपीना, पणि-उड्यार, रानीधारा, चौधरीखोला, पोखरखाली, झिजाड़, कसून।

तैलीफाट—चीनाखान, मकिड़ी, धारानौला, चाँदनी चौक (प्राचीन विष्टकुड़ा) त्यूनरा, दन्या, बाँसभीड़ा, उप्रेतीखोला (खसियाखोला), बाड़े-खोला, डुबकिया, नयालखोला, तिरुवाखोला, दुगालखोला, टमस्यूड़ा आदि।

ये मुहल्ले प्रायः उन्हीं सम्प्रदायों के सूचक हैं, जिन्होंने उनको बसाया।

पहले कमिश्नर यहीं रहते थे। बाद को नैनीताल रहने लगे। ज़िला-हाकिम की कचहरी के अलावा यहाँ पर चुंगी व डि० बोर्ड के दफ़्तर हैं। चुंगी-बोर्ड सबसे पहले सन् १८५१ में स्थापित हुआ। पहले मेम्बर सरकार द्वारा नियुक्त होते थे। चुनाव की प्रथा सन् १८६८ में जारी हुई। पहला चुनाव १८६६ में हुआ। पहला ग़ैरसरकारी चैयरमैन १६११ में छाँटा गया।

सन् १८६०-६१ में कुल आमदनी ७३१४) थी, आज ६००००) से ज़्यादा है। सन् १९१० तक सरकारी चैयरमैन होते थे, अब ग़ैरसरकारी चैयरमैन हैं। अब ११ सदस्यों की एक कमेटी की सम्मति से चैयरमैन इसका शासन करते हैं। ज़िला-बोर्ड भी पहले सरकारी था, सन् १८२३ से ग़ैरसरकारी चेयरमैन के हाथ सौंपा गया। इस समय २४ सदस्यों का बोर्ड है; जिनकी सम्मति से शासन चलता है। सन् १८९१-९२ में बोर्ड की आमदनी १९७१४६) थी। खर्च भी इतना ही था। अब आमदनी-खर्च ४¼ लाख के लगभग है।

गोर्खा पल्टन--अल्मोड़ा सर करने पर पहले अंग्रेज़ी अफ़सर व फ़ौज के सिपाही सन् १८३६ तक हवालबाग़ में रहते थे। चूँकि यह केवल ३६२० फ़ीट ऊँचा है। इससे यहाँ की जलवायु ठीक नहीं समझी गई। बाद को यहाँ से उठकर अफ़सरान अल्मोड़ा आये। फ़ौज लोहाघाट व पिठौरागढ़ भेजी गई। सन् १८१५ में, जो अब तीसरी गोर्खा पल्टन है, वह हल्द्वानी में खड़ी की गई। निज़ामत बटालियन कहलाती थी। सुब्बा जयकृष्ण उप्रेतीजी ने उसमें बहुत से कुमावनी भर्ती किये। यह कमिश्नर कुमाऊँ की आज्ञा में रहती थी। पुलिस का काम भी यही करती थी। बाद को कुमाऊँ बटालियन भी कही जाने लगी। सन् १८४६ में यह लोहाघाट व पिठौरागढ़ से उठाकर लालमंडी (फ़ोर्ट मौयरा) में स्थापित की गई। सन् १८५० में सिविल कार्य इससे उठा लिया गया, और कुमय्यें इससे अलग किये गये, और यह गोर्खा पल्टन कहलाई। अल्मोड़ा इसका घर बनाया गया। इसने अनेक लड़ाइयों में बहादुरी दिखाई है।

पहले यहाँ ३६० 'नौले' (चश्मे) थे, पर अब बहुत से सूख गये हैं। रानीधारा, राजनौली, रंफानौली, चंफानौला, कपीने का नौला प्रसिद्ध हैं। सन् १८७४ में यहाँ पानी बल्ढौटी जंगल से पक्की नालियों में श्रीलम्सडन व श्रीबैटन साहबान लाये। ला० मोतीरामसाहजी (नैनीतालवालों) ने मोतियाधारा बनवाया। सन् १८८४ में रायबहादुर पं० बदरीदत्त जोशी सदरमीन साहब के उद्योग से नलों द्वारा सैल से पानी लाया गया। कुछ चंदा हुआ, कुछ धन सदरमीन साहब ने दिया।

१८९२ में नैल से दूसरा पानी लाया गया। यह पल्टन के काम आता है। १९०४-०७ के बीच तीसरा पानी लाया गया। १९२९-३० में राय पं० धर्मानंद जोशी बहादुर चेयरमैन साहब के उद्योग से स्याहीदेवी से नलों द्वारा पानी लाया गया। तो भी गर्मी में पानी की तंगी रहती है। स्याहीदेवी का पानी २६-४-१९३२ को नगर में आया।

अल्मोड़ा-कचहरी के अतिरिक्त अन्य बड़ी पबलिक इमारतें ये हैं—डाकघर (१९०५), सरकारी कॉलेज (१८९१) डाकबँगला, रामजे हाउस, शिवराज संस्कृत-पाठशाला, पबलिक लाइब्रेरी, रामजे हाईस्कूल, टाउन स्कूल, नार्मल स्कूल, मिशन कन्या-पाठशाला, राजपूत रात्रि-पाठशाला, कुंदन-स्मारक-भवन* लछीराम थियेटर आदि। नया अल्मोड़ाअस्पताल सन् १९०१ में बना। इसका खर्च ज्यादातर ज़िला-बोर्ड देती है और थोड़ा सा चुंगी-बोर्ड भी। ज़नाना-अस्पताल सन् १९२७ में खुला।

शिवराज संस्कृत-पाठशाला, लाइब्रेरी तथा श्रीबद्रीश्वर दन्या के स्व० राय पं० बद्रीदत्त जोशीजी ने बनवाये।

ठाकुरद्वारा ला० कुन्दनलाल साहजी ने बनवाया। अन्य मंदिरों का ज़िक्र अन्यत्र आवेगा।

अल्मोड़ा के पास बल्ढौटी जंगल है, जो पहले सरकारी रिज़र्व जंगल था। अब इसके ६ कम्पार्टमेंट चुंगी-बोर्ड के प्रबंध में हैं। नारायण तेवाड़ी में पहले एक मंदिर-मात्र था। अब एक अच्छी बाज़ार है।

बल्ढौटी जंगल के नीचे एक खान में छत व आँगन के लिये बहुत सुन्दर पत्थर निकलते हैं। सन् १८१५ में, कहते हैं, पटाल की तह में से एक जीता मेंढक निकला था।

सिटौली में इस समय सरकारी सुरक्षित जंगल है। यहाँ पर एक गोरखा की गढ़ी भी है, जिससे वे १८१४ में अंग्रेज़ों के साथ लड़े थे और यहाँ पर २ अंग्रेज़ों की क़ब्रें भी हैं, जो गोरखा-लड़ाई में मारे गये थे। क़ब्र में ले० किर्क व टैपले के नाम अंकित हैं। श्री टैपले २६ अप्रैल, १८१५ को अल्मोड़ा में मारे गये थे और श्री किर्क १६ मई, १८१५ को घाव लगने तथा थकान से मरे।

स्यूनरा—स्यूनरा नाम की पहले एक पट्टी थी। अब दो हैं। इस पट्टी का पुराना राजा स्यूनरी जाति का था। उसका स्यूनराकोट नामक क़िला अभी तक एक टीले पर है। उसके भीतर से पत्थर काटकर एक सुरंग नदी तक बनी है। वहाँ से पानी ले जाने का रास्ता था। इस राजा के ऊपर कत्यूरी राजा राज्य करते थे। पश्चात् स्यूनरा भी चंद-राज्य में शामिल हो गया।

तिखौन—तिखौन का राजा तिखौनी था। उसका क़िला तिखौनकोट

---

* कुन्दन-स्मारक-भवन पं० गोविन्दवल्लभ पंतजी के उद्योग से खुला। सन् १९३४ में इसका उद्घाटन-संस्कार सर सीताराम ने किया।

एक ऊँची चोटी पर था। पहले यह कत्यूरियों का मांडलीक राजा था। बाद को चंद-राज्य के साथ लड़ने में वह मारा गया। एक बार तिखौन-कोट में रणखिल गाँव के एक पहरी का अधिकार हो गया, उसने कुछ फ़ौज एकत्र कर अपने को तिखौन का राजा प्रसिद्ध किया। चंदों की थोड़ी सी फ़ौज तिखौनकोट में हमला करने को गई, पर लड़ाई में हारकर वापस आ गई। बाद पणकोट गाँव के चिल्वाल लोगों ने चंदों से आज्ञा लेकर पहरी राजा से युद्ध किया। पहरी की फ़ौज का पानी बंद कर दिया। विना पानी के पहरी की सेना तंग हुई। अतः चिल्वालों ने पहरी को मार डाला, और तिखौनकोट चंद-राजाओं के अधिकार में फिर से आ गया। पानी बंद करने की कहानी इस प्रकार कही जाती है कि चिल्वालों का नेता थककर ज़मीन पर सोया, तो उसने पानी के बहने की आवाज़ सुनी। खोदा, तो पानी की नाली निकली। अतएव वह तोड़ दी गई। इस बहादुरी व खैरख्वाही के बदले तिखौनपट्टी में कमीनचारी का पद चिल्वाल जाति को मिला और अब तक क़ायम है।

ऐड़ी देवता—इस पट्टी में ऐड़ीद्यो का पर्वत बहुत ऊँचा है। इसमें ऐड़ी देवता का मंदिर है। ऐड़ी देवता का वृत्तान्त अन्यत्र आवेगा। श्यामादेवी का मंदिर भी इसी पट्टी में है।

बौरारौ व कैड़ारौ—इन पट्टियों में बौरा व कैड़ा जाति को कमीन पद देकर चंद-राजाओं ने काली कुमाऊँ से लाकर वहाँ बसाया। इस कारण दो पट्टियों का नाम बौरा+की+रौ=बौरारौ तथा कैड़ा+की+रौ=कैड़ारौ रक्खा गया। रौ के माने तालाब के हैं। कहते हैं कि पहले इन दोनो पट्टियों में तालाब थे। जब वे तालाब फूटकर बह निकले, तब यह प्रान्त आबाद हुए। बौरारौ का पहला नाम रौगाड़ था।

रिऊणी, द्वारसों यह पहले कोई अलग पट्टी न थी। कहते हैं, पहले यहाँ मज़दूर लोग बसते थे। अब तो यह पट्टी सेठ-साहूकारों से भरी है। अठागुली में पुरानी खस जाति के बाशिन्दे कोई नहीं रहे, तब भंडारी, पिंडारी अन्य प्रान्तों से बुलाकर वहाँ बसाये गये।

बिसौतपट्टी में बिसौतकोट नामक क़िला था। बिसौती जाति का मांडलीक राजा था। अब उसकी संतान नहीं है। वहाँ भी बिलवाल व नयाल और स्थानों से बुलाकर बसाये गये हैं। ये दोनों जातियाँ सिपाही के काम में पहले से प्रसिद्ध हैं। बहादुर सिपाही गिने जाते थे। इस पट्टी के अन्त में कपिल मुनि के नाम से कपिलेश्वर मंदिर भी है।

उच्यूरपट्टी में उच्यौरा जाति पुरानी है। जब से चंद-राज्य का दरबार अल्मोड़ा में हुआ, तब से ये लोग सिपाहियों में भरती किये गये।

खासपरजापट्टी चंदों की बनाई हुई है। जब चंदों की राजधानी अल्मोड़ा में आई, तो उन्होंने हर समय के निज के काम के लिये खास परजा के गाँव और पट्टियों से अलग कर दिये। यहाँ के लोग राजमहल के निजी कर्मचारी के बतौर थे।

चंदों के अल्मोड़ा आने के पूर्व अल्मोड़ा के दो तरफ़ दो राजा रहते थे—

(१) दक्षिण तरफ़ खगमराकोट नामक क़िला है। उसमें कत्यूरी राजाओं में से बैचलदेव उर्फ़ बैजलदेव नाम के राजा का महल था। यह राजा बारामंडल के कुछ इलाक़े में राज्य करते थे। पश्चात् चंद-राजा ने इन्हें हराकर बारामंडल अपने क़ब्जे में किया।

(२) उत्तर-पश्चिम की ओर, पहाड़ के अंत में, रैला जाति के राजा का महल था, जिसमें कहते हैं कि बिल्हौर (?) के खंभ लगे थे। अब तक महल के खँडहर दिखाई देते हैं। इसको रैलाकोट कहते हैं। इस रैला की संतान चंदों के अल्मोड़ा आने तक विद्यमान थी। चंद-राजा ने इन्हें तंग करके बरबाद कर दिया। रैला को यह हुक्म दिया कि वह एक जोड़ी ज़िन्दा तीतर की रोज़ भेजे। यही राज-कर उसके वास्ते ठहराया गया। यदि तीतर की जोड़ी किसी दिन न आवे, तो शर्त यह थी कि कठिन सज़ा दी जावेगी। इसी डर से रैला के स्त्री-पुरुष व बच्चे जंगल, 'गाड़ - गधेरों' व झाड़ियों में तीतर पकड़ते फिरते थे। इसी रंज व मेहनत से बेचारे बरबाद हो गये। न उनका राज्य रहा, न वंश।

अल्मोड़ा में हीराडुँगरी नाम की एक चोटी है। पुरानी कहावत है कि एक जौहरी चंद-राजा के दरबार में आया था। उसने इस पहाड़ को खोदकर हीरे निकालने की बाबत अर्जी सरकार में पेश की थी, पर नामंज़ूर हुई। कुछ लोग कहते हैं, यहाँ पर पहले ज़माने में लोगों ने चमकती हुई मणि देखी थी। मणिवाला सर्प भी यहाँ रहता बताया जाता था। अब तो वहाँ मिशन के अच्छे भवन खड़े हैं।

अल्मोड़ा के उत्तर तरफ़ कलमटिया पर्वत में चंद-राजाओं का शस्त्रागार अर्थात् युद्ध-सामग्री का भंडार था। वहाँ पर पं० श्रीवल्लभ पांडे (उपाध्याय)जी कन्नौज से आये। उनको राजकर्मचारियों ने कहते हैं कि होम करने को मज़ाक़ में लकड़ी के बदले लोहे के डंडे दे दिये। उपाध्यायजी तांत्रिक विद्या में प्रवीण थे। कहते हैं, उन्होंने लोहे के डंडों का ही होम कर डाला, जिससे

तमाम पर्वत ही जलकर काला हो गया। तभी से उसका नाम कलमटिया पड़ा।

यहाँ पर अब चोटी में काषायेश्वर महादेव तथा देवी के मंदिर बने हैं, जो स्व० चौ० चेतराम प्रधानजी के बनवाये कहे जाते हैं।

मल्ला स्यूनरा में अमखोली नामक स्थान में कत्यूरों के समय एक छोटा सा नगर था। जिसके खँडहर वहाँ हैं। अम्बिकेश्वर महादेव तथा एक टूटा नौला भी उन्हीं का बनवाया है।

कलविष्ट देवता—बिनसर पर्वत की सलामी पर कलविष्ट का टूटा मंदिर है। इसका वृत्तान्त अन्यत्र आवेगा।

बिनसर पहाड़ में बिनेश्वर महादेव का मंदिर है। इसे राजा कल्याणचंद ने
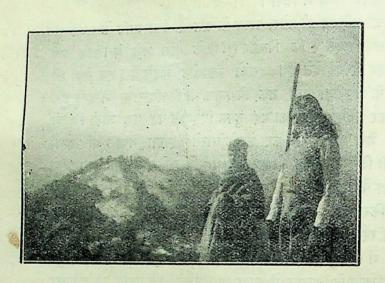
बिनसर

बनवाया, जो गरमियों में यहाँ रहते थे। मंदिर के निकट थोड़ा सा पानी है। इसे गूल काटकर भकुंडा के भकुंडी (भकूनी?) अपने गाँव में ले जाना चाहते थे। रात को स्वप्न में उनसे महादेवजी ने कहा कि वहाँ का पानी थोड़ा है, उसे न ले जावें, उनको पहाड़ की सलामी में पानी दिया जावेगा। तीसरे दिन वहाँ स्वयं पानी पैदा हो गया। अतः इस पानी को वर का पानी अर्थात् देवता का दिया हुआ कहते हैं।

खाली में पहले सेठ जमनालाल बजाजजी ने गांधी-सेवा-संघ की ओर से 'शैलाश्रम' खोला था, अब उसे मि० पंडित ने खरीद लिया है।

ाणनाथ का पर्वत भी बड़ा ही चंचल व रमणीक है। यहाँ पर विनायक-

त्रिनसर झंडी टीबा (८१०० फुट)
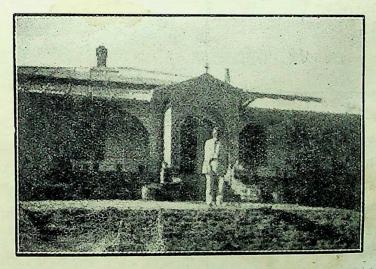
खाली (बिनसर)

थल एक हमवार भूमि है। उसके ऊपर गणनाथ एक गुफा में विराजमान हैं। यहाँ लोहे की खानें हैं। गोरखों की पल्टन भी यहाँ रहती थी। अंग्रेज़ व गोरखों के बीच युद्ध यहीं हुआ। गोरखा सेनापति हस्तिदल यहीं मारा गया था। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ पं० हर्षदेवजी भी यहीं बैकुंठवासी हुए थे। पं० श्रीबल्लभ उपाध्यायजी ने यहाँ गणनाथ मठ की स्थापना की। वर्तमान समय में पं० हरिकृष्ण पांडेजी ने यहाँ पर संस्कृत-विद्यालय तथा उद्योगशाला का आयोजन किया है।

बारामंडल पट्टी के कैड़ारौ गाँव में पारकोट एक गाँव है। यहाँ के वैद्य पहले से विख्यात हैं। अब भी यहाँ के पांडे-वंश के वैद्य अनूपशहर में रहते हैं। देवता नचाने में 'पारकोट की जड़ी' का उच्चारण होता है, जिससे वहाँ के वैद्यों की दवाइयों से मतलब होगा।

अल्मोड़ा के पूर्व में बानणीदेवी तथा पश्चिम में श्यामादेवी (स्याहीदेवी) के प्रसिद्ध पर्वत व मंदिर हैं, जो अल्मोड़ा के बॉडीगार्ड (शरीर-रक्षक) की तरह हैं। अल्मोड़ा के मंदिरों का वर्णन अन्यत्र आवेगा। स्याहीदेवी के पास शीतलाखेत प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ पर बाबा हैड़ियाखान का बनवाया सिद्धाश्रम भी है। दो-एक बग़ीचे हैं। सन् १६३२ से यहाँ पर बालचर-मंडल (S. S. Boy Scout Association) का ग्रीष्म में विचरने का 'निर्मल वन' कैम्प खुल गया है। स्काउट-कमिश्नर वाजपेयीजी ने इस स्थान के विषय में कहा है—"दुनिया के जितने स्थान उन्होंने देखे हैं, उन सबसे यह रमणीक है।"

---

४१. पाली पछाऊँ

यह परगना कत्यूर, बारामंडल, फल्दाकोट, कोटा व गढ़वाल के बीच है।

ऊँचे पर्वत—जौरासी, द्रोणागिरि, मानिला, नागार्जुन, गुजड़ू का डांडा।

नदियाँ—रामगंगा, बिनौ, गगास।

रामगंगा गढ़वाल के पहाड़ देवाली-खान से निकलकर परगने के बीच बहती है। इसके किनारे गनाई, मांसी, भिकियासैण आदि छोटी-छोटी बस्तियाँ हैं। बिनौ भी गढ़वाल से निकलकर वृद्ध केदार के पास रामगंगा में मिलती है। गगास भाटकोट के पर्वत से निकलकर भिकियासैण में रामगंगा में मिलती है।

मंदिर—वृद्ध केदार उर्फ़ बूढ़ा केदार, विभांडेश्वर, चित्रेश्वर, श्रीनाथेश्वर,

केदार आदि महादेव हैं। नारायण, नागार्जुन, बद्रीनाथ विष्णु हैं। शीतला, द्रोणागिरि में वैष्णवी व दुर्गा, मानिलादेवी, भुवनेश्वरी, नैथाणा व अग्निदेवी आदि देवी-मंदिर हैं।

इन देवताओं में कहते हैं कि शीतलादेवी, द्रोणागिरिदेवी, तथा विभांडेश्वर-महादेव का जीर्णोद्धार स्वामी शंकराचार्य ने किया था। बदरीनाथ, केदारनाथ, चंडीश्वर की स्थापना कत्यूरी राजाओं ने की। इन मंदिरों में श्रीबदरीनाथ की जो मूर्ति है, उसके नीचे ११०५ संवत् लिखा हुआ है। जिससे यह मंदिर ८८४ वर्ष पुराना हुआ। यह द्वाराहाट में है।

द्वाराहाट—यहाँ पर लगभग ६४-६५ देवालय व बाँवरियाँ हैं। प्रायः सब कत्यूरी राजाओं के समय के बने हुए हैं। बहुतों में देवता हैं। कई में नहीं हैं। कई टूट गए हैं। एक मंदिर गूजर देवल कहलाता है। कहते हैं
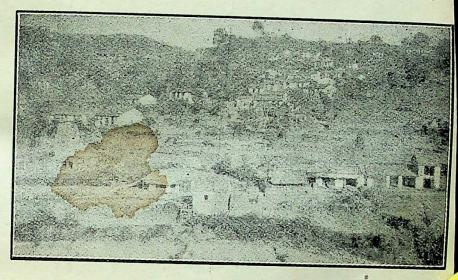
द्वाराहाट का एक दृश्य

कि इसे कत्यूरी राजाओं के ज़माने में गूजरसाह नामक वैश्य ने बनवाया था। एक टूटे मंदिर का नाम कुट्टनबूड़ी का देवल है। कहते हैं, इसको एक बुढ़िया ने, जो धान कूटकर गुज़र करती थी, बनवाया।

गणेश के मंदिर में ११०३ शाके हैं। वहाँ एक जगह एक 'थर्प' है, जो एक बड़ा चबूतरा-सा है। यह 'कछेरी का देवाल' कहलाता था। शायद कत्यूरी राजा यहाँ न्यायासन पर बैठकर राजकाज करते हों। अठकिंसन लिखते हैं—"चंद्रगिरि व चांचरी पर्वत में कत्यूरी राजाओं का राजमहल था। दूनागिरि के

मंदिर में ११०५ शाके खुदा है।" द्वाराहाटवाले कहते हैं, राजमहल थर्प के पास था।

द्वाराहाट ५०३१ फ़ुट ऊँचा है। कत्यूरी राज्य के टूटने पर एक वंश की यह राजधानी रही। यहाँ का नगर व बाज़ार बहुत पुराना है। अब तक भी पुराने साहू व सुनारों की दूकानें यहाँ विद्यमान हैं। यहाँ के लोग सब चतुर व सभ्य हैं। यहाँ पर एक स्यालदे पोखर व स्थल भी है, जहाँ हर साल वैशाख महीने की संक्रान्ति को मेला लगता है। 'बगवाल' भी होती है। कहते हैं कि यहाँ पर द्वारिका बनाने की तजवीज देवताओं ने ठहराई थी और कोशी व राममंगा को आज्ञा हुई कि दोनो नदियाँ द्वाराहाट में मिलें। इस बात की खबर गगास

द्वाराहाट का एक और दृश्य

नदी की तरफ़ से रामगंगा को देने को गिंवाड़ में, छानागाँव के पास सेमल का पेड़ ठहराया गया। जिस वक़् रामगंगा द्वाराहाट को लौटने के रास्ते पर पहुँची थीं, कहते हैं कि सेमल का पेड़ सो गया। उसने गगास का संदेशा रामगंगा से न कहा। जब रामगंगा तल्ले गिंवाड़ को चली, गईं, तब सेमल का पेड़ जागा, और रामगंगा से गगास की बातें कहीं, किंतु रामगंगा ने कहा, अब उनका लौटना असम्भव है। पहले से मालूम होता, तो बात दूसरी थी। इस कारण द्वाराहाट में द्वारिका न बन सकीं। उस दिन से संदेशा देने में जो देरी या सुस्ती करे, उसे "सेमल का पेड़" कहते हैं।

दूसरी किम्बदन्ती है कि रामगंगा आई, पर कोशी न आई। उनको संदेशा देनेवाला दही खाने में देर कर गया।

द्वाराहाट के ऊपर दूनागिरि उर्फ़ द्रोणाचल पर्वत में वैष्णवी देवी हैं। इनको बलिदान नहीं चढ़ाया जाता। इस पहाड़ में अच्छी घास व वनस्पतियाँ हैं, जिनको चरकर गाय-भैंस खूब दूध देती हैं। यहाँ का दही तमाम प्रान्त में प्रसिद्ध है।

कहते हैं कि इस दूनागिरि में संजीवनी बूटी का एक टुकड़ा उस समय गिर पड़ा था, जब कि हनुमान बड़े पर्वत को उठाकर मूर्च्छित लक्ष्मणजी को जीवित करने के लिये आकाश-मार्ग से जा रहे थे। कहते हैं कि वहाँ पर एक घास काटनेवाले की लोहे की दराँती यकायक सोने की हो गई थी। वहाँ की जड़ी-बूटियों का प्रभाव ऐसा ज़बरदस्त बताया जाता है।

इड़ा में बारहखंभा का विश्रामालय भी देखने योग्य है।
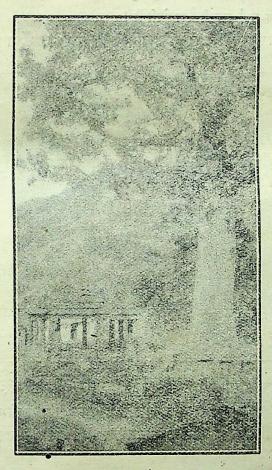
बारहखंभा

गिंवाड़—इस पट्टी के चार हिस्से अलग-अलग नाम से हैं—(१) गाड़ी, (२) कौथलाड़, (३) खतसार, (४) गिंवाड़। गाड़ी में तड़ाग-ताल नाम का एक बड़ा तालाब है। बरसात में बहुत भर जाता है। जाड़ों व गरमी में घट जाता है। इससे एक फ़सल रब्बी की यहाँ हो जाती है।

खतसार नाम इस तरह पड़ा कि यह जगह गरम है। यहाँ लोग बीमार हो जाते थे। बसते न थे। तब राजाओं ने यह सूचना प्रकाशित की कि जो कोई मनुष्य इस जगह में बसेगा, वह यदि कोई अपराधी भी होगा, तो उसका अपराध माफ़ किया जायगा। अतः यहाँ पर अपराधी (क़सूरवार) लोग जाकर बसने लगे। उन्हीं के द्वारा आबादी हुई। इससे ख़ता (क़सूर) + सार (मैदान, ज़मीन) नाम पड़ा। यह पट्टी रामगंगा के दोनों ओर मैदान जगह में है। फ़सल यहाँ अच्छी पैदा होती है।

इसी खतसार के ऊपर लोहाबागढ़ी है। यह बड़ा ऊँचा क़िला है। यह
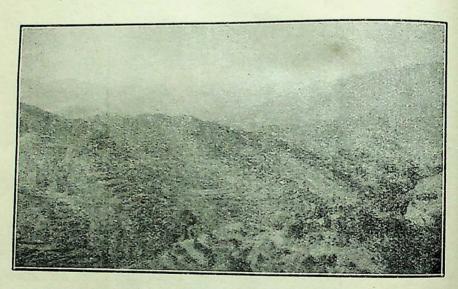
लोहाबागढ़ी

कुमाऊँ व गढ़वाल की सरहद पर है। यहाँ पहले बहुत लड़ाइयाँ हुईं। क़िले के भीतर भैरव व देवीजी के मंदिर टूटे पड़े हैं। जल जमा करने को हौज़ बने हैं। क़िले के भीतर नदी से पानी लाने को लगभग दो मील की एक सुरंग बनी है। गोरखाली राज्य के आख़िरी शासन-काल (१८१५) तक यहाँ फ़ौज रहती थी।

कत्यूर व पाली के बीच, गाड़ी गिंवाड़ के ऊपर, गोपालकोट नाम का एक ऊँचे पहाड़ पर बड़ा क़िला था। चंद-राजाओं के समय यहाँ फ़ौज रहा करती थी। अब यह टूटा-फूटा है।

खानें—गिंवाड़ के कोट्यूड़ा गाँव में ताँबे की खान है, और खतसारी, सिरौली, कलिरौ, रामपुर, गोड़ी, बरलगाँव, चितैली में लोहे की खानें हैं। लोहा गलानेवालों ने आसपास का बहुत जंगल काट डाला, जिससे यहाँ जंगल की कमी है।

जौरासी डांडे में दो किस्म के पक्षी—चेड़ तथा ककलास बहुत सुन्दर होते हैं। एक गढ़ी भी बहुत ऊँची जगह में है। उसका नाम असुरगढ़ी कहते हैं। इसको दैत्यों का क़िला बताया जाता है, किन्तु इन दिनों यह वीरान है।

गिंवाड़ पट्टी में रामगंगा के किनारे एक पुराना नगर टूटा पड़ा है। यहाँ ईंटें भी मिलती हैं। इसका नाम विराटनगरी है। कहते हैं कि यहीं पांडव गुप्त वनवास में रहे थे। (कुछ लोग विराटनगरी का चक्रोत पर्वत की ओर होना भी बताते हैं।) वहीं पर रामगंगा के किनारे कीचकघाट भी है। वहीं पर एक क़िले का नाम लखनपुर कोट है। इसको इस समय आसन-वासन-सिंहासन के नाम से पुकारा जाता है। कत्यूरी राजा आसन्ति-वासन्ति-

विराटनगरी (पाली पछाऊँ) आसन-वासन-सिंहासन
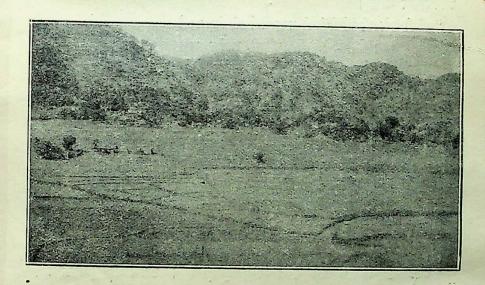
देव का राजस्थान बताया जाता है। यह शायद वसन्तनदेव हों, जिन्होंने बागीश्वर में ज़मीन चढ़ाई, और जो राजा ललितसूरदेव की सन्तान में से थे। इन राजाओं के ८ पुश्त की एक सनद बागीश्वर-मंदिर में है, जिसका ज़िक्र कत्यूरी-शासन-काल में पाया जायगा। इसी वसन्तनदेव ने गंगोली में वृद्ध भुवनेश्वर नाम का मंदिर बनवाया था। इस लखनपुर के निकट कलिरौ-हाट नामक बाज़ार था। अब निशान भी बाक़ी न रहा, नाम बाक़ी है। यह स्थान चौखुटिया-गनाई तथा भल्याँ सरै के बीच में है।

रामगंगा नदी में कई क़िस्म की मछलियाँ होती हैं। कुछ बहुत बड़ी होती हैं, जिनको वहाँवाले बहुत मारते थे, अब सरकार उसे बंद कर रही है। अनेक प्रकार की तरकीबों से मछलियाँ मारी जाती हैं। मछली मारने के अनेक मेले भी होते हैं। एक मछली 'बवेणा' के क़िस्म की 'सलेणा' होती है। कहते हैं कि यह रात के वक़्त पानी से बाहर आती है। मछली मारने-वाले वहाँ पर राख रख देते हैं, जिससे मछली के बदन की चिकनाहट दूर हो जाती है, वह चल नहीं सकती और मर जाती है।

मासी, भिकियासैंण आदि बड़े गरम स्थान हैं। यहाँ गरमी में तथा शिव-रात्रि को क्रम-क्रम से मेले होते हैं। "पुण्य को काशी व पाप को माशी" का क़िस्सा है। यह स्थान यात्रा-लाइन में हैं। मासी में सेवा-समिति का एक औषधालय भी है।

"झाँसी गले की फाँसी" की तरह यहाँ भी क़िस्सा है—

"मासी गले की फाँसी, भुड़ंग गले का हार।
चौखुटिया न छोड़िए, जब लग मिले उधार॥"

पाली परगने के अन्त में गढ़वाल ज़िले की सरहद पर जुनियागढ़ी नामक एक बड़ा क़िला आजकल वीरान पड़ा है। कई लड़ाइयाँ इस क़िले में गढ़वाल व कुमाऊँ के बीच हुई हैं, जिनका ज़िक्र ऐतिहासिक कांड में आवेगा।

नया पट्टी में रामगंगा के किनारे हवा के विषय में यह कहा जाता है कि सुबह से ठीक दोपहर तक हवा बड़ी तेज़ी से उस ओर को बहती है, जिधर को नदी का बहाव होता है, बाद दोपहर के ऊपर को हवा चलने लगती है।

सल्ट पट्टी में एक ऊँचे पर्वत पर गुजड़ूगढ़ी है। उसमें भी कुमाऊँ व गढ़वाल के राजाओं के बीच कई बार युद्ध हुए थे। इस समय यह वीरान पड़ी है।

नागार्जुन (नगारभ्रून) पहाड़ पर श्रीपच्चवां दोराल का कोट यानी
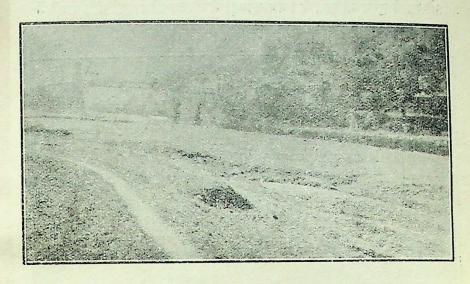
रामगंगा पर पुल (चौखुटिया)
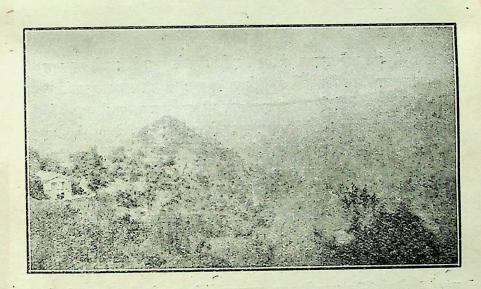
जुनियागढ़ी (चौकोट)

• क़िला है। यह दोराल कुछ दिनों के लिये अपने बाहुबल से राजा बन बैठा था, बाद को मारा गया।

इस परगने के मध्य में पाली नाम का गाँव है। पहले वहाँ राजा रहते थे। गोरखाली सुब्बा भी रहते थे। नैथाणागढ़ी में गोरखा फ़ौज रहती थी। पाली में

नैथाणागढ़ी
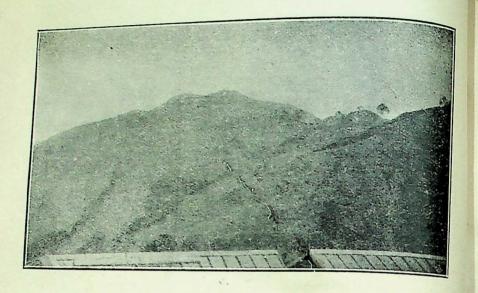
तहसील भी थी। वहाँ बाज़ार भी था। इसी गाँव के नाम से परगने का नाम भी पाली हुआ। उसमें पछाऊँ इसलिये जोड़ा गया कि यह परगना कुमाऊँ के पश्चिम याने पछाऊँ में है। अतः इस समय भी यह परगना पाली पछाऊँ के नाम से कहा जाता है। यहाँ अनाज खूब होता था। यहाँ के पुराने लोग कहा करते थे, "क्या आदमी के खाने से अन्न घटता है।" पाली में इस समय केवल एक हिन्दी-मिडिल स्कूल है। आस-पास के गाँव नाईखोला व धोबी-खोला कहलाते हैं।

इस परगने में कत्यूरी-राजाओं की सन्तानें यत्र-तत्र बसी हैं। ज़्यादातर वे चौकोट में हैं। इस समय वे रजवार व मनुराल कहलाती हैं। ये लोग सयाने भी कहलाते हैं। यह पद प्रधान से ऊँचा है। एक वर्ग के राजपूत मिराल-गुसाईं अपने को चित्तौरगढ़ के राना-ख़ानदान में से बताते हैं, और कहते हैं कि जब दिल्ली के बादशाह ने चित्तौरगढ़ पर चढ़ाई की, तो उनके बुज़ुर्ग चित्तौरगढ़ छोड़कर कुमाऊँ में चले आये थे। कुछ लोग इनको पंजाब से आये हुए मीरवाल भी बताते हैं।

पाली का आख़िरी राजा कत्यूरी-राजवंश का था। जब चौगरखा व बारा-मंडल से कत्यूरी-राजा चंदों की चढ़ाई के सामने भाग निकले, तो पाली के राजा ने भी भयभीत होकर परगना पाली राज़ी-ख़ुशी से चंद-राजाओं को सौंप दिया। चंदों ने भी सयानचारी उन्हीं के हाथ में रक्खी। उनको पाली का करद ज़मींदार बना दिया। दरबार में कुछ काम न दिया। ज़ाहिरा यह कह दिया कि उनके दरबार में आने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में उनको "दाना दुश्मन" समझकर दूर ही रक्खा।

पाली की राजधानी अब रानीखेत है। यह गोरा-नगरी सन् १८६६ में
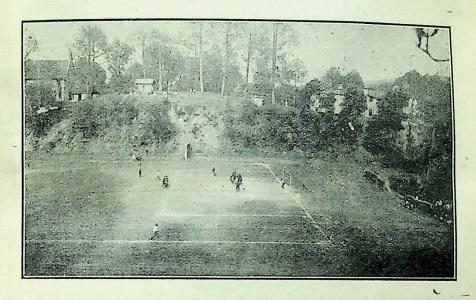
रानीखेत का परेड-ग्राउंड

बसाई गई। सरना, कोटली, रानीखेत व टाना गाँवों की ज़मीन १३०२४) में ख़रीदी गई। मि० ट्रूप की सम्पत्ति भी मोल ली गई। यहाँ ख़ज़ाना १ अप्रैल सन् १८६६ को खुला। सन् १८७१ में कैन्टोन्मेंट-कमेटी बनी। अब यहाँ पर गोरों की बड़ी फ़ौज रहती है। चौबटिया, रानीखेत तथा दूलीखेत में गोरे रहते हैं। परगना-अफ़सर भी यहीं रहते हैं।

ताड़ीखेत में राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं द्वारा स्थापित एक राष्ट्रीय शिक्षालय (प्रेम-विद्यालय) है, जहाँ राष्ट्रीय शिक्षा के साथ कताई-बुनाई का कार्य उच्च कोटि का होता है।
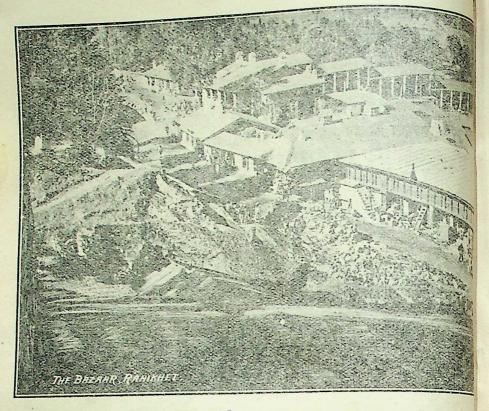
रानीखेत-बाज़ार
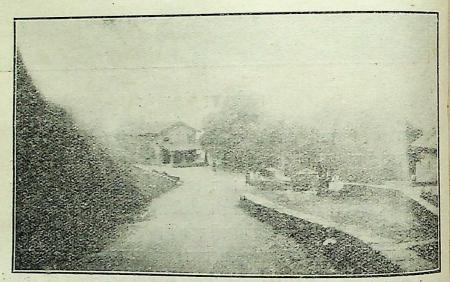
रानीखेत-कचहरी।

(देखो पृष्ठ १०३)
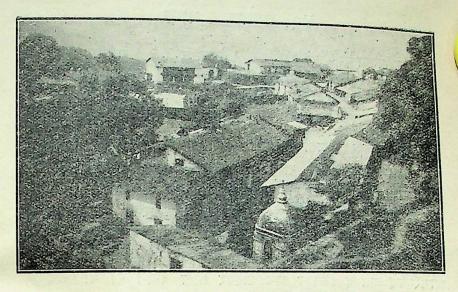
लाल कुर्ती बाज़ार (रानीखेत)
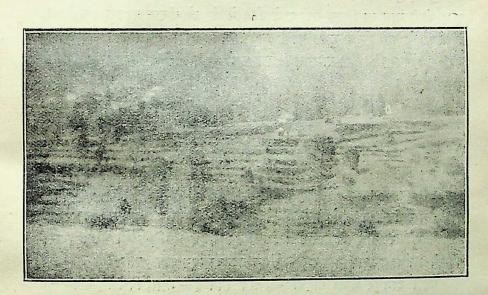
प्रेम-विद्यालय (ताड़ीखेत)

(देखो पृष्ठ १०३)

४२. रामगाड़ व आगर

यह परगना दो पट्टियों का है—(१) आगर, (२) रामगाड़ ।
नदियाँ—रामगाड़, देवदार व खैरनी हैं ।
मुक्तेश्वर व मोटेश्वर महादेव यहाँ हैं ।

यह परगना और परगनों से बहुत छोटा है । यहाँ का पहले श्रीगजुवा-ठींगा नाम का बड़ा ज़ोरदार खस राजा था । उसने राजा भीमचंद को सोते में मार डाला । बाद को वह राजा कल्याणचंद द्वारा मारा गया । तब से यह सारा प्रान्त चंद-राज्य में शामिल हो गया ।

इस पट्टी के सब पहाड़ों में लोहा बनाने के कारखाने थे । इससे इसे आगर कहते हैं । आगर के मानी पर्वतीय भाषा में लोहे के कारखाने के हैं । इस पट्टी के प्रायः सब पहाड़ों में लोहा पाया जाता है । यहाँ के बाशिंदे आगरी कहे जाते हैं, जिनका काम अक्सर लोहा बनाने का था । अब वे खेती तथा अन्य काम करते हैं ।

नथुवाखान, पेउड़ा, लासिंगपानी, सूपी, सतबुंगा, चौखुटा, मजेड़ा, धनाचुली, बुरांसी, पाली मंडी आदि गाँवों के निकट लोहे की खानें हैं । लोहाकोटी नाम का क़िला यहाँ ऊँचे टीले में है, जो वीरान पड़ा है । यहाँ भी राजाओं के समय युद्ध हुआ था । सतबुंगा पर्वत यहाँ सबसे बड़ा है । आलू यहाँ खूब पैदा होते हैं । रामगढ़ में कई फलों के बग़ीचे हैं । यह स्थान बड़ा रमणीक है ।

---

४३. दानपुर

दानपुर हिमालय से मिला हुआ है । इसकी सरहदें जोहार, गढ़वाल, पाली, बारामंडल व गंगोली से मिली हुई हैं । रामगंगा (पूर्वीय) व पिंडर नदी के कुँवारी गाँव तक उत्तर में इसकी सरहद है । दक्षिण की ओर शिखर की चोटी तथा हड़वाड़ व सरयू के संगम तक दानपुर कहा जाता है ।

पहले दानपुर में दो पट्टियाँ थीं, अब तीन हैं—मल्ला, बिचला, तल्ला—किन्तु असली दानपुर मल्लावाला माना जाता है । नाकुरी को भी दानपुर में कहते हैं ।

पहाड़—उत्तर में नंदाकोट, नंदादेवी, नंदाखाट, सुन्दर ढूँगा, बणकटिया

आदि बड़े-बड़े श्वेत छत्रधारी पर्वत हैं। इनके अतिरिक्त कफ़नी कौतेला, धाकुड़ी, चिल्ढा, लौधुरा, किलटोप, गांगुली विनायक ऊँचे-ऊँचे शिखर हैं, जिनकी उँचाई १० से लेकर १३-१४ हज़ार फ़ीट तक होगी। इनके बीच ऊँचे झरनों (जल-प्रपातों) का जल मोतीबिंदु की तरह दिखाई देता है। धाकुड़ी, नामिक, लमतारा प्रसिद्ध व रमणीक जंगल हैं। हरे-भरे जंगलों के बीच से नदियाँ बड़े बेग से बहती हुई अजब बहार दिखलाती हैं। परमात्मा की लीला देखकर मनुष्य अवाक् हो जाता है, और मन-ही-मन धन्यवाद दिये बिना नहीं रहता।

गरमियों में हजारों की संख्या में गूजर लोग डंगरों को यहाँ लाकर पालते हैं। अब यहाँ के लोग भी जंगलात की-सी सख्ती करने लगे हैं। चराई माँगते हैं। इससे गूजर कम आते हैं।

पिंडारी ग्लेशियर—यहाँ पर पिंडारी, सुन्दर ढुंगा व रामगंगा के ग्लेशियर याने गल हैं। पिंडारी ग्लेशियर संसार के सब ग्लेशियरों से अनुपम समझा जाता है। यहाँ को सुन्दर सड़क बनी है और डाक-बँगले भी हैं। इसी से यहाँ जाना सब ग्लेशियरों से सुगम है। यह अल्मोड़ा से ६८ मील है। पिंडारी-ग्लेशियर का वर्णन शब्दों में होना कठिन है।

'गिरा अनयन नयन बिनु बाणी' वाली तुलसीदासजी की उक्ति याद आती है। ग्लेशियर के भीतरी भाग में प्रवेश करने से हिम की हज़ारों-लाखों वर्ष की बनी हुई स्वच्छ शिलाएँ मणियों की भाँति चमकती ज्ञात होती हैं। मानो, प्रकृति का "ताजबीबी का रौज़ा" है, जिसकी दीवारों में दरारें आ गई हों। इसी गल को पार कर ट्रेल साहब, जो यहाँ के पहले कमिश्नर थे, जोहार के मरतोली गाँव में गये थे। इससे इसको ट्रेल-पास कहते हैं। बाद को शायद मि० रटलेज ने भी इसे पार किया है। यह ग्लेशियर तीन तरफ़ बर्फ़ के बड़े पर्वतों से घिरा है। बीच में जो मैदान है, उसे मर्तोलिया पड़ाव कहते हैं। जिससे ज्ञात होता है कि यहाँ पहले रास्ता (Pass) था, जो अब पहाड़ों के गिरने से बंद हो गया। जब पिंडारी को जाते हैं, तो रास्ते में जोहारपानी (ज्वारपानी) व ज्वार नाम के जंगल पड़ते हैं। मल्ला दानपुर में चौड़, हरकोट, धूरकोट, मिकिला, खलमुनी में जो भोटिये रहते हैं, वे पहले पिन्डारी में रहनेवाले कहे जाते हैं। उनके सम्बन्ध अब भी ट्रेल पास को पार कर मरतोली गाँव में होते हैं। इन बातों से स्पष्ट है कि कभी यह स्थान भोटियों से बसा हुआ था।

पक्षी—यहाँ डफी, लुंगा, मुन्याल या हिमालय के मोर होते हैं। डफी, लुंगा

संसार के सब पक्षियों की सुन्दरता को चुराकर हिमालय में शरण लेते हैं, किन्तु यहाँ भी शिकारी इनको मारकर गोश्त खा जाते हैं, और इनके परों से विलायती रमणियों की टोपियाँ सजाई जाती हैं।

जंगली चूहा, जिसे मिरतू कहते हैं, यहाँ बहुत होते हैं। इसकी खाल के गलाबंद (मफ़लर) बनते हैं।

यहाँ के मूल-निवासी दाणू लोग अपने को दानव-देवता समझते हैं। ये कहते हैं, सारे संसार में वर्षा यही बरसाते हैं।

दवाइयाँ—यहाँ भी ज़हर, डोतू, अतीस, भूतकेस, सची, टांटरा आदि-आदि उत्पन्न होते हैं।

वृक्ष—पेड़ों में रागा, चिल्ल, सुराई, सुनेर, देवदार, पांगर, राता-चिम्मल, रतपा, बूरूँश आदि होते हैं। भोजपत्र भी यहाँ होता है। इसमें चिट्ठी-पत्री लिखते हैं। इसकी लकड़ी के बर्तन (फरुवे, ठेकी, पाले वग़ैरह) बहुत मज़बूत, साफ व हलके बनते हैं। बाँझ भी यहाँ कई क़िस्म का होता है, जैसे बांज, रिआंज, स्यांज, फल्यांट, करौज, खरसू, तिलौंग।

यह भी बर्फ़-प्रधान देश है, पर यहाँ से रास्ता तिब्बत को नहीं है। दनपुरिये लोग जोहार के दर्रे (घाटे) से कुछ सौदागरी करते हैं। पर दार्मा व जोहार के बनिस्बत बहुत कम करते हैं। बकरियाँ इस परगने में बहुत पैदा होती हैं। दनपुरिये कुछ बकरियों को अपने लिये रख बाक़ी को जोहारवालों के हाथ बेच देते हैं। हुणियों के साथ इनका व्यापार व आढ़त कुछ भी नहीं है।

दानपुर कोट नामक एक क़िला था, किन्तु इस समय सिर्फ़ चोटी बाक़ी है। दनपुरिये इस क़िले को अपने मूल-पुरुष दानवों का समझते हैं, और इसी के सामने एक शुमगढ़ नामक गाँव है। उसको शुम्भ दैत्य का क़िला कहते हैं। यह दैत्य देवीजी से लड़ा था और मारा गया।

जानवर—दानपुर के पहाड़ों में थार, बरड़, कस्तूरा-मृग बहुतायत से होते हैं। काले व सफ़ेद दो प्रकार के भालू पाये जाते हैं। सफ़ेद बाघ भी बर्फ़ानी इलाक़े में होता है।

यहाँ के लोग वीर होते हैं। वे बाघ, भालू या अन्य जंगली जंतुओं से नहीं डरते। उन्हें ये अनेक प्रकार की तरकीबों से मार डालते हैं। यह लोग सरकारी कर्मचारियों से ज़्यादा, जंगली जानवरों से कम घबराते हैं, क्योंकि ये पढ़े-लिखे कम होते हैं। सीधे-सादे होते हैं। चतुर कर्मचारी इन्हें नाना प्रकार से तंग करते हैं। पल्टन में बहुत से दनपुरिये सिपाही हैं।

सेलखड़ी यहाँ बहुत होती है, किन्तु अन्य कोई खान होने की बात सुनने में नहीं आई।

किम्बदन्तियाँ—दानपुर के लोग कहते हैं कि नंदादेवी पर्वत के पश्चिम तरफ़ ऊँची टिबरी हिमाचल की कव्वालेख के नाम से प्रसिद्ध है। उसमें कव्वों के लाखों पर पड़े रहते हैं। कारण कि उक्त पर्वत कव्वों की काशी कही जाती है। यहाँ कव्वे यदि मरे, तो वैकुंठ को जाते हैं। कहते हैं, जब कव्वा मरने को होता है, तो वह कव्वालेख में चला जाता है। यदि अन्यत्र कोई कव्वा मरा, तो अन्य कोई कव्वा उसका एक पर लाकर कव्वालेख में डाल जाता है। खाती गाँव से ऊपर मलिया धौड़ा पुल पार कर बाईं तरफ़ नंदाकोट की ओर यह पर्वत है।

नंदादेवी के पर्वत में कोई नहीं जा सकता। पहले वहाँ पर जब पूजा करने को पर्वत की जड़ पर जाते थे, तो कहते हैं, बकरे की पूजा कर उसके गले में छुरी बाँध पहाड़ पर 'खदेड़' देते थे। वह चोटी पर जाता था, वहाँ से उसका सिर कटकर पहाड़ पर रह जाता था और धड़ नीचे गिर जाता था। अब कलियुग में ऐसा नहीं होता।

फ़सलें—धान, गेहूँ यहाँ बहुत कम होते हैं। जौ, मड़ुवा, फाफरा ज़्यादा होते हैं। लोग सत्तू भी खाते हैं। घी, दही, शहद यहाँ के बहुत मीठे होते हैं। गरमी व बरसात में भौंरे आकर यहाँ पर पर्वतों की अगम्य गुफाओं व कंदराओं (कफ्फड़ों) में शहद के छत्ते लगाते हैं। वीर दनपुरिये उन दुर्गम्य स्थानों से 'डोकों' (कंडियों) में बैठ रस्से बाँधकर शहद निकाल ही लेते हैं।

हिमालय में उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकार के जंगली फूलों के केशर का यह शहद बड़ा ही सुगंधित व सुस्वादु होता है।

दानपुर में सबसे अन्तिम गाँव झुनी है। इससे क़िस्सा है—"नङ माथी मांसु नैं, झुनी मांथी गौं नैं" नाखून के ऊपर मांस नहीं, झुनी के ऊपर गाँव नहीं।

झुनी के ऊपर हिमालय की दुर्गम दीवारें खड़ी हैं, जहाँ जाना कठिन काम है।

बुक्याल—गरमी व बरसात में यहाँ ८ से १० हज़ार फ़ुट की उँचाई में हरे-हरे चरागाहों में घोड़े, डंगर तथा भेड़, बकरियाँ स्वच्छंद चरने को छोड़ी जाती हैं। बरसात के अन्त में उनको घर ले आते हैं। इन स्थानों को बुक्याल कहते हैं। जानवर यहाँ रहने से हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं। यहाँ के चरवाहों को उनियाल कहते हैं। खाती से दवाली तक पिंडर नदी के दोनों तरफ़ ७ मील

तक निगाले का घना व हरा जंगल सुंदरता में नंद-कानन से कम नहीं है।

दानपुर में निंगाल बहुत होता है। इसकी क़लमें भी बनती हैं। मसालें (छिलुके) भी अच्छी होती हैं। मोस्टे, डग्राके, बल्लम, पिटारे, गोदे, सूप आदि भी बनाते हैं।

दानपुर के लोग घी, शहद, खालें व शिलाजीत बेचते हैं।

यहाँ पर हड़सिल, कपकोट, स.लिंग लोहारखेत तथा शामाधुरा मुख्य स्थान हैं। खारबगड़ में तीनों दानपुरों की सरहद मिलती है। कपकोट सबसे बड़ा गाँव है। सरयू के किनारे मैदान जगह में बसा है। डाकबँगला, डाकघर तथा मिडिल स्कूल यहाँ पर हैं। दूकानें भी हैं। पिंडारी को यही रास्ता है।

देवता—देवता यहाँ के नंदादेवी तथा मूलनारायण उर्फ़ मुलेणा हैं। कुछ भूत तथा अन्य स्थानीय देवता हैं, जो दाणों कहलाते हैं। जैसे लाल दाणों, धामसिंह दाणों, बीरसिंह दाणों। ये लोग वहाँ के राजा या शूरवीर 'पैके' होंगे, जो उस समय पूजनीय हों और मरकर भी ग्राम-देवता माने गये हैं।

कहते हैं, भगवती ने शुमगढ़ में शुम्भ, निशुम्भ दैत्यों को मारा, इसी से इसका नाम शुमगढ़ है। जब ये दैत्य भागकर गुफा में छिपे, तो भगवती ने शिला तोड़ चक्र से दैत्यों को मारा। वहाँ से ख़ून की धारा बही। अब वह पानी की धारा हो गई है। लाल काई ख़ून-सी ज्ञात होती है। यह गाँव क़िले की तरह है। यहाँ पांडु-शिला भी है, जिसमें पांडवों के पैरों के चिह्न बताये जाते हैं। वहीं पर अर्जुन ने बाण मारकर ठंडा पानी पीने को निकाला था, जिसको अब 'पिंडर पाणी' कहते हैं।

मेले—(१) वैशाखी पूर्णमासी को भद्रतुंगा के सरयूमूल नामक स्थान में बड़ा मेला होता है। बड़े तीर्थों की तरह यहाँ श्राद्ध व मुंडन भी होता है। (२) बधियाकोट में नंदादेवी के नाम का मेला लगता है। बदरीनाथ से जब भगवती आईं, तो पहला विश्राम यहाँ हुआ, ऐसा कहा जाता है।

---

४४. कत्यूर

इस परगने की सरहद इस प्रकार है—पूर्व में सरयू, पश्चिम में बारामंडल, दक्षिण में दानपुर तथा उत्तर में गढ़वाल व पाली पछाऊँ हैं।

पहाड़—पहाड़ इसमें जगथाण का धुरा तथा गोपालकोट हैं।

नदियाँ—गोमती व गरुड़गंगा।

यहाँ पर कुछ जगह देश की तरह मैदान है। वहाँ गरमी व बरसात में ताप-ज्वरों (Malaria) की बीमारी फैलती है।

क़िले यहाँ पर गोपालकोट तथा रणचुला हैं। गोपालकोट (६०५०′) में कत्यूरी-राजाओं का ख़ज़ाना रहता था। चंदों के समय फ़ौज रहती थी। अब तो गोपालकोट नाममात्र का क़िला है, इस समय यहाँ पर पहाड़ ही पहाड़ है। रणचुला अभी तक विद्यमान है। यह बड़ी सुन्दर जगह में है। यहाँ से मल्ला व बिचला कत्यूर का तथा सर्प की तरह घूमनेवाली गोमती नदी का दृश्य बड़ा ही मनोहर दिखाई देता है। यह रणचुला-क़िला नगर के ऊपर है। सूर्यवंशी कत्यूरी राजाओं की राजधानी यहाँ थी। नाम उस नगर का कार्तिकेयपुर उर्फ़ करबीरपुर था, जो बिगड़ते २ कत्यूर हो गया। टूटे हुए मकान व देव-मंदिर यहाँ बहुत हैं। राजा की आम कचहरी का दृश्य भी टूटा-फूटा पड़ा है। अब इस शहर को तैलीहाट तथा शेलीहाट कहते हैं। इन दो हाटों के बीच में गोमती नदी बहती है। मंदिरों की कारीगरी देखने योग्य है और देवताओं की मूरतें भी एक से एक साफ़-सुथरी बनी हुई हैं। इसी शहर के सामने दक्षिण की तरफ़ को एक पक्का तालाब भी बना था, जो इन दिनों मिट्टी से दब गया है। प्राचीन नगर के पूर्व की तरफ़ गोमती के किनारे बैजनाथ नामक शिव-मंदिर है। इसके आगे एक बड़ा कुंड है, जिसमें हरिद्वार के ब्रह्मकुंड की तरह मछलियाँ देखने में आती हैं।

कहते हैं कि पुराने ज़माने में जहाँ पर अब कत्यूरी लोग खेती करते हैं, चार मील से कुछ ज़्यादा लंबा-चौड़ा तालाब था। वह तालाब टूट गया। तब से वहाँ पर खेती तथा आबादी हुई। अब भी ग़ौर से देखने में आता है कि नीचे की ओर दो बड़े-बड़े पाषाण दोनों ओर खड़े हैं। इन्हीं के बीच के पत्थरों को तोड़कर संभव है, तालाब निकल पड़ा हो। इस तालाब के भीतर की ज़मीन गरम है। यहाँ भी पहले कहते हैं कि लोगों को देश-निकाले की सज़ा दी जाती थी। जो यहाँ आकर बसा, वह राजा का आसामी कहा जाता था। उसे फिर कोई और सज़ा न होती थी। इन्हीं लोगों से शुरू में यहाँ की ज़मीन आबाद कराई गई थी।

इस परगने में तीन पट्टियाँ हैं, जो अब मल्ला, तल्ला व बिचला कत्यूर के नाम से पुकारी जाती हैं।

बागीश्वर—बागीश्वर नाम का प्राचीन शिव-मंदिर तल्ला कत्यूर में सरयू तथा गोमती के किनारे है। इसे कत्यूरी राजाओं ने बनवाया था। पुराने लोग तो कहते हैं, बागीश्वर 'स्वयंभू' देवता हैं, यानी स्वयं प्रकट हुए, किसी के
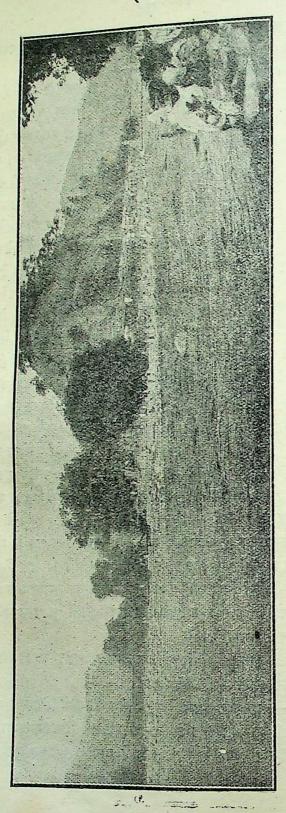
बागीश्वर-संगम

स्थापित किये नहीं हैं। इस मंदिर के दरवाज़े में एक पत्थर रक्खा है, जिसमें ८ पुश्त तक की कत्यूरी राजाओं की वंशावली खुदी है। इस मंदिर में जो ज़मीन
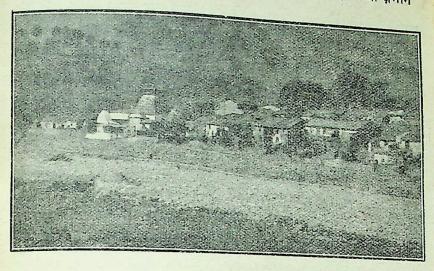
बागीश्वर का एक दृश्य
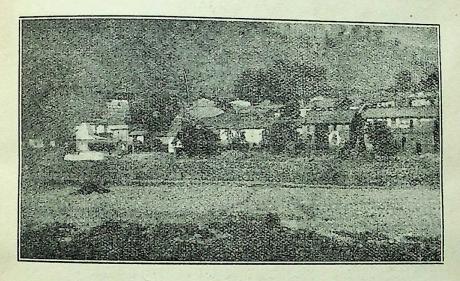
बागीश्वर का एक और दृश्य

चढ़ाई गई है, उसकी वह सनद है। इसका सविस्तर वर्णन अन्यत्र किया गया है। कार्त्तिक-पूर्णिमा, गंगा-दशहरा व शिवरात्रि को छोटे मेले तथा उत्तरायणी को बड़ा मेला लगता है। यहाँ पर अच्छा बाज़ार है। डाकबँगला है।

मिडिल स्कूल है। उत्तरायणी को चारों ओर के लोग आते हैं। हुणियाँ (तिब्बती लामे या खंपे) जोहारी, शौके, दरम्याल, गढ़वाली, दनपुरिये, कुमय्यें, देशी सौदागर सब आते हैं। यहाँ पर ऊनी माल कम्बल, चुटके, दन, पंखियाँ, पशमीने, चँवर, कस्तूरी, शिलाजीत, गजगाह, निरबीसी, नमक, सुहागा, कपड़ा, जंबू, गंद्रायनी, मेवे, पान, सुपारी आदि-आदि की तिजारत होती है। प्रायः सब सामान हमेशा मिलता है। गरमी में लोग
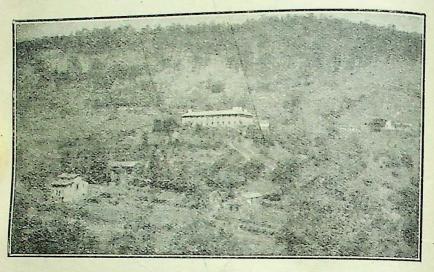
कांडा

कम रहते हैं। इधर-उधर चले जाते है। यहाँ से नौ मील पर कांडा भी उत्तम स्थान है। यहाँ भी मिडिल स्कूल है।

क़ुली-उतार-आन्दोलन

बागीश्वर धार्मिक ही नहीं, वल्कि राष्ट्रीय तथा स्वराज्य-आंदोलन का भी केन्द्र सन् १६२१ से रहा है। सन् १६२१ में ब्राह्मण क्लब चामी के बुलावे से राष्ट्रीय नेता श्रीहरगोबिन्द पन्त, लाला चिरंजीलाल तथा राष्ट्रीय सेवक श्रीबदरीदत्त पांडे प्रभृति सज्जन बागीश्वर पहुँचे। वहाँ एक लाल टूल में ये शब्द लिखे थे—"क़ुली-उतार बंद करो।" राष्ट्रीय नेताओं ने तमाम में नगर-कीर्तन किया। लोगों को बातें समझाईं। कुमाऊँ के प्रायः सब लोगों को नौकरशाही सरकार ने क़ुली बना रक्खा था। वे मनमाने दामों पर बोझ ले जाने को बाध्य थे। मना करने पर दंडित होते थे। सरकारी कर्मचारी उन्हें तंग करते थे।

वहाँ ४०,००० लोगों ने नेताओं के कहने से सत्याग्रह किया। गंगाजल
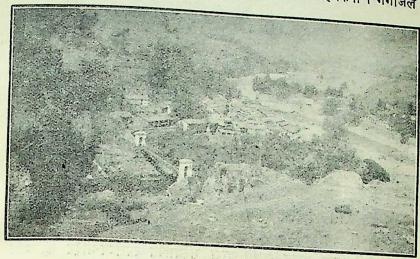
बस्ती तथा बाज़ार (बागीश्वर)

उठाकर प्रतिज्ञा की कि अब से वे क़ुली न कहलावेंगे, न ज़बरदस्ती बोझ

क़ुली-उतार-आन्दोलन (बागीश्वर)
[पं० बदरीदत्त पांडेजी गंगा-तट पर व्याख्यान दे रहे हैं]

ले जावेंगे। २१ अँगरेज़ अफ़सर थे, जिनके नेता डिप्टी-कमिश्नर वहाँ थे। कुछ पुलिस भी थी। नेताओं को सरकार गिरफ़्तार करना चाहती थी। कहते हैं, गोली चलाने की भी बात थी, पर फ़ौजी अफ़सरों ने लोगों के ऐक्य तथा साहस को देखकर तथा अपने पास गोली-बारूद कम देख ज़िलाधीश को ऐसा करने से मना किया। ज़िलाधीश ने नेताओं को गिरफ़्तार करने की धमकी दी, पर नेता दृढ़ रहे, और लोग भी अटल रहे। वर्षों की यह कुप्रथा तीन दिन के सत्याग्रह में दूर हो गई। कोई भी उपद्रव नहीं हुआ। सब काम शांति-पूर्वक हो गया। तमाम देश चैतन्य हो गया। नौकरशाही लाख प्रयत्न करके हार गई। अन्त में सबल लोकमत के सामने उसे झुकना पड़ा। सत्याग्रह का ऐसा सफलीभूत उदाहरण संसार के इतिहास में शायद ही कहीं मिलेगा। वह दृश्य देवताओं के देखने योग्य था।

इसी की बधाई देने को सन् १९२९ में महात्मा गांधी बागीश्वर गये, और वहाँ देशभक्त मोहन जोशी द्वारा संस्थापित स्वराज्य-मंदिर की नींव डाली। पश्चात् आप लगभग १५ दिन तक कत्यूर व बौरारौ के बीच कौसानी के डाक-बँगले में रहे।

सन् १९२१ के बाद बागीश्वर में कुछ-न-कुछ राष्ट्रीय आन्दोलन होता रहा है। श्रीमोहन जोशीजी के उद्योग से सन् १९३३ में एक ज़बरदस्त स्वदेशी-प्रदर्शनी हुई।

खानें—जगथाण गाँव के निकट लोहे की खान है। गौल पालड़ी व खरही में ताँबे की भी खानें हैं।

कत्यूर में, राजधानी के अंत होने के बहुत दिनों बाद तक, कहते हैं, पुराने समय का गड़ा हुआ धन व बर्तन यत्र-तत्र मिलते थे। इसी कारण लोग नौले, चबूतरे तथा पुराने खँडहरों को खोदते थे। अब ये मंदिर सुरक्षित हैं। सब से पुराने कुमाऊँ के सूर्यवंशी ख़ानदान के कत्यूरी राजा यहीं राज्य करते थे। यह भी कहा जाता है कि उनका राज्य-विस्तार खस, हूण, किरात, बंग, द्रविड़ आदि देशों में भी था। पश्चिम में कत्यूरी राजाओं की राज्य-सीमा कोट कांगड़े तक, पूर्व में सिक्खिम तक और दक्षिण में रोहिलखंड तक थी। यह बात अँगरेज़ी लेखकों ने भी स्वीकार की है।

यहाँ पर किसी चोटी का नाम चित्तौरगढ़ भी बताया जाता है। वहाँ पर उस देश के राजाओं के प्रतिनिधि महल बनाकर रहते थे। राजधानी का नाम कार्त्तिकेयपुर था।

गरुड़ गंगा के किनारे टीट में एक बदरीनाथ का मंदिर है। गरुड़,

टीट, बैजनाथ तथा डंगोली में छोटी बस्तियाँ हैं। गरुड़ के पास की नई बस्ती में गांधीजी को मानपत्र दिया गया था। यहाँ से गढ़वाल तथा बागीश्वर को रास्ता जाता है। गरुड़ तक मोटर भी जाती है।

---

४५. वर्तमान पट्टी व परगने

ऊपर जिन पट्टी व परगनों का ज़िक्र आया है, वे चंद व गोरखों के समय के हैं। इस समय की पट्टियाँ ये हैं:—

परगना पट्टियाँ

१. दारमा— व्यांस, चौदांस, दारमा मल्ला व तल्ला।

२. जोहार— मल्ला जोहार, गोरीफाट, तल्लादेश।

३. दानपुर— दानपुर मल्ला और तल्ला व बिचला, दुग, कत्यूर मल्ला और तल्ला व बिचला, नाकुरी।

४. सीरा—आठबीसी मल्ली और तल्ली, बाराबीसी, डिडीहाट, माली।

५. अस्कोट—अस्कोट मल्ला और तल्ला।

६. सोर—खड़ायत, खरकदेश, महर, नयादेश, रावल, सेटी मल्ली और तल्ली, सौन, मल्ला और बिचला व तल्ला वल्दिया।

७. कालीकुमाऊँ —चालसी, चारआल तल्ला मल्ला, व गुमदेश, गंगोल, खिलफती फाट, पालबिलौन मल्ला व तल्ला, फड़का, रेगड़ू, सिपटी, सुईबिसुंग, अस्सी, तल्ली रौ, तल्लादेश।

८. चौगर्खा—दारुण, खरही, लखनपुर तल्ला व मल्ला, रीठागाड़, रंगोड़, सालम मल्ला व तल्ला, डोलफाट।

९. गंगोल— बेल, भेरंग, बड़ाऊँ, कमश्यार, पुंगराऊ, अठीगाँव।

१०. बारामंडल—विसौद, बौरारौ वल्ला व पल्ला, द्वारसूं, कैड़ारौ, कालीगाड़, खासपरजा, उच्यूर, रिऊनी, स्यूनरा मल्ला व तल्ला, तिखून मल्ला व तल्ला, अठागुली पल्ली व वल्ली।

११. फल्दाकोट—चौगाँव, धुराफाट, कंडारखुवा, मल्ली डोटी।

१२. पाली—मल्ला और बिचला व तल्ला चौकोट, मल्ला और बिचला व तल्ला दोरा, गिवाँड़ पल्ला और तल्ला व वल्ला, मल्ला और तल्ला ककलासौं, पल्ला व वल्ला नया, सिलोर मल्ला व तल्ला, सल्ट वल्ला और पल्ला तथा तल्ला व मल्ला।

अल्मोड़ा जिले में ५०६६ गाँव हैं, जिनमें प्रायः उतने ही पधान हैं और १००-१५० थोकदार हैं। पटवारी लगभग ८० के हैं।

यहाँ पर ४ तहसीलें हैं—(१) रानीखेत, जो पाली तहसील भी कहलाती है, (२) अल्मोड़ा, (३) चंपावत, (४) पिठौरागढ़। उक्त परगने चार डिप्टी कलेक्टरों के शासन में हैं, जो परगना-अफ़सर भी कहलाते हैं—(१) बारामंडल, (२) पाली व फल्दाकोट, (३) गंगोली, चौगर्खा, काली कुमाऊँ, (४) दारमा, जोहार, दानपुर, सीरा, अस्कोट, सोर।

इन सबके अफ़सर डिप्टी कमिश्नर हैं।

चार तहसीलों में से दो में तो तहसीलदार हैं और दो में नायब तहसीलदार।

नैनीताल

परगना

१. पहाड़ी पट्टियाँ—छखाता, कोटा, धनियांकोट, रामगढ़, ध्यानिरौ, कुटौली, महरूड़ी।

२. भावर—छखाता, चौभैंसी, कोटा, चिलकिया।

३. तराई—रुद्रपुर, गदरपुर, बाजपुर, किलपुरी, नानकमता, बिलारी।

४. काशीपुर—काशीपुर।

नैनीताल में १४४२ गाँव हैं तथा उतने ही पधान हैं।

तहसीलें ये हैं –(१) नैनीताल, (२) हल्द्वानी, (३) किच्छा, (४) बाजपुर, (५) खटीमा, (६) काशीपुर।

एस॰ डी॰ ओ॰ या परगना-अफ़सर इस प्रकार हैं—(१) तराई, (२) काशीपुर, (३) नैनीताल।

इन सबके ऊपर डिप्टी कमिश्नर शासन करते हैं।

---

४६. पर्वतीय गाँव

कूर्माचल में घर ज़्यादातर पत्थर के बने होते हैं। छत ढालू होती है। छत में भी पत्थर या पटाल लगे होते हैं, ताकि पानी बह जावे। पानी ज़्यादा होने से यहाँ घास के घर रह नहीं सकते। छप्पर पर्वतों में बहुत कम हैं। तराई भावर में ज़्यादा हैं। अब पहाड़ में पत्थरों के बदले छत में टीन लगाने लगे हैं। पर्वतीय गाँव दूर से देखने में बहुत सुन्दर दिखाई देते हैं, पर नज़दीक जाने से यह भ्रांति दूर हो जाती है। कहीं-कहीं बहुत मैला दिखाई देता है।

खाद (परसा) यत्र - तत्र पड़ी रहती है। टट्टी-पेशाब भी लोग घरों के पास करते हैं, जिससे मकान के पास बड़ी दुर्गन्ध आती है।

गाँववाले घर को कुड़ कहते हैं। नीचे के खंड को गोठ और उसके बरांडे को 'गोठमाल' कहते हैं। गोठ में अक्सर गायें रहती हैं। किसी-किसी के गौशाले अलग होते हैं। ऊपर का हिस्सा 'मझेला' कहलाता है। उसका बरांडा यदि खुला हो, तो उसे 'छाजा', यदि बंद हो, तो 'चाख' कहते हैं। छत को 'पाखा' कहते हैं। सदर दरवाज़ा 'खोली' के नाम से पुकारा जाता है। कमरे को खंड। आँगन को 'पटाँगन' भी कहते हैं, क्योंकि वह पत्थरों से पटाया जाता है। घर के पिछले भाग को 'कराड़ी' कहते हैं। रास्ते को 'गौन, ग्वेट या बाटो' कहते हैं। बहुत से मकान जो साथ-साथ होते हैं, उन्हें 'बाखली' कहते हैं। छत के ऊपर घास के 'लूटे' या कद्दू रक्खे रहते हैं। यदि गाँवों में थोड़ा सा भी सफ़ाई पर ध्यान दिया जाता, तो बहुत-सी बीमारियाँ निकट न आतीं।

---

४७. खेती-बाड़ी

खेती-बाड़ी का काम यहाँ पर प्रायः प्राचीन ढंग से होता है। पहाड़ों की ढालों में काट-काटकर खेत बनाये गये हैं, जिनमें अनाज बोया जाता है। जहाँ कहीं हो सकता है, पर्वतीय नदियों से नाली काटकर नहर ले जाते हैं, जिन्हें—"गूल" कहते हैं। उनसे सिंचाई होती है। कहीं-कहीं पहाड़ की घाटियों में नदी के किनारे बड़ी उपजाऊ ज़मीनें हैं। ये 'सेरे' कहे जाते हैं। जल-सिंचित ज़मीनों को सेरा कहते हैं। जिस जमीन में पानी से सिंचाई नहीं हो सकती, वह 'उपराऊ' कहलाती है। गाँव के हिस्से 'तोक, सार, टाना' आदि नामों से पुकारे जाते हैं।

यों तो खेती हल चलाकर होती है। किन्तु कहीं-कहीं ऐसी पर्वतीय जगहें हैं, जहाँ बैल नहीं जा सकते। वहाँ कुदाली (कुटल) से खोदकर खेती करते हैं। फ़सलें प्रायः दो होती हैं। तराई भावर में कहीं-कहीं तीन फ़सलें होती हैं। फ़सलों में जो-जो चीज़ें पैदा होती हैं, उनका ब्यौरा नीचे दिया जाता है—

ख़रीफ़

अनाज—धान, मडुवा, मानिरा, कौणी, चीणा, चौलाई या चूआ, उगल (फाफरा), मक्का।

तराई भावर में इनके अलावा, ज्वार, बाजरा, गानरा, कोदों आदि भी होते हैं।

दालें - उर्द, भट, गहत, रैंस, अरहर, मूँग। अरहर पर्वतों में नहीं होता।

तिलहन—सरसों, तिल, भंगीरा।

रबी

अनाज—गेहूँ, जौं, भावर में गानरा।

दालें—मसूर, मटर (चना भावर तराई में)।

तिलहन – अलसी, सरसों।

रुई यहाँ पर यत्र-तत्र कुछ होती है। फ़सल खरीफ़ के साथ भाँग भी बोई जाती है, जिसके पत्तों से चरस बनती है। इसके बीज पीसकर जाड़ों में तरकारी में डालकर खाये जाते हैं। बड़े गरम होते हैं। भाँग के रेसों से रस्सियाँ तथा बोरी का कपड़ा बनता है।

गन्ना कहीं-कहीं पहाड़ों में भी बहुत होता है। अदरख, हलदी, मिर्च बहुतायत से बाहर भेजे जाते हैं। आलू व घुइयाँ (पिनालू) बहुत होते हैं। बंडे (गडेरी) ८-१० सेर तक के होते हैं, और कलकत्ते तक को भेजे जाते हैं।

तम्बाकू तिज़ारत के लिये नहीं, पर निजी खर्च को कहीं-कहीं बोया जाती है।

लोगों की मुख्य गुज़र खेती से होती है। पर खेती लोगों के पास थोड़ी-थोड़ी होने से सब बातों की गुज़र उससे नहीं होती, इससे लोग नौकरी करते हैं। तमाम भारत में, खासकर उत्तरी भारत में बहुत-से लोग उच्च सरकारी व अन्य नौकरियों में फैले हैं। बर्मा में पल्टनों में हैं। छोटी-छोटी नौकरियाँ भी करते हैं। एक पल्टन केवल कुमाऊनियों की है। दूसरी बटालियन टूट गई है। कुछ यत्र-तत्र अन्य बटालियनों में हैं। कुछ बंबई, कराची, कलकत्ता तथा हल्द्वानी-काठगोदाम-अल्मोड़ा-लाइन में मोटर भी चलाते हैं। दिल्ली, मेरठ, बनारस, बरेली के होटलों में नौकर हैं। केवल ज़मीन की लगान से ही मालगुज़ारी अदा नहीं कर सकते। इधर-उधर नौकरी से पैसा लाकर सरकारी लगान चुकाते तथा गृहस्थी चलाते हैं।

कुमाऊँ में कुमाऊँ के लायक़ अनाज पैदा नहीं होता। तराई-भावर से अनाज पर्वतों को जाता है, किन्तु यह ज़्यादातर नगरों को जाता है, जैसे नैनीताल, भवाली, रानीखेत, अल्मोड़ा, मुक्तेश्वर आदि। देहात अन्न के बारे में प्रायः स्वावलंबी हैं।

---

४८. साग-सब्ज़ी

तरकारियाँ यानी साग-सब्ज़ियाँ यहाँ पर प्रायः सभी होती हैं। खास-खास ये हैं—आलू, प्याज, मूली, घुइयाँ, गडेरी, 'गावे', ककड़ी, कद्द, कोइड़ा (भुज), लौकी, तोरई, चरचिंडे, तरुड़, ज़मीकंद (सुरण), शलजम, पालक, धनिया, मेथी, मटर, बाकुला, टिमाटर, बेथुवा, सोया। गोबी, सलाद, हाथी-चुक, रूबर्ब आदि विलायती चीज़ें भी पैदा होती हैं। गेठी व तरुड़ यहाँ की ख़ास तरकारियाँ हैं, जो घर व जंगल में भी होती हैं।

लाई, उगल, चूआ या चौलाई आदि उन ग़रीब किसानों की तरकारियाँ हैं, जिन्हें प्रायः नमक के साथ रोटी खानी पड़ती है। ये लोग जंगलों से "कैरुवा, लिंगुड़, कोथ्यूड़ा" आदि भी मौसम में ले आते हैं।

---

४९. फूल

फूल कुमाऊँ में बहुत होते हैं। मुख्य ये हैं बेला, चमेली, चंपा, गुलाब, कुंज, हंसकली, केवड़ा, जुही (जाई), रजनी-गंधा (हुस्नहाना), गेंदा, गुलदावरी, डलिया, गुलबहार, मोतिया, नरगिस, कमल सूर्य व चन्द्र तथा अन्य प्रकार के। शिलिंग, जिसकी सुगंध दूर तक फैलती है, इन पर्वतों का एक खास फूल है। यह सितंबर के बाद फूलता है। बुरांस जब वसंत में जंगलों में खिलता है, तो टेसू से कई गुना सुन्दर दिखाई देता है। गुलबाँक भी कई क़िस्म का होता है।

अँग्रेज़ी फूलों में ऐस्टर, बिगोनिया, डलिया, हौलीहौक, कैलोसिया, कौक्स कौम, टफ़ूशिया, स्वीट विलियम, स्वीट सुल्तान, जीरेनियम, पिटूनियाँ, जिनियाँ, डेज़ी, काग़ज़ी फूल आदि होते हैं।

देशी फूल खुशबूदार होते हैं। अँगरेजी फूल देखने में उत्तम होते हैं, पर विशेषतः निर्गंध होते हैं।

हिमालय के पास तथा जंगलों में नाना प्रकार के जंगली फूल खिलते हैं, जिनमें कई बड़े सुन्दर व खुशबूदार होते हैं। कुछ ज़हरीले भी होते हैं।

---

५०. फलों के नाम

घरेलू फल—अखरोट, आलू बुखारा, अलूचा, आम, इमली, अमरूद, अनार, अंगूर, आड़ू, बड़हल, बेर, चकोतरा, (इसे अठन्नी भी कहते हैं), चेरी (पयं), गुलाबजामुन, कटहल, केला, लीची, लोकाट, नारंगी,

नासपाती (गोल, तुमड़िया तथा चुसनी), नींबू, पांगर (Chestnut), पपीता, शहतूत (कीमू), सेव, खरबूज़, तरबूज़, फूट, खुमानी, काकू, अंजीर आदि फल कुमाऊँ में होते हैं।

जंगली फल—आंचू (लाल व काले हिसालू), अंजीर (बेड़ू), बहेड़ा, बेल, बैड़ा, आँवला, बनमूली, बननींबू, बेर, बमौरा, भोटिया बादाम, स्यूँता (चिलगोज़ा), चीलू (कुशम्यारू), गेठी, घिंघारू, गूलर, हड़, जामन, कचनार, काफल, खजूर, किल्मोड़ा, महुआ, मौलसिरी, मेहल, पदम (पयं), च्यूरा, कीमू, तीमिल, गिंवाई आदि-आदि कुमाऊँ के जंगलों में होते हैं।

---

५१. लकड़ी

जितनी लकड़ियाँ, घास व वनस्पतियाँ कूर्मांचल के जंगलों में उत्पन्न होती हैं, उनको कौन गिना सकता है, ज़्यादातर इन पेड़ों से काम पड़ता है, इनको प्रायः सब लोग जानते हैं:—

अखरोट, अयाँर, अरंडी, अशोक, अर्जुन, आम, इमली, उतीस, कचनार, कदम, कैल, कीकड़, खैर, खड़क, खरसू, गेठी, चंदन (तराई में कुछ पेड़ चंद-राजाओं ने लगाये थे।), चीड़, च्यूरा, जामन, तुन, देवदारु, नीम, पदम पाँगर, फयाँट, पपड़ी, बबूल, वेल, बड़, बिचैण, बाँझ, बेंत, बुराँस, बाँस, मालझन (मालू), भौरू, मेहल, भेकुल, भोजपत्र, रिंयाज, राई, रीठा, स्याँज साल, शीशम, हल्दू आदि-आदि।

इन पेड़ों की लकड़ी देशांतरों को जाती है: —

पहाड़ से—चीड़ देवदारु, तुन।

तराई भावर से—साल, शीशम, हल्दू, खैर।

पहले 'सिद्ध बड़्वा' के पेड़ों से पहाड़ी काग़ज़ बनता था, जो मज़बूत होता था। बाहर को भी यह काग़ज़ जाता था, पर अब काग़ज़ भावड़ घास तथा बाँसों से देशों में कलों द्वारा बनाया जाता है। अब पहाड़ी काग़ज़ बहुत कम बनता है।

---

५२. उद्योग-धंधे

उद्योग-धंधे यहाँ पर साधारण रहे हैं। कहते हैं कि पहले यहाँ कपास बोई जाती थी और कोली कपड़ा बुनते थे। इस कपड़े को 'घर-बुण' (Home-Spun) कहते थे। घर-घर चरखे (रहटे) चलते थे, पर बाद

को कल के कपड़े के चलने से यह रोज़गार मारा गया। ४०-५० हज़ार कोली, जो कपड़ा बुनते थे, बेकार हो गये। विदेशी कपड़े के सामने स्वदेशी की दाल न गली। स्वदेशी-आन्दोलन के बाद कुछ ऊनी व कुछ सूती कपड़ा यत्र-तत्र बनने लगा है। कपड़े का ज़्यादा कारबार काशीपुर में है। वहाँ जुलाहे बहुत हैं। कपड़े की तिजारत भी काशीपुरवालों के हाथ में है। वहाँ खद्दर व गाढ़ा, दोनों प्रकार के कपड़े बनते हैं। काशीपुर और जसपुर में छपाई व रँगाई का काम अच्छा होता है।

ऊन का काम दानपुर, जोहार, दार्मा में होता है। कम्बल, पंखी, पट्टू, दन व थुलमे बनते हैं। ये चीज़ें ज़्यादातर बागीश्वर व जौलजीबी के मेलों में बेची जाती हैं। स्वदेशी-आन्दोलन के प्रभाव से ताड़ीखेत-प्रेमविद्यालय में भी ऊनी माल व ग़लीचे बनने लगे हैं। बागीश्वर, गणनाथ, सालम आदि में भी आश्रम खुले। ज़िला-बोर्ड अल्मोड़ा ने भी स्कूलों में तकली का प्रचार किया। जगह-जगह लड़कों को ऊन कातने का काम सिखाया गया। उस कते हुए ऊन का कपड़ा बनाने के लिये बयनशाला भी खोली गई। उद्देश्य इसका यह है कि लड़के कपड़ा बुनने का कारबार सीख जावें। पर ये सब कारबार अभी बाल्यावस्था में हैं। काश्मीर की तरह इनकी जड़ जमी नहीं है। जिस प्रकार वहाँ से अच्छे-अच्छे ऊनी कपड़े सस्ते दामों में सारे भारतवर्ष में जाते हैं, उसी प्रकार जब कूर्माचल से भी सुघड़, सुन्दर व सस्ता ऊनी माल बनकर बाहर को जाने लगेगा, तभी स्वदेशी कपड़े की उन्नति होनी मानी जायगी। अभी तो घर की खपत को भी कपड़ा नहीं बनता है। उद्योग-विभाग ने भी यहाँ पर एक बुनने का स्कूल खोला है। इसमें देशी-विदेशी सूत सभी क़िस्म का काम में आता है।

खानें—यहाँ सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, शीशा, हरताल, सुहागा आदि धातुओं की खानें हैं। सोना-चाँदी ज़्यादातर तिब्बत से आता है। कुछ नदियों की रेत में से निकलता है। नमक भी भोट की ओर होता है। सौन-आगरी लोग लोहा, ताँबा निकालकर साफ़ करते थे। कुछ कर राजा को देते थे। यहीं की धातु से प्रायः सब चीजें यहाँ तक कि अस्त्र-शस्त्र भी बन जाते थे।

बाद को जब यह प्रान्त सन् १८१५ में अँगरेज़ों के अधिकार में गया, तो सरकार ने यहाँ की खानों से कच्ची धातु निकालकर नमूने कलकत्ते भेजे। नमूने अच्छे न निकले। एक में २४ फ़ीसदी, दूसरे में २१ फ़ीसदी लोहा निकला। सन् १८२६ में दूसरी रिपोर्ट सरकार के पास गई। कप्तान ड्रमंड व मि० बिलकिन ने १८३८ से १८४१ तक ताँबे का कारबार चलाया। ३४१५)

साल की मदद सरकार ने दी, इसमें ७३८४) का घाटा रहा। यह बात गढ़वाल की है।

सन् १८५६ में ईस्टइन्डिया कंपनी ने मि० सौबेरी को लोहा गलाने के लिये कुमाऊँ में भेजा। यहाँ पर रामगाड़, देचौंरी, खुरपाताल में लोहे के कारबार खोले गये। पश्चात् डेवीज़ ऐन्ड कंपनी ने भी काम करने की ठानी। सरकारी काम में टोटा आया, तो सरकार ने खुरपाताल का कारबार सन् १८५८ में उक्त कंपनी के हाथ बेच डाला। देचौंरी का कारबार सन् १८६१ में ड्रमंड कंपनी ने ख़रीदा। १८६२ में ये दो कंपनियाँ 'नॉर्थ आफ़् इन्डिया कुमाऊँ आइरन वर्क्स कंपनी' के नाम से एक हो गईं। सरकार ने जंगलात के क़ानून भी इनके वास्ते काफ़ी ढीले कर दिये। जितनी लकड़ी चाहें, ये लोग जंगलों से काट सकते थे। सरकार ने इनसे भी कई शर्तें लिखाईं, पर १८६४ में इस कंपनी का दिवाला पिट गया। बाद को जंगलात के क़ानून सख़्त होने और खानों में से विना सरकारी आज्ञा के धातु न निकालने का हुक्म होने से ये कारबार बंद हो गये। कंपनियों के टूटने के बाद भी सौन-आगरी यत्र-तत्र से लोहा निकाल ही लेते थे, पर नियमों की कड़ाई से उन्हें कारबार बंद करने पड़े। उन्होंने खेती का काम कर लिया।

सोना-चाँदी तिब्बत से यहाँ आता था। पहले ६० ग्रेन सोना फाटंग (सारसू) में बाँधकर सिक्के का प्रमाण माना जाता था। १० से १२ हज़ार तक का सोना हर साल बागीश्वर में १८४५ से १८५० तक आता था। चाँदी भी ३० से ४० हज़ार तक की वहाँ से आती थी।

गौल पालड़ी की ताँबे की खान के पास शीशा भी मिलता है। दानपुर में भी शीशा पाया जाता है।

हरताल—एक खान मुन्स्यारी में है।

Lignite—भीमताल में पाया जाता है।

Graphite—कलमटिया, बानणी, फलसीमी आदि में।

गंधक—मुन्स्यारी, नैनीताल, नारगोली, खारबगड़, काठगोदाम आदि में।

सुहागा—तिब्बत से आता है। रामनगर में साफ़ होता है। वहाँ कई कारखाने हैं।

खड़ी मिट्टी—छखाता में तथा कालाढूँगी के पास निहाल नदी में। 'कमेट' तो कई स्थानों में मिलताहै, जो साफ़ करने से खड़ी मिट्टी का काम दे सकता है।

शिलाजीत—यहाँ कई स्थानों से पत्थर निकाले जाते हैं, जिनसे दवा तय्यार होती है।

चूना—जगह-जगह में इसकी खानें हैं।

फिटकिरी—नैनीताल व खैरना के बीच जाखगाँव में पाई जाती है।

जालीगौश—यह भी यत्र-तत्र पाया जाता है। इसकी चिमनियाँ बनती हैं, तथा अभ्रक नामक देशी दवा भी बनती है।

अठकिन्सन साहब लिखते हैं—"धातु कुमाऊँ में बहुत हैं और अच्छी हैं, किन्तु यहाँ पर पत्थर का कोयला न होने तथा विदेशी वस्तुओं की प्रति-स्पर्द्धा से ये कारोबार चल नहीं सकते।"

स्वदेशी सरकार स्थापित होने पर जल-प्रपातों से सस्ती विद्युत्-शक्ति उत्पन्न कर यहाँ पर नाना प्रकार के कल-कारखाने खोलकर उद्योग-धंधों की वृद्धि करना स्वदेशी व स्वराज्य के समर्थकों का आवश्यकीय कार्य होगा।

लीसा—यहाँ से अच्छी तादाद में बाहर को जाता है। चीड़ के पेड़ों से यह निकाला जाता है। पहले भवाली में तारपीन बनाने का कार-बार था, अब यह बरेली में चला गया है।

तेल निकालने का एक कारखाना हल्द्वानी में है। लाई (सरसों ?) से तेल निकाला जाता है, जो बहुत अच्छा होता है।

रामनगर, हल्द्वानी, लालकुआँ से लकड़ी देशावरों को बहुतायत से जाती है।

सन् १९३१ से लकड़ी के ठेकेदार पं० हरदत्त जोशीजी ने एक फ़रनीचर का कारबार हल्द्वानी में खोला है। आज तक सब फ़रनीचर बरेली तथा अन्य स्थानों से आता रहा है। साधारण कोटि का यहाँ बनता था।

चीनी—सन् १९३२-३३ से किछहा व लालकुएँ में चीनी के कारखाने खुल गये हैं।

रुई—काशीपुर में एक रुई साफ़ करने की कल भी है।

मुक्तेश्वर में डंगरों के बदन से खून निकालकर डंगरों को होनेवाली बीमारियों के लिये दवाई (Serum) बनाई जाती है। मनुष्यों की बीमा-रियों में पिचकारी लगाने को भी सिरम बनता है। इसकी एक शाखा बरेली में भी है। लिम्फ पटुवाडाँगर में बनता है। यह टीका लगाने के काम में आता है। ये दोनों सरकारी कारबार हैं। मुक्तेश्वरवाला बड़ी सरकार से संबंध रखता है और लिम्फ डिपो प्रान्तीय सरकार के आधीन है।

कत्था पहले तराई भावर में बनता था, अब बरेली में ज़्यादातर बनता है, क्योंकि वहाँ पर एक फ़ैक्टरी बन गई है और उसको तराई-भावर से सस्ते दामों में खैर के पेड़ दिये जाते हैं। यह विंढम साहब की कृपा का फल है।

निम्न-लिखित जड़ी-बूटियाँ काठगोदाम, टनकपुर, हल्द्वानी, रामनगर आदि स्थानों से देशान्तरों को भेजी जाती हैः—(१) छड़ीला या दगद फूल, (२) पदम (३) दारुहल्दी, (४) घुड़बच, (५) मुलीम, (६) कायफल सुर्ख़, (७) पखानवेद (८) रीठा मीठा दाने का, (९) दाल-चीनी, तेज़पात (१०), राजिगरा सफ़ेद व काले छीटे का, (११) हंसराज सब्ज, (१२) चिरायता मोटा, (१३) कोटू फाफरा मोटे दाने का, (१४) अमलतास फली व गूदा, (१५) सुहागा, (१६) बिरोजा, (१७) समोया, (१८) घासोजीरा, (१९) तेजपत्ता, (२०) मिर्च दड़ा, (२१) सींक, (२२) सिंगाड़ा मोटेदाने का, (२३) बनफ्सा, (२४) ब्राह्मी, (२५) बिजसार की छाल, (२६) बबूल, (२७) खैर, (२८) कायफल की छाल तथा रसौद, कुचिला, पुनर्नवा रोहनी, पिपली, तरुड़, गेठी, लीसा आदि ।

घासें

ये घासें तराई-भावर से देश को जाती हैंः—

कांस—टोकरी बनाने को ।

सींक—झाड़ू व काग़ज़ बनाने को ।

तुली—गाड़ी ढाँपने की सिरकी ।

बेंदू, नल, ताँता—छप्परों के लिये ।

पडेरू, मोथा—चटाई बनाने को ।

मूँज—रस्सी बनाने को ।

भावर—काग़ज़ बनाने को ।

बाँस—तराई-भावर से बहुत बाहर को भेजा जाता है ।

शहद भी कुमाऊँ से बहुत जाता है । नैपाल से भी आता है ।

चमड़ा कानपुर, सहारनपुर, बरेली, आगरा आदि स्थानों को जाता है । पाली पछाऊँ व सल्ट में 'मिनिरे' (एक प्रकार की मज़बूत चटाइयाँ ; अच्छे बनते हैं ।

उद्योग-धंधों की प्रायः यहाँ बहुत कमी है । कुछ लोग लकड़ी की टोकरियाँ बनाते हैं । कहीं-कहीं खड़ी की पथरियाँ (कूँडियाँ) भी बनती हैं ।

कुथलिया बौरे कुछ भाँग की बोरियाँ, 'कुथले' तथा कुछ कपड़ा बना लेते हैं । डॉ० डी० पंत लिखते हैं—मुग़लों के समय सरहदी तिजारत नैपाल कुमाऊँ व भूटान से होती थी...कुमाऊँ धातुओं के लिये प्रसिद्ध था । यहाँ सोना, चाँदी, लोहा, तांबा, शीशा, हरताल और सोहागे की खानें थीं । इसके उत्तरी इलाके तिब्बत से कस्तूरी, याक, बाज़, शिकरे, घोड़े, जंगली शहद आदि चीज़ें कुमाऊँ में आती थीं, और वह बाहर को भेजी जाती थीं ।

अन्य चीज़ें जो उस समय कुमाऊँ बाहर को भेजता था, वे चूक (दाड़िम व नींबू की खटाई), च्यूर, मोम तथा ऊन थीं।"

श्रीट्रेल साहब सन् १८२५ की रिपोर्ट में लिखते हैं कि कुमाऊँ से ये चीज़ें देश को जाती थीं :—

पहाड़ से—"अनाज सब क़िस्म के, दाल, तिलहन, हल्दी, अदरक़, सोंठ, केशर, नागकेशर, इलायची, मरी, कल्की, लालगिरी, निरबीसी, अर्चा, चिरैता, मीठा, कई क़िस्म की छालें, तेज़पात, लालमिर्च, दाड़िम, अखरोट, स्यूँते, पिनालू (घुइयाँ), चरस, भाँग का कपड़ा, भाँगा, अफ़ीम, घी, तेल, शहद, मोम, कस्तूरी, बाज़, सोहागा, शिलाजीत, खड़ी मिट्टी, हरताल, पहाड़ी काग़ज़, बाँस, काठ के बर्तन, खालें, चँवर, घोड़े, डंगर, सोने का चूरा, लोहा, ताँबे की छड़ें, पंखियाँ, कम्बल, ऊन, चूक खटाई।"

तराई से ये चीज़ें देश को जाती थीं –(१८२५ में) "लकड़ी, कड़ियाँ, तख्ते, बाँस, कोल्हू, हाथी-दाँत, ईंधन, लकड़ी के बर्तन, कोयला, चूना, गोंद, लाख, कत्था, घी, तेल, अनाज सब क़िस्म का, दाल, तिलहन (लाई, सरसों वग़ैरह), बंडे (घुइयाँ), हल्दी, लालमिर्च, भावर घास, मूँज घास, टाट, बड़ा, रोग़न, बंसलोचन आदि।"

देश से ये चीज़ें ऊपर को आती थीं—"कपड़ा हर क़िस्म का (सूती, ऊनी व रेशमी), तागा, रुई, तम्बाकू, गुड़, चीनी, मिसरी, नमक, मसाले, पान, सुपारी, नारियल, गोले, खुश्क मेवा, साबुन, रंग, नील, फिटकिरी, पोटाश, गंधक, दवाइयाँ, लोहे की चीज़ें, ताँबे की चद्दरें, खिलौने, आइने, टिन, काँच, शीशा, बारूद, मूँगा, मोती जवाहिरात, सोना, चाँदी, काग़ज़, स्याही आदि-आदि।"

जल-शक्ति से कताई का काम—सन् १९३५ से ठा० जोगासिंह ने 'गंगोला-कोटूली' ग्राम में जल-शक्ति द्वारा कताई का काम जारी किया है। एक घराट से जल-शक्ति उत्पन्न कर ऊन व रुई काती जाती है। यह कार्य स्तुत्य है। आशा है, इसका प्रचार तमाम कूर्मांचल में हो जायगा।

---

५३. फलों के कारबार

फल यहाँ पर बहुत होते हैं। फलों के यहाँ पर अनेक बग़ीचे भी हैं। सेव सबसे बढ़िया जलना के होते थे। यह मशहूर बग़ीचा जनरल ह्वीलर साहब का था, अब नैनीताल के सेठ लाला शिवलाल परमासाह का है।

अल्मोड़ा के रईस व ज़मींदार ला० चिरंजीलाल रायबहादुर साहब ने भी देवलधार के बग़ीचे में ख़ूब उद्योग किया है। नाना प्रकार की चीज़ें उत्पन्न कीं, पर रेल से दूर होने के कारण वह बग़ीचा उस प्रकार न चला, जैसे नैनीताल व रेल के निकट के रामगाड़ के बग़ीचे। बिनसर के प्रायः सब बग़ीचे लाला कुन्दनलाल मथुरासाह गंगोला के पास आ गये हैं। रानीखेत के सरकारी बग़ीचे में भी सेव, नासपाती, आलूबुखारे, चेरी, ख़ुमानी, आड़ू, नारंगी, चेस्टनट आदि-आदि फल ख़ूब होते हैं, पर अब रामगाड़, भवाली तथा मुक्तेश्वर में फलों का कारबार अच्छी उन्नति पर है। रामगाड़ में कई बग़ीचे अँगरेज़ों के हैं। उन्होंने ही कई प्रकार के फल पहले यहाँ लगाये। अब भारतवासियों ने भी अच्छी तरक्की की है।

अँगरेज़ों में श्रीस्वीडनहम, श्रीलिंक्लन, श्रीऐलन तथा श्रीमती डेरियाज़ आदि हैं। भारतीयों में सर्वश्री - विशारद, उमापति, जगतचंद (हरतोला), मोहनसिंह दड़म्वाल आदि हैं। मुक्तेश्वर में मिसेज़ स्टाइफ़ल तथा रायसाहब ला० अन्तीराम साह ऐन्ड सन्स हैं। भवाली में पं० नारायणदत्त भट्टजी ने भी अच्छा उद्योग किया है। उद्यानशास्त्र का अध्ययन कर इस कारबार को अच्छी सीमा में पहुँचाने के उद्योग में हैं। रानीखेत में श्रीमुमताज़हुसैन का नाम उल्लेखनीय है। स्याहीदेवी में पं० शिरोमणि पाठक तथा बाबा हैड़ियाखान द्वारा स्थापित सिद्धाश्रम के उत्तराधिकारी वानप्रस्थी पं० भोलादत्त पांडेजी ने भी सुंदर बग़ीचे बनाये हैं, जहाँ अच्छे फल पैदा होते हैं। भीमताल में भी कुछ बग़ीचे हैं, पर सेव रामगाड़, जलना व चौबटिया में अच्छा होता है। वहाँ की भूमि उसके लिये उचित समझी गई है। सेव ज़्यादातर ६००० फ़ुट से ऊँची भूमि में होता है। और भी छोटे-छोटे बग़ीचे यत्र-तत्र हैं।

नारंगियाँ सोर व गंगोली में प्राचीन काल से होती आई हैं। अन्यत्र भी होती हैं। पहाड़ी नारंगियाँ बहुत अच्छी होती हैं, यद्यपि नागपुर व सिलहट के संतरों के मुक़ाबिले में ये घटिया प्रतीत होने लगी हैं। नारंगी की खेती को ज़्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है। नींबू यहाँ का बहुत अच्छा व बड़ा होता है।

तराई-भावर में आम, कटहल, पपीता, केला आदि के बड़े-बड़े बाग़ हैं। अस्कोट में केले व आम अच्छे होते हैं। आम पाली पछाऊँ में भी ख़ूब होता है।

---

५४. चाय के बग़ीचे

जब अँगरेज़ी राज्य कुमाऊँ में स्थापित हुआ, तो सन् १८२३ के बंदोबस्त

के अनुसार सब गाँवों की सरहदें मुक़र्रर की गईं। इस भूमि को अँगरेज़ी साम्राज्य के भीतर लाने के पूर्व बड़े-बड़े सब्ज़ बाग़ लोगों को दिखाये गये थे। इँगलैन्ड के लोगों ने इस बंदोबस्त पर असन्तोष प्रकट करते हुए कहा कि उनको कुमाऊँ में लाभदायक ज़मीनें मिलनी चाहिए। पहले विना आज्ञा के अँगरेज़ों को यहाँ पर निजी सम्पत्ति प्राप्त करने का हुक्म न था। डॉ० रॉयल ने सन् १८२७ में यह आग्रह किया कि कुमाऊँ की वह विस्तृत भूमि, जिस पर खेती नहीं है, चाय की खेती के लिये यूरोपियनों को दी जावे। इधर भारत में एक चाय-कमेटी सन् १८३४ में बैठाई गई। उधर पार्लियामेंट में १८२८-१८३७ के बीच बहुत वादानुवाद होकर यह क़ानून बना कि अँगरेज़ लोग भारत में निजी सम्पत्ति रख सकेंगे। बैटन साहब ने कह दिया कि गाँव की सरहदें नाम-मात्र को हैं। अतः यहाँ की उत्तम जलवायु से परिपूर्ण ऊँचे-ऊँचे टीले अँगरेज़ों को .फ्री सिम्पल यानी माफ़ी में दिये गये, ताकि वे वहाँ रहें और फल व चाय की खेती करें। इन बग़ीचों की तालिका अन्यत्र है। ये अब प्रायः भारतवासियों के हाथ में आ गये हैं। अँगरेज़ों ने यहाँ चाय को क़ुदरती तौर पर उगते हुए पाया।

सन् १८३५ में कुछ बीज बोये गये। अल्मोड़ा के लक्ष्मीश्वर में सबसे पहले डॉ० फॉलकनर ने बग़ीचा बनाया। सन् १८४१ में इस बग़ीचे में ३८४० पौंधे चाय के थे, आज वहाँ एक भी पेड़ नहीं है। सन् १८४२ में कुछ चीनी लोग चीन से चाय बनाने को आये। डॉ० फॉलकनर अल्मोड़ा की बनी कुछ चाय विलायत को ले गये। वह अच्छी बताई गई। सन् १८३८ में मि० फ़ॉरच्यून चाय के बारे में ज्ञान प्राप्त करने चीन भेजे गये। वे चीनियों को साथ लाये। तब ठौर-ठौर में यहाँ चाय-बग़ीचे खुले। १८४१ में हवालबाग़ में मेजर कारवेट ने बग़ीचा बनाया, जिसको पहले सरकार ने, बाद को ला० अमरनाथ साहजी ने ख़रीदा, अब वह खोल्टा के धनी त्रिपाठियों के अधिकार में है। फिर १८५० में रामजी साहब ने कत्यूर में बग़ीचा बनाया, जिसको श्रीनारमन ट्रूप ने खरीदा, कुछ उनको रानीखेत के बदले में मिला। वज्यूला, ग्वालदम, डुमलोट, ओड़ा, लोध, दुनागिरि, जलना, बिनसर, गौलपालड़ी, सानीउड्यार, बेनीनाग, डोल, लोहाघाट, झलतोला, कौसानी, स्याहीदेवी, चौकोड़ी, छीड़ापानी आदि में चाय बोई गई। इन सबमें कौसानी, बेनीनाग तथा लोध ने खूब नाम कमाया। अच्छी चाय बनाई। कौसानी की चाय अब नाम-मात्र को रह गई है। वह इस्टेट सरकारी हो गई है और फ़ौजी पेंशनरों को जागीर में दी गई है। चौकोड़ी व बेनीनाग में अभी बहुत कुछ चाय ठा० देवीसिंह व

दानसिंह विष्ट बना रहे हैं। ये ही सबसे बड़े चाय के बग़ीचे यहाँ पर रह गये हैं। सन् १९०७ तक यहाँ पर चाय के २० बग़ीचे थे। पर अब आसाम, नीलगिरी, दारजिलिंग तथा लंका की चाय ने कुमाऊँ के इस एकमात्र उद्योग को बहुत धक्का पहुँचाया है। यद्यपि सन् १८९२ में चाय-बग़ीचों के फ़ायदे के लिये ही रामजी साहब ने गाड़ी-सड़क खोली थी। उन्होंने पहले-पहल इस उद्योग को बढ़ाने का प्रयत्न किया। बाद के अँगरेज़ों की नीति प्रायः उदासीन रही। अब चाय-बग़ीचे अँगरेज़ों के हाथ में प्रायः नहीं हैं। उनकी .फ्री सिम्पल यानी माफ़ी रियासतें सब भारतवासियों के हाथ आ गई हैं।

---

५५. .फ्री सिम्पल रियासतें

अँगरेज़ी शासन के आरंभ काल में अँगरेज़ों को कुछ ऊँचे, उपजाऊ तथा स्वास्थ्यवर्द्धक इलाक़े चाय व फलों की खेती करने के लिये दिये गये थे। अभिप्राय यह था कि इस सुन्दर, सुखद तथा स्वास्थ्यवर्द्धक जलवायु में वे बस जावें। २० वर्ष की औसत आमदनी लेकर वे लोगों को भविष्य में माफ़ी के बतौर दिये गये थे। उनमें अब भी मालगुज़ारी नहीं है। केवल शेष देना पड़ता है। उनके नाम ये हैं:—

(१. ज़िला अल्मोड़ा में)

(१) दुनागिरि रियासत—५१२८) को १८६६ में मि० मनी ने ली। बाद को क्रौ साहब ने खरीदी। फिर अर्ल साहब के अधिकार में रही, पर उनकी मृत्यु से अब बिकाऊ है। बग़ीचा बिलकुल वीरान हो गया है।

(२) लोध—श्रीहेंडरसन की मेम के पास था, अब वह बिक गया है। यहाँ अभी चाय बनती है।

(३) कौसानी—पहले रामजी साहब ने इसे बसाया, बाद को मि० मैकलौड ने यह रियासत खरीदी। फिर नॉर्मनट्रूप ने खरीदी अब यह सरकारी है, और यहाँ पर सिपाहियों को ज़मीनें जागीर में दी जाती हैं। चाय थोड़ी-सी रह गई है। इसके हिस्से वज्यूला, अयांरतोली, उड़खोली, छुटिया आदि भी अब बहुत कुछ सिपाहियों में बँट गये हैं। सरकार ने इसे १५५६००) में खरीदा।

(४) श्याली—ठा० गोविंदसिंह मेहता आदि के पास है।

(५) डुमलोट (६) पगरी, जौना भी एक लाख में सरकार ने ख़रीदे हैं।

(७) बेनीनाग, चौकोड़ी—ठा० देवसिंह दानसिंह विष्टजी के अधिकार में हैं।

(८) झलतोला—आधी गाँववालों के पास बिक गई है, बाक़ी बाबू दुर्गासिंह रावत के पास है।

(९) लोहाघाट—यहाँ फर्नहिल व चनुवाँ खाल दो रियासतें हैं। पहली हेनसी साहब की थी। अब टलक की है। दूसरी श्रीमती हौस्किन्स के पास है।

(१०) भैसोड़ा इस्टेट—ला० लछीराम साहजी के पास।

(११) हवालबाग़—खोल्टा के त्रिपाठियों के पास।

(१२) पोत—पं० लक्ष्मीदत्त जोशीजी दन्या के पास।

(२. ज़िला नैनीताल)

नैनीताल ज़िले में चार फ़्री सिम्पल रियासतें हैं:—दो भवाली में—एक मलिन की तथा एक न्यूटन की थी—अब पं० नारायणदत्त तथा पं० गोविंदवल्लभ जी के पास हैं। एक भीमताल में, तथा चौथी कैपनकुशा कासल है, जो भवाली के ऊपर है। और भी बहुत-सी यूरोसतें यूरोपियनों के आधीन हैं, पर ये सब साधारण जमींदारियाँ हैं।

---

५६. डाक-बँगले

सन् १८३१ में अल्मोड़ा ज़िले में ३५ डाकबँगले थे:—(१) अल्मोड़ा, (२) बागीश्वर, (३) बाँस, (४) बैजनाथ, (५) बैंसखेत, (६) चंपावत, (७) छीड़ा, (८) द्वाराहाट, (९) द्वाली, (१०) धाकुड़ी, (११) देवीधुरा, (१२) धूरी, (१३) धौलछीना, (१४) गुरना, (१५) गंगोलीहाट, (१६) गरब्यांग, (१७) गनाई, (१८) हवालबाग़, (१९) कपकोट, (२०) खाती, (२१) लोहाघाट, (२२) लोहारखेत, (२३) लमगड़ा, (२४) मुन्स्यारी, (२५) मजखाली, (२६) मासी, (२७) नैनी, (२८) पुरकिया, (२९) पिठौरागढ़, (३०) पनुवां-नौला, (३१) रानीखेत, (३२) सोमेश्वर, (३३) सुखीढांग, (३४) ताकुला और (३५) एकाकी।

इनके अलावा बहुत-से बँगले जंगलात महकमे के तथा इंजीनियरिंग विभाग के हैं, जिनमें आदमी बिना आज्ञा के नहीं रह सकते। डाक-बँगलों में किराया देकर हरएक आदमी रह सकता है। डाक-बँगलों का प्रबंध ज़िला-बोर्ड के हाथों में है।

नैनीताल के डाक-बँगले:—काठगोदाम, भीमताल (१८८४), खैरना, बैतालघाट, रानीबाग (१८६६), रामगाड़ (१८६७), प्यूड़ा (१८६७), धारी (१८९४), मलुवाताल।

इनके अलावा तराई भावर में सरकारी इस्टेट के बँगले हल्द्वानी, किच्छहा, कालाढूँगी, बाजपुर, खटीमा, चोरगलिया, रामनगर, बैलपड़ाव, छोई, कोटा, मंगोली, सितारगंज, रुद्रपुर, गदरपुर, काशीपुर आदि में हैं।

पब्लिक वर्क के बँगले—किच्छहा, हल्द्वानी, नलेना, बल्दियाखान, भवाली, रातीघाट, गरजिया, कुमरिया, सिनौड़ा, कटारमल, खैरना आदि में हैं।

जंगलात के बंगले भी बहुत हैं—किलबरी, निगलाट, झलूदेव, कलौना, हल्द्वानी, देचौंरी, उखल्यूं, चोरगल्या, होरई, आँवलाखेड़ा, धनौर, तामाठौन, स्यूँतरा, जौलसाल, कालादेव, सेनापानी, डांडा, लोध, बसरखेत, कठौती, रामनगर, मालधन, गजरिया, दुरुम, दोफाड़, ढेला, मोहन और ढूँगालगाँव, पारकोट, भटगाँव, गनियाँद्योली, स्यूनी, रूवैच्वैं, बाड़ेछीना, बजवाड़, कनारीछीना, गनाई, शानदेव, थल, बेनीनाग, बिनसर, अस्कोट, पथरिया, डीनापानी, महरपाली, गणानाथ, गड़खेत, धुराफाट, लमगाड़, कबलेश्वर।

बँगले क्या हैं, आनंद-भवन हैं। किसी रमणीक चोटी, मनोहर दृश्य तथा स्वास्थ्यदायक जलवायु के बीच बने हैं। वर्तमान आराम के सब सामान वहाँ विद्यमान हैं।

---

५७. कुमाऊँ की सड़कें

रेल-पथ—कुमाऊँ-रोहिलखंड-रेलवे की ये शाखें कुमाऊँ की सीमा के अंदर से गुज़रती हैं—

रेलवे-स्टेशन जो कुमाऊँ सरहद में हैं—

बरेली-काठगोदाम लाइन (६६ मील)—किच्छहा, लालकुआँ, हल्द्वानी, काठगोदाम।

मुरादाबाद-काशीपुर (३० मील)—काशीपुर, बुरहानपुर।

लालकुआँ-रामनगर (५८ मील)—लालकुआँ, गूलरबोझ, बाजपुर, सरकड़ा, काशीपुर, रामनगर।

पीलीभीत-टनकपुर (३१ मील)—मझौला, खटीमा, चकरपुर, बनबसा, टनकपुर।

रेलें सब भावर तराई में हैं।

काठगोदाम-बरेली लाइन १८८२ में खुली, किन्तु चालू १८८४ में हुई।

पीलीभीत - टनकपुर लाइन सन् १६०६-१० में खुली। रामनगर-लालकुआँ लाइन सन् १६०५-०६ में खुली।

सड़कें—सड़कें राजाओं के वक़्त में थीं, पर वे हमेशा सुधारी न जाती थीं। गाँववालों को हुक्म था कि वे सड़कें साफ़ रक्खें। जब राजा जिस तरफ़ को दौरे में जाते थे, तो उस ओर की सड़कें साफ़ की जाती थीं। फ़ौज या बड़े कर्मचारी के जाने पर सड़कें साफ़ होती थीं।

पं० रामदत्त त्रिपाठीजी ने लिखा है—"राजा कार्तिकेय के समय राज्य में २००० सेतु (पुल) देवदारु आदि दृढ़ काष्ट के प्रत्येक नदी के घाट में निर्मित थे। सब राजकोष के व्यय से ही बनाये तथा मरम्मत किये जाते थे। राजमार्ग-विस्तार आवश्यकतानुसार ३। ४। ५। ६ हाथ था।"

गोरखों ने एक सड़क काली से अलखनंदा तक बनाई थी। यह काली से अल्मोड़ा होकर श्रीनगर तक गई थी। इसमें मील-पत्थर भी लगे थे। गाँव-वालों से बेगार में बनवाई। अँगरेज़ों के समय में भी कई सड़कें बेगार में बनीं। ट्रेल साहब ने तो क़ैदियों से भी सड़कें बनवाईं। ये बातें खुद अँगरेज़ों ने लिखी हैं। गोरखों ने कई जगहों में पहाड़ों में सीढ़ियाँ भी बनाई हैं।

आने-जाने के तथा देश व पहाड़ के बीच व्यापार के 'घाटे' (दर्रे) पहले ये थे—

१. चिलकिया या ढिकुली—अब रामनगर है।
२. कोटा भावर—अभी वही नाम है।
३. बमौरी—यह अब काठगोदाम कहलाता है। बमौरी नाम का गाँव पास में है।
४. तिमली ब्रह्मदेव—अब टनकपुर कहा जाता है। छोटे-छोटे रास्ते और भी हैं। ये 'चोर घाटे' (रास्ते) कहे जाते हैं। एक रास्ता चोरगल्या से चौगँड़ को जाता है। अन्य रास्ते इस प्रकार हैं :—

नैनीताल

मोटर व गाड़ी की सड़कें

१	बरेली-काठगोदाम	पक्की दर्जे अव्वल—	६० मील
२	काठगादाम-नैनीताल	,, ,, ,,	२२ ,,
३	काठगोदाम-रानीखेत-अल्मोड़ा		८२ ,,

रानीखेत से अल्मोड़ा तक की सड़क अभी अच्छी हालत में नहीं है।

कच्ची गाड़ी की सड़कें

१. रामनगर से रानीखेत तक—३० मील

दूसरे दर्जे की सड़कें, जिनमें पुल हैं

रानीबाग-अल्मोड़ा (भीमताल होकर)—३५ मील
रानीबाग-नैनीताल —१२ „
रामनगर-खैरना —२८ „
नैनीताल-रामगढ़ —१२ „
रामगढ़-अल्मोड़ा —२० „
भवाली-भीमताल — ३ „
नथुवाखान-मुक्तेश्वर — ३ „

इनमें कहीं पुल हैं, कहीं नहीं—

नैनीताल से मुरादाबाद की तरफ़—१२ मील
रामनगर से मुरादाबाद को —१३ „
सुलतानपुर से बिजनौर को —१८ „
काशीपुर-दढ़ियल — ६ „
काशीपुर-ठाकुरद्वारा — ४ „
जसपुर-रेहड़ — ५ „

तीसरे दर्जे की सड़कें

नैनीताल-गड़प्पू —२१ मील
नैनीताल-रातीघाट — ७ „
रामनगर-खैरना —२८ „
खैरना-धुराड़ी — ८ „
रामगाड़-देचौंरी —२४ „
देचौंरी-बजारी — ९ „
भीमताल-मोरनौला —२१ „
प्यूड़ा-मुक्तेश्वर-धारी —१४ „

चौथे दर्जे की सड़कें

जसपुर-रामनगर —१२ मील
भीमताल-मलुवाताल — ८ „
बेतालघाट-दनपू — ६ „
बेतालघाट-कालाखेत — ६ „

सरकारी रियासत की सड़कें
(तराई व भावर में)

काशीपुर-सुलतानपुर-किच्छहा-सतारगंज खटीमा-मेलाघाट	—७४ मील
किच्छहा-बारा-सतारगंज	—१४ ,,
सतारगंज-चोरगल्या	— ८ ,,
सुलतानपुर-छोई	—१५ ,,
ब्रह्मदेव-हरद्वार (१५० मील)	—६७ ,,
सतारगंज-काठगोदाम	—२७ ,,
अखरौली-होराई	— ३ ,,
पीलीभीत-खटीमा-ब्रह्मदेव	—३० ,, (१८ मील नैनीताल में)
सतारगंज-पीलीभीत	— ५ ,,
हल्द्वानी-पीपलाराव-बाराखेड़ा-सकेनिया	— २० ,,
पीपलाराव-चकलुवा	— ७ ,,
देचौरी-गिन्नीगाँव मूसाबंगर	— ५ ,,
बैलपड़ाव-शफ़ाखान	—११ ,,
रामनगर-कोटा	—१० ,,
रामनगर-कराई	— ४ ,,
रुद्रपुर हल्द्वानी	—२० ,,
किच्छहा-दराऊ	— ५ ,,
शिवनाथपुर-आमपोखरा-रामनगर	— ६ ,,
किशनपुर-डोलपोखरा	— ३ ,,
शेरपुर-कोटाबाग़	— ३ ,,
कोटा-कालाढूँगी	— ६ ,,

ये प्रधान सड़कें हैं। छोटी-छोटी बटियों का ज़िक्र हमने नहीं किया है। तराई के प्रायः सब परगनों की बड़ी-बड़ी नदियों में नावें भी लगती हैं।

अल्मोड़ा

अल्मोड़ा में लगभग २०० मील सड़कें पबलिकवर्क के हाथ में हैं, तथा १०००-१२०० मील के लगभग सड़कें ज़िला-बोर्ड के हाथ में हैं। अल्मोड़ा राजधानी से प्रायः सब परगनों को सड़कें गई हैं। यहाँ से पिंडारीगल तथा तिब्बत, कैलास, मानसरोवर को भी रास्ता जाता है।

काठगोदाम से अल्मोड़ा मोटर द्वारा ८२ मील तथा पगडंडी द्वारा ३७

मील है। पहली मोटर-लारी यहाँ १६२० में आई। तब से मोटर द्वारा आना-जाना बहुत हो गया है।

गाड़ी की सड़क—

(पक्की)

अल्मोड़ा से गरुड़ तक कौसानी, सोमेश्वर होकर } ४२ मील

(कच्ची)

भतरौंचखान से भिकियासैंण तक लगभग १८ मील। यह सड़क यात्रालाइन के लिये बनी थी, किन्तु कच्ची होने से बिना आज्ञा के मोटर नहीं ले जा सकते।

दूसरे दर्जे की सड़कें—

अल्मोड़ा-चंपावत—	४२ मील	लमगड़ा, मोरनौला, देवीधुरा, खेतीखान होकर, खेतीखान से एक सड़क चंपावत को, दूसरी लोहाघाट को जाती है।
अल्मोड़ा लोहाघाट—	५२ ,,	
अल्मोड़ा झूलाघाट (सोर-गंगोली होकर)	६८ ,,	

अल्मोड़ा अस्कोट (बेनीनाग, गनाई, थल होकर) ७० मील

बागीश्वर-बैजनाथ—	१२ मील
बागीश्वर-द्वाराहाट—	२७ ,,
बागीश्वर-भवानी—	२६ ,,
बैतालघाट-ताड़ीखेत—	७ ,,
बैतालघाट-भिकियासैंण—	१४ ,,
देवलथल-कनालीछीना—	६ ,,
दारमा-खेला—	२१ ,,
द्वाराहाट—सराईखेत—	३१ ,,
घारीघाट-मजखाली—	४ ,,
गर्जिया-मिलम—	६१ ,,
हवालबाग-अल्मोड़ा—	४ ,,
खारबगड़-फुरकिया—	२६ ,,
मजखाली-सोमेश्वर—	१४ ,,
खारबगड़-तल्लादानपुर—	३६ ,,
मरचूला-सिटौली—	१ ,,
मरचूला-मोहन—	६ ,,
मोहन-पनुवाखाल—	४६ ,,

नारायण तेवाड़ी-सिटौली—	१ मील
सातसिलिगं-तेजम—	३७ ,,
चौकोट-देघाट—	८ ,,
पाली-भिकियासैंण—	६ ,,
धूनाघाट-डांडा कठौली—	२२ ,,
गर्व्यांग-मल्लाकालापानी—	६ ,,
सोमेश्वर-ताकुला-बिनसर—	१३ ,,
जौलाबाग-छुर्णौज —	१८ ,,
अल्मोड़ा-ताकुला-बागीश्वर—	२६ ,,
बागीश्वर-कपकोट—	१४ ,,
कपकोट-लोहारखेत-धाकुड़ी-खाती-द्वाली-फुरकिया-(या पिंडारी-गल)	३० ,,
खैरना-अल्मोड़ा —	१६ ,,
घुराड़ी-अल्मोड़ा —	५ ,,
काकड़ीघाट-स्याहीदेवी-मजखाली	१६ ,,
मजखाली-द्वाराहाट—	१२ ,,
द्वाराहाट—गनाई—	६ ,,

अल्मोड़ा से बद्रीनाथ कोई १२६ मील है, किन्तु बद्रीनाथ-अल्मोड़ा लाइन लगभग ३३ मील अल्मोड़ा ज़िले के भीतर है। बाक़ी गढ़वाल ज़िले में है।

छुर्णौज-जैंती-देवीधुरा—	१५ मील
लोहाघाट-छीड़ा-पिठौरागढ़—	२६ ,,
अस्कोट-टनकपुर—	८७ ,,
बैजनाथ-ग्वालदम	८ ,,
बैजनाथ-कौसानी—	६ ,,
धूनाघाट-लोहाघाट—	११ ,,
द्वाराहाट-रानीखेत—	१२ ,,

तीसरे दर्जे की सड़कें

अस्कोट-गरबियांग सड़क	६६ मील
पनुवांनौला - सैमद्यो—	४ ,,

मोरनौला - मेहलझाड़ी—४३ मील
जयंती - मोरनौला — ५ ,,
भिकियासैंण- रानीखेत – ११ ,,
सिलोर - पाली — ४ ,,
लोहाघाट—रामेश्वर— १५ ,,
गंगोलीहाट - धरमगढ़—२४ ,,
फुरकिया - पिंडारीसड़क—४ ,,
कठबूढ़िया - घोलीखान—२ ,,

इस प्रकार सड़कों का तमाम में जाल बिछा हुआ है। सल्ट तथा रंगोड़ दो परगने हैं, जिनमें सड़कें नहीं हैं। केवल ग्राम-बटिया हैं। अन्यथा कुल परगनों व पट्टियों के बीच अच्छी सड़कें गई हैं।

कहीं-कहीं लोगों ने अपने खर्च से अपने गाँवों को अच्छी सड़कें बनाई हैं। पाटिया, झिजाड़ व कसून को अच्छी सड़कें हैं।

---

५८. कैलास-यात्रा

कैलास के दो रास्ते हैं—एक ब्यांस-दार्मा का, दूसरा जोहार का। ब्यांस-दार्मा का रास्ता अच्छा है, जोहार का कठिन बताया जाता है। ब्यांस-दार्मा से जानेवाले यात्री को या तो टनकपुर होकर पिठौरागढ़ से धारचूला को जाना होगा या अल्मोड़ा से। अल्मोड़ा से पिठौरागढ़ ५२ मील है, और टनकपुर से ६५ मील के लगभग है।

पिठौरागढ़ से कनाली छीना होकर अस्कोट २७ मील है।
अस्कोट से बलुवाकोट—११ मील है।
बलुवाकोट से धारचुला—११ ,,
धारचुला से खेला—१० ,,
खेला से तिथिला — ६ ,,
तिथिला से गल्ला — ६ ,,
गल्ला से माल्पा — ६ ,,
माल्पा से गरब्यांग— १२ ,,
गरब्यांग से कालापानी—६ ,,
कालापानी से पाला — ११ ,,
पाला से ताकलाकोट— ६ ,,

ताकलाकोट से बाल्दा— १० मील
बाल्दा से मानसरोवर— १५ ,,
मानसरोवर से दारचिन– २० ,,
दारचिन से डीडीफूगंबा– १० ,,
डीडीफूगंबा से दारचिन —१५ ,,

जोहार का रास्ता इस प्रकार है—

अल्मोड़ा से बागीश्वर—२६ मील
बागीश्वर से कपकोट –१४ ,,
कपकोट से श्यामा—११ ,,
श्यामा से तेजम— ८ ,,
तेजम से गिरगाँव— ७ ,,
गिरगाँव से तिकसैन — ८ ,,
तिकसैन से बीरी— ७ ,,
बीरी से बोगड्यार— ८ ,,
बोगड्यार से रिलकोट— ८ ,,
रिलकोट से मीलम— ८ ,,
मीलम से ऊँटाधुरा (१७५६६′ फ़ीट)
जयंती (१७०००′ फ़ीट)
कुंगरी विंग्री (१८३००′ फ़ीट)
ज्ञानिया
तीर्थापुरी
कैलास
मानसरोवर

जंगलात की सड़कें

इन सड़कों के अलावा जंगलात महकमे ने कई सड़कें बनवाई हैं। जो यत्र-तत्र फैली हुई हैं।
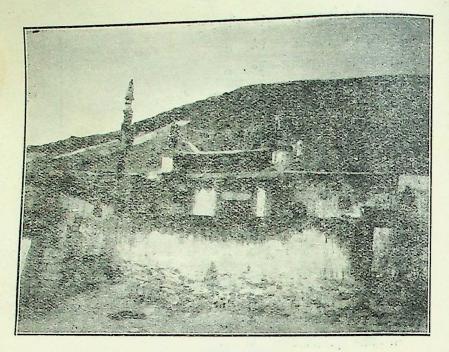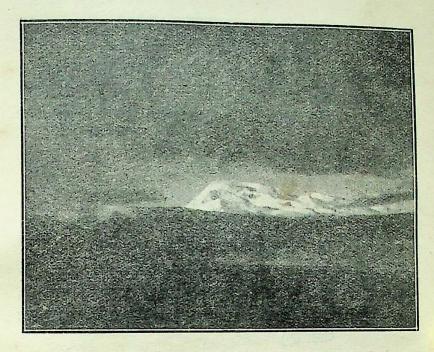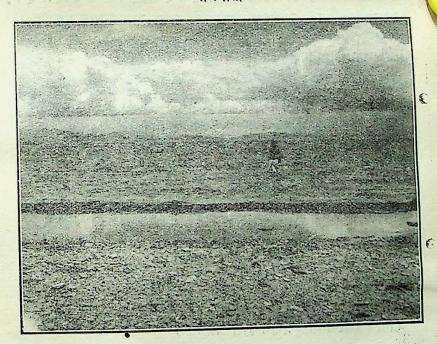
तीर्थापुरी

ऊँटाधुरा

मानधाता

मानसरोवर

५९. अस्पताल

(अ) अल्मोड़ा-ज़िले में ये अस्पताल ज़िला-बोर्ड व अन्य संस्थाओं के अधिकार में हैं :—

१ अल्मोड़ा सदर अस्पताल (चुंगी-बोर्ड से भी कुछ धन लिया जाता है)

२ अल्मोड़ा ज़नाना अस्पताल (डफ़रिन-फ़ंड से तथा चुंगी की सहायता से चलता है)

३ पिठौरागढ़ (पहले मिशन का था)

४ लोहाघाट

५ भिकियासैंण } यात्रा-लाइन के वास्ते बने हैं।
६ गनाई }

७ बैजनाथ (पहले चाय-बग़ीचेवालों का था)

८ बागीश्वर (पहले मिशन का था, अब सन् १९१३ से बोर्ड का है)

९ देवीधुरा (इसका मकान पं० बेणीराम पांडेजी ठेकेदार ने बनवाया है, उन्हीं के नाम से यह अस्पताल बेणीराम-अस्पताल कहा जाता है)

१० बेनीनाग (इसका मकान श्रीदेवसिंह व दानसिंह विष्टजी ने दिया है।)

११ गंगोली— पं० ईश्वरीदत्त जोशीजी के प्रयत्न तथा दान से खुला।

इमदादी अस्पताल—

द्वाराहाट मिशन के

झुलाघाट ,,

श्यामलाताल रामकृष्ण मिशन के

धारचुला ,, (अब नहीं है)

आयुर्वेदिक औषधालय—

कपकोट (शाखा जाड़ों में तेजम, गर्मियों में मुन्स्यारी)

मानिला (शाखा खुमाड़ में)

जैंती

लमगड़ा

इमदादी औषधालय—

खेतीखान

देवलथल

मांसी (सेवा समिति, प्रयाग द्वारा चालित)

गाड़ीताल

(ब) ज़िला नैनीताल :—

नैनीताल सदर (क्रास्थवेट हास्पिटल)

पुलिस-अस्पताल, नैनीताल (१६०२)

काशीपुर, हल्द्वानी, रामनगर, कालाढूँगी के अस्पताल ज़िला-बोर्ड के मातहत हैं।

बाजपुर, किच्छहा, गदरपुर, सितारगंज, खटीमा में सरकारी रियासत द्वारा चालू अस्पताल हैं।

औषधालय

टनकपुर में कांग्रेस द्वारा चालित एक राष्ट्रीय औषधालय है।

(स) कोढ़ीखाने

यहाँ दो कोढ़ीखाने हैं—एक अल्मोड़ा में, दूसरा चंडाक पिठौरागढ़ में। दोनों मिशन के हाथ में हैं। सरकारी इमदाद मिलती है।

अल्मोड़ा का कोढ़ीखाना रामजी साहब का बनवाया हुआ है। १८३६ से वे कोढ़ियों को अन्न—वस्त्र देते थे, जब कि वे नगर में आते थे। १८४० में गनेशीगैर में २० आदमियों के लिये छप्पर बने। १८४८ में अल्मोड़ा में वर्तमान अस्पताल के पास एक मकान लिया गया। १८५१ में यह अस्पताल पादरी बडन के चार्ज में रक्खा गया। तब ३१ कोढ़ी वहाँ थे। १८५४ में मिशनवालों ने चंदा किया। वर्तमान जगह लेकर वहाँ कोढ़ीखाना रक्खा। १८६४ में रामजी साहब ने सरकार की आज्ञा से हवालबाग़, कोढ़ीखाने को दे दिया। वह ४८००० में बेचा गया। यह ख़ज़ाने में प्रोनोटों में जमा किया गया। इसकी आमदनी से कोढ़ीखाना चलाया गया। ५०००) ला० मोतीराम साह रईस नैनीताल ने दिये। १६०६ में ११० कोढ़ी यहाँ थे। सन् १६३१ में ११० थे।

सन्	औसत संख्या	इस वर्ष आये	छोड़े गये
१६३१	७७	२२	१०
१६३२	७८	१५	११
१६३३	८०	१६	१२
१६३४	४७	२२	१५
१६३५	६५	३५	२८

१८६४ से १६०६ तक ५०० कोढ़ी ईसाई बनाये गये हैं। उनके लिये वहाँ गिर्जा भी है।

ओकली साहब लिखते हैं—"३५ वर्ष में ५० लड़के कोढ़ियों के मिशन-द्वारा पाले गये हैं, इनमें से कुल ३ कोढ़ी हुए।" (होली हिमालय)

(द) अन्य अस्पताल

नैनीताल, अल्मोड़ा तथा हल्द्वानी व अन्य नगरों में कई निजी दवाखाने तथा औषधालय हैं।

रामज़े-अस्पताल सन् १८८८ में चंदे से बना। तमाम प्रान्त के लोगों से चंदा लिया गया, किन्तु यूरोपियन व किरानियों के लिये खास तौर पर रिज़र्व किया गया। अब जो कोई धनी-मानी हिन्दुस्तानी दाम दे सकें, वे वहाँ रह सकते हैं। यह जनरल सर हेनरी रामजे की यादगार में बनाया गया।

(ई) क्षय के अस्पताल

भवाली में क्षय-रोग का बड़ा अस्पताल है। लगभग १५० तक रोगी वहाँ रह सकते हैं। अमीरों से धन लिया जाता है। कुछ ग़रीब भी भर्ती किये जाते हैं। यह १९१२ में बना था। यह अर्द्ध-सरकारी संस्था है। सरकार मदद देती है। एक कमेटी, जिसके सभापति चीफ़ जस्टिस होते हैं, इसका प्रबंध करती है।

डॉक्टर कक्कड़ के उद्योग से एक और सैनीटोरियम गेठिया में भी बना है। १९०७ में अल्मोड़ा के मिशनवालों ने भी बल्ढौटी की टिब्री में एक ज़नाना सैनीटोरियम बनवाया। एक निजी अस्पताल डॉ० ख़ज़ानचंद का भी है।

---

६०. खोड़

कांजीहौस या कैटलपौंड-- कांजीहौस को कुमाऊँ में खोड़ कहते हैं। नैनीताल में ५५ तथा अल्मोड़ा में १५ खोड़ हैं। इनका प्रबंध ज़्यादातर ज़िला-बोर्डों के हाथ में है। चुंगी के भीतर के खोड़ों में चुंगी-बोर्ड का प्रबंध है।

---

६१. सुरक्षित पुरानी इमारतें

द्वाराहाट के मंदिर, कटारमल का मंदिर, कुमाऊँ में बालेश्वर का मंदिर व नौला बैजनाथ व रणचुला के मंदिर, कुछ गंगोलीहाट के मंदिर सुरक्षित मंदिरों में हैं। ये सब देखने योग्य हैं। कई मंदिरों की कारीगरी प्रशंसनीय है।

ट्रेल साहब लिखते हैं कि १८२१ में अल्मोड़ा में ७४२ घर थे, जिनमें १३६६ पुरुष, ११७८ स्त्रियाँ तथा ६६८ बच्चे रहते थे। कुल जन-संख्या ३५०५ थी। कुल कुमाऊँ की जन-संख्या उन्होंने २०००४६ जाँची थी। मि० ट्रेल ने अल्मोड़ा-नगर की आबादी की एक तफ़सील दी है, जो शायद रोचक प्रतीत हो, इससे उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

		डोम		मुसलमान	
वृत्तिवाले ब्राह्मण	२२८				
बनिये व महाजन	१८४	बाड़े	५१	व्यापारी	५७
सोनार	४०	राज व बढ़ई	३३	नौकर	१८
छोटे व्यापारी	५३	लोहार	२७		७५
वेश्याएँ	५३	टम्टे	८		
अन्य	१६	चमार	८		
			१२७		

अल्मोड़ा की आबादी तब से अब तक इस प्रकार बढ़ती गई है:—

सन्	१८८१	१८९१	१९०१	१९११	१९२१	१९३१
जन-संख्या	५७७३	७८२६	८५९६	१०५६०	८३५६	६६८८

जन-संख्या-संबंधी कुछ अन्य आँकड़े, जिन्हें हम सरकारी रिपोर्ट से उद्धृत करते हैं, विशेष चित्ताकर्षक मालूम होंगे:—

१९३१

ज़िला	वर्गफल	नगर	ग्राम	घर	जन-संख्या
अल्मोड़ा	५३८६	३	६०९६	१२७५७७	५८३३०२
नैनीताल	२७२१	४	१४४२	६२११६	२७७२८६

जन-संख्या

सन्	१८८१	१८९१	१९०१	१९११	१९२१
नैनीताल	३४६६२८	३६८३१२	३२४०१६	३२३५१६	२७६८७५
अल्मोड़ा	३५१३७६	४०५८८२,	४५३५८१,	५२५६३०,	५३०३३८

कुमाऊँ के अन्य नगरों की आबादी इस प्रकार बढ़ी है:—

	सन् १८८१	१८९१	१९०१	१९११	१९२१	१९३१
हल्द्वानी काठगोदाम रानीबाग	,, ४०१२	५०९३	७४९८	७६०५	८५३६	११२८८
काशीपुर	१४६६७	१४७१७	१२०२३	१२७७३	१०५७६	११२७६
नैनीताल	७५८६	८४५५	७६०९	१०२७०	११२३०	१०६७३

हल्द्वानी इस समय कुमाऊँ का सबसे बड़ा नगर है। हल्द्वानी बढ़ रहा है,

जब कि काशीपुर अवनति की ओर जा रहा है। पहले काशीपुर ही कुमाऊँ का सर्वश्रेष्ठ नगर था। वह पद अब हल्द्वानी को प्राप्त हो रहा है।

धर्म व संप्रदाय के अनुसार मुख्य नगरों की जन-संख्या सन् १९३१ में इस प्रकार बँटी थी—

नगर	हिन्दू	आर्य	अन्य	सिक्ख	मुसलमान	ईसाई
अल्मोड़ा		५४	४	३	?	१८८
काशीपुर	६४४१	१४७	—	८	११०१	२१
नैनीताल	८०८६	७२	—	२७	८४८	४३७
हल्द्वानी	५६६१	३१६	—	४४	४६०६	५८
जसपुर	२६८१	४५८	—	—	२८१०	८८
रामनगर	४०२१	१२	—	—	१५४७	१३
भीमताल	१२३६	४६३	—	—	८४	२०
भवाली	४७५	१०३	—	—	१०८	१६
रानीखेत	२७६४	७३	—	—	७८१	१२०

शिक्षा व साक्षरता-संबंधी आँकड़े नीचे की फ़ेहरिस्तों में दिये जाते हैं:—

	ब्राह्मण				दलित वर्ग				अन्य हिन्दू				आर्य			
	कुल संख्या		साक्षर		कुल संख्या		साक्षर		कुल संख्या		साक्षर		कुल संख्या		साक्षर	
	मर्द	औरत	मर्द	औरत	मर्द	औरत	मर्द	स्त्री	मर्द	औरत	मर्द	औरत	मर्द	औरत	मर्द	औ०
नैनीताल ज़िला	२४१५३	१७१८४	८७३३	८०९	३३२९०	२५०५२	३८३	१८	६३००१	४२३५५	१०१३६	१०४५	९८३८	८१४३	८७३	११७
हल्द्वानी तहसील	९१३९	६३२५	३८५७	२६९	६८५१	४४११	९७	२	१९५८१	११५५१	२४६२	३३०	४९६१	३९८४	२८०	१६
काशीपुर ,,	१२६४	८१५	४५१	१८२	३१०६	२६२२	६१	७	९७८७	८१३५	१८५५	१५०	७१२	६२६	२६८	८१
किच्छहा ,,	३६२८	२१२६	८९६	३४	१७०१३	१३९५५	१०२	–	१६८६१	१०८८५	५५८९	४६२	४९७	३८८	३१९	६
नैनीताल ,,	१०१२२	७९१८	३५२९	३२४	६३२०	४०६४	१२३	९	१६७७२	११७८४	२३०	१०३	३६६८	३१४५	३०६	१४
अल्मोड़ा ज़िला	६८४५३	६९६०६	२०१२९	९८१	६२१४९	५९९९९	३२२	३७	१५७०३७	१५७५२४	१९५२३	७०९	१६५९	१५८७	१२९	१२
,, तहसील	२२८१३	२२५६४	७७८०	६२१	२०३६४	१८९८३	१०२	१७	५०३६८	४८०७५	७१२६	३७४	६५६	६६०	६०	८
रानीखेत ,,	२०८०९	२१८८९	५८३८	१३५	१७८५३	१८०७१	९७	११	४७११२	४९६१०	५४०४	११२	६८५	६६१	३०	४
चंपावत ,,	१३२५९	१३२५६	२७५५	८८	९२४०	८३६५	५१	२	२१९३४	२००५६	१५९९	१७	३०५	२६६	३८	०
पिठौरागढ़ ,,	११५७२	११८९७	३७५६	१२७	१४६८२	१४५७९	७२	७	३७६२३	३९७८३	५३६४	२०६	३		१	–
कुमाऊँ	१५०५५१	१५२३०४	४७५५०	२२४५	१४०७८६	१३०२१५	८७२	६७	३७०४२०	३६२८१२	४७४८४	२२०६	११८६७	१०१२५	१०७०	१४१

कुमाऊँ-डिवीज़न	मुसलमान कुल संख्या मर्द	मुसलमान कुल संख्या औरत	मुसलमान साक्षर मर्द	मुसलमान साक्षर औरत	ईसाई कुल संख्या मर्द	ईसाई कुल संख्या औरत	ईसाई साक्षर मर्द	ईसाई साक्षर औरत	अँगरेज़ी पढ़े मर्द	अँगरेज़ी पढ़े औरत
	३५७२६	२३६०४	३३४३	२८२	२२८४	२३५१	११५१	१०७५	७६६६	६२६
नैनीताल ज़िला	३०६८४—	२१२१६	२२८३—	१७७	८७२	७५८	४४२—	३३६	२८२८—	३३८
हल्द्वानी तहसील	६६१८—	३६१६	८२२—	८२	१६६—	६१	६३—	३७	७५०—	४१
काशीपुर ,,	६३६५—	७६१३	६०४—	४१	१४४—	१२५	१२—	६	२१३—	२६
किछहा— ,,	१३१६४—	६११६	५३७—	२२	६६—	८१	२४—	२१	१४२१—	२५१
नैनीताल—,,	११७७—	५६५	३२०—	३२	४६०—	४६१	३१३—	२७२	४४४—	२०
अल्मोड़ा ज़िला	१७५८—	१४००	६५८—	८६	८५०—	१०६६	४३४—	५१५	२५३२—	३६८
अल्मोड़ा तहसील	८२४—	६५८	३६१—	५०	३२१—	४०४	१७०—	२००	१५०८—	२५३
रानीखेत ,,	६३७—	४६५	१६३—	१४	१७६—	१७०	१२५—	१०१	६२१—	६०
चंपावत ,,	८५—	६३	३०—	१४	३८—	३६	१३—	१६	१५५—	११
पिठौरागढ़ ,,	२१२—	१८४	७४—	८	३१२—	४५३	१२६—	१६५	२४८—	४४

६४. छापेख़ाने व समाचार-पत्र

देश की उन्नति वास्तव में समाचार-पत्रों तथा छापेख़ानों से होती है। स्वतंत्र देशों में छापाख़ाने व समाचार-पत्र ही वास्तव में राष्ट्र की शासन-नीति को संचालित करते हैं। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों को आसमान में बिठा देते हैं, और रुष्ट होने पर बड़े-से-बड़े राजनीतिज्ञ को रसातल को पहुँचा देते हैं। अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा तथा समाचार-पत्रों के प्रचार से ही यूरोप, अमेरिका, जापान, दक्षिण-आफ़्रिका आदि देशों में महान् जाग्रति हुई है। भारत के छापेखानों पर अभी कठिन नियंत्रण हैं।

अल्मोड़ा में सबसे पहले प्रेस खोलने और समाचार-पत्र निकालने का श्रेय पं० बुद्धिवल्लभ पंतजी को है। उन्होंने सन् १८७१ में यहाँ पर एक डिवेटिंग क्लब खोला। जब सर विलियम म्यूर तत्कालीन प्रान्तीय लाट यहाँ आये, तो वह डिवेटिंग क्लब की कार्यवाही से प्रसन्न हुए। कहा जाता है कि उन्होंने प्रेस खोलने तथा अख़बार भी निकालने की राय दी। पंतजी ने यहाँ पर प्रेस खोला, और 'अल्मोड़ा अख़बार'-नामक साप्ताहिक पत्र भी उससे निकलने लगा। पहले उसका संपादन पंतजी स्वयं करते थे। बाद को मुंशी सदानंद सनवाल उसको चलाते रहे। 'अल्मोड़ा अख़बार' इस प्रान्त का सबसे पुराना हिन्दी साप्ताहिक था। उसका सरकारी रजिस्टर नं० १० था। 'पाइ-नियर' का नंबर १ है। वास्तव में 'अल्मोड़ा अख़बार' 'पाइनियर' का समकालीन है। सन् १८६१ तक यह लीथो में छपता था, बाद को टाइप में छपने लगा। सन् १६१३ में श्रीबदरीदत्त पांडेजी ने इसका संपादन अपने हाथों में लिया। आपने इसको राष्ट्रीय रंग में रँग डाला। इसकी क़ाफी उन्नति हुई। ग्राहक-संख्या ५०-६० से बढ़कर १५०० तक हो गई। सन् १६१७ में यह बंद हो गया।

श्रीलोमस डिप्टी-कमिश्नर इसकी नीति से रुष्ट हो गये। उन्होंने कुछ हिस्सेदारों को धमकाया और बूढ़े मुद्रक तथा प्रकाशक को अपने बँगले में बुला जेल की धमकी देकर इस्तीफ़ा देने को बाध्य किया। संपादक को बँगले में बुलाया था, पर वह गये नहीं।

सन् १६१८ में श्रीबदरीदत्त पांडेजी ने अपने मित्रों की सहायता से देशभक्त-प्रेस खोला, और उससे 'शक्ति' पत्रिका निकाली। यह राष्ट्रीय पत्रिका है। प्राचीन 'अल्मोड़ा अख़बार' की यादगार तथा कूर्मांचल प्रदेश की एकमात्र स्वतंत्र पत्रिका है। 'शक्ति' श्रीलोमस के समय में ही निकली। आपने १०००) की ज़मानत पत्र व प्रेस से ली थी।

सन् १८९३-९४ के लगभग बाबू देवीदासजी ने 'कुमाऊँ प्रिंटिंग-प्रेस' खोला, और उससे कुछ दिनों तक 'कूर्मांचल-समाचार' नामक साप्ताहिक पत्र निकलता रहा।

'शक्ति' की नीति से अप्रसन्न होकर कुछ हिस्सेदारों ने दावा करके अपने हिस्सों के रुपये ले लिये, और उन्होंने सन् १९१९ में सोम्बारी-प्रेस खोला, उससे कुछ समय तक 'ज्योति'-नामक पत्रिका निकली। बाद को यह प्रेस भी बिक गया, और समाचार-पत्र भी बंद हो गया।

सन् १९१८ में रानीखेत के ऐंग्लो-वरनाक्यूलर प्रेस से 'हिमालय' नाम का मासिक पत्र कुछ समय तक निकला, फिर वह बंद हो गया।

'कुमाऊँ प्रिंटिंग वर्क्स' से 'कूर्मांचल मित्र'-नामक साप्ताहिक पत्र निकला। कुछ दिनों चलकर यह भी बंद हो गया।

सन् १९१८ में डिबेटिंग क्लब-प्रेस को उसके एक हिस्सेदार ने खरीद लिया, और उसका नाम विंध्यवासिनी-प्रेस हो गया। उससे 'ज़िला समाचार'-नामक साप्ताहिक पत्र सन् १९२२ से निकलने लगा। बाद को यह 'कुमाऊँ-कुमुद' हो गया। यह अभी तक निकलता है। सन् १९२८ में नैनीताल से कुछ समय तक 'हितैषी'-नामक पत्रिका निकली, पर साल-भर के अंदर वह बंद हो गई।

सन् १९३० में 'स्वाधीन प्रजा'-नामक पत्र निकला। इसके संचालक देशभक्त श्रीमोहन जोशीजी थे। पत्र राष्ट्रीय पक्ष का था। ६ महीने बाद, ६०००) की ज़मानत माँगे जाने पर, यह बंद हो गया।

सन् १९३४ से 'समता'-नामक साप्ताहिक पत्र निकला। इसके संचालक एक शिल्पकार हैं। इसे सरकार से २००) माहवार सहायता मिलती है। यह पहले इंद्र-प्रिंटिंग-प्रेस में छपता था। अब 'कृष्णा-प्रेस' में छपता है।

सन् १९३५ से 'नटखट'-नामक सचित्र मासिक पत्र इंद्र-प्रिंटिंग-प्रेस से निकलने लगा है। पत्र बालोपयोगी व कुछ-कुछ देशसेवी भी है।

'शक्ति' को छोड़कर अन्य पत्र प्रायः सब राजभक्ति-पूर्ण नीतिवाले हैं।

इस समय अल्मोड़ा व नैनीताल में ये छापेखाने हैं:—

नैनीताल

किंग-प्रेस, नैनीताल (१९१२)

ए० वी० प्रेस (१९३०)

नैनीताल-प्रेस (?)

लेकजफर-प्रेस—इससे 'लेक जफर'-नामक पत्र भी अँगरेज़ी में निकलता है। इसमें थोड़े-से स्थानीय समाचार तथा विज्ञापन रहते हैं।

अल्मोड़ा

१. देशभक्त-प्रेस (१६१८)—'शक्ति' पत्रिका साप्ताहिक (१६१८)
२. विंध्यवासिनी-प्रेस (१६१८) 'कुमाऊँ-कुमुद' ,, (१६२२)
(१९२२)
३. इन्द्र-प्रिंटिंग-वर्क्स (१६२६)—'नटखट' मासिक पत्र (१६३५)
४. कृष्ण-प्रेस (१९३५)—समता साप्ताहिक (१६३४)
५. कुमाऊँ-प्रिंटिंग-वर्क्स —

रानीखेत

१. ए० वी०-प्रेस (१८६४)
२. इलियास-प्रिंटिंग-प्रेस (?)

हल्द्वानी

१. कृष्ण-प्रेस (१८३३)

काशीपुर

यहाँ भी एक जॉब प्रेस है।

यद्यपि अल्मोड़ा में सबसे पहला हिन्दी का पत्र निकला था, तथापि अभी तक कुमाऊँ के समाचार-पत्र बाल्यावस्था में हैं। प्रेस ज़ोरदार नहीं। न कोई दैनिक पत्र ही अभी तक किसी नगर से निकला है। जब तक प्रेस ज़ोरदार न हों और घर-घर समाचार-पत्र पढ़नेवाले न हों, तब तक देशोन्नति होना कठिन है।

इतिहास कूर्मांचल

दूसरा भाग
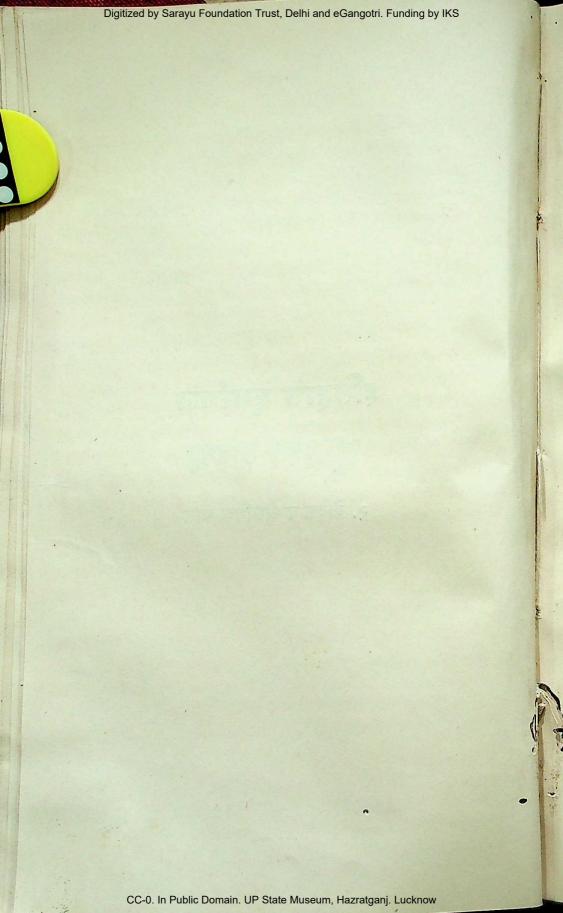
२. वैदिक व पौराणिक काल

१. वैदिक व पौराणिक काल

पुरातत्त्व-वेत्ताओं का कथन है कि लगभग पाँच-छः हज़ार वर्ष पूर्व जब आर्य लोग भारत में आये, तो वे पहले सिंधु नदी के किनारे बसे थे। ऋग्वेद में, जो वहीं लिखा गया था, यह वर्णन आया है कि आर्य लोग पाँच जातियों में विभक्त थेः—पुरु, त्रित्सु, अनु, यदु, त्रिवसु। इनमें पुरुवंशी राजा उत्तरी पंजाब के शासक थे। ये बाद को कुरुवंशी तथा—भरतवंशी भी कहलाये। इन्हीं में से राजा त्रित्सु मध्य हैमवत के भी शासक थे। इसी मध्य हैमवत में शायद पहले गढ़वाल व कूर्माचल दोनों शामिल थे।

हिमालय प्रान्त अनादि काल से बहुत पवित्र जाना व माना गया है। इसको हिमाचल, हैमवत, हेमाद्रि, हिमगिरि, हेमवन्त तथा गिरिराज आदि नामों से पुकारा गया है, पर इसका वैदिक नाम सुमेरु या मेरु है। शेरिंग साहब कहते हैं—"इसमें संदेह नहीं है कि मेरु पर्वत पवित्र कैलास का नाम है, और वह अल्मोड़ा के उत्तर में है। जिस प्रकार ईसाई को पैलेस्टीन की भूमि पवित्र है, वही उसका स्वर्ग है, इसी प्रकार मेरु या कैलास भी भारतीयों का स्वर्ग है।" हिन्दू क्या, तिब्बती लोग भी उसको स्वर्ग मानते हैं। मेरु चार रंगों का कहा गया है—पूर्व में ब्राह्मण की तरह श्वेत, दक्षिण में वैश्य की तरह पीत, उत्तर में क्षत्रिय की तरह लाल, और पश्चिम में शूद्र की तरह श्याम। इसके चार कंगूरों में कहा जाता है कि चार क़िस्म के वृक्ष हैं—(१) कदम, (२) पीपल, (३) जंबू, (४) वट। हिन्दू-शास्त्रों* में इस भूमि का वर्णन इस प्रकार किया गया है—"यह स्वर्गभूमि है। यह धर्मात्माओं का स्थान है।

---

* दर्शयामासमे शीघ्रं मातलिः शक्र सारथिः।
ततः शक्रस्य भवनमपश्यममरावतीम् ॥ ४५ ॥
दिव्यैः कामफलैर्वृक्षै रत्नैश्च समलङ्कृताम्।
न तत्र सूर्यस्तपति न शीतोष्णेन चलमः ॥ ४६ ॥
न बाधते तत्र रजस्तत्रास्तिन जरानृप।
न तत्र शोको दैन्यं वा दौर्बल्यञ्चोपलक्ष्यते ॥ ४७ ॥
दिवौकसांमहाराज न ग्लानिररिमर्दन।
न क्रोधलोभो तत्रास्तां सुरादीना विशाम्पते ॥ ४८ ॥

अधर्मी यहाँ हज़ार जन्म के बाद भी नहीं आ सकते। यहाँ दुःख, जरा, चिन्ता, भूख, प्यास व व्याधियाँ नहीं व्याप सकतीं। लोग हज़ारों वर्षों तक जीते हैं। यहाँ वर्षा नहीं होती, क्योंकि यहाँ पानी प्रचुर है। यहाँ काल का कोई काम नहीं।"

इस पर्वत का विस्तार बहुत लंबा-चौड़ा है। हज़ारों योजन का होना कहा गया है। भागवत में लिखा है कि सुमेरु के दक्षिण में कैलास और करबीर-गिरि तथा उत्तर में त्रिशृंग और मकर पर्वत हैं।......सुमेरु के मध्य भाग में ब्रह्मपुरी है। (कत्यूरियों की राजधानी का नाम कार्त्तिकेयपुर उर्फ़ करबीरपुर था। त्रिशृंग वर्तमान त्रिशूल पर्वत है। ब्रह्मपुर कत्यूरियों के प्राचीन राज्य का नाम भी था।)

क्या वैदिक, क्या पौराणिक (क्या आधुनिक?) सब समय के देवी-देवताओं की तपोभूमि, विहार-भूमि तथा मंत्रणा-भूमि (Parliament) सुमेरु या हिमाचल ही रहा है। जब जब देवताओं ने पृथ्वी के भार उतारने की मंत्रणा की, तो सब यहीं एकत्र होते थे। (अब भी अँगरेज़ों की कौंसिलें व कमेटियाँ शिमला, नैनीताल, दारजिलिंग आदि में होती हैं।

हिमालय पर्वत अनन्त काल से महादेव व पार्वती के निवास-स्थान माने गये हैं। हिमाचल पुराणों में एक राजा भी है, जिसकी कन्या पार्वती थी। पार्वती के अन्य नाम गिरिजा, गिरिराजकिशोरी, शैलेश्वरी, नंदा आदि हैं। हिन्दुओं के इहलौकिक स्वर्ग व पुण्य-स्थान कैलास, मानसरोवर आदि इसी की गोद में स्थित हैं। गंगा, यमुना, करनाली, सतलज, (शतद्रु), सिंधु, ब्रह्मपुत्रा, काली आदि-आदि उत्तर-भारत की प्रधान नदियाँ मानसरोवर के आस-पास से निकलकर तमाम उत्तरी भारत को अनन्त काल से पवित्र करती हैं। मानसरोवर कूर्माचल के ख़ास मस्तक पर स्थित है। इसी के नीचे की छोटी पहाड़ियों से सरयू, रामगंगा, कोशी (कौशल्या या कौशिकी) आदि नदियाँ निकली हैं। भारत के उत्तरी स्थान के सदा के रक्षक शुभ्र हिमाचल की

नित्य तुष्टाश्चते राजन् प्राणिनः सुरवेश्मनि।
नित्य पुष्पफलास्तत्र पादपा हरितच्छयाः॥ ४९॥
पुष्करिन्याश्च विविधाः पद्म सौगान्धकायुताः।
शीतस्तत्रववो वायुः सुगन्धीजीवनः शुचिः॥ ५०॥
सर्वरत्न विचित्राच भूमिः पुष्पविभूषिता।
मृग द्विजाश्च वहवो रुचिरामधुरस्वराः॥ ५१॥

(महाभारत, वनपर्व, अध्याय १६८)

ऊँची चोटियाँ (नंदादेवी, पंचचूली, बणकटा, परशुराम, द्रोणागिरि, त्रिशूल आदि-आदि कूर्माचल के मस्तक की शोभा इसी प्रकार बढ़ाती रही हैं, जैसे किसी चक्रवर्ती सम्राट् के सिर की शोभा को किरीट यानी ताज बढ़ाता है। ऊँटाधुरा, लिपुधुरा, नेवधुरा, तथा लेबंगधुरा सब दर्रे, जिनसे तिब्बती लोग यहाँ आते या यहाँवाले तिब्बत में जाते हैं, कूर्माचल के उत्तर में हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि आर्यों के पश्चात् शक व हूण भी इन्हीं दर्रों में होकर भारत में फैले थे। डा० लक्ष्मीदत्त जोशीजी भी इस मत के समर्थक हैं।

सुर, असुर, नर, यक्ष किन्नर, सबों को यह भूमि प्रिय रही है। हाहा-हूहू गंधर्व सब यहीं नाचते थे। हनुमान्जी ने यहीं द्रोणागिरि (दूनागिरि) से संजीवनी बूटी ले जाकर लंका में मूर्च्छित लक्ष्मणजी को जीवन-दान दिया था, और भगवान् रामचंद्रजी के शोक को हर्ष में परिवर्तित किया था। पांडवों ने यहाँ ठौर-ठौर में घूमकर इस भूमि को पवित्र तथा असुरों के त्रास से मुक्त किया है, और यहीं के गंधमादन पर्वत से सोना निकालकर उन्होंने राजसूय-यज्ञ किया था। अर्जुन ने यहीं पर तपस्या से महादेवजी को प्रसन्न कर पाशुपत आदि दिव्य अस्त्र पाये थे, और महादेवजी ने उन्हें किरात के रूप में दर्शन दिये थे। कालिदास की प्रसिद्ध अलकापुरी भी यदि यहीं पर कहीं हो, तो आश्चर्य नहीं। यक्षों के राजा कुबेर की कांचननगरी तो पुराणों में कहीं यहीं कैलास पर्वत के निकट बताई गई है।

यह प्रान्त काश्मीर से किसी प्रकार भी प्राकृतिक सौंदर्य में कम नहीं है। गंगा-यमुना से पवित्र किये गये केदारमंडल में वर्तमान काल में मार्ग की सुगमता से यात्रियों का ताँता ज्यादा हो, तथापि मानसरोवर व कैलास-धाम के कूर्माचल के शीर्ष-स्थान में स्थित होने से इसकी महिमा वेद व पुराणों में ज्यादा जानी व मानी गई है।

बदरीनाथ, केदारनाथ, जागनाथ, वाघनाथ, गणानाथ, पीनाथ व रामनाथ आदि बड़े-बड़े नाथ इस भूमि की रक्षा करते आये हैं। जयंती, मंगला, काली महाकाली, भद्रकाली, दुर्गा आदि देवियाँ यहीं विराजमान हैं। कपिल, गर्ग, द्रोण, नारद, कण्व, व्यास, वशिष्ठ, मारकंडेय प्रभृति ऋषियों के तपस्या-श्रम यहीं थे। अष्टभैरव, जो शिव की कैलासपुरी के रक्षक कहे जाते हैं, सब यहीं विद्यमान हैं। साथ ही 'हरू, सैम, ऐड़ी, ग्वाल्ल, गंगानाथ, भोलानाथ, छुरमल्ल, कलविष्ट आदि-आदि' ग्राम-देवता इसकी उग्र सेवा करते रहे हैं।

दस्यु, किरात, नाग, खस, शक, हूण, यवन आदि जातियाँ यहाँ पूर्व काल से रहती आई हैं। शास्त्रकारों ने तो इस भूमि को स्वर्गलोक की ही उपमा दे दी है।

शक, खस, कत्यूरी, चंद, गोरखा व अँगरेज़ राजाओं ने इस दिव्य भूमि में नाना प्रकार के भोग भागे हैं।

बौद्ध-धर्म का भी यह प्रदेश पहले बहुत बड़ा मार्गानुगामी रहा। पश्चात् शंकरदिग्विजय का डंका भी इस प्रान्त में ज़ोरों से बजा, और यहाँ पर एक स्मारक जोशी-मठ, दूसरा जागीश्वर-धाम में बनाया गया। बदरिकाश्रम के पास ज्योतिर्मठ (जोशीमठ) बनाया गया। बौद्धों ने जो देवता पानी में डुबो दिये थे, वे फिर से स्थापित किये गये। कूर्मांचल में अमरवन या दारुकवन के पास ज्योतिर्लिंग की स्थापना हुई। दोनों स्थान ज्योतिर्मय कहलाये।

वायुपुराण तथा मानसखंड (जो स्कन्दपुराण का एक भाग है) इसका गुण-गान करते हैं। किन्तु उनमें विशेषकर ऐसी-ऐसी कहानियाँ व क़िस्से भरे हैं, जिनका तात्पर्य समझना तो दूर रहा, लोग इस वैज्ञानिक युग में उन घटनाओं का होना असंभव समझते हैं। उन्हें लेखकों की कपोल-कल्पना मानते हैं। उनसे ऐतिहासिक बातों का सार निकालना बहुत ही कठिन है। हाँ, भौगोलिक बातों का कुछ पता उनसे अवश्य चलता है। काश्मीर के 'राजतरंगिणी' महाग्रंथ के सदृश कुमाऊँ में कोई भी ऐसा ग्रंथ नहीं, जिसको इतिहास की संज्ञा से पुकारा जावे और जिससे यहाँ का इतिहास लिखने में सहायता मिले। उस समय के लोग धर्म-प्रेमी थे। वे धर्म का प्रचार करना चाहते थे। उनके ग्रंथों में ठौर-ठौर में तीर्थों की महिमा गाई गई है। वे राजनीति, समाज-नीति को गौण पक्ष देते थे या उनके महत्त्व को तब ठीक-ठीक नहीं समझते थे, यह कहा नहीं जा सकता।

आर्यों ने हिमाचल की बड़ी महिमा गाई है। यह प्रान्त बड़ा विकट, हिमाच्छादित तथा दुस्तर होने से नदियों की माता, इन्द्रदेव का घर, जंगली जंतुओं का निवास-स्थान माना गया है। यह पर्वतों का राजा या गिरि-राज की पदवी से विभूषित किया गया। यहाँ जो कोई भी मनुष्य आता है, वह यहाँ के अलौकिक आनंद तथा नैसर्गिक छटाओं को देखकर चकित व विस्मित हो जाता है। इसी से यह पर्वतराज समस्त देवताओं का निवास-स्थान, ऋषि, मुनि, तथा सिद्धगणों की तपोभूमि समझा गया। यहाँ पर प्रत्येक नदी, पहाड़, चोटी, गुफा, जल-प्रपात का संबंध किसी देवता, ऋषि, मुनि, सिद्ध, चारण या भूत-प्रेत से बताया जाता है।

मानसखंड में हिमाचल को काशी से भी ज्यादा पुण्य-धाम माना गया है। कहा है, जो हिमालय को देखना तो दूर रहा, उसका ध्यान भी करे, वह उनसे बड़ा है, जो काशी में सब प्रकार की पूजा व तपस्या करते हैं। महादेवजी

उमा से कहते हैं—"हे उमा ! मैं देवताओं के सहस्र युगों में भी तुमसे हिमाचल की कीर्ति का वर्णन न कर सकूँगा। जैसे प्रभात काल के सूर्य से ओस के विंदु सूख जाते हैं, ऐसे ही हिमाचल के दर्शन से मनुष्य-मात्र के पाप मुक्त हो जाते हैं।"

वेदों के लिखने की भूमि सिंधु से लेकर गंगा व मानसरोवर तक की भूमि मानी गई है। यह भी कहा जाता है कि वैद्यक-शास्त्र का प्रसिद्ध ग्रंथ चरक ईसा से सैकड़ों वर्ष पूर्व हिमाचल के किसी प्रान्त में लिखा गया था।

राम व कृष्ण के यहाँ आने की बातें पुराणों में विद्यमान हैं। कहीं पादुकाएँ हैं, कहीं मंदिर, कहीं सीतावनी है, कहीं बाणासुर को भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने मारा, इत्यादि। किन्तु यह ऐतिहासिक बात है कि भगवान् बुद्धदेव काशीपुर (गोविषाण) में आये थे। ह्यूनसांग ने लिखा है कि यहाँ उन्होंने बुद्ध-धर्म का प्रचार किया था। पांडवों की यादगारें यहाँ बहुत हैं। भीमताल भीमसेन के नाम से प्रसिद्ध है। देवीधुरे में कई बड़े-बड़े पत्थर हैं, जो पाँडवों के नाम से प्रसिद्ध हैं कि उन्होंने ये खेल में नीचे फेंके थे। भीमसेन की पाँचो अंगुलियों के चिह्न भी उनमें बताये जाते हैं। पाली पछाऊँ में भी पांडवों के नाम से कई स्थान प्रसिद्ध हैं। वहाँ विराट-नगरी का होना भी कहा जाता है। संभव है, किसी समय में पांडवों का राज्य कूर्माचल में रहा हो।

जब आर्यों ने हिमालय का अन्वेषण किया (भगीरथजी ने गंगा के उद्‌गम को ढूँढा, वशिष्ठ ने सरयू की और कौशिक ने कोशी की जाँच की) तो उनको कैलास-पर्वत का पता चला। कैलास नाम तिब्बती भाषा में भी है। यह नाम तिब्बतियों का है या आर्यों का, ठीक-ठीक कहा नहीं जाता। पुराणों में इसका नाम स्वर्णभूमि है। बर्फ़ से ढके पर्वत सुबह व शाम को धूप की आभा पड़ने से स्वर्ण-से चमकते हैं। तिब्बत से सोना भी आता है। शायद इसी से उसका नाम स्वर्ण-भूमि पड़ा हो।

वायुपुराण तथा श्रीमद्भागवत में कुमाऊँ की इन नदियों का नाम आया है—(१) सरयू, (२) कौशिकी (कोशी)। ब्रह्मांड पुराण में (१) त्रिशूल, (२) पंचचूली-नामक दो कूर्माचल की ऊँची तथा हिमाच्छादित चोटियों के नाम आए हैं। महाभारत के वनपर्व के ११०.अध्याय में यह प्रसंग आया है। ऋषि लोमस ने युधिष्ठिर से कहा—"हे कुरुश्रेष्ठ, आप भाइयों के साथ यहाँ पर बहती हुई नंदा (अलखनंदा) में स्नान कीजिए। फिर कौशिकी नदी को जाइए। वहाँ विश्वामित्रजी ने घोर तप किया है।" तब राजा युधिष्ठिर भाइयों के साथ नंदा में नहाकर, पवित्र कौशिकी (कोशी) नदी को गए।

२. मानसखंड

अब हम यहाँ पर मानसखंड का उल्था तो नहीं, भावार्थ-मात्र देते हैं, ताकि कूर्माचल की जो कुछ महिमा उसमें गाई गई है, लोग उससे परिचित हो जावें।

मानसखंड स्कंदमहापुराण का एक छोटा-सा खंड है। यह राजा जनमेजय तथा सूत पौराणिक के बीच संवाद-रूप से प्रारंभ होता है। राजा ने सूत से पृथ्वी की उत्पत्ति तथा तीर्थों की रचना की बाबत प्रश्न किये, तो उन्होंने कहा कि पहले तमाम ब्रह्मांड में केवल पानी था। उसमें विष्णु शेष-शय्या पर सोते थे। उनकी नाभि से एक कमल उत्पन्न हुआ, जिससे ब्रह्मा पैदा हुए। कान से दो दैत्य मधु व कैटभ प्रकट हुए। उन्होंने ब्रह्मा के साथ युद्ध ठाना। ५००० वर्ष घोर युद्ध हुआ। तब ब्रह्मा की इच्छा से महामाया प्रकट हुई। उसने दैत्यों को हराया। तब विष्णु ने उनको उनके वरदान के अनुसार सुदर्शन-चक्र से मारा। फिर विष्णु ने पृथ्वी को कछुवे का रूप धारण कर पानी से ऊपर उठाया। ब्रह्मा से सृष्टि उत्पन्न करने को कहा। ब्रह्मा ने पहले पृथ्वी, आकाश व स्वर्ग को बनाया। पृथ्वी को नौ खंडों में विभाजित किया। तब ब्रह्मा ने वायु, शब्द, काल (भूत, भविष्य, वर्तमान) बनाये, काम-क्रोध आदि भावनायें भी रचीं। सात ऋषि (मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ) उत्पन्न किये, जो सप्तर्षि कहाये। क्रोध से रुद्र उत्पन्न हुए, एवं तीन महाशक्तियाँ उत्पन्न हुईं, जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहलाईं। ब्रह्मा सृष्टिकर्ता, विष्णु पालनकर्ता तथा शिव विनाशक नियुक्त हुए। पश्चात् गुण, कर्म, स्वभाव भी बनाये। मरीचि का पुत्र कश्यप था, उसकी १३ स्त्रियों से आदित्य, दानव, दैत्य, यक्ष, राक्षस, अप्सरा, गांधर्व, नाग, सिद्ध, विद्याधर तथा पशु, पक्षी, जलचर, नभचर, थलचर आदि उत्पन्न हुए।

आधुनिक विद्वानों का मत है कि आर्यों के आने के पूर्व उपर्युक्त जातियाँ भारतवर्ष में रहती थीं।

---

३. राजा बेणु व राजा पृथु की कथा

ऋषि अत्रि से राजा अंग हुए और उनसे बेणु। बेणु ने पृथ्वी को सताया। जप, तप, होम, यज्ञ, सब बंद कर दिये। उसने कहा कि राजा ही ईश्वर है। उसकी पूजा होनी चाहिए, अन्य की नहीं। ऋषियों ने उसे मार डाला, और उसके शरीर को मथने से एक निषाद, दूसरा पृथु, दो प्राणी उत्पन्न हुए। निषाद से दस्यु हुए और पृथु पृथ्वी के राजा हुए। बेणु के अत्याचार से

सब वनस्पतियाँ लुप्त हो गईं। पृथु ने पृथ्वी को डाँटा कि वह वनस्पतियों को फिर से उत्पन्न करे। पृथ्वी ने डर से गाय का रूप धारण कर सब देवताओं से शरण माँगी। किसी ने न दी, उल्टा पृथु के पास भेजा। पृथु ने इस शर्त पर पृथ्वी को शरण देने को कहा कि वह वनस्पतियों को फिर से उत्पन्न करे। पृथ्वी ने कहा कि राजा पर्वतों को हटा दे, क्योंकि वे वनस्पति की उत्पत्ति को रोकते हैं। तब पृथु ने अपने धनुष से पहाड़ों को उखाड़ा और एक दूसरे पर इकट्ठा किया, धरती को हमवार बनाया, और उसका नाम पृथ्वी रक्खा। इस अभिप्राय से कि धरती मनुष्य के वास्ते फिर से भोजन उत्पन्न करे, पृथु ने स्वयंभूमनु नाम की कामधेनु बनाई, और अपने हाथ से पृथ्वी से सब पौधे व वनस्पतियाँ उत्पन्न कीं। तब देवता व दैत्य, दोनों ने पृथ्वी से नाना प्रकार की ऋद्धि-सिद्धियाँ उत्पन्न कीं, और रात-दिन उसको दुहते रहे। जिससे पृथ्वी दुखी होकर ब्रह्मा के पास गई। ब्रह्मा पृथ्वी को विष्णु व शिव के पास ले गये। विष्णु ने पृथ्वी से पूछा कि वह क्या चाहती है। पृथ्वी ने कहा कि उसकी मुक्ति तभी हो सकती है, जब तीनों देवता पृथ्वी में आकर निवास करें। विष्णु भगवान् ने कहा कि उन्होंने अभी दो बार—एक बार अनन्त सर्प के रूप में, दूसरी बार कच्छप के रूप में—पृथ्वी को बचाया है, और वह फिर भी उसकी रक्षा को आवेंगे, यदि वह पापों के भार से दबने लगेगी। लेकिन इस समय वे न आवेंगे।

फिर आकाश-वाणी हुई—"किसी समय में ब्रह्मा का सिर तेरे ऊपर ब्रह्मकपाली में गिरेगा, शिव झाँकर पर्वत में प्रकट होंगे, और शिवलिंग नाना स्थानों में स्थापित होंगे, तब वैवस्वत वंश में एक भगीरथ राजा होगा, जो गंगा को लावेगा। मैं राजा बलि के अत्याचारों से तेरी रक्षा के लिये बावनावतार धारण कर आऊँगा। तब संसार जानेगा कि विष्णु प्रकट हुए हैं। तब तेरे कष्ट दूर होंगे, और पर्वत तुझको अपने बोझ से दबा न सकेंगे, क्योंकि मैं हिमालय का रूप धारण करूँगा, जहाँ नारदादि मुनिगण मेरी कीर्ति का गान करेंगे। शिव कैलास होंगे,-जहाँ गणेशादि देवगण उनका गुण-गान करेंगे। ब्रह्मा विंध्याचल का रूप धारण करेंगे। इस तरह पर्वतों का भार दूर हो जावेगा।" तब पृथ्वी ने कहा—"तुम क्यों अपने नहीं, किन्तु पर्वतों के रूप में पृथ्वी में आते हो?" विष्णु ने कहा—"पर्वत के रूप में जो आनंद है, वह प्राणी-रूप में नहीं है, क्योंकि पर्वतों को गर्मी, जाड़ा, दुःख, क्रोध, भय, हर्ष आदि विकार तंग नहीं करते। हम तीनों देवता पर्वत-रूप में लोक हित के लिये संसार में आवेंगे।" यह कहकर तीनों देवता अन्तर्धान हो गये। पृथ्वी अपने स्थान को गई।

---

४. शिव की यागीश्वर में तपस्या

पश्चात् दक्ष प्रजापति ने कनखल के समीप यज्ञ किया। वहाँ शिव के अतिरिक्त सबको बुलाया। शिव की अर्द्धांगी काली बिना बुलाये पिता के यहाँ गईं। वहाँ अपना तथा अपने पति का तिरस्कार देखकर रोष से भस्म हो गईं। शिव ने कैलास से यह बात जान दक्ष प्रजापति का यज्ञ विध्वंस कर सबका नाश कर दिया। और चिता की भस्म से शरीर को आच्छादित कर झांकरसैम में तपस्या की। झांकरसैम को तब भी देवदारु-वन से आच्छादित बताया है। यह झांकरसैम जागीश्वर पर्वत में है। कुमाऊँ के इस पर्वत में वशिष्ठ मुनि अपनी स्त्रियों-सहित रहते थे। एक दिन स्त्रियों ने जंगल में कुशा व समिधा एकत्र करते हुए शिव को राख मले हुए नग्नावस्था में तपस्या करते देखा। गले में साँप की माला थी। आखें बंद, मौन धारण किये हुए, चित्त उनका काली के शोक से संतप्त था। स्त्रियाँ उनके सौंदर्य्य को देखकर उनके चारों ओर एकत्र हो गईं। सप्तर्षियों की सातों स्त्रियाँ जब रात में न लौटीं, तो प्रातःकाल वे ढँूढ़ने को गये। देखा, तो शिव समाधि लिये बैठे हैं, और स्त्रियाँ उनके चारों ओर बेहोश पड़ी हैं। ऋषियों ने यह विचार कर कि शिव ने उनकी स्त्रियों की बेइज़्ज़ती की है, शिव को शाप दिया·—"जिस इन्द्रिय यानी वस्तु से तुमने यह अनौचित्य किया है, वह (लिंग) भूमि में गिर जावेगा।" तब शिव ने कहा—"तुमने अकारण मुझे शाप दिया है, लेकिन तुमने मुझे सशंकित अवस्था में पाया है, इसलिये तुम्हारे शाप का मैं विरोध न करूँगा। मेरा लिंग पृथ्वी में गिरेगा। तुम सातों सप्तर्षि तारों के रूप में आकाश में चमकोगे।" अतः शिव ने शाप के अनुसार अपने लिंग को पृथ्वी में गिराया। सारी पृथ्वी लिंग से ढक गई। गंधर्व व देवताओं ने महादेव की स्तुति की, और उन्होंने लिंग का नाम यागीश या यागीश्वर कहा, और वे ऋषि सप्तर्षि कहलाये।

[यागीश इसलिये नाम पड़ा कि स्त्रियाँ यज्ञ के लिये कुशा व समिधा एकत्र कर रही थीं। महाभारत में ऋषियों के साथ रमण करने की कहानी को अग्नि का रूप दिया गया है। वहाँ शिव अग्नि के रूप में आये हैं। स्वाहा उसमें ऋषियों की पत्नियाँ हैं। स्वाहा ने अग्नि को संतुष्ट किया, उससे जो वीर्य (स्कन्न) निकला, वह स्वाहा ने एक स्वर्णघट में एकत्र किया, जिससे स्कन्द यानी स्वामी कार्त्तिकेय पैदा हुए। वह कार्त्तिकेय इसलिये कहलाये कि वह कृत्तिकों (किरातों) द्वारा पाले गये, जो कैलास में रहते थे। उनके ६ सिर व १२

हाथ थे, पर पेट एक ही था। कारण यह कि ७ स्त्रियों में से ६ ने शिव के साथ संभोग किया था, ७वीं अरुंद्धति, जो वशिष्ठ की स्त्री थीं, इस कृत्य में सम्मिलित न थीं। इसी कारण कार्त्तिकेय षड़ानन कहलाये। यागीश्वर (जागीश्वर) के पंडे भी यही कहानी कहते हैं। वे इतनी बात और जोड़ते हैं कि महादेव सातों स्त्रियों पर मोहित हो गये थे। वे उनको नग्नावस्था में मिले थे। वह पार्वती की प्रसन्नता के लिये तँबूरा व डमरू बजाते हुए तांडव-नृत्य कर रहे थे। शाप के कारण लिंग भूमि में गिरा। भूमि लिंग के भार से दबने लगी। विष्णु ने योनि यानी शक्ति होना स्वीकार किया, और चक्र से लिंग को काटकर तमाम भारत के ओने-कोने में बाँटा। यागीश्वर (जागीश्वर) तब से पवित्र तीर्थ हो गया। यह भूमि १४४ वर्ग-मील की मानी गई है। पूर्व में इसके जटेश्वर, उत्तर में गणनाथ, पश्चिम में त्रिनेत्र तथा दक्षिण में रामेश्वर हैं। कहा जाता है कि ईश्वरधार में शिव ने सप्तर्षियों की स्त्रियों से विहार किया था।]

---

५. शिवलिंग का प्रकट होना

आकाशवाणी हुई—"संसार में कोई जगह नहीं, जहाँ शिव नहीं हैं। इसलिये हे ऋषियो! आश्चर्य मत करो, यदि शिवलिंग दुनिया को ढक ले।"

तब ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सूर्य, चंद्रमा व अन्य देवगण, जो जागीश्वर में शिव की स्तुति कर रहे थे, अपना-अपना अंश व शक्ति छोड़कर चले गये। पृथ्वी लिंग के भार से दबने लगी, और शिव से प्रार्थना की कि वह भार से मुक्त की जावे। तब देवताओं ने लिंग का आदि-अन्त जानना चाहा। पृथ्वी ने ब्रह्मा से पूछा—"लिंग कहाँ तक है?" ब्रह्मा ने कहा—"जहाँ तक पृथ्वी है, वहाँ तक है।" पृथ्वी ने ब्रह्मा को शाप दिया—"तुमने एक बड़े देवता होकर झूठ बोला है, इससे तुम्हारी पूजा संसार में न होगी।" ब्रह्मा ने भी पृथ्वी को शाप दिया—"तुम भी कलियुग के अन्त में म्लेच्छों से भर जाओगी।" और देवताओं से पृथ्वी ने पूछा, तो उन्होंने कहा—"जब ब्रह्मा, विष्णु व कपिल इस बात को नहीं जानते, तो वे कैसे जान सकते हैं।" तब विष्णु से पूछा। वे पाताल गये, पर अन्त न पा सके। तब देवताओं ने विष्णु से प्रार्थना की। विष्णु शिव के पास गये, और उनसे अनुनय विनय के बाद यह बात निश्चय हुई कि विष्णु सुदर्शन-चक्र से लिंग को काटें और तमाम खंडों में उसे बाँट दें। अतः जागीश्वर में लिंग काटा गया। और वह नौ खंडों में बाँटा गया।—

(१) हिमाद्रि-खंड, (२) मानस-खंड, (३) केदार-खंड, (४) पाताल-खंड, जहाँ नाग लोग लिंग की पूजा करते हैं, (५) कैलास-खंड, जहाँ शिव स्वयं विराजते हैं, (६) काशी-खंड, जहाँ विश्वनाथ हैं, (७) रेवा-खंड, जहाँ रेवा नदी है, जिसके पत्थर नारवदेश्वर के रूप में लिंग की पूजा होती है। यहाँ के शिवलिंग का नाम रामेश्वर है, (८) ब्रह्मोत्तर-खंड, जहाँ गोकर्णेश्वर महादेव हैं (कनारा ज़िला बंबई-प्रान्त में) और (९) नगर-खंड, जिसमें उज्जैन-नगरी है।

---

६. महादेव-पार्वती का विवाह

इसके बाद जब शिव ने कामदेव को भस्म किया, तो वे भस्म लगाये, पीठ में मृगछाला ओढ़े, साँपों को गले में डाले, त्रिशूल हाथ में लिये, गले में रुंडमाल पहने, नांदी में चढ़कर पार्वती के साथ विवाह करने को गये। गोमती नदी के किनारे (जो कूर्माचल के कत्यूर परगने में है) ठहरे। वहाँ गणेश का पूजन किया, और गोमती व गारुड़ी (वर्तमान गरुड़ गंगा) के संगम पर विश्राम किया, और ब्रह्मा को हिमाचल के पास भेजा कि बरात आ गई है। जिस स्थान में शिव बैठे, वह वैद्यनाथ (बैजनाथ) कहा गया, क्योंकि उनके बैठने से वहाँ की जड़ी-बूटियाँ सब औषधि के योग्य हो गई (गढ़वाल के लोग कहते हैं कि शिव व पार्वती का विवाह त्रियुगीनारायण के पास हुआ। पर मानसखंड में उसका वैद्यनाथ के पास होना कहा गया है।)। हिमाचल ने शिव व बरातियों का बड़ा आदर किया। इससे शिव ने वरदान दिया कि वह भी शिव की तरह पूजा जावेगा।

---

७. हिमाचल-महिमा

आगे चलकर जनमेजय से सूत ने हिमालय की प्रशंसा की। कहा कि हिमालय धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का देनेवाला है। महादेव सदा वहाँ रहते हैं। देवता उनकी सेवा करते हैं। वहाँ बहुत-सी गुफाएँ हैं, और वहाँ हिम है। पश्चात् कहा गया है कि किस प्रकार दत्तात्रेय ऋषि ने शेषाचल (विन्ध्याचल-आबू पर्वत) से हिमाचल को देखा। ऋषि वहाँ गये, और हिमाचल ने बड़ा स्वागत किया। वहाँ उन्होंने मानसरोवर में स्नान किया, और राजहंस के दर्शन किये। तब उन्होंने महादेव-पार्वती को एक गुफा में बैठे देखा, जहाँ देवता उनकी स्तुति करते व गंधर्व तथा अप्सराएँ नाचती थीं।

तब उन्होंने गंगा को देखा। ब्रह्म-कपाली व सप्तर्षियों के दर्शन भी किये। शिव की स्तुति करने पर उन्होंने शिव से पूछा—"सबसे बड़ा पर्वत कौन है, जहाँ वे रहते हैं, तथा दुनिया में सबसे पवित्र स्थान कौन है ?" शिव ने कहा—'मैं हर जगह रहता हूँ, पर हिमाचल मेरी खास राजधानी है। उसकी हर चोटी में मैं रहता हूँ। नंदा में विष्णु, मैं व ब्रह्मा रहते हैं। हिमाचल के बराबर कोई पर्वत नहीं, उसे देखो और इच्छित पदार्थ प्राप्त करो।"

मानसरोवर व कैलास से हिमाचल की आज्ञा लेकर दत्तात्रेय काशी पहुँचे। वहाँ राजा धन्वंतरि ने पूछा—"दुनिया में सबसे बड़ा तीर्थ कौन है?" ऋषि ने कहा—"तुम सबसे बड़े राजा हो, काशी से बड़ा कोई तीर्थ नहीं, जो काशी में मरता है, वह मुक्त होता है, क्योंकि यहाँ गगा व विश्वेश्वर हैं। तीनों लोक में काशी से बड़ा कोई तीर्थ नहीं।" तब राजा ने पूछा कि उन्होंने सुना है कि पुराने ज़माने में लोग सदेह स्वर्ग को गये हैं, वे किस रास्ते गये हैं ? तब ऋषि ने कहा—"जो हिमाचल को देखना तो दूर, उसका ध्यान भी करता है, वह उससे बड़ा है, जो काशी में पूजा करता है। जो हिमाचल का ध्यान करेगा, उसके सब पाप मुक्त हो जावेंगे ...मानसरोवर में शिव राजहंस के रूप में रहते हैं। वहाँ से सरयू व शतद्रु नदियाँ निकलती हैं। . मानसरोवर ब्रह्मा के मन से उत्पन्न हुआ।

"हिमाचल के बराबर कोई पर्वत नहीं, क्योंकि यहाँ कैलास व मानसरोवर हैं। मानसरोवर में राजा भगीरथ तपस्या कर गंगा को लाये। वशिष्ठ सरयू को लाये।"

---

८. मानसरोवर का रास्ता

राजा ने सूत पौराणिक से मानसरोवर का रास्ता पूछा, तो दत्तात्रेय ने उत्तर दिया—'यात्री को कूर्माचल के रास्ते जाना चाहिए। पहले उसको गिंदकी (वर्तमान काली कुमाऊँ की गिध्या या गिणियाँ) नदी में नहाना चाहिए, फिर लोहा (लोहाघाट की लोहावती नदी) में नहाकर महादेव व अन्य देवताओं की पूजा करनी चाहिए। तब उसको कूर्म-शिला की चोटी में पूजन करना होगा, और हंस-तीर्थ में नहाना चाहिए [कूर्म-शिला को आजकल कांडादेव या कानदेव भी कहते हैं। हंस-तीर्थ वहाँ पर एक छोटी नदी व जल-प्रपात (छीड़े) का नाम है।], फिर यात्री सरयू में स्नान कर दारुण व झाँकर (जागीश्वर) को जावें और वहाँ महादेव की पूजा करे। तत्पश्चात् वहाँ से

पाताल-भुवनेश्वर को जावे। वहाँ ३ दिन निराहार रहकर शिव की पूजा करे। तब वह रामगंगा में नहावे और बालेश्वर का अर्चन करे। पीछे पावन पर्वत (सीरा की पट्टी पाली का पर्वत) पर शिव की पूजा करे। तब उसे पाटक (धज पर्वत) होकर काली व गोरी के संगम (जौलजीवी) में स्नान करना चाहिए। तब चतुर्दौंष्ट्र (चौदांस) पर्वत में शिव की पूजा करे। तब व्यासाश्रम (व्यांस) में व्यास ऋषि को पूजे। फिर कालीमूल में जाकर केराल पर्वत में देवी की पूजा करे। (केराल को व्यांस में छेछला पर्वत भी कहते हैं।) तब पुलोमन पर्वत में जावे, जहाँ पर एक तालाब है (पुलोमन पर्वत व्यांस-चौंदास के बीच में है। वहाँ पर मान तालाब है, उसको व्यांस शिति भी कहते हैं। यह भूलिंग और रारुव याङ्ती के बीच है।)। तब तारक पर्वत में जाकर तारनी व काली के संगम में स्नान करे। फिर गुफाओं को देखे, और देवताओं को पूजे। अपना मुंडन करे और व्रत रखकर श्राद्ध करे। तब गौरी पर्वत में जावे और नीचे उतरकर मानसरोवर में नहावे और अपने पितरों का तर्पण करे और राजहंस के रूप में शिव को पूजे। तब उसे पवित्र मानसरोवर की परिक्रमा करनी चाहिए, और सब नदियों में नहाना चाहिए।

---

९. लौटने का रास्ता

जब राजा ने लौटने का रास्ता पूछा, तो उत्तर मिला कि पहले यात्रियों को रावण-ह्रद (राकसताल) में जाकर नहाना चाहिए व शिव की पूजा करनी चाहिए। तब उसे सरयूमूल में पूजन करना चाहिए। तब वह खेचर-तीर्थ (खोचरनाथ) होकर ब्रह्म-कपाली में जावे। तब रामेश्वर में जाकर स्नान करे। फिर ऋणमोचन, ब्रह्मसरोवर, शिवनेत्र होकर नंदा पर्वत में जावे। वहाँ से वैद्यनाथ आवे और वृद्धगंगा में स्नान कर मल्लिकादेवी (माला बौरारौ में) का पूजन करे। फिर ज्वाला-तीर्थ (ज्वालामुखी) को जावे।

---

१०. अन्य स्थलों का वर्णन

आगे चलकर मानसरोवर के पास के पर्वत, नदी व तालाबों के वर्णन है। वहाँ सोने, चाँदी तथा ताँबे की खानें होनी बताई गई हैं। पुष्पभद्र व देवभद्र नदियों के पास कहा जाता है कि भगवान् रामचंद्र महादेव को प्रसन्न कर अपने हाथी, घोड़ों को छोड़कर स्वर्ग को गये थे।

---

११. पर्वतों के नाम

मानसखंड में इन पर्वतों के नाम आये हैं—(१) नंदा, जहाँ नंदादेवी रहती हैं, (२) द्रोण पर्वत दुनागिरि, जो द्वाराहाट के ऊपर है, (३) दारुकवन (जागीश्वर), (४) कूर्माचल (काली कुमाऊँ में कांडादेव भी कहलाता है), (५) नागपुर (नाकुरी ?), (६) दारुण, (७) पाटन (सीरा में बालेश्वर के ऊपर), (८) पंचसिर (पंचचूली), (६) केतुमान (गोरीफाट में एक चोटी का नाम), तब मलिक-अर्जुन (अस्कोट में) गणनाथ (बौरारौ में) ।

पश्चात् नंदादेवी का वर्णन है, उससे निकलनेवाली पिंडर, विष्णुगंगा आदि नदियों के नाम हैं ।

---

१२. पश्चिमी रामगंगा की महिमा

रामगंगा का नाम रथवाहिनी कहा गया है । रामगंगा को सुत्रामा भी कहते हैं । अमरकोष में इसे सुत्रमा कहा गया है । इसमें नहाने से सौ जन्मों के पाप मुक्त होते हैं । इसमें गंगा का सातवाँ अंश है ।

रथवाहिनी में सरस्वती, गौतमी, सकाती, सर और बैलाली नदियाँ मिलती हैं । ये द्रोण-पर्वत से निकलती हैं । रथवाहिनी के बाईं ओर नागार्जुन हैं, जहाँ सर्प व अर्जुन की पूजा होती है । दाहिनी ओर असुर-पर्वत है, जहाँ काली की पूजा होती है । नागार्जुन के दाहिनी तरफ़ विभांडेश्वर हैं, जो शिव के दाहिने हाथ हैं । जब महादेव का पार्वती के साथ विवाह हुआ, तो उन्होंने हिमाचल से सोने को स्थान माँगा, तो उन्होंने अपना सिरहाना तो हिमाचल को बनाया, पीठ नील-पर्वत में रक्खी, दाहिना हाथ नागार्जुन में, बायाँ हाथ भुवनेश्वर में और पैर दारुकवन (जागीश्वर) में रक्खे । विभांडेश्वर की नदी सुरभि कहलाती है, क्योंकि कामधेनु ने नदी का रूप धारण किया था । इसमें नंदनी व सरस्वती भी मिलती हैं । ये सब नदियाँ रामगंगा में मिलती हैं, उस जगह, जहाँ पर श्मशानवासी शिव हैं ।

---

१३. द्रोणगिरि अर्थात दूनागिरि

द्रोण-नामक ऊँचे पर्वत से द्रोणी (बैरती से जो नदी निकलती है) निकलकर रामगंगा में मिलती है । द्रोण के ऊपर ब्रह्मपर्वत है, जहाँ से गार्गी (गगास) निकलती है । इस पर्वत में दुःशासन कौरव आया था, और उसने

पहाड़ों के राजा को जीता। तब सत्रधारा व सुखावती के संगम में दुःशासनेश्वर स्थापित किया (यह स्थान बाँसुलीसेरा में है। अब यह मंदिर सुखेश्वर कहलाता है।)। द्रोणाचल के दो सिर व दो पैर हैं। एक सिर लोध्र कहलाता है, दूसरा ब्रह्म। इन दोनों के बीच में गार्गी (गगास) का उद्गम-स्थान है; जहाँ पर गर्गेश्वर शिवलिंग है। गार्गी की ये सहायक नदियाँ बताई गई हैं— विल्ववती, वेत्रावती भद्रावती, सुखावती, शैलावती। गगास व रामगंगा के संगम पर चक्रेश्वर शिवलिंग हैं (यह जगह अब भिकियासैंण कहलाती है।)। यहाँ पर नीलेश्वर महादेव हैं। पश्चिम में वाराह पर्वत है। रथवाहिनी व कौशिकी के बीच में द्रोणपर्वत है। यहाँ बहुत-सी गुफाएँ, सुंदर पेड़ व पुष्प हैं। मृग, बाघ तथा लता भी हैं। यहाँ पर 'औषधि' नाम का पौधा भी है, जो रात को चमकता है और उन लोगों पर हँसता है, जो उसकी महिमा को नहीं जानते। इस पर्वत में द्रोण ऋषि रहते हैं। कालिका, महिषमर्दनी, वह्निमती प्रभृति देवियों की पूजा यहाँ होती है। शाल्मली व कौशिकी के बीच में विद्रौन-पर्वत है, और इसके निकट पिनाकीश का शिवलिंग है, जो एक बड़ा तीर्थ है (शाल्मली नदी लोध्र से आती है। कौशिकी कोशी को कहते हैं। यह कौशल्या भी कहलाती है। विद्रौन को अब विधौन कहते हैं। पिनाकीश पीनाथ हैं।)।

---

१४. कोशी नदी

ऋषि कौशिक ने स्वर्ग की ओर हाथ उठाकर गंगा की स्तुति की, तो उनके हाथ में कौशिकी (कोशी) गिरी, जहाँ से वह पृथ्वी में प्रकट हुई। ब्रह्मा लोध्र-शिखर (भाटकोट) में बैठे थे। और उन्होंने शाल्मली को एक पर्वत से नीचे फेंक दिया। कौशिकी और शाल्मली के संगम में फल्गु तीर्थ है। यहाँ सोमेश्वर महादेव हैं। इसकी पूजा करने से काशी-विश्वनाथ के पूजन का फल मिलता है। इसके नज़दीक तक्षक रहता है। (सर्प गाँव के पास का कुंड सर्पहृद कहलाता है) चंद्रशेखर-तीर्थ के ऊपर गोदावरी के संगम में मल्लिका-देवी हैं। उसके ऊपर कौशिकी है। वहाँ दो शिलाएँ — कौशी-शिला व रौद्री-शिला हैं। उनके ऊपर ब्रह्म-कपाल, कपिल-तीर्थ तथा धर्मशिला हैं। इन सबके ऊपर पिनाकीश महादेव हैं। कोशी के बाईं ओर काषाय पर्वत (कलमटिया, कषार) है और दाहिनी ओर बड़ादित्य (बड़ादित्य कटारमल के सूर्य-मंदिर का नाम है।)। आगे इसके रंभा है। बड़ादित्य के

आगे कात्यायनीदेवी (स्याहीदेवी) हैं, जो श्यामादेवी भी कहलाती हैं। झाँकर से शाली (सुंवाल) निकलकर कोशी में बहती है। बाद को कौशिकी शेषपर्वत में होकर मध्यदेश (भावर का नाम है) को चली जाती है। शेषपर्वत कौशिकी के बाईं ओर है। इनकी गुफाओं में गंधर्व रहते हैं। वहाँ बड़े पेड़, मृग व व्याघ्र हैं। वहाँ शेषनाग रहते हैं। इस पर्वत में से सीता नदी निकलकर कौशिकी में मिलती है।

---

१५. सीतावनी

सीता और कौशिकी के बीच में अशोकवनिका है। वहाँ अशोक वृक्षों के मध्य में सप्तऋषि तथा सत्यव्रत राजा ने तपस्या की थी। यहाँ पर अशोक-वृक्ष हैं, और नाना प्रकार के पक्षी हैं। विश्वामित्र के कहने से एक बार राम, सीता व लक्ष्मण यहाँ आये थे। सीता इस सुन्दर वन को देखकर मोहित हो गई थीं, और उन्होंने राम से कहा था—"हमको वैशाख के महीने में इस वन में रहना चाहिए और कौशिकी में स्नान करना चाहिए।" वे वैशाख में वहाँ रहे, और उनके लिये दो झरने (स्रोत) वहाँ निकल आये। बाद को वे अयोध्या को गये। तब से वह स्थान सीतावनी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सीतावनी को देखने से शोक नहीं होता (यह सीतावनी कोटा भावर में है।)। इसके नज़दीक देवकी (डबका) नदी है। शेषपर्वत के दाहिनी ओर गर्ग (गागर) पर्वत हैं। जिसमें बहुत गुफाएँ, धातु की खानें, पेड़, पक्षी व हरिन हैं। वहाँ ऋषि व देवता रहते हैं। वहाँ से बहुत-सी नदियाँ बहती हैं।

---

१६. षष्टिखाता या ६० तालाबों का वर्णन

गर्गाचल हिमाचल के पादस्थान में है। जहाँ गर्ग ऋषि तपस्या करते हैं। वहाँ ६० तालाब हैं। गर्गाचल के शिखर में गर्गेश्वर शिवलिंग हैं। जहाँ गर्ग ऋषि रहते हैं, जहाँ से गार्गी बहती है (गार्गी को अब गौला कहते हैं)। गार्गी के बाईं ओर भीमसरोवर है, पश्चिम में त्रिषिसरोवर (नैनीताल) है, जिसे तीन ऋषियों ने बनाया। तीन ऋषि—अत्रि, पुलस्त्य, पुलह—हिमाचल-तीर्थ को आये। चित्रशिला से वे गर्गाचल को चढ़े। वे प्यासे थे, वहाँ पानी न था। उन्होंने गढ़ा खोदा, और मानसरोवर का ध्यान किया। मानसरोवर ने वे गढ़े भर दिये। तब से यह त्रिषिसरोवर कहलाया। इसमें नहाने से मानसरोवर का फल प्राप्त होता है।

चित्रशिला के पास भद्रवट है। यहाँ एक बड़ा बड़ का पेड़ है, जिसके पत्ते में विष्णु समुद्र में तैरे थे। चित्रशिला में ब्रह्मा, विष्णु, शिव मय शक्ति के रहते हैं। वहाँ इन्द्र व और देवता भी रहते हैं। गार्गी तथा पुष्पभद्रा के संगम पर बड़ का पेड़ था, जिसकी छाया में सुतप ब्रह्म ने ३६ वर्ष तक तपस्या की, उसने सूखे पत्ते खाए, और उसके हाथ आसमान की ओर थे। उसको देखकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्य देवगण आये, और जो वर-दान वह माँगता था, वह दिया। विश्वकर्मा को बुलाया और गार्गी के किनारे विश्वकर्मा ने सोने-चाँदी व अन्य रत्नों से चित्रशिला बनाई और इसमें सब देव-ताओं के अंश आ गये, और देवगण सुतप को विष्णुलोक को ले गये। जो चित्र-शिला में पूजा करता व गार्गी में नहाता है, वह भी विष्णुलोक को जाता है।

गर्गाचल के पूर्व में सात सरोवर हैं, जो समस्त गर्गाचल के तालाबों में पवित्र हैं—(१) त्रिषिसरोवर, (२) भीमसरोवर, (३) नवकोण (नौ-कुचिया) सरोवर, (४) नल सरोवर, (५) दमयन्ती सरोवर, (६) राम-सरोवर (खुर्पाताल ?), (७) सीताह्रद। भीम सरोवर को भीमसेन ने बनवाया और इसके किनारे भीमेश्वर शिवलिंग की स्थापना की। यहाँ से पुष्पभद्रा नदी निकलती है।

---

१७. बागीश्वर

कलमटिया (काषार) पर्वत के पूर्व में स्वयंभु (शिमतोला) पर्वत है। इसके आगे झांकर है, जिसमें दारुकवन (दारुण की देवदारुवनी) है। दारुकवन के दक्षिण में शालमली (सालम) है। जिसमें लोहे, ताँबे व सोने की खानें हैं। सरयू व गोमती के संगम में नील पर्वत है, जिसमें देवता, सिद्ध, गंधर्व व अप्सराएँ रहती हैं। संगम में अग्नितीर्थ (अग्निकुंड) है, और ऊपर सूर्यकुंड है। चंडीश ने शिव के रहने के लिये यहाँ पर बाणारसी-क्षेत्र (उत्तर बाणारसी) बनाया है। ज्यों ही महादेव व पार्वती यहाँ आये, तो आकाशवाणी हुई। शिव की प्रशंसा की गई। देवगण आये। उन्होंने कहा कि आकाशवाणी में शिव की प्रशंसा हुई है, इसलिये यह स्थान बागीश्वर (वाक् + ईश्वर = वागीश्वर) कहलावेगा। ऋषि गालव ने कहा—"जो अपने पापों से मुक्त होना चाहता है, उसे सरयू में स्नान करना चाहिए।" नील पर्वत में ऋषि मारकंडेय ने तपस्या की थी। जब वह वहाँ तपस्या में बैठे थे, ऋषि वशिष्ठ उत्तर से सरयू को लाये। जब सरयू ने मारकंडेय को देखा, तो

वह वहाँ रुक गई, और एक तालाब के रूप में परिवर्तित हो गई। जब वशिष्ठ ने देखा कि मारकंडेय की तपस्या के कारण सरयू आगे नहीं बढ़ती, तो वह शिव के पास गये कि रास्ता खोल दें। शिव व पार्वती ने आपस में मंत्रणा की। पार्वती गाय बनकर मारकंडेय के पास चुगने लगीं। शिव ने व्याघ्र का रूप धारण कर पार्वती रूपी गाय पर झपटना चाहा। मारकंडेय ऋषि यह देखकर गाय की रक्षा को दौड़े, और बाघ को भगाने लगे। जब ऋषि वहाँ से उठे, तो सरयू को रास्ता मिल गया, और वह नीचे को बहने लगी। जब शिव व पार्वती ने सरयू के बहने का शब्द सुना, तो उन्होंने अपना पूर्व-रूप धारण किया। तब मारकंडेय ने शिव की स्तुति की, और कहा—तुम्हारा नाम व्याघ्रेश्वर भी है (यानी व्याघ्र + ईश्वर = व्याघ्रों का ईश्वर)। शिव व पार्वती अन्तर्धान हो गये। मारकडेय ब्रह्मलोक को गये।

---

१८. दानपुर

सतयुग में जब ब्रह्मा ने सृष्टि रची, तो जिसके योग्य जो भाग था, वह उसे दिया गया। नागों को ब्रह्मा ने जीवार और दारु के बीच की भूमि दी, और इसका नाम नागपुर (नाकुरी) रक्खा। नागों के राजा मल्लनारायण ने ऋषियों से कहा—"यहाँ पानी नहीं है, हमें पानी दो।" ऋषियों ने भद्रगगा को बुलाकर नागों को दिया। नागों ने कामधेनु को देखा, और उससे गायें माँगीं। कामधेनु ने उन्हें सुन्दर गायें दीं। और उनके वास्ते 'गोठ' बनाये, और उनकी लड़कियों को हुक्म दिया कि वे गायों की रक्षा करें। इन गोपियों ने जंगल में महादेव को देखा, तब वह गोपीश्वर कहलाये, और जंगल का नाम गोपी वन पड़ा।

---

१९. पाताल-भुवनेश्वर

सरयू तथा पूर्वीय रामगंगा के बीच पाताल-भुवनेश्वर का मंदिर है। ऋषियों ने व्यास से पाताल के बारे में पूछा कि (१) वहाँ अँधेरे में महादेव कैसे रहते हैं ? (२) वह कितना बड़ा है ? (३) वह कौन हैं, जो महादेव को पूजते हैं ? (४) पाताल-लोक के मुख्य देवता कौन हैं ? (५) सबसे प्रथम पाताल-लोक को किसने जाना ? (६) वहाँ विना सूर्य व चंद्रमा के लोग कैसे रहते हैं ?

व्यासजी ने कहा—"जैसी दुनियां ऊपर है, वैसी ही नीचे पाताल में भी है।

वशिष्ठ व अन्य मुनि भी नहीं कह सकते कि दुनिया का अन्त कहाँ है। वे सिर्फ़ उतना ही जान सकते हैं, जितना पाताल-भुवनेश्वर में जाने से ज्ञात हो सकता है। वहाँ महादेव रहते हैं। पाताल-भुवनेश्वर में तीन गुफाएँ हैं:—(१) स्मर, (२) सुमेरु, (३) स्त्रधम। इनमें कोई भी पापी नहीं जा सकता। कलियुग में ये बंद रहेंगी।" पाताल कैसे जाना गया, इसकी कथा वशिष्ठ महाराज ने इस प्रकार कही—"ऋतुपर्ण नाम का एक सूर्यवंशी अयोध्या का राजा था। वह अपनी राजधानी छोड़कर उत्तर की ओर गया। वहाँ उसने बहुत-से हिरन व पक्षी मारे। जब राजा ने नदी में एक सुअर को देखा, तो उसे तलवार से मारा। वह भागा। राजा ने घायल सुअर का पीछा किया, तो पता न चला। राजा थक गया, और छाँह में बैठने को जगह ढूँढ़ने लगा। वहाँ गुफा में उसने एक क्षेत्रपाल को बैठे देखा। उससे जगह पूछने पर उसने कहा —"गुफा में जाओ, जहाँ सब कुछ प्राप्त करोगे।" तब राजा गुफा में गया, और वहाँ उसे धर्म व नृसिंह मिले। तब उनके साथ कुछ दूर जाने पर शेषनाग मिले। नाग-कन्याओं ने राजा को पकड़ा, और अपने पिता के पास लाईं। शेषनाग ने राजा से पूछा, वे कौन हैं और वहाँ कैसे आये? राजा ने उत्तर दिया—"मैं सूर्यवंशी क्षत्रिय हूँ। मेरा नाम ऋतुपर्ण है। मैं अपनी सेना लेकर यहाँ शिकार खेलने आया था। एक सुअर का पीछा करने में मैं गरमी, भूख, प्यास से थकित हो आश्रम ढूँढ़ने लगा, और क्षेत्रपाल की आज्ञा से इस गुफा में आया। पूर्व-जन्म में मैंने कोई अच्छे काम किये होंगे कि मुझे आपके दर्शन हुए।"

तब शेषनाग ने कहा—"डरो मत। मुझसे कहो कि पृथ्वी में चार वर्ण के लोग किन देवताओं को पूजते हैं?" राजा ने कहा—"वे महादेव को पूजकर अपनी मनोभिलाषाओं को पूर्ण करते हैं।" तब शेषनाग ने कहा—"तुम इस गुफा को जानते हो? यहाँ महादेव रहते हैं।" राजा ने कहा—नहीं, न मैं यह जानता हूँ कि आप कौन हैं? मैं सब बातें जानना चाहता हूँ।" तब शेषनाग ने कहा—"हे राजा, इस गुफा का नाम भुवनेश्वर है। इस गुफा का अन्त कहाँ है, कपिल व अन्य मुनि नहीं कह सकते। इसमें तीन देवता—ब्रह्मा, विष्णु, महेश—भुवनेश्वर के नाम से रहते हैं। यहाँ इंद्र व अन्य देवता, दैत्य, गंधर्व, नाग, नारद व अन्य देवर्षि, वशिष्ठ व अन्य ब्रह्मर्षि, सिद्ध, विद्याधर व अप्सराएँ आदि रहती हैं। कोई पापी आदमी इन गुफाओं में नहीं आ सकता। यह वह कंदरा है, जिसमें महादेव व पार्वती रहते हैं, उनको देखो। किंतु तुम इन आँखों से न देख सकोगे, इससे दिव्य-चक्षु प्रदान करता हूँ।"

तब राजा को शेषनाग ने दिव्य-चक्षु दिये और राजा ने वहाँ पाताल देखा, और उसमें रहनेवाले गंधर्व, नाग, दैत्य, दानव, राक्षस सबों को देखा, और राजा ने उनका अभिवादन किया। शेषनाग ने उनको सर्पों की ८ जातियाँ दिखाईं। साथ ही ये चीज़ें भी दिखाईं—(१) विश्वेश्वर का शिवलिंग, (२) ऐरावत, (३) बृहस्पति, देवताओं के गुरु, (४) इंद्र का घोड़ा उच्चैश्रवा, (५) कल्पवृक्ष, (६) शेषावती की गुफा, जिसमें सर्पों का राजा अनंत रहता है, जिसकी हवा भृगुतुंग में निकलती है, (७) भृगुमुनि, (८) सनत्कुमार, (९) अन्य देवर्षि, (१०) हाटकेश शिवलिंग (भृगुतुंग गंगोली में पोखरी गाँव के पास एक गुफा है, जिसमें से हवा निकलती है।)।

तब शेषनाग राजा को पाताल की और कंदराओं में ले गये और उनको स्वर्ग व गणेश के मार्ग दिखाये और सतीश्वर का शिवलिंग भी दिखाया। वहाँ उसने पृथ्वी को अनंतसर्प पर रक्खी हुई देखा, और सौरेश्वर के शिवलिंग तथा पार्वती के दर्शन किये। तब उसने राजा को पाताल-भुवनेश्वरीदेवी के दर्शन कराये। उनके पास वागीश व वैद्यनाथ के शिवलिंग थे। साथ ही बाईं ओर एक चट्टान से छिपे हुए गणनाथ भी थे। नीचे गुफा में मर्कटमणि की तरह चमकते हुए उन्होंने एक ज्योति देखी। इसमें मुनि लोग तपस्या कर रहे थे। बीच में कपिल मुनि बैठे थे। कपिलेश का शिवलिंग भी वहाँ था। दानव व दैत्यों के भवन वहाँ थे। इस रास्ते से राजा एकदम उज्जैन में पहुँचे। वहाँ उन्होंने सरस्वती नदी के तट पर महाकाल का शिवलिंग देखा। एक मुहूर्त में राजा वापस आ गये और सूक्ष्म गुफा में गणेश के दर्शन किये। वहाँ कदली-वन दिखाई दिया, और मारकंडेय मुनि के दर्शन हुए। तब वे फिर पाताल-भुवनेश्वर की गुफा में आ गये और उसने दूसरी गुफा से, जो सेतुबंध रामेश्वर को जाती थी, चंद्रशेखर के दर्शन किये। यह गुफा ४० कोस लंबी, ४० कोस चौड़ी थी, और इसकी दीवारें मणियों की थीं। फिर एक मिनट में रामेश्वर से वे पाताल-भुवनेश्वर को लौटे और दूसरी गुफा में गये। वे गोदावरी में गये। स्नान किया और एक गुफा से वे गंगा-सागर में गये। वहाँ चंद्रेश्वर शिवलिंग का पूजन किया। एक दूसरी गुफा में शेषनाग ने राजा को मारकंडेय-ऋषि-आश्रम दिखाया और केदार के पाँचों शिवलिंग दिखाये। दूसरी गुफा में उसने राजा को बैजनाथ की सड़क दिखाई। वहाँ नीलकंठ शिवलिंग तथा दैत्यों के राजा बलि भी दिखाई दिये।

फिर राजा को ब्रह्मद्वार (ब्रह्मकंठी ?) की गुफा दिखाई। वहाँ भी शिवलिंग थे, जिनमें कामधेनु का दूध गिरता था। वहाँ शिवकुंड भी है, जिसका

जल विना आज्ञा पीने से शिव के त्रिशूल से ताड़ना मिलती है। तब राजा ने महादेव की आज्ञा लेकर वहाँ का जल पिया, और महादेव ने राजा से कहा— "यहाँ ३३ करोड़ देवता रहते हैं।" तब शेषनाग ने उनका चंद्र, तारागण, गंधर्व, और महादेव के बड़े लिंग दिखाये, जिनमें एक में ब्रह्मा, दूसरे में विष्णु बैठे थे। इन गुफाओं में तीनों देवता एक ही रूप में थे। तब स्मर की गुफा में राजा ने महादेव व पार्वती को पाँसों से जुआ खेलते देखा। अन्य देवता स्तुति करते थे, तथा एक और गुफा में, जो १० हज़ार योजन की थी, जिसमें एक सर्प द्वारपाल था और जो मणिमौक्तिक से चमकती थी, तथा जिसमें उन्हीं का एक भवन था, उसमें एक पलँग पर, जिसपर दूध की तरह स्वच्छ वस्त्र बिछे थे, बृद्ध भुवनेश्वर महादेव व पार्वती बैठे थे। तब शेषनाग एक और गुफा से राजा को कैलास में ले गया। वहाँ उसने मानसरोवर में स्नान किया। फिर वे लौटे, और राजा को सुमेरु की गुफा दिखाई दी, जिसमें जटाधारी, व्याघ्र-चर्म धारण किये, सर्प की जनेऊ पहने शिव शयन करते थे, और वहाँ पर उग्रतारादेवी बैठी थीं। और उन्होंने राजा को 'स्वधम' की गुफा दिखाई। वहाँ राजा ने पूछा कि वह दिव्य ज्योति किसकी है? तब शेषनाग ने कहा— "यह तेजोमय महादेव हैं, किसी से मत कहना। इसी ज्योति से विष्णु, ब्रह्मा व शिव उत्पन्न हुए, जब कि दुनिया बनी थी। इसी ज्योति से संसार प्रकाशमान है। इसके बीच में देखो, तुम्हें एक स्वरूप जगत्पालक विष्णु का दिखाई देगा। जो वेदान्त व शास्त्रों को जानते हैं, वे इस ज्योति को ब्रह्म कहते हैं। देवता तक इस ज्योति के पास नहीं आ सकते। इसका पूजन करो। इस गुफा से केदार को रास्ता जाता है।"

तब राजा केदार में गये और शिवलिंग की पूजा की, उदकस्रोत (उदकनौली) में जल पिया। तब महापंथ होकर लौट आये। राजा ने यह सब चमत्कार देखकर अपने मन में कहा—"क्या मैं पागल हूँ या स्वप्न देखता हूँ! यह पाताल क्या है, जिसे मैं देख रहा हूँ।"

तब शेषनाग ने राजा से कहा—"तू रत्नों के हज़ार बोझ ले जा, जिनको राक्षस तेरे यहाँ पहुँचा देंगे, और ले यह घोड़ा, जिसकी गति वायु की-सी है। इसमें सवार होकर अपने घर को जा। यहाँ का वर्णन किसी से न कहना। तू और तेरे वंशज सुखी रहेंगे। बाद को बल्कल-नामक एक ब्राह्मण उत्पन्न होगा, वह जगत् को इस गुफा का वर्णन बतावेगा।"

तब राजा ने शेषनाग को धन्यवाद दिया, और घोड़े पर चढ़कर, राक्षसों के साथ दारुकवन होकर, सरयू के किनारे गया। वहाँ उसने अपनी सेना को

उसे ढूँढते हुए पाया। वह अयोध्या को आया और रत्नों को अपने खज़ाने में रखकर राक्षसों को बिदा किया। तब रानी व पुत्र-पौत्रों को बुलाकर उनसे सब बातें, जो-जो देखी थीं, कहीं, और रत्न सब उनको बाँट दिये। जब राजा पाताल की बातें कह रहा था, महादेव के दूत आये और राजा को शिवलोक को ले गये। जो कोई राजा ऋतुपर्ण की कथा को सुनेगा और पाताल-भुवनेश्वर-महात्म्य को पढ़ेगा, उसके सब पाप मुक्त हो जाएँगे और वह शिवलोक को जाएगा।

मानसखंड तथा अन्य तीर्थ-संबंधी कथाओं का सार इतना ही है। केदारखंड में गढ़वाल का वृत्तान्त है।

मानसखंड कब बना, यह कहना कठिन है। प्राचीन लेखकों ने तिथियाँ नहीं दी हैं। यह मानसखंड स्कन्दपुराण का एक खंड माना जाता है। सारा स्कन्दपुराण छप गया है, पर यह खंड नहीं छपा। मानसखंड अर्वाचीन ग्रंथ प्रतीत होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि स्वामी शंकराचार्य के बहुत पीछे यह बना होगा। विद्वानों ने वेदों का निर्माण-काल ५-६ हज़ार वर्ष पूर्व जाँचा है। कोई २-३-४ हज़ार वर्ष पूर्व बनने की बातें कहते हैं। पुराणों का छठी शताब्दी में बनने का अनुमान किया गया है। हमारी समझ में मानसखंड चंदों के समय या उनसे कुछ पूर्व बना। अभी तक यह छपा नहीं है। केवल अँगरेज़ी में इसका सार छपा है। मानसखंड कूर्माचल में कूर्माचली पंडितों ने बनाया है, ऐसा हमारा अनुमान है। यदि बाहर बना होता, तो अन्य पुराणों की तरह यह छप जाता।

मानसखंड से इतिहास का उतना पता नहीं चलता, जितना भूगोल का। पौराणिक युग में भूगोल का ज्ञान लोगों को पूरा-पूरा था। इसमें छोटी-छोटी नदियों का भी वर्णन है, और छोटे-छोटे तीर्थों की बहुत बड़ी महिमा गाई है। संभव है, यह उन दिनों के लोगों में हिन्दू-धर्म का प्रचार करने के लिये तथा हिन्दू देवी-देवताओं पर श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न करने के लिये रचा गया हो।

ऐतिहासिक महत्त्व इनका इतना है कि कुमाऊँ में एक समय सूर्यवंशी राजा राज्य करते थे। ऋतुपर्ण यहाँ के राजा थे। इसी के आधार पर शायद पादरी ओकली साहब ने 'होली हिमालय' में यह सिद्धान्त निकाला हो कि यह कूर्माचल देश किसी समय कोशल राज्य का एक अंग था।

दूसरी बात यह कि नाग-जाति दानपुर, नाकुरी तथा पाताल भुवनेश्वर के पास रहती थी। वहीं नागों के बहुत से मंदिर हैं। संभव है कि जो-जो नाग वहाँ पूजे जाते हैं, वे नाग-जाति के प्रसिद्ध पुरुष रहे हों, और 'हरू, सैम, कलबिष्ट' की तरह वे भी पूजे जाने लगे हों।

कूर्माचल या कुमाऊँ का नाम वेदों में तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि यह पौराणिक नाम है। पर हम दिखा चुके हैं कि हिमालय के उत्तरी-मध्य भाग का नाम मेरु था, और यह प्रदेश भी मेरु-प्रान्त के अन्तर्गत हो। रामायण के समय यह प्रान्त उत्तर-कौशल कहा जाता था। महाभारत में यह प्रदेश उत्तर-कुरु-नामक राज्यान्तर्गत था। किसी-किसी पुराण में यह उत्तराखंड भी कहा गया है। खस-जाति के राज्य-काल के समय महाभारत, वाराही संहिता तथा वायुपुराण में इसको खसदेश भी कहा गया है। मानसखंड बनने पर यह प्रान्त मानसखंड के नाम से पुकारा गया। ह्यूनसांग के आने पर छठी शताब्दी में यह प्रदेश कत्यूरी सम्राटों के ब्रह्मपुर-नामक राज्य के अन्तर्गत था। इस देश को कूर्माचल कहलाये जाने का श्रेय चंद राजाओं तथा उनके समय के राजपंडितों को है। कुमाऊँ या कूर्माचल नाम इस प्रदेश का उन्हीं के आने पर प्रचलित हुआ।

---

२०. महाभारत में कूर्माचल का वर्णन

सभापर्व के अध्याय २८ व २९ में अर्जुन की दिग्विजय के प्रसंग में लिखा है कि अर्जुन हिमवंत व विस्कुट पर्वतों को जीतकर श्वेत पर्वत पर गया। वहाँ से... जीतकर मानसरोवर के पास पहुँचा और गंधर्वों के देश को जीतकर उनसे तित्तिर, कल्माष और मण्डूक नामी घोड़े कर में लिये। उस देश का नाम पहले पांचाल, फिर उत्तर कुरु हुआ। वहाँ के राजा ने संधि कर ली और अर्जुन को दिव्य वस्त्र (कंबल व रेशम), दिव्य अस्त्र (खुकुरी, खाँडे ?), मृगचर्म (खालें), घोड़े तथा स्वर्ण व रत्न कर में दिये। कुछ लोगों का कहना है कि यह वर्णन कुमाऊँ का है। ये चीज़ें कुमाऊँ से ही बराबर दिल्ली को भी जाती थीं। राजा द्रुपद को द्रोणाचार्य ने महाभारत से पूर्व जीता था, और उनके राज्य को कौरव-राज्य में मिला लिया था। उत्तरी भाग उन्होंने लिया, दक्षिणी भाग द्रुपद को लौटा दिया। इस राज्य की राजधानी अहिक्षेत्र थी, जो काशीपुर से ६६ मील पूर्व को है। काशीपुर का द्रोणसागर उसी समय बना था। कौरव लोग शायद कूर्माचल के भी राजा थे, जो उस समय उत्तर कुरु में शामिल था। श्रीकनिंघम तथा प्रो० रैप्सन दोनों की यही राय है।

उत्तर कुरु (कूर्माचल) के लोगों ने अर्जुन से बड़ी रोचक बातें कहीं—'यह नगर मनुष्यों से किसी प्रकार नहीं जीता जा सकता, तुम अपना कल्याण चाहते हो, तो अब लौट जाओ, क्योंकि इस नगर में जो घुसता है, वही

मर जाता है। हम तुमसे प्रसन्न हैं, इससे तुम अपनी जीत ही समझो। यह देश उत्तर कुरु कहलाता है, यहाँ युद्ध नहीं होता।''

सभापर्व अध्याय ५२ में दुर्योधन उन-उन राजाओं के नाम लेते हैं, जो युधिष्ठिर के वास्ते भेंट लेकर राजसूय यज्ञ में आये थे:—

मेरुमन्दरयोर्मध्ये शैलोदामभितो नदीम्।
एते कीचकवेणूनां छायां रम्यामुपासते॥ २॥
खसा एकसनाह्यर्हाः प्रदरा दीर्घवेणवः।
परदाश्च कुलिन्दाश्च तङ्गणाः परतङ्गणाः॥ ३॥
तद्वै पिपीलिकं नाम उद्धृतं यत्पिपीलिकैः।
जातरूपं द्रोणमेय महार्षुः पुंजशो नृपाः॥ ४॥
कृष्णान् ललामांश्चमरान् शुक्लांश्चान्याञ्शशिप्रभान्।
हिमवतः पुष्पजं चैव स्वादु क्षौद्रं तथा बहु॥ ५॥
उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्चाप्य पोढं माल्यम्बुभिः।
उत्तरादपि कैलासादोषधीः सुमहाबलाः॥ ६॥
पार्वतीय बलिं चान्यमाहृत्य प्रणतास्थिताः।
अजातशत्रोर्नृपतेर्द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः॥ ७॥

अर्थात् खस, एकासन ह्यर्ह, प्रदर, दीर्घवेणु, पारद, कुलिंद, तंगण और परतंगण नामक पहाड़ी देशों के राजा लोग, जो मेरु और मंदर पर्वतों के बीच शैलोदा नदी के तट पर कीचक और वेणु नामक वृक्षों की छाया में रहते हैं, नम्रता-पूर्वक युधिष्ठिर को भेंट करने के लिये एक द्रोण पिपीलिका जात का स्वर्ण और काले तथा लाल रंग के चँवर और शुक्ल आदि मणि, जिनका प्रकाश चंद्रमा के समान था, और हिमालय पहाड़ के पुष्पों का मधु, उत्तर ओर की बड़ी बल करनेवाली ओषधियाँ और अन्य बहुत प्रकार की चीज़ें लेकर आये और रोके जाने के कारण सब पदार्थ लेकर द्वार पर खड़े रहे।

विद्वानों का कथन है कि ये बातें कुमाऊँ प्रान्त से संबंधित हैं। पिपीलिका-स्वर्ण यहाँ से जाता था। तिब्बत के लोग स्वर्ण खोदकर लाते थे, और उनकी तिजारत खस-जाति से होती थी।

द्रोणपर्व अध्याय १२१ श्लोक ४३ में लिखा है:—

अयोहस्ता शूलहस्ता दरदास्तङ्गणा खशाः।
लम्पकाश्च कुलिन्दाश्च चिक्षिपुस्ताश्च सात्यकि॥

—दरद, खस, तंगण, लम्पाक आदि लोग दुर्योधन की तरफ़ थे। ये सात्यकी के विरुद्ध पत्थर, भाले व तलवारों से लड़े थे।

इतिहास कूर्मांचल

तीसरा भाग

३. कत्यूरी-शासन-काल

[ईसा से २५०० वर्ष पूर्व से सन् ७०० तक]

१. कत्यूरी-शासन-काल

[ईसा से २५०० वर्ष पूर्व से ७०० सन् तक]

हम कह चुके हैं कि वर्तमान में कूर्मांचल प्रान्त उन परगनों का नाम है, जिनका वर्णन भौगोलिक व ऐतिहासिक खंडों में दिया गया है। विस्तृत कत्यूरी-शासन के खंड राज्यों में विभाजित हो जाने के बाद यह श्रेय चंदों को है कि उन्होंने फिर से इस छिन्न-भिन्न राज्य को एक शासन, एक शृंखला तथा एक छत्र के नीचे लाकर रख दिया।

कत्यूरी राजाओं की राजधानी जब पहले जोशीमठ में, बाद को कार्त्तिकेयपुर में थी, तो उस समय कहा जाता है कि उनका राज्य-विस्तार सिक्खम से लेकर काबुल तक था। इधर दिल्ली, रोहिलखंड आदि प्रान्त भी कत्यूरी-राज्य-शासन की सीमा के अंदर थे। पुरातत्त्ववेत्ता श्रीकनिंघम ने भी इसका ज़िक्र किया है। पर विशेष प्रसिद्धि कूर्मांचल ने चंद राजाओं के समय पाई।

महाभारत सभापर्व अध्याय २७, २८, २९ तथा ५२ में लिखा है कि जब युधिष्ठिर महाराज ने अपने प्रतापी भाई भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव को विजय के लिये भेजा, तो उस समय उनका युद्ध यहाँ पर कई जाति के क्षत्रियों से हुआ था और वे लोग राजसूय यज्ञ में नज़राने लेकर गये थे।

पर उन क्षत्रियों के वंश का ठीक-ठीक परिचय नहीं दिया है। कुछ ताम्रपत्रों व शिलालेखों से यह ज्ञात है कि लगभग २५०० वर्ष हुए, सूर्यवंशी कत्यूरी राजाओं का राज्य यहाँ पर था। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि अयोध्या के सूर्यवंशी राजाओं का राज्य-विस्तार किसी समय यहाँ भी था और कुमाऊँ उत्तर-कौशल प्रान्त में शामिल था। बाद को कत्यूरी राजाओं के समय में यह राज्य अलग हो गया। कत्यूरी राजाओं का राज्य नैपाल से काबुल तक रहा है, और यह भी कहा जाता है कि सम्राट वासुदेव के पुत्र सम्राट् कनकदेव काबुल में मारे गए थे। यह बात प्रायः निर्विवाद है कि पूर्वकाल में कत्यूरियों का राज्य बड़ा प्रभावशाली हो गया है। पर वे खस-राजाओं के पहले यहाँ थे, या उन्होंने खस-राजाओं को जीतकर कत्यूरी-साम्राज्य स्थापित किया, इसका ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो सका है।

डोम या दस्यु (वर्तमान शिल्पकार व हरिजन) भारतवर्ष के प्राचीन निवासी माने जाते हैं। उनके पूर्व यहाँ कौन लोग रहते थे, यह बात ज्ञात नहीं है। इन डोमों को खस-जाति ने हराकर अपनी प्रजा बनाया या कत्यूरियों ने इन्हें हराया, तत्पश्चात् खस-जाति के लोग यहाँ आये, इन बातों में अनुमान यह है कि कत्यूरियों से भी पूर्व यहाँ खस-जाति के लोग रहते थे, क्योंकि महाभारत में उनका यहाँ होना लिखा गया है। महाभारत की तिथि ५००० वर्ष की है। डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशी भी कहते हैं कि खस-जाति के लोग आर्य-जाति के हैं—

For the pur poses of this study it is sufficient to say that the Khasas settlled in these hills appear to represent an early wave of Aryan immulgrants or a prople whose features & language were very much like those of the Aryans.

Khasa Family Law p. p. 26-27.

वे वेदों के बनने के पूर्व यहाँ आये। उनको जीतकर कत्यूरी राजाओं ने अयोध्या से आकर अपना राज्य यहाँ स्थापित किया। उनका राज्य अनुमान से यहाँ २-३ हज़ार वर्ष तक रहा। उनके शासन-काल का कोई लिखित इतिहास उपलब्ध नहीं, पर कई ताम्रपत्र ईसा से कई शताब्दी पूर्व के हैं। उसमें इनके अपने राज्यकाल के संवत् हैं, जो प्रत्यक्ष में प्रचलित शाके व संवत् से भिन्न हैं।

कत्यूरियों के शासन के मध्य में कुछ समय के लिये यहाँ शक व हूणों का राज्य रहा है, पर यह बहुत समय तक नहीं रहा। कत्यूरी-साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर चंद्रवंश के चंदेले राजपूत यहाँ आये। उन्होंने लगभग १००० वर्ष तक यहाँ राज्य किया। बीच में दो-ढाई सौ वर्ष कई खस-राजा भी राज्य करते रहे। पश्चात् २५ वर्ष तक गोरखों का राज्य रहा। इसके बाद सन् १८१५ में अँगरेज़ लोग यहाँ आए, जो अब तक यहाँ के शासक हैं।

शूद्र-जाति के भी एक बार कुमाऊँ में राजा होने ी किंवदन्ती प्रचलित है। किन्तु इसका प्रमाण इतना ही है कि कुमाऊँ में एक चंडालगढ़ उर्फ़ चमरकोट-नामक एक नोकिली चोटी है। कहते हैं कि वहाँ कुछ समय तक (कोई तो कहते हैं कि केवल २॥ दिन तक) एक डोम राजा ने राज्य किया था। उसने चमड़े का सिक्का चलाया था।

उधर अस्कोट की ओर एक क़ौम 'राजी' हैं। इनका कहना है कि कुमाऊँ के मूल-निवासी वे हैं और वे ही यहाँ के राजा थे। अन्य लोग उनके बाद यहाँ

आये। जाति-खंड में इनका विस्तृत वृत्तांत मिलेगा। इन राजियों के राज्य करने की बात भी केवल किंवदन्ती-मात्र है। प्रमाण केवल उनके कथन के और कोई बात नहीं है। अब ये अस्कोट के जंगली गाँवों में यत्र-तत्र रहते हैं। नैपाल में राज्य-किरात या किरान्ति लोगों के राज्यासीन होने का पता चला है। किन्तु यहाँ पर किसी भी किरात राजा का कुमाऊँ के भीतर राज्य करने की बात जानी या मानी नहीं गई है। अठकिंसन "जड़, जाजड़, बिजड़" प्रभृति राजाओं को किरात राजा मानते हैं, पर तमाम कुमाऊँ में वे खस-राजा माने जाते हैं। खस-जाति यहाँ पर महाभारत से पूर्व से है, क्योंकि महाभारत में कहा है कि वे लोग दुर्योधन की तरफ़ थे। पर खस-जाति में किसी भी चक्रवर्ती सम्राट् होने के प्रमाण नहीं मिले हैं। खस-जाति के लोग मांडलीक राजा थे। पट्टी-पट्टियों में क़िले बनाकर रहते थे, जिन्हें कोट, गढ़ी या बुगा कहते थे, जिनमें से कुछ क़िलों के निशान बाक़ी हैं। खस राजाओं के बाद पांडवों ने जिन क्षत्रियों को हराया, वे कौन थे, यह बात भी ज्ञात नहीं है। कहते हैं, उनकी बस्ती ढिकुली में थी। पर ये सब बातें भूतकाल के महा-विस्मरण-सागर में विलीन हो गई हैं। न वे राजे रहे, न उनकी राजधानी!

---

२. ढिकुली की बस्ती

पुरातत्त्ववेत्ताओं का कथन है कि कूर्माचल की सबसे प्राचीन बस्ती ढिकुली के पास थी। जहाँ की सामग्री से वर्तमान रामनगर बसा है। कोशी के किनारे इस जगह में बसी नगरी का नाम वैराटपत्तन या वैराटनगर था। कत्यूरी राजाओं के आने के पूर्व यहाँ पहले कोई कुरु राजवंश के राजा राज्य करते थे, जो प्राचीन इन्द्रप्रस्थ (आधुनिक दिल्ली) के साम्राज्य की छत्रच्छाया में रहते थे। यह वही वैराटनगरी है, जहाँ पांडव गुप्त वनवास में एक साल तक रहे थे। वैसे एक वैराटनगरी जौनसार बावर में भी बताई जाती है। यद्यपि इस ओर की बहुत-सी बातें पांडवों से संबंधित हैं। इसके आगे भी पश्चिम में लालढांग चौकी के पास पांडुवाला में भी पुराने खंडहरों के भग्नावशेष चिह्न हैं।

बादशाह अकबर के राज्य के पहले कोई भी ज़िक्र कुमाऊँ की बाबत मुसलमान इतिहासकारों के ज़माने का नहीं मिलता, न अन्य किसी देशी इतिहासों में इसका प्रसंग आया है।

कोई-कोई लोग ऐसा भी कहते हैं कि शक राजा कुमाऊँ के थे। श्रीकनिंघम

साहब ने अपनी अन्वेषण-संबंधी पुस्तकों के प्रथम खंड पृष्ठ १३७ में लिखा है कि दिल्ली के अन्तिम मौर्य राजा राजपाल को कुमाऊँ के शकादित्य राजा ने मारा। यह 'शकादित्य' कनिंघम कहते हैं—"शकों के राजा थे, न कि शकों के विजेता, क्योंकि शकों के विजेता सम्राट् विक्रमादित्य शकारि कहे जाते थे, न कि शकादित्य।" पर इन शकादित्य का राज्य ढिकुली में था या नहीं, यह नहीं कहा जाता। शक व हूण लोग तो खस व कत्यूरियों के बाद ही आये हैं।

---

३. कत्यूरी सम्राट् शालिवाहन

लगभग ३-४ हज़ार वर्ष पूर्व शालिवाहन-नामक राजा कुमाऊँ में आये। वे कत्यूरियों के मूल-पुरुष थे। पहले उनकी राजधानी जोशीमठ के आसपास मानी जाती है। राजा शालिवाहन अयोध्या के सूर्यवंशी राजपूत थे। अस्कोट खानदान के राजबार लोग, जो उनके वंशज हैं, कहते हैं कि वे अयोध्या से आये और कत्यूर में बसे। मृत्युंजय कहता है कि वे गोदावरी के किनारे प्रतिष्ठान से आये थे। कत्यूरी राजा कार्त्तिकेयपुर से गढ़वाल का भी शासन करते थे, इससे अँगरेज़ी लेखकों की यह दलील कि पहले उनकी राजधानी जोशीमठ में थी, ठीक नहीं जँचती। ये राजा शालिवाहन इतिहास-प्रसिद्ध चक्रवर्ती सम्राट् न थे, क्योंकि सारे भारतवर्ष के सम्राट् अपनी राजधानी कत्यूर या जोशीमठ में रक्खें, यह बात समझ में नहीं आसकती। हाँ, यह जगह उनके गरमियों में रहने की हो, यह बात तो संभव है, पर उस समय जब कि मार्ग की सुगमता नहीं थी, ऐसा करना खिलवाड़ न था। इससे यह बात साफ़ ज़ाहिर होती है कि अयोध्या के सूर्यवंश के कोई राजा शालिवाहन यहाँ आये और उन्होंने यहाँ पर एक अच्छा प्रभावशाली साम्राज्य स्थापित किया।

---

४. फ़िरिश्ते की बातें

फ़िरिश्ता-नामक फ़ारसी इतिहास में एक स्थल में लिखा है कि "कुमाऊँ के राजा फ़ुरु (पुरु) (Porus) ने बहुत सेना एकत्र की, और दिल्ली पर चढ़ाई की। वहाँ के राजा दिल्लू को हराकर (४ या ४० वर्ष के राज्य के बाद) आप सम्राट् बन गये और दिल्लू को रोहतास के क़िले में बंद कर दिया। राजा पुरु ने इधर वंगदेश और उधर पश्चिमी सागर के मुल्क तक को जीतकर फ़ारस (परशिया) के राजाओं को कर देना बं[illegible] लोग

कहते हैं कि राजा पुरु ने सिकंदर से मुक़ाबिला सिंधु नदी में किया। वह वहाँ मारा गया। उसने ७३ वर्ष राज्य किया था।"

दिल्ली की उत्पत्ति के बारे में विवेचन करते हुए श्रीकनिंघम कहते हैं कि "कुमाऊँ के राजा पुरु (Porus) के राजा दिल्लू को मारने की बात यदि सत्य मानें, तो फ़िरिश्ते की दी हुई जो वंशावली है, वह ठीक नहीं जँचती, क्योंकि उसमें पुरु के भतीजे जूना को सेल्यूकस निकेटर का समकक्षी न बताकर अर्दशीर बबेकन का सहयोगी बताया है, जो २२६ सन् में हुआ।" और भी, "दिल्लू के कुमाऊँ के राजा के हाथ मारे जाने की कहानी ठीक ऐसी ही राजावली में कही गई है, जैसी कुमाऊँ के राजा सुकवन्ती या शुकदत्त, शकदत्त या शकादित्य द्वारा दिल्ली के राजा राजपाल के मारे जाने की बात।" राजावली एक हस्त-लिखित पुस्तक है, जो कनिंघम साहब को कुमाऊँ के पुराने काग़ज़ातों में मिली। इसमें दिल्ली के राजवंशों का वर्णन था। और उसी में कुमाऊँ के राजा के दिल्ली के राजा को हराने की बात लिखी है।

पं० मनोरथ पांडेजी शास्त्री लिखते हैं—"स्यूरा प्यूरा के गीत इस कूर्मांचल में प्रसिद्ध हैं। स्यूरा सिकंदर व प्यूरा पोरस का अपभ्रंश है, ऐसा कहा जाता है।" पर स्यूरा प्यूरा यहाँ के खस-जाति के 'पैके' वीर पुरुष माने जाते हैं।

फ़िरिश्ता में एक अन्य स्थल में यह बात लिखी है—"सन् ४४०-४७० में जब दिल्लीपति रामदेव राठौर ने दिग्विजय का डंका बजाया, तो कुमाऊँ के राजा ने, जिसका वंश वहाँ २००० वर्ष से राज्य करता था, उसका विरोध किया। दिन-भर लड़ाई हुई, जिसमें दोनों ओर के बहुत-से सैनिक घायल हुए। अन्त में राजा कुमाऊँ हार गया और अपने हाथी व ख़ज़ाने को लेकर पहाड़ों को भाग गया। राजा कुमाऊँ अपनी लड़की विजयी सम्राट् रामदेव को देने को बाध्य किया गया।" फ़िरिश्ते ने यह नहीं लिखा कि यह राजा किस वंश का था। संभव है, यह वर्णन कत्यूरी राजाओं की बाबत हो। दिल्लीपति राजा का विरोध करने की सामर्थ्य साधारण राजा में नहीं हो सकती थी। सूर्यवंशी कत्यूरियों ने उनका विरोध किया होगा। उनकी राज्य-सीमा तराई भावर से परे होगी, क्योंकि हाथी की लड़ाई पहाड़ में तो हो नहीं सकती। यह लड़ाई देश में हुई होगी, क्योंकि राजा हारकर पहाड़ को भागा, ऐसा साफ़-साफ़ लिखा है।

५. कत्यूरियों की राजधानी

पुरातत्त्ववेत्ता कनिंघम कहते हैं कि कत्यूरी राजाओं की राजधानी लखनपुर या विराटपत्तन में थी, जो रामगंगा के किनारे है। चीनी यात्री ह्यूनसांग ने भी ब्रह्मपुर व लखनपुर का ज़िक्र किया है। वे वहाँ गये थे। वे लिखते हैं कि वहाँ बौद्ध व ब्राह्मण दोनो मत के लोग रहते थे। कुछ लोग विद्याव्यसनी थे, बाक़ी खेती करते थे। संभव है, यह राजधानी कत्यूरियों की हो। ह्यूनसांग ने इस राजधानी व राज्य को मडावर से ८० मील इधर को बताया है। कुछ लोग ब्रह्मपुर राज्य को गढ़वाल में होना कहते हैं, पर ह्यूनसांग के अनुसार यह वहाँ नहीं हो सकता। कुछ लोगों ने इसे बढ़ापुर बताया है, जो ठीक मालूम होता है। लखनपुर का पहला नाम शायद विराटपट्टन था। लखनपुर छठी शताब्दी से पहले बसा होगा, क्योंकि ह्यूनसांग यहाँ ७वीं शताब्दी में आये थे। ७वीं सदी में कत्यूरी राजा जाड़ों में ढिकुली के निकट रहते थे, इसमें सन्देह नहीं है। गानेवाले भड़ कहते हैं:—

"आसन वाका वासन वाका सिंहासन वाका,
वाका ब्रह्म वाका लखनपुर।"

श्रीअठकिंसन साहब का अनुमान है कि आसन व वासन इस छंद में कत्यूरी राजाओं के नाम हैं, पर आसन के मानी बैठने के वस्त्र के भी हैं और वासन बर्तनों को कहते हैं। ब्रह्म व लखनपुर तो वास्तव में राज्य व राजधानी के नाम हैं। डोटी, अस्कोट व पाली के कत्यूरी राजाओं की वंशावली में आसन्तिदेव व वासन्तिदेव के नाम आये हैं। तामाढौन के पास सारंगदेव का मंदिर है, इसमें सन् १४२० ईसवी खुदा है। आसन्तिदेव व वासन्तिदेव इनसे नौ पुश्त पहले हुए हैं, अतः लखनपुर का छठी शताब्दी में बसना संभव है। कुछ लोग लखनपुर का जोहार में होना कहते हैं, क्योंकि एक स्थल में इसका गोरी नदी में होना कहा गया है। यों, एक लखनपुर अल्मोड़ा के पास भी है, पर श्रीकनिंघम ने जो नक़्शा ब्रह्मपुर व लखनपुर का दिया है, उससे स्पष्ट है कि ब्रह्मपुर राज्य कुमाऊँ में था, और लखनपुर उसकी राजधानी रामगंगा के किनारे थी, जो पाली पछाऊँ में है।

---

६. जोशीमठ से कत्यूर आने की कहानी

अँगरेज़ी लेखकों का अनुमान है कि कत्यूरी राजा आदि में जोशीमठ (ज्योतिर्धाम) में रहते थे। वहाँ से वे कत्यूर में आये। उनके जाड़ों में

रहने की जगह ढिकुली थी। वहाँ बाद को चंद राजा भी जाड़ों में रहते थे। पश्चात् उन्होंने कोटा व अन्य स्थानों में अपने महल बनवाये।

७वीं शताब्दी तक यहाँ बुद्ध-धर्म का प्रचार था, क्योंकि ह्यूनसांग ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि गोविषाण तथा ब्रह्मपुर (लखनपुर), दोनो में बौद्ध लोग रहते थे, कहीं-कहीं सनातनी भी थे। मंदिर व मठ साथ-साथ थे। पर आठवीं शताब्दी में श्रीशंकराचार्य के धार्मिक दिग्विजय से यहाँ बौद्ध-धर्म का ह्रास हो गया। नैपाल व कुमाऊँ दोनों देशों में शंकर गये और सब जगह के मंदिरों से बुद्धमार्गी पुजारियों को निकालकर सनातनी पंडित वहाँ नियुक्त किये। बदरीनारायण, केदारनाथ व जागीश्वर के पुजारियों को भी उन्होंने ही बदला। बौद्धों के बदले दक्षिण के पंडित बुलाये गये।

कत्यूरी राजा भी—ऐसा अनुमान है कि—शंकर के आने के पूर्व बौद्ध थे, बाद को वे सनातनी हो गये। शंकर के समय वे जोशीमठ में होने बताये जाते हैं। कत्यूर व कार्त्तिकेयपुर में वे जोशीमठ से आये। कुमाऊँ के तमाम सूर्यवंशी ठाकुर व रजबार लोग अपने को इसी कत्यूरी खानदान का होना कहते हैं।

जोशीमठ में वासुदेव नाम का प्राचीन मंदिर है। कहा जाता है कि यह कत्यूरियों के मूल-पुरुष वासुदेव का बनवाया है। इससे प्राचीन मंदिर कुमाऊँ में कोई नहीं, ऐसा कहा जाता है। कत्यूरी-सम्राट् का नाम इस मंदिर में इस प्रकार खुदा है—"श्रीवासुदेव गिरिराज चक्रचूड़ामणि।" यह सम्राट् जोशीमठ में रहते थे। भगवान्‌विष्णु का नाम वासुदेव है। अतः आपने भगवान् से अपना नाम मिलता देख, उस मंदिर के साथ संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध प्रभृत्ति देवताओं के मंदिर भी बनवाये।

यह बात प्रायः निर्विवाद है कि कत्यूरी राजाओं का राज्य सिक्खम से काबुल तक तथा दक्षिण में बिजनौर, दिल्ली, रोहिलखंड आदि प्रान्तों में था। फ़िरिश्ता, कनिंघम, शेरिंग, अठकिन्सन, सबका मत यही है।

जोशीमठ से कत्यूर आने की कहानियाँ इस प्रकार हैं—(१) राजा वासुदेव के कोई गोत्रधारी शिकार खेलने को गये थे। घर में विष्णु भगवान् नृसिंह के रूप में आये। रानी ने खूब भोजनादि से सत्कार किया। फिर वे राजा के पलँग पर लेट गये। राजा लौटकर आये और रनवास में अपने पलँग पर किसी अन्य पुरुष को पड़ा देखकर अप्रसन्न हुए। उस पर तलवार मारी, तो हाथ से दूध निकला। तब रानी से पूछा कि वे कौन हैं? रानी ने कहा कि वे कोई देवता हैं, जो बड़े परहेज़ से भोजन कर पलँग पर सो गये थे। तब राजा

ने नृसिंहदेव को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और अपने क़सूर के लिये दंड या शाप देने को कहा। तब उस देवता ने कहा—"मैं नृसिंह हूँ। तेरे दरबार से प्रसन्न था, तब तेरे यहाँ आया। अब तेरे अपराध का दंड तुझे इस प्रकार मिलेगा कि तू जोशीमठ से कत्यूर को चला जा और वहाँ तेरी राजधानी होगी। याद रख, यह घाव मेरी मंदिर की मूर्ति में भी दिखाई देगा। जब यह मूर्ति टूट जायगी, तब तेरा वंश भी नष्ट हो जायगा।" ऐसा कहकर नृसिंह अन्तर्द्धान हो गये।

(२) दूसरी कहानी इस प्रकार है कि स्वामी शंकराचार्य कत्यूरी रानी के पास उस समय आये, जबकि राजा वासुदेव विष्णु प्रयाग में स्नान करने गये थे।

इन कहानियों से यह साफ़ है कि यदि कत्यूरी राजा गढ़वाल से कुमाऊँ को आये, तो कोई धार्मिक कलह उपस्थित हुआ होगा, जिससे राजा वासुदेव व उनके कुटुम्बी जोशीमठ से कार्त्तिकेयपुर आने को बाध्य हुए।

---

७. कार्त्तिकेयपुर

गढ़वाल से चलकर कहते हैं कि कत्यूरी राजाओं ने गोमती नदी के किनारे बैजनाथ गाँव के पास महादेव के पुत्र स्वामी कार्त्तिकेय के नाम से कार्त्तिकेयपुर बसाया। उस जगह का नाम पहले करबीरपुर था। उसके खंडहर भी उनको मिले। उन्होंने अपने इष्टदेव स्वामी कार्त्तिकेय का मंदिर भी वहाँ बनवाया। वहाँ नौले (बावरियाँ), तालाब व हाट (बाज़ार) बनवाये तैलीहाट व सेलीहाट में दो बाज़ार थे। कत्यूरी प्रांत से कत्यूरी खानदान चला या कत्यूरी राजाओं ने उस घाटी का नाम कत्यूर रक्खा, इस पर मतभेद है। अस्कोटवाले तो कहते हैं कि अयोध्या से सूर्यबंशी राजा आये। वे कत्यूर में बसे। वहाँ से सर्वत्र फैले। इसी से ख़ानदान कत्यूरी कहलाया, पर अठकिन्सन साहब कहते हैं कि यह कत्यूर खानदानवाले काबुल व काश्मीर के नृपति तुरुष्क खानदान में से थे। ये राजपूत कटूरी या कटौर कहलाते थे। काश्मीर के तीसरे तुरुष्क खानदान के राजा का नाम भी देवपुत्र वासुदेव था। वासुदेव के पुत्र कनकदेव काबुल में अपने मंत्री कलर द्वारा मारे गये। उसी ख़ानदान से अठकिन्सन साहब इनका मिलान करते हैं कि वे दोनों एक ही हैं, पर भारतवर्ष के लोग इन बातों पर सहसा विश्वास न करेंगे। अठकिन्सन साहब कहते हैं कि काश्मीर के कटूरी राजाओं ने ही कत्यूर घाटी का नाम अपने वंश से चलाया। अठकिन्सन साहब से यह कोई कह सकता है कि जोशीमठ में इन्होंने कत्यूर या कटौर नाम का राज्य क्यों न चलाया? कत्यूर आने में

ही ऐसा क्यों किया। क्योंकि उनके लेखानुसार वे तो पहले जोशीमठ में रहते थे, बाद को कत्यूर में आये।

कत्यूर में कई पुश्त तक इन राजाओं का राज्य रहा। दूर-दूर के राजाओं के राजदूत कत्यूरी राजाओं की राजधानी में रहते थे। चित्तौरगढ़ी उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हो। वहाँ शायद चित्तौरगढ़ के सम्राट् के राजदूत रहते हों। ये राजा बड़े धर्मात्मा थे, बिना एक धर्म-कार्य किये भोजन न करते थे। इन राजाओं को मंदिर, नौले व नगर बनवाने का बड़ा शौक़ था। तमाम कुमाऊँ प्रान्त व गढ़वाल इनके बनवाये मंदिरों व नौलों से भरा है। जहाँ कहीं मंदिरों की प्रतिष्ठा करने में यज्ञ किया या कहीं कोई धर्म-कार्य किया या पूजन किया, तो वहाँ पर यज्ञस्तम्भ या बृहत्स्तम्भ ज़मीन में गाड़ देते थे। अब उनको बृखम कहते हैं।

यह बृखम तमाम में अब तक दिखाई देते हैं। इनका ज़्यादातर वृत्तान्त इनके शिला-लेखों से पाया जाता है। ये लेख जागीश्वर, बैजनाथ, गड़सिर के बदरीनाथ, बागीश्वर, गढ़वाल के बदरीनाथ तथा पांडुकेश्वर के मंदिरों में पाये गये हैं। इन्हीं से इनकी प्रभुता का पता चलता है। विशेषकर इनके समय के ५ ताम्रपत्र व १ शिला-लेख हैं, जिनका वृत्तान्त यहाँ पर दिया जायगा।

कुमाऊँवाला ताम्रपत्र विजयेश्वर महादेव में गाँव चढ़ाने की सनद की बाबत है। उसमें तीन पुश्त के नाम इन राजाओं के लिखे हैं। राजा सलोणादित्यदेव, उनके बेटे राजा इच्छटदेव, उनके पुत्र राजा दैशटदेव हैं। राजस्थान इसका कार्त्तिकेयपुर लिखा है। इस राजा दैशटदेव ने खस, कलिंग, हूण, गौड़, मेद्र, आंध्रदेशों में अपना राज्य-विस्तार होना लिखा है। संवत् इस ताम्रपत्र का ५ है। यह संवत् विक्रम-संवत् नहीं है, बल्कि सम्राट् दैशटदेव के राजगद्दी पर बैठने का संवत् है। इससे ज्ञात होता है कि ये सम्राट् विक्रम-संवत् चलने के पूर्व राज्यासीन हुए थे। और इसी ताम्रपत्र के दूसरी तरफ़ लिखा है कि राजा दैशटदेव की सनद को राजा क्राचल्लदेव ने बहाल किया। इस राजा ने अपने को सौगत यानी बुद्ध कहा है। शाके इसमें ११४५ है और इस सनद में लिखा है कि राजा क्राचल्लदेव ने नैपाल के राजा को परास्त कर लौटते समय दूलू स्थान में यह सनद जारी की। जहाँ तक अन्वेषण किया गया है, यह राजा क्राचल्लदेव कुमाऊँ के राजाओं में न थे। शायद वे डोटी-नरेश हों। २०० वर्ष बाद अर्थात् १३४५ शाके में राजा विक्रमचंद ने भी इस सनद को फिर से बहाल किया। उस समय तक चंद-राजा केवल काली कुमाऊँ में राज्य करते थे। वे मांडलीक राजा थे। डोटी

के महाराजा को कर देते थे। कीर्तिचंद के बाद चद्रवंशी नृपति स्वतंत्र नरेश हुए। अतः सिद्ध है कि ये राजा क्राचल्लदेव अवश्यमेव डोटी के महाराजा रहे होंगे।

---

८. बागीश्वर का शिला-लेख

एक शिला-लेख व्याघ्रेश्वर या बागीश्वर शिव के मंदिर का है, जो बागीश्वर में पाया गया है। कुछ लोग इसे व्याघ्रेश्वर और कुछ बागीश्वर कहते हैं, पर शिला-लेख में व्याघ्रेश्वर लिखा है। यह स्थान पट्टी तल्ला कत्यूर के सरयू व गोमती के संगम पर है। यह श्रीभूदेव देव का है। इसमें इनके अतिरिक्त सात और राजाओं के नाम हैं, जो दाता के पूर्वज थे—

१. वसन्तनदेव
२. खरपरदेव
३. कल्याणराजदेव
४. त्रिभुवनराजदेव
५. निम्बर्तदेव
६. ईशतारणदेव
७. ललितेश्वरदेव
८. भूदेवदेव

ये आठों गिरिराज चक्रचूड़ामणि या हिमाचल के चक्रवर्ती सम्राट् कहे जाते थे। गिरिराज की पदवी हिमाचल के राजा होने से प्राप्त होना स्पष्ट है। शिला-लेख संस्कृत में है। कुछ टूट गया है। इसका संक्षिप्त भावार्थ यहाँ पर दिया जाता है—

---

९. बागीश्वर शिला-लेख का सार

प्रार्थना व वंदना। इस सुन्दर मंदिर के दक्षिण भाग में विद्वानों ने राजवंशावली अंकित की है।

"परदेव के चरणों की वंदना करो। एक समय में एक राजा थे, जिनका नाम मसन्तनदेव था, जो राजाओं के राजा थे। बहुत प्रतिष्ठित व धनी। उनकी रानी सज्ञनारायणी थी, जो अपने पति से अन्य को न जानती थी। उसने एक पुत्र जन्मा, जो चक्रवर्ती सम्राट् था, धनी था, और अपने समय में पूज्य था। उसने परमेश्वर की पूजा की और बहुत दान दिया, और बहुत-सी ग्राम सड़कें बनवाईं, जो जयकुलभुक्ति को जाती हैं, और उन्होंने व्याघ्रेश्वर के लिये सुगंधित पदार्थ, फूल, धूप, दीप, तेल का प्रबंध किया, जो अम्बालपालिका में है। वह युद्ध में प्रजा के संरक्षक थे। उन्होंने फूल, सुगंधित

पदार्थों के अलावा सरनेश्वर ग्राम भी, जो उसके पिता ने वैष्णवों को पूजा के लिये दिया था, जागीर में दिया। जिसने सड़कों के किनारे मकान बनवाये। जब तक सूर्य-चंद्र रहेंगे, यह दान-पत्र भी रहेगा।"

"उसका पुत्र खरपरदेव था। वह भी सम्राट् था, प्रतिष्ठित व धनी। उनकी रानी से अधिधज उत्पन्न हुए, जो धनी-मानी व विद्वान् थे। उनकी रानी लद्धा (लज्जा ?) देवी से, जो अपने पतिदेव के चरणों की अत्यन्त अनुरागिणी थी, त्रिभुवनराज पैदा हुए, जो चतुर, धनी, माननीय तथा गुणी थे। उन्होंने दो 'द्रोण' उपजाऊ भूमि नया नाम की जयकुलभुक्ति गाँव में से उक्त देवता के पूजन को दी। और आज्ञा दी कि वहाँ के सुगंधित पदार्थ सब पूजन के काम में आवें। यह भी जानने योग्य है कि वह किरात के पुत्र का बहुत सच्चा मित्र था। उसने २½ द्रोण ज़मीन उक्त देवता तथा गामवीय पिंड के लिये दी। अधिधज के दूसरे पुत्र ने १ द्रोण ज़मीन भैरव देवता को दी और दो बीघा का दान शिला-लेख में लिखाया संवत् ११ में। उसने १ द्रोण ज़मीन व्याघ्रेश्वर को और १४ मुट्ठी चंदनंदा-देवी को दी और एक बावली भी बनवाई। ये सब भूमि-दान व्याघ्रेश्वर की पूजा के लिये हैं।"

"एक और राजा था, जिसका नाम निर्वंत था, जो दयाशील, निष्कपट, सच्चा, शक्तिशाली, मृदु-स्वभाव, वीर, उदार, विद्वान्, विनम्र, सच्चरित्र और हँसमुख था। वह चरित्रशाली तथा बहुत गुणों से युक्त था, जो तीर-कमान चलाने व अस्त्र-विद्या में निपुण था, और जो नंदन और अमरावती में रहने-वाले भगवान् के चरण-कमलों को पूजने के लिये पैदा हुआ था, जिसने दुर्गाधि (शिव) की कृपा से शस्त्र-विद्या में ख्याति पाई। वे शिव जिनके सिर में जटाएँ शोभित हैं, जो चंद्रमा की कला से ऐसे बाँधे हुए हैं, मानो कि मोतियों की लड़ैं हैं, और जिनमें गंगा का पवित्र जल बहता है, जो उसकी शोभा को हज़ारगुना बढ़ाते हैं, जिनमें केशर के फूल विराज-मान हैं, और सर्प शोभित हैं इत्यादि। उस राजा ने अपने सब शत्रुओं का मान-मर्दन किया। उसका रंग सोने के सदृश था, उसका स्वच्छ शरीर हमेशा देवताओं की—दैत्यों की (?) और विद्वानों की पूजा के लिये झुकता था और बहुत से यज्ञ करने के कारण उसकी कीर्ति चारों ओर फैली हुई थी।"

"उसका पुत्र ईशतारणदेव, जो दासूदेवी-नामक प्रधान रानी से पैदा हुआ था, जिसे रानी खूब प्यार करती थी, चक्रवर्ती सम्राट् था। धनी, प्रतिष्ठित और विद्वान्। उसका पुत्र ललितसूरदेव, उसकी स्त्री धरादेवी से

उत्पन्न हुआ था। यह देवी राजा की बड़ी भक्ति करती थी। यह भी चक्रवर्ती सम्राट् था। धनी, प्रतिष्ठित, गुणवान्, शूरवीर। उसका लड़का भूदेवदेव लायादेवी से उत्पन्न हुआ था, जो अपने पति को खूब प्यार करती थी। वह भी चक्रवर्ती था। ब्रह्म का कट्टर उपासक था। बुद्ध श्रावण का शत्रु था। सत्य-प्रेमी, धनी, सुंदर, विद्वान्। धर्म-कर्म में सदा अनुरक्त। ऐसा था कि जिसके पास काली आ नहीं सकती थी। जिसकी आँखें नील कमलके सदृश सुंदर तथा तेज थीं। जिसके हाथों की हथेलियाँ नव-पल्लव के सदृश थीं। जिसके कान बार-बार तंग किये जाते थे—उन राजाओं के किरीटों में लगे हुए आभूषणों की झंकार से, जो उसके सामने मस्तक झुकाते थे। उसके अस्त्रों से अंधकार दूर हो जाता था। उसके पैरों का रंग सोने का-सा था। उसने अपने सेवकों व प्रिय भृत्यों को अवसर ग्रहण करने पर भी आजीविकाएँ (पेंशनें) दीं। ....''

इन ताम्रपत्रों से इन चक्रवर्ती राजाओं के गुणों का पता चलता है। स्त्रियों के नाम भी ताम्रपत्रों में दिये रहते थे। ज्ञात होता है कि कोई परदा-प्रथा उस समय न थी। विद्वानों का आदर होता था। सम्राट् भूदेवदेव बुद्ध-धर्म के विरुद्ध थे। शायद उसी समय से बुद्ध-धर्म उठा हो और हिन्दू-धर्म की फिर से विजय हुई हो। "काली उनके पास नहीं आ सकती" इससे ज्ञात है कि वे निर्विकार शिव के उपासक थे। बलिदान व काली-पूजा के विरुद्ध थे।

---

१०. पांडुकेश्वर के शिला-लेख

चार ताम्रपत्र श्रीबदरीनाथ के मंदिर के निकट पांडुकेश्वर-मंदिर में हैं। इनमें से २ में बागीश्वर शिला-लेख में अंकित पाँचवें, छठे व सातवें सम्राटों का नाम आया है। एक ताम्रपत्र में ३ पुश्त सम्राटों की लिखी हैं। दैशटदेव का पुत्र पद्मटदेव राजा चौथी पुश्त में लिखा है और किरात, द्रविंग, उड्र, इन तीन देशों में अपना राज्य-विस्तार बताया है। खस वग़ैरह देश सब अपने अधीन लिखे हैं। संवत् २५ है और राजधानी कार्त्तिकेयपुर। दूसरे ताम्रपत्र में एक पुश्त ज़्यादा दर्ज है अर्थात् राजा पद्मटदेव का बेटा सुभिक्षराज-देव कहा गया है। इन्होंने अपने नगर का नाम सुभिक्षपुर लिखा है, जिससे ज्ञात होता है कि यह नगर इन्हीं नृपति ने अपने नाम से बसाया हो। अपने अधीन प्रान्तों का नाम भी पुराना ही है, जो इनके पिता श्रीपद्मटदेववाले ताम्रपत्र में दर्ज है। संवत् इसमें ४ दर्ज है।

तीसरा ताम्रपत्र राजा निम्बर्तदेव, उसका पुत्र इङ्गागदेव या इष्टहरगण-देव, उसका पुत्र ललितसूरदेव ने लिखा है। ये तीनों राजा बागीश्वरवाले ८ राजाओं में से हैं। इनमें और बातें राजा सुभिक्षदेव के तामूपत्र की तरह हैं। संवत् इसमें २२ है। चौथे तामूपत्र में राजाओं के नाम तीसरे तामूपत्र के समान हैं। सिर्फ़ उक्त देशों के अतिरिक्त अंग, बलोघ्र दो और देशों में अपना राज्य-विस्तार ज्यादा होना बताया है। संवत् इसमें २१ दर्ज है।

एक तामूपत्र में अपने विजयराज्य के २१वें वर्ष में श्रीललितसूरदेव ने अपनी रानी श्यामादेवी के कहने से गोरुन्नासारी में कुछ गाँव नारायण भट्टारक को दिये हैं। उसमें राजमंत्री का नाम विजक है, युद्ध-मंत्री का नाम अर्यट तथा लेखक का नाम गंगाभद्र हैं।

दूसरे तामूपत्र में भी २२वें विजयराज्य के उपलक्ष में नारायण भट्टारक को कुछ गाँव दिये गये हैं। और इसमें भट्टारक महोदय की कीर्ति इस प्रकार गाई गई है—"जो गरुड़-आश्रम के विद्वानों से पूजित हैं।" ज्ञात होता है कि गरुड़-आश्रम में विद्वान् पुरुष रहते थे, जो पठन-पाठन का काम करते थे, और नारायण भट्टारक उन सबके आचार्य्य थे। अलखनंदा के किनारे तपोवन ग्राम की जागीर इनको दी गई है। हस्ताक्षर उन्हीं शासकों के हैं, जिनके नाम ऊपर दिये हैं। इन ताम्रपत्रों में तीन नाम हैं—

सम्राट् नेम्बर्तदेव और उनकी रानी नाथूदेवी
,, ईष्टाङ्गदेव ,, ,, ,, दिशादेवी
,, ललितसूरदेव ,, ,, ,, श्यामादेवी

ये सब तामूपत्र कार्त्तिकेयपुर की मुहर से जारी किये गये हैं। दूसरे दो तामूपत्रों में अन्य राजाओं के नाम हैं, जिन्होंने काली कुमाऊँ के बालेश्वर मंदिर को भी भूमि चढ़ाई है। इनमें से भी एक कार्त्तिकेयपुर से जारी किया गया है। तिथि इस प्रकार है—प्रवर्धमान विजयराज्य संवत् ५ अपने राज्य के पाँचवें वर्ष में यह हुक्मनामा ईशाल प्रान्त के प्रबंधकों के नाम हैं। देशटदेव ने इसे जारी किया है, और विश्वेश्वर को यमुना का गाँव जागीर में दिया है। इस तामूपत्र में सलोनादित्य तथा उसकी रानी सिन्धुदेवी का नाम है, जिनके पुत्र देशटदेव हैं। इसमें राजमंत्री का नाम भट्ट हरिशर्मा है। युद्ध-मंत्री का नाम नंदादित्य है, और लेखक का नाम भद्र है। और शिला-लेख बालेश्वर-मंदिर में रक्खा है। दूसरा तामूपत्र जो कार्त्तिकेयपुर से विजयराज्य २५ संवत् २५ में जारी किया गया है, टंगनपुर के राजकर्मचारियों के नाम है। पश्चात-

देव पुत्र दशटदेव ने द्रुमती के चार गाँवों की जागीर बदरीनाथ के नाम चढ़ाई है। इसमें उक्त नामों के अतिरिक्त दैशटदेव की रानी पदमल्लदेवी का नाम आया है। राजमंत्री का नाम भट्टधन है। युद्धमंत्री का नाम नारायण-दत्त है और लेखक का नाम नंदभद्र है। यह ताम्रपत्र पांडुकेश्वर में है।

जिस ताम्रपत्र में सुभिक्षपुर की छाप है, वह विजयराज्य के चौथे वर्ष में जारी किया गया है। इसमें दाता पद्मातदेव के पुत्र सुभिक्षराजदेव हैं। यह टंगनपुर तथा अतंरांग के अधिकारियों के नाम जारी किया गया है। इसमें विदमलका नाम गाँव, मय कुछ और ज़मीन के, नारायण भट्टारक को दिया है। और रत्नपाली-नामक गाँव, जो गंगा के उत्तर में है, ब्रह्मेश्वर भट्टारक को दिया गया है। राजमंत्री कमलापति हैं, सेनापति ईश्वर दत्त, लेखक नंदभद्र। सब नाम इस प्रकार पाये गये हैं :—

१. सलौनादित्य उनकी रानी सिंहावलीदेवी
२. इच्छटदेव ,, ,, सिंधुदेवी
३. दैशटदेव ,, ,, पदमल्लदेवी
४. पद्मातदेव ,, ,, ईशाल्लदेवी
५. सुभिक्षराजदेव

इनमें जो तिथियाँ हैं, वह उन राजाओं की राजगद्दी पर बैठने के समय से जारी की हुई ज्ञात होती हैं। ठीक-ठीक संवत् ज्ञात नहीं हो सकते। इनमें विक्रम-संवत् दिया हुआ नहीं है।

इन सबमें बड़ा पांडुकेश्वर का ताम्रपत्र है। यह उस ढंग का है, जैसे छोटे बच्चों के लिखने की तख्ती। तख्ती के पकड़ने के स्थान में नांदी बना हुआ है। यह ताम्रपत्र बहुत अच्छी तरह से लिखा हुआ है। पंक्तियाँ साफ़ हैं। पाली की कुटिल लिपि है। एक ताम्रपत्र यहाँ के प्रसिद्ध कमिश्नर रामजी साहब ने बंगाल के सुविख्यात पुरातत्त्ववेत्ता डॉ० राजेंद्रलाल मित्र के पास भेजा था। चूँकि यह लेख बड़े ऐतिहासिक महत्त्व का है, इससे उसका पूर्ण संस्कृत-विवरण तथा उसका हिन्दी-अनुवाद हम यहाँ पर देते हैं :—

---

११. पांडुकेश्वर का बड़ा शिला-लेख

[संस्कृत मूल]

(१) स्वस्तिश्रीमत्कार्त्तिकेयपुरात्सकलामरदिति तनुजमनुज भक्तिभाव भर-भारानमिता मितोत्तमाङ्ग सङ्गि विकटमुकुट कीरिटविटङ्क कोटिशो लोकता—

(२) नाना (ताता) यक्ष प्रदीप दीपदीधिति पानमदरक्त चरणकमला-मलविपुल बहुल किरणकेशरासा रसारिता शेषविशेष मोषिघनतमस्तेजसस्स्वधुंनी धौतजटाजूटस्य—

(३) भगवतो धूर्जटेः प्रसादान्निजभुजो पार्जितौंजिस्यनिर्जित रिपुतिमिर-लब्धोदय प्रकाशदया दाक्षिण्य सत्य सत्वशील शौच शौर्योदार्यगाम्भीर्यमर्यादार्य-वृत्ताश्चार्य—

(४) कार्यवर्यादि गुणगणालंकृतशरीरः महासुकृति संतानबीजावतारः कृत युगागम भूपाल ललितकीर्तिः नंदा भगवतीचरणकमल कमलासनाथमूर्तिः श्रीमिम्बरस्तस्यत - —

(५) नयस्तत्पादानुध्यातो राज्ञा महादेवी श्रीनाथूदेवी तस्यामुत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यः शितकृपाणधारोत्कृतमत्ते भकुम्भाकृष्टोत्कृष्ट मुक्तावली-यशःपताका ---

(६) च्छायचन्द्रिका पहसित तारागणः परमभट्टारक महाराजाधिराज-परमेश्वरश्रीमदिष्टगणदेवस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो राज्ञी महादेवी श्रीवेंगदेवी तस्यामुत्पन्नः परममाहेश्वरः --

(७) परमब्रह्मण्यः कलिकलंक पंकातंक मग्नधरण्युद्धाद्धारधारितधौरेय वरवराहचरितः सहजमतिविभव विभुविभूतिस्थगिताराचक्रः प्रतापदहनः । अतिवै भवसंहारारम्भ—

(८) संभृतभीम भ्रुकुटि कुटिल केसरिसटा भीतभीता रातीभकलभभरः अरुणारुण कृपाणबाण गुणप्राणगण हठाकृष्टोत्कृष्ट सलील जयलक्ष्मीप्रथम-समालिंगनावलोकन—

(९) वलक्ष्य सखेद सुरसुन्दरी विधूतकरसबलद्वलयकुसुमप्रकर प्रकीर्णा वंतससंवर्द्धितकीर्तिबीजः पृथुरिवदोर्दण्ड साधित धनुर्म्मण्डलबलावष्टम्भबश—

(१०) वशीकृत गोपालनानिश्चलीकृतधराधरेन्द्रः परमभट्टारकमहाराजा-धिराज परमेश्वरश्रीमल्ललितशूरदेवकुशली अस्मिन्नेव श्रीमत्कार्त्तिकेयपुरविषये समुपगतान्—

(११) सर्वानवनियोगस्थान् राजराजतकराजपुत्रास्स्रष्टामात्य सामंतमहासा-मंतठक्कुरमहामनुष्य महाकर्तृकृतिक महाप्रतीहारमहादण्डनायक महारा-जमातारशर—

(१२) भंगकुमारामात्यापरिक दुस्साध्यासाधनिक दशापराधिक चौरौ-द्धरणिक शोल्किकशौल्मिक तदायुक्तक विनियुक्तक पट्टाकापचारिकाशेषसंगाधिकृत हस्त्यश्वोष्ट्र—

(१३) बलव्यापृतकभूतप्रेषणिक दण्डिकदण्ड ाशिक गमागमिशार्ङ्गिकाभित्वर माणकराजस्थानीय विषयपतिभोगपतिनरपत्यश्वपति + राडरत्नप्रतिशूरि—

(१४) कस्थानाधिकृतवर्त्मप.लकौट्टपालपट्टपालक्षेत्रपालप्रान्तपालकिशोरवरवागोमहिष्याधिकृतभट्टमहत्तमाभीरवणिक्श्रेष्ठिपुरोगास्तष्टादशप्रकृत्य —

(१५) ···धिष्ठानीयान् खषकिरातद्रविड़कलिंगशौरहूणोड्र् मेदान्ध्रचाण्डालपर्यन्तानसर्वसम्बसान्समस्तजनपदान्भटाचटसेवकादीनन्यांश्च कीर्त्तितानस्म -

(१६) त्पादपद्मोपजीविनः प्रतिवासिनश्च ब्राह्मणोत्तरान् यथार्हं मत्तयति बोधयति समाज्ञापयत्यस्तु तेस्माद्विदितमुपरिनिर्दिष्टविषये गोरुन्नसायां प्रतिबद्धखषियाक—

(१७) परिभुज्यमानपल्लिका तथा पणिभूतिकायां प्रतिबद्धगुगुलपरिभुज्यमानपल्लिकाद्वयं एते मयामातापित्रोत्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये पवन िघट्टिता —

(१८) श्वत्थपत्रवच्चलतरङ्गजीवलोकमवलोक्य जलबुद्बुदाकारमसारं वायुर्द्दष्ट्वा गजकलभकर्णाग्रचपलाताश्चालक्ष्यत्वापरलोकनिःश्रेयसार्थसंसारार्णवोत्तरणार्थञ्च—

(१९) पुण्येहनि उत्तरायणसंक्रांतौ गन्धपुष्पधूपदीपोपलेपननैवेद्यबलिचरुनृत्यगेयवाद्यसत्वादिप्रवर्त्ताय खण्डस्फुटितसंस्करणाय अभिनवकर्मकरणा —

(२०) य च भृत्यपदमूलभरणाय च गोरुन्नसायां महादेवी श्रीसामदेव्या स्वयंकारायितभगवते श्रीनारायणभट्टारकाय शासनदानेन प्रतिपादिताः प्रकृतिपरिहारयुक्तः—

(२१) प्रचाटा भटा प्रवेशः अकिञ्चित्प्रग्राह्याः अनाच्छेद्यआचन्द्रार्कक्षितिस्थितिसमकालिकः विषयादुद्धृतपिण्डास्थसीमागोचरपर्यन्तस्य वृक्षारामोद्द्रहप्रस्रवणोपे—

(२२) तदेव ब्राह्मणभुक्तभुज्यमानवर्जिताः यत्स सुखं पारंपर्येण परिभुञ्जतश्चास्योपरि निर्दिष्टरन्यतरैर्व्वा धरणविधारणपरिपन्थि जनादिकोपद्रवोमनागपि न कर्त्त—

(२३) व्यो नान्यथा······महान्द्रोहः स्यादिति प्रवर्द्धमानविजयराज्यसम्वत्सरएकविशंतिमे सम्बत् २१ माघ बदि ३ ·· ·· महादानाक्षयपटलाधिकृतश्रीपीजकः—

(२४) लिखितमिदं महासन्धिविग्रहाक्षपटलाधिकृतश्रीमदायटावबनाटङ्कोत्कीर्णा श्रीगंगभद्रेण—

श्लोक

(२५) बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः ।
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ १ ॥

सर्व्वानेतान् भाविनः पार्थिवेन्द्रान् भूयो भूयो याचते रामभद्रः ।
सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नृपाणां कलिकाल पालनीयो भवद्भिः ॥ २ ॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् ।
षष्टिंवर्षसहस्राणि श्वविष्ठया जायते कृमिः ॥ ३ ॥
भूमेर्दाता याति लोके सुराणां हंसैर्युक्तं यानमारुह्य दिव्यम् ।
लौहे कुम्भे तैलपूर्णे सुतप्ते भूमेर्हर्ता पच्यते कालदूतैः ॥ ४ ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः ।
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ॥ ५ ॥
गामेकाञ्च सुवर्णाञ्च भूमेरप्येकमङ्गलम् ।
हृत्वा नरकमायाति यावदाहूति संप्लवम् ॥ ६ ॥
यानीह दत्ता निपुरा नरेन्द्रैर्दानानि धर्म्मार्थयशस्कराणि ।
निर्म्माल्यवन्ति प्रतिमानि तानि को नाम साधुः पुनराददीत ॥ ७ ॥
वाताभ्रविभ्रममिदं समुदाहरद्भिरन्यैश्च दानमिदमभ्यनुमोदनीयम् ।
लक्ष्म्यास्तडित्सलिलबुद्बुदचञ्चलायाः दानं फलं परयशः परिपालनञ्च ॥ ८ ॥
इति कमलदलविन्दुलोलमिदमनुचिन्त्य मनुष्यजीवितञ्च ।
सकलमिदमुदाहृतञ्च बुद्ध्वा न हि पुरुषैः परकीर्त्तयो विलोप्याः ॥ ९ ॥
श्रीमिम्बरस्तत्पादानुध्यातः ।
श्रीमदिष्टगणदेवः तत्पादानुध्यातः ।
श्रीमल्ललितशूरदेवः क्षितीशः ।

[हिन्दी-अनुवाद]

(१) कल्याण हो । श्रीमान् कार्त्तिकेयपुर से समस्त देवगणों के अनुचर द्वारा पूजित किया गया है, भक्ति-भावना के साथ सिर झुकाते हुए मुकुटमणियों की किरणों से प्रकाशमान नखचन्द्र की कला जिसकी है, ऐसे ।

(२) (आपका) सर्वतः प्रकाशमान, प्रदीपों के प्रकाश को मंद करने-वाला, देवताओं के सामने झुका हुआ, उनकी पृथ्वी पर गिरी हुई मकरंद पंक्ति से धूसरित हो गया है सिर के केशों का झुंड जिसका, ऐसे—

(३) गंगा है मस्तक पर जिनके ऐसे भगवान् शंकर के प्रसाद से अपनी भुजा से उपार्जित किया है शूरता से शत्रुओं को जीतकर उनकी समस्त धन-राशि जिसने उसके द्वारा दया, चतुरता, सत्य भाषण, उन्नत भाव, उच्च पवित्रता, उच्च उदारता आदि गुणगणों का समूह जिसने, ऐसा—

(४) अत्यन्त सुकृति की परंपरा का बीजारोपण करनेवाला, सतयुगी

राजाओं के समान सुन्दर कीर्तिवाला, नंदादेवी के चरण-कमलों में झुके हुए सिर वाला जो श्रीमिम्बर है, उनका पुत्र—

(५) उनकी आज्ञा का पालन करनेवाला, रानी महादेवी श्रीनाथूदेबी में उत्पन्नपरम शैव परम ब्राह्मणों का सेवक, पैनी तलवार की धाराओं से काटे हुए हाथियों के मुंडों के मस्तकों से गिरे हुए मुक्ताओं के समान सफ़ेद है यश की पताका जिसकी—

(६) उस यश की पताका से हँस करके फेंकी है तारागणों की पंक्ति जिसने, ऐसा परम भट्टारक महाराजाधिराज महादेव है इष्टदेव जिनका ऐसे का पुत्र उनकी आज्ञा का पालन करनेवाला रानी महादेवी श्रीमती वेगदेवी में पैदा हुआ—

(७) शंकर का परमभक्त, ब्राह्मणों का परमपूजक, कलि के कलंकरूपी पंक में डूबी हुई पृथ्वी के उद्धार करने के लिये धारण किया है वराहावतार के समान शरीर जिसने, अपनी स्वाभाविक बुद्धि के विभव से स्थगित किया है शत्रुओं का प्रताप-चक्र जिसने, ऐसा—

(८) अत्यन्त वैभव के साथ संहार करने के लिये भयंकर भृकुटि को बनाकर सिंह के समान समक्ष में आये हुए शत्रुओं के समूह पर निर्भय होकर रुधिर से लाल हुई तलवार को घुमाते हुए, शत्रुओं के स्वर्गारोहण के अनन्तर विजयलक्ष्मी ने आनंद के साथ आलिंगन किया है कंठ जिसका, ऐसे—

(९) देवांगनाओं के सुन्दर मुख के अवलोकन से शस्त्र को देवी के चरणों में रखकर पुष्पमालाओं द्वारा भगवती के विजय-पताका-युक्त अपने सिर को जगदम्बा के चरणों में झुकाकर, अपने भुजदंड के बल से अपने शस्त्रों की सहायता से शत्रुओं के प्रचंड वेग को रोकते हुए समस्त सामंत राजाओं को भेंट के साथ अपने क़ाबू में करनेवाला—

(१०) पृथु के समान अपने भुजदंड के बल से समस्त धनुर्धारी शूरवीरों के गणों को स्तम्भित कर, अपने वश में लाई हुई अचल रूप से पालन की हुई धरा का सार ग्रहण करनेवाले परम भट्टारक महाराजाधिराज राजाओं के राजा श्रीमान् 'ललितसूरदेव' कुशवंशावतंस इसी श्रीमान् कार्त्तिकेयपुर के मंडल में आये हुए

(११) समस्त पृथ्वी के राजाओं को, राजपुत्रों को, राजपौत्रों को, राजामात्यों को, उनके नीचे काम करनेवाले छोटे-छोटे और बड़े-बड़े क्षत्रिय महावीरों को, उनके साथ में आये हुए बड़े-बड़े द्वारपालों को हाथ में दंड लेकर महाराज का गुण गान करनेवाले—

(१२) उनकी प्राचीन कुल-परंपरा का, उनकी शूरता का, उनकी उदारता का, उनके दुःसाध्य कर्मों का, उनके द्वारा छोड़े हुए बड़े-बड़े चोर और डाकुओं के पकड़नेवाले वीरों का, उनसे उघाये हुए शुल्क का तथा तत्तत् कार्यों में नियुक्त कवि, ज्योतिषिक्, आभिचारिक (जादू-टोनेवाले) आदि को दिया है--

(१३) हाथी, ऊँट, घोड़े और सेना के द्वारा प्राप्त हुए प्रभूत धन तथा दंड के द्वारा प्राप्त हुए धन एवं पशुओं के आयात और निर्यात के द्वारा प्राप्त हुए धन-समूह को राज्यकार्य में लगे हुए अनेक ज़िलों के मालिक, अनेक सेनाध्यक्ष, छोटे नृपति, अश्वपति, प्रान्ताध्यक्ष, शत्रुसेना भयंकर, अपने बड़े-बड़े सेनापति—

(१४) मार्ग-संशोधक तथा प्रबंधक, क़िलेदार, घट्टपाल, क्षेत्रपाल, प्रान्तपाल, उनके पुत्र और पौत्र, गोपाल, महिषीपाल, इनके निरीक्षक बड़े-बड़े महाकवि, अहीर, वैश्य, बड़े-बड़े सेठ, इनमें रखकर—

(१५) १८ प्रकार की राजनीति के जाननेवाला खस, किरात, द्रविड़, कलिंग, सूरसेन, हूण, आन्ध्र, मेद आदि चांडाल पर्यन्त समस्त परिजनों को, समस्त काम करनेवालों को, समस्त जनपदों के मनुष्यों को, समस्त सेनापतियों को, इसी प्रकार अन्य समस्त सेवकों को—

(१६) प्रसन्न करके, उनके द्वारा कही हुई कीर्ति का बार-बार स्मरण करके अपने आश्रय में आनेवाले और उनके समस्त इष्ट-मित्रों को, ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य समस्त जनों को यथायोग्य यह आदेश देता है, तथा बतलाता है, और अनुशासन करता है कि तुम सब लोग ऊपर बतलाए हुए देशों में उन्नत उन्नत-गोष्ठों (गायों) को, तथा धान्य-राशि के उठाने के स्थानों को—

(१७) छोटे-छोटे ग्रामों को, पल्लियों (खरक) को, बाज़ारों को तथा देवोद्देश्य से दिये हुए अनेक सुगंधित द्रव्यों से सुगंधित दोनों ओर से मार्ग-वाले उच्च-उच्च यज्ञ-मंडपों को, इन सबको मैंने अपने माता-पिता और अपने आत्मा की पूर्ण वृद्धि के लिये गोरुन्नसारी तथा दूसरा ग्राम, जो पाली में है और जो खसिया तथा गुग्गुल के अधिकार में है, वे ग्राम दान में दिये गये—

(१८) अश्वत्थ (पीपल)-पत्र के समान चंचल अपने जीवन को देखकर जल-बुद्बुद के समान असार आयु को देखकर, अपनी लक्ष्मी की हाथी के बालक के कर्ण-चालन के समान चंचलता देख करके परलोक में मोक्ष-सुख की प्राप्ति के लिये तथा संसार-सागर के उतरने के लिये—

(१६) पुण्य दिन में, उत्तरायण संक्रान्ति में, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, उपलेपन, नैवेद्य, बलि, चरु, नृत्य, गान, वाद्य आदि के लिये, फूटे हुए मकानों की मरम्मत के लिये, नवीन मंदिरों के बनाने के लिये -

(२०) (मंदिरों के) नौकरों की तनख़्वाह के लिये, गौ की नासिका के समान उन्नत, पवित्र भूमि में महादेवी श्रीसामदेवी ने स्वयं बनाये हुए भगवान् के मंदिर की पूजा के लिये गोरुन्नसारी-नामक गाँव श्रीनारायण भट्टारक को अपनी आज्ञा से दिया—

(२१) समस्त सेवक-युक्त आगम-निर्गम-द्वार-घटित, नहीं लेने योग्य, नहीं तोड़ने योग्य, सूर्य-चंद्रमा की आयु तक रहनेवाले, अपने प्रान्त के अनेक प्रान्तों को, उनकी सीमाओं के साथ-साथ लगे हुए वृत्तों को, बग़ीचों को, गहरे-गहरे तालावों को, झरनों को—

(२२) मंदिर-स्थित ब्राह्मणों के निमित्त दी हुई अनेक सामग्रियों को सुख-पूर्वक जीवन-निर्वाह करने के लिये, उनकी वंश-परम्परागत सन्तति के उपभोग के लिये जो कुछ हमने ऊपर बतलाये हुए प्रदेश तथा उसके संबंध में अन्य भी अनेक उपकरण के साथ दिये हुए निर्विवाद अनन्त काल तक व्यवहार में लाने के लिये जो मैंने लिखित-उल्लिखित स्थान बतलाये हैं, उनमें कोई भी किसी प्रकार का झगड़ा न करे—

(२३) उनका मेरी आज्ञा के विरुद्ध......(यदि कोई व्यवहार करेगा) तो मेरे प्रति महान् द्रोही होगा। इस आज्ञा को मैं प्रवर्धमान विजयराज्य संवत्सर २१ में माघवती तृतीया को महादान-पत्र के साथ अक्षय राज्य के ऊपर बैठनेवाले उत्तरवंशाधिकारियों को यह हमारा आदेश है।

(२४) यह लिखा गया है उच्चतर संधि तथा उच्चतर विग्रह के द्वारा प्राप्त हुए राज्य नायक श्रीमान् आयट अवटंकवाले श्रीगंगभद्र ने

(श्लोक का अर्थ)

(क) जो-जो इस भूमि का दाता होता जायगा, उस-उसको उस-उस समय में फल प्राप्त होगा।

(२५) समस्त भावी राजाओं को प्रणाम कर बार-बार रामचन्द्र इस बात को माँगता है, मैंने जो सामान्य रीति से धर्म के लिए कार्य किया है, उसका समय-समय पर आप लोग पालन करें ॥ १ ॥

अपनी दी हुई अथवा दूसरे की दी हुई पृथ्वी का, जो अपने उपभोग के लिये आहरण करता है, वह ६० हज़ार वर्ष तक कुत्ते के पुरीष में कृमि बनकर अपने जीवन को व्यतीत करता है ॥ २ ॥

(ख) भूमि का दान देनेवाला मनुष्य हंस-युक्त विमान पर चढ़कर दिव्य स्वर्ग को प्राप्त होता है। और उस पृथ्वी का आहरण करनेवाला मनुष्य लोहे के बने हुए गरम तेल से भरे हुए अत्यन्त प्रतप्त तैल-कुंड में कालदूतों के द्वारा पकाया जाता है ॥ ३ ॥

६० हज़ार वर्ष तक भूमि का देनेवाला स्वर्ग में रहता है, और उसका छीननेवाला तथा छीनने में अनुमति देनेवाला उतने ही वर्ष तक नरक में रहता है ॥ ४ ॥

एक गौ और सुवर्ण तथा एक अंगुल-मात्र भूमि को छीनकर मनुष्य कल्प-पर्यन्त नरक में निवास करता है ॥ ५ ॥

पहले समय में जिन राजाओं ने धर्मार्थ और यश की वृद्धि के लिये दान दिये हैं, वे सब (शिव) निर्माल्य के समान हैं। उनको कोई भी भद्र पुरुष लेने का अधिकार नहीं रखता है ॥ ६ ॥

अपने जीवन को हवा के वेग में घूमते हुए बादल के टुकड़े के समान असार समझकर मेरे वंश में उत्पन्न होनेवाले अन्य महानुभाव मेरे इस दान-पत्र का अनुमोदन करें। बिजली और पानी के बगूले के समान चंचल तथा अस्थिर लक्ष्मी के उपयोगों को समझकर उसका दान ही फल समझना चाहिए और दूसरे की कीर्ति का पालन करते हुए उसका नाश नहीं करना चाहिए ॥ ७ ॥

इस प्रकार कमल-दल के ऊपर विद्यमान जल-विन्दु की चंचलता का ध्यान रखते हुए और अपने जीवन को भी तद्वत् समझते हुए जो कुछ मैंने समझ-बूझकर ऊपर लिखा है, उसको समस्त सज्जन मानें। और मेरे वंशजों को चाहिए कि पूर्वजों की कीर्तियों का कदापि नाश न होने दें ॥ ८-६ ॥

श्रीमिम्बर उनका चरणानुरागी श्रीमान् इष्टगणदेव उनका चरणानुरागी श्रीमान् ललितसूरदेव महाराजाधिराज।

---

१२. अन्य शिला-लेखों से मिलान

जैसे शिला-लेख कत्यूरी-सम्राटों के पांडुकेश्वर में मिले हैं, ऐसे ही भागलपुर तथा मुंगेर में भी मिले हैं। इनमें राज्य के सब बड़े-छोटे कर्म-चारियों के पद तथा संख्या का वर्णन दिया गया है। ये सब लोग राज्या-भिषेक के या दरबार के समय एकत्र होते थे।

कात्तिकेयपुर की सौभाग्यशाली नगरी में ये सब एकत्र हुए—

मुंगेर का शिला-लेख	पांडुकेश्वर-शिला-लेख ललितसूरदेव का	पाड्केश्वर-शिला-लेख ललितसूरदेव का दूसरा	पद्मटदेव का शिला-लेख	सुमित्रराजदेव का शिला-लेख	भागलपुर का शिला-लेख	नाम पदाधिकारी
१	२	३	४	५	६	७
...	१	१	१	१	...	अवनियोगस्थान (दैशिक शासक)
...	२	२	२	२	...	राजा
१	३	३	३	३	१	राजन्यक (राजकुमार)
२	४	४	४	४	२	राजपुत्र
३	५	५	५	५	३	राजामात्य (राजमंत्री)
...	६	६	६	६	३	सामन्त (मांडलीक राजा)
७	७	७	७	७	६	महासामन्त (सेनापति)
४	१०	१०	८	८	९	महाकर्ता कर्तृक (उच्च निरीक्षक)
५	१२	१२	९	९	११	महादंडनायक (प्रधान न्यायाधीश)
६	११	११	१०	१०	८	महाप्रतिहार (प्रधान रक्षक)
..	...	...	११	११	...	महासामन्ताधिपति
...	१३	१३	१२	...	...	महाराजा
१०	१४	१४	१३	...	...	प्रमातारा (सर्वेयर)
११	१५	१५	१४	...	...	सरभंग (तीरंदाज़)
१३	७	१७	१६	...	१३	उदाधिक् (सुपरिन्टेन्डेन्ट)
९	१६	१६	१५	...	१२	कुमारामात्य (राजकुमारों के मंत्री)
८	१८	१८	१७	...	१०	दुःसाध्य साधनिक् (कठिन कार्यों को हल करनेवाले)
१४	१९	१९	१८	..	१४	दोषापराधिक् (अपराधों की जाँच करनेवाले)
१५	२०	२०	१९	१२	१५	चौरोधरणिक् (चोरोंको पकड़नेवाले)
१८	२१	२१	२०	१३	१८	सौलकिक् (चुंगी वसूल करनेवाले)
१९	२२	२२	२१	१४	१९	गौलमिक् (सैनिक)
२४	२३	२३	२२	१५	२४	तदायुक्तक् (अवसरप्राप्त कर्मचारी)
...	२५	२५	२४	१७	...	पट्टक (पट्टुवे ?)
...	२६	२६	२५	१८	...	पट्टकोपचारिक् (राजकीय वस्त्रों के रक्षक)

१	२	३	४	५	६	७
...	२७	२७	२६	१९	...	सौधभंगादिकृत (प्रधान शिल-शास्त्री)
२६	२८	२८	२७	२०	२६	हस्त्यश्वोष्ट्रपाल (हाथी, घोड़े, ऊँटों के रक्षक)
...	२९	२९	२८	२१	...	व्यापितृक (मंत्री या राजदूत)
२८	३०	३०	२९	२२	...	दूत प्रेशनिक् (चिट्ठीरसां)
१६	३१	३१	३०	२३	१६	दंडिक (आसाबरदार)
१७	३२	३२	३१	२४	१७	दंडपासिक् (नाज़िर ?)
...	...	...	३२	२५	...	विषय-व्यापितृक (ज़िला-मंत्री)
२९	३३	३३	३३	२६	२९	गमागमी (चिट्ठी ले जाने वाले)
...	३४	३४	३४	२७	...	खाड्गिक (असिधारी)
३०	३५	३५	३५	२८	३०	अभित्वर मानिक् (शीघ्रगामी दूत)
...	३६	३६	३६	२९	...	राजस्थानीय (राजभवन के अफ़सर)
३१	३७	३७	३७	३०	३१	विषयापति (ज़िलाधीश)
...	३८	३८	३८	३१	...	भोगपति (प्रान्तीय शासक या लाट)
२३	.	...	३९	३२	२३	खंडपति (मुहल्लों के पति—म्यू० कमिश्नर)
३२	३९	३९	४०	३३	३०	तारापति (नावों के अफ़सर)
...	४०	४०	४१	३४	...	अश्वपति (रिसाले के अफ़सर)
...	४१	४१	४२	३५	...	खंडरक्ष स्थानापति (सीमापाल)
...	४२	४२	४३	३६	...	वर्त्मपालक (सड़क के रक्षक)
२२	४३	४३	४४	३७	२२	कोषपाल (खज़ांची)
...	४४	४४	४५	३८	...	घट्टपाल (घाटियों के रक्षक)
...	४५	४५	४६	३९	२०	क्षेत्रपाल
२१	४६	४६	४७	४०	२१	प्रान्तपाल
...	९	९	४९	४२	..	ठाकुर
...	४८	४८	५१	४४	...	महामनुष्य (प्रतिष्ठित पुरुष)
२७	४७	४७	५०	४३	३७	किशोर बड़वा गोमहिष्याधिकृत (शालहोतृ)
...	४८	४८	५१	४४	...	भट्ट महोत्तम (सबसे ज्यादा विद्वान् पुरुष)
...	४९	४९	५२	४५	...	अभीर (अहीर)
...	५०	५०	५३	४६	.	वणिक् (व्यापारी)
...	५१	५१	५४	४७	...	श्रेष्ठिपुरोगत (चौधरी)
...	५२	५२	५५	४८	...	अष्टादशप्रकृताधिष्ठानीय (अट्ठारह विभागों के निरीक्षक)

इतने राजकर्मचारी, बड़े-बड़े पदाधिकारी, राजा, महाराजा, सैनिक व फ़ौजी शासक राज्याभिषेक के समय कार्त्तिकेयपुर में एकत्र होते थे। इनको भूमि, पद, ताम्रपत्र, पुरस्कारादि मिलते थे। जिन राजाओं के इतने शासक हों, वे वास्तव में बड़े सम्राट् होंगे।

इन लोगों में खस, द्रविड़, कलिंग, गौड़, उद्र, आंध्र, चांडाल तथा ब्राह्मणेतर सब जातियाँ विद्यमान थीं, ऐसा शिला-लेख कहते हैं।

मुंगेर में जो शिला-लेख मिला है, कहा जाता है कि वह भी ठीक वैसा ही है, जैसे उक्त पाँच कत्यूरी-सम्राटों के ताम्रपत्र हैं। वह पालवंशीय राजा देवपालदेव का है। भागलपुर का ताम्रपत्र पालवंशीय राजा नारायणपाल का है। मुंगेर के राजा देवपाल सौगत यानी बुद्ध-धर्मी कहे गये हैं। उनके मूल-पुरुष गोपाल थे। उनके पुत्र धर्मपाल के बारे में कहा जाता है कि वह केदारनाथ गये थे। ताम्रपत्र में ऐसा भी कहा गया है कि धर्मपाल ने हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक के देश को जीता। कत्यूरी व पाल ताम्रपत्रों की लिपि भी प्रायः एक ही प्रकार की है। वह पाली की कुटिल लिपि में लिखे गये हैं। ताम्रपत्रों का ढंग एक ही क़िस्म का कहा जाता है। ८वीं से लेकर १०वीं सदी तक इनका प्रचार प्रायः सारे भारतवर्ष में था। लेखकों के नाम भी कत्यूरी व बंगाल के ताम्रपत्रों में प्रायः एक ही क़िस्म के हैं—

१. ललितसूर	के	ताम्रपत्र	में	गंगभद्र	लेखक हैं।
२. देशटदेव	,,	,,	,,	भद्र	,, ।
३. पद्मटदेव	,,	,,	,,	नंदाभद्र	,, ।
४. सुभिक्षराजदेव	,,	,,	,,	नंदाभद्र	,, ।
५. मुंगेर	,,	,,	,,	बिंदाभद्र	,, ।
६. भागलपुर	,,	,,	,,	भट्ट गौरव	,, ।

कुमाऊँ तथा भागलपुर व मुंगेर के पत्रों में एकता का होना वास्तव में आश्चर्य-जनक बात है। लेखक भी भद्र-वंश के कोई विद्वान् पुरुष हैं। प्रारंभिक प्रवचन तथा श्लोक भी प्रायः एक-से हैं। एक छोटे से पर्वतीय राज्य में ऊँट, घोड़े तथा हाथियों का होना भी संभव नहीं, जब कि राज्य का विस्तार मैदान के प्रान्तों में न हो। अतः या तो कत्यूरियों का राज्य दूर-दूर फैला था या भद्र के ख़ानदान में से किसी व्यक्ति ने आकर भारतव्यापी उस समय के दानपत्रों का प्रचार कूर्माचल में भी किया हो। तारीख़ें भी इन दानपत्रों में राजाओं के राजगद्दी पर बैठने के समय की हैं। सभी ताम्रपत्र संस्कृत में हैं। संस्कृत बड़ी क्लिष्ट है, तथा लंबे-चौड़े समासों से परिपूर्ण है।

पांडुकेश्वर-ताम्रपत्र में लिखा है कि श्रीनिम्बर्तदेव ने विदेशी शत्रु पर विजय पाई। उन्होंने शत्रुओं का नाश इस प्रकार किया, जैसे उदय होता सूर्य कोहरे को नष्ट कर देता है। उसके पुत्र इष्टाङ्गदेव ने अपनी तलवार की धार से बड़े-बड़े मस्त हाथियों को मारा। ये युद्ध सब मैदानों में हुए होंगे, क्योंकि पहाड़ों में हाथी युद्ध में नहीं आ सकते हैं, यद्यपि कत्यूर में कौसानी के पास हथछीना-नामक स्थान है, जहाँ पर कहते हैं कि कत्यूरियों के हाथी रहते थे। पाल-ताम्रपत्र में गोपाल को पृथु की तरह बताया गया है, और कत्यूरी-ताम्रपत्र में ललितसूरदेव को राजा पृथु के समान कहा गया है। ललितसूरदेव ने तमाम भारत में साम्राज्य स्थापित किया, ऐसा लिखा है। उधर देवपाल का राज्य भी महेन्द्र पर्वत से हिमालय तक होना लिखा गया है।

कुमाऊँ के देशटदेव और पद्मटदेव के ताम्रपत्र कार्त्तिकेयपुर के हैं, पर सुभिक्षराजदेव के ताम्रपत्र में सुभिक्षपुर की मुहर है। इस नगर का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। (संभव है, सुभिक्षपुर बौरारौ में हो, क्योंकि यहाँ की भूमि सदा शस्य-सम्पन्न रहती है। कहीं बौरारौ का शुभकोट ही प्राचीन सुभिक्षपुर तो नहीं था। ले०)

बागीश्वर तथा पांडुकेश्वर के दान-पत्रों में कुछ फ़र्क़ है। यद्यपि इनमें भी प्रशंसात्मक शब्द कुछ-कुछ मिलते हैं। दोनो में सलौणादित्य की प्रशंसा की गई है। और इच्छटदेव तथा उसकी माता को शिव तथा ब्रह्म का उपासक बताया है। इन दोनों को ब्राह्मण तथा ग़रीबों का विशेष सहायक बताया गया है। पद्मटदेव के बारे में कहा गया है कि वह शैव थे, तथा उन्होंने अपने भुजबल से अनेक प्रांतों को जीता था, जिनके मालिक इतने हाथी, घोड़े व रत्न-कांचन लाते थे कि इंद्र को जो सम्पत्ति मिलती थी, वह उनके आगे तुच्छ थी। उनकी तुलना दधीचि व चंद्रगुप्त से की गई है, और उनका राज्य एक सागर से दूसरे सागर तक कहा जाता है। उनके पुत्र सुभिक्षराजदेव वैष्णव थे। ब्रह्म के चरणों में लीन थे। शास्त्रों के जाननेवाले, विद्वानों का आदर करते थे। कई गुणों से सम्पन्न थे। इत्यादि बातों के अलावा इन ताम्रपत्रों से ठीक-ठीक यह ज्ञात नहीं होता कि ये राजा कब हुए, और कहाँ तक इनका राज्य था।

इन ताम्रपत्रों में जो-जो ज़मीनें प्रदान की गई हैं, उनके नामों का कुछ ज़िक्र यहाँ पर किया जाता है, यद्यपि इस समय इनका ठीक-ठीक पता चलना कठिन है, क्योंकि २-३ हज़ार वर्ष के बीच उन नामों तथा पात्रों की काया-पलट हो गई है।

---

१३. भूमिदान

ललितसूरदेव के एक ताम्रपत्र का तो विस्तृत विवरण ऊपर दिया है। दूसरे में जो ज़मीन दी गई है, वह भी कार्त्तिकेयपुर से दी गई है।

(१) इन्द्र वक के पास जो ज़मीन थपलिया सारी में है, वह भी श्रीनारायण भट्टारक को दी गई है। तपोवन में साधु-सन्तों की सेवा के लिये भूमिदान हुआ है। यह तपोवन धौली के किनारे जोशीमठ के ऊपर बताया जाता है।

(२) देशटदेव ने नारायण वर्मन् के क़ब्ज़े का ग्राम यमुना को विजयेश्वर मंदिर को चढ़ाया। ईशाल प्रान्त के शासकों को इसकी सूचना दी गई है।

(३) पद्मटदेव ने टंगनपुर के शासकों को आज्ञा दी है और सुभिक्षराजदेव ने भी टंगनपुर तथा अंतरांग प्रान्त के राजकर्मचारियों को आज्ञा दी है कि अमुक ज़मीन बदरिकाश्रम को चढ़ाई गई है।

(४) सुभिक्षराजदेव के ताम्रपत्र में अनेक नाम हैं, जिनको इस समय पहिचानना कठिन है।

(१) विधिमालका में ज़मीन जो वच्छेतक के पास है।
भेटासारी में ८ नाली।

(२) बारीयाल में ४ द्रोण भूमि।

(३) बनोलिक में ज़मीन।

(४) कंडायिक से सरना तक जो सुभट्टक की है।

(५) सटिक तोक।

(६) यच्छुसद्दा जो गोचिंटगक के क़ब्ज़े में है।

(७) तल्लासाट जो बिहान्दक के पास है।

(८) शीरा जो वेनवक के हाथ में है।

(९) गंगारक जो सोशी जीवक के पास है।

(१०) पेट्टक, कथ सिल, न्यायपट्टक, बंदीवाला जो आदित्यों के पास है।

(११) इच्छावाला, भिहलक, महराजियक, खोराखोट्टनक् जो सिलादित्य के पास है।

(१२) हर्षपुर में जो ज़मीन पर्बभानु ऊंगक के हाथ में थी, और अब दुर्गा भट्ट की रियासत में है।

(१३) भरोसिक में नई ज़मीन जो सिट्टक, उसोक, विजत, दुज्जन, अतंग, वाचतक और बराह के अधिकार में है।

(१४) जतिपातोक जो इज्जर में है।

(१५) समिजीप तथा पैरी का गोदोघ जो सत्रक के पुत्रों के पास है।

(१६) योशिक का घासमेंगक, सिदारा, बलिबर्द और सिला, इइंग, रुल्लथ, तिरिंग, कटनसिल, गन्धोघारिक, पुग, कर्कटथल, डाली-मूलक, जो घरनाग के क़ब्ज़े में हैं।

(१७) दारक जो कट्टुस्थिक के हाथ में है।

(१८) रणदावक, लोहारस जो तुंगादित्य के अधिकार में हैं।

(१६) योशिक की भूमि।

(२०) रत्नावली जो सडायिक के निकट है। जिसकी सीमा यह है—पूर्व में अंडारिगनिक, उत्तर में गंगा, पश्चिम में संकट, दक्षिण में तमेहक—और जो सेनायिक के हाथ में है। इत्यादि ज़मीनें व गाँवों का अधिकार श्रीनारायण तथा ब्रह्मेश्वर भट्टारकों को दिया गया है। ये लोग दुर्गादेवी-मंदिर के पुजारी थे। इन संस्कृत के नामों का इस समय ठीक-ठीक पता लगाना कठिन काम है।

१४. कत्यूरियों की दिग्विजय

इन राजाओं के राज्याधिकार में जिस-जिस जाति के लोग थे, उनका ब्यौरा भी ताम्रपत्रों में है। अतः इस वृत्तांत को हम यहाँ पर कोष्ठक में दे देते हैं:—

राजा का नाम	ताम्रपत्र की तिथि	किन जातियों के नाम आये हैं।
१ ललितसूरदेव	२१	खस, द्रविड़, कलिंग, गौड़, उड्र, आंध्र, चांडाल।
२ ”	२२	खस, द्रविड़, कलिंग, गौड़, उड्र, आंध्र, चांडाल, किरात, हूण, मेढ़।
३ दैशटदेव	५	खस, कलिंग, हूण, गौड़, मेढ़, आंध्र, चांडाल।
४ पद्मटदेव	२५	ठीक ऐसा ही पर इसमें आंध्र नहीं है।
५ सुभिक्षराजदेव	४	” ” ” ”
६ देवपालदेव	३३	गौड़, मालव, खस, हूण, कलिंग, कारनाटक, लासात, भोट, मेढ़, अंधारक, चांडाल।

बंगाल के छठे नंबर के लेख में उन जातियों का नाम आना ठीक है, पर कुमाऊँ के कत्यूरी-शासन में दक्षिण की जातियों की नामावली यही सूचित करती है कि या तो उन प्रान्तों के लोग यहाँ आकर बसे होंगे, या संभव है, कभी उन प्रान्तों में भी कत्यूरी-शासनाधिकार रहा हो। कत्यूरियों की दिग्विजय की सूचना ये ताम्रपत्र देते हैं।

विद्वान् लेखक तथा पुरातत्त्वान्वेषी अठकिन्सन साहब यह मत सूचित करते हैं कि कत्यूरी-शासन के शिला-लेख व ताम्रपत्रों के लेखक ने बंगाल के ताम्रपत्रों की नक़ल की है। सिर्फ़ भूमि व दानपत्रों का नाम बदलकर बाक़ी मज़मून वही रहने दिया है। वह कहते हैं कि इस बात का प्रमाण है कि बंगाल के पाल तथा सेन राजा कुमाऊँ में आये हैं। राजा गोपाल का केदार-यात्रा में जाना पहले लिखा गया है। पाल राजाओं के बाद बंगाल में मगध के सेनवंशी राजाओं का राज्योदय हुआ है। जागीश्वर के मंदिर के एक पत्थर में 'माधवसेन' नाम खुदा हुआ है। संभव है, मगध के सेन राजा माधव-सेन कुमाऊँ में आये हों। अठकिन्सन यह भी तर्क करते हैं कि संभव है, इन पाल व सेन राजाओं ने कुमाऊँ के कत्यूरियों को भी अपनी दिग्विजय में जीता हो। यही कारण आप मुंगेर, भागलपुर तथा कत्यूर के ताम्रपत्रों में सामंजस्य होने का बताते हैं। पर यह बात केवल अनुमान व अनुसंधान है, ऐतिहासिक महत्त्व की नहीं।

पहले तो पालों व सेनों के कुमाऊँ को जीतने की बात कहीं भी इतिहास में नहीं आई है। कत्यूरी राजाओं के वंशज अब तक पाल कहे जाते हैं। संभव है, इन पालों का उन पालों से संबंध हो, और ये पाल भी उसी पाल-वंश के हों, या कुमाऊँ के कत्यूरियों व पालों ने दिग्विजय कर भूमि खंड राज्यों में बाँट ली हो। या कत्यूरी राजाओं के यहाँ इन राजाओं के राजदूत रहते हों, उनसे इनको ताम्रपत्रों की नक़लें मिल गई हों या मगध राजाओं के बदरीनाथ, केदारनाथ या जागनाथ-यात्रा को जाने में कत्यूरियों ने उनसे शिला-लेखों की प्रतिलिपि प्राप्त की हो, या कत्यूरियों से सेन व पालों ने सीखी हो, क्योंकि यह बात निर्विवाद है कि कत्यूरी सम्राट् भी बड़े प्रतापी तथा अतुल बलशाली उस समय में हो गये हैं। उनका राज्य दूर-दूर था। पर यह सब अनुमान की बातें हैं, और अनुमान को जहाँ चाहो, दौड़ा लो। तब हम यह दलील कि कत्यूरियों ने सेन या पालों के शिला-लेखों की नक़ल की है, सहसा मानने को प्रस्तुत नहीं। कत्यूरी राजाओं के सब ताम्रपत्र कार्त्तिकेयपुर से जारी किये गये हैं, जोशीमठ से एक भी नहीं पाया गया है, इससे यह भी बात सहसा नहीं मानी जाती कि कत्यूरी राजा गढ़वाल से यहाँ आये।

---

१५. कत्यूरियों का अवसान

कत्यूरी राजाओं के केवल १०-१२ चक्रवर्ती सम्राटों का पता उनके ताम्रपत्रों व शिला-लेखों से चलता है। उनका कोई लिखित इतिहास नहीं, पर उनके शिला-लेखों से उनके प्रतापी शासन की बाबत जो कुछ ज्ञात हुआ है, वह यह दिखाने को कम नहीं है कि उस ज़माने में कत्यूरी-शासन बहुत विस्तृत हुआ है। मुंगेर व भागलपुर के साम्राज्यों से यह कम नहीं हुआ, बल्कि उनसे ज़्यादा राजकर्मचारी इनके थे। कत्यूरी राजा भी बड़े नामी सम्राट् थे। उनके नीचे बहुत से मांडलीक राजा थे। उनके सेनापति, अश्वपति, गजपति सब थे। राजकर्मचारियों की नामावली अन्यत्र दी गई है। वे दानी व धर्मात्मा थे। पहले बौद्ध थे फिर शैव व वैष्णव हो गये। उन्होंने बहुत-सी ज़मीन पढ़े-लिखे ब्राह्मणों, विद्वानों, शूर-वीरों, योग्य कर्मचारियों को दी। उनके राज्याभिषेकों में बहुत से लोग एकत्र होते थे और वे बड़े राजसी समारोह से होते थे। उन्होंने जलाशय, नगर, सड़कें, मंदिर, धर्मशालाएँ आदि अपने विस्तृत साम्राज्य में बनवाईं। एक विशाल विद्यापीठ भी उनके समय में था, जहाँ विद्वान् लोग छात्रों को विद्या पढ़ाते थे। उन्होंने मंदिर व नौले तो बहुत बनवाये। कुमाऊँ में दैत्य-दानव तथा कौरवों-पांडवों के बाद उन्हीं का शासन प्रतापशाली था। उनका अवसान कब से हुआ, कहा नहीं जाता। संभव है, नवीं या दशवीं शताब्दी से उनका विस्तृत साम्राज्य छोटे-छोटे मांडलीक राजाओं में विभक्त हो गया हो।

नृसिंह देवता का शाप कहिए या कत्यूरियों के पीछे के वंशजों का अन्याय कहिए, यह कहा जाता है कि राजा धामदेव व वीरदेव से इस प्रतापी वंश का अवसान होना आरंभ हुआ।

कहते हैं कि जब ये अन्तिम कत्यूरी राजा अपने भांडार से गेहूँ पीसने को देते थे, तो उल्टी "नाली" (२ सेर की नाप) में जितना गेहूँ आस के, उतना देते थे, और जब लोग पीसकर लाये, तो आटे को एक ऊँचे पत्थर पर चढ़कर सात बाँस की चटाइयों (मोस्टों) में डालते थे। सातवीं चटाई में जो आटा छनकर आया, उसको सीधी (सुल्टी) नाली से भरकर लेते थे। हर गाँव को बारी-बारी से यह बेगार देनी पड़ती थी। इस आटे को उड़ाने का पत्थर अभी तक कत्यूर के तैलीहाट ग्राम में विद्यमान है। अपने लायक आटा निकाल लेते थे, बाक़ी लौटा देते थे। मालगुज़ारी धन के रूप में नहीं, बल्कि सम्पत्ति के रूप में ली जाती थी। कर का कोई नियम नहीं था, जैसा मन में आया, नियम बना लिया। जो चाहा, प्रजा के घर से ले लिया। प्रजा

में जो सुन्दर लड़के व लड़कियाँ होती थीं, उनको दास व दासियाँ बनाने को ज़बरदस्ती घरों से मँगा लेते थे। राजमहल से क़रीब ६ मील की दूरी पर हथछीना (कौसानी) का मीठा व स्वास्थ्यवर्द्धक पानी राजाओं के पीने के वास्ते नित्य आता था। अब तक उस नौले का नाम धामदेव ब्रह्मदेव का नौला है। उनके लिये दोनों ओर से बर्तन लाने ले जाने के लिये रात-दिन दासों की क़तार खड़ी रहती थी, जो हाथोंहाथ पानी महल को पहुँचाते थे। इसी से आख़ीर के कत्यूरी राजाओं के विषय में यह किंवदन्ती तमाम में प्रचलित है:—

"बाँजा घट की भाग उघौनी।
बाझी गैको दूध छीनी॥
उल्टी नाली भर दीनी।
कणक बतै लीनी॥"

राजा वीरदेव ने तो यहाँ तक अत्याचार कर प्रजा को चिढ़ाया कि अपनी मामी से ज़बरदस्ती विवाह कर लिया। कहते हैं कि "मामी तिले धारो बोला" वाला कुमय्याँ ग्रामीण राग उसी दिन से चल पड़ा। मामी का नाम तिला उर्फ़ तिलोत्तमादेवी था। राजा वीरदेव ने मामी से व्यभिचार कर अपने पाप के घड़े को भरा। यह राजा गाँव में डांडी में जाते थे। डांडीवालों के कंधों को छेदकर लोहे का कड़ा डालकर उसमें डांडी के डंडों (साँगों) को बाँध देते थे, ताकि डांडीवाले राजा को अत्याचारी समझकर कहीं खड (भ्योल) में न गिरा दें। अन्त में दो बहादुर आदमी मिल ही गये। उन्होंने सोचा कि वे तो बरबाद हो गये हैं, अब इस अन्यायी राजा को क्यों छोड़ा जाय। अतः एक दिन लोगों ने गुप्त मंत्रणा कर राजा को खड (भ्योल) में डालने की ठहराई। वे दो आदमी जिनके कंधों में डंडे बँधे थे, मय राजा की डांडी के एक ऊँचे पहाड़ से नीचे कूद गये, और मय राजा के चकनाचूर हो गये।

इस ज़ालिम राजा की मृत्यु के बाद उसकी संतान में भारी युद्ध ठन गया। भाई-भाई में भारी लड़ाई हो गई। सारा राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इसी ख़ानदान के लोगों ने सारा राज्य आपस में बाँट लिया। जहाँ के वे पहले प्रान्तीय शासक या फ़ौजदार होगें, वहाँ उन्होंने अपने को स्वतंत्र नृपति बना लिया। ठीक उसी प्रकार, जैसे विस्तृत मुग़ल साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर प्रान्तों के सूबेदार, निज़ाम व नवाब वज़ीरों ने राज्य आपस में बाँट लिया और स्वतंत्र नरेश बन गये। कुमाऊँ के बाहर गढ़वाल के मांडलीक नरेशों ने भी, जो अब तक कार्त्तिकेयपुर के शासन के अधीन थे, राज-कर देना छोड़

दिया और वे भी स्वतंत्र नृपति हो गये। चंदों के आने पर यही हालत कुमाऊँ की थी। छोटे-छोटे मांडलीक राजा यत्र-तत्र राज्य करते थे, और एक दूसरे पर चढ़ाई कर अपनी-अपनी प्रभुता ज़ाहिर करते थे। इसी ख़ानदान के राजा ब्रह्मदेव ने (जिनके नाम से ब्रह्मदेव की मंडी बसी) काली कुमाऊँ में अपना राज्य स्थापित कर लिया। इनका क़िला सुई में था, और डुमकोट का रावत राजा इनके अधीन था। दूसरी शाखा डोटी में राज्य करने लगी। तीसरी अस्कोट में स्थापित हो गई। चौथी बारामंडल में आ बसी। पाँचवीं कत्यूर व दानपुर के ऊपर आधिपत्य जमाये रही। छठी शाखा पाली में यत्र-तत्र राज्य करती थी, जिनके मुख्य स्थान उस समय द्वाराहाट तथा लखनपुर में थे।

इस तरह यह विस्तृत साम्राज्य छोटे-छोटे खंडों में विभाजित हो गया। कुमाऊँ राज्य-भर में तथा तराई-भावर में भी कत्यूरियों के स्मारक हैं। यहाँ के भूतपूर्व कमिश्नर बेटन साहब लिखते हैं—"इनमें से बहुत से चबूतरे तथा 'नौले' (बावरियाँ) बड़ी सुंदर बनावट के हैं। इनके मंदिरों व इनके समय की मूर्तियों से ज्ञात होता है कि ये हिंदू-देवी-देवताओं के कट्टर उपासक थे। इनकी बनावट तथा लंबाई-चौड़ाई ठीक ऐसी है, जैसे दक्षिण में पाये गये बृहत्स्तम्भ, भवन व पनघटों की। ये अक्सर बुंदेलखंड में नर्मदा के निकट पाये गये हैं। इन बातों से साफ़ ज़ाहिर है कि कत्यूरी राजा बाहर से आये थे। वे यहीं के पुराने निवासी न थे। हिमालय ऐसे पवित्र देश के शासक होने से ये राजा कठेड़ (रोहिलखंड) के राजाओं से उच्च गिने जाते थे। मुसलमानी राज्य स्थापित होने के बाद भी कुमाऊँ के राजा तराई में क़ाबिज़ थे। वे किसी के मातहत न थे। इसमें संदेह नहीं कि तराई में भी कत्यूरियों का राज्य था। मुद्दत से पहाड़ के लोग अपने बाल-बच्चे तथा डंगरों को लेकर तराई-भावर में जाड़ों में रहते आये हैं। नैपालवालों ने तराई-भावर को अपने अधिकार से बाहर न जाने की बाबत कितना आन्दोलन मचाया था।" नैपाल ही नहीं, कुमाऊँवालों ने भी इस तराई के लिये तुमुल संग्राम किया है, जिसका वृत्तान्त तराई-भावर के प्रकरण में आवेगा।

कत्यूरी राजाओं के समय में कितनी आबादी तराई-भावर तथा कूर्माचल में थी, कहा नहीं जाता। आने-जाने की सुगमता किस प्रकार की थी, सड़कें कैसी थीं, राज्य-शासन कैसे होता था, ये बातें ज्ञात नहीं हैं। पर काली कुमाऊँ के लोगों का कहना है कि ज़िला बिजनौर का धामपुर नगर उस कत्यूरी राजा धामदेव ने बसाया, जिसने अपनी लड़की राजा सोमचंद को

ब्याही थी। इनका राज्य घटते-घटते राजा रुद्रचंद के समय में केवल तल्ला व मल्ला कत्यूर में बाक़ी रह गया था। बाद को इसी राजा रुद्रचंद ने कत्यूर भी छीन लिया था।

---

१६. कत्यूरियों की वंशावली

इन कत्यूरी राजाओं के पुश्तनामे संवत्वार ठीक-ठीक नहीं मिलते। जहाँ-जहाँ इनकी संतानें अब भी विद्यमान हैं, वहाँ से मँगाने से सिर्फ़ उनके ख़ानदान की वंशावली का कुछ-कुछ बोध होता है और ज़्यादा बातें ज्ञात नहीं होतीं। कत्यूरियों की संतानें अस्कोट, डोटी, पालीपछाऊँ में अब भी विद्यमान हैं, अतः वहाँ की वंशावलियों का विवरण यहाँ पर दिया जाता है--

(अ) रजबार अस्कोट की वंशावली

१. शालिबाहन देव
२. संजयदेव
३. कुमारदेव
४. हरित्रयदेव
५. ब्रह्मदेव
६. शंखदेव
७. बज्रदेव
८. वृणञ्जयदेव
९. विक्रमजीतदेव
१०. धर्मपालदेव
११. सारंगधरदेव
१२. नीलपालदेव
१३. भोजराज देव
१४. विनयपालदेव
१५. भूजेन्द्र या भुजनरादेव
१६. समर्सीदेव
१७. अशालदेव
१८. अशोकदेव
१९. सारंगदेव
२०. नगजावसिदेव
२१. कामजयदेव
२२. शालिनकुलदेव
२३. गणपति पृथ्वीधरदेव
२४. जयसिंहदेव
२५. शंखाचर या शंखेश्वरदेव
२६. सोमेश्वर या शनेश्वरदेव
२७. प्रसिद्ध देव (क्राशिद्धियपदेव)
२८. विद्धिराजदेव
२९. पृथ्वीश्वरदेव
३०. बालक या बलकदेव
३१. आसन्तिदेव
३२. बासन्तिदेव
३३. कटारमल्लदेव
३४. सत्यदेव या सोनदेव
३५. सिंधुदेव
३६. कीनदेव या किनादेव
३७. रणकीनदेव या रणकिनादेव
३८. नीलरायदेव

३६. वज्रबाहुदेव
४०. कार्यसिद्धिदेव
४१. गौरांगदेव
४२. सांडिल्यदेव
४३. हतिनराजदेव
४४. तिलंगराजदेव
४५. उदकसीलादेव
४६. प्रीतमदेव
४७. धामदेव
४८. ब्रह्म देव या ब्रिरदेव (कत्यूरी आखिरी महाराजा)
४६. त्रिलोकपाल
५०. अभयपाल (सन् १२७६ में अस्कोट आये)

त्रिलोकपाल दूसरे पुत्र निरंजनमल्लदेव के वंशज मल्ल कहाए उन्हींके वंशजों में से नागमल के दो पुत्रों में से बड़े पुत्र शमशेरमल्ल के वंशज मल्ल, छोटे पुत्र अर्जुनसाही के वंशज साही कहलाये।

५१. निर्भयपाल
५२. भारतीपाल
५३. भैरवपाल
५४. भूपाल
५५. से ८० तक ज्ञात नहीं।
८१. रत्नपाल
८२. शंखपाल
८३. श्यामपाल
८४. शाहपाल या साईंपाल
८५. सुर्जनपाल
८६. भोजपाल
८७. भरतपाल
८८. सुर्तानपाल
८६. अच्छपाल
६०. त्रिलोकपाल (२)
६१. सूरपाल
६२. जगतपाल
६३. प्रजापाल
६४. रायपाल (सन् १५८८ में गोपी ओझा द्वारा मारे गये।)
६५. महेन्द्रपाल
६६. जयंतपाल
६७. वीरबलपाल
६८. अमरसिंहपाल
६६. अभयपाल (२) (अठकिन्सन ने ब्रह्मपाल लिखा है।)
१००. उच्चहरपाल या उच्छवपाल
१०१. विजयपाल (भाई रुद्रपाल के वंशज रौलखेत में हैं)
१०२. महेन्द्रपाल
१०३. बहादुरपाल (भाई तेजसिंह प्रभृति)
१०४. पुष्करपाल (भाई० कु० गोविन्दसिंह)
१०५. गजेन्द्रपाल
१०६. भूपेन्द्रपाल
१०७. विक्रमबहादुरपाल (वर्तमान)

(ब) पं० रुद्रदत्त पंतजी की हस्तलिखित पुस्तक में ये नाम और हैं:—

१. धामदेव
२. ब्रह्मदेव
३. आसनदेव
४. अभयदेव
५. निर्भयपाल
६. भर्तिपाल
७. भैरवपाल
८. राजपाल
९. श्यामपाल
१०. साईंपाल
११. सूर्यपाल
१२. भोजपाल
१३. भद्रपाल
१४. शिवरतनपाल (या सुरतानपाल)
१५. अच्छपाल
१६. त्रिलोक्यपाल
१७. सुंदरपाल
१८. जगतीपाल
१९. पीरोजपाल
२०. राईपाल
२१. महेन्द्रपाल
२२. जयंतपाल
२३. बीरबलपाल
२४. अमरसिंहपाल
२५. अभयपाल
२६. उच्छवपाल
२७. विजयपाल
२८. महेन्द्रपाल
२९. हिम्मतपाल
३०. दलजीतपाल
३१. बहादुरपाल

संभव है कि इन नामों में से कोई उन राजवारों के हों, जिनके नाम छूट गये हैं।

जब से देव के बदले पाल शब्द आखिर में जोड़ा गया तब से रजवार गिने गये, याने बतौर मांडलीक राजा के, जो बड़े राजा की मातहती में हो। राजबार का पद भी कत्यूरी साम्राज्य के समय राजवंश के छोटे कुटुम्बों का था। सन् १२०२ का एक दानपत्र इन्द्रदेव रजबार का कत्यूर-पट्टी में अब तक है। सन् १२७९ में अभयपालदेव कत्यूर छोड़कर अस्कोट को गये। संभव है कि इसी सन् में कत्यूर में राष्ट्र-विप्लव हुआ हो। उन्होंने अपनी पदवी 'देव' से 'पाल' में बदली, क्योंकि 'देव' की पदवी छत्रधारी कत्यूरी सम्राट् की थी। राजबार की पदवी इस समय केवल अस्कोट के खानदान के लोगों के लिये काम में आती है, यद्यपि कहीं-कहीं मान-प्रतिष्ठा को पाली पछाऊँ में भी कुछ घर राजबार कहे जाते हैं, पर अँगरेज़ों ने अस्कोट के राजबार को ही मान्य समझा है। अस्कोट में बड़े लड़के को लाला अन्य को गुसाईं कहते हैं।

अस्कोटवाले अपने को उत्तानपाद की संतान में कहते हैं। इनको हुए २२१ पुश्तें हुईं। यह सूर्यकुल के मूल-पुरुष थे। इसी वंश में ब्रह्म, मरीचि, कश्यप, हरिश्चन्द्र, अज, दिलीप, रघु, दशरथ व रामचन्द्र हुए हैं। शालिवाहन के आगे कहते हैं, वंशावली में लिखा है कि वे अयोध्या से आकर कत्यूर में सम्राट् हुए। अतः अँगरेज़ी विद्वान् लेखक अठकिन्सन का यह सिद्धान्त कि कत्यूर जोशीमठ से कत्यूर में आये, अस्कोट के राजवंश के कथनानुसार ठीक नहीं जँचता। हम यह लिख चुके हैं कि गढ़वाल का राज्य-प्रबंध कार्त्तिकेयपुर उर्फ़ कत्यूर से होता था। गढ़वाल के सब शिला-लेख व ताम्रपत्रों में कत्यूर की छाप है। अतः अस्कोट का लेख ही ज़्यादा न्यायसंगत प्रतीत होता है। कत्यूरी राजा कटौर-वंशी नहीं, बल्कि सूर्यवंशी थे। वे अयोध्या से आकर कत्यूर में बसे। ललितसूरदेव के ताम्रपत्र में एक स्थल में कुशली शब्द आया है। उसके मानी अनूपशहर के विद्वान् व संस्कृत के आचार्य्य कविरत्न पं० अखिलानंदजी ने हमको "कुश के वंशवाला" होना भी बताया है। कुश रामचन्द्र के पुत्र थे और सूर्यवंशी थे।

ऊपर के लेखों से यह बात सिद्ध है कि कुमाऊँ किसी समय सूर्यवंशी राजाओं के राज्य का एक अंग था। बाद को शायद यह राज्य शालिवाहन देव के समय से अयोध्या से अलग हो गया। नैपाल से क़ाबुल तक का प्रान्त उनके आधीन था। धामदेव के समय तक धामपुर व बिजनौर सब इसी राज्य में थे। उनके बाद ये राजा चक्रवर्ती सम्राट् हुए हैं:—

१. सम्राट्—वासुदेव
२. ,, कनकदेव (क़ाबुल में मारे गये ?)
३. ,, वसन्तनदेव
४. ,, खरपरदेव
५. ,, कल्याणराजदेव
६. ,, त्रिभुवनराजदेव
७. ,, निर्मतदेव या नूनवराटदेव
८. ,, ईशतारणदेव या इष्टोभनदेव
९. ,, ललितसूरदेव
१०. ,, भूदेवदेव
११. ,, सलौनादित्यदेव
१२. ,, इच्छटदेव
१३. ,, दैसटदेव

१४. समाट् पद्मटदेव
१५. ,, सुभिक्षराजदेव
१६. ,, देवपालदेव

ये सब "गिरिराज चक्र चूड़ामणि" की उपाधि से अलंकृत थे।

इनके पश्चात् विराट् कत्यूरी-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। कम-से-कम उसकी सीमा कुमाऊँ-राज्य के अंदर ही रही। बाद को वह परगना व पट्टी के राजों में विभाजित हो गया। जो ख़ानदान जहाँ को गया, उसने अपने पुश्तनामे में जहाँ से उनको ज्ञात था, वहाँ से नाम भर लिए। इसी कारण पश्तनामों में एकता नहीं, न बहुत से नाम ही मिलते हैं।

(स) डोटी की वंशावली

डोटी में कत्यूरी खानदान की जो शाख गई, उसकी वंशावली इस प्रकार है—

१. शालिवाहनदेव
२. शक्तिवाहनदेव
३. हरिवर्मादेव
४. श्रीब्रह्मदेव
५. श्रीवज्रदेव
६. विक्रमादित्यदेव
७. धर्मपालदेव
८. नीलपालदेव
९. युंजराजदेव
१०. भोजदेव
११. समरसिंहदेव
१२. अशालदेव
१३. सारंगदेव
१४. नकुलदेव
१५. जयसिंहदेव
१६. अनिजालदेव
१७. विग्रराजदेव
१८. पृथ्वीश्वरदेव
१९. चूनपालदेव
२०. आसन्तिदेव
२१. बासन्तिदेव
२२. कटारमल्लदेव
२३. सिंहमल्लदेव
२४. फणिमल्लदेव
२५. निफिमल्लदेव
२६. निलयरायदेव
२७. व्रजबाहुदेव
२८. गौरांगदेव
२९. सीयामल्लदेव
३०. इलराजदेव
३१. निलराजदेव
३२. फाटकशिलराजदेव
३३. पृथ्वीराजदेव
३४. धामदेव
३५. ब्रह्मदेव
३६. त्रिलोकपालदेव
३७. निरंजनदेव
३८. नागमल्लदेव

३६. अर्जुन साही
४०. भूपतिसाही
४१. हरि साही
४२. रामसाही
४३. प्रवरसाही
४४. रुद्र साही
४५. विक्रम साही
४६. मानधाता साही
४७. रघुनाथ साही
४८. हरि साही
४६. कृष्ण साही
५०. दीप साही
५१. विष्णु साही
५२. प्रदीप साही
५३. हंसध्वज साही

साही खानदान राजा अर्जुनसाही से चला, जो राजा रतनचंद का समकालीन था।

(द) पाली-पछाऊँ के कत्यूरियों की वंशावली

कत्यूरी वंश की एक शाख हम ऊपर लिख चुके हैं कि पाली-पछाऊँ को गई थी। उनका पुश्तनामा हम यहाँ पर देते हैं—

१. आसन्तिदेव
२. बासन्तिदेव
३. गौरांगदेव
४. श्यामलदेव
५. फेणवराई
६. केशबराई
७. अजबराई
८. गजबराई
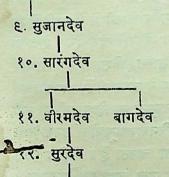
९. पीतमदेव

१०. धामदेव

इसने दक्षिणी गढ़वाल में राज किया। अक्सर पातलीदून की तरफ़ क़िला बनाकर रहा था। इनकी संतान कुमाऊँ में चंद राजाओं के समय आई।
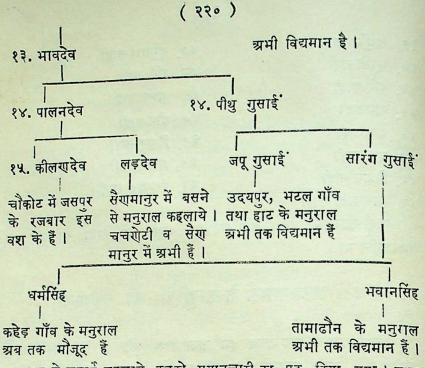
जब से गुसाईं कहलाये, इनको सयानचारी का पद दिया गया। उधर अस्कोट के रजवार देव से पाल हो गये और इधर ये देव से गुसाईं बने। चौकोट परगने के तामाढौन स्थान में कुलदेवी (इन राजाओं की इष्टदेवी) के मंदिर में सारंगदेव का नाम खुदा है, उसमें संवत् १३४२ लिखा है। यह सारंगदेव पुराने कत्यूरी राजा थे या कुँ० धर्मसिंह व भवानसिंहजी के पिता, कह नहीं सकते।

यदि कत्यूरी-वंश का राज्य बराबर चलता रहता, तो उसके वंशज राजाओं का पूरा-पूरा पता चल जाता, किन्तु उनका साम्राज्य खंड राज्यों में विभाजित हो गया, अतः प्रत्येक खानदान ने अपने कुटुम्ब के मूल-पुरुष से पुश्तनामा बना लिया। इसी कारण नामों का सिलसिला ठीक नहीं मिलता। खास कत्यूरी सम्राटों की मूल शाखा में से इस समय कोई नहीं। उन राजाओं में से कहते हैं कि एक ने कहा था कि वह अपनी संतान को कलियुग में नहीं रहने देंगे। ऐसा ही हुआ। मूल शाखा छिन्न-भिन्न हो गई, यद्यपि शाखा, विशाखा व प्रशाखाएँ विद्यमान हैं। कत्यूरियों की ४ वंशावलियों में जो हमने ऊपर दी हैं, यह आश्चर्य की बात है कि उन आठ प्रतापी तथा चक्रवर्ती सम्राटों का ज़िक्र कहीं भी नहीं आया, जिनके राज्य का विस्तार दूर-दूर था, और जिनके ताम्रपत्रों से उनके तेज, राजलक्ष्मी, विद्वत्ता तथा धर्मपरायणता का पता चलता है। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि अस्कोट, डोटी तथा पाली-पछाऊँ के पाल, साही तथा मनुराल व

रजबार सब कत्यूरी खानदान के हैं। २०० वर्ष से ज्यादा हुए कि चंद राजाओं ने इनको पुराने कत्यूरी खानदान का माना। ऐसा कहा जाता है कि चंदों ने न तो इनको निकाला, न इनका विनाश किया। इसका कारण यह बताया जाता है कि उनका अभिप्राय यह था कि इन खानदानों की कन्याओं से पाणिग्रहण करें। चंदों ने इन सबकी लड़कियाँ ब्याहीं, पर अपनी लड़कियाँ इनको न दीं। चंद लोग अपनी लड़कियों की शादियाँ अलीगढ़, नैपाल, अनूपशहर, बरेली, कठेरा, अवध आदि स्थानों में करते थे। कत्यूरी राजाओं के वंशज डोटी, जुमला आदि स्थानों के वैश्य ठाकुर राजाओं की कन्याओं को ब्याहते थे। अस्कोट के रजवार भी नैपालियों के साथ भी विवाह करते हैं, किन्तु अठकिन्सन साहब कहते हैं—"पाली के मनुराल धनी खस राजपूतों के साथ भी संबंध करने लगे हैं।" पाली के मनुरालों के अलावा दुग के काला-कोटी वर्ग के राजपूत भी अपने को कत्यूरी खानदान का बताते हैं।

कत्यूरी खानदान के इन छोटे-छोटे राजाओं के अतिरिक्त कत्यूरियों के अवसान तथा चंदों के आगमन के समय कुमाऊँ-राज्य छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। फल्दाकोट तथा धनियाँकोट एक खाती राजपूत के अधिकार में थे, जो अपने को सूर्यवंशी कहते थे। चौगर्खा पड्यार राजा के अधिकार में था, जिसकी राजधानी पड्यारकोट में थी। गंगोली परगने में मणकोटी राजा थे। यह नैपाल में पिउठाण से आये थे और अपने को चंद्रवंशी राजपूत कहते थे। फिर चंदों से हारकर ७-८ पुश्त राज्य कर वहीं को चले गये, जहाँ उनके वंशज अब तक विद्यमान हैं। कोटा, छखाता व कुटौली खस राजाओं के अधिकार में आ गये। सोर, सीरा, दारमा, अस्कोट, जोहार, सब डोटी-साम्राज्य में शामिल किये गये।

जब कुमाऊँ से सूर्यवंशी सम्राटों का भाग्य-सूर्य छिप गया, और ठौर-ठौर में छोटे-छोटे मांडलिक राजा हो गये, तो लोगों ने कहा कि कुमाऊँ का सूर्य छिप गया है। सारे कुमाऊँ में रात्रि हो गई है। पर चंदों के आने पर लोग कहने लगे कि कुमाऊँ में रात्रि हो गई थी, क्योंकि सूर्य छिप गया था, पर इतना अच्छा हुआ कि अब चाँदनी हो गई यानी चंद्रवंशी राजा आ गये। अंधकारमय धरती में फिर से उजियाला हो गया!

---

१७. पं० रामदत्त त्रिपाठीजी का वर्णन

उपर्युक्त वर्णन लिखने के बाद हमको पं० रामदत्त त्रिपाठी द्वाराहाट की बनाई एक छोटी पुस्तिका मिली। उसकी बातें सूक्ष्म में यहाँ पर हम अपनी भाषा में उद्धृत करते हैं—

१. विक्रम संवत् से १३० वर्ष पूर्व यहाँ पर धर्मराज युधिष्ठिर के संवत् २६१४ के लगभग (विक्रम संवत् से पूर्व ३०४४ वर्ष तक धर्मराज का संवत् भारत में प्रचलित था) कूर्माचल में जट्ठ व जाट जाति के लोग राज्य करते थे। इनकी सन्तान अब बोहरा या बोरा कोई-कोई विष्ट भी कहे जाते हैं।

२. पुराकालीन संवत् २६१४-२६५० के बीच यहाँ पर भारद्वाज गोत्रीय क्षत्रिय दाणू कुमेरसेन का राज्य था। इनकी राजधानी कोटलगढ़ और टंकणापुर में थी। अन्यत्र खैरागढ़, पिठौरागढ़, नानकमता आदि स्थानों में भी छावनी, कोतवाली, तहसील आदि थीं।

३. परगना दानपुर में इसी कुमेरसेन को दाणू देवता के रूप में पूजते हैं। उसमें नवान्न व नई ब्याई हुई गौ महिषी का दूध चढ़ाकर तब आप काम में लाते हैं।

४. इस राजा की आमदनी एक लाख रुपये की थी। अन्न का भाव रुपये का ढाई मन था।

५. राजा ने अपना महल गोमती के किनारे वहाँ पर बनवाया, जहाँ आज कल सरकारी अस्पताल है। इनको शिकार का शौक़ था। इसीसे ८१ वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु २६५० संवत् (धर्मराज) में दानपुर में हुई।

६. उनके उत्तराधिकारी रणजीतसिंह उर्फ़ रणधीरसिंह हुए। उन्होंने बैद्यनाथ के ऊपर रणचूलाकोट में नगर व महल बनवाया।

७. संवत् ३००० वर्ष पूर्व सूर्यवंशीय क्षत्रिय सम्राट् वासुदेव की संतान राजा आसन्तिदेव ने ५०० पदाति तथा १० अश्वारोही सेना लेकर रणचूला-कोट पर चढ़ाई की। नरसिंह देवता के शाप के अनुसार वह जोशीमठ से कत्यूर को आये।

८. इधर राजा रणधीरसिंह को स्वप्न हुआ कि उनका बैरी पश्चिम से आ रहा है। उसके आँने पर राजा रणधीरसिंह ने कहा कि वह राक्षसयुद्ध, कुक्कुरयुद्ध अथवा कपटयुद्ध नहीं करना चाहते। वह मल्लयुद्ध-नामक धर्मयुद्ध करेंगे, ताकि रिआया को दुःख न हो, और दोनों की हार-जीत पर राज्य का फ़ैसला हो।

९. रणचूलाकोट या गढ़ की भूमि में रीठे बिछाये गये। दोनो राजाओं

में द्वन्द्व युद्ध हुआ। राजा रणधीरसिंह हार गये। राजा आसन्तिदेव जीते। राजा रणधीर को उन्होंने सम्मानपूर्वक आमरण पर्यन्त पेंशन दे दी। ५७ वर्ष की अवस्था में वह मर गये।

१०. राजा आसन्तिदेव राजगद्दी पर बैठे, उनको बीस लाख रुपए खज़ाने में मिले। उन्होंने ७५ वर्ष धर्म राज्य कर सुख मृत्यु से देह त्याग किया।

गंगोलीहाट के निकट जो वृद्ध भुवनेश्वर का मंदिर है, उसको कहा जाता है कि आसन्तिदेव की रानी सुभद्रादेवी ने बनवाया था।

११. राजा आसन्तिदेव के पुत्र बासन्तिदेव गद्दी पर बैठे। इनके राज्य-काल में बालक की अवस्था २० वर्ष की होने तक विधवा माता से भूमि-कर नहीं लिया जाता था। इस राजा का नाम सुखवन्त भी था। यह वही सुखवन्त हैं, जिन्होंने इन्द्रप्रस्थ दिल्ली पर चढ़ाई करके राजा राजपाल को हराया (इसका हाल इतिहास तिमिरनाशक तथा कनिंघम साहब के इतिहास में भी लिखा है।)।

१२. इनके बाद ३०५ वर्ष के बीच चार राजा (१) शंकरसेन, (२) कपूर्रांग, (३) श्यामकृष्णदेव तथा (४) महानंददेव हुए। ये साधारण नृपति थे। इनके बाद राजा पृथ्वीपालदेव प्रतापी राजा हुए।

१३. पृथ्वीपाल के बाद उनके पुत्र राजा कार्त्तिकेय उर्फ़ कीर्तिवर्मदेव और भी तेजस्वी हुए। उनके राज्य में न लड़ाई हुई, न कोई जेल में भेजा गया। इससे कहा जाता है कि जेल-दारोग़ा व सेनापति ने इस्तीफ़े दे दिये थे कि उनका जब कोई काम नहीं, तो वे क्यों खाली बैठे वेतन लें। राजमार्ग अच्छे थे, पुल यत्र-तत्र बने थे। ५० राजकीय पाठशालाएँ थीं।

१४. इस सम्राट् के ये राजा, करद याने मांडलीक थे:—(१) सोर में बम राजा, (२) गंगोली में मणकोटी राजा, (३) सीरा में रैका राजा, (४) जोहार में लुवाल जाति का ठाकुर, (५) पाली में विराट कुल का राजा, जिसकी राजधानी पट्टी गिवांड़ में श्रीनाथेश्वर के सामने पूर्वदिशा रामगंगा के बायें किनारे विराटपुरी में थी।

१५. इस राजा की रानी का नाम नंदादेवी था। वह सीता, सावित्री के समान सती थी। नंदाकोट व नंदादेवी पर्वत इन्हीं के विहार-स्थान बताए जाते हैं।

१६. इस राजा ने विक्रम संवत् २६५से ३६० तक ६५ वर्ष राज्य किया। इस राजा के समय गरुड़ गंगा व गोमती के संगम से लेकर बागीश्वर तक ६ कोस का लंबा नगर था, जिसका नाम कार्तिकेयपुर व कीर्तिपुर था। इसका पुराना नाम करबीरपुर भी कहा जाता है।

१७. राजा कार्त्तिकेय के पश्चात् १६० वर्ष के अन्तर में क्रमशः भयङ्कर-देव, चवर्य्यदेव, कल्पाल्पजदेव, पुरालदेव, ललितशूरदेव नाम के राजा हुए। जिनके नाम बागीश्वर के मंदिर में खुदे हैं। बागीश्वर की स्थापना इन्हीं के समय में हुई। संवत् ३७६ में विभांडेश्वर तथा यागीश्वर महादेव के मंदिर बने।

१८. राजा ललितशूरदेव के पुत्र राजा सुजानदेव ने विक्रमीय संवत् ४०० के अनुमान गंगोली हाट-नामक नगर बसाया।

१६. पूर्वोक्त कार्त्तिकेय राजा के वंश में ही दिच्छट देव के पौत्र देसटदेव के पुत्र पद्मटदेव, निम्बरदेव, इष्टगणदेव ने गद्दी के संवत् ४। ११। १५ में बदरीनाथ के नाम भूमि अर्पण की। इनके नाम पांडुकेश्वर ताम्रपत्र में खुदे हैं।

२०—इन्हीं के वंश में त्रिभुवनराजदेव ने बागीश्वर के नाम दो ग्राम अर्पण किये, फिर पूर्वोक्त सुजानदेव से लेकर ३०० वर्ष की अवधि में सुदर्शन-देव आदि कई साधारण नृपति हुए।

२१—राजा त्रिभुवनदेव की छठी पीढ़ी में इन्द्रपालदेव राजा हुए। इनकी रानी दमयन्ती ने चौघाणपाटा में उद्यान लगाया, जो अब रानीबाग़ कहा जाता है। इसी के निकट दमयन्ती ताल भी है।

२२—राजा इन्दुपालदेव के पुत्र राजा लक्ष्मणपालदेव ने संवत् १०५६ में काले पत्थर में लक्ष्मीनारायण की मूर्ति बनवाकर वैद्यनाथ में रक्खी। अब यह गणानाथ के मंदिर में है।

२३—पश्चात् राजा लक्ष्मणपाल के राजा उदयपाल, बसन्तपाल, बलीनि-कुलपाल, विजयपाल ने अपने-अपने नाम से संवत् १०८०-११३६ के लगभग वैद्यनाथ में मंदिर बनवाये।

२४—कत्यूरी राजाओं ने द्वाराहाट में द्वारिका भी बनवानी चाही और राजा-गुर्ज्जरदेव के समय संवत् ११७६ में कालिकादेवी की मूर्ति अब तक टूटी-फूटी द्वाराहाट में विद्यमान है। इसी बीच में वहाँ पर शीतलादेवी की भी स्थापना हुई।

२५—संवत् १२३८ में राजा सुधारदेव ने दुनागिरि पर्वत में देवी की मूर्ति स्थापित की। संवत् १२४० में द्वाराहाट में भी श्रीबदरीनाथ का मंदिर बन-वाया। और राणीक्षेत्र (वर्तमान रानीखेत)-नामक पर्वत इसी राजा की रानी पद्मिनी का विलास-क्षेत्र था।

२६—राजा मानदेव ने संवत् १२५६ में वासुदेव (बसी) त्रिपाठी को

पट्टी कत्यूर में ग्राम दाड़िम ठौक को जागीर में दिया। राजा सोमदेव ने संवत १२७१ में एक रमणीय नौला द्वाराहाट में बनवाया, और संवत् १२७६ में गणेश की मूर्ति गणाई-चौखुटिया में स्थापित कराई।

... ...

पं० रामदत्त त्रिपाठीजी ने जो इतिहास लिखा है, उसका प्रमाण जो कुछ हो, उन्हीं को ज्ञात होगा। पर उन्होंने कत्यरियों की बड़ी व छोटी दोनों शाखाओं को एक ही में मिला दिया है। जो कुछ बातें उसमें जानने योग्य थीं, वे यहाँ पर उद्धृत की गई हैं।

× × ×

उपसंहार

ऊपर की सब बातों से हम तो इस नतीजे पर पहुँचे हैं—

(१) कत्यूरी राजा सूर्यवंशी थे।

(२) वे चक्रवर्ती सम्राट् थे, क्योंकि 'गिरिराज चक्र चूड़ामणि' के उच्च पद से विभूषित थे।

(३) तब राजभाषा संस्कृत थी। बोलचाल की भाषा पाली थी। उनके समय की संस्कृति उच्च कोटि की थी। उनका राज्य 'धर्मराज्य' था।

(४) वे विद्वान्, पठित तथा धर्मात्मा थे। उनके यहाँ राजकर्मचारी भी सब योग्य पठित व स्वकर्मानुरत थे। उनका राज्य-प्रबन्ध उच्च कोटि का था। पुल, सड़कें सब सुन्दर थीं।

(५) उनकी राज्य-सीमा एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक थी, यह उनके ताम्रपत्रों में लिखा है।

(६) उनका राज्य-शासन गौड़, मालव, खस, हूण, कलिंग, कारनाटक, लासात, भोट, मेढ़, अंधारक, चांडाल, आंध्र, किरात, उड् आदि-आदि देशों व जातियों पर था, यह उनके ताम्रपत्रों में अंकित है।

(७) फ़िरिश्ता कहता है कि राजा पुरु कुमाऊँ का राजा था, जिसने सिकंदर का मुक़ाबला किया था।

(८) कुमाऊँ के राजा शकादित्य ने दिल्ली के राजा को जीता।

उपर्युक्त बातों से साफ़ मालूम होता है कि कत्यूरी राजाओं ने एक बार तमाम भारतवर्ष तथा क़ाबुल में भी अपनी राज्य-पताका फहराई।

ह्यूनसाँग के समय यानी छठी शताब्दी में उनका राज्य उत्तर में तिब्बत तक, पश्चिम में सतलज नदी तक, पूर्व में में गंडक नदी तक तथा दक्षिण में रोहिलखंड तक था, जैसा कि श्रीकनिंघम तथा श्रीअठकिन्सन ने लिखा है।
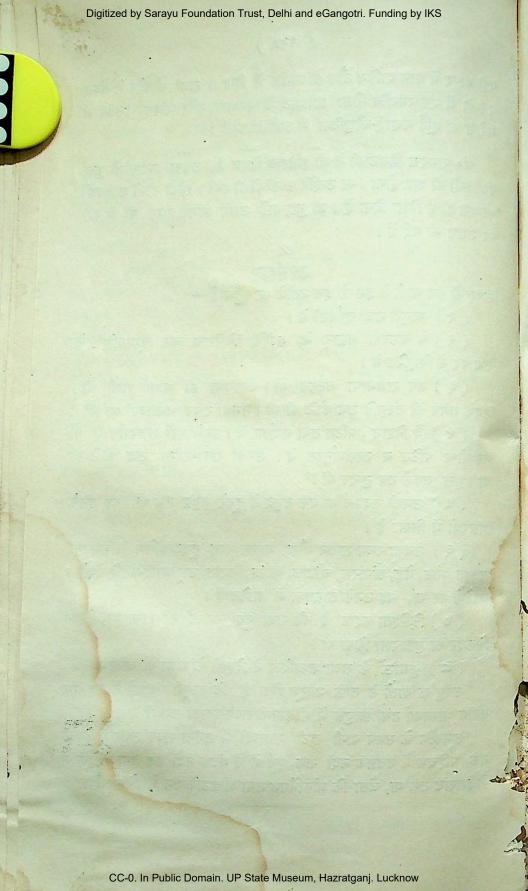
इतिहास कूर्मांचल

चौथा भाग

४. चंद-शासन-काल

[सन् ७०० से १७९० तक]
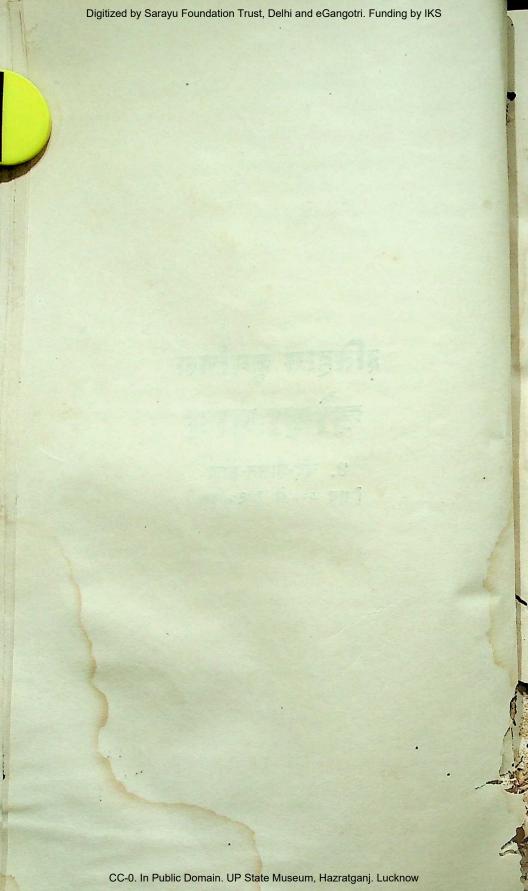
१. राजा सोमचंद

[सन् ७००-७२१]

चंद कब आये

भूँसीग्राम समागत्य जातः कूर्माचले नृपः ।
सोमचन्द्रस्तु शीतांश्च सदृशः शंभु पूजकः ।।
(प्राचीन वंशावली)

(१) चंद कब आये ? (२) कैसे आये ? और (३) कहाँ से आये ? इन विषयों में अनेक बातें प्रचलित हैं, जिनका वर्णन सूक्ष्मतया यहाँ पर किया जावेगा ।

(१) चंद कब आये ?—

पं० हर्षदेव जोशीजी ने श्री फ्रेज़र साहब को सन् १८१३ में एक रिपोर्ट कुमाऊँ के बारे में लिखकर दी थी, जिसमें कहा है—"चंदों में पहले राजा थोहरचंद थे, जो १६ या १७ वर्ष की अवस्था में यहाँ आये थे । उनके तीन पुश्त बाद कोई उत्तराधिकारी न रहने से थोहरचंद या थोरचंद के चाचा की संतान में से ज्ञानचंद नाम के राजा यहाँ आये ।" इस बात को मानने से थोहरचंद कुमाऊँ में सन् १२६१ में आये और ज्ञानचंद १३७४ में गद्दी पर बैठे ।

श्रीजयदेव तेवाड़ीजी के पुत्र श्रीकनकनिधि प्रेमनिधि तेवाड़ीजी तथा पं० हरिवल्लभ पांडेजी ने श्रीहैमिल्टन साहब से सन् १८१८ में फ़र्रुखाबाद में कहा था कि राजा थोरचंद ने भूँसी से आकर नैपाल के किसी मगर या जार (जाट ?) राजा के यहाँ नौकरी की । श्रीजयदेव उनके साथ थे । यह राज्य करवीरपुर के राजा के अधीन था । राजा थोहरचंद व श्रीजयदेवजी ने देश से और लोगों को बुलाकर करवीरपुर के राज्य को कुचल दिया, और चंपावती व कूर्माचल राज्य स्थापित किया, जो बाद को कुमाऊँ हो गया । उन्होंने सन् नहीं बताया; पर ३५० वर्ष पूर्व की बात कही । सन् १८१८ में ३५० घटाने से १४६८ सन् हुआ । ये शब्द श्रीहैमिल्टन साहब ने अपने इतिहास में लिखे हैं । पं० रामदत्त त्रिपाठीजी ने (जो मि० अठकिन्सन साहब के साथ हिन्दी-

लेखक थे) लिखा है—"राजकुमार सोमचंद कालिञ्जर-निवासी राजा खड्गसिंह के वंशोत्पन्न थे। सुधानिधि चौबे सरदार और बुद्धिसेन तड़ागी दीवान (कायस्थ) आदि २४ मनुष्य लेकर प्रतिष्ठानपुर से इस देश को प्रस्थान किया संवत् १२६५ में......"

"ऐसा भी लेख पाया या सुना जाता है कि यह सोमचंद मणकोटी राजा के भानजे लगते थे, और अपने मामा से मिलने यहाँ आये थे।

"यह भी किंवदन्ती है कि बोहरा उर्फ़ बौरा जाति के लोग, जो यहाँ के बहुत पुराने निवासी हैं, कत्यूरी राजाओं द्वारा अपने अधिकार छीने जाने से असन्तुष्ट थे। उनमें सर्वश्री विक्रमसिंह, धर्मसिंह, मानसिंह प्रयाग गये। वहाँ झूँसी से सोमचंद-नामक राजकुमार को लिवा लाये। इस देश की रीति-नीति-रास्ते (घाट-बाट) बताकर कत्यूरी राजाओं के गंभीरदेव-नामक अधिकारी की कन्या से इनका ब्याह कर दिया। १२००) वार्षिक आय की भूमि राजा सोमचंद को दहेज़ (यौतुक) में मिली। कुँ० सोमचंद बुद्धिमान्, रूपवान्, बलवान् और लोक-व्यवहार में चतुर थे। कोतवाल छावनी (चबतरा ?) को चंपावत-पुरी राजधानी बना वह स्वयं वहाँ के राजा बन बैठे।"

श्रीअठकिन्सन ने सोमचंद के आने का संवत् ६५३ लिखा है, पर पं० रुद्रदत्त पंतजी ने संवत्, सन् वा शाके सब दिये हैं। उन्होंने क़ाफी छानबीन के साथ अपने नोट लिखे हैं, और उनके नोट ठीक हैं। हमने भी जो जाँच की है, और काशीपुर के पुश्तनामे से मिलान किया है, तो राजा सोमचंद के आने की तिथि तो ज्ञात नहीं, पर उनके गद्दी पर बैठने की तिथि संवत् ७५७ विक्रमीय तथा ६२२ शाके शालिबाहन तदनुसार ७०० सन् है। यही लोक-प्रचलित वार्ता भी है।

थोरचंद या थोहरचंद से चंद-वंश के चलने की भी बात ग़लत है। हर्षदेवजी कुमाऊँ के धुरंधर राजनीतिज्ञ होते हुए भी पुराने इतिहास से इतने अनभिज्ञ थे, यह जानकर आश्चर्य होता है। तमाम कुमाऊँ के आबाल-वृद्ध जानते हैं कि सबसे प्रथम राजा सोमचंद यहाँ आए। उन्हीं से चंद-वंश चला। थोहरचंद तो राजा सोमचंद के बाद २३वीं पुश्त में हुए हैं।

(२) चंद कैसे आये, और किस प्रकार उन्होंने कत्यूरी, सूर्यवंशी व खस-राजाओं को परास्त कर अपना राज्य यहाँ पर स्थापित किया, इस बारे में दो कहानियाँ प्रचलित हैं। एक तो यह कि जब प्रतापशाली कत्यूरियों के राज्य की इतिश्री हो गई थी, उनके वंशज थोड़े से यत्र-तत्र नाम-मात्र के राजा थे। शेष मुल्क छोटे-छोटे खस-राजाओं में विभाजित था, जो किसी ऊँचे टीले में एक

क़िला बनाकर और कुछ थोड़ी-सी फ़ौज एकत्र कर मुल्क में लूट-मार मचाते और रात-दिन एक दूसरे पर चढ़ाई करते थे। अन्त में यहाँ पर ऐसी अराजकता छा गई कि सर्वत्र लूटपीट नज़र आती थी। कोई शासन न था, कोई हुकूमत न थी, जो लोगों को क़ाबू में रखती। दौणकोट का रावत राजा भी स्थिति न सँभाल सका। सारी प्रजा दलों (धाड़ों) में विभाजित हो गई। अपने-अपने रिश्तेदारों की तरफ़ हो गई।

प्रजावर्ग के प्रतिष्ठित लोगों ने सलाह कर कन्नौज के राजा के यहाँ एक प्रतिनिधि-मंडल भेजा कि वहाँ के महाराजा किसी एक राजा को कुमाऊँ में शान्ति स्थापित करने तथा अच्छी तरह राज-काज चलाने को भेजें। उन्होंने अपने भाई राजा सोमचंद को भेजा। कन्नौज के राजा उस समय सार्वभौम राजा गिने जाते थे। उनका राज्य दूर-दूर तक था।

दूसरी कहानी जो ज़्यादा प्रचलित है, वह यह है कि यह राजा सोमचंद चन्द्रवंशी चंदेला राजपूत थे, जो इलाहाबाद के पास झूँसी या प्रतिष्ठानपुर में रहते थे। किन्तु वहाँ पर पूछताछ करने से कुछ भी पता न चला। झूँसी का क़िला वैसे बसा है बड़े रमणीक स्थान में, और किसी समय में वह बड़ा प्रभावशाली रहा होगा, पर अब तो वह जीर्ण दशा में है।

कुछ लोगों ने कहा कि हाँ, वहाँ कभी चंद्रवंशी राजा राज्य करते थे। वह सम्राट् जयचंद के राज्यान्तर्गत था। बाद को जयचंद के शहाबुद्दीन ग़ोरी द्वारा मारे जाने पर चंदेले राजपूत प्रयाग, जौनपुर, मिर्ज़ापुर, बनारस को भाग गये। राजा मांडा जयचंद के खानदान के हैं। संभव है, इन्हीं चंदेलों में कोई कुमाऊँ को आये हों।

अस्तु। ज्योतिषियों ने एक बार कुँ० सोमचंद से कहा कि उत्तर की यात्रा करने पर उनको लाभ होगा, तो कुँ० सोमचंद कहते हैं, २७ आदमियों को लेकर श्रीबदरीनारायण की यात्रा को चल पड़े। उनके साथियों के नाम ये कहे जाते हैं—

१. पं० सुधानिधि चौबे
२. ,, नारद दूबे
३. ,, जयकृष्ण पांडे
४. ,, वासुदेव पांडे
५. ,, राधाकृष्ण शुक्ल
६. ,, जयदेव त्रिपाठी
७. ,, गणेश पनेरू
८. ठा० माधोसिंह
९. ठा० कमलसिंह
१०. ठा० त्रिलोकसिंह
११. श्रीविद्धि धींवर
१२. श्रीहरसुख धींवर
१३. श्रीसुधना नाई
१४. श्रीबुद्ध पनवारी

१५. श्रीविष्णु } छड़ीबरदार
१६. श्रीशिव्वा }
१७. श्रीबिजू ख़िदमतगार
१८. श्रीभौना ,,
१९. श्रीमोती—छत्रीबरदार
चंदन चँवरबरदार
२०.-२७.............................

कार्की व चौधरी कहा जाता है कि चंद राजाओं के आने के कुछ समय पश्चात् आये।

उस समय कालीकुमाऊँ के राजा सूर्यवंशी ब्रह्मदेव या वीरदेव कत्यूरी थे। वह राजा सोमचंद के चाल-चलन, रहन-सहन से बहुत प्रसन्न हुए, और उन्होंने अपनी एकमात्र लड़की इनसे ब्याह दी, और १५ बीघा ज़मीन दहेज़ में दी। कुछ इलाक़ा भावर में भी दिया। चंपावत में राजा सोमचंद ने अपना एक क़िला बनवाया, जिसका नाम 'राज-बुंगा' रक्खा, और वहाँ पर अपने ही उद्योग से एक छोटा-सा राज्य स्थापित किया। इनके चार फ़ौजदार या क़िलेदार थे, जो अब तक चार आलों के नाम से प्रसिद्ध हैं—(१) कार्की, (२) बोरा, (३) तड़ागी, (४) चौधरी। ये चारों सरदार चार फ़िरक़े के लोगों के नेता थे, और ये भी क़िलों में रहते थे, जिनको आल कहते थे। रमणीक व मनोहर चंपावत नगरी के बीच में राजा का क़िला था। चारों ओर इन फ़ौजदारों के क़िले थे, जो मय अपनी फ़ौज के वहाँ रहते थे। पुराने लोग कहते हैं कि 'चाले' ग़दर या चढ़ाई के समय राजा के क़िले से नक्कारे की आवाज़ होती थी, तो चारों ओर से चारों आलों के नेता अपनी फ़ौज, निशान, झंडे तथा बाजों के साथ राजबुंगा में आ जाते थे। इन फ़ौजदारों की संतानें इस ज़माने में भी कालीकुमाऊँ में प्रतिष्ठित गिनी व मानी जाती हैं, यद्यपि उनके पास न तो वे पद हैं, न वह प्राचीन राज्य-शक्ति। राजा सोमचंद ने अपने कालूतड़ागी फ़ौज़दार की सहायता से चंपावत के स्थानिक रावत राजा (खस-राजा) को परास्त कर चंपावत के निकट के ग्रामों में अपना आधिपत्य जमाया। आसपास के लोगों को अपने दरबार में बुलाकर उनको सम्मानित किया। उपर्युक्त फ़ौज़दारों के अलावा राजा सोमचंद ने झिजाड़ के जोशी सुधानिधि चौबे को दीवान, शिमल्टिया पांडों को राजगुरु, देवलिया पांडों को पुरोहित, पौराणिक मंडलिया पांडों को कारबारी तथा विष्टों को 'कारदार' बनाया। ये ब्राह्मण चौथानी कहलाये, तब से अब तक चौथानी कहे जाते हैं। पश्चात् महर फरत्याल दलों को अपने अधीन कर उनकी सहायता से जिस प्रकार कुमाऊँ में पंचायती सरकार या नियमबद्ध राज्य-प्रणाली की नींव डाली, उसका पूरा-पूरा ब्यौरा 'चंदों का पंचायती राज्य'-नामक प्रकरण में ब्यौरेवार मिलेगा। इन्हीं महर

फरत्याल-दलों के हाथ में राजकाज की बागडोर रहती थी। जिस नेता का बहुमत हुआ, वही प्रधान मंत्री बनाया जाता था, और सब 'कारदारों' को वही नियुक्त करता था। कालीकुमाऊँ के महर फरत्याल-दल अभी तक प्रसिद्ध हैं। राजा सोमचंद वास्तव में बड़े योग्य पुरुष होंगे, जो उन्होंने कालीकुमाऊँ के इन ज़बरदस्त दलों को क़ाबू में कर चंद-राज्य की स्थापना की। लोग कहते हैं कि राजा सोमचंद ने देश से राष्ट्र-विप्लव तथा आपसी वैमनस्य को दूर करने के लिये ही महर फरत्याल 'धड़े' या दल बँधवाये। राज्य में जितने ब्राह्मण, राजपूत, वैश्य तथा शूद्र थे, वे दो दलों में विभाजित किये गये। एक 'मल्लाधड़ा', दूसरा 'तल्लाधड़ा' कहा गया। मल्ला महर का, तल्ला फरत्याल का कहलाया। आप राजा फरत्याल के फ़िरक़े में तथा राजकुँवर महर के दल में शामिल हुए। ये दोनों दल बराबर समझे गये। जब इन दलों के नेताओं को तिलक होता था, तो एक ब्राह्मण दोनों हाथ के दोनों अँगूठों से एक साथ दोनों दलों के नेताओं के माथे में तिलक लगाता था। इन दो दलों के नेता कोट के महर तथा डुंगरी के फरत्याल माने गये। सुईं के डांडे में अब तक इनके पास पुरानी सनद है। कालीकुमाऊँ की प्रजा पर यही दो दल चिरकाल से हुकूमत चलाते आये हैं। इन दो फ़िरक़ों या धड़ों को राजा ने अपने वश में किया, और बाक़ी प्रजा इनके अधिकार में रही। जैसे ऊपर लिखा जा चुका है, यह राजा सोमचंद संवत् ७५७ विक्रमीय तथा ६२२ शाके शालिवाहन तदनुसार सन् ७०० में राजबुंगा में गद्दीनशीन हुए। जिस रावत राजा को इन्होंने पछाड़ा, उसका क़िला राजबुंगा से पश्चिम ओर आधे मील पर है। टूटी इमारतों को कोतवाल-चबूतरा कहते हैं। उसके पास 'पितरौड़ा' या 'पितरढुंगा' बना है। यदि यहाँ पर कोई चंदेला राजपूत मरता है, तो उसकी गतिक्रिया के बाद एक छोटा-सा पत्थर ले जाकर रख आते हैं।

राजा सोमचंद के छोटे-से राज्य के भीतर महरा व फरत्यालों ने भी छोटी-छोटी गढ़ियाँ अपने गाँवों में बनाईं, जिन्हें बुंगा कहते हैं। राजा सोमचंद उस समय एक छोटे-से मांडलीक राजा थे। वह महाराज डोटी को कर देते थे, और उन्हीं के अधीन थे। उस समय डोटी के महाराजा का प्रभाव बढ़ा-चढ़ा था। चंद-राजा मामूली ज़मींदार की हैसियत रखते थे। पर राजा सोमचंद की मृत्यु के समय क़रीब-क़रीब सारा कालीकुमाऊँ परगना उनके अधीन हो गया था। इसके अलावा उन्होंने ध्यानीरौ, चौभैंसी सालम व रंगोड़ पट्टियाँ भी अपने राज्य के अधीन कर ली थीं। राजा सोमचंद बड़े धर्मात्मा, संयमी तथा नीतिकुशल पुरुष बताये जाते हैं। २१ वर्ष राज्य कर आप संवत् ७७८

शाके ६४३ तथा सन् ७२१ में परलोक सिधारे। कत्यूरी राजा ब्रह्म उर्फ़ वीरदेव की लड़की इनको ब्याही गई थी, उनसे कुँ० आत्मचंद युवराज उत्पन्न हुए। वह सन् ७२१ में गद्दी पर बैठे।

(३) चंद कहाँ से आये? चंदों के झूँसी से आने की बात तमाम कूर्माचल में प्रचलित है। प्राचीन हस्तलिखित वंशावली का एक श्लोक भी यही सूचित करता है; पर न जाने क्यों इलियर साहब लिखते हैं कि वे झाँसी से आये।

---

२. राजा आत्मचंद

[सन् ७२१—७४०]

राजा सोमचंद की मृत्यु के बाद कुँ० आत्मचंद राजा हुए। इन्होंने १९ वर्ष तक राज्य किया। इनके वक़्त में भी राज्य के विस्तार बढ़ाने का काम जारी रहा, और आसपास के सब छोटे-छोटे सरदार इनके दरबार में सलामी को आते थे, कुछ इस डर से कि यह अपनी संगठन-शक्ति से उन्हें निगल न जावें, और दूसरा कारण यह था कि वह कत्यूरी-राजाओं के भांजे थे। यह राजा धर्म-कर्म में अच्छे बताये जाते हैं। इन्होंने अच्छी तरह राज-काज किया। यह सन् ७४० में परलोक सिधारे।

---

३. राजा पूर्णचंद

[सन् ७४०—७५८]

राजा पूर्णचंद सन् ७४० में गद्दी पर बैठे। इनके विषय में इतना ही ज्ञात है कि यह शिकार के बड़े शौक़ीन थे, और अपना समय राज-काज में न लगाकर तराई-भावर में शिकार खेलने में खर्च करते थे। इन्होंने १८ वर्ष राज्य किया। यह राजा देवी-देवताओं की पूजा बड़ी धूम-धाम से किया करते थे। अपने जीते-जी अपना राज्य युवराज इन्द्रचंद को देकर आप देवी पूर्णागिरि की सेवा में लीन हो गये। एक साल बाद सन् ८१५ व संवत् ७५८ में मरे।

---

४. राजा इन्द्रचंद

[सन् ७५८—७७८]

राजा पूर्णचंद के बाद कुँ० इन्द्रचंद राजा हुए। इन्होंने २० वर्ष राज्य

किया। "यह राजा बड़ा घमंडी बताया जाता है। अपने को इंद्र के समान समझता था।"

---

५. रेशम का कारख़ाना

इस राजा ने अपने यहाँ रेशम का कारबार खोला। रेशम के कीड़ों को चीन से ७वीं सदी में तिब्बत-राज्य में स्रौंगजांग गांपों की रानी लाईं, और उसकी नैपाली रानी ने इसका प्रचार नैपाल में किया। वहाँ से यह कुमाऊँ में लाया गया। यह कारबार गोरख्याली राज्य तक बराबर चलता रहा। गोरख्यालियों की 'गोरख्योल' में यह उत्तम कारबार नष्ट हो गया। रेशम के कीड़ों के चारे के वास्ते शहतूत (कीमू) के पेड़ बहुत बोये गये। रेशम बुनने को देश से पटुवे बुलाये गये। एक बड़ा मकान बनाया गया। उसमें कीड़े रक्खे जाते थे, और शहतूत की टहनियाँ काटकर उनके चारे के वास्ते रक्खी जाती थीं। ये कीड़े शहतूत को खाकर मकड़ी के सदृश जाले लगाते थे। जब वह पक्का हो जाता था, तो पटुवे उस जाले को निकालकर साफ़ करते और रेशम बनाते थे। कुछ रेशम को सफ़ेद रखकर बाक़ी को अनेक प्रकार के रंगों में रँग देते थे। रँगते वक्त बेबुनियाद की कोई खबर नगर में फैलाते थे। पटुवे कहते थे कि झूठी ख़बर के फैलने से रेशम का रंग पक्का तथा सुंदर होता था।

---

६. 'पटरंगवाली'

चंपावती नगरी में झूठी ख़बर जो फैलती थी, उसे 'पटरंगवाली' कहा करते थे। एक पटरंगवाली इस प्रकार कही जाती है—

"राजा इन्द्रचंद रात के वक्त संध्या-पूजा करते समय देवता के ध्यान में लगे थे। पूजा करते-करते बहुत हँसे। जब पूजा समाप्त हुई, तब 'फुलारा' व नौकर-चाकरों ने राजा से संध्या के समय इस असाधारण हँसी का कारण पूछा। इस पर राजा पहले तो बहुत संकुचित हुए, पर बाद को बोले कि दिल्ली के बादशाह के यहाँ नाच हो रहा था। उसमें वे भी थे। नाचनेवाली खूब अच्छी तरह नाच व गा रही थी। नाचने में उसके पैर से उसका कमरबंद दबा, और वह गिर पड़ी। यह हाल देखकर सब हँस पड़े। इसी कारण राजा को भी हँसी आई। दिल्ली में पुछवाने पर उस दरबार के अमीर-

उमरावों ने कहा कि उस रात को नाच हुआ था। नाचनेवाली गिर पड़ी थी। सब लोग हँसे थे। कुमाऊँ के राजा भी वहाँ थे।"

ऐसी-ऐसी 'पटरंगवाली' खबरें चंपावत में ख़ूब उड़ती थीं। अब भी इनको 'पटोरंग्याल' कहते हैं।

राजा इन्द्रचंद २० वर्ष राज्य करके संवत् ८३५, शाके ७००, सन् ७७८ में परलोक सिधारे। उनके पुत्र कुँ० संसारचंद राजा हुए।

---

७. (५) राजा संसारचंद

[सन् ७७८—८१३]

इन्होंने ३५ वर्ष तक राज्य किया, किन्तु इनके समय की कुछ भी बातें मालूम नहीं हैं।

---

८. (६) राजा सुधाचंद

[सन् ८१३—८३३]

राजा सुधाचंद २० वर्ष तक राज्याधिकारी रहे। इन्होंने शासन में बहुत-से सुधार किये। फ़ौजी ख़र्च घटाया। प्रजा को करों के भार से मुक्त किया।

---

९. (७) राजा हमीरचंद उर्फ़ हरिचंद

[सन् ८३३—८५६]

इन्होंने ३ वर्ष राज्य किया। बाद को राज-काज अपने पुत्र को देकर आप संसार-त्यागी हो गये। धार्मिक वृत्ति के राजा थे।

---

१०. (८) राजा वीणाचंद

[सन् ८५६—८६६]

यह राजा १३ वर्ष गद्दी पर रहे। भोग-विलास के प्रेमी थे। राज-काज की तरफ़ कम ध्यान देते थे। सब भार अपने राजकर्मचारियों पर छोड़ दिया। आप रनवास में पड़े रहते थे। इनके कोई संतान न थी। सन् ८६६ में यह राजा मर गए।

---

११. खस-राजा

इस बीच राज-काज की बागडोर ढीली देख खस-राजाओं की बन आई। उन्होंने अपना राष्ट्रीय झंडा खड़ा कर दिया कि क़न्नौज व झूँसी से आये हुए विदेशी राजा व कर्मचारियों को मार भगाओ। यह भी कहा कि यह कर्मचारी राजा को अपने बस में कर लेते हैं, और मनमाने ढंग से राज-काज करते हैं। सब बड़े-बड़े कर्मचारियों को निकाला गया। उनकी सम्पत्ति व माल-असबाब लूटा गया। उनमें से कुछ मारे गए, कुछ देश को भागे, और कुछ इधर-उधर पास के राजाओं के यहाँ शरणागत हुए। इन्होंने कत्यूरी-राजाओं से भी कहा कि वे अपने पूर्व राज्य को अपने अधिकार में करें, पर उन्हें अपने ही घरेलू व राज-संबंधी झगड़ों से फ़ुरसत न थी। उन्होंने चंद-राजाओं के कर्मचारियों से कहला भेजा कि "कालीकुमाऊँ का राज्य हमने अपनी कन्या व जामाता को कन्या-दान में मुफ़्त दिया है, उसे हम धर्मशास्त्र के अनुसार ले नहीं सकते, यह राज्य चंदों का है। वे फिर से इसे अपने बाहुबल से जीतें।" खस-राजपूतों ने फिर से अपना विजय-डंका बजाया। इस बीच में १५ पुश्त तक कालीकुमाऊँ में खस-राजाओं का राज्य रहा। उनके कुछ नाम ही ज्ञात हैं, पर उनके शासन-काल की कोई भी घटनाएँ ज्ञात नहीं हैं। नाम भी अजब हैं:—

(१) बिजड़	२० वर्ष	(९) गुणा	१६ वर्ष
(२) जीजड़	७ ,,	(१०) पीड़ा (बीड़ा ?)	६ ,,
(३) जाजड़	१६ ,,	(११) नागू	१६ ,,
(४) जड़	६ ,,	(१२) भागू	११ ,,
(५) कालू	५ ,,	(१३) जयपाल	१६ ,,
(६) कलसू	११ ,,	(१४) सौपाल या सौनपाल	१२ ,,
(७) जाहल	२० ,,	(१५) इन्द्र या इमि	१५ ,,
(८) मूल	८ ,,		

अतः खस-राजाओं ने लगभग २०० वर्ष से ज़्यादा राज्य किया। इस बीच तमाम उत्तर-भारत के प्राचीन निवासियों के मध्य में खलबली मची थी। नैपाल में भी २२५ वर्ष तक इन्हीं लोगों का राज्य रहा। ये खस-राजा काशमीर से लेकर कोट कांगड़ा, कुमाऊँ, नैपाल, दारजिलिंग, आसाम तथा खासिया-पर्वतों में, उधर राजपूताना व विंध्याचल में, फैले थे। खस-राजाओं में भी कोई-कोई राजा बड़े प्रतापी हुए हैं। कुछ लोग इनमें से बौद्ध भी थे। पर खेद है कि इनके शासन काल की कुछ भी बातें ज्ञात नहीं।

१२. (९) राजा वीरचंद

[सन् १०६५—१०८०]

खस-जाति के राष्ट्र-विप्लव के समय चंदवंश के राजपूत माल यानी तराई-भावर को चले गये थे। इस बीच जब इनकी राज्य-प्रणाली से प्रजा उकता गई, तो राजा संसारचंद के एक रिश्तेदार कुँ० वीरचंद को, जो खस-विद्राह के समय नैपाल की तराई में भाग गये थे, बुलाकर राजा बनाने की सलाह ठहरी। श्रीसौन खड़ायन नामी एक सरदार मुखिया बना। उसने चंद-राज्य के समय के निकाले हुए राजपूत, ब्राह्मण व वैश्यों को एकत्र किया। उनसे धन व सामान भी एकत्र किया, तब खस-राजा के ऊपर चढ़ाई कर दी, और वे सब तरह विजयी हुए। खस-राजा सौपाल मारा गया। कुँ० वीरचंद का कालीकुमाऊँ के राजबुंगा में फिर से राज्याभिषेक बड़ी धूमधाम से हुआ। उन्होंने फिर महर फरत्यालों से अपना रिश्ता स्थापित किया, और जोशी, पांडे, विष्ट, तड़ागी, चौधरी, बौरा, कार्की प्रभृति लोगों को अपने-अपने पदों पर बहाल किया। वास्तव में राजा वीरचंद ने बड़ी वीरता का काम किया कि अपने बुज़ुर्गों के खोये राज्य को फिर से प्राप्त किया। सन् १०८० में वह १५ वर्ष राज्य कर परलोक को सिधारे। राजा वीरचंद के बाद राजा त्रिलोकचंद तक राजाओं के केवल नाम ही ज्ञात हैं, बाक़ी बातें ज्ञात नहीं। अतः उनकी नामावली यहाँ पर दे देते हैं:—

(१०)	राजा रूपचंद	१३	वर्ष राज्य किया	सन् १०८० से १०६३ तक
(११)	,, लक्ष्मीचंद	२० ,,	,,	१०६३ से १११३ ,,
(१२)	,, धर्मचंद	८ ,,	,,	१११३ से ११२१ ,,
(१३)	,, कर्मचंद या कूर्मचंद	१६ ,,	,,	११२१ से ११४० ,,
(१४)	,, कल्याणचंद(१) उर्फ़ बल्लालचंद	६,,	,,	११४० से ११४६ ,,
(१५)	,, नामीचंद उर्फ़ निर्भयचंद	२१,,	,,	११४६ से ११७० ,,
(१६)	,, नरचंद	७ ,,	,,	११७० से ११७७ ,,
(१७)	,, नानकीचंद	१८ ,,	,,	११७७ से ११९५ ,,
(१८)	,, रामचंद	१० ,,	,,	११९५ से १२०५ ,,
(१९)	,, भीष्मचंद उर्फ़ भीषमचंद	२१,,	,,	१२०५ से १२२६ ,,

(कहते हैं कि छखाते के ढुंगसिल गाँव में एक खस-राजा ने इन्हें मार डाला था।)

(२०) राजा मेघचंद	७ वर्ष राज्य किया सन्		१२२६ से १२३३ तक
(२१) ,, ध्यानचंद	१९ ,,	,,	१२३३ से १२५१ ,,
(२२) ,, परबतचंद	९ ,,	,,	१२५१ से १२६१ ,,
(२३) ,, थोरचंद	१४ ,,	,,	१२६१ से १२७५ ,,
(२४) ,, कल्याणचंद(२)	२१ ,,	,,	१२७५ से १२९६ ,,

१३. (२५) राजा त्रिलोकचंद

[सन् १२९६—१३०३]

इन्होंने छखाता राज्य को जीतकर अपने राज्य में मिलाया, और भीमताल में एक क़िला बनवाया, ताकि इनका पश्चिम का राज्य सुरक्षित रहे, क्योंकि पश्चिम की ओर अभी तक खाती, काठी व कत्यूरी-राजाओं के स्वतंत्र राज्य थे। इससे ज्ञात होता है कि एक बार इन्होंने अपना राज्य-विस्तार बारामंडल, पाली व छखाते तक कर लिया था। इन्होंने केवल ७ वर्ष तक राज्य किया। महरा-जाति के लोग इन्हीं के समय में छखाते में आये, और अधिकारी बनाये गये। राजा त्रिलोकचंद के बाद भी तीन राजा हुए हैं, जिनके बारे में कुछ भी बातें ज्ञात नहीं हैं।

(२६) राजा डमरूचंद ने	१८ वर्ष राज्य किया		१३०३—२१
(२७) राजा धर्मचंद ने	२८ ,,	,,	१३२१—४४
(२८) राजा अभयचंद ने	३० ,,	,,	१३४४—७४

१४. (२९) राजा ज्ञानचंद उर्फ़ गरुड़ज्ञानचंद

[सन् १३७४—१४१९]

इन्होंने ४५ वर्ष तक राज्य किया। चंदों में सबसे ज्यादा समय तक सिंहासन पर आप ही सुशोभित रहे। राज्याधिकार पाने पर सबसे पहला काम जो आपने किया, वह दिल्ली-नरेश के पास जाने का था। माल या तराई को आपके पितामह के समय रोहिलखंड के नवाबों ने अपने अधिकार में कर लिया था। राजा ज्ञानचंद ने दिल्ली के बादशाह के यहाँ चिट्ठी भेजी कि तराई-भावर प्रान्त मुद्दत से कुमाऊँ राज्य का हिस्सा रहा है। पहले कत्यूरियों के हाथ में

था, अब यह चंद-राजाओं के अधिकार में रहना चाहिए। बादशाह महम्मद तुग़लक़ उस समय शिकार में थे। राजा भी वहीं चले गये। वहाँ उन्होंने तीर-कमान से एक उड़ते हुए गरुड़ को मार डाला, जो एक सर्प को पकड़कर ले जा रहा था। बादशाह तुग़लक़ राजा साहब के कौशल से ख़ुश हो गये। उसी समय फ़रमान लिखा कि तराई-भावर का इलाक़ा भागीरथी गंगा तक कुमाऊँ के राजा के अधिकार में रहेगा। साथ ही उनको 'गरुड़' की उपाधि से भी विभूषित किया। तब से यह राजा गरुड़ज्ञानचंद के नाम से प्रसिद्ध हुए। बाद कुछ समय के राजा ज्ञानचंद दिल्ली से अपनी राजधानी को आये। भावर व तराई पर अपना अधिकार कर लिया। यह घटना सन् १४१० तथा १४१२ के बीच की है। थोड़े दिनों बाद फिर सम्भल के नवाब ने तल्लादेश भावर व तराई में, जिसे उन दिनों 'मडुवा-की-माल' (शायद मडुवाल बोरों के नाम से ऐसी कही जाती हो, कुछ लोग मध्यदेश-माल का अपभ्रंश इसे बताते हैं) कहते थे, अधिकार जमा लिया।

---

१५. सरदार नीलू कठायत की वीरता

उस समय चम्पावत के राजदरबार में बक्सी (सेनापति) के पद पर सरदार नीलू कठायत था। संभव है, वह सौन कठायत के वंश का हो। वह बड़ा बहादुर सेनापति था। राजा ने उसे हुक्म दिया कि वह तराई-भावर से यवनों को निकालकर फिर उसे कुमाऊँ-राज्य के अधिकार में करे। सेनापति नीलू कठायत राजाज्ञा पाकर फ़ौज ले 'माल' में लड़ने को गया। उसने मुसलमानों को तराई-भावर से मार भगाया। विजयी हो राजदरबार में आकर श्रीनीलू कठायत ने राजा के पास नज़र पेश की, और विजय के सब समाचार सुनाये। राजा ने प्रसन्न होकर उसे 'कुमय्याँ ख़िल्लत' बख़्शी। इसके साथ-साथ ३ गाँव 'माल' के तथा १२ 'ज्यूला' ज़मीन ध्यानिरौ में सरदार नीलू कठायत को 'रौत' भी दी। (रौत उस जागीर को कहते थे, जो किसी मनुष्य को असाधारण बहादुरी करने में दी जाती थी।) इनकी सनद के उपलक्ष में एक लेख ग्वालियर के पत्थर में खोदकर सरदार नीलू कठायत के गाँव कपरौली में लगाया गया। इसी राजा के दरबार में एक मनुष्य श्रीजस्सा कमलेखी ख़वास था। उसका 'बुंगा' यानी क़िला कमलेख गाँव में था। वह क़िला अब बिलकुल टूटा पड़ा है। यह जस्सा राजा का मुँहलगा मुसाहिब था। वह नीलू कठायत के साथ दुश्मनी रखता था। वह नीलू कठायत की मान, प्रतिष्ठा तथा बहादुरी

से जल गया। इसीलिये उसने राजा से गुप्त रूप में कहा कि "नीलू कठायत बक्सी है, वीर है, और उसने नवाब के हाथ से 'मडुवा-की-माल' भी छुटाई है। इसलिये उसे वहाँ का लाट भी बना देना चाहिए।" राजा दिल से इस बात को नहीं चाहता था, किन्तु चापलूस जस्सा ने झाँसा-पट्टी देकर राजा को राज़ी कर लिया, और नीलू कठायत के नाम आज्ञा-पत्र मय खिल्लत के जारी हुआ कि वह माल का सरदार बनाया गया है। वहाँ का प्रबन्ध करे, और उसे आबाद करावे। इस हुक्म के मिलने से नीलू कठायत बहुत अप्रसन्न हुआ, और कहने लगा कि उधर तो राजा ने उसे ऐसी बहादुरी के लिये सम्मानित किया, और इधर तराई-भावर की बुरी आबहवा में बदलकर उसे मारने की ठहराई। तराई-भावर की आबहवा गरमी व बरसात में अच्छी न होने से पर्वतीय लोग वहाँ जाने से बराबर डरते रहे हैं। इस पर जब नीलू को यह ज्ञात हुआ कि राजा ने उसके जानी दुश्मन जस्सा कमलेखी के कहने पर उसे तराई-भावर में बदला है, तो वह और भी आग-बगूला हो गया। फ़ौरन् घोड़े पर चढ़कर राजा के दरबार चम्पावत में आया, और विना दरबारी पोशाक पहने ही, जो कि राजा ने उसे दी थी, राजा के पास राजदरबार में चला गया। इस पर जस्सा कमलेखी ने और भी नमक-मिर्च लगाई कि नीलू कठायत विना दरबारी पोशाक पहने ही राजदरबार में आया है, और इससे उसने राजा का घोर अपमान किया है। यह बड़ा अहंकारी अफ़सर है। इस पर राजा ग़ुस्से में आ गया। उसने नीलू कठायत की 'ढोक' याने वंदना को स्वीकार न किया, मुँह फेर लिया। नीलू कठायत भी वहाँ से लौटकर अपने गाँव कपरौली को चला गया। अपने पति को उदास देखकर उसकी स्त्री ने, जो 'सिरमौर' महर की लड़की थी, पूछा कि उदासी का कारण क्या है? न आज दरबारी पोशाक है, न बच्चों व स्त्रियों के लिये कपड़े, मिठाई व अन्य सामान ही आये हैं। नीलू कठायत ने कहा कि वह राजा से नाराज़ होकर आये हैं, क्योंकि जस्सा के कहने से राजा ने उनकी बेइज़्ज़ती की है। स्त्री ने कहा कि उन्होंने बुरा किया, जो राजा से लड़ाई की, 'राज व नाज' विना रहा नहीं जाता। वह अपने लड़कों—सुजू व बीरू—को राजा की खिदमत को भेजेगी। नीलू ने कहा कि वहाँ लड़कों को मत भेजो। कहीं जस्सा उन्हें मरवा न दे। पर स्त्री ने उनको अपने भाई—उनके मामा—सिरमौली महर के यहाँ भेजा। लड़के मामा का घर न पा सके। वे जस्सा के हाथ पड़ गये। बेचारे नादान व निष्पाप बच्चों ने साफ़-साफ़ बातें अपने आने की कह दीं। पर कुटिल जस्सा ने उनको बाहर से तो बड़ी खातिरदारी से अपने घर में

ठहराया, पर राजा से कहा कि नीलू कठायत के लड़के उन्हें मारने के लिये आये हैं। उसने अपनी कोठी में बंद कर रक्खे हैं। राजा ने उन्हें अपने यहाँ बुलवाकर आँखें निकलवाने का हुक्म दिया। जल्लादों ने गोरलचौड़ में ले जाकर उनकी आँखें निकाल दीं। जब इनके नाना को खबर हुई, तो उसने इन्हें अपने घर में बुलाया, सब हाल पूछा, तथा नीलू कठायत को पत्र भेजा कि क्या यही बहादुरी है कि आप तो घर में बैठे रहो, और ऐश करते रहो और उनके धेवतों की आँखें निकलवाई जावें? इस चिट्ठी से नीलू के बदन में आग लग गई। वह उसी वक्त अपने भाई-बन्दों व फ़ौज को लेकर चम्पावतीयों पर चढ़ गया। राजा व जस्सा अपना 'थर्प' यानी महल छोड़कर जंगल को भाग गये, वहाँ एक उड्यार (गुफा) में छिप गये। नीलू ने सारा महल व क़िला ढूँढ़ा। राजा नहीं मिला। बाद को किसी ने राजा का पता बता दिया। नीलू ने गुफा में जाकर दोनो को पकड़ा; पर राजा को छोड़ दिया, और सलाम करके कहा—"आपको मैं नहीं मारता, क्योंकि यह राजभक्ति के विरुद्ध होगा, और मेरे खानदान की बदनामी हो जावेगी। लेकिन जस्सा मेरा दुश्मन है, उसे न छोड़ूँगा।" यह कहकर उसने जस्सा को मार डाला, और राजा को छोड़कर सीधा कमलेख में पहुँचा। वहाँ का बुंगा, जो जस्सा का था, लूटा व आग लगा दी। "सब मर्दों को मार डाला, गर्भवती स्त्रियों के पेट चीर डाले।" सब धन लेकर अपने घर कपरौली को चला गया। तब से यह क़िला टूटा पड़ा है। यह फड़का से अल्मोड़े की तरफ़ को पहाड़ की एक धार पर था। बाद को राजा महल में आये। उसने सब बातें सुनीं। नीलू कठायत को कहला भेजा कि जो कुछ उन्होंने किया, वह सब जस्सा कमलेखी के कहने से किया। अब चूँकि नीलू ने राजा के साथ कोई दग़ाबाज़ी नहीं की, वह भी नीलू के साथ पुराना व्यवहार करेंगे। अस्तु। नीलू फिर बक्सी के पद पर बहाल हो गये। पर राजा उसके अभिमान व अपमान से दिल-ही-दिल बहुत कुढ़ा हुआ था। उसको मारने का अवसर ढूँढ़ता रहा। अन्त में एक दिन धोखे में उसे मरवा ही डाला। इस कार्य से इस राजा की बड़ी अपकीर्ति हुई। राजा गरुड़ज्ञानचंद ने ४५ वर्ष राज्य कर संवत् १४७६, शाके १३४१, तदनुसार सन् १४१६ में इस संसार को छोड़ दिया। उनके पुत्र कुँ० हरिहर-चन्द गद्दी पर बैठे।

---

१६. (३०) राजा हरिहरचंद उर्फ़ हरीचंद

[सन् १४१६—१४२०]

राजा हरिहरचंद उर्फ़ हरीचंद ने केवल एक वर्ष राज्य किया। यह धर्म-कर्म, पूजापाठ में लगे रहते थे। कथा-पुराण व शास्त्रों की चर्चा में विशेष अनुराग था। संवत् १४७७ सन् १४२० में वैकुंठवासी हुए। इनके पुत्र कुँ० उद्यानचंद गद्दी पर बैठे।

---

१७. (३१) राजा उद्यानचंद

[सन् १४२०—१४२१]

इस राजा ने भी एक ही वर्ष राज्य किया, तो भी इनको अपने दादा के वीर नीलू कठायत को धोखे में मारने तथा उसके पुत्रों की आँखें निकालने के अत्याचार-पूर्ण कार्य से बड़ी ग्लानि थी। इस कारण इन्होंने कई स्थानों में मंदिर बनवाये, नौले निर्मित किये तथा ब्राह्मणों से पूजा-पाठ व अनुष्ठान कराये। खास चंपावत में बालेश्वर का मंदिर बनवाया, तथा एक साल की मालगुज़ारी तमाम प्रजा को माफ़ कर दी। ग़रीब याचकों को भी संतुष्ट किया, इसी समय पं० श्रीचंद तेवाड़ी गुजराती ब्राह्मण क़सबे तेवार गुजरात से कालीकुमाऊँ में आये थे, उनके पुत्र श्रीशुकदेव भी साथ थे। लड़के की तो भेंट राजा से हुई, पर पिता की न हुई। अतः श्रीचंदजी नाराज़ होकर बारा-मंडल को चले आये। उन दिनों बिसौदकोट में कत्यूरी-ख़ानदान का एक राजा राज्य करता था, तथा दूसरा कत्यूरी-राजा खगमरकोट में था। इन दोनो के बीच वैमनस्य था। बिसौद के राजा ने श्रीचंद तेवाड़ी को राह-ख़र्च व सवारी देकर सुँवाल नदी पार, अपनी राज्य-सीमा के अन्त तक, पहुँचा दिया। बाद वहाँ से खगमरकोट के राजा की राजबाड़ी में इन्होंने डेरा किया। वहाँ का माली राजा के लिये डाली ले जाता था। उस डाली को श्रीचंद तेवाड़ीजी ने देखा। माली से पूछा कि वह डाली कहाँ ले जाता है। माली ने कहा कि राजा के लिये ले जाता हूँ। उन्होंने माली से कहा कि उस नींबू को राजा को मत देना, क्योंकि उसके भीतर दूसरा नींबू है। राजा उसे देखें व खावेंगे, तो उनके हक़ में अच्छा न होगा। पर राजा ने मना करने पर भी उस फल को काटा, और देखा, तो वास्तव में उसके भीतर दूसरा फल निकला। इस पर राजा ने उस तेवाड़ी ब्राह्मण को बुलाया, और कहा कि नींबू के फल में उनके कहने के अनुसार

लक्षण निकले। अब उसके निमित्त क्या उपाय करना चाहिए। तब तेवाड़ीजी ने कहा—जहाँ यह फल पैदा हुआ है, उस स्थान को किसी सुयोग्य ब्राह्मण को संकल्प करके दे देना चाहिए। तब राजा ने कहा—ऐसे सुपात्र आप ही हैं। उन्होंने कहा कि वह तो दूर के रहनेवाले परदेशी हैं, ज़मीन से क्या करेंगे। राजा के बहुत आग्रह करने पर उन्होंने भूमि ले ली। यहाँ जल कम था। तेवाड़ीजी ने, जो तांत्रिक विद्या में प्रवीण थे—कहते हैं, 'प्रोक्षण' मंत्र द्वारा जल पैदा किया।

इस बीच बिसौतपट्टी के राजा खगमरकोट पर चढ़ आये। कत्यूरी-राजा खगमरकोट को छोड़ स्यूनराकोट में चले गये।

राजा उद्यानचंद को भी अपने राज्य का विस्तार बढ़ाने की सूझी। अतः इन्होंने चौगर्खा के मांडलीक राजा पर चढ़ाई की। उसको मार भगाया। चौगर्खा कालीकुमाऊँ के राज्य में शामिल किया गया। बाद को इस राजा ने महरयूड़ी, उच्यूर तथा बिसौत के राजाओं के राज्य व क़िले छीनकर वहाँ अपनी राज्य-पताका फहराई। इनके राज्य का विस्तार इनकी मृत्यु के समय इस प्रकार था—उत्तर में सरयू से लेकर दक्षिण में तराई तक, पूर्व में काली से लेकर पश्चिम में कोसी व सुँवाल तक। सरयू के उत्तर गंगोली में मणकोटी राजाओं का राज्य था। ये राजा चंद्रवंशी थे। नैपाल से आये थे। सोर, सीरा, अस्कोट तथा दार्मा जोहार के ऊपर महाराजा डोटी का अधिकार था। जुमला के राजा व्यांस व चौदांस के शासक थे। कत्यूरी-राजाओं का राज्य कत्यूर, स्यूनरा तथा लखनपुर में था। फल्दाकोट एक खाती राजपूत के अधिकार में था। रामगाड़ व कोटा में एक खस-राजा का शासन चलता था। संवत् १४७८ अर्थात् सन् १४३१ में यह राजा परलोक को सिधारे।

पं० रामदत ज्योतिर्विदजी लिखते हैं कि किसी वंशावली में यह लिखा है कि कत्यूरी-राजाओं ने अपनी लड़की राजा उद्यानचंद को ब्याही थी, और चार पट्टियाँ "दे, अस्सी, चालसी, रंगोड़" दहेज़ में दीं। किन्तु इसका ज़िक्र अन्य किसी भी इतिहासकार ने नहीं किया है।

---

१८. (३२) राजा आत्मचंद (२)

[सन् १४२१—१४२२]

सन् १४२१ में राजा उद्यानचंद मर गये। आपके बाद राजा आत्मचंद (२) गद्दी पर बैठे। पर यह भी एक ही साल में चल बसे, इनके बाद इनके पुत्र कुँ० हरीचंद (२) राजा हुए।

१९. (३३) राजा हरीचंद (२)

[सन् १४२२—१४२३]

यह राजा भी एक ही वर्ष राज्य कर परलोक को सिधारे।

---

२०. (३४) राजा विक्रमचंद

[सन् १४३३—१४३७]

राजा हरीचंद (२) के बाद राजा विक्रमचंद गद्दी पर बैठे। इनके समय का एक ताम्रपत्र बालेश्वर-मंदिर की बाबत है, जिसमें इन्होंने अपने दादा उद्यानचंद के आरंभ किए हुए कार्य को पूरा किया। यह ताम्रपत्र श्रीकुंज शर्मा-नामक ब्राह्मण के नाम का है। यह गुजराती ब्राह्मण थे। ताम्रपत्र शाके १३४५ का है। उसमें लिखा है—"ओ३म् श्रीविजयमस्तु। शाके १३४५ आषाढ़ी पौर्णमासी को विष्णु के सायन-काल में पृथ्वीपति, चूड़ामणि अपने प्रतिज्ञा पालने करनेवाले राजा ने कूर्मराज्य के चंपावत नगरी में कुंजेश्वर व माहेश्वरी को भूमि दी है।......विक्रमचंद कल्पद्रुम के समान हैं। उसने अपनी तलवार से बड़े-बड़े शासकों को जीता है, और श्रीक्राचल्लदेव ने जो भूमि प्रदान की है, उसको इन्होंने भी सुरक्षित रक्खा है। मंदिर की मरम्मत करने को कहा है........

साक्षी—माधो, सेज्याल, प्रभु, विष्णु, गगत्मुनि, वीरसिंह गहमरी, जैलू बढ्याल.. .. लिखनेवाल रुद्रशर्मा, पंतनवीसी चारथान कछहरी में। शुभम् रैकू......

रामपाटणी ने यह ताम्रपत्र बनाया।"

पंतनवीसी चारथान के माने राजमंत्रियों के दफ़्तर से है। यह नक़ल मुसलमानों के दफ़्तर से की गई हो। कछहरी को पंतनवीसी कहा जाता था। चंदों के समय में चारथान शब्द भी कछहरी के लिये आया है। मरहठों ने भी कछहरी का नाम पंतनवीसी रक्खा था।

राजा गरुड़ज्ञानचंद के समय बहुत मार-काट हुई। प्रजा चंद-राजाओं के अत्याचारों से रुष्ट व दुःखी हो गई थी। इससे उन पापों के प्रायश्चित्त-स्वरूप राजा के पुत्र-पौत्रों ने धार्मिक कार्यों को कर लोगों को शान्त करने की ठानी। मंदिर, नौले, धर्मशाला बनवा, इनकी प्रतिष्ठा में भोज देकर तथा लोगों को जागीरें देकर सन्तुष्ट करना चाहा। १४२४ सन् में इस राजा ने एक गाँव श्रीकुलोमणि पांडेजी को भी दिया। तो भी विक्रमचंद ने आरंभ में धार्मिक

कार्य करके अन्तकाल में राजकाज छोड़ भोग-विलास में मन लगाया। इस पर उनके भतीजे भारती ने खस-जाति के लोगों को अपनी ओर कर राज-विद्रोह का झंडा खड़ा किया। खस लोगों का नेता श्रीशौड़ करायत था, जो उस समय एक बड़ा बहादुर तथा प्रभावशाली पुरुष था। उसने विक्रमचंद को मार भगाया और मलास गाँव जागीर में पाया। शौड़ करायत के बारे में एक प्राचीन लेख इस प्रकार है, "शौड़ करायत को चेलो थर्प की भीड़ी हाली मारो, शौड़ करायत लै सब बिसुंग कुमय्याँ मिलाया राजा थाप मारी खेदी दियो।" अर्थात् "शौड़ करायत के लड़के को राजा विक्रमचंद ने महल की दीवार के भीतर डालकर मार डाला। तब शौड़ करायत ने बिसुंग के सब कुमय्यों को मिलाया और राजा के ऊपर चढ़ाई कर उसे भगा दिया।" १४ वर्ष राज्य कर विक्रमचंद को राज्य छोड़ भागना पड़ा। उनके भतीजे राज्याधिकारी हुए।

---

२१. (३५) राजा भारतीचंद

[सन् १४३७—१४५०]

राजा भारतीचंद लोकप्रिय, साहसी, बहादुर तथा चरित्रशाली नृपति बताये जाते हैं। वह अपने राजकाज-विमुख चाचा को गद्दी से उतारकर लोगों की सहायता से गद्दी पर बैठे थे। श्रीशौड़ करायत ने न-जाने फिर क्या क़सूर किया कि कहा जाता है कि इन्होंने उसे भावर में क़ैद कराया। आज तक मल्ल-खानदान के डोटी के रणिका या रैका राजा ही कालीकुमाऊँ-प्रान्त के सार्वभौम राजा यानी महाराजा माने जाते थे। इसी खानदान के छोटे भाइयों के वंशज मल्लाशाही कहे जाते थे। वे लोग बमशाही के नाम से सोर, सीरा में अपना प्रभुत्व जमाये हुए थे। भारतीचंद को यह बात असह्य हुई। उसने कर देना बंद कर दिया। युद्ध ठन गया। भारतीचंद ने एक बड़ी सेना लेकर काली के किनारे बाली-चौकड़ स्थान में डेरा डाल दिया, और डोटी के आस-पास के मुल्क में लूट-मार आरंभ कर दी। बारह वर्ष तक उस ओर संग्राम रहा। इतने दिनों तक पहले कभी सेना क़िलों के बाहर मैदान में न रही थी।

---

२२. नायकों की उत्पत्ति

"उन सिपाहियों का छावनी के आस-पास के गाँवों की स्त्रियों से नियम-विरुद्ध नियोग हो गया। बड़े-बड़े राजपूत अफ़सरों ने बिना विवाह के स्त्रियाँ

घरों में रख लीं। ये स्त्रियाँ 'कटकाली' (कटक + वाली) कहलाईं। इनकी सन्तान कमअसल गिनी गई, बाद में 'नायक' कहलाई, जो अपनी कन्याओं व बहिनों से वेश्या का घृणित पेशा कराने लगीं। इस कुकर्म से बहुत-से राजपूत हिंदुओं की आँखों में इतने गिर गये कि वे भी खस लोगों से भी कम गिने जाने लगे।" ऐसा अठकिंसन साहब अपने गज़ेटियर में लिखते हैं।

---

२३. डोटी-विजय

१२ वर्ष अपने पिता को संग्राम में संलग्न देखकर उनके वीर पुत्र कुँ० रत्नचंद ने कठेर के राजा की सहायता से और सेना एकत्र की, और अपने वीर पिता की सहायता को जा पहुँचे। जैसे अमेरिका से आई नई फ़ौज ने फ़्रांस में मित्र राष्ट्रों के सिर विजय का मुकुट बाँधा, इसी प्रकार कुँ० रत्नचंद की ताज़ी फ़ौज ने भी भारतीचंद के डेरे में नई जान डाल दी। डोटी के महाराजा की हार हुई। वह खेत छोड़कर भागे। साथ ही जुमला, बजांग व थल के राजा भी दबाये गये, और इस समय से चंद सब प्रकार से स्वतंत्र नृपति हो गये। डोटी के राजा का छत्र उठ गया। सोर-सीरा के राजा सब इनके अधीन हो गये। सन् १४५० में राजा भारतीचंद ने अपने जीवन-काल ही में अपने पुत्र को राजगद्दी दे दी, और आप राज-काज से अलग हो गये। राजा भारतीचंद के समय का एक ताम्रपत्र श्रीरामकंठ कुलेठा के नाम का है, जिसमें कुछ ज़मीन उनको दी गई है। राजा भारतीचंद १४६१ में स्वर्ग को सिधारे। आपने क़रीब १३ वर्ष राज्य किया।

---

२४. (३६) राजा रत्नचंद

[सन् १४५०—१४८८]

राजा भारतीचंद के सुयोग्य पुत्र राजा रत्नचंद अपने पिता की जीविता-वस्था में ही गद्दी पर बैठ गये थे। आप बड़े भाग्यशाली समय में सिंहासन पर विराजे। पहले राजा ने आपकी बहादुरी से प्रसन्न हो आपको चौगर्खा परगना रौत में दिया, तदुपरांत सारा राज्य ही आपको सौंप दिया। राजा रत्नचंद के समय कुमाऊँ के राजाओं का प्रभाव बहुत बढ़-चढ़ गया था। तमाम में उनका प्रभुत्व स्थापित हो गया था। सन् १४५२ में आप जागीश्वर-मंदिर में गये और अपने भाग्यशाली होने का कारण देवता को समझकर वहाँ बड़ी श्रद्धा से पूजा की, भंडारा किया, धर्मशाला बनवाई तथा पूजा व भोग के

राज्य करने लगे। कठेर उर्फ़ रोहिलखंड के राजाओं से भी इन्होंने मैत्री कर ली थी, और वह इनके साथ डोटी के युद्ध में लड़े थे। इन्होंने गद्दी पर बैठने के बाद अपने राज्य का दौरा किया। सब गाँववालों से मिलकर एक प्रकार का बंदोबस्त भी ज़मीन का ठहराया। कहते हैं कि चंदों में सबसे पहला बंदोबस्त इन्होंने ही किया था।

लिये बहुत-से गाँव चढ़ाये। वहाँ से लौटकर फिर चंपावत में बड़ी शान से

२५. डोटी से फिर युद्ध

भारतीचंद के राज्य-शासन के वृत्तांत में कहा गया है कि डोटी के महाराजा रैका या रणिका राजा कहलाते थे। यह मल्ल-खानदान के थे। राज्याधिकारी बड़े भाई तो रणिका या रैका कहलाते थे, किंतु राजकुमार मल्लाशाही कहे जाते थे। छोटे राजकुमार के खान-दान के एक राजा नागमल्ल ने शाहीवंश के डोटी के रणिका राजा को हराकर अपने को महाराजा बना लिया था। डोटी का राजा भाग-कर चंपावत में चंद-राजा के शरणागत हुआ। नागमल्ल ने अपने को सम्राट् ही न बनाया, बल्कि कुमाऊँ-राजा को फिर से अपने अधीन बनाना चाहा। डोटी के महाराजा अपने राज्य के छोटे-छोटे राजकुमारों को, जो उन्हें सम्राट् मानकर कर देते थे, राजा की पदवी धारण करने की आज्ञा देते थे। जब से चंद डोटी के छत्र से अलग होकर स्वतंत्र हुए, उन्होंने भी यही व्यवहार किया। वे अपने को चंपावत का राजा कहते थे। उनके क़िले का नाम राजबुंगा था, पर वे औरों को 'राजा' कहे जाने का अधि-कार न देते थे। राजा भारतीचंद की मृत्यु के बाद अर्थात् सन् १४६२ में राजा नागमल्ल ने शाही खानदान को निकाल अपने को डोटी का महाराजा बना लिया, और राजा रत्नचंद को भी खिराज देने को बाध्य किया, पर राजा ग़ाफ़िल न थे। इन्होंने फ़ौज ले जाकर नागमल्ल से खूब युद्ध किया। नागमल्ल मारे गए। राजा रत्नचंद ने फिर शाही खानदान के राजा को गद्दी पर बैठाया। कहाँ चंद-राजा डोटी के करद राजा थे, किंतु आज तराज़ू का पलड़ा लौट गया, अब डोटी के राजा इनके अधीन हो गए। इस विजय से प्रफुल्लित होकर राजा रत्नचंद ने जुमला, बजांग तथा थल प्रभृति राज्यों में भी धावा मारा। जुमला के राजा उस वक्त जगन्नाथ भट्ट थे। बजांग के राजा का नाम राजा खड्कूसिंह महर था, तथा थल के राजा सूरसिंह महर थे।

जब बचने का उपाय न देखा, तो इन तीनों ने मिलकर संधि कर ली, और कुमाऊँ के राजा को यह राज्य-कर सालाना प्रत्येक ने देना स्वीकार किया :—

(१) एक नाभा कस्तूरी, (२) एक धरायुँ (कमान), (३) एक टुर्णा यानी काँणों (तीरों) से भरा हुआ तरकस, (४) एक घोड़ा, (५) एक बाज़।

यह राज्य-कर तीनों मुल्कों के राजा हमेशा चंद-राजाओं को देते रहे। इसी कारण चंद के राज्य-शासन के अंत तक बजांग का राजा चंदों के दरबार से खिल्लत पाकर गद्दी पर बैठता था। १८वीं शताब्दी में ये छोटे-छोटे राज्य विस्तृत नैपाल-राज्य में शामिल हो गए। तब से यह राज्य-कर बंद हो गया।

बजांग के इन राजाओं के नाम ज्ञात हैं :—

१. राजा उत्तमसिंह
२. ,, रघुनाथसिंह
३. ,, शिवराजसिंह
४. ,, इंद्रसिंह
५. ,, रत्नसिंह
६. ,, महेंद्रसिंह
७. ,, गजराजसिंह (सन् १८५० में जीवित थे।)

---

२६. सोर के बम-राजा

डोटी में चंद-राज्य की विजय-पताका उड़ाकर राजा रत्नचंद की विजयिनी सेना ने सोर के परगने को भी कुमाऊँ-राज्य में मिला लिया। अब तक यह परगना सीरा के मल्ल राजा ने अपने राज्य में शामिल कर रक्खा था। सोर के ६ राजाओं में जिनके नाम ज्ञात हैं, उदयपुरकोट का राजा बम कहा जाता था। यह राजा जाड़ों के दिनों में रौलपट्टी के रामेश्वर की तरफ़ धूप सेंकने को जाता था, वहाँ बैलोरकोट-क़िले में रहता था। वहाँ भी महल तथा बाज़ार के खँडहर अभी विद्यमान हैं। एक बड़ा 'धार-में-का-नौला' राजा का बनवाया हुआ कहा जाता है। जब राजा गरमी या चातुर्मास में उदयपुरकोट में रहते थे, अस्तबल से घोड़ों को घुमाने व दौड़ाने के लिये साईस लोग नीचे मैदान में लाते थे। इस जगह का नाम

घोड़साल है। यह स्थान बजेटीगाँव के नीचे है। बम-राजाओं का पुश्त-नामा पूरा-पूरा नहीं मिलता। जितनों के नाम मिले हैं, वे नीचे दिए जाते हैं :—

१. कराकील बम
२. काकील बम
३. चनरी बम
४. अर्कि बम
५. ज्ञानी बम
६. शक्ति बम
७. विजय बम
८. हरि बम

इन राजाओं के पिछले राज-कर्मचारी पाटनी, पुनेठा तथा भट्ट थे। भट्ट तथा उपाध्याय पुरोहित व गुरु थे। जोशी, उप्रेती व पांडे ब्राह्मण भी राज-दरबार में पूजित थे। बलदिया जाति के लोग अपने को कठेड़ के कठेड़िये बताते हैं। ये लोग फ़ौज में शामिल थे।

सोराड़ी, देउपा, पुरचुड़ा, पड़ेरू, चिराल इन पाँच क़िस्म के राजपूतों को राजा रत्नचंद काली पार से सोर में लाये, और इनको जागीर देकर वहाँ बसाया। इनसे चंद-राजाओं की रिश्तेदारी भी होती थी। अब तक ये लोग विद्यमान हैं। केवल चिराल इनमें से फिर डोटी को चले गये हैं।

---

२७. श्रीजैदाँ किराल की कहानी

राजा बम के वक़्त एक राजकर्मचारी श्रीजैदाँ किराल था। वह मौज़े किरीगाँव पट्टी बलदिया का था। वह बंदोबस्ती अफ़सर था। उसने तमाम परगने का बंदोबस्त किया, और पहली नाप परगने की उसी ने की। उसने लोगों की छिपाई हुई ज़मीन भी काग़ज़ों में दर्ज कर मालगुज़ारी बढ़ा दी। रक़म बढ़ जाने से व छिपी ज़मीन को प्रकाशित करने के कारण श्रीजैदाँ लोगों में बदनाम हो गये। लोगों ने सलाह की कि जैदाँ को मारना चाहिए। जैदाँ कहीं आसपास के गाँवों को दबाने को गया था, जहाँ लोग मालगुज़ारी देने से इनकार कर ग़दर मचा रहे थे। लोगों ने षड्यंत्र रचकर वह झूठी खबर स्त्री के पास पहुँचाई कि जैदाँ मारा गया है। स्त्री पति के मरने की ख़बर सुनकर रो पड़ी। तब लोगों ने मक्कारी से सांत्वना दी कि अब वृथा

रोने से क्या होता है, जो होना था, हो गया। अब उनको अपनी इज्ज़त की रक्षा के हेतु सती हो जाना चाहिए, और यदि वह अपने पति के बनाये सब बंदोबस्ती काग़ज़ातों को लेकर जल मरे, तो मृतक पति की आत्मा को शान्ति मिलेगी। सती ने वैसा ही किया। उस दिन से यह क़िस्सा आम लोगों में चल पड़ा—

"मरि गयो जैदाँ जलाई हालि बै।
जसि जसि सोरयाल कूनी तसि तसि भै॥"

अर्थात् जैदाँ मर गया और उसकी बही जलाई गई। सोरवाले जैसा-जैसा कहते हैं, वैसा-वैसा हुआ।"

लोगों का षड्यंत्र यह था कि बंदोबस्ती काग़ज़ात जल जावें और जैदाँ किराल स्त्री तथा काग़ज़ात दोनों के जल जाने से फ़ौरन् मर जायगा। हुआ भी ऐसा ही।

राजा रत्नचंद २७ वर्ष राज्य कर संवत् १५४५, शाके १४१० तथा सन् १४८८ में स्वर्ग को सिधारे।

---

२८. (३७) राजा कीर्तिचंद

[सन् १४८८—१५०३]

राजा कीर्तिचंद सन् १४८८ में बड़े ठाठ-बाट से गद्दी पर बैठे। युद्ध में इनका नाम कुछ अपने पिता से कम नहीं है। यह बड़े वीर व निडर राजा कहे जाते हैं। यह रात-दिन फ़ौज तय्यार कर तथा उसे इधर-उधर भेजने में लगे रहते थे। यह चाहते थे कि हरएक का राज्य छीन लें। इस राजा के पिता ने डोटी-राज्य को कुमाऊँ-राज्य के अधीन बना लिया था, पर फिर डोटी के राजा ने अपने को स्वतंत्र बनाना चाहा। राजा कीर्तिचंद भी युद्ध की तय्यारी करने लगे। उधर डोटी राजा ने एक भारी फ़ौज लाकर काली के किनारे खड़ी कर दी, और कुमाऊँ-राज्य में वह फ़ौज छापा मारने लगी। कहा जाता है कि जब राजा चौपड़ खेल रहे थे, तब फ़ौज के चढ़ आने की ख़बर मिली। लश्कर बहुत होने की ख़बर सुन राजा कीर्तिचंद घबराये।

---

२९. नागनाथ सिद्ध की कथा

इतने में परमेश्वर की कृपा से बाबा नागनाथ सिद्ध नाम के एक योगीश्वर चंपावत में आये, और राजबुंगा के आगे डेरा किया। राजा उनके पास

गये। कुछ नज़राना पेश किया, और साथ ही अपने ऊपर डोटी के राजा की चढ़ाई का वृत्तान्त भी कहा। फ़क़ीर दयावान् था। राजा को ढाढ़स दिलाकर कहा कि राजा युद्ध में न जावें। साधु ने एक चाबुक निकालकर कहा कि उसे राजा अपने बक्सी अर्थात् सेनापति को दे दें, और उसकी मदद से सेनापति रैका-राजा को हरामज़ादे घोड़े की तरह हाँक देगा। राजा प्रसन्न हुए, और फ़क़ीर का दिया हुआ चाबुक लेकर अपने महल में आये, और बक्सी को सब बातें समझाईं। राजा कीर्तिचंद युद्ध-प्रेमी पुरुष थे। वह युद्ध में खुद जाना चाहते थे, पर सिद्ध बाबा के कहने से रुक गये। बक्सी यानी सेनापति के हुक्म के अनुसार चाबुक लेकर डोटी में गये। उनकी सेना विजयी हुई। डोटी की सेना हार गई। उस दिन से कीर्तिचंद पूर्ण प्रतापी राजा माने गये। नागनाथ बाबा का प्रभाव राजा के ऊपर अच्छी तरह छा गया। उनका मंदिर अभी तक चंपावत-क़िले के सामने है। बाबा नागनाथ राजा के प्रधान सम्मतिकार हो गये। फिर बाबा ने राजा से कहा कि वह समय युद्ध के लिये अच्छा है। मुहूर्त सुन्दर है। पश्चिम तरफ़ भी युद्ध करने से विजय होगी। उनके गुरु श्रीसत्यनाथजी गढ़वाल में गये हैं। बाबा नागनाथ ने कहा कि वहाँ तक वह अपने मुल्क को फैलावें, और निर्भय होकर राज्य करें।

---

३०. दूसरी कहानी

बाबा नागनाथ के बारे में एक प्राचीन वंशावली में यह भी लिखा है—"राजा से नागनाथ नाम कनफटे जोगी ने यह कहा कि जहाँ तक उनके 'नाद' का शब्द होगा, वहाँ तक कोई शत्रु खड़ा नहीं रहेगा, और देश पर विजय होगा।" एक ठौर में पर्वतीय भाषा में यह लेख है—"नागनाथ जोगी द्वार बैठियो छियो। जोगी लै अपनो बानों सेलीनाद भगवा कपड़ा करी, कीर्तिचंद का ७०० कटक करा। यो कयो कि जां तक नाद को शब्द सुनाले तां तक मुल्क फतह होई, तेरो राज्य होई जालो। राजा मुल्क सर करणासूं लगाई दियो। राजा लै पैली चौभैंसी मारी, फिर सालम मारो, फल्दाकोट, उचाकोट, धनियाँकोट मारा। कोटौली, छखाता, कोटा मारी, बारामंडल पछौं मारी। गढ़ मारी, गढ़ को राजा भाजीबेर दुमाक गयो। जोगी का प्रभाव लै कैले ठाड़ी नी करी। फिर गढ़ को राजा बुलाई वीको राज्य दियो और वीका सिर सूनूँ को कर ठहरायो।"

अर्थात्—"नागनाथ बाबा राजद्वार पर बैठे थे। बाबा ने अपने कपड़े भगवा रंग में रँगाये और राजा कीर्तिचंद की ७०० फ़ौज इकट्ठी की। यह कहा

कि जहाँ तक बाजे का शब्द सुनाई देगा, वहाँ तक राज्य उसका होगा। राजा को मुल्क फ़तह करने को भेजा। राजा ने पहले चौभैंसी जीती, फिर सालम, फल्दाकोट, उचाकोट, धनियाँकोट पर अधिकार किया। कोंटोली, छखाता, कोटा, बारामंडल व पाली-पछाऊँ पर भी विजय पाई। गढ़वाल को भी सर किया। गढ़ का राजा भागकर छिप गये। बाबाजी के प्रभाव से कोई राजा के सामने न ठहर सका। फिर गढ़वाल के राजा को बुलाकर उनका राज्य उन्हें वापस दिया, और उनको सोना राज्य-कर देने को बाध्य किया।"

३१. बारामंडल-विजय

बारामंडल व बिसौत में खस-राजाओं के पश्चात् तथा कार्त्तिकेयपुर की प्रचंड कीर्ति के अवसान के बाद कत्यूरी-खानदान के छोटे-छोटे मांडलीक राजाओं का राज्य वहाँ हो गया था। ७० वर्ष पूर्व जब राजा उद्यानचंद चंपावत में राज्य करते थे, तो राजा वीरसिंहदेव कत्यूरी ने बानणीदेवी के पूर्व बिसौतकोट पर अधिकार जमा लिया था। उसका इलाक़ा सुँवाल नदी तक था। सुँवाल नदी के उस ओर एक दूसरा कत्यूरी-राजा खगमरकोट में, जो अल्मोड़ा-पर्वत के नीचे है, राज्य करता था। सुँवाल नदी के किनारे, अठकिन्सन साहब लिखते हैं कि एक पुराने मंदिर में एक पत्थर मिला था, जिसमें अर्जुनदेव संवत् १३६४ (सन् १३०७) लिखा हुआ था, और अल्मोड़ा में एक मंदिर के एक पत्थर में संवत् १४०५ (सन् १३४८) लिखा था। निर्माता का नाम निरमपालदेव था। ये दोनों नाम कत्यूरी-राजाओं के ज्ञात होते हैं। राजा उद्यानचंद ने बालेश्वर-मंदिर का जीर्णोद्धार भी किया था, किन्तु प्रतिष्ठा में पं० श्रीचंद तेवाड़ी को न बुलाकर उनके पुत्र पं० शुकदेव तेवाड़ी को बुलाया। श्रीचंद रुष्ट होकर जिस प्रकार खगमरकोट में आये, वह हाल पिछले पत्रों में लिखा गया है। बिसौत-राजा ने ज्यों ही खगमरकोट जीता था कि पीछे से चंदों की फ़ौज ने बिसौत व बारामंडल, दोनों में अधिकार जमा लिया। पहले खगमरकोट में अधिकार कर फिर स्यूनरा में चढ़ाई की।

३२. कैड़ारौ-बौरारौ चंद-राज्य में शामिल

स्यूनरा से कत्यूरी-राजा बौरारौ में भागा। वहाँ कत्यूरी व उनके सिपाही बड़ी बहादुरी से लड़े। रात में कत्यूरी-राजा ने छापा मारकर राजा कीर्तिचंद की आगे बढ़ी हुई फ़ौज को मार डाला। इससे राजा कीर्तिचंद बहुत क्रोध से

भर गये। उन्होंने कैड़ारौ व बौरारौ में मार-काट (क़त्ले-आम) का हुक्म दे दिया। जो लोग जहाँ मिले, वहीं मारे गये। गगास व कोसी के बीच के मुल्क को राजा रत्नचंद ने अपने अधीन किया। तब अपने साथ के कैड़ा व बौरा जाति के लोगों को 'कमीनचारी' का पद देकर कैड़ारौ व बौरारौ को आबाद किया।

३३. पाली-विजय

इसके पश्चात् पाली के ऊपर राजा कीर्तिचंद ने अपना विजयी लश्कर चढ़ाया। पाली के राजाओं ने यह समझकर कि वे राजा कीर्तिचंद से सामना करने में असमर्थ हैं और यदि मुक़ाबिला करते हैं, तो जो हाल बारामंडल का हुआ, वही उनका भी होगा। पाली के कत्यूरी-राजा ने राजा कीर्तिचंद के पास सुलह का संदेश भेजा, और उनको लखनपुर के क़िले के भीतर बुलाया, और मेल-मिलाप के बाद कहा कि राजा चंद पाली परगने को अपना ही समझें। सारी प्रजा उन्हीं की समझी जावे। उसे किसी प्रकार तंग न किया जावे। पाली के कत्यूरी-राजाओं ने सल्टपट्टी के भीतर मानिला डाँडा में अपना महल बनवा लिया। वहीं क़िला भी बनवाया। राजा कीर्तिचंद ने भी पाली में अपना अधिकार जमाकर कत्यूरियों को मानिला तथा पाली में शान्तिपूर्वक रहने दिया। पर वे एक प्रकार के ज़मीदार हो गये।

३४. फल्दाकोट की लड़ाई

पाली को सर करके राजा कीर्तिचंद ने फल्दाकोट पर चढ़ाई की। वहाँ खाती-राजा राज्य करते थे। क़िस्सा भी है—

"पहाड़ में खाती, देश में हाथी।"

फल्दाकोट के राजा से बड़ी विकट लड़ाई हुई। पर राजा मारे गये, किन्तु उनके सिपाही व पट्टी के लोग बराबर लड़ते रहे। वहाँ भी राजा कीर्तिचंद ने तमाम फल्दाकोटियों का क़त्ले-आम कराया, और अपने सिपाहियों में से महरा, करायत, ढेक आदि को कमीन, सयाना तथा जागीरदार बनाकर फल्दाकोट में बसाया, और साथ ही सब पट्टियों का बंदोबस्त कर, सब काम अफ़सरों को सौंप कोटा व कुटौली को भी सर किया, और ध्यानिरौ होकर चंपावत में लौटे। इसके बाद वह माल यानी देश की तरफ़ गये और जसपुर के पास अपनी चौकी स्थापित की, जिसका नाम कीर्तिपुर रक्खा। वह अब तक

उसी नाम से विख्यात है । कीर्तिचंद के समय में कत्यर, दानपुर, अस्कोट, सीरा, सोर को छोड़कर सारा कुमाऊँ उनके हाथ आ गया था। यह राजा सन् १५०३ में प्रायः कूर्मांचल के ३/४ हिस्से को जीतकर स्वर्गधाम को सिधारे। गढ़वाल को भी फ़तह करने के इरादे से यह राजा कहते हैं कि बाहारस्यूँ तक पहुँचे, किन्तु बाद को बाबा सत्यनाथ के कहने से देघाट के पास सरहद मुक़र्रर कर, देघाट के पश्चिम तरफ़ के मुल्क को गढ़वाल के राजा के लिए छोड़ दिया। पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं कि इस राजा का राज्य भागीरथी के किनारे तक देश में भी था। राजा कीर्तिचंद चंदवंश में सबसे प्रतापी, कर्मशील तथा विजयी राजा हुए हैं।

३५. (३८) राजा प्रतापचंद

[सन् १५०३—१५१७]

राजा प्रतापचंद सन् १५०३ में राजगद्दी पर बैठे। यह अपने पिता के जीते हुए मुल्क के शासन तथा राज-काज में लगे रहे । इन्होंने कोई नया मुल्क सर नहीं किया, बल्कि अपने पिता के जीते हुए मुल्कों में दौरा करते रहे। उनका जीता हुआ सारा मुल्क इनके अधीन रहा। १५१० सन् का इनके समय का एक दान-पत्र है। यह १५१७ में मर गये।

३६. (३९) राजा ताराचंद

[सन् १५१७—१५३३]

राजा प्रतापचंद के बाद राजा ताराचंद ने १६ वर्ष राज्य किया, किन्तु इनके विषय में कोई भी बातें मालूम नहीं हैं।

३७. (४०) राजा मानिकचंद

[सन् १५३३—१५४२]

सन् १५३३ में राजा ताराचंद की मृत्यु के बाद राजा मानिकचंद राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने ६ वर्ष तक राज्य किया। इनके समय में एक स्मरणीय घटना हुई। सन् १५४१ में खवासखाँ, जो दिल्ली के तख्त के लिए इसलामशाह के प्रतिद्वन्द्वी थे, भागकर कुमाऊँ में आये और शरण माँगी। इस पर दिल्लीश्वर ने कुमाऊँ के राजा को लिखा कि वह खवासख़ाँ को दिल्ली भेज दें। शाही सेनापति को हुक्म हुआ कि अगर कुमाऊँ का राजा खवासखाँ को उनके हवाले न करेगा, तो उसका मुल्क उजाड़ा जावेगा। राजा ने उत्तर में जो लिखा, वह

३८. सोने की क़लम

से लिखे जाने योग्य है—"मैं उस आदमी को किस प्रकार क़ैद कर सकता हूँ, जिसने मेरी शरण माँगी है। जब तक मेरे दम में दम है, मैं ऐसे नीच कर्म का अपराधी नहीं हो सकता।"

खवासखाँ ने बाद को आत्मसमर्पण कर दिया, और इसलामशाह की आज्ञा से उसका सिर काटा गया, और उसकी खाल में भुस भरा गया। पर अठकिन्सन साहब लिखते हैं कि कुमाऊँ के चंद-राजाओं की इस बहादुरी के वृत्तान्त की तारीफ़ श्रीअब्दुल्ला ने अपने तवारीख़-ए-दाऊदी में की है।

(The Magnanimity shown by the Kumaon Raja is a bright spot in the annals of the Chands and is recognised even by Mussalman historian—Atkinson.)

अर्थात्, "कुमाऊँ के चंद-राजा ने जो उदारता दर्साई, वह चंदों के इतिहास में एक दिव्य वस्तु है। इसकी बड़ाई मुसलमान इतिहासकारों ने भी की है।"

'दिल्लीश्वरों वा जगदीश्वरों वा' को ऐसे शब्द एक छोटे-से राजा का लिखना सामान्य साहस नहीं, बल्कि दिलेरी (Chivalry) की बात है, पर्वतीयों की नेकनीयती व 'शरणागत' धर्म-पालन का जाज्वल्यमान उदाहरण है।

---

३९. (४१) राजा कल्याणचंद (३)

[सन् १५४२—१५५१]

६ वर्ष राज्य कर राजा मानिकचंद स्वर्ग को गये। उनके पश्चात् राजा कल्याणचंद गद्दी पर बैठे। यह राजा बड़े खराब मिज़ाज के थे। इससे लोगों ने इनका नाम कलिकल्याणचंद रख दिया था। इन्होंने बहुत अत्याचार किये, और जा-बजा लोगों को सज़ाएँ दीं, जिससे कहा जाता है कि तमाम प्रजा में असन्तोष बढ़ा।

---

४०. (४२) राजा पुनीचंद उर्फ़ पूर्णचंद

[सन् १५५१—१५५५]

राजा कलिकल्याणचंद के बाद कुँ० पुनीचंद उर्फ़ पूर्णचंद राजा हुए। चार वर्ष राज्य कर मृत्युमंडल से चल बसे। इनके बाद राजा भीष्मचंद उर्फ़ भीखमचंद गद्दी पर बैठे।

---

४१. (४३) राजा भीष्मचंद

[सन् १५५५—१५६०]

राजा भीष्मचंद सन् १५५५ में गद्दी पर बैठे। यह राजा भी अच्छे स्वभाव के न थे। इनके संतान भी न थी। इससे इन्होंने राजा ताराचंद के पुत्र कुँ० कल्याणसिंह को गोद लिया। इनका प्यारा नाम बालो था। इसी से यह बालो कल्याणचंद के नाम से प्रख्यात हुए। सन् १५५६ में डोटी में फिर षड्यंत्र (चाला) हुआ। कँ० बालो कल्याणसिंह वहाँ फ़ौज लेकर भेजे गये। इसी समय पाली व स्यूनरा से भी राष्ट्र-विप्लव की खबर आई। बूढ़े राजा को फ़ौज लेकर उधर जाना पड़ा। राजा भीष्मचंद को यह भी ज्ञात होने लगा कि चंद-राज्य का विस्तार बढ़ गया है। चंपावत राजधानी एक कोने में है। वह राजधानी के लिये ठीक स्थान नहीं। राजधानी किसी केन्द्र-स्थान में होनी चाहिए। इसलिये राजा भीष्मचंद ने खगमराकोट के पुराने क़िले का जीर्णोद्धार कर उसे राजधानी स्थापित करने का इरादा किया। वहाँ पर आलमनगर की नींव भी डाली गई। इस बात की चर्चा ज्यों ही इधर-उधर फैली, तो उनके नगर-निर्माण-नीति को चौपट करने के लिये एक षड्यंत्र रचा गया। गागर के पास रामगाड़ में श्रीगजुवाठिंगा नाम का एक खस-जाति का सरदार था, जो अर्द्ध-स्वतंत्र नृपति अपने को कहता था। वह राजा कीर्तिचंद की चढ़ाई के समय दबाये जाने से बच गया था। उसने बहुत-सी सेना एकत्र कर खगमराकोट पर चढ़ाई की, और जब राजा भीष्मचंद क़िले में सो रहे थे, खस-राजा श्रीगजुवाठिंगा ने रात को चुपके से वहाँ जाकर बूढ़े चंद-राजा का सिर काट डाला, और उनके बहुत-से सोते साथियों को भी मार डाला, और उसने अपने को बारामंडल का राजा भी बना लिया, पर उसका स्वतंत्रता का स्वप्न बहुत दिनों तक स्थिर न रहा। ज्यों ही यह ख़बर काली-कुमाऊँ में पहुँची, बालो कल्याणचंद ने डोटियालों के साथ तो सुलह कर ली, और सारी फ़ौज लेकर रामगाड़ व खगमराकोट पर चढ़ाई कर दी, और अपने पिता की मृत्यु का ज़ोरदार बदला लिया। सबको क़त्ल किया। गजुवाठिंगा भी मारे गये। मुक़ाम गजुवाठिंगा में मारे जाने से उस जगह का नाम अब तक वही प्रसिद्ध है। यह घटना सन् १५६० में हुई। राजा बालो कल्याण-चंद ने अपनी विजय-दुन्दुभी कुटौली व रामगाड़-प्रान्त में फिर से बजाई।

---

४२. (४४) राजा बालो कल्याणचंद

[सन् १५६०—१५६८]

चारों ओर शान्ति स्थापित कर और अपने बूढ़े पिता की मृत्यु का बदला ले राजा बालो कल्याणचंद गद्दी पर बैठे। इन्होंने अपने पिता की इच्छानुसार खसियाखोले डाँडे के ऊपर नगर बसाया। यहाँ से इन लोगों को कटारमल्ल देवता के बर्तन मलने को भिल्मोड़ा घास (कुछ लोगों ने अल्मोड़ा, चल्मोड़ा, भिल्मोड़ा, किल्मोड़ा भी लिखे हैं) ले जाने का हुक्म था। यह स्थान राजा ने अपने महल बनाने को पसंद किया। राजा ने कहा कि वह स्थान उनके राज्य के मध्य में है। वहाँ जल भी बहुत है। पत्थर भी चिनाई व छवाई का बहुत उत्तम है। देवदारु का जंगल लकड़ी के लिये काफ़ी है। इसलिये देवलीखान, त्याड़ीखान, सिटौलीखान व चीनाखान के बीच शहर बनाना निश्चित हुआ। पर यह जगह श्रीचंद तेवाड़ी की थी। कत्यूरी-राजा ने दान में दी थी, इस कारण राजा ने उनकी सनद मँगाई। उनकी ज़मीन तथा खालसा ज़मीन अलग करवाई। कुछ मुआविज़ा दिया। राजा ने इस जगह से दसगुनी ज़मीन छखाते के परगने के नदीगाँव में दी। उन्होंने पहला महल अपने वास्ते पुराने नैलपोखर के ऊपर बनवाया। नैलपोखर की जगह अब पल्टन बाज़ार है। राजा ने बाज़ार व नगर बनाने का भी हुक्म दिया।

नाम आलमनगर तो चला नहीं, अल्मोड़ा ही चल पड़ा। कहते हैं, "अल्मोड़ा घास ले जानेवाले अल्मोड़ियों से अल्मोड़ा नाम पड़ा।" अल्मोड़ा नगर संवत् १६२० शाके १४८५ तथा सन् १५६३ में बसाया गया।

इस राजा के साथ कालीकुमाऊँ से सेलाखोला व झिजाड़ के जोशी, वज़ीर व बक्सी-पद पर जो पहले से नियुक्त थे, साथ आये। यहाँ भी इनको झिजाड़ आदि गाँव जागीर में मिले। चौथानी ब्राह्मणों में से डड्या के बिष्ट व मंडलिया पांडे पहले ही पदों से अलग हो गये थे। वे कालीकुमाऊँ में रहे। कुछ कर्मचारी कालीकुमाऊँ से अल्मोड़ा आये, बाक़ी वहीं रहे।

परन्तु कालीकुमाऊँ के लोगों में असन्तोष देखकर बाद को अल्मोड़ा में भी महरा व फरत्याल दोनों दलों (धाड़ों) के लोगों को व चौथानी ब्राह्मणों को बसाया, और अन्य प्रान्त—बारामंडल, पाली, फल्दाकोट आदि में ब्राह्मण, राजपूत व खस-राजपूतों को बसाकर दो दलों (धाड़ों) में पूर्ववत् बाँट दिया। पाली के कत्यूरी-राजाओं की सन्तान सयानचारी में क़ायम रक्खी। उनसे वैवाहिक संबंध भी किये।

---

४३. गंगोली के मणकोटी राजा

ज्यों ही अल्मोड़ा में चंद-राजाओं का दरबार स्थापित हुआ था कि गंगोली से लड़ाई-झगड़े की खबर आई। सरयू व रामगंगा के बीच की रमणीक व उपजाऊ भूमि गंगावली (गंगोली) के नाम से विख्यात है। यहाँ पर बहुत दिनों से एक चंद्रवंशी राजा राज्य करते आये थे। ये मणकोटी राजा कहलाते थे। ये प्रायः स्वतंत्र थे। डोटी के महाराजा को साधारण कर देते थे। इस वंश के मूल-पुरुष राजा कर्मचंद थे। इनके उप्रेती दीवान थे। राजा की मंत्रियों से लड़ाई हो गई। उप्रेती मंत्री ने छल करके राजा को शिकार खेलते हुए जंगल में मरवा दिया, और यह प्रकाशित कर दिया कि राजा को बाघ ने मारा है। रानी को इस बात में संदेह हुआ। उसने अपने पुत्र को पन्त ब्राह्मणों के सिपुर्द किया, और आप राजा की पगड़ी के साथ सरयू-गंगा में सती हो गई। सती होते वक़्त कहते हैं कि रानी ने शाप दिया—"चूँकि कहा गया है कि मेरा पति बाघ से मार गया है, इससे भविष्य में भी यहाँ पर लोग बाघ द्वारा मारे जावेंगे।" गंगोली में अब तक बाघ बहुत होते हैं। क़िस्सा भी है--

"खत्याड़ी साग—गंगोली बाग।"

पन्तों ने सती को दिये हुए अपने वचन को पूर्ण किया, और कर्मचंद के पुत्र ताराचंद को गद्दी पर बैठाया। उप्रेतियों की भूमि उप्रेत्यड़ा उर्फ़ उपराड़ा भी पन्तों को जागीर में मिल गई। सब कारबार पंतों के हाथ आया। यही दीवान, पौराणिक, वैद्य व राजगुरु हुए। सेनापति-पद पर भी इन्हीं में से हुए। इन्हीं पंतों में सेनापति पुरुष पंत एक वीर प्रतापी हुए हैं।

मणकोटी राजाओं में सिर्फ़ आठ राजाओं के नाम ज्ञात हैं—

(१) राजा कर्मचंद। (५) राजा पुन्यचंद।
(२) राजा सीतलचंद। (६) राजा अनीचंद।
(३) राजा ब्रह्मचंद। (७) राजा नारायणचंद।
(४) राजा हिंगुलचंद।

बाक़ी राजाओं के नाम ज्ञात नहीं हैं।

जाह्नवी नौले में सन् १२६४ का एक पत्थर गंगोली राजाओं के वक़्त का है। इसमें सोमती नाम पढ़ने में आया, बाक़ी नहीं। बैजनाथ के मंदिर में सन् १३५२ का एक पत्थर निकला था, जिसमें लिखा है कि गंगोली के राजा (हमीरदेव, लिंगराजदेव, धरालदेव) ने मंदिर का कलश बनवाया। वहीं पर गौरी महेश्वरी के भोग-मंदिर में यह बात खुदी हुई है कि हमीरदेव के समय

काल्हण पंडित की स्त्री सुभद्रा ने अपना व्रत पूरा किया। दो-एक ताम्रपत्र इन राजाओं के मिले हैं, पर पूरा-पूरा इतिहास इनका अप्राप्य है।

मणकोटी राजा पहले दीवान उप्रेती, फिर पंत हुए। ये दोनों ब्राह्मण कत्यूरी-राजाओं के समय से यहाँ आए हुए हैं।

मणकोटी राजा के यहाँ लिखने का काम चौधरी करते थे। ये अब तक गंगोली में विद्यमान हैं। कत्यूरी-राजाओं के वक़्त से ये द्वाराहाट में बसे थे।

गंगोली के अन्तिम मणकोटी राजा नारायणचंद ने राज्य में गड़बड़ मचाई, और बालो कल्याणचंद को गंगोली पर चढ़ाई करने का अवसर दिया। कल्याणचंद ने गंगोली को अपने राज्य में मिला लिया।

४४. "सीरा नहीं, सोर"

बालो कल्याणचंद को काली नदी को अपने राज्य की सीमा बनाने की बड़ी अभिलाषा थी। ऊँचे-ऊँचे पर्वतों की चोटियों से वह सोर, सीरा, अस्कोट परगनों को उसी इच्छा-भरी दृष्टि से देखता था, जैसे बाबर ने पश्चिमी सरहद के पर्वतों से हिन्दुस्तान के हरे-भरे, लंबे-चौड़े मैदानों को देखा था। राजा कल्याणचंद की रानी डोटी के रैका-राजा की लड़की थी, और वहाँ के रैका-राजा हरिमल्ल की बहिन थी। बालो कल्याणचंद ने रानी से सीरा दहेज़ में माँगने को कहा, पर मल्ल राजा ने कहा—"सीरा का राज्य मेरा सिर है, उसे कदापि न दूँगा, पर सोर दहेज़ में दे दूँगा।" अतः सीरा तो दिया नहीं, पर सोर दहेज़ में दे दिया, जिस पर कल्याणचंद ने अपना अधिकार जमा लिया। पर वहाँ की प्रजा बाग़ी हो गई। तब राजा ने कालीकुमाऊँ व बारामंडल से लेगुराल व बेलवाल क़ौमें सोर में बसाईं, और इनके द्वारा वहाँ पर अच्छी तरह दख़ल किया।

४५. दानपुर-विजय

सोर में शान्ति स्थापित करने के बाद दानपुर के छोटे-छोटे खस-राजाओं को पछाड़कर अपने राज्य में मिला लिया। यहाँ पर कोई बड़ा राजा न था। छोटे-छोटे राजा थे। उन सबका नाम-मात्र का सरदार दाणू-वंश का था, जिनकी संतान अब भी है। दानपुर की भूमि को रौतेलों में बाँट दिया। चंद-खानदान के गद्दीनशीन राजाओं के अतिरिक्त अन्य छोटे वंशज रौतेले कहलाते थे। ये लड़ाई में फ़ौजदार व सेनापति बनते थे। लूट-पाट में भी शामिल रहते थे। ये लोग जगह-जगह भूमि देकर छोटे-छोटे ज़मींदार बनाये गये, और राजसी

ख़ानदान के होने से (चाहे जायज़ व नाजायज़, कोई हों—अठकिन्सन) ये लोग चंद-राज्य के खंभ के सदृश हो गये, और चंद-राज्य के प्रभाव को बढ़ाने में इन्होंने अच्छी सहायता पहुँचाई। आठ वर्ष का, पर अपना तूफ़ानी शासन समाप्त कर, चंद-राज्य का विस्तार और बढ़ा तथा अल्मोड़ा को राजधानी बनाकर यह राजा उस लोक को सिधारे, जहाँ मृत्यु के बाद सभी जाते हैं। यह घटना संवत् १६२५, शाके १४६० तथा सन् १५६८ में हुई।

---

४६. (४५) राजा रुद्रचंद

[सन् १५६८—१५६७]

राजा रुद्रचंद सन् १५६८ में गद्दी पर बैठे। उस समय यह बहुत छोटे थे। रनवास के तथा अपने पुरोहितों के प्रभाव में बँधे हुए थे। गद्दी पर बैठते ही खबर आई कि दिल्ली के सूबा ने तराई-भावर ज़ब्त कर लिया है। यह खबर सुनकर बालेश्वर का एक पुजारी रामदत्त भी राजा के पास पहुँचा, और कहने लगा कि महादेवजी कहते हैं कि वे ज़मीन में गड़े हैं, कोई उन्हें निकाले। इससे आपके राज्य की वृद्धि रुक गई है। रुद्रचंद चंपावत गये। मंदिर की मरम्मत की। महादेवजी को स्थापित किया, और गाँव पीछे नाली रामदत्त के लिये बाँध दी। तब से यह क़िस्सा प्रचलित है—

"रुद्रचंद्र की आली तो रामदत्त की नाली।"

इन्हीं रामदत्त के वंशज मानगिरि व निर्मलगिरि बाद को श्रीगणनाथ-मंदिर में आकर रहने लगे, और वहाँ पर पं० श्रीवल्लभ पांडेजी ने उन्हें महंत बनाया। श्रीरामदत्त की समाधि चंपावत में बालेश्वर-मंदिर के निकट बनी है।

---

४७. हुस्सैनख़ाँ टुकुड़िया

पश्चात् तराई से फिर समाचार आया कि काठ व गोला (शाहजहाँपुर) के नवाब हुस्सैनखाँ टुकुड़िया ने तराई-भावर में अपना अधिकार कर लिया है। यह नवाब उस समय दिल्ली का एक सूबेदार था। यह सन् १५६६ में लखनऊ में भी गवर्नर यानी लाट था। यह बड़ा ज़ालिम था। कहते हैं, जब लाहौर में सूबेदार था, तो इसने एक दिन ग़लती से एक हिन्दू को मुसलमान समझकर सलाम किया। बाद को इसने हुक्म दिया कि हिंदू अपने कंधे से एक टुकड़ा कपड़े का लगावें, ताकि मालूम हो जावे कि वे हिंदू हैं। टुकड़ा लगाने का हुक्म

देने से इसका नाम टुकुड़िया पड़ गया। इसने फ़रिश्ते में पढ़ा होगा कि कुमाऊँ का राजा बड़ा धनी है। उसके यहाँ सोना भी होता है। उसकी ८०००० फ़ौज है, इत्यादि, अतः इसने पर्वतीय इलाक़े में लूटपीट मचाई। मंदिर तोड़े, पर बरसात में इसकी फ़ौज कठिनाई में फँस गई। पहाड़ी लोग घर छोड़ ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों में चले गये। वहाँ से तीर व पत्थर बरसाने लगे। इस तरह हुस्सैनखाँ को लौटना पड़ा। बाद को इसी हुस्सैनखाँ को काठ व गोला (शाहजहाँपुर) जागीर में मिला। १५७५ में इसने दूसरा धावा मारा। तमाम में मंदिर तोड़ डाले। बहुत-सा धन लूटकर यह देश को लौटा। बादशाह अकबर को जब इसके बारे में अन्याय की ख़बरें मिलीं, तो इसको दिल्ली आने का हुक्म हुआ। यह दिल्ली गया, पर वहाँ एक गोली के घाव से, जो पहाड़ी युद्ध में लगी थी, यह मर गया।

---

४८. तराई पर फिर क़ब्ज़ा

हुस्सैनखाँ की मृत्यु के बाद राजा रुद्रचंद ने सेना एकत्र की, और तराई पर अधिकार फिर से प्राप्त किया, और मुसलमानों को वहाँ से मार भगाया। इसकी शिकायत जब दिल्ली पहुँची, तो नवाब कटघर बड़ी सेना लेकर चढ़ आये। उस फ़ौज के सामने राजा की फ़ौज कुछ भी न थी। राजा रुद्रचंद ने यह तजवीज़ पेश की कि तराई के बारे में सारी फ़ौज में लड़ाई न होकर दोनो ओर के दो अफ़सरों में लड़ाई होवे। जो जीतेगा, उसे तराई मिलेगी। कुमाऊँ के प्रतिनिधि ख़ुद राजा रुद्रचंद थे, और मुग़लों की ओर से मुग़ल-नेता था। यह युद्ध 'इकफ़ा' कहा जाता था। दोनों में युद्ध हुआ। भाग्य की बात है, राजा रुद्रचंद जीत गये। राजा रुद्रचंद्र की बहादुरी की बातें सुनकर कहते हैं कि अकबर बादशाह ने उन्हें लाहौर बुलाया। वहाँ जाकर नागौर की लड़ाई में इन्हें भेजा। उस युद्ध में राजा रुद्रचंद तथा उनकी कुमावनी सेना ने बड़ी बहादुरी दर्शाई, जिससे प्रसन्न होकर बादशाह अकबर ने राजा रुद्रचंद को चौरासी माल का फ़रमान दे दिया, और खिल्लत भी दी। चौरासी माल तराई-भावर को कहते थे। यह चौरासी कोस का टुकड़ा था। राजा रुद्रचंद को दरबार में आने से भी बरी कर दिया। "रुद्रचंद ने शाही मंत्री बीरबल को अपना पुरोहित भी बनाया। चंद-राज्य के अंतिम काल तक यानी राजा दीपचंद के समय तक बीरबल के खानदान के लोग कनागतों (श्राद्धों) में आकर अपना दस्तूर वसूल कर ले जाते थे।" मौ० अब्दुलक़ादिर बदायूनी अपनी तवारीख

में लिखते हैं—"१५८८ में कुमाऊँ का राजा सिवालिक पहाड़ होकर लाहौर आया। बादशाह सलामत से उसकी मुलाक़ात हुई। न वह, न उनके बाप-दादा (खुदा उनको ग़ारत करे) कभी बादशाह से मिल सकने का साहस कर सकते थे, वह बहुत-से नायाब तोहफे लाया—एक तिब्बती याक (गाय), एक कस्तूरा, घोड़े वग़ैरह। कस्तूरा गरमी से मर गया। उसके राज्य में ऐसे भी आदमी होते हैं, जिनके पर होते हैं........।" कुमाऊँ के राजा की बहादुरी से बादशाह अकबर प्रसन्न हुए, किंतु इतिहास-लेखक ने ऐसी ओछी भाषा से क्यों काम लिया, समझ में नहीं आता। जहाँगीरनामे में लिखा है कि कुमाऊँ के राजा लक्ष्मीचंद के पिता राजा रुद्रचंद को राजा टोडरमल के लड़के ने बादशाह के सामने पेश किया था।

तराई-भावर में बराबर उपद्रव होते आये हैं। कई बार इसकी छीना-झपटी होती रही। किन्तु सबसे प्रथम चंद-राजाओं में राजा रुद्रचंद ने इसका पक्का इन्तज़ाम किया। राजा रुद्रचंद ने रुद्रपुर-नगर बसाया, वहाँ महल व क़िला भी बनवाया और ठौर-ठौर में शासक यानी लाट मुक़र्रर किये। तराई में इस वक़्त ख़ूब आबादी थी। दिल्ली व तराई से लौटने पर कहते हैं कि राजा को रातोरात अल्मोड़ा पहुँचने की फ़िक्र लगी थी। रास्ते में अँधेरे में लगाम टूट गई। राजा के साईस बदकरिया ने एक साँप को पकड़कर, रस्सी समझ लगाम ठीक कर दी। सुबह को पता चला। यह अच्छा सगुन समझा गया। राजा ने साईस को इनाम दिया। गाँवों की फ़सल में से 'नाली' भी ठहरा दी। इस राजा के वक़्त की ये सनदें विद्यमान हैं—

सन् १५६५ श्रीदेवीदत्त चौधरी के नाम।
,, १५६८ बूढ़ा केदार-मंदिर के नाम।
,, १५७५ श्रीआनन्द पांडे के नाम।
,, १५६४ चामी के पांडों के नाम।
,, १५९६ श्रीकृष्णानन्द जोशी (गल्ली) के नाम।
,, ,, एक गाँव बदरीनाथ-मंदिर के नाम।

दिल्ली से लौटने पर राजा रुद्रचंद ने अल्मोड़ा में क़िला व महल बनवाया, जिसको मल्ला-महल कहते हैं। वहाँ पर इस समय कचहरी व खज़ाना है। आँपने अपने पिता का बनवाया महल छोड़ दिया। वहाँ पर देवी तथा भैरव के मन्दिर बनवाये गये। आपके समय में त्रैवर्णिक धर्म-निर्णय-नामक एक पुस्तक भी बनी, जिसमें द्विज मात्र के लिये धार्मिक व सामाजिक व्यवस्था दी गई, और ब्राह्मणों के बीच यह भी निश्चय किया गया कि अमुक ब्राह्मणों

के आपस में विवाह हुआ करें। उसके विरुद्ध कोई विवाह न करने पावे। आपने ब्राह्मण, गुरु, पुरोहित, धर्माधिकारी, पौराणिक, वैद्य, रसोइया आदि-आदि के पद भी नये सिरे से ठीक कराये। देश व सेना के पदों पर सेला-खोला के जोशी प्रधान रहे। रंतगल गाँव के रंतगली व द्वारहाट के साहू भी इनके राज्य-काल में लेखक के काम पर थे। रंतगली की जगह में अब अधिकारी हैं। उनको रंतगल गाँव जागीर में मिलने से वे भी रंतगली कह-लाते हैं। वे अपने को देश से आया भट्ट ब्राह्मण बनाते हैं। पुराने साहू की जगह पश्चिमी ज्वालामुखी से आये हुए चौधरी नियुक्त हुए। ये अब तक विद्यमान हैं। इन दोनों साहू तथा रंतगली का गाँव-गाँव में दस्तूर नियुक्त था। जब किसी व्यक्ति को गूँठ, माफ़ी, जागीर या रौत में ज़मीन राजा की तरफ़ से दी जाती थी, तो दस्तूर बंद किया जाता था। मासिक वेतन के बदले दस्तूर या गाँव मिलते थे। नक़द रुपये न मिलते थे। इसी प्रकार राजा ने फ़ौज का बंदोबस्त भी अच्छी तरह से किया।

राजा के दो कुँवर थे, जिनमें से बड़े जन्म के अंधे कुँ० शक्तिसिंह गोसाईं थे। दूसरे बड़े बेटे कुँ० लक्ष्मीचंद में कहते हैं, यह शक्ति थी कि अपने सामने आदमी खड़ा करना, फिर उस आदमी के बोलने पर यह जान लेना कि अपने व उस आदमी के बीच कितना अंतर है। इसी तरह, शक्ति गोसाईं ने, कहते हैं, तमाम ज़िले की नाप की थी, और बंदोबस्ती शब्द जो काग़ज़ातों में आए हैं, यथा—बेलका, नाली, काछ, रत्ती, यासा, पैसा, दुगाणी, बीसी, आली, ज्यूला सब नाम उन्हीं के चलाये हैं। पट्टी व परगनों की सरहदें भी उन्होंने ठीक करवाईं। कहते हैं कि गोसाईंजी ने आँखें खुल जाने के लिये ज्वालामुखीदेवीजी के मंदिर में तपस्या की थी। पर आँखें तो न खुलीं, पर ज़मीन की नाप तथा अन्य राज्य-प्रबन्ध का ज्ञान उनको काफ़ी हो गया था।

४९. सीरा-विजय

हम कह आए हैं कि राजा बालो कल्याणचंद की स्त्री सीरा के राजा हरिमल्ल की बहन और राजा रुद्रचंद की माता थीं। उनके पति की इच्छा सीरा को कुमाऊँ-राज्य में मिलाने की थी, पर वह पूरी न हुई। इसी से वह सती न हुई थीं। वह बार-बार राजा रुद्रचंद को याद दिलाती रहती थीं। सीराकोट उन दिनों एक बड़ा ही दुर्गम कोट था, और वह परगना बड़ा सरसब्ज़ व उपजाऊ था।

सीरा के राजाओं के कुछ नाम ज्ञात हैं, बाक़ी हालात ज्ञात नहीं। ये

राजा डोटी के महाराजा के खानदान के थे। ज्ञात नाम यहाँ पर दिए जाते हैं। सन्-संवत् कुछ मालूम नहीं है :—

१. अधिरावत	१२. राजमल्ल
२. भीष्म रावत	१३. कल्याणमल्ल
३. भक्ति रावत	१४. जुरवानमल्ल
४. धीरमल्ल	१५. अर्जुनमल्ल
५. जगातीमल्ल	१६. नागमल्ल
६. कुरुपाल	१७. बलिनारायणमल्ल
७. रिपुमल्ल	१८. डुंगरा बसेड़ा
८. भूपतिमल्ल	१९. मदनसिंह बसेड़ा
९. भारतीमल्ल	२०. रायसिंह बसेड़ा
१०. दातामल्ल	२१. शोभामल्ल
११. आनंदमल्ल	२२. हरिमल्ल

बलिनारायणमल्ल को एक खस-राजा डुंगरा बसेड़ा ने हराया था, और तीन पुश्त तक राज्य किया। पश्चात् शोभामल्ल ने बसेड़ा राजा को मार भगाया, और फिर मल्लों का राज्य सीरा में हो गया।

राजा हरिमल्ल के समय राजा रुद्रचंद फ़ौज लेकर सीरा के रैका-राजा से लड़ने गए, मुक़ाबिला होने पर युद्ध में हारकर घर को लौटे। रास्ते में पेड़-तले बैठे थे कि देखा एक मकड़ी मक्खी फँसाने का जाला बुनती है, वह टूट-टूट जाता है। सातवीं बार जाला तय्यार हुआ, तब मक्खियाँ फँसने लगीं। राजा ने समझा, जब कीड़ा अपना काम इस तरह पूरा कर सकता है, तो वह क्यों नहीं कर सकते। ये बातें सोचते-सोचते अल्मोड़ा आए, और अपने राज-कर्मचारियों के साथ सीरा फ़तह करने की बातें सोचने लगे। कर्मचारियों ने कहा कि बिना गुप्त-मंत्री (भेदी) के बीच में पड़े यह काम होना कठिन है। इन दिनों रैका-राजा के कर्मचारी बिछुराल ब्राह्मण की बहन के बेटे पुरुषोत्तम उर्फ़ पुरुष पंत गंगोली में रहते हैं, वह वीर और अनुभवी पुरुष हैं। उनको सेनापति बनाकर सीरा से युद्ध करना चाहिए। तब राजा ने पुरुष पंत को बुलाया। पुरुष पंत ने बहाने बनाए, और राज-दरबार में न-आए। इस पर राजा ने क्रोध-भरे शब्दों में राज-पत्र भेजा कि पुरुष पंत के पास मणकोटी राजा के समय का धन बहुत है, इसी अभिमान से उसने राजाज्ञा नहीं मानी। राजा ने लिखा कि १ लाख रुपए उसे जुर्माने किए जाते हैं, फ़ौरन् अदा करें। वह स्वयं भी दरबार में उपस्थित होवें। यदि

न आवेंगे, तो इससे भी ज़्यादा दगड दिया जावेगा। पुरुष पंत मणिकोटी राजाओं के सेनापति तथा दीवान थे। कहा जाता था कि उनके पास काफ़ी धन था। पुरुष पंत राजाज्ञा को पाकर दीन ब्राह्मण का भेष बनाकर अल्मोड़ा-राज दरबार में आए, और बोले—धन तो मेरे पास नहीं है। यह प्राण व शरीर मौजूद हैं, इनसे कुछ काम हो सके, तो ये दोनो प्रस्तुत हैं। राजा ने कहा—जान की आवश्यकता नहीं। तब श्रीपुरुष पंत ने कहा—यदि राजाज्ञा हो, तो लाख रुपए के जुर्माने के बदले सीराकोट व बधानकोट जीतकर कुमाऊँ-राज्य में शामिल करने में अपना शरीर अर्पण कर दूँ। राजा के मन में यही बात थी। श्रीपुरुष पंत की बात स्वीकार की। उनको अपनी सेना का सेनापति बनाकर राजा रुद्रचंद ने सीरा के रैका-राजा हरिमल्ल के ऊपर चढ़ाई कर दी। सीराकोट में युद्ध हुआ। तीन बार राजा रुद्रचंद व उनकी फ़ौज हार गई। तीसरी बार रैका-राजा की फ़ौज ने दूर तक राजा रुद्रचंद का पीछा किया। जिससे राजा एक ओर और पुरुष पंत दूसरी ओर हो गए। श्रीपुरुष पंत किसी जगह जंगल में बैठे थे, देखते क्या हैं कि एक गोबरीला कीड़ा एक गोबर की गोली लेकर चला जा रहा था, किंतु वहाँ पर ज़मीन ऊँची होने से गोली उसके पंजों से खिसककर नीचे गिर पड़ती थी। बार-बार वह प्रयत्न करता जाता था, अन्त को पाँचवी बार कीड़ा अपने यत्न में सफल हुआ। यह तमाशा देख सेनापति पुरुष पंत फिर युद्ध करने को तैयार हुए, किंतु वह भूखे थे। एक गाँव में बुढ़िया ब्राह्मणी के घर गए। वहाँ खाने को खीर माँगी। बुढ़िया ने खीर केले के पत्ते में खाने को दी। पुरुष पंत खीर को पत्ते के बीच से खाने लगे। इस कारण किनारे की खीर ज़मीन पर गिरने लगी। तब बुढ़िया ने कहा—बेटा! तुझे खीर खाना नहीं आता, पुरुष पंत को सीराकोट जीतना नहीं आता—

"खील नी खैजाणी खीर, पुरुष पंत लैनी ली सकि सीर।"

तुम दोनों मन्द-बुद्धि हो। तब पुरुष पंत ने अपना परिचय न बताकर बुढ़िया से पूछा—वह खीर कैसे खाए, और पुरुष पंत सीराकोट कैसे फ़तेह करें? खीर खाने की बाबत बुढ़िया ने कहा कि वह पत्ते के चारों तरफ़ से खाई जानी चाहिए, और पुरुष पंत को चाहिए कि सीराकोट को जो पानी का सुरंग है, उसके मुँह पर अपनी सेना रखकर कोट में पानी न ले जाने दें, और जोहार की तरफ़ से जो भोजन-सामग्री क़िले में जाती है, उसको भी बंद करें, तब दुर्ग जीता जावेगा। अन्यथा जब तक उस दुर्गम दुर्ग में भोजन व पानी जाते रहेंगे, तब तक कोट को सर करना सहज काम नहीं।

श्रीपुरुष पंत खीर को किनारे की ओर से खाकर सेना के निकट गये, और अपने भाई को पानी व भोजन-सामग्री बंद करने को नियुक्त किया। उनके भाई ने कुछ सेना पानी के रास्ते (घाटे) में रक्खी। उस जगह का नाम छनपाटा है। बाद को गंगोली पुंगराऊँ के रास्ते तल्लादेश जोहार में गये। वहाँ के राणा, महता, होकरी, चुफाल तथा भैंसकोटी प्रभृति लोगों को अपनी फ़ौज में भरती कर भोजन बन्द करने को दौणिक व बमनगाड़ में स्थिर हो गये। इस तरह क़िले का पानी व अन्न दोनों बंद हो गये। युद्ध हुआ। पानी व खाद्य-पदार्थ न मिलने से क़िलेवाले तंग हो गये। पुरुष पंत सेना लेकर क़िले में घुस पड़े। रैका-राजा हरिमल्ल हारकर क़िले को छोड़ काली नदी पार डोटा को चले गये।

बाद को राजा रुद्रचंद ने सीरावालों को राज-द्रोही देखकर चौगरखा, बारा-मंडल, मनसारी के ज़मींदार डसिला, भैंसोड़ा, मलाड़ा, मनसारा, चिलाल वग़ैरह को सीरा में बसाया। अपना शासक सीराकोट में रखकर और सारे प्रान्त को अपने राज्य में मिलाया। राजा हरिमल्ल की संतान डोटी में अभी तक विद्यमान है।

इस मल्ल राजा का प्रभाव व राज्य-विस्तार बहुत बताया जाता है। नैपाल से गढ़वाल के आखीर तक इसकी सरहद थी। इनके स्मारक में बाराहाट में एक त्रिशूल ज़मीन में गड़ा है, जिसमें लिखा है कि अनीकमल्ल राजा ने मुल्क जीतकर यह त्रिशूल जीत की निशानी बतौर गाड़ा है।

मल्ल व रैका एक ही बात थी। कुँवर को मल्ल कहते थे। जब वह गद्दी पर बैठता, तो मल्ल के साथ रैका शब्द भी जोड़ दिया जाता था। मल्ल राजा जब डोटी को गये, तो इनके साथ बहुत से कुटुम्ब भी काली पार को चले गये। इन राजाओं के पुराने कर्मचारी भट्ट व कठैत थे। पीछे बयाल लोग इनके कामदार हुए, जो अन्त तक साथ रहे।

अस्कोट, दार्मा व जोहार भी राजा हरिमल्ल के अधीन थे। सीराकोट के सर होने से वे भी कुमाऊँ राजा के अधिकार में आ गये। राजा रुद्रचंद ने अस्कोट में जाकर वहाँ के पिछले मांडलीक राजा यानी रजबार को अपने राज्य में बहाल किया। उनके साथ रिश्तेदारी स्थापित की। परगना अस्कोट इज़्ज़त व गुज़ारे के वास्ते उनको बतौर ज़मींदारी के दिया। अस्कोट के रजबारों का रिश्ता चंदों के साथ बराबर होता रहा। इस वंश का राजा जो गद्दी पर बैठता है, वह रजबार कहलाता है। युवराज को लला कहते हैं, और बिरादरों को गुसाईं कहा जाता है।

इसके बाद राजा रुद्रचंद अल्मोड़ा को लौट आये, और पुरुष पंत को हुक्म दिया कि विजित देश का इन्तज़ाम पूरा व पक्का करके अल्मोड़ा आवें, और तत्पश्चात् अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार गढ़वाल के मुल्क से बधानगढ़ को जीतकर कुमाऊँ के राज्य में शामिल करें।

अस्कोट-खानदान के कुँवर गुरु गुसाईं जो अनुभवी व योग्य पुरुष थे, दार्मा व जोहार के शासक (तथा बंदोबस्ती अफ़सर) नियुक्त किये गये। व्यांस व चौदांस अब भी जुमला-राज्य के अन्तर्गत थे।

५०. संस्कृत-विद्या का प्रचार

अल्मोड़ा लौटकर राजा ने देव-मंदिरों में गाँव गूँठ में चढ़ाये। बिनो व रामगंगा के बीच वृद्ध केदार-नामक शिव का मंदिर बनवाया। पंडितों को गाँव माफ़ी में दिये, जिससे अन्य ब्राह्मणों को भी पढ़ने का साहस हुआ। यह राजा स्वयं खूब विद्वान् थे, और इन्होंने शिक्षा में भी धन ख़र्च किया। बहुत-से होनहार नवयुवकों को राजा ने छात्रवृतियाँ देकर बनारस भेजा। वे पढ़कर लौट आये। उनको राज-सम्मान दिया। लोगों ने कुमाऊँ में पंडितों से पढ़ा। इस राजा ने अल्मोड़ा में भी संस्कृत पढ़ने का सुभीता कर दिया। उस समय संस्कृत के ऐसे-ऐसे विद्वान् राजदरबार में थे कि बनारस व काश्मीर के विद्वानों से वे कम न गिने जाते थे। अक्सर पंडित लोग देश से आये, और राजदरबार में शास्त्रार्थ करने पर कुमावनी पंडितों से हार गये। इस राजा ने स्वयं दो संस्कृत के ग्रंथ बनाये हैं—(१) श्येन-शास्त्र और (२) त्रैवर्णिक धर्म-निर्णय।

५१. बधानगढ़ पर चढ़ाई

राजाज्ञा होने पर श्रीपुरुष पंत ने सेना लेकर बधान के परगने पर चढ़ाई कर दी। इस बात की खबर पहले से गढ़वाल के राजा दुलारायशाह को थी। उन्होंने बहुत-सी सेना विरोध को भेज दी, और कत्यूर के आख़िरी मांडलीक राजा सुकालदेव से भी मंत्रणा की कि यदि वह गढ़वाल की मदद करेंगे, तो उनको चंद-राजा के विरुद्ध सहायता दी जावेगी। यही नहीं, बल्कि चंदों के राज्य में से कुछ हिस्सा जीतकर उन्हें दिया जावेगा। इस बात पर सुकालदेव राज़ी हो गये। जब पुरुष पंत कत्यूर के अंत में गढ़वाल की ओर पहुँचे, तो सुकालदेव ने पुरुष पंत की युद्ध-सामग्री रुकवा दी, और गढ़वाली राजा की जिस सेना को अपने यहाँ टिका रक्खा था, उसे खाद्य-पदार्थ देकर पुरुष पंत

पर हमला करने को कहा। पुरुष पंत के साथ गढ़वाली सेना का युद्ध हुआ। पुरुष पंत के बदन में पड्यार का चलाया हुआ 'भूतिया' यानी भाला लगा, जिससे पुरुष पंत मारे गये। बाद को पड्यारों ने पुरुष पंत का सिर काटकर 'चट्टी-चट्टी' (मंज़िल दर-मंज़िल) राजा गढ़वाल के पास पहुँचाया, और जिस जगह पर पड्यारों ने एक रात तक मुक़ाम किया, वहाँ-वहाँ पर जागीर में गाँव पड्यारों को दिये गये, क्योंकि गढ़वाल के राजा ने यह घोषणा की थी कि जो पुरुष पंत का सिर काटकर लावेगा, वह जहाँ मुक़ाम करेगा, वहाँ गाँव जागीर में मिलेंगे।

दूसरी कहानी है कि जब पुरुष पंत बधान को जीतकर लौटे थे, तो 'गागर गोल्ल' के पास 'गंगोलघतकौण' स्थान में उनका डेरा पड़ा था। रात को एक पड्यार ने उनका सिर काट लिया, और उसको गढ़वाल के राजा के पास पहुँचाया।

जब राजा के पास ये ख़बरें पहुँचीं, तो उन्होंने उसी समय सलाहकारों को बुलाया, और ख़ुद फ़ौज ले जाकर सुकालदेव को पकड़ा। उसके साथ उनके बाल-बच्चे तथा बहुत-से सिपाही व कत्यूरी-प्रजा भी पकड़कर लाई गई। ये सब अल्मोड़ा लाये गये। उस वक़्त बौरारौ का श्रीरातू बोरा जो सुकालदेव का मित्र था, राजा का ज़ामिन बना, और उसने कहा कि राजा को अप्रतिष्ठित न किया जावे, इस समय सुकालदेव को छोड़ देवें। वह प्रतिज्ञा करता है कि ६ माह के भीतर वह या तो सुकालदेव को उपस्थित करेगा या १६००० टका (६३ हज़ार रुपये ?) या १२ बीसी यानी २४० "बनबाण" यानी बँधुवे (क़ैदी) हाज़िर करेगा। इन शर्तों पर राजा रुद्रचंद ने राजा सुकालदेव को छोड़ दिया, और रातू के सिपुर्द किया। सुकालदेव को खिला-पिलाकर कत्यूर पहुँचाया, और रातू अपने घर आ गया। बाद ६ माह के राजा रुद्रचंद ने रातू को लिख भेजा कि शर्तनामे के मुताबिक़ तीन में से कोई चीज वह उपस्थित करे। रातू वह राजा की चिट्ठी लेकर कत्यूर को गया, और सुकालदेव को हुक्म सुनाया। सुकालदेव ने कहा कि प्रतिज्ञापत्र की तीनों में से जो चीज़ वह ठीक समझे, ले जावे, अन्यथा राजा क्रुद्ध होगा। इस पर रातू ने राजा सुकालदेव से कहा कि क्या वह इसी बुद्धि से कत्यूर का राज्य-शासन चलावेंगे। उनको चाहिए कि राज्य के पंचों को बुलाकर मंत्रणा करे। उसे भी पंचायत में बुलावें। चिट्ठी पढ़ने के बाद रातू से कह दें कि चाहे वह ज़हर खावे या नदी में डूबे, एक भी चीज़ उसको न देंगे। पश्चात् कत्यूरियों ने यही सलाह की। रातू ने ये सब बातें राजा रुद्रचंद को लिखीं। राजा को सब बातों की ख़बर हो गई

थी, पर उन्होंने लिखा कि रातू अपनी प्रतिज्ञा पूरी करे। रातू ने कहा कि वह पूरा करने को असमर्थ है। यदि राजा रुद्रचंद शर्तनामे की पूर्ति पर ही ज़ोर देंगे, तो वह धरना देगा। अतः वह अपनी लड़की को घर से ले गया, यह कहकर कि उसे या तो राजा के सामने मारूँगा या मंदिर में। बैजनाथ के रास्ते में उसने लड़की तो छिपा दी, एक कुश का पुतला बनाया, तथ उसमें बकरी का ख़ून डालकर तर-ब़तर किया, और आग में जला दिया, तथा बात प्रसिद्ध कर दी कि उसने अपनी लड़की राजा रुद्रचंद को बलि चढ़ा दी। आप शिकार व भात खाकर घर में लेट रहा। इस बात की भी सच्ची-सच्ची खबर राज-दरबार अल्मोड़ा में पहुँची कि बेटी जीती-जागती है, रातू ने छल किया है। तब राजा रुद्रचंद ने मय लड़की के रातू को पकड़ने के लिये सैनिक भेजे। रातू कत्यूर भागा, और सुकालदेव को राजा रुद्रचंद के विरुद्ध लड़ने के लिये भड़काने लगा। राजा रुद्रचंद खुद सेना लेकर कत्यूर गये। सुकालदेव व रातू दोनों को मार डाला, और कत्यूर को अपने राज्य में शामिल कर लिया।

राजा रुद्रचंद ने २६ वर्ष राज्य किया। संवत् १६५४, शाके १५१६ सन् १५९७ को यह राजा सुरपुर को सिधारे। कुँ० लक्ष्मीचंद गद्दी पर बैठे।

उपर्युक्त वृत्तान्त से ज्ञात होगा कि यह राजा चंदों में सबसे ज़्यादा विद्वान्, शिक्षाप्रेमी, प्रतापी, शूरवीर तथा दानी थे। वह खुद विद्वान् थे, और विद्वानों का आदर करते थे। राज्य का विस्तार भी उन्होंने बढ़ाया। अपने माता व पिता के प्रण को सीरागढ़ जीतकर पूरा किया। उनकी माता सीरा-कोट जीते जाने पर अपने पति के कटारे के साथ जागीश्वर में सती हुईं। दिल्ली के बादशाह से भी इन्होंने सम्मान पाया। कोई-कोई कहते हैं कि तराई में इनका राज्य-विस्तार लालढाँग, बढ़ापुर व नगीने तक था।

श्रीपुरुषोत्तम गंगोली में गराऊँ के पंत थे। उनके वंशजों के पास अभी तक वह ताम्रपत्र है, जो राजा रुद्रचंद ने सन् १५८१ (संवत् १६४८) में शनिवार, भाद्रसुदी नवमी को जागीश्वर-मंदिर में दिया था, उसका भावार्थ इस प्रकार है:—

"१. जिसके प्रताप से शत्रु का रक्त सूख जाता था, उन शत्रुओं के देशों को जीतकर उसने यश कमाया। जो देवी का साकार उपासक था। वह दुनिया के राजाओं में रत्न था। उसका नाम कल्याणचंद था।

२. उसकी तेज़ तलवार की धार से शक्तिशाली राजाओं के सिर अलग जा गिरते थे, जिससे उनकी शोकार्त रानियाँ अपनी गोदों में मोती के समान आँसू बहाती थीं।

३. उसके चरण-कमल स्वच्छ थे। उनमें लोगों के दिल अनुरक्त थे। जिससे ग़रीब अन्यत्र भी भिक्षा माँगने पर धनी हो जाते थे।

४. उसका पुत्र, शत्रुओं का मानमर्दन करनेवाला, प्रख्यात रुद्रचंद है, जो भगवान् रुद्र के चरणों का भक्त है, जिनकी कृपा से सीराकोट में विजय हुई है। इस राजा ने यह भूमि रौत में दी है।

५. राज्य के वास्ते भूमि को जीतनेवाले, हमारे मंत्रियों में सबसे श्रेष्ठ, डोटी के राजा का मान मर्दन करनेवाले, शत्रु को परास्त करनेवाले सिंह, सबसे बड़े विद्वान् पुरुषोत्तम।"

५२. (४६) राजा लक्ष्मीचंद

[सन् १५९७—१६२१]

राजा रुद्रचंद के बाद राजा लक्ष्मीचंद गद्दी पर बैठे। यद्यपि बड़े होने से राजा के उत्तराधिकारी कुँ० शक्तिसिंह गुसाईं थे, किन्तु जैसे अंधे होने से राजा धृतराष्ट्र बड़े होने पर भी गद्दी पर न बैठे, ऐसे ही शक्ति गुसाईं ने भी गद्दी अपने छोटे भाई राजा लक्ष्मीचंद को छोड़ दी। अंधे होने पर भी कुँ० शक्ति गुसाईं राज-काज में काफ़ी भाग लेते थे। वह एक धार्मिक विचार के पुरुष थे। उन्होंने तीर्थ-यात्राएँ बहुत की थीं। जप, तप, होम, यज्ञ तथा देव-पूजन में उन्होंने बहुत समय खर्च किया था। इस आशा से कि देवगण उनकी दृष्टि को लौटा दें, पर दृष्टि तो न लौटी, ज्ञान-शक्ति उनकी खूब बढ़ गई। उनमें सुनकर तथा वस्तु को छूकर सब कुछ जानने की शक्ति हो गई थी।

अतः राजा लक्ष्मीचंद ने उनको मुल्क व दरबार का इन्तज़ाम करने को कहा। शक्ति गुसाईं ने ज़मीन की नाप का दफ़्तर बनवाया। ज़मीन के ऊपर 'रक़म' (कर) ठहराई। ज्यूला, सिरती, बैकर, रछया, कूत, भात वग़ैरह करों का नाम रक्खा। परबियों का सरंजाम - घी कर, खिरची, ग़ल्ला—जहाँ रक्खा, उसका नाम गंज बनाया। सिरती, मसीक, रछया परबियों के लिए खर्च व टीका, माल की आमदनी रखने की जगह का नाम भंडार रक्खा गया। न्यौवाली ('न्यायवाली) व बिष्टाली (बिष्टवाली = फ़ौजी) नामक कछहरियाँ बनाईं। कपड़े, मेवाजात तथा भेंट (शिरनी) आदि रखने का नाम 'कोट्याल' रक्खा। राज के पहनने के कपड़े व खड़ाऊँ, जूते, दोशाले, ज़री के कपड़े, खिल्लत का का सामान, निजी हथियार वग़ैरह रखने के मकान का नाम 'सेज्वाल' रक्खा।

सेज्वाल के ज़िम्मेदार अफ़सर का नाम सेज्याली हुआ। धन्यु, टुणाँ काँण, तलवार, कटार, पेशकब्ज, बंदूक़, रामचंगी, जंबूरा वग़ैरह रखने की जगह को 'सेलखाना' बनाया। बारूद, सोरा, गंधक, महताब, हवाई रखने को दारुघर बनाया। "लाखा, बोका व हिलवाण"-नामक बकरियाँ 'सीकर' में रक्खी गईं।

गाय-भैंस के रहने की जगह ठाठ मुक़र्रर की। उसका ज़िम्मेदार 'ठठवाल' हुआ। इन ठाठों से ताज़ा दही, दूध व मक्खन दरबार में आता था। ख़रीद के भैंसे (जतिये) देवताओं को चढ़ाने के लिए 'बाड़े' के सिपुर्द किये गये। राज्य के काम में राजा रुद्रचंद के वक़्त के कारदार बदस्तूर बहाल रहे। उन्होंने राज्य के कामदारों को तीन कक्षा में विभाजित किया (१) सरदार -- जिनके हाथ में राज्य के बड़े-बड़े पद थे, और परगनों व ज़िलों का शासन करते थे, (२) फ़ौजदार—ये सेनापति अफ़सर थे, (३) नेगी—राज्य के छोटे कर्मचारी, जो सेना तथा दैशिक शासन दोनों में काम करते थे। (नेग=दस्तूर, जो राजा को दिया जाना चाहिए)

शक्ति गुसाईं ने खेती-बाड़ी भी ख़ूब बढ़ाई। जगह-जगह ज़मीनें आबाद कराईं। जगह-जगह से किसानों को बुलाकर अपने वास्ते 'बुनकारे' कार्यकर्ता नियुक्त किये। तरकारी, फूल, फलों के वास्ते अल्मोड़ा में सात (बाड़ी) बग़ीचे बनाये, ताकि उनमें से प्रत्येक वार को एक-एक चीज़ आवे। नरसिंह-बाड़ी, बाड़ी पांडे खोला, कनीना, लक्ष्मीश्वर आदि बग़ीचे राजा लक्ष्मीचंद के समय के बने हैं। गरमी के दिनों में पिंडारी से बरफ़ मँगाने को सारे रास्ते में कामदार मुक़र्रर हुए, जो बरफ़ की डाक चलाते थे, और अल्मोड़ा में रोज़ ठंडी बरफ़ आती थी। इनका नाम ह्यूपाल था।

सिपाहियों को कटक यानी फ़ौज में भर्ती करते समय उनकी परीक्षा लेने का प्रबंध भी किया गया। वीर सैनिक तथा बूढ़े सिपाहियों को ज़मीनें व जागीरें दी गईं। 'बीसी बंदूक़' के नाम से कटक की तजवीज़ बाँधी गई। वेतन के बदले ज़मीन दी गई। जिस वक़्त शत्रु देश पर चढ़ आवें, तो उस समय वे ज़मीन कमानेवाले कटकवाले (reservists) बुलाये जावेंगे, और वे फ़ौरन् चले आवेंगे। इस तरह का बंदोबस्त शक्ति गुसाईं ने किया।

पश्चात् राजा ने अल्मोड़ा में महादेव का मंदिर बनवाया। महादेव का नाम लक्ष्मीश्वर रक्खा। बाद को वहाँ चाय-बाड़ी भी बनी। (इसी का जीर्णोद्धार पिछले दिनों पं० ज्वालादत्त जोशीजी ने किया था।) कत्यूर में, सरयू व गोमती के संगम पर, बागीश्वर महादेव का मंदिर नये सिरे से बनवाया,

जो अब तक विद्यमान है। इस मंदिर के बनवाने में राजा एक वर्ष तक बागीश्वर में गोमती पार के ऊपर की छोटी टिबरी में रहे। बीच-बीच में अल्मोड़ा भी आते-जाते थे। बागीश्वर से उनको बहुत प्रेम था। एक दिन का वृत्तान्त है कि राजा का मुक़ाम अंबिकेश्वर महादेव के निकट सत्राली में हुआ था। वहाँ देखने में आया कि सत्राली के सब ब्राह्मणों ने अपने-अपने घरों की छतों पर मट्टी डालकर साग-सब्ज़ी बो रक्खी है। राजा ने पूछा कि यह स्वाँग इन ब्राह्मणों ने कैसा कर रक्खा है? सत्राली के लोग भी आये थे। उन्होंने कहा, "महाराज, आपने हम पर भूमिकर (मालगुज़ारी) वेहिसाब लगा दिया है। हम पर तो आखीरी कत्यूरी राजाओं का-सा ज़ुल्म हो गया है। इसलिये हमने ज़मीन आबाद नहीं की। इस ज़मीन को आप बागीश्वर को चढ़ा दें, ताकि रक़म का तक़ाज़ा हम पर न होवेगा। लेकिन घरों में रक़म न होने से हमने उनकी छतों पर तरकारी बोई है। खाने को अन्यत्र से माँग लाते हैं। यदि आपकी मरज़ी घरों पर भी रक़म लगाने की है, तो हम घरों को भी छोड़ देंगे।" सत्राली के लोगों की इस विनोदपूर्ण किन्तु युक्ति-युक्त उक्ति को सुन कर राजा लक्ष्मीचंद शरमाये और हँसे भी। फ़ौरन् नई मालगुज़ारी मुआफ़ कर पुरानी रक़म बहाल रक्खी। तब ब्राह्मणों ने वहाँ की ज़मीन आबाद की।

इस राजा ने सात बार गढ़वाल पर चढ़ाई की, और सात बार यह हारे। इसकी हार के कारण लोगों ने उस क़िले का नाम, जिससे यह लड़ते थे, 'स्यालबुंगा' रक्खा। सातवीं बार लड़ाई में हारने से राजा ऐसा डरे कि एक डोके (पहाड़ी कंडी) में बैठकर अल्मोड़े को आये। ऊपर से फटे-पुराने कपड़े डाल दिये गये, ताकि किसी को शुभा न हो कि उसमें राजा बैठा है, या सामान रक्खा है व डोका ले जाने को मोटे-ताज़े किसानों की डाक लगी, तब राम-राम कर अल्मोड़ा आये। इस कारण इस राजा का नाम लोगों ने 'लखुली बिराली' रख दिया। जब रास्ते में राजा का 'डोका' ले जाने-वाले कुली बोझ कहीं पर रख बातें करते थे, तो कहते थे—"वह राजा पापी व व्यभिचारी है, आप भी चोर की तरह भाग रहा है, हमें भी कष्ट दे रहा है।" (पापि राज आपु लै चोरे कि चार भाजनौछ, हमन लै दुःख दीनौछ) भगेड़ राजा ने यह बातें सुनीं। वे उसके दिल को चुभीं।

राजा ने अल्मोड़ा आकर गुरु से कहा कि वह अपने गुरुमंत्र को अपने पास रक्खें। उससे युद्ध में उनको कुछ भी फल-सिद्धि नहीं हुई। यह भी कहा कि वह भविष्य में राज-काज छोड़कर साधु बन जावेंगे। गुरु घबड़ाये। अपनी वृत्ति जाती देखी। राजा से एक वर्ष ठहरने को कहा। आप गुरुमंत्र

की सिद्धि के लिये बंगाल के नदिया-नामक नगर में गये, जहाँ संस्कृत व तंत्रशास्त्र का बड़ा विद्यालय था, और जहाँ के पंडित प्रसिद्ध थे, और अब भी हैं। गुरुजी ने वहाँ एक साल तक मंत्र-सिद्धि में बिताया। लौटकर राजा लक्ष्मीचंद को विधिपूर्वक मंत्र दिया और उसका जाप कराया। इस तरह मंत्र-तंत्रों से सुसज्जित होकर राजा ने गुरु की आज्ञा से युद्ध में जाना निश्चय किया, किन्तु और भी देवताओं को सन्तुष्ट कर पूर्णतः अपने क़ाबू में कर लेने की इच्छा से ही सन् १६०२ ईसवी में दोनों बागीश्वर व अल्मोड़ा में लक्ष्मीनारायण के मंदिर बनवाये, और जागीश्वर को गाँव गूँठ में चढ़ाये। आठवीं बार भी बागीश्वर में देवी-देवताओं की पूजा कर तब गढ़वाल सर करने को गये।

विजय तो ऐसी कुछ भारी हुई नहीं, किन्तु हाँ इस बार उन्होंने मुल्क को लूट-खसोटकर कुछ धन एकत्र किया। इससे ख़ुश होकर अल्मोड़ा को लौटे। पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं, "इस राजा ने गढ़वाल को सर करने की ख़बर अल्मोड़ा पहुँचाने को पहाड़ों की चोटियों में सूखी घास व लकड़ियों के ढेर लगाये कि जिस समय गढ़वाल का प्रदेश जीता जावेगा, उन ढेरों में आग लगाई जावे, ताकि ख़बर अल्मोड़ा जल्द पहुँच जावे। जीत के समय ऐसा ही किया गया। तब से अब तक आश्विन की संक्राति के दिन सायंकाल के समय घास का आदमी-सा बनाकर उसमें फूल-काँस इत्यादि लगाकर लड़के जलाते हैं। लड़के गाते, नाचते व कूदते हैं—"भैल्लो जी भैल्लो, भैल्लो खतड़ुवा।"

गैड़ा की जीत, खतड़ की हार;
गैड़ा पड़ो श्योल, खतड़ पड़ो भ्योल।

यह उत्सव खतड़वा कहलाता है। गैड़ा कुमाऊँ के राजा के सेनापति थे। श्रीखतड़सिंह कहा जाता है कि गढ़वाल के सेनापति थे। वह युद्ध में मारे गये। 'गैड़ा की जय' के मानी गैड़ा सेनापति की जीत से होंगे, पर कोई 'गै की जीत' भी कहते हैं। कुमाऊँ के चंद राजाओं का राज्यचिह्न सिक्कों, मुहरों, झंडों में 'गाय' था। अतएव 'गाय की जीत' से राजा की जीत या 'गायवाले झंडे की जीत" से मतलब हो सकता है। रुद्रचंद व लक्ष्मीचंद दोनों के समय कोई भारी विजय तो हुई नहीं थी। सिर्फ़ सरहदी लड़ाइयों में कई बार हारकर अन्त में दो-एक बार कुमाऊँ के राजा थोड़े बहुत विजयी हुए थे, लेकिन उस विजय को इतनी ख़ुशी का बायस बनाना कि वह एक जातीय त्यौहार हो जावे, ठीक समझ में नहीं आता। तो भी पुराने इतिहासकारों ने विजय किस प्रकार की हुई थी, ऐसा नहीं लिखा है। इससे इसमें ज़्यादा प्रकाश डालना कठिन है।

---

५३. अग्नि-परीक्षा अर्थात् दिव्य

पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं:—

"इस राजा के राज्यकाल में एक अभियोग इस तरह का पेश हुआ—एक मनुष्य ने दूसरे मनुष्य को गोवध का अपराधी ठहराया। अपराधी कहता था कि बछिया बाघ ने मारी है, उसने नहीं मारी। वादानुवाद बहुत बढ़ गया। फ़ैसला विना दिव्य के न हो सका। दिव्य ठहराया गया। अपराधी ने दिव्य इस शर्त पर लिया कि यदि बाघ ने बछिया मारी हो, तो वह शुद्ध, यदि उसने मारी हो, तो वह अशुद्ध। दिव्य बिगड़ गया (ठीक न हुआ?) तो भी अपराधी बार-बार कहता था कि वह हर तरह सच्चा है। दिव्य में कुछ बात विरुद्ध हो गई होगी। तीन बार दिव्य बिगड़ गया। चौथी वार ब्राह्मणों ने सोचा कि दिव्य लेनेवाला अपने को सच्चा बताता है, लेकिन दिव्य में नहीं जीतता। शायद बूंदा 'लेख' बिगड़ गया हो। 'बूंदा' (?) देखकर सबों ने कहा और तो सब ठीक है (दिव्य में) हमेशा बाघ लिखा गया है, अब की बार बाघिन लिखो। चौथी वक्त 'बूंदे' में बाघिन लिखा, तो दिव्य में दिव्य लेनेवाला मनुष्य सच्चा निकला। अपराध लगानेवाले को राजा ने दंड दिया। बछिया बाघिन की मारी सिद्ध हुई।"

इस राजा ने दामी घाटे का बंदोबस्त अपने व हुणियों के बीच नये सिरे से करवाया। सिरती तथा राज-कर की शर्तें अपने व हुणियों के बीच निश्चय कीं और कर के वसूल करने का समय भी स्थिर किया गया। सीमा के चिह्न भी बनाये गये।

जहाँगीर के दरबार में राजा लक्ष्मीचंद गये। जहाँगीरनामे में लिखा है—"कुमाऊँ का राजा लक्ष्मीचंद अपने पिता की तरह शाही दरबार में आना चाहता था। उसने लिखा कि नवाब इतिमादौला का लड़का उनकी अगवानी को आवे और उन्हें दरबार में पेश करे। उनकी इच्छा पूर्ण करने को शाहपुर भेजा गया कि उनको दरबार में पेश करे। यह पहाड़ी राजा बहुत-से पहाड़ी तोहफ़े मेरे वास्ते नज़राने में लाया। इनमें बहुत-से पहाड़ी अच्छे-अच्छे घोड़े थे, जो 'गूँठ' कहलाते हैं। बहुत-से बाज़ व शिकरे, मुश्क के बेशुमार नाभे और एक मुश्क हिरन की खाल जिसमें नाभा मौजूद था। उसने मुझे बहुत क़िस्म की तलवारें भी दीं, जिनमें खांडे, ख़ंजर व खुकुरियाँ भी थीं। यह राजा सब पहाड़ी राजाओं में धनी है। इसके इलाक़े में सोने की खान भी बताई जाती है।" यह भी कहा जाता है कि इनके शासन-काल में बादशाह जहाँगीर तराई में शिकार खेलने

आये थे। वह टांडा व पीपल हाटा के बीच में रहे थे। वहाँ पर जो पेड़ों का बाग़-सा है, उसे बादशाही बाग़ कहा जाता है। वह उसी समय का बना है।

इस राजा के समय की कई गूँठें हैं। सन् १६०२ में जागीश्वर को एक गाँव चढ़ाया गया, और ८ दान-पत्र बागीश्वर के हैं। १६०५ का एक ताम्र-पत्र श्रीदेवीदत्त चौधरी के नाम का है और एक बासुदेव पंत मंत्री के ख़ानदान के नाम का भी है। सन् १६१६ में एक ताम्र-पत्र महादेव जोशी के नाम का इन्होंने प्रदान किया।

इनके चार पुत्र थेः—दिलीपचंद, त्रिमलचंद, नारायणचंद तथा नीला गुसाईं।

राजा लक्ष्मीचंद २४ वर्ष राज्य कर संवत् १६७८, शाके १५४३, तदनुसार सन् १६२१ में स्वर्ग को सिधारे, उनके पुत्र कुँवर दिलीपचंद राजगद्दी पर बैठे।

---

५४. (४७) राजा दिलीपचंद

[सन् १६२१—१६२४]

राजा लक्ष्मीचंद की मृत्यु के बाद राजा दिलीपचंद राजा हुए। इन्होंने केवल तीन वर्ष राज्य किया। पहले लिखा गया है कि गंगोली में पंत व उप्रेतियों में मणकोटी राजा के समय से खटपट चली आती थी। इनके राज्य-काल में फिर गहरा युद्ध पन्त व उप्रेतियों में ठन गया। उप्रेतियों की जायदाद भी पन्तों को दी गई थी। इस कारण कहते हैं कि एक उप्रेती तीर्थ-यात्रा को निकल गया। वह अल्मोड़ा से ज्वालामुखी गया। वहाँ से द्वारका, द्वारका से लंका, रामेश्वर, जगन्नाथ व बनारस होता हुआ प्रयागराज आया। प्रयाग में जाकर करबट (करौत ?) लेकर मरा और मरते वक़्त कहते हैं, उसने यह वरदान माँगा कि जब वह दूसरे जन्म में पैदा हो, तो पन्तों से बदला लेनेवाला व उनको सतानेवाला हो। यह कहा जाता है कि प्रयाग में या बनारस में करबट 'करोत ?' लेकर अर्थात् वृक्ष पर से कूदकर या आत्महत्या कर जो गंगा में डूबकर मरता था, वह दूसरे जन्म में अपनी मनोभिलषित इच्छा को पूर्ण करता था। राजा दिलीपचंद ने गद्दी पर बैठते ही पंतों को तंग करना शुरू किया, तो पंतों ने कहा कि वह करवट लेनेवाला उप्रेती दिलीपचंद के रूप में जन्मा है। क्योंकि उसने पंतों के नेता जैंतराम पंत को, जो उप्रेतियों के गाँवों को लूट रहा था, पकड़ मँगाया और अपने सामने मरवा डाला। इसके

पश्चात् लाश को मल्ला महल के पश्चिम तरफ़, जहाँ पर आजकल उल्कादेवी का मंदिर है, फुकवा डाला।

उस चिता का धुआँ कहते हैं कि महल में जाकर राजा को विष की तरह लगा। राजा उससे बेचैन हुए और ७वें दिन क्षय की बीमारी से मर गये। पं० रुद्रदत्त पंत कहते हैं कि जैंता पंत निर्दोष थे, किंतु अठकिन्सन साहब लिखते हैं कि वे उप्रेतियों के गाँव लूटते हुए पकड़े गये थे। राजा ने पंत व उप्रेतियों दोनों को सूचना दे दी थी कि जो कोई भी उपद्रव मचावेगा, उसको सख्त सज़ा मिलेगी।

"बिना पंत को चालो नै" वाला क़िस्सा उस समय का है। यह उप्रेतियों का बनाया है। इसी कारण राजा ने अपने मंत्री श्रीवासुदेव पंत को राज्याधिकार से अलग कर दिया था। पंतों ने यह ख़बर फैलाई कि यह राजा उप्रेतियों का अवतार है। इसके ऊपर उप्रेतियों का भूत सवार हो गया है। इन बातों से जलकर वह पंतों को ख़ूब दबाता था। फिर उसके सलाहकार श्रीशकराम कार्की तथा श्रीपीरू गुसाईं थे। ये बड़े कुचक्री व धूर्त राजनीतिज्ञ बताये जाते हैं। पीरू गुसाईं ज़्यादा मुँहलगे थे। यही राजा को उभाड़ कर ज्यादा अत्याचार करने को उत्तेजित करते थे। यह वही पीरू गुसाईं है, जो एक बार सोर का बंदोबस्ती अफ़सर था। वहाँ पर अच्छी जगह देखकर इसने क़िला बनवाया, जिसका नाम अब तक पिठौरागढ़ विख्यात है। ३ वर्ष राज्य कर यह राजा सन् १६३४ (संवत् १६८१) में क्षय रोग से मर गये। कुँ० विजयचंद राजा हुए। कहते हैं कि राजा लक्ष्मीचंद की २१ संतानें और थीं, जिनके वंशज कुमाऊँ में यत्र-तत्र बसे हैं।

---

५५. (४८) राजा विजयचंद

[सन् १६२४—१६२५]

राजा विजयचंद जब गद्दी पर बैठे, तो यह बहुत छोटे थे। राजा की सारी शक्ति श्रीशकराम कार्की तथा पीरू गुसाईं के हाथ थी। इनके साथ सोर के श्रीविनायक भट्ट और शामिल हो गये। इन त्रिमूर्तियों ने उस समय कहते हैं, जो मन में आया, किया। इन्होंने राजा को अपने क़ाबू में कर लिया। अनूपशहर के बड़गूजर राजा की लड़की के साथ इस राजा का विवाह हुआ। राजा भोग-विलास-प्रिय थे, फिर उन्हें इन तीनों ने एक प्रकार से रनवास में बंद कर दिया। कहते हैं, वहाँ वे वेश्या, वारुणी तथा नाच-रंग में मस्त रहते थे।

कुँ० नीला गुसाईं ने राजा को राजकाज से हटाकर इस प्रकार अन्तःपुर में क़ैद करने का विरोध किया। उनकी आँखें निकालीं गईं। यही नहीं, और भी गुसाईं व रौतेले जितने हाथ आये, सब मरवा डाले, ताकि कोई राज्य के हक़दार न हो जावें, और उक्त तीनों राज-कर्मचारियों ने जो मन में आया, किया। जब इस प्रकार राजकुँवर मारे जाने लगे, तो दो कुँवर राजा लक्ष्मीचंद के बाक़ी रहे—(१) त्रिमलचद (२) कुँ० नारायणचंद। उनमें से पहले गढ़वाल को, दूसरे डोटी को भाग गये। अंधे नीला गुसाईं के पुत्र को, जो बाद को बाजबहादुरचंद के नाम से नामी राजा हुए, और उस समय 'बाजा बाजा' कहकर पुकारे जाते थे, एक राजचेली ने कपड़े में लपेटकर अपने पुरोहित चौंसार के श्रीधर्माकर तेवाड़ी की स्त्री के पास सौंप दिया। उसने अपने पास छिपा लिया। वहीं वह पलते रहे। बेचारे कुँ० नीला गुसाईं मर गये।

इस राजा ने मल्ला महल का दरवाज़ा बनवाया। यह बात भी उनके तीनों मुँहलगे कारबारियों को खटकी। उन्होंने इस राजा को मारने की ठहराई। और किसी और रौतेले को गद्दी पर बैठाकर, कठपुतली बना, अपने आप राज्य चलाने की ठहराई। शकराम कार्की की परिचित एक राजचेली* थी। उसके साथ षड्यंत्र रचकर शकराम ने राजा को मारने का समय ठहराया। राजचेली ने कहा—"राजा के ज्यौनार यानी खाना खाने के बाद वह ऊँची आवाज़ में पुकारेगी कि ततरिया गरम पानी हाथ धोने को ला, उस वक़्त तुम भीतर आकर अपना काम कर लेना।" शकराम राज़ी हो गये। राजा ने खाना खाया, और एक अलग मकान में हाथ धोने अकेले गये। राजचेली ने गरम पानी के लिये ततरिया को पुकारा, और उसी समय शकराम ने भीतर जाकर गला घोटकर उस बेचारे नादान राजा को मार डाला। कहते हैं, राजा उस समय भाँग के नशे में थे। यह बात संवत् १६८२ सन् १६२५ की है। इस काम में कहते हैं, रसोई के दारोग़ा की भी साज़िश थी। शकराम ने यह बात चलाई कि राजा अपनी मौत से मर गये, पर असली बात कब तक छिपी रहती। सच्चा हाल मालूम होने पर ब्राह्मण, रौतेला, कारदार तथा महर-फरत्याल दोनों धड़े के लोग सजग हुए। फरत्याल के धड़े के लोग मलास (नैपाल) को गये। वहाँ कुँ० नारायणचंद छिपे थे। उन्होंने उनको राजा बनाने की ठानी, और महर दल के लोग कुँ० त्रिमलचंद को लेने गढ़वाल की

---

* इन राजचेलियों का दस्तूर गढ़वाल से चला। वे राजमहल में ख़िदमत को रक्खी जाती थीं। उनको महल से बाहर जाना मना था। पर वे बड़ी चतुर होती थीं। यह शब्द राज चेरी का अपभ्रंश है।

ओर गये। फरत्याल के धड़े ने तो कुँ० नारायणचंद को राजा बनाया। इधर महर-दल ने कुँ० त्रिमलचंद को राजा बनाने का निश्चय किया। दोनों चल पड़े, पर महरदलवाले राजा त्रिमलचंद को लेकर पहले अल्मोड़ा पहुँचे। कुँ० त्रिमलचंद जब गढ़वाल को भागे थे, तो गढ़वाल के राजा ने कहा कि अगर वह गढ़वाल की व कुमाऊँ की सरहद रामगंगा नदी मुक़र्रर करने पर राज़ी होवें, तो गढ़वाल के राजा फ़ौज लेकर तथा अपना धन खर्च कर विजयचंद को राज्य से निकालकर उनको राजा बना देंगे। राजा त्रिमलचंद ने अपने साथियों से सलाह कर (जिनमें उनके साथ भागे हुए झिजाड़ व गल्ली के जोशी भी थे।) यह निश्चय किया कि गढ़वाली राजा की शर्तें क़बूल न की जावें। गल्ली के जोशी ने, जो ज्योतिष का काम करते थे, कहा कि उनके जन्मपत्र में राजा होने के ग्रह पड़े हैं। झिजाड़ के जोशी ने कहा कि जो इस वक़्त इक़रारनामे के रूप में रामगंगा सरहद स्थापित कर दी जावेगी, तो फिर राजा होने पर उनका राज्य कम (घट) हो जावेगा। इसके बाद कुँ० त्रिमलचंद बढ़ापुर की ओर गये, और सिपाही भर्ती करने लगे। इधर शकराम कार्की ने राजा को मार डाला। संयोग से महरा धड़ा के लोग राजा त्रिमलचंद को लेकर अल्मोड़ा पहले पहुँच गये। लेकिन उस वक़्त भद्रा थी। राज्याभिषेक का मौक़ा ठीक न बताया गया। ज्योतिषियों ने कहा कि भद्रा के हट जाने पर राज्य में बैठना ठीक होगा। लेकिन राजनीतिज्ञों ने फिर यह सोचकर कि कहीं राजा नारायणचंद आकर इस बीच गद्दी पर न बैठ जावें, तो उनका किया कराया काम सब चौपट हो जावेगा, इसलिए उन्होंने भद्रा में ही राजा त्रिमलचंद को गद्दी पर बैठा दिया। गाना, बजाना, नाच-रंग, दान, पुण्य तथा राज्याभिषेक का सब कार्य आरंभ कर दिया, और साथ ही राजघोषणा भी कर दी कि कुमाऊँ के राजा आज से राजा त्रिमलचंद हो गये। इतने में फरत्याल धड़े के लोग कुँ० नारायणचंद को लेकर सुंआल नदी से कुछ ऊपर आये थे कि उनको राजा त्रिमलचंद के राजा होने का जय-जयकार शब्द सुनाई दिया। उसी समय राजा नारायणचंद फिर डोटी के जंगल को लौट गये। उनको राजा बनानेवाले अराजक (चालिया) गिने व करार दिये गये। कुछ लोग भाग गये, पर जो कुछ पकड़े गये थे, उनको फिर राजा ने छोड़ दिया। अतएव राजा लक्ष्मीचंद के पुत्र कुँवर त्रिमलचंद संवत् १६८२, शाके १५४७ तदनुसार सन् १६२५ में कुमाऊँ की गद्दी पर बैठे।

---

५६. (४९) राजा त्रिमलचंद

[सन् १६२५—१६३८]

राजा त्रिमलचंद ने गद्दी पर बैठते ही शकराम कार्की को मरवा डाला, और विनायक भट्ट की आँखें निकलवाईं। उसकी ज़मीन व सम्पत्ति अपने गुरु श्रीमाधव पांडे को सौंप दी। पीरू गुसाईं को इस शर्त पर प्रयाग जाने की आज्ञा दी कि वह अक्षय वट के पास जाकर आत्महत्या करे। यह इसलिए किया गया कि कहते हैं कि पीरू गुसाईं को गढ़वाल से राजा त्रिमलचंद ने चिट्ठियाँ लिखी थीं कि यदि वह राजा विजयचंद को मरवा डालेंगे, और उनको राजा बनावेंगे, तो वह सब अधिकार राज्य में उनका रक्खेंगे। वे सब चिट्ठियाँ राजा ने आदमी भेजकर प्रयाग से अपने पास मँगाईं, क्योंकि राजा ने यह समझा होगा कि यदि वे चिट्ठियाँ किसी अन्य व्यक्ति के हाथ आ गईं तो लोग उसको व उसकी संतान को पापी व विश्वासघाती बतावेंगे। चिट्ठियों को राजा को वापस देने पर कहा जाता है कि पीरू गुसाईं ने सोना गलवाकर पी लिया, और अपने पाप का यही प्रायश्चित्त समझकर आत्महत्या कर ली।

यद्यपि तीनों व्यक्ति (१) शकराम कार्की, (२) विनायक भट्ट, (३) पीरू गुसाईं राजा विजयचंद को निर्दयता-पूर्वक मारने के षड्यंत्र में शामिल थे, और इसमें राजा त्रिमलचंद की गुप्त सम्मति भी थी, तो भी राजा त्रिमलचंद ने एक तो लोकमान्यता प्राप्त करने, दूसरे अपने को निर्दोष बताने तीसरे ऐसे पापी कर्मचारियों को भविष्य में आगाही होवे, और उनसे दग़ाबाज़ी न हो, इन इरादों से उक्त तीनों कर्मचारियों को मरवा डाला।

इस राजा ने अपने पिता राजा लक्ष्मीचंद के बंदोबस्त के अनुसार राज-काज चलाया। झिजाड़ के पं० नरोत्तम जोशी वज़ीर व क़लमदान के ज़िम्मेदार बनाये गये। दीवान श्रीविट्ठल गुसाईं नियुक्त हुए। लेखक साहू तथा रंतगली बहाल रहे। चार दफ़्तर अलग-अलग किए। गल्ली के श्रीदिनकर जोशी को ब्राह्मणों का लेखवार या लेखक बनाया। अठकिन्सन साहब कहते हैं कि श्रीदिनकर जोशी को ब्राह्मणों का चौधरी बनाया। ब्राह्मणों का चौधरी नहीं होता, अतः लेखवार ठीक होगा। गल्ली के जोशी कत्यूरियों के समय से प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। इनका स्थान पहले मौज़े सेड़े में था।

सन् १६३० के लगभग छखाता और ध्यानीरौ के बीच पट्टी छब्बीस दुमौला में लूल और खस लोगों को एकत्र करके खस राजा पीरा सम्मल ने बलवा मचाया। राजा ने सेना भेजी। उन लोगों ने बड़ी मार-काट मचाई।

राजा त्रिमलचंद फ़ौज लेकर स्वयं वहाँ गये। पीरा सम्मल तथा उसके साथियों को मार डाला।

५७. रसोई-दारोग़ा

राजा विजयचंद को रसोई के दारोग़ा व राजचेलियों ने मिलकर मारा था। इससे राजा त्रिमलचंद को डर हुआ कि कहीं उसे भी वे उसी तरह न मार डालें। राजा ने सब कर्म्मचारियों को बुलाया और कहा कि राजचेलियाँ व रसोई के दारोग़ा 'चाला' (षड्यंत्र) न रचने पावें, ऐसा उद्योग किया जाना चाहिए। कोई ईमानदार व संयमी पुरुष रसोई का दारोग़ा नियुक्त हो। तब लोगों ने कहा—ऐसा राजभक्ति-पूर्ण सेवा करने वाला ख़ानदान सरदार नीलू कठायत का है। उस वीर कठायत ने अपना नुक़सान होने पर भी कब्ज़े में आये हुए राजा गरुड़ ज्ञानचंद को मारा नहीं। ढूँढने पर श्रीनीलू कठायत के खानदान में एक व्यक्ति श्री कर्ण कठायत पाया गया। वह रसोई का दारोग़ा बनाया गया। पश्चात् इसी कर्ण कठायत के खानदान में चार पुश्त तक दारोग़ाई रही। श्री कर्ण कठायत का बेटा श्रीलालसिंह, उसका बेटा गुजा, उसका पुत्र श्रीरामसिंह तथा श्रीरामसिंह का बेटा श्रीधर्मसिंह था।

५८. रसोई के बाबत नियम

(१) वह देखे कि रसोइया भोजन अच्छी तरह बनाता है।
(२) उसका महर फरत्यालों के साथ कोई संबंध न रहना चाहिए।
(३) वह जो कुछ सुने या देखे, राजा से कह दे।
(४) वह झूठ न बोले।
(५) महल में जो कुछ देखे या सुने, बाहर न कहे।
(६) राजा के खाने को पहले चख ले।
(७) नौकरों को वक्त़ बेवक्त़ डाटता रहे, ताकि कोई ग़फ़लत में न पड़े। रसोई पर कड़ी नज़र रक्खे।
(८) रसोइये को अपनी आँख से बाहर न होने दे, और अकेले में रसोइये को रसोई में न रहने दे।
(९) राजा के ख़ास नौकरों के सिवा और किसी को राजा के खाने के संबंध में कुछ न करने दे।

(१०) ये नौकर और कोई दूसरा काम न करने पावें।

(११) ज़हर, भाँग, अफ़ीम, सिमलखार (संखिया ?) इनकी बातें न करे, न किसी को छूने दे।

(१२) दरबार में केवल मुक़र्रर वक़्त में आवे, हर वक़्त न आवे।

(१३) राजा के खाने के वक़्त उसके पास रहे। हमेशा अदब ज़ाहिर करे। लगा-लिपटी न दर्शावे। राजा के चेहरे को देखता रहे, और इशारों को पहचाने कि राजा क्या चाहते हैं।

(१४) कालीकुमाऊँ व सोर के लोगों से या कत्यूरी ख़ानदान के लोगों से या चंद-ख़ानदान के कुँवरों से बातचीत न करे, न उनके घरों में जावे। कालीकुमय्याँ, मनुराल, रौतेला, सोखाल, नगरकोटिया आदि लोगों की बीमारी या मातमपुरसी में भी न जावे।

(१५) महल की स्त्रियों को सम्मान के साथ संबोधन करे। बल्कि चेलियों से मा-बहन के रिश्ते से बोला जावे। बुरी बात न बोले और जब रनवास की ओर जाने की ज़रूरत हो, तो नीची नज़र करके जावे और हल्की आवाज़ से बोले।

(१६) जादू, टोने व मंत्र की बात न कहे, क्योंकि यह बुरे कामों के लिये किये जाते हैं। महल के भीतर न तो हजामत और न नाख़ून बनवावे। छज्जे पर से बाहर के आदमियों से ऊँची आवाज़ में न बोले।

---

५९. राजचेलियों के लिये नियम

(१) दरबार के बाहर कभी न जाना। (२) किसी कामदार या रय्यत के अफ़सर से बोलचाल न रखना।

इसके अलावा यहाँ के धड़ों का सन्देह दूर करने के लिये एक क़िस्म की राजचेली गढ़वाल के ज़िले से मँगाकर दरबार में रक्खी गई।

पादरी ओकली साहब 'होली हिमालय' में लिखते हैं कि ये नियम तो रूस के ज़ार के नियमों को भी मात देते हैं। कुमाऊँ के छोटे से राजा को रूस के ज़ार से भी ज़्यादा आत्मरक्षा की ज़रूरत थी।

राजा त्रिमलचंद ने केदारनाथ-मंदिर को कुछ ज़मीन दी। बाक़ी इनके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं।

---

६०. कुँवर बाजा गुसाईं उर्फ़ बाजबहादुरचंद

राजा के पुत्र न था। विजयचंद के समय जो मार-काट हुई थी, उस समय बहुत-से चंद मारे गये थे, कुछ भाग गये थे। अतः राजा त्रिमलचंद ने राज्याधिकारी के लिये खोज की। लोगों ने कहा कि बाजा उर्फ़ बाज गुसाईं नामक श्रीनील गुसाईं के पुत्र को श्रीधर्माकर तेवाड़ी की स्त्री ने पाल रक्खा है। अतः वहाँ से उसे लाने के लिए कुछ आदमी भेजे गये, पर तेवाड़ी की स्त्री ने कुछ दाल में काला समझकर बालक का अपने यहाँ होना स्वीकार नहीं किया। तब राजा स्वयं वहाँ गये। उस धर्मात्मा तथा सती-साध्वी स्त्री ने राजा से धर्मवचन देने को कहा, और क़सम खाने को बाध्य किया कि राजा उसे युवराज बनावेंगे, मारेंगे नहीं। तब राजा ने हर तरह से सांत्वना देकर अभय-दान दिया। तब उस तेवाड़ी पुरोहित की धर्मपत्नी ने श्रीबाज गुसाईं को राजा के हाथ सौंपा। राजा ने उसे राजमहल में ले जाकर युवराज के पद पर अभिषिक्त किया। इन राजकुमार बाज गुसाईं के विषय में बहुत-सी कहानियाँ हैं। कोई कहते हैं कि जब कुँ० नील गुसाईं अंधे किए गये, तो यह एक पुरोहित के यहाँ छिपाये गये। कोई कहते हैं कि रानी की एक प्यारी खवासन ने इन्हें क्रोध में आकर नीचे फेंक दिया, जहाँ कि उस चौंसार की स्त्री ने इन्हें पाया, और पाला। तीसरी किंवदन्ती यह है कि यह चौंसार के तेवाड़ी के पुत्र थे, जो असत्य है। पहली कहानी ठीक बताई जाती है। यह बड़ी धूमधाम से युवराज बनाये गये। राजा ने इन्हें दरबार में ले जाकर कुँवर के नाम से पुकारा, और अपने साथ राजगद्दी पर बैठाकर कहा—"बेटा, मेरे बाद तू राजा होगा।" तब से वह कुँ० बाजचंद कहलाये, तथा दरबार में बैठकर राज-काज सीखने लगे।

राजा त्रिमलचंद १३ वर्ष राज्य कर संवत् १६६५ सन् १६३८ में स्वर्ग को सिधारे। कुँ० बाजचंद राजा बने।

---

६१. (५०) राजा बाजबहादुर चंद

[सन् १६३८—१६७८]

सन् १६३८ में राजा त्रिमलचंद की मृत्यु पर कुँ० बाजाचंद या बाजचंद राजा हुए। इस समय तराई-भावर में खूब आबादी थी। वहाँ से वास्तव में नौ लाख की आमदनी हो रही थी। पर लक्ष्मीचंद राजा के समय से चंद लोग घरेलू लड़ाई में पड़े थे। आपस में मार-काट थी। अविश्वास था। इससे

वे तराई की ओर ध्यान न दे सके। वहाँ कठेर के हिन्दू मुखियों ने इनका बहुत सा माल का राज्य छीन लिया, अतः फ़रियाद करने ये बादशाह शाहजहाँ के दरबार में पहुँचे। बहुत-से तोहफ़े लेकर गये। यथा—"चँवर गाय, कस्तूरा मृग, मुश्क, चँवर, निरबीसी, गजगाह, घोड़े, खाँड़ा, खुकरी हाथी और सोने चाँदी के बर्तन इत्यादि।" बादशाह के पास नज़र पेश की, और कठेड़ियों के ज़ुल्म की कहानी कही। बादशाह ने कहा कि इस समय लड़ाई है, वे भी युद्ध में शामिल होवें, जीत होने पर 'माल' यानी तराई-प्रान्त उनको दिया जावेगा। वहाँ उस वक्त यानी सन् १६५४-५५ में सेना गढ़वाल को भेजी जा रही थी। ये भी वहाँ भेजे गये। इन्होंने गढ़वाल की लड़ाई में बहादुरी दिखाई, इससे इनको बहादुर की पदवी मिली। कोई तो कहते हैं कि 'महाराजाधिराज' की पदवी भी मिली। इनको नक़ारा बजाने का हुक्म भी हो गया। एक खिल्लत भी जवाहरातों से जड़ी हुई मिली। पर यह तो तराई पर अपना पूर्ण अधिकार करने की ग़रज़ से गये थे, ये सूखी पदवियों से क्या करते। इनको एक फ़रमान (हुक्मनामा) मिला, जिसमें इनको तराई का ज़मींदार कहा गया। मुरादाबाद को आबाद करनेवाले सूबेदार नवाब रुस्तमख़ाँ ने राजा बाजबहादुरचंद की मदद की, फिर तराई पर कुमाऊँ के राजा का अधिकार हो गया। नवाब ख़लीलउल्लाख़ाँ ने भी इनको मदद पहुँचाई। रुस्तमख़ाँ ने कठेड़-प्रान्त में आकर कठेड़ियों को बादशाह का हुक्म सुनाया। उनकी फ़ौज तोड़ दी, और तराई में राजा बाजबहादुरचंद का फिर से पूर्ण अधिकार हो गया।

राजा बाजबहादुरचंद ने तराई में कारिन्दे नियुक्त किये और बाजपुर नामक नगर बसाया जो अब तक है।

---

६२. औरंगज़ेब की धमकी

जब औरंगज़ेब ने अपने भाइयों को मारकर तख़्त पर बैठने की ठानी, तो शाहज़ादा सुलेमान शिकोह (पुत्र दाराशिकोह) भागकर कुमाऊँ में आया। बाजबहादुरचंद से शरण माँगी। राजा ने पहले तो उसकी ख़ूब ख़ातिर की, पर बाद को उसे बादशाह के विरुद्ध देखकर बहुत-से नज़रानों तथा धन से लादकर गढ़वाल को भेज दिया। फ़ौरन् ही औरंगज़ेब ने फ़ौज भेजी और राजा को धमकी दी कि अगर कुमाऊँ का राजा सुलेमान शाहज़ादे को बादशाह को न सौंप देगा, तो सारा तराई छीन लिया जावेगा, और कुमाऊँ

उजाड़ दिया जावेगा । राजा उस समय तराई में थे । राजा का एक पहरेदार हेड़ी राजा के कहने से रात को मुसलमान सेनापति के शयनागार में से दुशाले, खंजर व पगड़ी चुरा लाया । राजा ने उन कपड़ों को बादशाह के पास भेजा, और एक पत्र भी लिखा कि यदि वह चाहते, तो जिस प्रकार उन्हों कपड़े पाये वह शाही सेनापति को भी मार देते, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया । शाहज़ादा उनके यहाँ नहीं है । यह पत्र बादशाह औरंगज़ेब के पास पहुँचा या नहीं, किन्तु इतने में वह अभागा शाहज़ादा पकड़ा गया और मारा गया । मुग़ल फ़ौज तराई से लौट आई । मुग़ल सरदार ने बादशाह औरंगज़ेब से कहा कि कुमाऊँ का राजा सच्चा व सीधा है, उसने शाहज़ादे को पनाह नहीं दी । पश्चात् राजा बाजबहादुरचंद ने अपने दो राजदूत कुँ० पर्वतसिंह गुसाईं तथा पं० विश्वरूप पांडे राजगुरु को दिल्ली में औरंगज़ेब के पास भेजा, और सारा हाल भी लिख भेजा, और अपने को बेक़सूर बताया । बादशाह .खुश हुए । तराई की बाबत फ़रमान मय ख़िल्लत के बादशाह ने दिया ।

× × ×

तराई का प्रबंध

उपर्युक्त हाल लिखने के बाद प्रसिद्ध इतिहासकार सर जदुनाथ सरकार द्वारा लिखित 'औरंगज़ेब'-नामक पुस्तक, जो पाँच भागों में विभक्त है, हमें देखने को मिली । उसके तीसरे भाग पृष्ठ ४१-४२ में लिखा है—"१६६५ में एक सेना कुमाऊँ में राजा बाजबहादुरचंद के विरुद्ध भेजी गई । तराई पर सम्राट् औरंगज़ेब की सेना का अधिकार हो गया, और वहाँ शाही शासन स्थापित हो गया (अक्टूबर १६६५), लेकिन पर्वतों पर अधिकार जमाना खेल न था । मई १६६६ में १ लाख रुपये तथा २०० पत्थर काटनेवाले (Stone Cutters) सेना की सहायता को भेजे गये । श्रीनगर के राजा ने मुग़लों का साथ दिया, लेकिन उसके भतीजे ने, जो कुमाऊँ के राजघराने में ब्याहा था, कुमाऊँ के राजा का साथ दिया ।" इतिहासकार ने यह नहीं लिखा है कि सन् १६६४ के जून में राज-भक्ति का इनाम पाकर भी क्यों राजा बाजबहादुरचंद सम्राट् के कोपभाजन हुए । एक चिट्ठी, जो राजा ने वज़ीरआज़म (दीवान) अलीवर्दीख़ाँ को लिखी, उससे बातें स्पष्ट होती हैं । उसमें लिखा है,"मैं बादशाह का पुराना ग़ुलाम हूँ, क्योंकि मैंने शाहजहाँ के वक़्त से परवरिश पाई है, मेरा राज्य सम्राट् का है, तब तुम क्यों इसे उजाड़ रहे हो ? राजा श्रीनगर ने मेरी झूठी शिकायत की

है कि मेरे पास बहुत धन है। इतना सोना सारे पहाड़ों में ढूँढ़ने से भी न मिलेगा। वह अपने शब्दों को सत्य सिद्ध करके दिखावे। दूसरी बात जो मेरी बिना आज्ञा श्रीनगर जाने की है, उसके लिए मैं सम्राट् को जुर्माना देने को तैयार हूँ।" ऑक्टोबर १६७३ में राजा को माफ़ी मिल गई, और उन्होंने अपने राजकुमार को शाही दरबार में भेजा।

इस घटना के बाद राजा बाजबहादुरचंद ने तराई-भावर के इन्तज़ाम के बारे में सख्ती आरम्भ की। राजा को तराई-भावर से बड़ा प्रेम था। वह वहाँ बहुत दौरे किया करते थे। तराई-भावर में जा-बजा अफ़सर नियुक्त किये गये। उनको जाड़ों में बाजपुर व रुद्रपुर रहने का हुक्म हुआ। बाजपुर इन्होंने ही अपने नाम से बसाया था। गरमियों में अफ़सर लोग कोटा व बाड़ा-खेड़ा में आ जाते थे। हर बीघा ज़मीन आबाद थी। कोटा नगरी में क़िले व महल थे। वह तराई-भावर की मुख्य राजधानी थी। बड़े लाट तराई-भावर के वहाँ रहते थे। कुछ मुसलमान सरदार व फ़ौज भी 'माल' की हिफ़ाज़त के लिये रक्खी गई और उनका दस्तूर भी बाँधा गया। मुसलमानों में से कुछ हेड़ी व मेवाती राजपूताना के थे, उनको भावर की चौकीदारी दी गई। उनका दस्तूर भी गाँवों में बाँधा गया। जागीरें भी दी गईं।

---

६३. नया दरबारी ढंग

जब राजा तराई-भावर से लौटकर आये, तो अल्मोड़ा में आकर उन्होंने वही ढंग रक्खा, जो मुसलमानी दरबार में तथा अन्य राजाओं के यहाँ देखा था। नौबत व नक़्क़ारचीख़ाने बनाये गये। आसा, बल्लम ले जानेवाले चोपदार भी रक्खे गये। राजा अपने साथ देश से कुछ चोपदार, नक़्क़ारची, मिरासी, भाँड़ तथा बहुरूपियों को लाये थे। महल के वास्ते मिठाई बनाने को एक हलवाई ब्राह्मण भी रक्खा गया। पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं—"और भी गंगाविष्णु, हरबोला, घटचाल, डाँगी, खोलिया, पटौलिया, पिरसुजिया वग़ैरह नाम से परिचूंणी (?) बनाई।" कुँ० शक्ति गुसाईं के बंदोबस्त के अनुसार अमुक-अमुक गाँवों की मालगुज़ारी से इनको गुज़ारा मिलने लगा। राजा ने अपने वास्ते सीर के लिये व डेवढ़ी के ख़र्च को पाल के नाम से गाँव अलग किये। डालकोट व सिलकनियाँ गाँवों की मालगुज़ारी बारूद के कारख़ाने के काम में ख़र्च किये जाने का हुक्म हुआ। और महरव्यूड़ी गाँव (पट्टी ?) वालों को आज्ञा मिली कि वे लड़ाई के वक़्त रसद व सामान ले जावेंगे।

ये लोग गोली-बारूद भी बनाते थे। अठकिन्सन साहब लिखते हैं कि दिल्ली के बादशाहों का कृपा-भाजन बनने की अभिलाषा से राजा बाजबहादुरचंद ने कुमाऊँ से जज़िया (Poeltax) भी वसूल किया, और उसे बराबर दिल्ली के बादशाह के पास भेजा। पर पं० रुद्रदत्त पंत व अन्य लेखकों ने इसका कोई वर्णन नहीं किया है। वर्तमान राजा आनंदसिंह ने लेखक से कहा है, डॉ० कुमारस्वामी ने भी इस बात का विरोध किया है। कुमाऊँ से एक आवेदन पत्र गया था कि यह टैक्स न लगे।

---

६४. नंदादेवी की स्थापना

इन्होंने एक बार गढ़वाल के बधानगढ़ व लोहबागढ़ दोनों पर चढ़ाई की, और जूनागढ़ का क़िला भी छीन लिया। वहाँ से मय टहलुओं के नंदादेवी को लाये, जिसको इन्होंने मल्ला महल में स्थापित किया। उसमें राजचेलियाँ सेवा के वास्ते रक्खी गईं। बाद को ट्रेल साहब ने इसे उठाकर वर्तमान जगह में रक्खा।

---

६५. तिब्बत-यात्रा

राजा बाजबहादुरचंद धार्मिक विचारों के भी पक्के थे। मानसरोवर व कैलास के यात्रियों से लामाओं (हुणियों) की अत्याचार-पूर्ण कहानियों को सुनकर वह दुःखी होते थे। उन्होंने भोट के रास्ते तिब्बतियों पर चढ़ाई कर दी और सन् १६७० इसवी में ताकलखाल के क़िले को छीन लिया। कहते हैं, उसमें जो दरार राजा की सेना ने की थी वह अभी तक वैसी है। राजा ने कैलास के दर्रों का अधिकार हुणियों से छीनकर अपने हाथों में लिया। भोटिये लोग जो दस्तूरी तिब्बतियों को देते थे, वह भी बंद कर दी, पर जब तिब्बतवालों ने यह स्वीकार किया कि वे आइन्दा कोई तकरार धर्म, रास्ता व तिजारत के बारे में न करेंगे, तब उसे जारी रहने दिया। पंचू आदि पाँच गाँवों की मालगुज़ारी से उन्होंने मानसरोवर जानेवाले यात्रियों के लिये भोजन, वस्त्र व स्थान की व्यवस्था कर दी। रजबार साहब अस्कोट के काग़ज़ात भी देखे, और अपने बड़े-बूढ़ों की परिपाटी को स्थायी रक्खा।

---

६६. कुँ० उद्योतचंद की बग़ावत

अल्मोड़ा आने पर राजा को मालूम हुआ कि कुछ लोगों ने उनकी (तिब्बत की) अनुपस्थिति में युवराज उद्योतचंद को भड़काने का खूब प्रयत्न किया, और वे सफल भी हुए। राज्य छीनने का भी षड्यंत्र रचा गया। इस पर राजा ने युवराज उद्योतचंद को सरयू पार गंगोली में भेजा, ताकि वह सरयू के उस ओर के प्रान्त सोर, सीरा, अस्कोट, दार्मा, भोट आदि का भार अपने ऊपर ले लें।

---

६७. राज्य-प्रबंध

अल्मोड़ा में शासन-भार जोशी, चौधरी, शाहू व रतगलियों के हाथ रहा। झिजाड़ व सेलाखोला के जोशी प्रायः सब पदों पर थे। सर्वश्री नरोत्तम, प्रयागदास तथा ऋषिकेश जोशीजी प्रधान-प्रधान पदों पर थे। सेलाखोला के श्री प्रयागदास जोशी चौथे दफ़्तरी बनाये गये। इनके नीचे साहू, चौधरी तथा रतगली लेखक तथा सहायक कर्मचारी थे। ये लोग दीवानों को 'सीक' के नाम से नज़राना भी देते थे।

---

६८. गढ़वाल व पालीपछाऊँ की बातें

जब राजा बाजबहादुरचंद भोट में थे, तो गढ़वाल के राजा ने सेना एकत्र कर बाजबहादुरचंद के जीते हुए मुल्क पर फिर अधिकार कर लिया। राजा बाजबहादुर कुछ अपने योग्य सेनापति तथा सेना को लेकर पिंडारी के रास्ते गढ़वाल पहुँचे, और कुछ सैनिक रामगंगा के रास्ते सेना लेकर लोहबा में गये। साँवली और बंगारस्यूँ के लोगों ने राजा बाजबहादुरचंद की सेना का साथ दिया। इन सबों ने मिलकर गढ़वालियों को श्रीनगर तक भगाया। खास श्रीनगर में संधि-पत्र लिखा गया, फ़ौज का ख़र्च व नज़राना लेकर गढ़वाल का मुल्क उस राजा के सिपुर्द किया गया।

जब बार-बार कुमाऊँ व गढ़वाल के बीच तकरार व युद्ध होता रहा, और पाली के सयाने, जो कत्यूरी ख़ानदान में से थे, और चंदों के स्वाभाविक शत्रु थे, गढ़वालियों को मदद देते थे, और स्वयं भी कभी-कभी मुल्क में लूट-खसोट करते थे, एवं साँवली व बंगारस्यूँ के रहनेवाले भी कभी-कभी पाली में लूट-धाड़ करते, तो राजा बाजबहादुरचंद ने इन लोगों को अपनी तरफ़

मिलाना चाहा। अतः साँवली के विष्ट, जिनको साँवलिया कहते हैं व बंगा-रस्यूँ के बंगारी, जिनको रौत (रावत) भी कहते हैं, इन दो थोकों को बाज-बहादुरचंद ने अपनी ओर किया, और पाली के बाग़ी सयानों की सनद भीतर के गाँव निकालकर विष्ट को तामली वग़ैरह तथा बंगारी रौत को मरसोली आदि गाँव देकर, उनको भी सयाना बनाया। तब से पालीपछाऊँ में चार सयाने हो गये, जो अब तक विद्यमान हैं। साँवलिया विष्ट व बंगारी रौत भी अपने को कत्यूरियों की संतान में बताते हैं। कहते हैं कि उनके पुरुषे भी कत्यूर के राजभंग होने पर गढ़वाल चले गये थे। वहाँ पातलीदून में क़िला बनवाकर राज्य करते थे। इसी समय असवाल व डंगवाल वग़ैरह जातियाँ भी गढ़वाल से पाली में आईं। इनको भी कमीनचारी राजा ने दी। इन सबों ने चंद राजा को गढ़वाल की लड़ाई में मदद दी थी।

यह कहा गया है कि राजा कीर्तिचंद के समय में पाली जीता गया था, पर वहाँ के कत्यूरी सल्ट के मानिला क़िले में बसने दिये गये थे। इस युद्ध में राजा के पास खबर आई कि इन कत्यूरियों ने गढ़वाल को मदद दी है, तो राजा ने उस क़िले को भी उजाड़ दिया और वहाँ के कत्यूरी राजा को भी भगा दिया। इस प्रकार कत्यूरी-ख़ानदान का आख़िरी राज-चिह्न भी विलुप्त हो गया। सल्ट भी चंद-राज्य में शामिल किया गया।

सन् १६७२ में राजा ने तराई के आस-पास के गाँवों पर सेना लेकर चढ़ाई की, क्योंकि ये लोग नित्य तराई में लूट-खसोट करते थे और नगीने तक का सारा मुल्क लूट लिया।

---

६९. पूर्वीय प्रान्त का शासन

तीन तरफ़ शांति स्थापित करके राजा बाजबहादुरचंद अपने पूर्वीय प्रान्त की ओर गये। वे सोर में डोटी के राजा से मिले। बाद को काली के रास्ते वे ब्रह्मदेव मंडी को गये। वहाँ देखा कि चितौना के राजा ने ब्रह्मदेव के ऊपर कालाघाट में क़िला बनवाया है, और उसने अपने को स्वतंत्र शासक घोषित किया है। बाजबहादुरचंद ने क़िले को छीन, राजा को वहीं पेड़ पर फाँसी दे दी। वहाँ शांति स्थापित की। सन् १६७४ में राजा गंगोली होते हुए व्यांस पहुँचे। व्यांस को अपने राज्य में मिलाया, और तिब्बतवालों से उस घाटे में भी शर्तें लिखाईं, जो जोहार घाटे (दर्रे) में लिखाई थीं। भोटियों व हुणियों को सिरती देने का हुक्म हुआ। किंतु अपने वास्ते सोने का चूरा (फेटांग), कस्तूरी, नाभे तथा नमक-कर स्थापित किया।

युवराज कुँ० उद्योतचंद तथा इनके बीच खटपट रहती थी, यह बात पहले लिखी जा चुकी है। उद्योतचंद ने गंगोली से साधारण पत्र राजा को लिखा, किन्तु उस पत्र के भीतर एक सफ़ेद बाल पाया गया। राजा ने उसका कारण दरबारियों से पूछा। दरबारियों ने कहा कि कुँवर का सफ़ेद बाल भेजने से मतलब यह है कि वह बूढ़ा हो गया है, पर अभी तक कुँवर ही है, अब वह राजा कब होगा? इस पर राजा ने चिट्ठी का उत्तर लिखवाया, और उसके अन्दर एक बाल काला अपने सिर का भेजा, और कहलाया कि अभी राजा बूढ़े नहीं हुए। पर कुँवर को सांत्वना देने को राजा गंगोली गये, और वहाँ उनसे प्रेम-पूर्वक मिले, और उनको आश्वासन देकर अल्मोड़ा चले आये।

इस राजा ने दान-पुण्य बहुत किया। बागीश्वर में कई यज्ञ किये। नित्य जप-तप, होम-यज्ञ होते रहते थे। पीनाथ-मंदिर इन्होंने बनवाया। छखाता भीमताल में भीमेश्वर का निर्माण इन्होंने किया। कटारमल का मंदिर, पाली में महारुद्र का देवालय तथा भवानीदेवी के मंदिर, करगेत गाँव में बदरीनाथ का मंदिर आदि अनेक मंदिर बनवाये। जागीश्वर के मंदिर में ताँबे के पत्र जड़वाये। कई और भी मंदिर व नौले बनवाए। इनमें लाखों रुपए ख़र्च हुए। ख़ज़ाने में रुपया कम हो गया था। अपने राज्य में फ़ी आदमी २) रु० कर 'माँगा' के नाम से रक़म मुक़र्रर की, और वसूली करा-कर ख़ज़ाने में जमा कराई।

जिस तेवाड़ी ब्राह्मणी का दूध पीकर राजा चौंसार में पले थे, और जिसने राजा की सेवा उनकी बाल्यावस्था में की थी, उनके बेटे का नाम पं० नारायण तेवाड़ी था। उसको राजा बाजबहादुरचंद ने अपने पास बुलाया, और बड़े भाई के रिश्ते से पुकारा अर्थात् "नारायण दा याँ आव, बैठौं" कहा, और कहा कि उनको वह (राजा) क्या दे। श्रीनारायण तेवाड़ीजी ने कहा कि जो दरजा बमनई में गुरु, पुरोहित पंत, पांडे का दर-बार में समझा जाता है, उसी दरजे के ब्राह्मण तिवाड़ी भी गिने जावें। राजा ने मंज़र किया, और कारबारियों को आज्ञा दी कि जिस काम में गुरु पुरोहितवर्ग के ब्राह्मण बुलाये जाते हैं, अब से उनके साथ श्रीनारायण तेवाड़ी भी बुलाये जावें। तब से तेवाड़ी लोग अपना चौथा दरजा बताते हैं। यह नारायण तेवाड़ी पूर्व-कथित श्रीचंद तेवाड़ी की संतान में से थे, और इन्होंने हरियां डुंगरी के पूर्व तरफ़ उत्तर कोने में महादेव का मंदिर भी बनवाया था, जा अब तक उनके नाम से विद्यमान है। इसका कुल ख़र्च राजा बाजबहा-

दुरचंद ने दिया था। उस ईमानदार व धर्मात्मा ब्राह्मण की यह यादगार अब तक बनी है। इन्हीं के नाम से 'त्याड़ा का नौला' भी बना है जो कि चौंसार के नज़दीक है।

यह राजा वीर व पुण्यात्मा होकर भी एक बार ऐसे फंदे में फँसे कि बुढ़ापे में इन्होंने बड़ी बदनामी कमाई। एक डालकोटी ब्राह्मण चौगरखे का राजा की खिदमत में रहता था। पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं कि इस डालकोटी ब्राह्मण ने इनको अपने पंजे में फँसाया, और कहा कि कुमाऊँ-राज्य में 'चाले' षड़यंत्र बहुत होते हैं, और राजा कारबारी तथा दरबारी लोगों की परीक्षा नहीं करते। राजा ने परीक्षा का ढंग पूछा, तब इसने कहा कि वह दो ढेर चावल के रखेगा, एक भले का, दूसरा बुरे का। उसको छूने से वह ब्राह्मण राजा को बता देगा कि कौन दरबारी व कर्मचारी भला है, कौन बुरा। राजा की अक़्ल में पर्दा पड़ गया। राजा ने इसी प्रकार उस ब्राह्मण के कथनानुसार चावल छुआने शुरू किये, और बहुत - से कर्मचारियों को उसके अनुसार बुरा समझकर मरवा दिया।

डालकोटी ब्राह्मण जिसको मरवाना चाहता, कह देता कि वह बुरा है। क्योंकि राजा ने बुरी (पूँजी) ढेरी चावल की छुई है। सैकड़ों आदमी उस ब्राह्मण के कहने से राजा ने मरवा दिये। कई की आँखें निकलवा दीं। त्राहि-त्राहि मच गई। तभी से यह क़िस्सा चला है—

"बर्ष भया अस्सी, बुद्धि गई नस्सी।"

बारामंडल के बजेलगाँव का श्रीसुंदर भंडारी राजा का प्रिय चाकर था। उसने एक दिन राजा से कहा कि उन्होंने डालकोटी के बहकाने से बहुत-से आदमी वृथा ही मरवा डाले, इससे राज्य के अफ़सरान उनसे नाराज़ हैं। राजा ने कहा कि वह बिना तहक़ीक़ात के किसी को नहीं मरवाते। (पूँजी) चावल की ढेरी का न्याय बहुत ठीक है। तब सुंदर भंडारी ने कहा कि चावलों की दो ढेरी वे रखते हैं, राजा अपने दिल में ख्याल कर लेवें कि (१)एक ढेरी का यह मतलब होगा कि श्रीसुंदर भंडारी राजा को बुरा मानता है और (२) दूसरी ढेरी का यह मतलब होगा कि वह राजा को अच्छा मानता है। इत्तिफ़ाक़ से सुंदर भंडारी ने वह (पूँजी) ढेरी छुई, जिसमें नं० (१) वाला इशारा था। इस प्रत्यक्ष प्रमाण से बूढ़े राजा की आँखें खुलीं, और उन्होंने डालकोटी को सज़ा करवाई, और कहा कि उन्होंने बहुत पाप किया तथा जो लोग मारे गये थे, उनके पुत्र-कलत्र को गुज़ारा भी दिलवाया, तो भी वे लोग राजा के पास आने से डरते थे। तभी से कुमावनी क़िस्सा चला—

"जैको बाप रिखलै खायो, ऊ काल खुनि देखि डरो।"

क्योंकि लोग राजा के प्रायश्चित्त को दिखावटी समझते थे, पर कहते हैं कि राजा को उस पाप से गहरी चोट लगी थी।

इस राजा व मंत्री नरोत्तम जोशीजी के बीच यह शर्त थी कि कोई हुक्म बिना राजा के सही किये जारी न होगा, और राजा सही उसी काग़ज़ पर करेगा, जिसको मंत्री ठीक बतावेगा, और सही करने को स्याही भर के क़लम सरकारी क़लमदान में से दीवान राजा के हाथ में देगा। उस क़लमदान की चाबी दीवान के हाथ में रहेगी। यह इक़रार बराबर बरता गया।

एक दिन किसी अत्यावश्यक काम के लिये राजा की अनुपस्थिति में मंत्री ने अपने हस्ताक्षर से एक राजाज्ञा जारी कर दी। विपक्षियों ने न जाने राजा से क्या-क्या कह दिया, राजा रुष्ट हो गये, और आज्ञा दी कि पं० नरोत्तम जोशी मंत्री का हाथ काट दिया जावे। इस पर एक रंतगली उपमंत्री ने मंत्री का अपराध माफ़ कराने को चालीस हज़ार रुपये दंड के अपनी ओर से दिये। तब राजा ने क्षमा प्रदान की।

कुछ वर्ष बाद एक काम और उपस्थित हुआ, जिसमें राजा के हस्ताक्षरों से आज्ञा जारी होनी आवश्यक थी, किन्तु मंत्री उपस्थित न थे। उस समय मंत्री के विरोधी लोगों ने राजा से कहा कि राजा तो मंत्री है और मंत्री राजा। इधर राज्य का काम तो रुका पड़ा है, और मंत्री घर में बैठा मौज उड़ा रहा है। तब राजा ने कुपित होकर, क़लमदान को तुड़वाकर, राजाज्ञा किसी अन्य राजकर्मचारी से लिखवाकर, अपने हस्ताक्षरों से जारी की। जब मंत्री उपस्थित हुए, तो उन्होंने देखा कि क़लमदान टूटा पड़ा है। सब बातों की सूचना मिलने पर श्रीनरोत्तम जोशीजी ने मंत्रिपद से त्यागपत्र दे दिया। पश्चात् जब राजा का क्रोध शान्त हुआ, तो उन्होंने मंत्री को फिर बुलवाया, पर वह न आये, और कहला भेजा कि जब राजा को मंत्री पर विश्वास नहीं, तो वह नौकरी कदापि न करेंगे।

महाराजा बाजबहादुरचंद के पं० श्रीनिवास पांडे (पाटिया), राजगुरु और पं० रुद्रदेव पांडे पुरोहित थे। श्रीनरोत्तम जोशी, श्रीभवदेव जोशी, श्रीसुदर्शन उप्रेती मंत्री थे। श्रीविश्वरूप पांडे (बाड़ाखोरा), श्रीविनायक अधिकारी, श्रीविक्रमार्क गुसाईं, श्रीप्रतापादित्य गुसाईं, श्रीअर्जुनसिंह गुसाईं सेनाध्यक्ष तथा राजदरबारी थे। बड़े-बड़े योग्य पंडित राजा की सभा में विराजमान थे। ज्योतिष-विद्या की खूब उन्नति थी। माला के पं० हीरामणि जोशी, सर्प के पं० रमापति, भेरंग के पं० मनोरथ जोशी दरबार के मुख्य ज्योतिषी थे। पंचांग बनाने की सारिणी एवं कई ग्रंथ ज्योतिष के बनाये गए।

पं० चिन्तामणि पंत माफ़ीदारजी के पास जो ताम्रपत्र है, उसमें ये श्लोक हैं:—

(१)

आकर्णाल्पजय: प्राची यत्राची मा बरेल्लिकाम।
आत्र: श्रीनगरात्पश्चात् उदीची माचरुद्गुणान्॥

(२)

पूर्वं शास्त्रात्परं शास्त्रं प्रबलं जायते यथा।
पूर्वं दानात्परं दानं तथा श्रीबाजभूपते:॥

(३)

तद्वंशे रुद्रचन्द्रोभूद्वाचस्पतिरिवापर: ।
पार्थ एव धनुर्वेदेऽखिल दुर्गादिदेशजित्॥

एक अन्य श्लोक गणित-संबंधी एक प्राचीन लेख में मिला है:—

आर्याछन्द—श्रीमद्बाजबहादुरचन्द्र नरेशाऽज्ञया सुकमठाद्र:।
पंचांगा नयनार्थे सुसारिणीनिर्मिता सुगण केन्द्रै:॥

राजा के तीन पुत्र थे। कुँ० उद्योतचंद, कुँ० पहाड़सिंह गुसाईं तथा तीसरा कुँवर जो भागकर साधु हो गया था।

इस राजा का शासन-काल काफ़ी तेजस्वी रहा। इन्होंने कई परगने फ़तह किये। राज्य का विस्तार बढ़ाया, और कई नये सुधार किये, पर भाग्य की बात, इनका अन्तिम काल बहुत बुरा रहा। शाहजहाँ की तरह इनको उन्माद हो गया था। अपने मुसाहिबों तथा पुत्र की ओर से हर वक़् इन्हें संदेह रहता था कि कब कोई मार डाले। इसलिये इन्होंने अपने सब पुराने नौकरों को निकाल डाला, इस भय से कि कहीं कोई उन्हें मार न डाले। सन् १६८० में यह राजा बड़ी मुसीबत में अल्मोड़ा में मरे। किसी ने भी परवाह न की।

इनके समय के इतने ताम्रपत्रों का पता चला है:—

(१) सन् १६४० लखनपुर मंदिर के नाम गूँठ
(२) ,, १६४३ बदरीनाथ ,, ,,
(३) ,, १६४३ ,, ,, ,,
(४) ,, १६४८ सोमेश्वर ,, ,,
(५) ,, १६५४ पीनाथ ,, ,,
(६) ,, १६५९ श्रीनारायण तेवाड़ी के खानदान को।
(७) ,, १६६२ ,, ,, की यादगार में मंदिर बनवाया।

(८) सन् १६६४ बालेश्वर मंदिर चंपावत ।
(९) ,, १६६५ श्रीकमलापति जोशी के खानदान को जागीर ।
(१०) ,, १६६६ वृद्ध केदार मंदिर को गूँठ ।
(११) ,, १६७० श्रीनारायण तेवाड़ी की संतान को गूँठ ।
(१२) ,, १६७० श्रीजागीश्वर मंदिर को गूँठ ।
(१३) ,, १६७१ बागीश्वर मंदिर को गूँठ ।
(१४) ,, १६७१ गल्ली के प० कृष्णानंद जोशी को जागीर ।
(१५) ,, १६७३ मानसरोवर के यात्रियों के लिये सदावर्त ।
(१६) ,, १६७५ श्रीकुलोमणि पांडे को जागीर ।
(१७) शकाब्द १५६६ में भेरंग पोखरी के पं० मनोरथ जोशी को ताम्र-पत्र भूमि-दान का ।
(१८) शकाब्द १५६६ में दोपहरिया किच्छा में खूँट के त्रिलोचन पंत को माफ़ी का ताम्रपत्र दिया ।

यह पं० नारायण तेवाड़ीजी वह हैं, जो राजा बाजबहादुरचंद के धर्म-भाई थे ।

चंद राजाओं के ताम्रपत्र कटारदार कहलाते थे, क्योंकि इनमें राजा ख़ुद दस्तख़त करने के बदले अपना कटार बना देते थे । उनका नाम ताम्रपत्र के आरंभ में खुदा रहता था । साथ ही उस समय के मुख्य कर्मचारियों के नाम भी ताम्रपत्रों में अंकित रहते थे । काग़ज़ों में भी दस्तख़त करने का यही नियम था ।

---

७०. दिल्ली जाने का ख़र्च

राजा बाजबहादुरचंद दिल्ली गये थे । उनके रोज़नामचे (दैनिक चर्य्या) का एक पत्र लेखक को मिला है, उसमें दिल्ली में जो खर्च नज़राने में हुआ, उसका वर्णन है । उस रोज़नामचे की नक़ल यहाँ पर दी जाती है । (भाषा जैसी उसमें है, उसी की यह नक़ल है ।)

"शाके १५७८ वैशाख सुदी ३ गुरौ श्रीराजा बाजबहादुरचंददेव की चलाई दिल्ली-दरबार भई । पेशकश को साज ।

श्रीपातशाहीज्यू साहीजादा को	तैका रुपैया
१००१) मोहर दरी १४॥ अदपाई आनु	१४५३१)

३०००) रुपया नज़री को ३०००)
२ षाँड़ा बड़ा श्रोलिया म्यान सुनुका कटाऊ का १५२ म० ५ नं० म्यान १८१६)
५ कटारा श्रौली मुट्ठा सुनुका येक षंड मुट्ठा ५ को श्री सुधा
  का १२३ म० ४ मुट्ठा ५
  का २ म० कोथी २ १०५४)
४ कटारी सुनु का मुट्ठा का १६।)
६ गूँठ साज का ४३७ म० १ र० सिरछालगजगाह गूँठ ५२४५)
  का १५६ म० १० गूँठ २ साज सिरछाल २ गजगाह २ साल २
  का २७७३ र० गूँठ ७ सात ७ माला गूँठ को श्रल्मोड़ा
  वाली चौकी ५ का ३५ म० ७ ४२७)
  का ७६३ म० ११२॥
७ षांडा श्रौर नाना का ४१ म० ६ रः वीनातइनाल ४६८)
२ हातीन को साज मोल लीनु ५०००)
१ हाती मोल लीनु ८०००)
२ टूल हाती की मोल ली दीनी २५४॥)
६ कटारा ११६)
२ कटारा दरी १०) २०)
२ कटारा दरी १२) २४)
५ कटारा लींगवानी दरी १५) ७५)
१ हाती गजराज घर को दीनु १००००)
९ गूँठ

२२५) चंचल १	१५०) संगराम गुसाईंवालो ।	१३८०)
१००) नवाबवालो १	१५०) मलयागर नेगीवालो १	
१७५) सौकावालो १	१४०) नंदन कुँवरवालो १	
१००) भाग्गूत भंडारीवालो१	१४०) कंठ पुलानावालो १	
२००) रामकृष्णवालो १		

ग० ४३ मखमल १२४)
२ फुंदना ३६।।।)
  चारजामा गदी बागडोर ४४)
९ चँवर बड़ी गुंठन मै दरी गजगाह ६०)
२ षाँड़ा-बड़ा श्राँवली २०००)

७ षाँड़ा नाना दरी ३०) — २१०)
कस्तुरा की मौर षडी रूपा की — ३)
का० ३ म० ५ न० — १३८६०॥)
जोड़ ऊपर को — ४०४२७)

बेगम कौ
१०१) मोहर — १४७३)
रुपैया — ५००)
— १९७३)

साहीजादा दाराशाह कौ पेशकश वैशाख सुदी ६ रवौ
१०१) मोहर — १४५३)
रुपैया नजर कौ — १०००)
१ गूँठ सुनुका साज को सीरछाल गजगाह — ९४३)
मालादरी १२६ का० ७८ म० ५
४ गूँठ और सुनुका सात का — १६७६)
का १३६ म० ६ सीरछाल गजगाह दरी १२)
४ माला अल्मोड़ावाली — २५७)
का २१ म ५
१ षाँडो नाना वीना चाकी तइनाल का २३ म० ४ — २८०)
८ षाँडा नाना वीना चाकी तइनाल — ५७०)
१ षाँडो बड़ो अवलिया — १००)
५ गूँठ — ५६०)
१७५) महेसगंथ वालो १ — ९०) जरदा १
१२५) वीसी गुसाई वालो १ — ८०) देउतवालो १
९०) सुस्की केशव विष्टवालो १

---

७१. (५१) राजा उद्योतचंद

[सन् १६७८—१६९८]

राजा बाजबहादुरचंद के मरने पर राजा उद्योतचंद गंगोली से बुलाये गये, और विना विरोध व खुशी के साथ गद्दी पर बैठे। लोग प्रसन्न हुए कि पुराना बूढ़ा अन्यायी राजा मर गया है। गढ़वाली राजा के आचरण से अप्रसन्न होकर राजा उद्योतचंद ने सन् १६७८ में बधानगढ़ पर चढ़ाई

कर दी, और बधान का क़िला छीन लिया। किन्तु इस लड़ाई में उनका बहादुर सेनापति मैसी साहू मारा गया। वह दूसरे साल यानी १६७६ में ज़्यादा कामयाब हुए, जबकि गनाई से गढ़वाल राज्य में गये। फिर लोहाबा से चाँदपुर को गये, जिस पर उन्होंने अधिकार जमाकर खूब लूटा। सन् १६८० में गढ़वाली राजा ने डोटी के राजा के साथ संधि की, जिससे उन्होंने एक दूसरे की मदद करने की ठानी। उधर डोटी के राजा ने चंपावत पर क़ब्ज़ा किया। इधर गढ़वाली राजा ने दूनागिरि व द्वाराहाट पर क़ब्ज़ा कर लिया। यह लड़ाई दो साल तक रही, किन्तु आखिर में कुमावनी सेना दोनों जबर्दस्त शत्रुओं के समक्ष विजयी रही। इस समय के बाद उधर द्वाराहाट तथा दूनागिरि दोनों स्थानों में सेना रक्खी गई, और पूर्व में सोर, चंपावत तथा ब्रह्मदेव मंडी में स्थायी छावनियाँ बसाई गई, और उनमें शिक्षित व स्थायी सेना रखी गई।

इन विजयों को देवताओं की कृपा समझकर राजा प्रयागराज में गंगा-स्नान तथा पूजन को गये। संवत् १७३६ में रघुनाथपुर के घाट में गंगा नहाई। पर लौटने पर रास्ते ही में खबर मिली कि डोटी के रैका राजा देवपाल ने कालीकुमाऊँ पर चढ़ाई कर दी है। उनकी सफलता क्षण-मात्र रही, क्योंकि सन् १६८५ के फागुन महीने में कुमय्यों ने डोटियालों को काली पार मार भगाया, और डुंडोलधुरा के पास अजमेरगढ़ क़िले को छीन लिया, जिस पर डोटी के राजा गरमी में रहते थे, और जहाँ अब चौंतारा अफ़सर रहता है। डोटी का राजा अजमेरगढ़ से सेटी नदी के किनारे देवायल को भागा, जहाँ वह जाड़ों में रहता था, पर कुमय्यों ने सन् १६८८ के पूस महीने में उसे वहाँ से भी भगाकर देश के खैरीगढ़ क़िले में भागने को विवश किया, जहाँ कि उसके रिश्तेदार रहते थे। उद्योतचंद ने सन् १६८८ में खैरीगढ़ पर भी चढ़ाई कर दी, और उस पर अधिकार भी कर लिया। यह खैरीगढ़ डोटी व लखनऊ के बीच में है। तब वहाँ पर संधि लिखी गई, जिससे डोटी का राजा भविष्य में कुमाऊँवालों को कर देने को बाध्य हुआ। यह विजयें अल्मोड़ा में बड़ी शान से मनाई गईं। ख़ुशी में, जहाँ पर आजकल मिशन स्कूल है, एक महल बनवाया गया। त्रिपुरासुन्दरी, उद्योतचंदेश्वर तथा पार्वतीश्वर के मंदिर भी बनवाये गये। राजा के हाते में एक पानी की डिग्गी भी बनवाई गई।

सन् १६९६ में खैरीगढ़ की संधि के खिलाफ़ डोटी के राजा ने कर देना बंद कर दिया। राजा उद्योतचंद सेना लेकर काली पार डोटी पर फिर

टूट पड़े, किन्तु इस समय मुँहकी खानी पड़ी। राजा को सेना का भार श्रीशिरोमणि जोशी तथा श्रीमनोरथ जोशी को सौंपना पड़ा, और खुद और सेना लाने के लिये अल्मोड़ा आना पड़ा। थोड़े दिनों बाद डोटियालों ने श्रीशिरोमणि जोशी को मार डाला। उसकी सेना को तितर-बितर कर दिया, और अंत में राजा को सब सेना को बुलाना पड़ा।

अपने पिता बाजबहादुरचंद की तरह उद्योतचंद भी विद्यानुरागी तथा शिक्षा-प्रेमी थे। उन्होंने दूर-दूर देशों के विद्वानों को अपने यहाँ बुलाया, और कुमाऊँ में बसने का मौक़ा दिया। वह तराई-भावर के बंदोबस्त में ख़ूब दिलचस्पी लेते थे। कोटा-भावर के पास उन्होंने ख़ूब आम के बाग़ लगवाये।

अपना अन्त-समय आया देखकर उन्होंने अपने जीवन-काल के अन्तिम दिन पूजा व प्रार्थना में व्यतीत किये, और राज्य-भार अपने पुत्र ज्ञानचंद के हाथ सौंपकर आप सन् १६६८ में परलोक सिधारे।

अपने पिता के समान ये राजा भी मंदिरों के बड़े प्रेमी थे, इन्होंने भी कई गूँठ व जागीरें दीं, जिनमें से कुछ यहाँ पर अंकित की जाती हैं:—

१ सन् १६७८ श्रीदेवीदत्त पाठक के नाम।
२. सन् १६८२ बेल में रामेश्वर मंदिर के नाम।
३. „ १६८२ पं० शिवशंकर तेवाड़ी के कुटुम्ब के नाम।
४. „ १६८४ जागीश्वर मंदिर के नाम।
५. „ १६८४ „ „ „
६. „ १६८६ बालेश्वर थल मंदिर के नाम।
७. „ १६८६ पं० कृष्णानंद जोशी के कुटुम्ब के नाम।
८. „ १६६० दीपचन्देश्वर मंदिर के नाम।
६. „ १६६१ पीनाथ के मंदिर के नाम।
१०. „ १६६२ दारुण में बूढ़ा जागीश्वर मंदिर के नाम।
११. „ १६६३ गंगोलीहाट में कालिका मंदिर के नाम।
१२. „ „ „ „ „
१३. „ „ भौनादित्य मंदिर बेल में।
१४. „ „ रामेश्वर मंदिर बेल में।
१५. „ „ श्रीभवदेव पांडे के कुटुम्ब के नाम।
१६. „ „ नागार्जुन मंदिर, द्वारा में।
१७. शाके १६१३ में पं० ऋषीकेश जोशी पोखरीभेरंग-निवासी को भूमि देकर ताम्रपत्र दिया।

१८. शाके १६१३ में मंदिर नारायणीदेवी नौकुचियाताल छखाता में भानाबिजरौला के नाम।

यह राजा धर्म-कर्म के बड़े पक्के थे। इन्होंने कई मंदिर बनवाये तथा कई यज्ञ किये।

संवत् १७४३ व सन् १६८६ के आषाढ़ महीने में इस राजा ने सीरा में रामगंगा के किनारे बालीश्वर शिव का मंदिर नये सिरे से बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा कराई।

संवत् १७४६ तदनुसार सन् १६८६ में राजा ने एक लाख दीपक जलाकर देवता की पूजा की। इसको लक्ष दीपावली कहते हैं, और इसी संवत् में राजा ने तल्ला महल बनवाना शुरू किया। (इस स्थान में पहले पेशकारी व जेलख़ाना था, और अब मिशनस्कूल व अस्पताल है।) इस महल की नींव धरने में एक क़िस्सा हुआ, जो रोचक है। पूर्व की तरफ़ एक कोने में, जहाँ बाद को 'फुलाई-का-बँगला' बना, एक कारनाटक ब्राह्मण की विधवा स्त्री रहती थी, उसकी एक छोटी-सी कुटिया व फुलवाड़ी थी। बिना इस मकान को तोड़े महल का एक कोना टेढ़ा पड़ता था। उस विधवा ब्राह्मणी से कहा गया कि अपने घर व ज़मीन की जितनी क़ीमत हो, ले ले। पर उसने न माना। दूसरी जगह घर व फुलवाड़ी बनाने को राजा ने कहा, पर उसने एक न मानी। उसने कहा कि यदि उसके ऊपर ज़बरदस्ती होगी, तो वह आत्म-हत्या कर लेगी, जिसका दोष राजा पर होगा। इसपर राजा ने कहा कि उसे वैसा ही रहने दो, महल का कोना टेढ़ा होता है, तो परवाह नहीं। यह कारनाटक ब्राह्मण कारनाटक देश से कुमाऊँ में आये हैं। इनकी सन्तान अब तक कुमाऊँ में विद्यमान है। उन दिनों एक विधवा ब्राह्मणी का भी लिहाज़ राजा लोग करते थे। आजकल तो क़ानून लगाकर ज़मीन छीनी जाती है।

संवत् १७४७-४८ (सन् १६९०-९१) में इस राजा ने एक साथ चार मंदिर बनवाये—(१) उद्योतचन्देश्वर, (२) पार्वतीश्वर, (३) त्रिपुरादेवी का मंदिर, (४) विष्णु का मंदिर। इनमें से पहले तीन मंदिर अभी तक विद्यमान हैं, चौथे मंदिर की जगह में पं० देवीदत्त डिपुटी साहब का बँगला है। यह मंदिर सन् १८१६ में टूट गया। पार्वतीश्वर व उद्योतचंदेश्वर नंदादेवी के समीप हैं। त्रिपुरासुन्दरी का मंदिर एक ऊँची चोटी पर शोभायमान है। जहाँ उद्योतचंदेश्वर का मंदिर है, वहाँ पहले राजा ने महल बनवाना आरंभ किया, लेकिन उस जगह 'विवर' (ततैये ?) बहुत निकले, तब महल बनवाना रोक दिया, शिव-मंदिर बनवा दिया।

संवत् १७४६ के वैशाख में तदनुसार सन् १६६२ ईसवी में राजा ने एक अथर्ववेद पढ़े ब्राह्मण को, जो भट्ट उपाधि से विभूषित थे, दक्षिण से बुलाया था। उसको एक बड़ा मकान बनवाकर मय ज़मीन तथा खेती-बाड़ी के गृहदान* में दिया। यह मकान अब टूट गया है। यह अल्मोड़ा के सामने पाँडेखोला के नीचे था।

संवत् १७४६ में राजा ने डेवड़ी † का रंगमहल अल्मोड़ा में बनवाया, और इसीके नीचे डेवड़ी के वास्ते पोखर यानी तालाब बनवाया। इस हौज़ में राजा कभी-कभी मय रानियों के नहाने को जाते थे। महल से पोखर तक दोनों ओर परदे की ऊँची-ऊँची दीवारें खड़ी थीं। यह महल अब वैसा न रहा। अब टूट गया है, हौज़ अभी है। दीवारें कम्पनी के राज्य के समय तोड़ दी गईं। यह महल तल्लामहल के नीचे पश्चिम की तरफ़ बनाया गया था। कम्पनी के शासन के आरंभ में यहाँ पर बँगला बना था। उसमें कई वर्ष तक आम कचहरी व दफ़्तर रहे। बाद को राजा नंदसिंह इसमें रहने लगे।

संवत् १७५१ (सन् १६६४) में इस राजा ने शक्रध्वजारोप - नामक यज्ञ किया।

संवत् १७५४ व सन् १६६७ में राजा ने 'दशैं का छाजा' दशहरे का भवन अपने महल में बनवाया। उस छाजे या भवन में विजयादशमी के दिन सभा होती थी, नाच-रंग होता था। संवत् १७५५ व सन् १६९८ में राजा ने अठागुली पट्टी के बीच शुकेश्वर महादेव का मंदिर बनवाया, और उसकी प्रतिष्ठा कराई। बौरारौ में सोमेश्वर महादेव का मंदिर बनवाया, और उसकी भी प्रतिष्ठा की। उसी के पास नौला (बाँवरी) भी बनवाई।

इस राजा उद्योतचंद के रनवास में श्रीमती पार्वतीदेवी नाम की एक खवासन थी। यह देखने में बड़ी सुन्दर थी, पर दिल की काली थी। यह राजा की बहुत प्यारी थी। इसी के नाम से राजा ने पार्वतीश्वर महादेव की स्थापना की। यह ख़वास रानी चाहती थी कि उससे जो पुत्र हो, वह राजा हो, लेकिन इसके पुत्र न हुआ। पटरानी के कुँवर उत्पन्न हो गया। अपना पुत्र उत्पन्न करने तथा और रानियों के कुँवरों को मरवाने के लिये पार्वतीदेवी ने बुक्साड़ से 'भरड़' यानी भूत-प्रेत-लीला जाननेवाला आदमी बुलवाया। 'भरड़' ने कुँवरों के ऊपर भूत डलवाया, जिससे कुँ० हरिचंद उर्फ़ हरिहरचंद की मृत्यु हो गई। 'भरड़' व कुँवर दोनों मरने के बाद भूत हो गये। कुँवर शहर में

---

* इस राजा ने कई एक मकान बनवाकर दान में दिये, इसको गृहदान कहते हैं।
† डेवड़ी के मानी अन्तःपुर (जनानखाने) के हैं।

रात के बीच फिरने लगे। इससे बहुत मनुष्य रात को भूत से डरकर मर गये। तब राजा ने एक मकान बनवाकर 'भरड़' व कुँवर के भूत को वहाँ स्थापित किया। यह मंदिर लाला बाज़ार के पीछे अभी तक विद्यमान है, इसको शाह भैरों या शै भैरव कहते हैं। जब राजा मरे, तो उस दिन कुँवरों तथा और रानियों के हिरस से पार्वती खवासन ने दरबार के भीतर के मोती व मूँगे पत्थरों में रखके दल डाले, और अच्छे-अच्छे सोने-चाँदी के बर्तन व ज़ेवर तोड़ डाले। राजा की बीमारी के समय गढ़वाल के राजा को इस खवासन ने ख़बर भेजी कि कुमाऊँ पर वे अपना अधिकार जमावें, राजा मरने को हैं। गढ़वाल के राजा सेना लेकर चढ़ आये, पर कुमाऊँवालों ने बड़ी कठिनाई से गढ़वाल के राजा के इरादे को भंग किया। राजा के मरने पर यह पार्वती खवासन सती हो गई।

---

७२. ऋद्धिगिरि की कहानी

जहाँ पर अब पल्टन है, वह जगह पहले लालमंडी कहलाती थी। वहाँ का क़िला भी लालमंडी का क़िला कहलाता था। वहाँ पर एक बाबा ऋद्धिगिरि गुसाईं रहते थे। उनके व उद्योतचंद राजा के बीच बड़ा प्रेम था। राजा उद्योतचंद को बाबा 'उदुवा' कहकर पुकारते थे। राजा कभी-कभी इनके मठ में जाकर थोड़ी देर बैठ लौट आते थे। स्वामीजी को नंगा देखकर राजा ने एक दिन कहा —"बाबाजी! आप नंगे रहते हैं, जाड़े के दिन हैं, यह कंबल ओढ़ लें।" यह कहकर एक बढ़िया दुशाला भेंट किया। बाबा ने कहा —"अरे उदुवा! यह दुशाला तो राजाओं के ओढ़ने का है। मैं फ़क़ीर राख मलनेवाला इस दुशाले से क्या करूँगा।" किन्तु राजा के बहुत कहने से बाबा ने दुशाला रख लिया। राजा ने एक फुलारा को वहीं रख दिया, यह देखने को कि बाबा दुशाले का क्या करता है। बाद बाबा ने जब कोई इधर-उधर न देखा, दुशाला लेकर चिमटे से पकड़ धूनी में झोंक दिया। यह खबर फुलारा ने राजा को दी। बाबा को नंगा देखकर फिर एक दिन राजा ने बाबा से कहा कि वे नंगे क्यों रहते हैं, कम्बल नहीं ओढ़ते। बाबा ने समझा कि राजा को यह ख़याल हुआ कि साधु ने दुशाले की क़दर न जानी। उसने क्यों वृथा दुशाला उसे दे दिया। बाबाजी ने चिमटा उठाकर धूनी में डाला और दुशाला खींचकर राजा के सामने डाल दिया, और कहा— "ले उदुवा! यह तेरा दुशाला है।" राजा कुछ घबड़ाये व खिसियाये और

हाथ जोड़ कहने लगे—"मैंने नादानी व कम बुद्धि का काम किया। मुझे क्षमा करें।" दुशाला वहीं छोड़ आये। बाबा ने उसे एक ग़रीब को दे दिया। पीछे इस साधु ने जागीश्वर में जाकर जीते-जी समाधि ले ली। कुछ दिन के बाद कुछ कुमय्यें हरिद्वार में कुम्भ के मौक़े पर स्नान को गये। वहाँ ब्रह्मकुंड से सिर निकालकर बाबा ऋद्धिगिरि ने कहा—"अरे भाई! उदुवा से हमारी रामराम कहना। यह अँगूठी एक दिन उसने हमको दी थी, उसको दे देना।" लोगों ने अल्मोड़ा आकर सब हाल सुनाया, और अँगूठी दी। राजा ने जागीश्वर में ऋद्धिगिरि की समाधि खुदवाई, वहाँ हड्डियाँ न मिलीं बल्कि नीचे को दूर तक खड्ड निकला। राजा घबड़ाया, समाधि बंद कराई। उसी रात को राजा को स्वप्न हुआ। राजा ने ऋद्धिगिरि को देखा। उन्होंने कहा—"अरे उदुवा! मैं आठ पहर जागीश्वर में रहता था, तैंने मुझे तंग किया अब मैं १ पहर यहाँ रहूँगा, ७ पहर और जगह।" राजा ने एक गाँव समाधि के लिये चढ़ाया, और समाधि की पूजा व आरती करने को कहा। अभी तक यह गाँव समाधि के नाम पर मौजूद है। समाधि पर धूप-बत्ती चढ़ाई जाती है। सिद्ध नरसिंह का मंदिर तथा सिद्धनौली इन्हीं बाबा की यादगारें हैं।

इस राजा ने तराई-भावर की आबादी में ज़्यादा ज़ोर दिया। इनके वक़्त में वहाँ ख़ूब आबादी थी। एक राजकर्मचारी श्रीनाथ अधिकारी भी थे, उन्होंने श्रीनाथपुर बसाया, जो अभी चिलकिया परगने में आबाद है। अधिकारी महाशय ने काशीपुर में एक आमों का बग़ीचा भी लगवाया, जिसको अब नागनसती का बाग़ कहते हैं। यह बाग़ काशीपुर से मिला हुआ उत्तर की ओर को है, और भी कई एक बाग़ इस राजा ने आम के लगवाए। एक बाग़ कोटा में लगवाया, जो अभी विद्यमान है। उद्योतचंद की यह इच्छा थी कि कोटे से काशीपुर तक बराबर आम के बाग़ लगा देना, ताकि मुसाफ़िर पेड़ों की छाया में चलें और धूप से बच जावें।

इस राजा ने लाखों रुपये अच्छे-अच्छे कामों में खरचे, और आप भी बड़े धर्म-कर्म-प्रेमी थे। बल्कि पं० रुद्रदत्त पंतजी ने इन्हें 'तपस्वी' लिखा है। इस कारण इनका नाम दूर-दूर देशों में फैल गया था। इसी सबब कन्नौज, गुजरात, दक्षिण के बड़े-बड़े विद्वान् पंडित राजदरबार में पड़े रहते थे, और दान व दक्षिणा बराबर पाते थे। शास्त्र की चर्चा भी ख़ूब होती थी। यह राजा खद पढ़े-लिखे थे, और विद्वानों की प्रतिष्ठा करते थे। शिक्षा का प्रचार इनके समय में अच्छा बताया जाता है।

संस्कृत के ग्रंथ भी इस राजा के वक्त में अनेक बने।

७३. कवि-सम्मान

कहते हैं कि सतारागढ़ साहू महाराज के राजकवि मनिराम राजा के पास अल्मोड़ा में आए थे। उन्होंने राजा की प्रशंसा में यह कवित्त बनाकर राजा को सुनाया। राजा ने १००००) रु० तथा एक हाथी इनाम में दिया।

पुराण पुरुष के परम दृग दोऊ कहत बेदबानी यूँ पढ़ गई।
वे दिवसपति वे निशापति जोतकर काहूँ की बढ़ाई ना बढ़ गई।।
सूर्य के घर में कर्ण महादानी भयो याहू सोच समझ चित चिंता सों मढ़ गई।
अब तो हूँ राज बैठत उद्योतचंद चंद के कर्ण की किरक करजे सों कढ़ गई।।

ऐसा कहा जाता है कि मदन कवि भी इनके यहाँ थे। राजा कवि से रुष्ट हो गए। उन्हें देश निकाले का हुक्म हुआ। कवियों को भी दरबार में आने से रोका गया। तब कहते हैं, कविवर मतिराम ने यह कविता लिखकर राजदरबार में भेजी—

कर्ण के भोज के विक्रम के प्रबंध सुनो,
किस भाँति कविन को आगे लीजियतु है।
कवि मतिराम सभा के राज शृङ्गार हम,
जाके बैन सुन पीयूष पीजियतु है।।
एक के गुनाह नरनाह श्रीउद्योतचंद
कविन पै एतो रोष कहा कीजियतु है।
काहूँ मतवारे एक अंकुश न मान्यो, तो
द्विरद दरबारन तें दूर कीजियतु है।।

कहते हैं कि राजा ने यह कवित्त सुनते ही अपना हुक्म वापस ले लिया।

राजा उद्योतचंद के समय दीवान दन्या व झिजाड़ के जोशी थे, नायब दीवान चौधरी थे। श्रीभवदेव जोशी सचिव यानी निजमंत्री थे। सर्वश्री प्रतापादित्य गुसाईं, जसवन्तसिंह, अर्जुनसिंह, पहाड़सिंह, सुजानसिंह दरबारी, सेनापति तथा प्रधान अधिकारी थे। रिपुमल्ल, हरिमल्ल, भीमसिंह, रमापंडित, श्रीनाथ अधिकारी आदि भी राजकर्मचारी थे। २० वर्ष राज्य कर राजा उद्योतचंद सन् १६९८ में मर गए।

७४. (५२) राजा ज्ञानचंद

[सन् १६९८-१७०८]

राजा ज्ञानचंद सन् १६९८ में गद्दी पर बैठे। वैसे राजकाज इनके पिता राजा उद्योतचंद ने इन्हें पहले ही सौंप दिया था। जैसे कि पूर्व समय में प्रायः प्रत्येक चंद राजा राजगद्दी पर बैठते ही डोटी पर चढ़ाई करते थे, वैसे ही अब चंद के हरएक उत्तराधिकारी ने गढ़वाल पर चढ़ाई करने का नियम-सा बना लिया। ज्ञानचंद ने अपना राज्यकाल भी पिंडारी से लेकर थराली तक के उपजाऊ मुल्क को उजाड़ करने से आरंभ किया। सन् १६९९ में बधान का प्रान्त .खूब लूटा। लूट में नंदादेवी की सोने की मूर्ति भी वहाँ से उठा लाये, जो प्रतिष्ठा-पूर्वक नंदादेवी के मंदिर में रक्खी गई। दूसरे साल यानी सन् १७०० में उन्होंने रामगंगा को पारकर मल्ला सलान के साबली, खातली, सैंजधार आदि गाँवों को लूटा। पल्टे में सन् १७०१ में गढ़वाल के राजा ने पाली परगने के गिंवाड़ व चौकोट प्रान्तों को लूटकर उजाड़ दिया। हर साल इसी तरह एक दूसरे के ऊपर धावे होते थे। हरएक ओर से एक दूसरे के मुल्क को उजाड़ने की कोशिश होती थी। किसान बेचारे सरहद के गाँवों को छोड़कर दूर-दूर भाग गये। सरहदी प्रान्त उजाड़ होकर बरबाद हो गए। कहीं-कहीं भारी जंगलों में परिवर्तित हो गये। सन् १७०३ में कुमय्यों ने मिहलचौरी के ऊपर दुधौली में गढ़वालियों को हराया, और राजा की सेना श्रीनगर तक लूट-मार करती गई। गढ़वाल का राजा अलकनंदा के उस पार चला गया। कुमाऊँ का राजा मुल्क लूटकर वापस आ गया।

सन् १७०४ में राजा ज्ञानचंद ने डोटी को सेना भेजी और उसकी भावर की ज़मीन को उजाड़ दिया, किन्तु सेना को बुखारों से परेशान होना पड़ा।

सन् १७०७ में फिर गढ़वाल में सेना भेजी गई, और कुमय्यों ने बिचला चौकोट की जूनियागढ़ी पर अधिकार कर लिया। बाद को पनुवांखाल और दिवालीखाल दर्रों के बीच होकर चाँदपुर तक गये। वहाँ के क़िलों को नेस्तनाबूद किया। गढ़वाल के राजा ने जूनियागढ़ी की मरम्मत की थी, वह भी तोड़ दी गई।

इस राजा के समय के ये ताम्रपत्र ज्ञात हैं :—

१. सन् १७०१ पं० कुलोमणि पांडे के खानदान को जागीर।
२. ,, १७०३ पं० कृष्णानंद जोशी के नाम।
३. ,, १७१८ पाताल-भुवनेश्वर-मंदिर, गंगोली के नाम गूँठ।

संवत् १७५६ में राजा गंगा स्नान को हरिद्वार गये। वहाँ बहुत-सा धन दान में दिया।

संवत् १७६० में राजा ने गामती के किनारे वैद्यनाथ-मंदिर का जीर्णोद्धार किया। उसकी प्रतिष्ठा की, और उसी संवत् में बदरीनाथ का मंदिर भी कत्यूर में बनवाया। उसकी प्रतिष्ठा भी की।

संवत् १७६१ में अल्मोड़ा के धारानौला के निकट नया घर बनवाया, और मय कुछ भूमि के गृह-दान करके श्रीविश्वरूप पंतजी को दिया।

राजा ने सेलाखोला के श्रीप्रयागदास जोशीजी के हाथ से चौथा दफ़्तर छुटाकर श्रीनाथ अधिकारी को ताम्रपत्र के रूप में दिया। राजा श्रीनाथ से इसलिये प्रसन्न थे कि उसने 'माल' यानी तराई-भावर में आबादी .खूब बढ़ाई थी, और आम के बाग़ लगाए थे।

इसी राजा ने हवालबाग़ का नौला भी बनवाया था।

१० वर्ष राज्य कर यह राजा संवत् १७६५ सन् १७०८ में बैकुंठवासी हुए और इनके पुत्र कुँ० जगतचंद गद्दी पर बैठे।

---

७५. (५३) राजा जगतचंद

[सन् १७०८—१७२०]

सन् १७०८ में राजा ज्ञानचंद (२) की मृत्यु पर राजा जगतचंद गद्दी पर बैठे। श्रीअठकिन्सन लिखते हैं—"कुछ लोग कहते हैं कि ये विवाहिता रानी के पुत्र न थे।" पर पं० रुद्रदत्त पंतजी ने इनको विजन्म नहीं बताया है, बल्कि इनको सबसे योग्य राजा लिखा है। इन्होंने पूर्व प्रणाली के अनुसार पिंडारी व लोहाबा के रास्ते गढ़वाल पर चढ़ाई की, और सन् १७०६ में श्रीनगर तक पहुँचे। गढ़वाल के राजा देहरादून को भागे, तब इन्होंने श्रीनगर एक ब्राह्मण को दे दिया, और जो धन लूट में प्राप्त किया, उसे ग़रीबों तथा अपने सिपाहियों में बाँट दिया। कुछ धन नज़राने में, कहा जाता है, दिल्ली के बादशाह महम्मदशाह के पास भी भेजा। इन्होंने जुए पर भी राज-कर बैठाया। अठकिन्सन कहते हैं कि यह आमदनी भी इन्होंने दिल्ली-दरबार को भेजी।

राजा जगतचंद का स्वभाव बहुत मिलनसार तथा ऊँचे दरजे का बताया जाता है। वह प्रजाप्रिय राजा थे। ऊँच-नीच सबसे प्रेम-पूर्वक मिलते थे। और राज-काज में खूब दिलचस्पी लेते थे। इनके समय में तराई से पूरे

नौ लाख की आमदनी होती थी। चंद-राज्य की विजयलक्ष्मी इनके समय में पराकाष्ठा को पहुँची। खज़ाना भी परिपूर्ण था। राज्य का विस्तार दूर-दूर तक था। चारों ओर शान्ति थी। प्रजा सुखी थी। इसके बाद ही प्रचंड घरेलू झगड़े आरंभ हुए, जिससे पहाड़ व मैदान दोनों में राज्य की शृंखलाएँ ढीली होने लगीं, और चंद-राज्य की अवनति होने लगी। इनके दिये हुए ६ ताम्रपत्रों का पता चला है :—

१. सन् १७१० पुरायागिरिदेवी के नाम गूँठ
२. ,, १७१० पं० देवीदत्त पांडे के कुटुम्ब के नाम
३. ,, १७१२ भ्रामरीदेवी कत्यूर के नाम गूँठ
४. ,, १७१३ बैजनाथ मंदिर के नाम गूँठ
५. ,, १७१६ नागनाथ-मंदिर चंपावत
६. ,, १७१८ पाताल-भुवनेश्वर-मंदिर गंगोली

राजा जगतचंद ने अपने पिता ज्ञानचंद के समय में राज-काज में खूब भाग लिया था, इसलिये वह मुल्क के कारबार तथा अपने कर्मचारियों के रंग-ढंग से खूब परिचित थे। संवत् १७६६ में इन्होंने लोहबा परगने को लूटा, और संवत् १७६७ में बधाण का प्रान्त लूटा। लूट में नंदादेवी की स्वर्ण-प्रतिमा न मिली, तब अपने खज़ाने से २०० अशर्फ़ियाँ निकाल, उनकी नंदामाई की प्रतिमा बनवाकर मल्लामहल के भीतर मंदिर में स्थापित की।

श्रीनगर में फ़ौज लेकर जब कुमाऊँ का राजा गया, तो पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं—"गढ़वाल का राजा अलकनंदा-पार उतरकर चला गया, तब राजा ने गढ़वाल का मुल्क गंगा के किनारे श्रीयंत्र के निकट संकल्प करके ब्राह्मणों को दे दिया कि बार-बार का झगड़ा क्यों रक्खा जाय। एक ही बार सब झगड़ा निपटा देना चाहिए।" राजा का यह संकल्प भी अजब ढंग का रहा।

इस राजा के वक्त झिजाड़ के जोशी फ़ौज व शासन के प्रधान पदों पर रहे। गल्ली के जोशियों को ब्राह्मणों का हिसाब लिखने का काम था। दन्या के जोशी के पास जागीश्वर, बागीश्वर आदि मंदिरों की संपत्ति व खर्च के लिखने का कुल कारबार सौंपा हुआ था। श्रीमाणिक गैड़ा-उर्फ़ विष्ट को भी, जिसने गढ़वाल के युद्ध में विशेष बहादुरी दिखाई थी, राजदरबार में प्रतिष्ठित स्थान दिया गया। श्रीसूरसिंह ऐड़ी बक्सी (सेनापति) नियुक्त हुए। कुँ० पहाड़सिंह भी दरबार के कारबारियों के प्रधान थे।

इस राजा ने अपने मुल्क के बहुत से तोहफ़े—घोड़े, हाथी, चँवर, खाँड़ा, पेशकश, मुश्क, खुकुरी, निरवीसी, गजगाह इत्यादि व सोने-चाँदी के बर्तन—दिल्ली के बादशाह शाहआलम बहादुरशाह के पास भेजे। उनकी रसीद में फ़र्मान व खिल्लत आई। फ़र्मान अभी तक विद्यमान है।

इस राजा ने 'जुआ की बांच' यानी जुआ होने पर राजकर भी मुक़र्रर किया। जब चंद राजा जुआ खेलते थे, तो यह दस्तूर था कि बक्सी, वज़ीर, दीवान व दफ़्तरी सब बुलाये जाते थे। औरों के पाँसे तो खुले में पड़ते थे, पर ज्यों हीं राजा ने अपने कर-कमलों से पाँसा फेंका, तो फुलारा चद्दर से पाँसा ढक देता था, ताकि कोई अन्य यह न जाने कि क्या दाँव पड़ा। लेकिन सबों को तेरह कहना पड़ता था। अन्य कर्मचारियों के दाँव में जो रुपये व अशर्फ़ियाँ रक्खी जाती थीं, वे राजा की ओर खिसकाई जाती थीं। राजा हमेशा जीतता था। इसी को राजा का दाँव कहते थे। जुए के बाद राजा जीत का रुपया अन्य लोगों को दे देते थे। नाम के वास्ते कुछ आप रखते थे।

इस राजा ने एक हज़ार गायें दान कीं। इसको गोसहस्रदान कहते हैं। लाखों रुपये इस काम में ख़र्च किये। गुरु, पौराणिक, पुरोहित, धर्माधिकारी, वैद्य आदि की राजदरबार में अच्छी प्रतिष्ठा थी। गुरु व पुरोहित पांडे होते थे। धर्मशास्त्र, पुराण व वैद्यशास्त्र के संरक्षक पंत थे। पंत लोग फ़ौजी व शासन-संबंधी पदों पर भी नियुक्त होते थे। सरदार फ़ौजदार व गरखा नेगी भी इस राजा के राज्य में अच्छे ईमानदार व प्रतिष्ठित थे। प्रजा भी प्रसन्न रही। राजा जगतचंद का राज्य प्रसिद्ध है।

राजा जगतचंद ने सबको ख़ुश रक्खा, तो भी न-जाने क्यों इस राजा के ऊपर उस वक़्त के धूर्तों ने 'शीतला की बाल डलवाकर' इन्हें मरवा डाला। यह बात समझ में नहीं आई कि 'शीतला की बाल' कैसे डलवाई और किसने डाली। क्या वह शीतला से मरे? यह संवत् १७७७, शाके १६४२ तथा सन् १७२० में मर गये।

इस राजा के समय में ये ग्रंथ बनेः—

१. टीका जगतचन्द्रिका।

२. टीका दुर्गा की।

---

७६. (५४) राजा देवीचंद

[सन् १७२०—१७२६]

इस राजा के जन्म लेने से पहले की एक किंबदंती है, जो मनोरंजक होने से यहाँ पर उद्धृत की जाती है—"राजा जगतचंद के राज्य के समय एक ब्राह्मण कन्नौज से आया। अल्मोड़ा के राजदरबार में आकर उसने राजा से कहा कि उसे १००००) रुपये चाहिए, राजा तुरंत दें। वह कुछ अपने कुटुम्ब के पालन-पोषण को रखकर बाक़ी से बनारस में जाकर विद्या प्राप्त करेंगे। तब राजा ने कहा कि एक-एक विद्यार्थी को दस हज़ार रुपये देने की बात कठिन है। ऐसी बात सुनकर तमाम और ब्राह्मणों के लड़के दरबार में टूट पड़ेंगे, उनको इतना द्रव्य राजा कहाँ से देंगे। दरबार का दस्तूर यह है कि जो कोई पढ़कर पंडित होकर आता है, और पंडितों के साथ शास्त्रार्थ करता है, परीक्षा से जैसा ठीक जँचा, उसी के अनुसार दक्षिणा या पुरस्कार पाता है। राजा ने मामूली ख़र्च उसे देने की आज्ञा दी, किन्तु ब्राह्मण कुछ ज़िद्दी-सा था। कहने लगा कि थोड़ा धन वह न लेगा, किन्तु वह सारा ख़ज़ाना राजा का अपने हाथ से खर्च कर डालेगा। 'लो, मैं अपने घर को जाता हूँ, तुम राज़ी रहना।' यह कह, राजा को आशीर्वाद देकर, ब्राह्मण अपने घर को चला गया। बाद को वहाँ से प्रयाग गया। वहाँ जाकर 'करोत' (करवट) ली, अर्थात् आत्महत्या की, और मरते वक़्त यह दुआ माँगी कि वह कुमाऊँ में राजा जगतचंद के घर जन्म ले।" कुँ० देवीचंद का जन्म इस घटना के बाद हुआ। यह भी बात ठीक है कि कुँ० देवीचंद बिना सिखाये देशी बोली बोलते थे और इनके मिज़ाज में कुछ सिड़ीपन था। यह कुँ० अपने पिता राजा जगतचंद की मृत्यु पर संवत् १७७७ अर्थात् सन् १७२० में गद्दी पर बैठे।

राजा जगतचंद ने श्रीनगर व गढ़वाल का मुल्क जीतकर ब्राह्मण को संकल्प करके दिया था। गढ़वाल के राजा ने फिर अपना मुल्क अपने अधिकार में कर लिया। इसकी खबर पाकर राजा देवीचंद फिर फ़ौज लेकर श्रीनगर के राजा पर चढ़ गये। वहाँ जाकर उन्होंने राजा को लड़ाई में हराया, और कुछ लूट-पीटकर लौट आये।

इस राजा के दरबार में ज़्यादा अधिकार श्रीमाणिक विष्ट के पुत्र श्रीपूरनमल विष्ट का था। श्रीमाणिक विष्ट ने अपनी बहादुरी से पिछले राजाओं के वक़्त भी दरबार में प्रतिष्ठा पाई थी। इस राजा के समय वह बूढ़ा हो गया था। यह

गैड़ा विष्ट गढ़वाल से आये थे। इन्होंने गढ़वाल की लड़ाइयों में कुमाऊँ के राजा को मदद दी थी। विष्ट के बाद राज्य में अधिकार दन्या के जोशी का था। कहते हैं कि इन दोनों का आपस में .खूब मेल था। तीसरे दरजे के राजमंत्री दिगोली के पं० भवानंद जोशी थे। पर इनको दन्या के जोशी दीवान तथा गैड़ा विष्ट, दोनों अपनी मंत्रणा में शामिल न करते थे।

गढ़वाल की फ़ौज फिर रणचुला नामक क़िले पर चढ़ आई थी। उसको मारकर राजा देवीचंद ने फिर हटाया, तथा शाके १६४५ में राजा देवीचंद श्रीनगर गये। वहाँ जाकर पूरा अमल-दख़ल करके देहरादून की तरफ़ फ़ौज ले गये। वहाँ से तराई के रास्ते कुमाऊँ लौट आये।

अल्मोड़ा आकर अपने पितरों के वक़्त का ख़ज़ाना देखा, और रुपए गिनवाये, तो ज्ञात हुआ कि ३½ करोड़ रुपये नक़द जमा हैं। राजा जगतचंद ने ये रुपये जमा किये थे, कुछ पहले के होंगे। इतना धन देख राजा देवीचंद का मन उछलने लगा। दान-पुण्य का बाज़ार भी गरम होने लगा, पर राजा के हाथ धन खरचने को खुजला रहे थे। पागलपन कुछ-कुछ इस राजा में था ही। उधर चाटुकार दरबारियों ने इनको बढ़ावा दिया—"राजन्, आप बड़े प्रतापी हैं। आपके समान न कोई हुआ, न होगा। आप यदि अमर होना चाहते हैं, तो जो कार्य महाराजा विक्रमादित्य ने किया, वही आप भी कीजिए।" कहते हैं कि महाराजा विक्रमादित्य ने गद्दी पर बैठने के समय अपनी प्रजा का सारा ऋण चुका दिया था। अतः राजा देवीचंद को भी विक्रमादित्य बनने का स्वप्न सूझा। राजाज्ञा निकाली गई—"मैं शाकेबंध राजा बनना चाहता हूँ, अपने राज्य के सब ब्राह्मणों का कर्ज़ दूर करता हूँ, सब हाज़िर होवें, इत्यादि।" यह खबर पाकर सैकड़ों ब्राह्मण अपने तमस्सुक व क़र्ज़दारों की बही लेकर राजदरबार में आये। कहते हैं कि क़रीब १ करोड़ रुपया क़र्ज़-अदायगी में ख़र्च किया गया। कौन जानता है, इसमें से कितना धन ऋण चुकाने में लगा, कितना चापलूस दरबारियों के पापी पेट में चला गया, जिन्होंने राजा को धर्मावतार बनाकर सतयुग स्थापित करने की राय दी थी, ताकि उनके राज्य में कोई दीन, दरिद्री, भूखा, नंगा तथा कर्ज़दार न रहे। ऐसा कभी पिछले युगों में हुआ या नहीं, कह नहीं सकते, और भविष्य में होगा या नहीं, भगवान् ही जाने।

इस राजा ने गाँव भी माफ़ी व गूँठ में बहुत दिये। और १ हज़ार गायें दान कीं। २ तुलादान अशर्फ़ियों से और ४ तुलादान रुपयों से किये। और 'लक्ष होम' के पीछे 'कोटि होम' यज्ञ किये। इस होम के अन्त में एक-एक में ८-८ हज़ार अशर्फ़ियाँ दक्षिणा में दीं।

बाद शाके १६४६ में हवालबाग़ में रहे। "उसके सामने जो डांडा है, उसमें सैकड़ों चीड़ के पेड़ खड़े थे। उनको देखकर राजा ने कहा, इन पेड़ों को जाड़ा लगता है। इन पेड़ों को जड़ से फूलों तक ताश, बादला व कीमख़ाब से मढ़ दो। ऐसा ही किया गया। कुछ दिन बाद हुक्म हुआ कि कंगाल लोग इनको लूट ले जावें।" उस डांडे का नाम फ़तेहपुर रक्खा गया। सन् १८७६ में कहते हैं, गार्डनर साहब कमिश्नर ने हुक्म दिया कि वे पेड़ न काटे जावें।

इस घटना को मि० अठकिन्सन साहब ने इस प्रकार दर्शाया है—"राजा देवीचंद ने उस ब्राह्मण से, जिसको उनके पिता ने श्रीनगर सौंपा था, वापस माँगा। उसके न देने पर नगर को ज़बरदस्ती छीनने का प्रयत्न किया, पर निष्फल हुए, और राजा मय फ़ौज के गनाई को भगाए गए। राजा देवीचंद कमज़ोर नृपति थे। यह बिलकुल अपने सलाहकारों के हाथ की कठपुतली थे। 'पर बुद्धि विनाशाय' की तरह इनकी भी दुर्गति हुई। जब श्रीनगर अपने प्रण के अनुसार इनसे न जीता गया, तो हवालबाग़ के पास या तो भाँग के नशे में या पागलपन के ख़ुमार में इन्होंने एक पहाड़ की चोटी को श्रीनगर ठहराया, और उसमें नक़ली लड़ाई करके उसे जीता हुआ समझा। उसके ऊपर दरी, ग़लीचे बिछाये, और पेड़ वस्त्रों से ढके गये। फूल-पत्ती व बंदनवारों से तमाम स्थान सजाया गया, और उसका नाम फ़तेहपुर रक्खा गया। राजा ने धूमधाम के साथ उसमें प्रवेश किया।"

हमने (१) पं० रुद्रदत्त पंतजी, (२) मि० अठकिन्सन साहब के लिखे दोनों वृत्तान्त पाठकों के सामने रख दिए हैं। दोनों से राजा की बेवकूफ़ी व पागलपन झलकता है। ऐसे निर्बुद्धि राजा जिस देश में उत्पन्न हों, उसका विनाश न हो, तो क्या होगा!

प्रजाप्रिय प्रजाधिपति जगतचंद के परलोकगमन के पश्चात् जब ऐसे-ऐसे कर्म इस राजा देवीचंद के देखे, तो लोगों ने अगर इनको उस कन्नौजिया ब्राह्मण का अवतार कहा, जो १००००) इनके पिता से माँगने आया था, और न देने पर प्रयाग में करवट लेकर मरा, तो कोई आश्चर्य नहीं; क्योंकि अर्ध-शिक्षित तथा तर्कशास्त्र-शून्य दिमाग़ देवी-देवताओं, भूत-प्रेतों, मिथ्या धर्म तथा अन्ध-विश्वासपूर्ण कहानियों में ज़्यादा विश्वास करता है।

अस्तु, इस पागल राजा का सारा धन दरबारी हड़प गए, और फिर उन्होंने षड्यंत्र रचने शुरू किये। इस राजा को कहा गया है कि कभी-कभी पागलपन के दौरे होते थे, इसलिये यह ग़रीब राजा अपने कर्मों के लिये उतना

ज़िम्मेदार नहीं, जितने इसके मंत्री, क्योंकि राजा लोग ज्यादातर मंत्रियों की सलाह से चलते हैं। उस समय राजा के प्रधान सलाहकार गढ़वाल के गैड़ा बिष्ट श्रीमानिकमल तथा उनके पुत्र श्रीपूरनमल थे। उन्होंने राजा को खूब भरें में रक्खा था, उसे विक्रमादित्य बनाया, और कहा कि कूर्माचल-नरेश के बराबर जगत में कोई दूसरा नहीं है। उन्हें देश की राजनीति में भी भाग लेना चाहिए। इन्होंने अफ़ग़ान-सेनापति दाऊदखाँ को अपनी देशी सेना का प्रधान सेनापति बनाया, और एक साबिरशाह नामक शहजादे की बड़ी खातिर की, उसने अपने को तैमूर-ख़ानदान का बताया, और राजा से मदद चाही। राजा ने उसे एक लाल तंबू दिया, जो बादशाहों को दिया जाता था, और सब तरह से मदद दी। उसने ४०००० पठान इकट्ठे किये और बादशाह दिल्ली के ख़िलाफ़ विद्रोह का झंडा उठाकर रोहिलखंड को छीनना चाहा। इस पर शाहंशाह दिल्ली ने सेनापति अज़मतउल्लाख़ाँ को मय सेना के इस विद्रोह को दबाने को भेजा। और साथ ही रुद्रपुर व काशीपुर पर अधिकार-जमाकर कुमाऊँ पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। राजा देवीचंद फ़ौज लेकर अपने देश के सेनापति दाऊदखाँ की मदद को चले। नगीने के पास शाही फ़ौज से मुठभेड़ हुई, लेकिन लड़ाई के पूर्व ही देवीचंद के देशी सेनापति दाऊद-खाँ ने इनका पक्ष छोड़ शाही सिपहसालार (सेनापति) अज़मतउल्लाखाँसे दोस्ती करली। उसने रिश्वत खाकर राजा का साथ छोड़ दिया। इस दग़ाबाज़ी के कारण कुमय्यें इस लड़ाई में हार गए। दाऊदख़ाँ ने केवल दग़ाबाज़ी ही न की बल्कि राजा देवीचंद को पकड़कर शाही सिपहसालार (सेनापति) के सिपुर्द करना चाहा, ताकि राजा देवीचंद उस धोखेबाज़ दाऊदखाँ की फ़ौज का रहा-सहा वेतन चुका दें। पर इसमें वह असफल रहा। राजा देवीचंद ठाकुरद्वारे को हट गये, और दाऊदखाँ की दग़ाबाज़ी के बारे में अनजान से बनकर उसे धन लेने को अपने डेरे में बुलाया और वहाँ उस धूर्त दग़ाबाज़ को पकड़कर कठोर दंड दिया। पश्चात् कुमाऊँ की सेना को अल्मोड़ा को भागना पड़ा। पं० रुद्रदत्त पंतजी ने यह घटना इस प्रकार लिखी है—"शाके १६४७ में दिल्ली के बादशाह का एक शहज़ादा साबिरशाह भागकर कुमाऊँ के राजा देवीचंद के पास आया। राजा का खप्तीपने का ढंग देखकर उनसे शहजादे ने कहा कि फ़ौज इकट्ठी कर दिल्ली का तख्त छीनना चाहिए। जीतने पर बहुत-सा मुल्क पहाड़ व देश का कुमाऊँ में शामिल किया जावेगा। राजपूताना के राजपूतों को इस युद्ध में शामिल करने की सलाह शहजादे ने दी। तब राजा देवीचंद ने जयपुर के महाराजा को खत लिखा कि वह

और यह दोनों मिलकर दिल्ली के राजा को राज्यच्युत करें। जयपुर से जवाब आया कि राजा देवीचंद के पास धन कितना है ? कुमाऊँ के राजा ने लिखा कि ३½ करोड़ रुपया जमा है। जयपुर से फिर लिखा आया और उसी के साथ श्रीविशनदास नामक महाराजा जयपुर का वकील भी अल्मोड़ा आया कि बादशाह के साथ युद्ध विना ७ करोड़ के हो नहीं सकता। यह बात ज्ञात होने पर भी राजा देवीचंद ने हज़ारों रुपये ख़र्च करके शाहज़ादे के वास्ते तंबू-क़नात व सवारी वग़ैरह का सरंजाम बनाया, और कहा कि उस तारीख़ से शाहज़ादे दिल्ली के बादशाह हुए। और फ़ौज जमा करके दिल्ली को कूच किया। नगीना शहर तक लश्कर गया। वहाँ से बादशाही मुल्क व फ़ौज का तरीक़ा देखकर राजा अपने मुल्क को लौट आये और शाहज़ादा भी कहीं को चला गया।" ऐसे-ऐसे बावलेपन के काम तथा बेवाजिब ख़र्च इस राजा ने किये कि इन ख़बरों को सुनकर डोटी के रैका-राजा तथा गढ़वाल के राजा दोनों ने आपस में संधि करके कुमाऊँ पर फ़ौज चढ़ा दी। कुमाऊँ के राजा ने डोटी के राजा के साथ तो संधि की। उधर श्रीनगर की तरफ़ फ़ौज बढ़ाई। चानपुर व लोहबा को लूटा, फिर जाड़े का मौसम आने से सेना का भार सेनापतियों पर छोड़, आप कोटा में अपने बसाये हुए देवीपुर इलाक़े को गये। यहाँ राजा ने अपने लिये एक विलास-भवन बना रक्खा था, जिसमें वह जाड़ों में कुछ महीनों के लिये अपने शासनकाल के अन्तिम तीन वर्षों में बराबर रहे। चाहे दुनिया में कुछ भी हो, राजा वहाँ रनवास में भोग-विलास में लिप्त रहते थे।

इस साल लड़ाई छोड़कर भी देवीपुर जाने की सलाह श्रीपरनमल गैड़ा तथा उसके बूढ़े बाप श्रीमानिक गैड़ा की थी। इन्होंने मुल्क में अपना अधिकार देखकर यह चाहा कि राजा को अलग ले जाकर मार डालना चाहिए, और तब ये स्वयं राजा बन जावेंगे। इसकी कुछ ख़बर दिगोली के पं० भवानंद जोशी राजमंत्री को थी। उन्होंने राजा से गुप्त में कहा कि शायद देवीपुर में उनसे विश्वासघात न किया जावे, ख़बरदार रहें। यह खबर श्रीपूरनमल गैड़ा को जब मिली, तो उन्होंने राजा से कहा कि भवानंद जोशी को यदि ताँबे व लोहे की खानों के काम में तैनात किया जावेगा, तो आमदनी रियासत की और बढ़ेगी। इस प्रकार भवानंद को देवीपुर न आने दिया। पूरनमल राजा को देवीपुर को ले चले। अल्मोड़ा से चलकर लश्कर काँकड़ीघाट में पड़ा। यह स्थान अल्मोड़ा से दक्षिण की ओर कोशी के किनारे १३-१४ मील की दूरी पर है।

---

७७. वृत्तान्त हर्षदेवपुरी का

काँकड़ीघाट में हर्षदेवपुरी, शंकराचार्य के मत वाले, एक बाबा रहा करते थे। वह राजा देवीचंद को बहुत प्रेम की दृष्टि से देखते थे। और 'देबुवा' कहकर राजा को पुकारते थे। गुसाईं बाबा तप से चमकते थे और करामाती बताये जाते थे। वह राजा को देखकर प्रसन्न हुए और प्रेम से बातें करने लगे और कहा, "अय देबुवा! इस साल काँकड़ीघाट में धूप सेंक। भावर देवीपुर में मत जा। क्योंकि पारसाल तैंने भावर बिलहरी में बहुत शिकार खेला और इधर-उधर रुद्रपुर मुक़ाम में भी बहुत फिरा है। इस साल हम देवीपुर में तेरा जाना ठीक नहीं समझते।" राजा ने पूरनमल व मानिक गैड़ा की तरफ़ देखा। उन्होंने इशारा देवीपुर चलने का किया। राजा ने बाबा से कहा कि वह अवश्य देवीपुर जावेंगे। फिर बाबा ने एक अंजली पानी कोशी में से भरके राजा के सामने किया और कहा, यदि वह अवश्य ही देवीपुर जाता है, तो यह अमृत पी ले, और तब जावे। पूरनमल व मानिक ने इशारा किया कि फ़क़ीर के हाथ का पानी पीना मना है। राजा ने पीने में संकोच किया, तो गुसाईं बाबा ने पानी नदी में छोड़ दिया। कहा कि इस अमृत को मछलियाँ पी जावेंगी, और खब जीयेंगी। उस कुंड में इस बाबा ने चारा खिलाकर मछलियाँ पाल रक्खी थीं, बल्कि कई की नाकों में सोने व चाँदी की बालियाँ पहिना रक्खी थीं, जिनको देखकर बाद को भी लोग हर्षदेवपुरी बाबा की मछली कहते थे।

अस्तु, राजा बिना पानी पिये देवीपुर को कूच कर गये। राजा के जाने पर गुसाईं बाबा खड़े होके दोनों हाथ ऊपर को उठाकर नाचने और गाने लगे—"तू मरि जालैत मेरो क्ये जालो" यानी तू मर जावेगा, तो मेरा क्या नुक़सान होगा। और बहुत उदास हो गये। किसानों से कहा कि उनके वास्ते गढ़ा खोदें, तो वह समाधि ले लेंगे। लोगों ने मना किया कि राजा उन्हें दंडित करेंगे, पर गुसाईं बाबा ने ज़बरदस्ती समाधि बना ली, और अपने वास्ते नये कपड़े गेरू में रँगकर तैयार कराये। इधर गुसाईं समाधि लेने को तैयार थे, उधर राजा देवीचंद भावर में धूप सेंकते थे। एक रात को यानी संवत् १७८३ शाके १६४८ सन् १७२६ फागुन सुदी ५ सोमवार की रात में मानिक व पूरनमल गैड़ा ने अपने साथ रणजीत पतोलिया को मिलाकर पलँग पर सोते हुए राजा देवीचंद को गला दबाकर लात व मुक्कों से मार डाला। सुबह यह खबर प्रकाशित की कि राजा को साँप ने काटा है, और कोई वारिस

न होने से अपने हाथों में इन दोनों पापी, धूर्त व विश्वासघाती मंत्रियों ने राज-काज की बागडोर ले ली। इस प्रकार ६ वर्ष बावलेपन से राज्य कर राजा देवीचंद विना संतान के, इस तरह गला घोटकर मारे गये। करोड़ों रुपये जप-तप, दान-पुण्य में खरचे। हज़ारों यज्ञ किये, फिर भी अन्त में यह गति हुई!

काँकड़ीघाट में उस प्रातःकाल को (जिस रात देवीपुर में राजा देवीचंद इस निर्दयता से मारे गये थे) बाबाजी बहुत सुबह उठे और रोये तथा किसानों से कहने लगे, "मैं इस गढ़े में जाता हूँ, तुम मट्टी से ढक देना; रात में राजा देवीचंद अन्यायपूर्वक मारा गया है। मैं इस राज्य में अब न रहूँगा।" किसान जमा हुए, पर किसी को बाबा के ऊपर मट्टी डालने का साहस न हुआ। डेढ़ पहर दिन चढ़े देखते हैं कि दो आदमी दौड़ते हुए अल्मोड़ा को जा रहे थे। गुसाईं बाबा ने कहा, यदि राजा देवीचंद के मारे जाने का विश्वास न हो, तो उन दोनों आदमियों के पास जाओ, उनके पास राजा की लाश है। किसानों ने उन दोनों को पुकारकर पूछा कि वे कौन हैं? उन्होंने कहा कि वे दोनों फुलारा हैं। राजा देवीचंद कल रात स्वर्ग को गये। वे उनकी पगड़ी व कटारा रानियों के सती होने के लिये ले जा रहे हैं। तब तो किसानों में खलबली मच गई। और बाबा हर्षदेवपुरी को समाधि देकर अपने-अपने घरों को गये। समाधि अब तक काँकड़ीघाट में विद्यमान है।

फुलारों के अल्मोड़ा पहुँचने पर तमाम में मातम छा गया। रनवास में हाहाकार मच गया, और रानियाँ सती हो गईं।

६ वर्ष के इस पागलपन के राज्य में भी इस राजा ने कई जागीरें व ज़मीनें गूँठ में दीं, उनमें से जो ज्ञात हैं, वे यहाँ दी जाती हैं—

१. सन् १७२२ जागीश्वर मंदिर के नाम
२. ,, १७२६ ,, ,, ,,
३. ,, १७२४ तिखून के नरसिंह-मंदिर के नाम
४. ,, १७२५ पं० प्रेमवल्लभ पंत के नाम
५. ,, १७२६ आमरीदेवी के मंदिर के नाम

---

७८. (५५) राजा अजीतचंद

[सन् १७२६—१७२६]

इस प्रकार राजा देवीचंद को मारकर विष्टों ने सारा अधिकार अपने हाथों में ले लिया। अब वे चंद-खानदान के एक कुँवर या रौतेले को ढूँढ़ने लगे,

ताकि उसे गोबरगणेश स्थापित कर आप मौज उड़ावें। किन्तु पंचों की राय हुई कि कुमाऊँ में चंद-वंश का राज्य करने लायक़ कोई नहीं है। कठेड़ में (वर्तमान रोहिलखंड) पीपली के राजा नरपतसिंह कठेड़िया को राजा ज्ञानचंद की लड़की ब्याही थी। उसके बेटे अजीतसिंह को, जो चंदों का भांजा हुआ, गद्दी पर बैठाने को माँग लाये। इनको राजा अजीतचंद के नाम से गद्दी पर बैठाया और सारा अधिकार गैड़ों के हाथ में रहा, क्योंकि राजा अजीतचंद एक कठपुतले की तरह राजा बने रहे। पूरनमल तथा उसके बूढ़े बाप मानिकचंद गैड़ा बिष्ट के अन्यायपूर्ण राज्यकाल को कुमाऊँ में 'गैड़ागर्दी' के नाम से पुकारा जाता है।

---

७९. "गैड़ागर्दी"

मानिक व पूरनमल गैड़ा ने उन ब्राह्मणों को पकड़ मँगाया, जिनको राजा देवीचंद ने दक्षिणा दी थी तथा गाँव जागीर में दिये थे। सनदें सब वापस ले लीं, और दक्षिणा फेर देने के वास्ते अनेक प्रकार के अत्याचार किये। इन सबों ने अशर्फ़ी, रुपया, ज़ेवर व जवाहरात सब लौटाये, बल्कि और भी बरतन, कपड़ा वग़ैरह सम्पत्ति उनकी ज़ब्त होकर आई। उस समय दरबार में व गाँवों में सिवाय रोने के और कुछ शब्द न सुनाई देता था। कहते हैं कि एक ब्राह्मण ने आशीर्वाद का श्लोक पढ़ा। ये गैड़ा महोदय सिवाय ककहरे के और कुछ पढ़े-लिखे न थे। कहने लगे, शायद यह बामन हमको गाली देता है। तब ब्राह्मण ने यह 'भगनौला' पढ़ा—

"बांसि जालो स्यूलो
मुखड़ि कि बलै लिलो गालि के सुँ दीऊँलो"

इसके सुनते ही गैड़ा बहुत खुश हुआ, और कहा, "जा बामन, इन बरतनों के ढेर में से अपने बरतन पहिचान ले।" उस ब्राह्मण ने ख़ुश होकर ढेर में से कुछ अपने, कुछ पराये बरतन अपने बोझ लायक इकट्ठे कर घर की राह ली।

गैड़ा ने जब राज्य-भर के बरतन जमा किये, तो उन्हें रखने का भी अनोखा प्रबंध किया। नक़दी रुपया, जवाहरात व बरतन अलग-अलग कर उनकी फ़ेहरिस्तें बनाईं। एक अपने पास रक्खी, और एक उन बरतनों व ज़ेवरों तथा धन के साथ रख, आदमी ले जाकर, जगह-जगह जंगलों में गाड़ दी। एक-दो आदमी जो धन ले जाने को साथ गये थे, गढ़ों को बंद कर वे भी

क़तल कर गढ़ों में डाल दिए गये, ताकि किसी अन्य को इस धन का पता न चले कि कहाँ गड़ा है। १½-२ करोड़ तक रुपया दरबार का व ब्राह्मणों का इन गैड़ों ने इस प्रकार बरबाद किया। कहते हैं कि दिगोली के श्रीभवानंद जोशी को भी इन विष्टों ने सरजू के भँवर में डुबो दिया था; बाद में दिगोली के जोशी वाला दफ़्तर यानी पद दन्या के श्रीवीरभद्र जोशी को गैड़ा ने दिलाया।

इस राजा अजीतचंद के व्रतबंध में, जो अल्मोड़ा में संवत् १७८३ में हुआ था, निम्नलिखित कठेड़िये राजा व राजकुमार अल्मोड़ा आये थे। जिससे ज्ञात होता है, उन दिनों किन-किन राजाओं का राज्य कठेड़ (वर्तमान रोहिलखंड) में था। कठेड़ में कुँवरों को बेटा कहते थे।

१. राजा नरपतसिंह, पीपली
२. बेटा गुलाबसिंह, कैमरी
३. ,, सुवर्णसिंह, अमरपुर
४. ,, चतुर्भुज, अकबराबाद
५. ,, हरीसिंह, उदमावाला
६. ,, हरीसिंह, सोननगरा
७. ,, बखतसिंह, सोननगरा
८. ,, हरीसिंह (२) ,,
९. ,, आनंदसिंह, श्रीनरका (श्रीनगर ?)
१०. ,, पृथ्वीसिंह, फ़रीदनगर
११. ,, हरीराय, चांचहट
१२. बेटा बहुरीनाथ, चांचहट
१३. ,, तेजसिंह राठौर, चांचहट
१४. ,, उदयराज, बहीपुर
१५. ,, रामराय, बनजरिया
१६. ,, सुरथसिंह, रामनगर
१७. ,, भूपतिसिंह, नहाल
१८. ,, संग्रामसिंह, लोहरा
१९. ,, प्रतापसिंह सूरजबंसी, बेरिया
२०. ,, मेदीराय चौहान, मव
२१. ,, जगन्नाथ चौहान, खट-गरी

इतने राजा व राजकुमार बाहर से आये थे, व्रतबंध के बाद सब कठेड़िये राजकुमार अपने-अपने राज्यों को चले गये। कठेड़ में पीपलीवाले तथा ठाकुरद्वारेवाले को, चंद राजाओं के रिश्तेदार होने के कारण, दर्जा बढ़ाकर राजा कहा व लिखा जाता था, औरों को बेटा यानी राजकुमार कहा जाता था। व्रतबंध हुए बाद ही राजा अजीतचंद राजगद्दी पर बैठे। दोनों उत्सव साथ-साथ हुए।

राजा अजीतचंद नाम-मात्र के राजा हुए। ये जब पीपली से बुलाये गये, तो बहुत छोटे थे, और सिर्फ़ दो वर्ष इन्होंने राज्य किया। विष्टों की 'गर्दी' में इनकी कुछ न चली। प्रजा ने जब विष्टों के अन्याय की कहानी

इनसे कही, तो बाद को कुछ-कुछ ध्यान इनका उस ओर जाने लगा था। इन व्यभिचारी बिष्टों ने राजा के रनवास को भी भ्रष्ट कर डाला। क्योंकि पूरनमल का यह भी एक क़सूर साबित हुआ कि राजा अजीतचंद की एक ख़वासन से उसकी दोस्ती हो गई। उसके गर्भ भी इनसे रह गया। जब पूरनमल को पता चला कि राजा को ये बातें मालूम हो गई हैं, और वह उससे नाराज़ है, तो अजीतचंद को मारने की ठहराई। संवत् १७८५ तदनुसार शाके १६५० माघ बदी ७ मंगल की रात उस ख़वासन के पुत्र उत्पन्न हुआ। उसी वक़्त श्रीपूरनमल गैड़ा तथा उसके बूढ़े पिता श्रीमानिकचंद अशर्फ़ियाँ लेकर राजा के पास गये। नज़र पेश की, और राजा को पुत्र उत्पन्न होने के उपलक्ष में बधाई दी। राजा कुढ़ा हुआ तो था ही, इस मक्कारी से और भी जल गया। राजा अजीतचंद जवान थे, ग़ुस्से को न रोक सके, और न यह समझे कि वह तो बिष्टों के बंदी-मात्र हैं, राजा नहीं। अस्तु, ताव में आकर कह बैठे कि पुत्र राजा का नहीं, पूरनमल का है। वह राजा को अशर्फ़ी न दिखाकर अपने को दिखावे। राजा का इतना कहना था कि पलँग पर लेटे हुए राजा को इन पापियों ने लात, घूसों से ऐसा मारा कि उसकी हड्डी व पसलियाँ टूट गईं। राजा बेहोश होकर पलँग से नीचे गिर पड़े। उन्हें उठाकर पलँग पर रक्खा, और यह खबर फैलाई कि राजा को वायु (लक़वे) की बीमारी हो गई है। थोड़ी देर बाद राजा अजीतसिंह को ख़ून के दस्त हुए, और वह सुरपुर को सिधारे। यह घटना सन् १७२८ की है।

राजा अजीतचंद के मरने के बाद फिर कुमाऊँ की राजगद्दी खाली पड़ गई। पूरनमल ने फिर कुछ कुमय्यें पीपली के राजा नरपतसिंह के पास भेजे, और उनसे बिनती की कि राजा अजीतचंद लक़वे की बीमारी से मर गये हैं, अपने दूसरे पुत्र को राजगद्दी के लिये दीजिये। किन्तु राजा नरपतसिंह को पहले ही असली बातों की खबर हो गई थी कि अजीतचंद दग़ाबाज़ी से मारे गए हैं। राजा नरपतसिंह ने कहा, "मेरे कुँवर बकरे नहीं, जो बार-बार कुमाऊँ की देवी को तुम लोगों के हाथ बलि चढ़ाये जावें।" अतः पूरनमल का दल पीपली से निराश होकर लौट आया। किन्तु मदान्ध बिष्टों ने जो अपने को सर्वेसर्वा समझ बैठे थे, उपर्युक्त ख़वासन के १८ दिन के (अठकिन्सन साहब ने १८ महीने के लिखा है, जो ठीक नहीं ज्ञात होता) छोटे, नाजायज़ व नादान बच्चे को कुमाऊँ की राजगद्दी पर बैठा दिया और उसका नाम बाला कल्याणचंद प्रसिद्ध किया।

वे विष्ट लोग राज्य-मद से इतने बावले हो गये कि वे उस नाबालिग़ बच्चे के नाम से जागीरें भी देने लगे।

यह बात पंचों ने स्वीकार न की। सब राजकर्मचारी लोग इकट्ठे हुए। महर व फरत्याल दोनो धड़ों के लोग आज आपस में मिल गये। डोटी में जाकर राजा उद्योतचंद के लला कुँ० कल्याणसिंह को राजा बनाने के लिये लाये। यह पहले अपने भाई के डर से डोटी में भाग गये थे। कुँ० कल्याणसिंह जिस वक़्त डोटी में पाये गये; कहते हैं कि वह मैले-कुचैले भेष में थे। दाढ़ी, मूँछ व सिर के बाल बढ़े हुए थे। फटे कपड़े पहने थे। जंगल में तरकारी 'बनतरूड़' खोदते हुए एक खड्ड में पाये गये थे। जब कुँ० कल्याणसिंह कुमाऊँ की सरहद में आये, तब से राजा कल्याणचंद कहलाये। यह राजा पढ़े-लिखे कुछ न थे। बेचारे ग़रीब थे। मज़दूरी करके गुज़र कर रहे थे।

---

८०. (५६) राजा कल्याणचंद (५)

[सन् १७२६—१७४७]

राजा कल्याणचंद संवत् १७८५ तदनुसार सन् १७२८ इसवी चैत्र सुदी १ शनिश्चर के दिन कुमाऊँ की राजगद्दी पर बैठे। पूरनमल व उसके पिता मानिकचंद गैड़ा विष्ट दोनों बाप-बेटे एक साथ भेंट लेकर राजा के पास आये। इन्होंने दो राजाओं को (राजा देवीचंद व राजा अजीतचंद को) निर्दयता से मारा था और जो-जो अत्याचार किये वे 'गैड़ागर्दी' के नाम से ऊपर दिये गये हैं। इन सब बातों की सूचना लोगों ने राजा कल्याणचंद को पहिले ही से दे दी थी। राजा ने उनको देखते ही हुक्म दिया कि वे दोनों पापी पिता-पुत्र राजा के सामने मारे जावें। इस हुक्म के अनुसार जल्लादों ने उन दोनों को वहीं पर तलवार से मार डाला। उनके सब लड़के भी मार डाले गये। पूरनमल की स्त्री गर्भवती थी, वह एक कुमाऊँ के बौरे को दी गई। ख़वासनवाला लड़का राजा बाला कल्याणचंद एक मुसलमान चोपदार को दिया गया, जिसका नाम गुमानी चोपदार था। इस तरह विष्टों व अत्याचारियों को कठोर दंड दिया गया। पूरनमल की गर्भवती स्त्री से बारीसाल नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसकी बहुत-सी संपत्ति श्रीशिवदेव जोशी ने वापस कर दी।

फिर राजा कल्याणचंद राजकाज में दत्तचित्त हुए और तल्ला महल के उत्तर तरफ़ (जहाँ कि पिछले समय तहसील व जेलख़ाने थे) चौमहला

मकान बनवाया। राजा कल्याणचंद निर्धनावस्था से प्रचुर सम्पत्ति व राज्य के अधिकारी हुए, और इधर खून का नशा भी उनको चढ़ गया। विष्टों को मार कर ही उन्होंने संतोष न किया; बल्कि हुक्म दिया कि तमाम कुमाऊँ से चंदवंश के लोग जितने जहाँ हैं, मारे व निकाले जावें। जितने रौतेले राज्य में थे, वे ढूँढ़कर मारे गये। यह इसलिये किया कि कभी प्रजा उससे रुष्ट हो जाय तो कोई दूसरा चंदवंशी चंदेला राज्य करने लायक़ न रहे। राजा के इस हुक्म से कि सब कुँवर व रौतेले मारे जावें, हाहाकार मच गया। दानपुर से कोटे तक तथा पाली से काली तक रोना ही रोना सुनाई दिया। गाँव में जो कोई किसी का वैरी था, वह उसे चंद-खानदान का बता देता था। इस पर वह या तो निकाला जाता था या मारा जाता था और उसकी सम्पत्ति उसका वैरी राजकर्मचारियों को कुछ दे दिलाकर हड़प जाता था। जैसे अत्याचार बुढ़ापे में राजा रुद्रचंद ने भी न किये, उससे भी ज़्यादा इस पाँचवें कल्याणचंद ने किये। न तो शिक्षा, न राजकाज का अनुभव; कहते हैं कि इस कठोर-दिल राजा ने अपने इन कुकृत्यों को पुण्य-कार्य समझा।

राजा तो वास्तव में लट्ठ मूसल था। उसके कारिंदे उसको भड़काकर अपना उल्लू साधते थे। 'चाले' थे, पर इतने नहीं जितना कि इस मट्टी के महादेव के सामने बताये जाते थे। और इस राजा को उसके कर्मचारियों ने इतना सशंकित बना दिया था कि वह बेचारा विना अच्छी तरह इतमीनान किये खा-पी न सकता था। उसका जीवन उसे भार-स्वरूप हो गया था। वह हर वक़्त सोचता व शक में झूमता रहता था। लोग उसके पास जाते हुए डरते थे कि न मालूम किसकी मौत किस वक़्त सामने न खड़ी हो जावे। राजा को फिर उस वक़्त के मुँहलगे कर्मचारियों ने ऐश में डाल दिया और उसे नशा खाना भी सिखलाया। राजा ग़ाफ़िल हो गया, कर्मचारियों ने जो चाहा किया। बहुतों का माल लूटा, बहुतों को मार डाला, कई एकों की आँखें निकलवा दीं।

राजा के इस ज़ुल्म से प्रजा में असन्तोष बढ़ा। एक दिन पुलिस-विभाग के प्रधान अफ़सर बैरती के पं० भवानीदत्त पांडे ने राजा के पास आकर यह खबर दी कि कुछ ब्राह्मणों व उनके साथी ज़मींदारों ने यह सलाह की है कि यह अत्याचारी राजा मारा जावे, और जयपुर से सवाई जयसिंह महाराज का कुँवर बुलाया जावे। उसे कुमाऊँ का राजा बनाया जावे। राजा ने विना तहक़ीक़ात किये यह खबर सही मान ली। और उक्त अफ़सर के कहे मुताबिक़ लोगों को पकड़वाकर ब्राह्मणों की आँखें निकलवा दीं, और ज़मींदारों

को मारकर सुआल नदी के किनारे फेंक दिया। वहाँ वे शृगाल व चील-कौओं के भोजन बने। कहते हैं कि आँखों से ७ 'भदेले' भर गये थे। ब्राह्मणों में पंत व झिजाड़ के जोशी भी थे। बहुत से लोग आँखें निकालते समय ही मर गये। अठकिन्सन साहब ७ घड़े लिखते हैं, पर पं० रुद्रदत्त पंतजी ७ 'भद्याले' (लोहे के बर्तन) बताते हैं। एक दिन का ज़िक्र है कि राजा की कचहरी लग रही थी। उसमें सब कर्मचारी, दीवान, बक्सी, गुरु, पुरोहित, पंत, पाँडे आदि व प्रजा के प्रतिनिधि मौजूद थे। जब कचहरी भंग हुई, उस समय राजा ने पं० रमाबल्लभ पंत को, जिनकी आँखें निकाली गई थीं, इशारा करके दिल्लगी में कहा कि पंतजी ठहर जावें। वे विना रोशनी के कैसे जावेंगे। इस पर राजा ने नौकर से मसाल लाने को कहा। पंतजी इस मज़ाक़ से जल गये। कहने लगे कि "अगर महाराज, आप राजमहल को भी आग लगा देवें तो भी मुझ अंधे को रोशनी न दिखाई देगी, मसाल की तो बात ही क्या ?" यह खरी-खोटी सुन राजा लज्जित व निरुत्तर हुए।

इस राजा के दरबार में तथा राज्य में प्रधान-पद दन्या के जोशियों का था। यों राज्य-सेवा में झिजाड़ के जोशी, चौधरी तथा रंतगली भी हमेशा रहते थे। सर्वश्री किसनदेव विष्ट, नंद विष्ट तथा परमानंद अधिकारी मंत्री क्रम-क्रम से हुए थे। श्रीसूरसिंह विष्ट तथा श्रीहरसिंह गुसाईं वक्सी बनाये गये। श्रीहरसिंह गुसाईंजी एक बार दीवान भी बने। इस प्रकार राजकर्मचारियों की बदली बार-बार होती रहती थी।

सन् १७८५ में राजा ने बादशाह महम्मदशाह के वास्ते नज़राने भेजे। वहाँ से उसकी रसीद में फ़रमान और खिलअत दिल्ली से आई।

चंदेलों में से कुँ० हिम्मतसिंह रौतेला पहले से भागकर काशीपुर की तरफ़ रहते थे। कुछ लोग उनके पास पहुँचे, और कहा कि उसको राजा बनावेंगे। रौतेलों को जब मारने का हुक्म हुआ था, अन्याय व अत्याचार-पीड़ित होकर वह देश को भाग गये थे। रोहिलों ने इनको कुँ० दुलीचंद कहा है। राजा कल्याणचंद ने यह ख़बर पाकर कि कुँ० हिम्मत गुसाईं ने फ़ौज इकट्ठी की है, और कुमाऊँ के सिंहासन को लेने की फ़िक्र में है, काशीपुर के सरदार को लिखा कि वह कुँ० हिम्मतसिंह रौतेले को मार डाले। सरदार ने कुँ० हिम्मतसिंह के ऊपर फ़ौज चढ़ाई। लड़ाई होने पर कुँ० हिम्मतसिंह हार गये और नवाब अलीमहम्मदख़ाँ रोहिला के पास भाग गये। अलीमहम्मदख़ाँ ने उन्हें अपने पास रक्खा और हर तरह मदद देने को कहा।

इस अलीमहम्मदख़ाँ का क़िस्सा इस प्रकार बताते हैं—एक दाऊदख़ाँ

रोहिला अपने भाइयों के साथ कठेड़ में आकर राजा के पास नौकर हुआ। पहले फ़ौजी अफ़सर बना, पीछे उस राजा को मारकर आप राजा बन गया। बाद में उसने बाँकोली के जाट का लड़का पालकर गोद ले लिया। उसका नाम अलीमहम्मदख़ाँ रक्खा। अपना राज्य उसको छोड़कर मर गया। इस अलीमहम्मदखाँ ने आँवले का इलाक़ा वहाँ के राजा से छीन लिया, और भी अपने राज्य को बढ़ाता रहा। उसी समय का क़िस्सा है—

"वैसे से ऐसी करी देखो प्रभु के ठाट,
आँवले को राजा भयो बाँकोली को जाट।"

कठेड़ का नाम रोहिलखंड इन्होंने ही रक्खा। सारा रोहिलखंड इन्होंने अपने नीचे कर लिया। आप रामपुर के नवाब प्रसिद्ध हुए। दिल्ली के बादशाह व फ़रुखाबाद के नवाब से भी युद्ध करने लगे।

संवत् १७८६ में राजा ने बरेली के सूबा नवाब सआदतख़ाँ के पास तोहफ़े भेजे।

इसी संवत् में फ़रीदनगर के राजा माधोसिंह कठेड़िया के साथ कल्याणकुँवरि लली का विवाह हुआ। संवत् १७८८ में राजकुँवरि लली की शादी राजा तेजसिंह कठेड़िया के साथ बड़ी धूम-धाम से राजा ने की। उस दिन बरात में ये राजा आये थे—

१. राजा रामसिंह, कैमरी।
२. ,, दौलतसिंह, धुराही।
३. ,, भुजबलसिंह, श्रीनगर।
४. ,, प्रह्लादसिंह, सुंदरपुर।
५. ,, विष्णुसिंह, शाहाबाद।
६. राजा जवाहरसिंह, विलासपुर।
७. राजा संतोषसिंह, साही।
८. राय शिवकरनसिंह।
९. कुँ० मातादीनसिंह।
वग़ैरह।

कठेड़िया-राजपूत जब चंद-राजाओं के दरबार में ब्याह आदि उत्सवों में आते थे, तब उनको पहले 'सार' यानी जेवनार के लिये नक़द रुपये दिये जाते थे। जब वे खाना खाने को आवें, उनको बैठने को चाँदी का पटला (चौका), चाँदी का थाल व गड़वा, रेशमी धोती, दुशाला वग़ैरह देते थे। यह सब सामान उन्हीं का हो जाता था। यह सब दस्तूर जवाईं, समधी वग़ैरह के रिश्ते से जारी था। संवत् १७९२ में उचाँग के राजा का वकील श्रीदेवा डुंडुक बेटा सरदार करदमकोट का चंद राजा के लिये भेंट व पत्र लेकर आया था।

संवत् १७९३ में श्रीमती उच्छबकुँवरि लली का विवाह सिरमौर (नाहन) के राजा विजयप्रकाश के साथ हुआ। जब यह बरात कुमाऊँ को आने

लगी थी, तो गढ़वाल के राजा ने रोक-टोक की। दून के मुल्क में कुमाऊँ के राजा ने फ़ौज भेजी, और बरात की हर तरह रक्षा की। जब बरात अल्मोड़ा से नाहन पहुँच गई, तब कुमाऊँ की सेना वापस आई। नाहन-राज्य में पूछताछ करने पर इस विवाह के बारे में ये बातें ज्ञात हुईं— रानी के साथ दहेज में एक २४भुजी देवी भी आई थी। लेखक को इस देवी के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यह मूर्ति संगमरमर की है, और देखने में बहुत सुंदर है। उसी के साथ एक गणेश भी है, जो उसी कारीगर का बनाया ज्ञात होता है। कहते हैं, एक परात दहेज में गई थी, वह पहले पीतल की समझी गई, बाद को जब ज्ञात हुआ कि वह सोने की है, तो उसके हौदे बनवा गये।

संवत् १७६६ में गढ़वाल के राजा प्रदीपशाह के दो वकील श्रीबंधु मिश्र तथा श्रीलक्ष्मीधर पत्र व भेंट लेकर अल्मोड़ा आये। मेल-मिलाप का संदेश लाये। संधि ठहराई गई। पत्र का उत्तर तथा बदले में भेंट कुमाऊँ के राजा से भी ले गये।

संवत् १७९८ में राजा के पास अल्मोड़ा में उदयपुर के राणा जगतसिंह का वकील पत्र व भेंट लाया। राजा ने पत्र का जवाब दिया, तथा बदले में कुछ तोहफ़े कुमाऊँ के भेजे।

इसी संवत् में राजा ने गढ़वाल के राजा के वकील के साथ अपना वकील भी मय पत्र व तोहफ़े के जयपुर के राजा जयसिंह के पास भेजे थे। वहाँ से जवाब में पत्र व तोहफ़े लेकर वकील लौटा।

इसी संवत में चित्तौरगढ़ के राणा जगतसिंह के वकील बखतराम जोशी पत्र व भेंट लेकर राजा के पास अल्मोड़ा आये थे।

संवत् १८०१ में श्रीभागाकुँवरि लली का ब्याह राजा महेन्द्रसिंह कठेड़िया के कुँ० जोहारसिंह के साथ हुआ। बरात अल्मोड़ा में धूम-धाम से आई थी।

संवत् १८०२ में राजा के पास अल्मोड़ा में जोधपुर के राजा अभयसिंह के वकील श्रीरामकृष्ण कवि तथा श्रीकेशवराम कवि पत्र व भेंट-सामग्री लेकर आये थे। पत्र में लिखा था कि (१) गोदंति हड़ताल, (२) पैगामी नौसादर, (३) बुग़दादी हड़ताल, (४) सिसौना का विष, (५) चीड़ के बीज यानी स्यूँता, (६) दाड़िमी, (७) गिलोय, (८) मालू का टाँटा, (९) रूची (?) उनके वास्ते भेज देना। राजा कल्याणचंद ने पत्र का उत्तर दिया, और जो चीज़ें मँगाई थीं, वे भी भेज दीं, और अपने वकील राजगुरु पं० रघापति पांडे भी जोधपुर भेंट व पत्र लेकर भेजे।

इसी संवत् में राजा के पास अल्मोड़ा में लमजुंग के राजा वीरनारायण शाई का वकील रघुपति विष्ट सौज्याल पत्र व भेंट लेकर आया।

पश्चात् जुमला के राजा सुरथसाई के वकील श्रीधर्मदास उपाध्याय, बालकृष्ण, काशीराम विष्ट तथा दधिमल कारकी पत्र व भेंट लेकर आये। उत्तर व भेंट भी ले गये।

अब आगे इस राजा के राज्य का वर्णन लिखा जाता है; जिससे ज्ञात होगा कि मुल्क का राजकाज कैसे चलता था। राजा को निरपराध लोगों को दंडित करने में कुछ दिल में पश्चात्ताप हुआ, जिससे लज्जित होकर, जो लोग जान से मारे गये थे या जिनकी आँखें निकाली गई थीं, उनके उत्तराधिकारियों व उनको तसल्ली देने में लगे। किसी को नक़द धन दिया, किसी को जागीर व किसी को नौकरी अपने दरबार में दिलाई। अपने-अपने पदों पर फिर उन्हें नियुक्त किया। झिजाड़ के पं० लक्ष्मीपति जोशी के घर के किसी होशियार, नौकरी के लायक़ व्यक्ति को उपस्थित करने की आज्ञा हुई। उस समय इन जोशीजी के पुत्र श्रीशिवदेव जोशी पाटिया गाँव में अपने मामा पं० ब्रह्मदेव पांडेजी के घर में छिपे हुए थे। श्रीब्रह्मदेव पांडेजी ने अपने साथ पं० शिवदेव जोशी को ले जाकर राजा के सामने खड़ा किया। राजा ने श्रीशिवदेव जोशी को माल के सबणा (सरबना) नामक परगने में सरदार लटौला जोशी के नीचे 'लेखिया' यानी क़ानूनगो बनाया। यह नौकरी देना भी राजा की राजनैतिक चातुर्यता थी। पहले तो लटौला जोशी की मातहती में झिजाड़ का जोशी पद स्वीकार न करेगा। अगर करेगा तो घाम लगकर मर जावेगा। तो भी राज्य में खबर फैलेगी कि राजा तो उसको उसके योग्य पद दे चुके थे। श्रीशिवदेव जोशी सबणा को चले गये, और वहाँ लटौला जोशी सरदार की मातहती में लेखिया (लेखक) का काम करने लगे। लेकिन लटौला जोशी शिवदेव को अपने पास रखना न चाहता था, क्योंकि न-जाने कब वह उनका पद छीन ले। वह होशियार ख़ूब था। इस कारण एक दिन लटौला सरदार ने शिवदेव जोशीजी से कहा—"इस परगने में शेर लगा है। राजा का हुक्म है कि शेर से प्रजा को बचाया जावे। तुम झिजाड़ के जोशी अपने को मर्द कहते हो, इस शेर को मरवाने का बंदोबस्त करो।" शिवदेवजी विवश होकर अपने साथ एक ब्राह्मण को लेकर उस परगने को जाते थे कि रास्ते में शेर ने आकर ब्राह्मण को दबोच लिया। शिवदेव एक टट्टू पर चढ़े थे। वह टट्टू शेर को देख शिवदेवजी को ज़मीन में पटककर भाग गया। शिवदेव जोशी के ऊपर जब शेर झपटा, तो उन्होंने नंगी कटार

उसके कलेजे में भोंक दी, वह मर गया। शेर का सिर काटकर सरदार के पास गये। सरदार बड़ा चकराया कि उसने तो शिवदेव को मृत्यु के मुख में भेजा था, वह वहाँ से लौट आया। सरदार लटौला ने यह समझकर कि सच्ची खबर शेर मारने की दरबार में जावेगी, तो शिवदेव जोशी की बहादुरी गिनी जावेगी, अतः उसने लिखा कि शेर उसने मारा है; किन्तु जब राजा को सच्चे हाल मालूम हुए, तो उसने लटौला सरदार को निकालकर शिवदेव जोशी को सरबना का सरदार बनाया। उन्होंने उस परगने को खूब आबाद किया। इस भावर में किसी वक़्त गल्ली के एक जोशी ने भी अच्छा काम किया था।

शिवदेवजी ने सरबना में एक गढ़ी व एक मकान बनवाया, जिसके टूटे खँडहर अब तक पड़े हैं। राजा ने झिजाड़ के पं० हरीराम जोशीजी को अपने दरबार में नौकर रक्खा।

इस बीच कोटा-की-माल का अफ़सर पं० रामदत्त अधिकारी था। इसने राजा को खबर पहुँचाई कि कुँ०हिम्मतसिंह रौतेला अलीमहम्मदखाँ के पास है। राजा ने भावर के चौकीदार हैड़ियों को हुक्म दिया कि छिपकर बदाऊँ में जाकर कुँ० हिम्मतसिंह को मार डालें। अतः हैड़ियों ने बदाऊँ में जाकर हिम्मतसिंह रौतेले को मार डाला। यह ख़बर जब नवाब अलीमहम्मदखाँ को पहुँची, उसने इरादा किया कि कुमाऊँ का राज्य छीन लेना चाहिए; क्योंकि वहाँ के राजा ने उनकी शरण में आये हुए हिम्मतसिंह को मरवा डाला है। कुमाऊँ पर चढ़ाई के लिये फ़ौज इकट्ठा होने लगी, पर कुमाऊँ का राजा गाफ़िल पड़ा रहा। कर्मचारियों के अधीन रहकर भोग-विलास में लिप्त रहता था। नशे में मस्त रहता था। राज की व न्याय की कुछ भी परवाह न थी। बल्कि ऐसी-ऐसी ओछी बातों में अपने अमूल्य समय को लगाता था, जिनका नमूना यहाँ पर दिया जाता है—

माला गाँव के ज्योतिषी पं० रमापति जोशी ज्योतिष में बड़े ही प्रवीण थे। उन्होंने अपने भैंस के (कटड़े) बच्चे का जन्मपत्र बनाया। उसमें लिखा था कि वह कटड़ा बहुत वर्ष जीवेगा। यह खबर राजा को किसी ने दी। राजा ने शूद्रों को आज्ञा दी कि वे कटड़े को लाकर देवीजी के सामने मरवा दें। शूद्र लोग गाँव में गये। वहाँ अच्छी क़ीमत देकर ग्वाले से उसको ख़रीद लाये। रात होने से किसी गाँव में रहे। उस गाँववालों ने वह मज़बूत कटड़ा ज़्यादा क़ीमत तथा एक दुबला कटड़ा देकर बदल लिया। शूद्रों ने यह समझकर कि राजा कटड़े को क्या पहिचानता है, धन के लालच से उसे स्वीकार कर

लिया। राजा ने उस कटड़े को मरवा डाला, और उधर श्रीरमापति को बुलाकर पूछा कि क्या उसने कटड़े का जन्मपत्र बनाया है, और उसकी उम्र बढ़ाकर लिखी है? पहले तो ज्योतिषी महोदय शरमाये। कुछ इधर-उधर की कहने लगे, पर बाद को राजा के आग्रह करने पर सच्चा-सच्चा हाल कह दिया। राजा ने कहा, कटड़ा तो मारा गया है। वह झूठे जन्मपत्र क्यों बनाते हैं? इस पर ज्योतिषीजी ने कहा कि उनके जन्मपत्रवाला कटड़ा हरगिज़ न मरा होगा। बाद तहक़ीक़ात के ज्योतिषीजी सच्चे निकले, तब उनको पुरस्कार दिया गया। और शूद्रों को दंड मिला।

इन ज्योतिषीजी को दरबार में पद मिल गया। एक दिन राजा ने पूछा कि वे शिकार को जाते हैं, कहिए उनको क्या शिकार मिलेगा? ज्योतिषीजी ने कहा—सफ़ेद टीकावाला 'काँकड़' (पहाड़ी हिरन) मिलेगा। जंगल में राजा ने टीकावाला काँकड़ मारा। कहते हैं, टीकेवाला काँकड़ अक्सर कम होता है।

इस राजा का बदन बहुत मोटा व भारी हो गया था, इसी कारण राजा की नज़र दूज के चाँद देखने में नहीं लगती थी। ज्योतिषीजी ने 'नलिका बंधन' द्वारा राजा को दूज का चाँद छज्जे से दिखाया। इन बातों से प्रसन्न होकर राजा ने अपने पहनने के वस्त्र व ज़ेवर ज्योतिषी को पहनाये। माथे में लगाने का ज़ेवर 'सूरत' के नाम का भी पहनाया। इस कारण इन ज्योतिषीजी का नाम सूरतिया रमापति जोशी पड़ गया था।

इस राजा को शनिश्चर की दशा (साढ़ेसाती) आई थी। उस साढ़ेसाती का असर न होने देने को राजा के गुरु ने कहा कि वे पूजा व जप शनिश्चर का करेंगे। किन्तु दरबार में पुरोहित शिवराम पांडे का ज्यादा ज़ोर था। उसने राजा से कहा कि पूजा राजा खुद करेंगे। राजा ने पुरोहित का कहना मान लिया। राजा लक्ष्मीश्वर महादेव के मंदिर के निकट पीपल के पेड़ के तले जाकर पूजा करते थे, और साथ ही १०८ बार पीपल की परिक्रमा भी करते थे। राजा के साथ गुरु, पुरोहित, धर्माधिकारी, पौराणिक, वज़ीर, बक्शी, दीवान, दफ़्तरी व फ़ौज के अफ़सर सब लोग जाते थे। एक दिन का वर्णन है कि राजा परिक्रमा करते थे, और लोग भी साथ फिरते थे। इस बीच राजा का गुरु राजा की तरफ़ पीठ करके एक पत्थर पर सो गया। पुरोहित ने कहा—"गुरुजी, इस समय आपको भी राजा के पीछे परिक्रमा करनी चाहिए।" राजगुरु ने कहा—"वह उम्र में वृद्ध व कमज़ोर हैं, उन्हें सोने दो।"

पुरोहित को बुरा लगा, और गुरु पर राजा को कुपित करने के अभिप्राय से उसने बार-बार गुरुजी से परिक्रमा करने को कहा, और कर्मचारियों से भी

कहलाया । तब राजगुरु ने झल्लाकर कहा,—"यह राजा थोड़े ही है, यह तो शिवराम पांडे के कोल्हू का बैल है, जो इस तरह भाँवरें करता है । ऐसा तो दुखिया राड़ें करती हैं, जो अपने बेटे व बहू की भलाई के लिये देवताओं को पूजती व पूजा करके परिक्रमा करती हैं । यह राजा अपने राज्य की खबर तो रखता नहीं, ऐसे-ऐसे कामों में लगा रहता है । यह राजा यदि योग्य होता, तो धूर्तों को दंड देता, और देश का शासन करता ।" राजगुरु के इन मर्मभेदी वाग्बाणों से पुरोहित के कान खड़े हो गये, पर राजा चुप रहे । ग़ुस्से से मुँह लाल हो गया । जब दरबार में आये, तो गुरु से ग़ुस्से में कहा,—"मैं तुम्हारी बहुत बातों को टाल जाता हूँ, तुमको ऐसे ओछे शब्द राजा के लिए न कहने चाहिए ।" राजगुरु ने फिर कहा, —"महाराज ! राजाओं का धर्म है कि ब्राह्मणों के अपराध क्षमा करें, पर इतना क्रोध भी आपको न आना चाहिए । यह आपका क़सूर नहीं है । कदाचित् डोटी में आपने मड़ुवा खाया हो, यह उसी का असर है ।" राजा इतनी खरी-खोटी सुनकर चुप हो गये ।

और भी ऐसे ही क़िस्से होते थे, जिनका लिखना वाजिब नहीं । किन्तु कहना यह है कि यह राजा राज-काज के कामों से बिलकुल अनभिज्ञ थे । उन्हें रात-दिन की ख़बर न थी । कर्मचारी मनमाने तौर पर उनसे काम निकालते थे, वे समझते थे कि वे सदा आनंद की नदी में तैरते रहेंगे ।

---

८१. रोहिलों की चढ़ाई

इधर राजा कुम्भकर्णी नींद में सो रहे थे कि उधर से नवाब अलीमहम्मदखाँ की फ़ौज कुमाऊँ पर चढ़ आई । इधर अवध के नवाब मंसूरअलीखाँ के सैनिकों ने बिलारी व सरबना का इलाक़ा छीन लिया । नवाब अलीमहम्मदखाँ बाहरी तौर पर तो हिम्मत गुसाईं की मौत के बहाने से कुमाऊँ पर चढ़ाई करना चाहते थे, पर असली रहस्य उनका इस पर्वतीय दुर्ग को अपने राज्य में मिलाने का यह था कि मौक़ा पड़ने पर इस सुरक्षित राज्य में भाग जावें । वह दाऊदखाँ की मृत्यु को भी न भूले थे । अतः उन्होंने चढ़ाई का प्रबंध तेज़ी से आरंभ किया । चारों ओर शत्रुओं से घेरे जाने पर राजा कल्याणचंद को कुछ-कुछ विवेक आया कि उसने अपने अत्याचारों तथा लापरवाही से बहुत से शत्रु पैदा कर लिये हैं । उसने शासन सुधारने की भी ठानी, पुराने कर्मचारियों को अलग भी किया । पं० शिवदेव जोशीजी को तराई में पूर्ण अधिकार सौंप दिये थे । श्रीरामदत्त अधिकारी को कोटा-भावर में तथा अल्मोड़ा में पं० हरिरामजी को सर्वेसर्वा बना

दिया था, पर तो भी राजदरबार में चापलूस व कुटिल नीतिवाले लोगों की कमी न थी।

सन् १७४३-४४ में अलीमहम्मदखाँ ने अपने तीन नामी सरदार हाफ़िज़ रहमतखाँ, पैंदाखाँ तथा बक्सी सरदारखाँ को १०००० सेना लेकर कुमाऊँ पर चढ़ाई करने को भेज दिया। कल्याणचंद संकट में थे। आंवले तथा अवध के नवाब दुश्मन बने बैठे थे। डोटी के राजा अपने एक साधारण प्रजा के कूर्माचल के राजा बन जाने से दिल-ही-दिल में कुढ़े हुए थे, इधर रोहिले आ धमके।

इसकी सूचना श्रीरामदत्त अधिकारी ने राजा को दे दी, और उधर शिवदेव जोशी ने धन माँगा, ताकि वह फ़ौज एकत्र कर व क़िलेबंदी कर रोहिलों को कुमाऊँ में न आने दें। दरबार के कर्मचारियों ने राजा को उल्टी पट्टियाँ पढ़ाईं, कहा—"शिवदेव धन अपने लिए माँगता है। उसे गुसाइयों का बहुत धन देना है। रोहिले कुमाऊँ में आ नहीं सकते।" फरत्याल धड़े के लोगों ने धन लेकर लकड़ियाँ काटकर रास्ते बंद कर दिये, पुल तोड़ दिये, और राजा से कहा—"गौन व गल्याट सब बंद कर दिये हैं। इस प्राकृतिक दुर्गरूपी कुमाऊँ में कोई शत्रु कैसे आ सकता है।" राजा इन बातों से ख़ुश हो गये, केवल कुछ छोटे-छोटे लकड़ी के क़िले रास्तों में बनाये गये।

रोहिलों ने शिवदेवजी को रुद्रपुर में हराकर बटोखरी (बड़ोखरी, जो काठगोदाम के पास था) के क़िले में शरण लेने को विवश किया और हाफिज़ रहमतखाँ एक प्रतिनिधि को रुद्रपुर में छोड़कर आप स्वयं भागते कुमय्यों के पीछे दौड़ पड़ा। और भीमताल के नीचे परगना छखाता में विजयपुर पर अधिकार कर लिया। राजा ने इन खबरों को सुनकर सेना भेजी, पर विजयपुर में लड़ाई होते ही कुमय्यों को खेत छोड़कर भागना पड़ा, और शत्रु उनके पीछे रामगाड़, प्यूड़ा होता हुआ सुआल नदी द्वारा अल्मोड़ा को चढ़ आया। भागती हुई कुमय्याँ फ़ौज ने मानों पथदर्शक का काम किया। बूढ़ा होने से बक्सी सरदारखाँ बाड़ाखोरी में रहा। हाफ़िज़ रहमतखाँ अल्मोड़ा में आये। राजा कल्याणचंद विना लड़ाई लड़े ही भागकर लोहाबा के पास गैरमांडा में जा बैठे। वहाँ से गढ़वाल के राजा से सहायता माँगी।

मुसलमानों ने अल्मोड़ा आकर सब मंदिर तोड़ दिये, मूर्तियाँ फोड़ दीं, और गायें काटकर खून मंदिरों में छिड़क दिया। सब सोने-चाँदी की मूर्तियाँ, कलश व बर्तन गलाये गये, और आस-पास के मुल्क में खूब लूट-खसोट

हुई। लोग घर छोड़कर जंगलों में भाग गये। बहुत दुःखी व परेशान हो गये। लखनपुर, द्वारा, भीमताल, कटारमल, अल्मोड़ा प्रभृति स्थानों में जो भग्न मूर्तियाँ देखने में आती हैं, वे रोहिलों की तोड़ी हुई हैं। जागीश्वर व भ्रामरीदेवी में रोहिले गये, तो वहाँ ततय्यों ने इन्हें सताया, इससे वापस आये, ऐसा लोग कहते हैं। इसीलिये ये मंदिर बच गये। सरदार रहमतख़ाँ की इस विजय से नवाब अलीमहम्मदख़ाँ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अच्छी-अच्छी चीज़ें भेट में भेजीं। रोहिलों ने सब राजसी दफ़्तर व काग़ज़ात जला दिये। इसीलिये कुमाऊँ के इतिहास के लिये सामग्री मिलनी कठिन हो गयी है। थोड़े से काग़ज़-पत्र निजू घरों में मिले, जिनसे कुछ हाल ज्ञात हुए।

बहुत से रोहिले जाड़ों में यहाँ की जलवायु सहन न कर सके। शिवदेवजी ने सरबना से कुछ फ़ौज लेकर बौरारौ में रोहिलों से मुक़ाबिला किया; किन्तु बाद को उन्हें भी भागकर अपने राजा के पास गैरमांडा में जाना पड़ा। कुछ दिनों बाद राजा गढ़वाल ने कुमय्यों को मदद देना स्वीकार किया। दोनों की फ़ौजें पूर्व को आईं, और दूनागिरी तथा द्वारा पर अधिकार किया, किन्तु रोहिले उस समय बौरारौ व कैड़ारौ में डेरा डाले पड़े थे। वहाँ पर उन्होंने दोनों हिन्दू राजाओं की फ़ौज को हरा दिया, और उनके डेरों को लूट लिया। रोहिलों ने फिर श्रीनगर पर चढ़ाई करने की धमकी दी। इस पर दोनों ओर से चिट्ठियाँ चलीं व संधि की बातें ठहराई गईं। कुमाऊँ के राजा से तीन लाख रुपये नक़द लिये गये। राजा गढ़वाल ने ये रुपये अपने ख़ज़ाने से उधार दिये। पर रहमतख़ाँ के ज़ीवन-चरित्र में लिखा है कि शर्त यह थी कि कुमाऊँ का राजा ६०००० रु० सालाना कर दे, तथा गढ़वाल का राजा कुमाऊँ के राजा को मदद न दे। कल्याणचंद तख्त से उतारा जावे। उसकी जगह दूसरा राजा गद्दी पर बैठे। जो हो! कहते हैं, शर्तें मंजूर होने पर रोहिले ७ महीने अल्मोड़ा में रहकर चले गये। फ़ौज की एक टुकड़ी बड़ाखोरी में छोड़ गये।

रोहिलों के धन-दौलत से लदकर लौटने पर भी नवाब अलीमहम्मदख़ाँ प्रसन्न न हुए। यह कह चुके हैं कि वह कुमाऊँ को अपने राज्य में मिलाना चाहते थे, ताकि बुरे दिनों में, परमात्मा न करे, यदि उन्हें दिल्ली के बादशाह से कभी हारना पड़े, तो वहाँ आकर शरण लें।

इधर राजा कल्याणचंद को गढ़वाल के राजा प्रदीप्तशाह अपने साथ लाये, और उन्हें अल्मोड़ा छोड़कर आप वापस गये। दोनों राजाओं के बीच धर्मपत्र लिखा गया।

जो कुछ बरबादी महल, मंदिर तथा क़िलों की रोहिलों ने की थी, राजा कल्याणचंद ने उसकी मरम्मत करवाई। उसने लोगों को बुलाकर बड़ा पछतावा उनके सामने ज़ाहिर किया और भविष्य में सावधान रहने की प्रतिज्ञा की। भागी हुई प्रजा अपने-अपने घरों में आई।

---

८२. रोहिलों की दूसरी चढ़ाई

सन् १७४५ में बादशाह महम्मदशाह की फ़ौज से दबाये जाने पर रोहिलों ने अपनी फ़ौज, जो नजीबखाँ की मातहती में बाड़ाखेड़ी में थी, और बढ़ा दी। साथ ही कुछ और सेना उधर काली इधर कोशी की राह अल्मोड़ा को भेजी, क्योंकि नवाब अलीमहम्मदखाँ कुमाऊँ को अपने राज्य में मिलाना चाहते थे। राजा ने श्रीशिवदेव जोशी को बुलाया, और कहा कि तब तुमने कहा था कि धन व सेना हो, तो हम रोहिलों को भगा देंगे, अब धन व सेना ले जाकर रोहिलों को भगाओ। शिवदेवजी फ़ौज लेकर माल को चले। साथ में हरिराम जोशी भी थे। उधर कोटा के रास्ते भी रोहिले चढ़ आए, अतः हरिराम जोशी-जी को शिवदेवजी ने कोटा की ओर कुछ फ़ौज लेकर भेजा। शिवदेवजी ने सेना - सहित अपना डेरा बाराखोड़ी क़िले में डाला। सन् १७४५ में प्रातः-काल से युद्ध हुआ, तीन पहर तक लड़ाई हुई। पहले बंदूक़ों से लड़ाई हुई, बाद को तलवारें व खुकुरियाँ चलीं। पहाड़ी सेना ने रोहिलों के बीच कोहराम मचा दिया। रोहिलों के पैर उखड़ गये। बहुत-से रोहिले मारे गये; जो बाक़ी रहे, वे भाग गये। जो रोहिले कालीकुमाऊँ व कोशी तथा कोटे के रास्ते ऊपर को चढ़े थे, वे भी नजीबखाँ की हार की खबर सुनकर भाग गये। कहते हैं, जब नवाब अलीमहम्मदखाँ ने हार का कारण पूछा, तो लोगों ने कहा—"इस लड़ाई में ३ हाथ के आदमी ४ हाथ की तलवार चलाते थे!"

रोहिले पहाड़ में आने से घबड़ाते थे। वे ज़बरदस्ती यहाँ भेजे गये थे। पिछली बार जाड़ों में वे बहुत मरे। उनकी क़बरें अब भी यत्र-तत्र पाई जाती हैं। दिगोली में जो शूद्र हैं, उनमें से कुछ कहते हैं कि "वे रोहिलों की संतान हैं, उनके पूर्वजों ने यहीं शादी की थी और वे यहीं रह गये।"

रोहिलों की पिछली ज्यादतियों को याद कर कुमय्यें भी इस दूसरी लड़ाई में जी-खोलकर लड़े थे, ताकि रोहिले फिर कुमाऊँ में आकर तंग न करें। इसी से दूसरी बार कुमय्यों ने रोहिलों को मार भगाया।

रोहिलों ने कुमाऊँ ही नहीं, बल्कि कठेर में भी तबाही मचाई। वहाँ के हिंदुओं की नालिशें भी दिल्ली के दरबार में पेश हुईं। इधर राजा कल्याण-

चंद ने भी अपने राजदूत (वकील) पं० शिवराम पांडेजी को बादशाह महम्मदशाह के पास भेजा। बादशाह ने कुमाऊँ के वकील की सब बातें सुन खुद फ़रमाया कि वह स्वयं रोहिलखंड में फ़ौज ले जाकर अलीमहम्मदखाँ को सज़ा देकर हिंदुस्तान से निकलवा देंगे। इस हुक्म के होते ही बादशाही लश्कर ने कूच किया। पं० शिवराम पांडे वकील कुमाऊँ तथा शाही दरबार के रणपतराय अखबारनवीस ने कुमाऊँ के राजा कल्याणचंद को इस बात की सूचना दी। कुमाऊँ के राजा की बही (दिनचर्या) का एक फटा हुआ पहाड़ी काग़ज़ का पर्चा हमें मिला है, उसमें इस बादशाही लश्कर की बातें इस प्रकार लिखी हैं—

"शाके १६६७ वैशाख सुदी ५ को महम्मदशाह बादशाह गंगा उत्तरी रोहिला मारनासूं आया। फ़ौज दीवान क़मरुद्दीनखाँ, हाजरी मंसूरअलीखाँ। फौज जमाः—

घोड़ा	१५००००	खच्चर	५००००	रथ	२०००
हाथी	११००	गाय-भैंस	७००	घुड़वैइल (?)	३०
ऊँट	४००००	गधा	१५००	हाथी का रथ	२
आदमी	१३००००	भेड़-बकरा	५००००	पालकी	४००
फ़क़ीर मँगता	७५०००	तोप	८००	बहीली	५००००"
बेलदार	१०००००	गाड़ी	१००००		

इस फ़ाज का कुछ ठिकाना है ! यह फौज संभल में जमा हुई थी। बादशाह के संभल में आने की खबर सुनकर राजा कल्याणचंद ने भी दिल्ली के बादशाह के पास फ़रियाद लेकर जाने की ठानी। राजा के ख़ज़ाने में रुपया कम था। एक करोड़ की लूट तो रोहिले कर ले गये थे। तमाम मंदिर-महल, कचहरी तोड़ गये थे। तीन लाख गढ़वाल से ऋण लेकर राम-राम कर राजा ने रोहिलों को बिदा किया था। इसलिये राजा ने जागीश्वर मंदिर के ज़ेवर, जवाहरात तथा सोने-चाँदी के बर्तन सब ले लिये। सोने-चाँदी की अशर्फ़ियाँ व रुपये बनाये गये। राजा ने एक पत्र (तमस्सुक) चीज़ें उधार लेने का जागीश्वर मंदिर में रख दिया। छखाते के रास्ते देश को चल पड़े। गजुवाठिंगा में बक्सी शिवदेव जोशी भी मिल गये। उन्होंने भेंट उपस्थित की तथा रोहिलों से युद्ध में विजय पाने की ख़बर पूरी-पूरी सुनाई। राजा सब बातें सुनकर प्रसन्न हुए। मंत्रिपद की खिलअत शिवदेव जोशीजी को दी गई, और अपने साथ चलने को कहा। राजा कोटे के रास्ते काशीपुर पहुँचे। वहाँ राजा की हिफ़ाज़त तथा सम्मानपूर्वक अगवानी के लिये शाही वज़ीर

क़मरुद्दीनख़ाँ ने ५० घुड़सवार व ५० पैदल सिपाही भेज दिये। इन्होंने फ़ौजी ढंग से राजा का स्वागत किया। राजा प्रसन्न हो गये। तमाम रास्ते ये साथ रहे, और इन्हीं का चौकी-पहरा भी रहा। काशीपुर से फ़रीदनगर, उदमावाला व बिजना होकर मुरादाबाद के रुस्तमबाग़ में राजा का डेरा पहुँचा। इन जगहों में कठेड़िये राजपूतों के साथ भी मुलाक़ातें होती रहीं। वहाँ से महम्मदपुर में मुक़ाम कर अगले दिन राजा संभल पहुँचे। यहाँ उन्हें रणपतराय अख़बारनवीस मिले तथा दूसरे दिन सिकंदरपुर में राजा की अपने वकील शिवराम पांडे से भेंट हुई। सिकंदरपुर से राजा गुधरी होकर शहज़ादपुर गये, वहाँ से लहरिया सोत के किनारे पहुँचे। बादशाह का डेरा वहीं पर पड़ा था। राजा कल्याणचंद बक्सी शिवदेव जोशी को साथ लेकर मुलाक़ात को गये। बादशाह से मुलाक़ात वज़ीर क़मरुद्दीनख़ाँ के मार्फ़त हुई। नज़राने में ये चीज़ें थीं—अशर्फ़ियाँ, थालें सोने व चाँदी की, चँवर, निरबिसी, मुश्क, कुही, कोहला, बाज, जुर्रा, हाथी, घोड़े, खाल, खंजर, खुकुरी वग़ैरह। बादशाह ने सांत्वना दी। वहाँ से राजा वज़ीर के डेरे पर गये, तब अपने डेरे पर आये।

वज़ीरआज़म क़मरुद्दीनख़ाँ व नवाब मंसूरअलीख़ाँ ने शाही फ़ौज का मोरचा रोहिलों के खिलाफ़, बनगढ़ी के निकट बाँध रक्खा था। दूसरे दिन नवाब मंसूरअलीख़ाँ ने सरदार नवलराय को साथ लेकर रोहिलों का एक मोरचा तोड़ डाला। रात को ख़ूब तोपें छोड़ी गईं। पर ये ख़ाली डराने को थीं। इनसे काई मरा नहीं। दूसरे दिन घोर युद्ध हुआ। अलीमहम्मदख़ाँ मय पैदेख़ाँ, दूँदेख़ाँ, फ़तहख़ाँ तथा जयसिंहराय के साथ पकड़े गये। उनको मुल्क से निकल जाने का बादशाही हुक्म हुआ। जहाँ पर बादशाही फ़ौज उतरी थी, वहाँ लहरिया सोत नदी थी, उसके पानी से तमाम लश्कर का काम चल गया। इस वास्ते बादशाह ने उस सोत को यह खिताब दिया — "यार वफ़ादार दल-थम्मन सोत।"

बाद लश्कर बिसौली पहुँचा। वहाँ पर राजा ने वज़ीर के बेटे निज़ामुद्दौला तथा मीर मन्नू से भी मुलाक़ातकी। राजा काबिलराय से मिलकर राजा गढ़मुक्तेश्वर घाट पर गये, यहाँ बादशाह से दूसरी बार भेंट हुई। बादशाह ने नज़र लेकर राजा को खिलअत व फ़रमान तराई-भावर (माल) की बहाली व दखल का देकर बिदा किया। इसके पश्चात् राजा वज़ीर क़मरुद्दीनख़ाँ से भी बिदा हुए। कठेड़ के राजा व ठाकुरों को भी उनका प्रांत वापस हो गया। नवाब मंसूरअलीख़ाँ का डेरा गंगा-पार था। राजा ने उनसे भेंट न की,

क्योंकि नवाब क़मरुद्दीन तथा नवाब मंसूरअलीखाँ के बीच अनबन थी। कुछ चीज़ें अपने राजदूत पं० हरिहर पंतजी के मार्फ़त भेज दीं। इस कारण नवाब मंसूरअलीखाँ नाराज़ हो गये, और कहने लगे कि राजा कुमाऊँ वज़ीर से मिले, पर उनसे न मिले ! राजा के दिल में यह शुभा था कि उनसे मिलने से कहीं वज़ीर नाराज़ न हो जायँ। बादशाह दिल्ली को लौटे। राजा कुमाऊँ अपने राज्य को लौट आये।

भावर (माल) में जब राजा लौटकर आये, तो क़ब्ज़ा अपना फ़ौरन् कर लिया। वज़ीर, बक्सी, दीवान और फ़ौज के सरदारों को बहाल किया। पिछली जागीरें बहाल की गईं, नई और दी गईं। श्रीशिवदेव जोशीजी को भावर तराई (माल) का इन्तज़ाम सौंपा। राजा सब प्रबंध करके अल्मोड़ा को आए। जब राजा अल्मोड़ा आये, तो उन दिनों सितारागढ़वाले साहू महाराज का पत्र लेकर श्रीशिवराम पंडित राजा के पास आये थे। यही पंडित बालाजी सवाई बाजीराव, मुख्य प्रधान मल्हारराव होलकर, अमृतराव व शंकरराव आदि प्रान्ताधीशों के पत्र लेकर आये थे। इन सब महाराष्ट्र नेताओं का उद्देश्य मुग़ल-साम्राज्य के विरुद्ध हिन्दू राज्यों का संगठन करने का था। राजा ने इन सबका उत्तर दिया। मालूम होता है, जवाब मरहठों के विरुद्ध था। राजा का उद्देश्य यह था कि कुमाऊँ का संबंध दिल्ली के बादशाहों से बहुत दिनों से रहा है, अतः वे उनके विरुद्ध नहीं लड़ सकते।

जब नवाब मंसूरअलीखाँ दिल्ली से अपने सूबे अवध में पहुँचे, तो जाते ही उसने सरबना का परगना मालगुज़ारी बक़ाया होने के बहाने से अपने सूबे के अन्दर मिला लिया। असली मतलब उसका था कि राजा कुमाऊँ ने उससे गढ़मुक्तेश्वर में मुलाक़ात न कर उसका अपमान किया है। इसीलिये ग़ुस्से में आकर उसने सरबना का परगना छीन लिया। श्रीशिवदेव जोशीजी ने बहुत लिखा-पढ़ी की, किन्तु नवाब अवध ने एक न मानी ; बल्कि श्रीतेजू गौड़ चकलेदार को ताक़ीद की कि वह सरबना को कदापि न छोड़े। अतः श्री-शिवदेव जोशीज: ने श्रीतेजू गौड़ से लड़ाई ठानी। श्रीशिवदेव जोशी घायल होकर पकड़े गये। एक वर्ष तक शिवदेव जोशीजी फ़ैज़ाबाद (किताब में शहर बंगला लिखा है) में क़ैद रहे। जब बादशोह के पास इसकी फ़रियाद की गई, तो वहाँ फ़रमान "चश्मनुमाई" का नवाव के नाम आया। यानी नवाब अवध को ताक़ीद की गई कि वह !सरबना का परगना वापस कर दें, और शिवदेव जोशी को .क़ैद से मुक्त कर दें। तब नवाब ने शिवदेवजी को छोड़ा, और श्रीतेजू गौड़ चकलेदार को लिखा कि सरबना में दख़ल न दें। शिवदेव जोशीजी

छूटकर माल में आये। वहाँ उन्होंने एक क़िला रुद्रपुर में दूसरा काशीपुर में तैयार करवाया। दोनों क़िलों में फ़ौज व अफ़सर रक्खे। बिलहरी, सरबना व धनेर परगने का ज़मींदार बड़वायक क़ौम को राजा चंद की ओर से नियुक्त किया, और भावर, काली कुमाऊँ का ज़मींदारा लूल क़ौम (जोल्याल ?) को मिला था, उनकी सनदें फिर से बहाल कीं। और आबादी तथा प्रान्त की रक्षा में उनको लगाया। चोर व डाकुओं से रक्षित करने को हेड़ियों व मेवातियों को नये सिरे से भावर में बसाया। उनको जागीरें दिलाईं व उनका दस्तूर मुक़र्रर किया। अब तक हेड़ियों का टाँडा प्रसिद्ध है। इस प्रबंध के पश्चात् श्रीशिवदेव जोशीजी अल्मोड़ा आये। राजा को सब बातों से सूचित किया। राजा ने पहाड़ व माल में कई गाँव थात के नाम से इनको दिये, तथा काशीपुर व रुद्रपुर का ज़मींदारा भी शिवदेव जोशीजी को दिया।

इस बीच राजा कल्याणचंद की आँखों में कुछ बीमारी हुई। कहते हैं कि राजा की दोनों आँखें बाहर को लटक पड़ीं। उससे राजा बड़े दुःखी हुए। राजा ने सोचा कि उसने चंद खानदान के बहुत रौतेले व गुसाईं मरवा डाले, कई कर्मचारी व ब्राह्मणों की आँखें निकलवाईं, बहुतों की जानें लीं, बहुतों की सम्पत्ति छीन ली। इसी कारण यह दुःख उनको अन्तावस्था में हुआ है। कुँवर दीपचंद उनके कुछ मंदबुद्धि थे, इसलिये डरकर कि कहीं उसके खिलाफ़ कोई 'चाला' (षड्यंत्र) न कर डाले, राजा कल्याणचंद ने शिवदेव जोशी को बुलाकर उनकी गोद में कुँवर दीपचंद को रक्खा और कहा—"मैंने अपना राज्य व बेटा तुम्हारे सिपुर्द किया, चाहे तुम राज्य को खाओ या मेरे बेटे को खिलाओ। यदि मेरे बेटे को राजा बनाओगे, तो धर्मवचन दो।" इस पर कहते हैं कि शिवदेव जोशीजी ने क़सम खाई कि "महाराज, आपके कुँवर व संतान को मैं व मेरी संतान राज्य पर स्थित रक्खेंगे, जो कोई इसका विरोध करेगा, उसको दंड देंगे।" लोगों ने कहा, राजा ने ब्राह्मणों की आँखें निकलवाई थीं, इससे वह भी अंधे हो गये। सन् १७४७ में राजा ने राज्य-काज कुँवर दीपचंद को सौंपा। किन्तु कुँवर के अल्पवयस्क होने से पं० शिवदेव जोशीजी को राज्य का संरक्षक (वली) बनाया।

इस राजा को बिनसर में रहना बहुत पसन्द था। गर्मियों में यह वहाँ चले जाते थे। वहाँ पर इन्होंने महल तथा मंदिर भी बनवाया था।

अत्याचार व ग़फ़लत में तथा भोग-विलास में दिन बिताकर राजा कल्याणचंद को पश्चात्ताप की सूझी। उन्होंने पुजारियों की शरण ली, और

नाना प्रकार से देवताओं को प्रसन्न कर अपने पुराकृत पापों से मुक्त होना चाहा। उनके समय के इतने ताम्रपत्र अब तक ज्ञात हैं—

१. सन् १७३१ जागीश्वर मंदिर को गूँठ।
२. ,, ,, ,, ,,
३. ,, ,, ,, ,,
४. ,, वृद्धकेदार ,, ,,
५. ,, गणेश-मंदिर, अल्मोड़ा ,,
६. ,, घटोत्कच्छ-मंदिर, काली कुमाऊँ।
७. १७३२ पं० गंगादत्त जोशी के कुटुम्ब के नाम।
८. १७३३ बालेश्वर-मंदिर, चंपावत।
९. ,, पं० कुलोमणि पांडे के कुटुम्ब के नाम।
१०. ,, पं० विष्णुदत्त जोशी ,, ,,
११. १७३४ नागनाथ-मंदिर, चंपावत।
१२. ,, क्षेत्रपाल-मंदिर, बौरारौ।
१३. ,, भुवनेश्वर-मंदिर, गंगोली।
१४. १७३५ पुन्यागिरि तल्लादेश।
१५. १७३६ घटोत्कच्छ-मंदिर, काली कुमाऊँ।
१६. १७३७ शीतलादेवी-मंदिर, बौरारौ।
१७. १७४० कालिका-शीतला-मंदिर, द्वारा।
१८. १७४४ बदरीनाथ-मंदिर, गढ़वाल।
१९. १७४५ केदारनाथ-मंदिर, ,, ।
२०. १७४६ श्रीदेवीदत्त चौधरी के खानदान के नाम।

इस राजा ने बिनसर महादेव तथा नायल पोखर के पास अंबिकादेवी के मंदिर बनवाए और उनकी प्रतिष्ठा कराई।

---

८३. (५७) राजा दीपचंद

[सन् १७४८—१७७७]

सन् १७४८ के आरंभ में ही राजा कल्याणचंद स्वर्ग को सिधारे। उसी साल दिल्ली के बादशाह महम्मदशाह तथा आँवले के नवाब अलीमहम्मदख़ाँ भी संसार से चल बसे। गद्दी पर बैठते समय राजा दीपचंद की अवस्था बहुत कम थी। इसलिये राजा कल्याणचंद ने मरती बार फिर श्रीशिवदेव जोशीजी

को बुलाया, और दीपचंद को उनके सिपुर्द किया, और सारे अधिकार राज्यकाज के श्रीशिवदेव जोशीजी को दिये। शिवदेवजी जोशी ने उस सोने-चाँदी के बदले, जो राजा कल्याणचंद ने दिल्ली जाते समय लिया था, जागीश्वर-मंदिर को आठ गाँव दिये। और जिन लोगों की ज़मीनें कल्याणचंद ने छीनी थीं, वे फिर वापस की गईं। उन्होंने पं० जयकृष्ण जोशी को अल्मोड़ा में अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया, और आप देश के इन्तज़ाम को गये। वहाँ आप रुद्रपुर में रहे, हरिरामजी को काशीपुर का लाट बनाया गया, पर जब हरिरामजी ने अपना कर्तव्य पालन नहीं किया, तो बाजपुर के सनाढ्य ब्राह्मण श्रीशिरोमणिदास को काशीपुर का नायब लाट बनाया।

इस समय बादशाह दिल्ली ने चारों ओर पैग़ाम भेजे कि मरहठों के खिलाफ़ लड़ाई में साथ दें। अतः सन् १७६१ में पानीपत की तीसरी लड़ाई में ४००० कुमावनी सेना सेनापति हरिराम तथा उप-सेनापति बीरबल नेगी के आधिपत्य में भेजी गई। पानीपत में कुमय्यों को रोहिलखंड के सेनापति हाफ़िज़ रहमतखाँ के साथ मरहटों के खिलाफ़ लड़ना पड़ा। इसी हाफ़िज़ रहमतखाँ ने कुमाऊँ पर सन् १७४३-४४ में चढ़ाई की थी। पर पानीपत में दोनों कुमय्ये व रोहिले साथ-साथ लड़े। इस युद्ध में सहारनपुर व नजीबाबाद के नवाब नजीबुद्दौला भी शामिल थे। अतः कुछ दिनों तक हर्षदेवजी (शिवदेवजी के पुत्र) नजीबाबाद के शासक रहे, जब कि नवाब पानीपत की लड़ाई में थे। ५०० सिपाहियों को लेकर इन्होंने नजीबाबाद तथा उसके शाही महल की रक्षा की। नवाब के लौटने पर खिलअत पाकर पं० हर्षदेव जोशीजी अपने सिपाहियों के साथ अल्मोड़ा आये।

पानीपत की लड़ाई में मरहठों का एक घुड़सवार-दल रहमतखाँ के बेटे इनायतखाँ के ऊपर दौड़ा। उस वक़्त कुमाऊँ के सरदार हरिराम जोशी तथा बीरबल नेगी ने मरहठों से मोर्चा लिया। पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं—"कुमय्यें 'बान ?' नाम के हथियार से लड़े। उन बानों के लगने से मरहठों का ब्यूह तितर-बितर हो गया और ५-६ सौ सिपाही मारे गये। इस हथियार की आवाज़ जो मानिंद गरजने शेर व बादल के होती थी, बादशाह के सुनने में आई। पूछने पर लोगों ने बताया कि कुमाऊँ के सरदार लड़ते हैं। वह पहाड़ी हथियार चलाते हैं। बादशाह बड़े प्रसन्न हुए।" अठकिन्सन साहब कहते हैं कि पहाड़ी लोग बहादुरी से लड़े, विशेषकर Rockets & Hand-grenades की लड़ाई में उन्होंने अच्छा कौशल दिखाया।

सन् १७६२ में लड़ाई की समाप्ति पर बादशाह दिल्ली ने कुमय्यें नेताओं से

मिलने की इच्छा प्रकट की, पर पुरानी दुश्मनी के कारण रहमतखाँ नहीं चाहता था कि यह मुलाक़ात हो। उसने पहले ही उनको अपनी पगड़ियाँ देकर लौटा दिया। साथ ही एक ज़रीदार पगड़ी व ख़िलअत राजा दीपचंद के लिये भेज दी। बादशाह के पूछने पर यह कह दिया कि पहाड़ी नेता गरमी के कारण जल्दी चले गये हैं। बादशाह ने लूट के माल में से मकना नाम का हाथी, ज़ेवरात, पारचे तथा अन्य बहुत-सी चीज़ें कुमाऊँ के राजा के पास भेजीं।

राजा दीपचंद बड़े ही मिलनसार तथा दयालु-प्रकृति के नृपति थे। फ़्रैंसिस हैमिल्टन ने नैपाल के इतिहास में लिखा है कि "राजा दीपचंद गूँगा था। रानियाँ व अफ़सर सब काम करते थे। रानी के षड्यंत्र से मोहनसिंह सर्वेसर्वा (Dictator) हो गये।" कुछ काग़ज़ातों में ऐसा लिखा है कि राजा दीपचंद मांस के पिंड की तरह थे, पर वह हरएक से बड़े प्रेम से मिलते थे।

हर एक आदमी जो उनसे मिलता था, उनके बर्ताव से प्रसन्न रहता था। बड़ी ख़ातिर करनेवाले थे। "पर वह बिलकुल ही पंडे-पुजारियों के हाथ में थे। राज्य की बागडोर पहले ही से श्रीशिवदेव जोशी तथा हर्षदेव जोशी ने अपने हाथों में ले रक्खी थी। जोशियों में यह चाल थी कि उन्होंने सब ऊँचे-ऊँचे पद मौरूसी बना रक्खे थे, और जहाँ तक हो सकता था, राजतंत्र की सब शक्तियाँ अपने हाथों में रखते थे। पंडे-पुजारियों व दीवान-मुसद्दियों ने राजा को .खूब लूटा। राजा माँगने पर 'ना' कहना तो जानते ही न थे। अतएव लोगों ने .खूब रुपये कमाये व जागीरें लीं।" (अठकिन्सन)

३६ जागीरों की सूची टूल साहब कमिश्नर कुमाऊँ ने बनाई है, जो राजा दीपचंद के समय में सन् १७४६ से १७७४ तक दी गई—

१. सन् १७४६ बदरीनाथ-मंदिर।
२. ,, १७५२ केदारनाथ ,,
३. ,, ,, जागीश्वर ,,
४. ,, ,, ,, ,,
५. ,, १७५३ बागीश्वर ,,
६. ,, १७५४ विष्णुदत्त जोशी के ख़ानदान के नाम।
७. ,, १७५५ बदरीनाथ-मंदिर।
८. ,, ,, बूढ़ा जागीश्वर-मंदिर।
९. ,, ,, गणानाथ-मंदिर।
१०. ,, १७५६ बेनीराम उप्रेती के ख़ानदान के नाम।
११. ,, बूढ़ा जागीश्वर-मंदिर।

१२. सन् १७५७ नारायण-मंदिर, लखनपुर।
१३. ,, ,, जागीश्वर-मंदिर।
१४. ,, ,, पं० विष्णुदत्त जोशी के खानदान के नाम।
१५. ,, १७५८ जागीश्वर-मंदिर।
१६. ,, ,, पुण्यागिरि-मंदिर।
१७. ,, ,, पीनाथ-मंदिर।
१८. ,, १७५६ जागीश्वर-मंदिर।
१६. ,, ,, नागनाथ-मंदिर।
२०. ,, ,, कालिकादेवी, गंगोली।
२१. ,, १७६० केदारनाथ-मंदिर।
२२. ,, ,, ऋषेश्वर-मंदिर, सालम।
२३. ,, ,, पं० देवीदत्त तेवाड़ी के खानदान के नाम।
२४. ,, १७६३ पं० जयराम के कुटुम्ब के नाम।
२५. ,, १७६४ कालिका शीतला-मंदिर, द्वारा।
२६. ,, १७६५ जागीश्वर-मदिर।
२७. ,, १७६६ ,, ,,।
२८. ,, १७६७ भीमेश्वर-मंदिर, भीमताल।
२६. ,, १७६८ पं० गंगादत्त जोशी के खानदान के नाम।
३०. ,, १७६६ पं० कृष्णानंद जोशी के ,, ,,
३१. ,, १७७० पं० राधापति भंडारी के ,, ,,
३२. ,, १७७१ पं० रेवाधर जोशी के ,, ,,
३३. ,, १७७२ पं० शिवशंकर तेवाड़ी के ,, ,,
३४. ,, ,, कालिका-मंदिर, गंगोली ,, ,,
३५. ,, १७७३ भलनेश्वर-मंदिर, बौरारौ।
३६. ,, १७७४ कमलापति उप्रेती के खानदान के नाम।

इतनी जागीरें किसी भी राजा ने नहीं दीं। जिसने राजा को प्रसन्न किया, उसे ही जागीर दे दी। पहलेपहल राजा के पास कुछ कुशाग्र-बुद्धि मंत्री थे, जिनकी अच्छी सलाह से वह काम करते थे; पर बाद को जब धूर्त व स्वार्थी सलाहकार आये, तो राजा असहाय हो गये। वह ख़ुद राज्य-काज में दक्ष न थे। न उन्हें मनुष्यों के भले-बुरे होने की पहचान थी। सरल प्रकृति के सज्जन पुरुष थे। जिसने जो कह दिया, उसे मान लेते थे।

सन् १७६२ में मुल्क में अमन-चैन थी। इन दिनों माल की आबादी ज़्यादा

हो गई थी। काशीपुर, रुद्रपुर व बाजपुर में क़िले बनाये गये। उनमें फ़ौज रहने लगी थी। हाफ़िज़ रहमतखाँ रामपुर के नवाब के साथ पानीपत की लड़ाई से राजा दीपचंद का रिश्ता-वास्ता बदल गया था। अब कुमाऊँ के राजा से वह दुश्मनी न रखते थे। पानीपत में साथ-साथ लड़ने से शत्रुता के बदले मैत्री हो गई थी। नजीबाबाद के नवाब नजीबखाँ भी मिहरबान थे; क्योंकि यहाँ पर हर्षदेव जोशीजी ने ५०० सेना लेकर उनके महल व बाल-बच्चों की खबरदारी की थी। बल्कि नवाब से यहाँ तक धर्म-वचन हुआ था कि यदि पानीपत की लड़ाई में बादशाह की हार हुई व मरहठे जीते, तो नजीबखाँ के बाल-बच्चों को कुशल-पूर्वक कुमाऊँ में पहुँचाया जायगा। मुरादाबाद के नवाब दूंदेखाँ से भी राह-रस्म अच्छी थी। श्रीशिवदेव जोशीजी माल (तराई भावर) में बराबर दौरे करते थे। देख-भाल के साथ-साथ मुक़द्दमों के फ़ैसले भी करते थे। सिपाही फ़ौज में दूर-दूर मुल्क के नियुक्त थे। यथा—(१) जंबू के जंबाल व डोंगरे, (२) नगरकोट के नगरकोटिया, (३) गुलेर के गुलेरिया, (४) बढ़ापुर के ठाकुर। इस कारण रोहिलों की धूर्तता बहुत कम हो गई थी।

तराई में इस अमन-चैन व आराम को देखकर बादशाही रैयत व लखनऊ के सूबे के भीतर के लोग भी भागकर यहाँ आ गये थे। नादिरशाह की गर्दी, मरहठों की लूट-धाड़ व बादशाहों की बेगार तथा जज़िया-टैक्स से बचने के लिये भी बहुत-से लोग यहाँ आ गये थे। खेती करनेवाले लोग उन दिनों थारू, बुक्सा, बड़वायक पहले से थे। नये ठाकुर, कठेरिया, सुरकी, चौहान, जाट, अहीर, घोषी, तगा, कंबोह, खागी, लोधा, बनजारा, गूजर वग़ैरह हिन्दूवर्ग के थे। मुसलमानों में तुरक, पठान, रंघड़, मुल्लाज़ादे, राई वग़ैरह थे। इन लोगों के ऊपर राजा की ओर से नक़दी मुक़र्रर न थी, सिर्फ़ ग़ल्ला छहाड़ा (छठा हिस्सा) फ़सल पीछे लिया जाता था। जब फ़सल मारी जाती थी, तो राजा अपना हिस्सा यानी भाग माफ़ कर देता था। इस काम के वास्ते काशीपुर-इलाक़े में साहूकार थे व रुद्रपुर की तरफ़ लखपत गुसाइयों के सात मठ थे। उनके गुमाश्ते राजा का भाग आसामियों से लेकर उसकी क़ीमत नक़द रुपया राजा के खज़ाने में दाखिल करते थे। तंगी के वक्त आसामियों को मदद देते थे। इस कारण इस बीमारी की जगह में भी बहुत-से लोग आकर बस गये थे।

तराई-भावर (माल) में काशीपुर की जलवायु अन्य स्थानों के बनिस्बत अच्छी थी, इसी कारण शिवदेव जोशीजी प्रायः १२ महीने काशीपुर ही में रहते

थे। कभी-कभी वह अल्मोड़ा जाते थे। चौमासे में यहाँ की आबहवा खराब हो जाती है। मच्छर बहुत तंग करते हैं। इससे बहुत बीमारियाँ हो जाती हैं, अतः कई अफ़सर पहाड़ पर चले आते थे। हरिराम जोशीजी श्यामखेत व भीमताल के बीच डाँडे में रहते थे। उसे अब तक हरिराम का धुंगा कहते हैं।

---

८४. फरत्यालों का ग़दर

महरों के हाथ में बहुत दिनों तक राज्य-काज की बागडोर रही। इससे फरत्यालों को असन्तोष हुआ। उन्होंने भी राज्य-प्रबंध में हिस्सा प्राप्त करने की ठानी; क्योंकि राजा तो उसी के हाथ में रहता था, जो किसी-न-किसी तरह प्रधान मंत्री के पद को प्राप्त कर ले। फरत्यालों ने कुँवर अमरसिंह रौतेला को गद्दी पर बैठाना चाहा। शिवदेव जोशीजी ने इस राजविद्रोह को बड़ी बेरहमी के साथ दबा दिया। बहुत लोग मारे गये और अमरसिंह भाग गये। पं० जयकृष्णजी जोशी किसी बात में शिवदेवजी से नाराज़ हो गये। वह महर-दल के होकर भी फरत्यालों से मिल गये, और गढ़वाल के राजा प्रदीप्तशाह के पास जाकर उन्हें कुमाऊँ पर चढ़ाई करने के लिये उभाड़ा। राजा प्रदीप्तशाह जूनियागढ़ी में आये; जो गढ़वाली राजा के अधिकार में थी। इधर से राजा दीपचंद तथा शिवदेव जोशीजी ने पल्ला दोरा के नैथाना-नामक स्थान में डेरा डाला। कुमाऊँ की फ़ौज ने जसपुर पर क़ब्ज़ा किया, और इधर राजा दीपचंद ने गढ़वाल के राजा से कुमाऊँ पर अकारण धावा बोलने के बाबत राजदूत यानी वकील भेजकर पूछा। गढ़वाल के राजा ने इस बात का उत्तर लिखकर अपने वकील श्रीधरणीधर के मार्फ़त पत्र भेजा कि राजा कल्याणचंद उसका धर्मभाई था। अतः राजा दीपचंद उसका भतीजा हुआ। और लिखाः—

(१) राजा दीपचंद उनको चाचा मानकर पत्रों में जयदेव लिखे, (२) रामगंगा को गढ़वाल व कुमाऊँ के बीच सरहद माने, (३) गढ़वाल का दबाया मुल्क लौटा दे, तो उत्तम हो, अन्यथा गढ़वाल का राजा सारे कुमाऊँ पर अपना अधिकार कर लेगा।

कुमाऊँ की ओर से लिखा गया कि अब से दोनों राजाओं के बीच पत्र-व्यवहार में 'जयदेव' शब्द लिखा जायगा। गढ़वाल का जितना मुल्क दबा है, वह वापस किया जायगा; किन्तु रामगंगा सरहद कदापि न होगी।

गढ़वाल के पं० धरणीधर ओझा वकील ने भी ये बातें स्वीकार कीं। इस वकील को बहुत-सा सामान राजा ने दिया था, परन्तु उसने न लिया। जब गढ़-राजा से वकील ने सब बातें कहीं, तो उसे शक हुआ कि कहीं वकील कुमय्याँ राजा से मिल तो नहीं गया है, क्योंकि वकील ने कुमाऊँवालों की बातों को सही बताया। फिर भी गढ़वाली राजा ने अपने सलाहकारों के कहने से कुमाऊँ पर चढ़ाई कर दी। तामाढौन के पास घोर युद्ध हुआ। गढ़वालियों के चार हज़ार आदमी हाथ आये और बहुत-से सैनिक पकड़े गये, जिनमें युद्ध में घायल पं० जयकृष्ण जोशीजी भी थे। गढ़वाल के राजा के सेनापति सरदार नरपतसिंह गुलेरिया मारे गये। उनके लगभग डेढ़ हज़ार सिपाही युद्धक्षेत्र में सदा के लिये धराशायी हो गए। राजा दीपचंद के लश्कर में हुक्म जारी हुआ कि जो सिपाही गढ़वालियों का सिर काट लावेगा, उसको फ़ी सिर एक अशरफ़ी इनाम में मिलेगी। इस प्रकार बहुत-सी अशरफियाँ बाँटी गईं। बाद को सिपाही असैनिक तथा क़ुलियों को भी मारकर लाने लगे, तब वह आज्ञा रद्द की गई। गढ़वाल के राजा घबड़ाये और भागे। शिवदेवजी ने भागते राजा का पीछा न किया, इससे बचकर राजा श्रीनगर पहुँचे। इस हार के कारण कहते हैं कि गढ़वाली राजा ने लज्जित होकर 'नेगा, कलँगी, मोती' पहनना छोड़ दिया। और प्रण किया कि जब कुमाऊँ राज्य को गढ़वाल में शामिल करेंगे, तभी ज़ेवर पहनेंगे, और कुमाऊँ के राजा को राजनीतिक पत्र लिखा कि शिवदेव जोशी ने बड़ी बहादुरी व धर्म का काम किया, जो राजा का पीछा न किया। धर्मयुद्ध के नियमों का पालन किया। कुमाऊँ के राजा व वज़ीरों को ये चापलूसी की बातें पसंद न आईं, उन्होंने लिख भेजा कि आपने पत्र तो उचित लिखा, पर जो 'नेगा, कलँगी, मोती न पहनने की प्रतिज्ञा की है, वह उचित ज्ञात नहीं होती। राजा के आभूषणों को पहनकर तब मेल-मिलाप की बातें करनी उचित हैं। राजा प्रदीप्तशाह सब बातें समझ गये। उन्होंने फिर पत्र लिखा कि वह राजा दीपचंद से पगड़ी बदलना चाहते हैं। तब वज़ीर शिवदेव जोशीजी ने अपने दो बेटे पं० जयकृष्ण जोशी तथा पं० हरिराम जोशीजी को राजा दीपचंद के 'नेगा, कलँगी, मोती, पगड़ी' आदि भेजे। राजा प्रदीप्तशाह ने वे पहने और अपनी पगड़ी इत्यादि भी राजा दीपचंद के वास्ते भेजी। इस प्रकार पगड़ी बदलकर आपस में भाईचारा स्थापित हो गया। बाद राजा प्रदीप्तशाह ने पं० शिवदेव जोशी को लिखा कि विना उनके साथ पगड़ी बदले उनको तृप्ति न होगी, अतः अपनी पगड़ी उनके लिये भेजी। शिवदेवजी ने भी एक पगड़ी भेजी।

इस प्रकार दोनों राजाओं के बीच संधि हो गई। कुमाऊँ व गढ़वाल की प्रजाएँ कुछ अरसे तक आराम से रहीं। झिजाड़ के श्रीकाँतू जोशीजी की आँखें राजा कल्याणचंद ने निकलवा दी थीं और उनका सर्वस्व हरण कर लिया था। इस डर से उनके बेटे श्रीजयानंद जोशीजी कुमाऊँ से भागकर गढ़वाल के राजा के पास शरणागत थे। इसयुद्ध में वह भी थे, बल्कि ऐसा ज्ञात होता है कि इनकी व जयकृष्ण जोशीजी की सम्मति से ही राजा प्रदीप्तशाह ने कुमाऊँ पर चढ़ाई की थी। संधि होने से उन्होंने भी राजा प्रदीप्तशाह से सिफ़ारिश कराकर स्वदेश को लौटना चाहा। शिवदेव जोशीजी ने भी उनकी अर्ज़ी मंज़ूर की, और उन्हें अल्मोड़ा आने दिया।

गढ़वाल के राजा के साथ संधि तो स्थापित हो गई, पर फिर घरेलू झगड़े शुरू हुए, जिनमें मुख्य-मुख्य कर्मचारी मारे गये, और सन् १७९० में गोरखों को कुमाऊँ राज्य पर चढ़ाई कर उस राज्य को फ़तह करने का मौक़ा मिला। श्रीशिवदेव जोशी तथा श्रीहरिराम जोशी की आपस में अनबन थी। शिवदेवजी ने इनको काशीपुर का लाट बनाया था, पर इन्होंने कर्तव्य-पालन न किया, अतः उस पद से हटाये गये। वह इस बात को न भूले थे। इस बीच इस तकरार को बढ़ाने की एक घटना और हो गई। दो जोशी नवयुवकों (१) शिवदेवजी के पुत्र जयकृष्ण जोशी, (२) हरिराम जोशी के पुत्र जयराम जोशी में आपस में कुछ अनबन बढ़ते-बढ़ते भारी वैमनस्य में परिवर्तित हो गई। यह आग लड़कों से उठकर बड़ों में पहुँच गई। साधारण कौटुम्बिक कलह राष्ट्रीय संग्राम में परिवर्तित हो गया। तमाम प्रजा व कर्मचारी-गण भी दो दलों में बँट गये। हरिराम जोशीजी ने शिवदेव जोशी का मंत्रिपद व बक्सीगीरी कहते हैं, .खुद लेनी चाही। राजा दीपचंद को अपनी ओर बताया। उन्होंने कुछ कुमय्यें व कुछ ठाकुर लोगों को नौकर रख फ़ौज एकत्र की। और शिवदेव जोशी को ललकारा कि या तो वह अपने पदों को छोड़ें या युद्ध करें। कहते हैं कि इन दो जोशियों के बीच लगातार सात लड़ाइयाँ पहाड़ व 'माल' तराई-भावर में हुई। दो लड़ाइयाँ हरिराम जोशी जीते और पाँच लड़ाइयों में शिवदेव जोशीजी ने विजय पाई। आख़िरी लड़ाई जो बाँसुलीसेरा में गंगास व दोसाँधगाड़ के संगम में हुई, उसमें हरिराम जोशी का पुत्र जयराम जोशी, जो इस तकरार की जड़ में था, मारा गया। १५०० के लगभग सेना खेत रही। जो फ़ौज बाक़ी रही थी, वह तितर-बितर हो गई, फिर इकट्ठी न हुई। हरिराम जोशीजी लाचार होकर शिवदेव जोशी जी के पास आये, और क्षमा चाही। शिवदेवजी ने कहा कि विना पंचायत के यह मामला तय न होगा।

दोनों जोशी रुद्रपुर के इलाक़े में गये, और हाफ़िज़ रहमतखाँ नवाब रामपुर को पंच नियुक्त किया। नवाब ने फ़ैसला शिवदेव जोशीजी के पक्ष में किया, और हरिराम जोशीजी को नवाब ने मुचलका लिखने को बाध्य किया कि भविष्य में वह शिवदेव जोशीजी के अधीन रहेंगे, और कोई झगड़ा या विद्रोह खड़ा न करेंगे। पश्चात् शिवदेव जोशीजी ने हरिराम जोशीजी को रुद्रपुर की सरदारी में फिर बहाल किया, तब से हरिराम जोशीजी ने सच्ची राजभक्ति से सब काम चलाया।

दिल्ली में महम्मदशाह बादशाह के मरने पर अहमदशाह बादशाह गद्दी पर बैठे। इस समय रोहिलों ने 'माल' का कुछ हिस्सा दबाया। शिवदेव जोशीजी ने सेना ले जाकर उसे छुड़ाया। नवाब के फ़ैसले तथा इस जीत से शिवदेव जोशीजी फिर कुमाऊँ राज्य के सर्वेसर्वा हो गये, पर उनके शत्रु भी बढ़ते गये। उन्होंने भी निर्दयता-पूर्वक घोर दमन किया, जिससे उनके शत्रुओं की संख्या और भी बढ़ गई।

शिवदेव जोशीजी ने नजीबाबाद, बरेली, मुरादाबाद के नवाबों तथा बेशहर, सिरमौर, गढ़वाल, डोटी, बजांग, जुमला प्रभृति प्रदेशों के राजाओं के साथ संधि व मेल-मिलाप की बातें कर कुमाऊँ के राज्य में कोई भी उपद्रव न होने दिया।

पर इनकी घोर दमन-नीति के कारण या फरत्यालों व महरों की धड़बंदी के कारण घरेलू झगड़े फिर तेज़ी के साथ आरंभ हुए।

अठकिन्सन साहब कहते हैं—"श्रीशिवदेव जोशी के विरुद्ध षड्यंत्र (चाला) रचनेवाले कालीकुमाऊँ के फरत्याल थे, जिनका मुख्य नेता चौकी गाँव का श्रीरायमल्ल बूढ़ा था। उसने अपने मित्र को काशीपुर में पत्र लिखा कि शिवदेव जोशीजी को मार डालना चाहिए। शिवदेव जोशीजी के हाथ वह पत्र आया। इस कारण वह अल्मोड़ा आये। वहाँ इनको इस साज़िश में दन्या के जोशी भी मालूम हुए।"

पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं—"दन्या के जोशियों के अधिकार में किसी-किसी परगने की तहसील थी। उन्होंने तहसील का रुपया अपने-अपने नीचे दबा-लिया। उसमें से फरत्याल के धड़े को कुछ देते रहे, ताकि वक़्त पर काम आवेंगे। इस कारण सेना की तलब न मिली। दरबार में सेना का घेरा पड़ने लगा, तो शिवदेवजी ने उन दन्या के अहलकारों पर सरकारी रुपया जमा करने की ताक़ीदें भेजीं। वे नाराज़ हुए। उन्होंने फरत्याल के धड़े को शिवदेव जोशी के ऊपर 'चाला' (षड्यंत्र) करने को भड़काया। फरत्याल के धड़े में श्री-

रायमल्ल बोरा कालीकुमाऊँ में चौकी गाँव का बूढ़ा (पधान ?) था। उसने एक चिट्ठी काशीपुर को अपने साथी को लिखी कि शिवदेव जोशी पर 'चाला' करो। काशीपुर में उस मनुष्य ने चिट्ठी पढ़कर उसके टुकड़े यत्र-तत्र फेंक दिये। उनमें से एक टुकड़ा जिसमें 'क' लिखा था, महरा-धड़े के एक पाँडे ने पाया। और लिखनेवाले के हरूफ़ पहचानकर शिवदेव जोशीजी से कहा कि वह किस नींद में सोये हैं ? रायमल्ल बोरा की 'क' आय पहुँची है। बाद सब टुकड़े चिट्ठी के पाये गये, उनको जोड़कर चिट्ठी का पूरा वृत्तान्त अपने ऊपर 'चाला' रचे जाने का शिवदेवजी, ने पढ़ा, और वह अल्मोड़ा को आये।

"शिवदेव जोशीजी अल्मोड़ा आकर रात को (जाज़रूर) टट्टी को जाते थे कि देखा, एक आदमी तलवार लिये वहाँ खड़ा है। ललकारकर पूछा तो डरके मारे कहने लगा कि वह उनको मारने को आया है। फरत्याल के धड़े ने भेजा है। शिवदेवजी ने तलवार छीनकर उसे मार भगाया।

"एक दिन शिवदेव जोशीजी अपने मकान में बैठे थे। सरदार किसनसिंह नेगी कई सिपाहियों को लेकर आये। उनमें एक दन्या के जोशी भी थे। आप शिवदेवजी के यहाँ बैठे। सिपाही बराबर खड़े हो गये, और कुछ सिपाही शिवदेव जोशी की ओर के भी उसने अपनी तरफ़ कर रक्खे थे। शतरंज का खेल शुरू हुआ। कहते हैं, सरदार किसनसिंह ने अपने सिपाहियों को यह इशारा कर रक्खा था कि जब वह 'मात हो गई' कहेगा, तब वे शिवदेव को मार डालें। एक बार संयोग से किसनसिंह कह बैठा कि 'बक्सीजी, तुमको मात कर दूँगा।' शिवदेवजी ने कहा कि 'सरदार की क्या ताक़त जो उन्हें मात कर दे।' इन शब्दों को सुनकर सिपाही कुछ सटपटाने लगे। शिवदेवजी ने सोचा कि ऐसे अपमान की बातें आज सरदार किसनसिंह क्यों करते हैं ! शिवदेवजी ने श्रीसुमेर अधिकारी की ओर दृष्टि डाली। श्रीसुमेर अधिकारी ने जाना कि 'चाला' होता है। श्रीसुमेर अधिकारी ने ज़ोर से कहा कि यहाँ पर राजा के नौकर कौन-कौन हैं ? सिपाही लोग 'हाज़िर हैं' कह बैठे। उसने शतरंज खेलनेवालों को पकड़ने का हुक्म दिया। इन तीन 'चालों' के मुखिया दन्या के जोशी दीवान समझे गये। जहाँ-तहाँ दन्या के जोशी काम पर थे, सब पकड़ आये। उनके हाज़िर होने पर दिगोली के जोशी ने गैड़ा के वक्त का बदला लेने को बहुत-से दन्या के जोशियों को (थैलों) बोरियों में बंद करके बागीश्वर के ऊपर सरयू गंगा के बालीघाट-नामक स्थान में डुबाया और साज़िशवाले सिपाही भी फाँसी की सज़ा पा गये।"

श्रीशिवदेव जोशीजी मालूम होता है कि इस समय फरत्यालों के षडयंत्रों

से पागल हो गये थे। वैसे वह बुद्धिमान् व योग्य शासक थे, पर निर्दयी भी बहुत थे। उन्होंने नेताओं को पकड़ा और एक अभियोग की नक़ल-मात्र करके सबको फाँसी का दंड दे दिया। फाँसी भी जिस नृशंस रूप से दी गई है, वह कुकृत्य कुमाऊँ के इतिहास के काले पन्नों को और भी कलंकित करता रहेगा। ठीक उसी प्रकार, जैसे महरों का सात भद्याले भर कर आँखें निकालने का महारोमाञ्चकारी कांड !

बाग़ी नेता सरयू के पास बालीघाट में लाये गये वहाँ पर हाथ-पैर बाँधकर, बोरियों में भर कर जीतेजी सरयू गंगा में चट्टान के ऊपर से फेंके गये। इतिहासों में बड़े-बड़े भयंकर अत्याचारों की कहानियाँ पढ़ी जाती हैं, किन्तु इस महानृशंस कांड का कहीं और उदाहरण होगा या नहीं, कह नहीं सकते।

इस भयंकर दमन से बाहरी आन्दोलन कुछ समय को शान्त हो गया। शत्रु डर गये, पर आग भीतर-ही-भीतर सुलगने लगी। बदले की तैयारियाँ होने लगीं। इस अन्याय की ख़बरें चारों ओर फैलीं। इस पाशविक अत्याचार के विधायक शिवदेव जोशीजी भी कुछ काल के लिये कहते हैं, सन्नाटे में आ गये। जब चारों ओर से उनकी निंदा व अपकीर्ति हुई, तो उन्होंने अन्य बाग़ी समझे हुए लोगों को छोड़ दिया। उनकी सम्पत्ति लौटाई और उन्हें हर तरह सांत्वना देनी चाही।

श्रीरायमल्ल बूढ़ा डोटी-पार भागा। उसके साथी और भी कुमय्यें फरत्याल इधर-उधर भाग गये। इन सबको बुलाया। डुबाये हुए जोशियों की सद्गति भी कराई। सम्पत्ति भी लौटाई। वारिसों की सहायता भी की। किन्तु भीतरी जलन दूर न हुई।

श्रीजयकृष्ण जोशी व श्रीआना चौधरी ने जो गढ़वाल के राजा प्रदीप्तशाह को कुमाऊँ पर चढ़ा लाये थे, पूर्णागिरि में जा वहाँ के यात्रियों को लूटना आरंभ किया। यह विचारकर कि वे लूटे हुए धन से सेना एकत्र कर शिवदेव जोशी को मारेंगे। पर जयकृष्ण जोशी बावले हो गये, और मर गये। श्री आना चौधरी कोढ़ी हो गये। पूर्णागिरि देवी की सिद्धबनी में घूमते रहे, वहीं मरे।

श्रीसुमेर अधिकारी को शिवदेवजी ने विशेष रूप से इनाम दिया। यह एक बहादुर सैनिक था। इसने दो मंदिर बनवाये (१) अल्मोड़ा में पाताल-देवी का मंदिर, (२) सुंआल नदी के किनारे विश्वेश्वर उर्फ़ विश्वनाथ का मंदिर। पातालदेवी का मंदिर टूट गया था फिर गोरखों के राज्य में नये सिरे से बनवाया गया। विश्वनाथ का अभी मौजूद है।

प्रजा पर इतना भयंकर अत्याचार करके भी श्रीशिवदेव जोशी फिर भी शान से राज-काज करते रहे। और सीधे-सादे राजा दीपचंद उन पर कृपा करते रहे। उनको उधर तराई-भावर में जागीरें मिलीं। इधर मल्ला स्यूनरा में गंगोला कोटुली-गाँव तथा बारामंडल में कई गाँव मिले तथा और भी सनदें मिलीं। एक सनद की नक़ल यहाँ पर दी जाती है—

---

८५. नक़ल ताम्रपत्र

"महाराजाधिराज श्रीराजा दीपचंददेव ज्यू तमापत्र करी बेर शिवदेव जोइसी माल परबत जागीर बगसी, बारामंडल स्यूनरा का गरखा में विशि २० गंगोला कोटुली थात करी बगसी, मुडिया का परगना में मौजे देहरी ढुली बगसी, इन गाउन लगतो गाड़-घट, लेख, इजर, धुरा, डाँडा, सुद्धा पायो, रोहिला ले माल टिपी लिछी, हमरा घरका मानस रोहिला मिली रछया, रोहिला की फौज कुमाऊँ लवाई ल्याछया, अमरुवा रौतेला राजा करी ल्याछया, गोलौली ली लड़ाई भई, इनले तन दियो माल बटी फौज ल्याया गोलौली रोहिला की फ़ौज जो कुमौं का रोहिला संग जाई रछया तन संग लड़ाई मारी, येक दिन में आई बेर लड़ाई मारी, फ़ते करी, हमरो राज तनले कायम करो, फिरी आजी मानसन लै चालो उठायो गढ़वाल का राजा प्रतीपशाही लवाई ल्याया जुनियाँ में प्रतीपशाही आँठ लाख गढ़लीबेर आयो, हमरा राज्य का मानस और कुमयाँ जो लवाई ल्याछा तीं लग गढ़वाल का राजा सँग लड़ाई सु आया, तमाढौड ली लड़ाई भई, शिवदेव जोइसी ले अपने जीउ, धन लायो लालच किछु बात कौ नै करो, गढ़वाल की फ़ौज मारी गढ़वाल को राजा भाजी पड़ो, डेढ़ हज़ार गढ़वाल मारो पड़ो, फते करी, तै दिन लग हमरो राज क़ायम करो रोहिला ले माल टिपी लीछी, रोहिला सँग सलूक करी बेर माल छुटाई तै रोत को गंगोला कोटुली ढुली देहरी, सर्वकर अकर करी बगसो, बड़ो-खडी अलीमहम्मद को जमादार नजीबखाँ चार हज़ार फ़ौज रोहिलान की ली बेर लड़ाई सूं आछयो हमरी तरफ शिवदेव जोइसी हाजर की सिपाही ली बेर लड़ाई सूं गया, फते भई, रोहिला मारो, कोटा की तरफ़ को रोहिला को थानु उठायो, ये बात की रोत यो जागीर सही राखी, गंगोला-कोटुली को सेरुक, ग्वाल, ब्रहादुर, गरखा, सरह सर्व तोड़ी दीनो श्रीमहाराजाधिराजा श्रीराजा दीपचंददेव ज्यू की संतती ले भुचौणों शिवदेव जोइसी की संतती ले भुचणो जो कोई राजा येशी रोत की जागीर ले, तै राजा कन तैका इष्ट देवता की दश हज़ार दुहाई शाके

१६७७ ज्येष्ठ अधिमास सुदी ६ शनो मुकाम राजापुर लिखित स्वयं कंडारितं भगीरथ कटोई शुभम् ।"

उन दिनों कुमाऊँ का राज्य चरम-सीमा को पहुँच गया था। दूर-दूर देशों में उसकी प्रसिद्धि थी।

जुमला के राज्य का राजा मर गया, और उसकी रानी के दो लड़के एक साथ पैदा हुए, जिनको कुमाऊँ में जौंल्या (जुड़वाँ) कहते हैं। उनमें से कौन राजा होगा, यह बात जुमला में तय न हो सकी। अतः कुमाऊँ के राजा को लिखा आया, इसमें क्या होना चाहिये। शिवदेवजी ने फ़ैसला लिखा, उसी के अनुसार कार्य हुआ। जुड़वों (जौंल्या) में पहले पैदा होनेवाला छोटा (?) व पीछे जन्म लेनेवाला बड़ा गिना जाता है।

---

८६. शिवदेवजी मारे गये

पं० शिवदेव जोशीजी पहाड़ का बंदोबस्त करके तथा अपने बड़े पुत्र पं० जयकृष्ण जोशी को राजा की सेवा में छोड़कर आप काशीपुर को गये। पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं:—

"शिवदेव जोशी से स्वप्न में एक बुढ़िया ने कहा कि डेढ़ लाख रुपया अमुक स्थान में गड़ा है, उसे निकाल लो। लेकिन इस धन को धर्म के काम में ख़र्च कर देना। यदि कोई इसे निजी ख़र्च में लगावेगा, तो अच्छा न होगा। प्रातःकाल शिवदेवजी ने वह जगह खुदवाई, सम्पत्ति पूरी पाई। उसको लाकर अपने क़िले में रक्खा, तथा हुक्म दिया कि वह धन धर्म के काम में लगाया जावेगा। उस धन को अपने निजी ख़ज़ांची को सौंपा। बाद को पाटिया के पं० मधुसूदन पांडेजी सरकारी ख़ज़ांची तराई-भावर ने दूसरे ख़ज़ांची को फुसलाकर डेढ़ लाख की सम्पत्ति अपने अधिकार में की, और यह इक़रारनामा लिखकर ख़ज़ाने में रख दिया कि जब तक धर्म का काम शुरू न हो, तब तक इस धन को व्यापार में लगावेंगे। धर्म-कार्य आरंभ होने पर लौटा देंगे। इन पं० मधुसूदन पांडेजी ने २-३ लाख रुपया अपने लिये एकत्र कर लिया था।" यह ज्ञात नहीं है कि इस धन को फिर शिवदेव-जी ने या मधुसूदन पांडेजी ने किसी धर्म-कार्य में लगाया या नहीं।

जब शिवदेव जोशीजी काशीपुर में थे, तो एक दिन वह पूजा कर रहे थे। चारों ओर से उनको ४००-५०० सिपाहियों ने घेर लिया। दुश्मन उनके बहुत हो गये थे। अपनी घोर दमन-नीति से उन्होंने एक नहीं, अनेक शत्रु पैदा कर

लिये थे। शिवदेवजी ने उनको बहुतेरा समझाया, पर किसी ने कुछ न सुनी। शिवदेवजी को कहीं से कोई मदद भी न पहुँच सकी, इस चतुरता से यह षड्यंत्र रचा गया। अतः लाचार होकर स्वयं शिवदेव जोशीजी तलवार लेकर उन सिपाहियों के ऊपर टूट पड़े, पर इतनी सेना का मुक़ाबिला करना कोई ठट्ठा न था। वह घायल होकर गिर पड़े तथा अपने दो बेटे श्रीजयदेव जोशी तथा हरनिधि जोशी के साथ क़तल किये गये। उस दिन तीसरे बेटे पं० हर्षदेव जोशीजी उसी क़िले में थे। भाग्यवश यह बच गये। उस समय इनकी तमाम सम्पत्ति, धन, माल-असबाब तथा सनदें व काग़ज़ात सब लूटे गये। बहुत-से कारबारियों ने गुम कर दिये। अतः शिवदेव जोशीजी १८ वर्ष राजा दीपचंद के समय तथा १२-१३ वर्ष राजा कल्याणचंद के समय अनेक पदों पर रह कर कुमाऊँ के सर्वेसर्वा बन संवत् १८२१ पौष सुदी ११ तदनुसार सन् १७६४ को मारे गये। इसी के बाद हरिराम जोशीजी भी मर गये।

इस दिन से वास्तव में चंदवंश के प्रभावशाली राज्य की इतिश्री हो गई। माल यानी तराई-भावर में तो चंद राजाओं की हुकूमत का एक प्रकार से अंत ही हो गया। पहाड़ में भी एक प्रकार की हुल्लड़ मच गई। राज्य व चंदवंश की जड़ उखाड़ने को कई प्रकार के 'चाले' व षड्यंत्र रचे गये। पहाड़ी प्रान्त में भी शासन का प्रभाव कम हो गया। जिसके जो मन आया, वह करने लगा।

> सर्वे यत्र नेतारः सर्वे पंडितमानिनः।
> सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति तद्वृन्दमवसीदति॥
> अनायका विनश्यन्ति नश्यन्ति बहुनायकाः।
> स्त्रिनायका विनश्यन्ति नश्यन्ति शिशु नायकाः॥

राजनीति का कथन सत्य है। जहाँ सब नायक बनते हैं, सभी बड़े होने की कोशिश करते हैं, वह समाज नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार बिना नेता का राज्य या समाज, बहुत नेताओं वाला राज्य व समाज तथा जिस समाज के नेता स्त्री व बालक हों, वे सब नाश को प्राप्त होते हैं। यही हाल कुमाऊँ-राज्य का भी हुआ। शिवदेव जोशीजी के मरने पर राजा दीपचंद की पटरानी मर गई थीं। उस वक़्त दूसरी रानी शृंगारमंजरी ने अपने को बक्सी व वज़ीर बनाना चाहा। हुक्म वह दीपचंद के कुँवर के नाम से देने लगीं, जो थोड़े दिन हुए, पैदा हुआ था। राजकाज के हरएक प्रबंध व इंतज़ाम में वह दखल देने लगीं।

इधर पं० जयकृष्ण जोशीजी दो-ढाई वर्ष से राजकाज चला रहे थे। वह

उनके काम में भी बाधा डालने लगीं। जब उन्होंने कुछ कहा, तो बाहरी तौर पर उनसे तथा पं० हर्षदेव जोशीजी से कहा कि वह अपने बाप के बदले कुमाऊँ-राज्य में मुख्तारी अपनी समझें।

जब जोशीबंधुओं ने रानी से कहा कि वे तो राजा की सनद से काम करते हैं या कर रहे हैं, तो रानी बहुत नाराज़ हुईं कि उनका हुक्म जोशीबंधुओं ने कम समझा। युवराज के उत्पन्न होने से यह रानी बहुत आपे-से बाहर हो गई थीं। राजा दीपचंद पर उसका ऐसा ही रोब जम गया, जैसा कि केकयी का दशरथ पर हो गया था।

राजकर्मचारियों को इसने लगभग एक वर्ष तक खिलौना बनाकर रक्खा। जोशीबंधुओं के रानी का हुक्म न मानने पर रानी ने कुँ० मोहनसिंह गुसाईं से कहा कि वह बक्सी का पद लेवे, और राजकाज चलावे। उसने बाहरी तौर पर तो यह कहा कि जो सेवा राज की उनके पास है, वह क़ाफ़ी है; पर भीतरी तौर पर वह दख़ल देने लगे। बाद रानी ने विणीकोट के श्रीपरमानन्द विष्ट को दीवान बनाया, जिससे कुँवर मोहनसिंह गुसाईं नाराज़ हो गये। क्योंकि श्रीपरमानन्द विष्ट रानी का उपपति बताया जाता था। इससे कुँ० मोहनसिंह उससे जलते थे। उधर राजा ने जोशीबंधु—श्रीजयकृष्ण जोशी व हर्षदेव जोशी को राज्य का प्रधान कर्मचारी समझा। इस बात से रानी व कुँ० मोहनसिंह दोनों असन्तुष्ट हो गये। कुँ० मोहनसिंह व कुँ० लालसिंह दोनों गुसाईंबंधु, जिन्होंने चंदवंश के अन्तिम राज्य शासन के समय में जोशी-बंधुओं के विरुद्ध बहुत बड़ा पार्ट खेला है, भागकर अवध के नवाब के पास मुक़ाम बंगला उर्फ़ फ़ैज़ाबाद में चले गये। यह सोचकर कि नवाब से मदद लेकर कुमाऊँ राज्य पर वे अपना अधिकार जमावेंगे। इस बीच कुमाऊँ राज्य में राजा दीपचंद, श्रीजयकृष्ण जोशी तथा श्रीहर्षदेव जोशी एक तरफ़ तथा रानी, उसके कुँवर व उसके कथित उपपति परमानंद विष्ट दूसरी तरफ़ रहे।

अठकिन्सन साहब कहते हैं कि रानी ने अपने को यहाँ तक शक्तिशाली बनाया कि हाफ़िज़ रहमतखाँ रोहिला (नवाब बरेली व रामपुर) को लिखा कि वह श्रीजयकृष्ण जोशी को वज़ीर के पद से अलग करें। यह भी कहा जाता है कि हाफ़िज़ रहमतखाँ ने श्रीजोधसिंह कठेड़ी के कहने पर (जो नवाब का प्रिय अफ़सर था और जिसके लड़के की सगाई राजा दीपचंद की (लली) राजकुँवरि के साथ हो गई थी), पं० जयकृष्ण जोशी को लिखा कि वह रानी का हुक्म मानें। कहते हैं, इस पर पं० जयकृष्ण जोशीजी असन्तुष्ट होकर अपने पद से इस्तीफ़ा देकर अल्मोड़ा छोड़ कहीं चले गये। रानी ने बक्सी

का पद कुँ॰ मोहनसिंह को दिया और राजा के नाजायज़ भाई (Bastard Brother) कुँ॰ किसनसिंह को प्रधान मंत्री बनाया। रानी के प्रेमी श्रीपरमानन्द विष्ट वायसराय बनाये गये तथा कुँ॰ जोधसिंह कठेड़ी काशीपुर के शासक बनाये गये। इस तरह रानी का दल मज़बूत हो गया। बाद को श्रीपरमानन्द विष्ट ने रानी से कहकर कुँ॰ मोहनसिंह को निकाल दिया।

यहाँ पर कुँ॰ मोहनसिंह व कुँ॰ लालसिंह गुसाईं का कुछ वृत्तान्त देना ज़रूरी है। पहले लिखा गया है कि राजा त्रिमलचंद के संतान न होने से कुँ॰ नील गुसाईं के पुत्र बाजबहादुरचंद राजा हुए थे। उनकी संतान में से कुँ॰ हरसिंह गुसाईं थे। जब राजा कल्याणचंद ने राजगद्दी पर बैठकर रौतेलों को नेस्त-नाबूद करना चाहा, तो उस वक्त राजा कल्याणचंद ने कुँ॰ हरसिंह गुसाईं से भी पूछा कि उनके चित्त में क्या है? उस समय कहते हैं कि श्रीहरसिंह गुसाईं ने न-जाने क्या-क्या बातें कहकर राजा कल्याणचंद तथा राज के पंचों का संतोष कर दिया कि वे और उनकी संतान कुमाऊँ राज्य के हक़दार न समझे जावें, अतः ये मारे जाने से मुक्ति पा गये। बाद को इनके दो पुत्र उत्पन्न हुए। बड़े कुँ॰ मोहनसिंह, छोटे कुँ॰ लालसिंह। कुँ॰ हरसिंह गुसाईंजी को दस्तूर के मुताबिक़ जागीर में सिमलखा गाँव तथा ७ गाँव और दिये गये। उनसे इन्होंने अपना गुज़ारा किया। पं॰ रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं—"बाद मर जाने कुँ॰ हरसिंह गुसाईं के दोनों कुँ॰ मोहनसिंह व लालसिंह की परवरिश श्रीशिवदेव जोशीजी ने अपने बेटे के शामिल की। उन दिनों श्रीहर्षदेव जोशी तथा कुँ॰ लालसिंह में बड़ी मित्रता थी। श्रीशिवदेवजी के मर जाने के बाद दोनों कुँ॰ मोहनसिंह व कुँ॰ लालसिंह गुसाईं अपना गुज़ारा सिमलखा कीं जागीर से करते रहे, और अल्मोड़ा के दरबार में हाजिर होकर हस्ब मामूल गुसाइयों के, राजा की सेवा करते रहे। वैसे घर इनका सिमलखा में था।"

कुँ॰ मोहनसिंह को बैटन साहब ने "suriously descended consin of Dip Chand" राजा दीपचंद का नाजायज़ भाई बताया है, और मि॰ अठकिन्सन ने तो उनके दादा कुँ॰ पहाड़सिंह को बाजबहादुरचंद की वेश्या का पुत्र बताया है, और इस बात का प्रतिवाद भी किसी ने कहीं किया, किन्तु पं॰ रुद्रदत्त पंतजी ने उनको रौतेला बताया है।

कुँ॰ मोहनसिंह ने बिसौली के नवाब दूँदीखाँ की सहायता से (जो नवाब रहमतखाँ (रामपुर) के कुमाऊँ के राजकाज में हस्तक्षेप करने से जलता था) रोहिलों तथा कुमय्यों की एक सेना एकत्र की, और अल्मोड़ा

आकर राजा दीपचंद तथा रानी शृङ्गारमंजरी दोनों को क़ैद कर लिया। पं० रुद्रदत्त पंतजी कहते हैं—"कुँ० मोहनसिंह को पं० जयकृष्ण जोशी तथा अन्य बक्सीबंधुओं ने लिखा कि वह अल्मोड़ा चले आवें। राज्य के विरुद्ध षड्यंत्र न रचें। उन दोनों गुसाइयों की परवरिश दरबार से होगी। अतः दोनों गुसाईंबंधु कुँ० मोहनसिंह व कुँ० लालसिंह चले आये और दोनों ने राज्य का सारा प्रबंध जोशी-बंधुओं के हाथ से अपने हाथों में ले लिया।" पर यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती, क्योंकि बक्सीबंधु तथा गुसाईंबंधु दोनों की आपस में बराबर तकरार रही, और दोनों आपस में लड़ते रहे। जो हो, कुं० मोहनसिंह ने अपने को अल्मोड़ा-दरबार में सर्वेसर्वा बना लिया कुँ० मोहनसिंह की माता व रानी शृंगारमंजरी में कुछ रिश्ता होता था। इसलिये रानी ने कुं० मोहनसिंह से कहा कि वह राज्य का कारबार चलावें, किन्तु उनके राजकुँवरों से दग़ाबाजी न करें, तो राज्य का प्रधान पद उनका रहा। कुं० मोहनसिंह से रानी ने धर्मवचन इस बात का माँगा। कुँ० मोहनसिंह ने रानी के बाल यानी 'जूड़े' को छूकर कसम खाई कि वह राजा दीपचंद व उसकी संतान की सेवा धर्मपूर्वक करते रहेंगे, तब रानी ने मोहनसिंह के हाथों सब कारबार सौंप दिया। कुँ० मोहनसिंह ने अपने को ऐसा शक्तिशाली बना लिया कि उन्होंने अपने जानी दुश्मन तथा रानी शृंगारमंजरी के कथित उपपति श्रीपरमानंद विष्ट को मार डाला। यह श्री परमानंद कुँ० मोहनसिंह के भागने पर कुछ काल तक बक्सी यानी सेनापति भी रहे थे। अपनी इस सफलता से बली होकर तथा यह विश्वास कर कि रानी शृंगारमंजरी उसके विरुद्ध षड्यंत्र रच रही है, उन्होंने रनवास में जाकर रानी शृंगारमंजरी के केश पकड़े और दुमंज़िले मकान से बाहर चौक में पटक दिया और वह मर गई। इस प्रकार राज्य-शक्तिलोलुप शृंगारमंजरी का अन्त हो गया।

इस पर श्रीहर्षदेव जोशीजी ने रोहिलखंड के सेनापति नवाब रहमत खाँ को खबर दी कि कुमाऊँ की हालत ख़राब है। बूढ़े राजा दीपचंद दरबारियों के हाथ की कठपुतली बने हुए हैं। उसने श्रीशिवदेव जोशीजी के पुत्रों को नीचे बुलाया, और उनसे कुँ० मोहनसिंह को कुमाऊँ से निकालने की सलाह की। रानी की मृत्यु पर कुँ० किसनसिंह भी देश को भागे। इनकी सहायता से पं० हर्षदेवजोशीजी तथा अन्य जोशियों ने कुमाऊँ पर चढ़ाई की और कुँ० मोहनसिंह को अल्मोड़ा से भागने को बाध्य किया। पं० जयकृष्ण जोशीजी ने नवाब रहमतखाँ से यह भी कहा कि राजा दीपचंद की सहायता

वह करेंगे, किंतु उनके बाप के समय का धन काशीपुर के कारिन्दे श्रीशिरोमणि दास ने दबा रक्खा है। वह उन्हें मिलना चाहिए। साक्षात् होने पर नवाब के कहने से बा० शिरोमणिदास ने ६० हज़ार रुपये दिये। वह जोशीबंधुओं के पास सेना लेकर आया था। कुँ० मोहनसिंह व लालसिंह पहले ज़ाबिताखाँ के पास गये। कोई-कोई कहते हैं कि वे मरहठों के लश्कर में चले गये थे, बाद को फिर नवाब अवध की शरण में गये।

राजा दीपचंद इस राजनीतिक बदलाव से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने शासन के दो प्रधान पद श्रीहर्षदेव जोशी तथा उनके भाई जयकृष्ण जोशी को देने चाहे और कुँ० किसनसिंह को वाइसराय बनाया, पर पं० जयकृष्ण जोशी ने कुँ० किसनसिंह के साथ काम करने से इनकार किया, बल्कि पं० रुद्रदत्त पंतजी कहते हैं कि युद्ध में विजयी होने से वे इतने प्रफुल्लित हो गये कि उनका दिमाग़ फूल गया। वे वज़ारत के नहीं, बल्कि राज्य के इच्छुक हो गये। अतएव प्रधान मंत्री तथा बक्सी के पद एक किये गये और पं० हर्षदेव जोशीजी ने इस सम्मिलित पद को स्वीकार किया। फ़रमान व खिलअत दोनों पदों के उनको मिल गये। हर्षदेवजी ने वज़ारत का नायब चापड़ गाँव के एक विष्ट महाशय को बनाया तथा बक्सीगिरी का नायब सेलाखोला के पं० रुद्रदत्त जोशी के पुत्र पं० लक्ष्मीपति जोशी को बनाया। बाजपुर के पं० शिरोमणिदास अब दीवान बनाये गये, क्योंकि उन्होंने कुँ० मोहनसिंह के विरुद्ध युद्ध में मदद दी थी। वह स्थायी रूप से काशीपुर के लाट नियुक्त हुए। कुँ० मोहनसिंह की छीनी हुई जागीरें भी उनको मिल गईं। इसके अलावा उन्हें आठ गाँव माल में और दिये गये। श्रीहरिरामजी के पुत्र श्रीमनोरथ जोशी रुद्रपुर के सरदार नियुक्त किये गये। इस प्रकार ज़ाहिरा तौर पर एक स्थायी व अच्छी सरकार का ढाँचा दोनों पर्वत व मैदान में स्थापित किया गया। इसके थोड़े दिन बाद दीवान शिरोमणिदास मर गये। उनके एवज़ उनके पुत्र श्रीनंदराम काशीपुर के लाट हुए। उन्होंने अपने भाई श्रीहरगोविन्द से मिलकर यह निश्चय किया कि राज्य में गड़बड़ मची है। इस समय अपने लिये एक स्वतंत्र रियासत स्थापित करने का अच्छा मौक़ा है, ताकि उनकी सन्तान सदा के लिये सुख भोग करे। उन्होंने नागरकोट से कुछ नये सैनिक (रँगरूट) मँगाये तथा कुछ नौजवान भर्ती किये। इस प्रकार एक अच्छी सेना तैयार कर ली। और लखनऊ के नवाब के यहाँ अर्ज़ी भेजी कि वह अपने इलाक़े की रक़म (मालगुज़ारी) सूबे अवध के ख़ज़ाने में जमा करेंगे। उनको तराई का पक्का ज़मींदार माना जावे। ये देशद्रोह की बातें

सुन दोनों जोशीबंधु जयकृष्ण व हर्षदेव जोशी काशीपुर गये। श्रीनंदराम से युद्ध किया। वह हारकर मुरादाबाद भाग गया। जयकृष्णजी ने ख़ज़ाना अपने मातहत किया। हर्षदेवजी अल्मोड़ा को वापस आये। नंदराम फिर मुरादाबाद से फ़ौज लाकर काशीपुर में क़ाबिज़ हो गया।

मरहठों व नवाबों के दरबारों की ख़ाक छानते-छानते तथा देश की गर्मी व विदेश में दिन काटते-काटते थक जाने के कारण कुँ० मोहनसिंह ने दोनों जोशीबंधुओं—पं० जयकृष्ण जोशी व हर्षदेव जोशीजी—को लिखा कि उनको वे लोग राजा से क्षमा-प्रदान कराकर कुमाऊँ आने की आज्ञा दें। उन्होंने बहुत-से आदमियों से सिफ़ारिश भी कराई। यहाँ पर प्रायः सब लोग कुँ० किसनसिंह के कुशासन से तंग आ गये थे, क्योंकि यह महाशय बूढ़े राजा के निजी सलाहकार तथा गुप्त शासक थे। पं० हर्षदेवजी ने तो टालू व राजनीतिक-चातुर्य-पूर्ण पत्र भेजे, पर उनके भाई जयकृष्णजी ने उन्हें आने को लिख दिया। कुमाऊँ के कूटनीतिज्ञों के कान काटनेवाले कुँवर मोहनसिंह देश से कुमाऊँ को आते वक्त. काशीपुर में दीवान नंदराम से मिल आये और उस धोखेबाज़, किन्तु चालाक पुरुष से भी गुप्त संधि कर आये और कह आये,—"मित्र! जो मेरा पैर जम गया, तो तुम्हें काशीपुर में स्थायी पद दिला दूँगा। देश के शासक तुम, पहाड़ का मैं।"

अल्मोड़ा में आते ही कुँ० मोहनसिंह ने ऐसा रोब जमाया कि जोशीबंधुओं की सम्मति से सारी शासन की शक्ति अपने हाथों ले ली। वे लोग अपने पदों पर बहाल रहे, पर कुँवर मोहनसिंह को राजकाज में सम्मति देते रहे। यह गुटबंदी कूर्माचल के इतिहास में एक ही रही। कुँवर मोहनसिंह शुरू से जोशीबंधुओं के ख़िलाफ़ रहे, पर इस समय ये तीनों कुचक्री, किन्तु कुशाग्रबुद्धि राजनीतिज्ञ, जिनकी कुमंत्रणा, कुनीति तथा कुशासन से कुमाऊँ पराधीन हुआ, अजब दृश्य था कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश की तरह एक हो गये। जब इन त्रिमूर्तियों की मंत्रणा हुई, तो पं० जयकृष्ण जोशीजी ने तराई को फिर से कुमाऊँ राज्य के अंदर लाने का प्रस्ताव किया, और साथ ही दग़ाबाज़ दीवान नंदराम को काशीपुर से निकालने का प्रस्ताव भी पेश किया! कुँ० मोहनसिंह ने इन बातों का समर्थन ही न किया, बल्कि मनुष्य, मुद्रा व मसाले (men, money and munitions) से सहायता करने को कहा और जयकृष्णजी से फ़ौरन् युद्ध के लिये जाने को कहा। उधर कुँ० मोहनसिंह ने भी नंदराम से पहले ही से गुप्त संधि कर रक्खी थी, और फिर भी एक बंद पत्र भेजा गया कि वह हर तरह सचेत रहे। ज्यों ही अल्मोड़ा से

श्रीजयकृष्ण जोशी फ़ौज लेकर पहुँचे, तो उन्होंने चिलकिया व काशीपुर के बीच हल्दुवा में नंदराम की फ़ौज को लड़ने को तय्यार व सब तरह सुसज्जित पाया। पं० जयकृष्ण जोशीजी को भागकर पहाड़ की ओर आना पड़ा। नंदराम ने हल्दुवा को कुमाऊँ की सरहद बनाई। बाक़ी मुल्क नवाब अवध के नीचे होने की सूचना प्रकाशित कर दी। इधर जयकृष्णजी फिर नंदराम से लड़ने के लिये फ़ौज तय्यार करने लगे।

इस लड़ाई में जयकृष्ण की तो हार हुई, और राजा दीपचंद के भाई कुँ० किसनसिंह मारे गये। इस चाल से कुँ० मोहनसिंह को कई लाभ हुए। दोनों जोशीबंधु अलग हो गये। ये नरेश-नियुक्त करनेवाले (King-makers) कहे जाते थे। उधर कुँ० मोहनसिंह ने ऐसी चाल चली कि हर्षदेवजी को अल्मोड़ा से भागकर पाली में शरण लेनी पड़ी। बूढ़ा व भाग्य-हीन राजा दीपचंद कुँ० मोहनसिंह के हाथों बंदी-सा हो गया। अतः कुँ० मोहनसिंह ने राजा दीपचंद तथा उनके दो पुत्र कुँ० उदयचंद तथा सूजनसिंह गुसाईं को सीराकोट के राजसी क़ैदखाने में भेज दिया। कुँ० मोहनसिंह ने समझा कि अब उनके तख़्त पर बैठने का वक़्त आ गया है, लेकिन इससे पूर्व उन्होंने अपनी स्थिति को अल्मोड़ा में और भी मज़बूत करना चाहा। इसके लिये दोनों जोशीबंधु जयकृष्ण जोशी तथा चतुर राजनीतिज्ञ हर्षदेव जोशी के प्रभाव को नेस्त-नाबूद करना ज़रूरी था। यह बात एक या दोनों को क़त्ल किये विना होनी संभव न थी, इसलिये कुँ० मोहनसिंह गागर के नीचे कोटा के कूमखेत गाँव में गये। और नंदराम के ऊपर मिल कर धावा मारने के अभिप्राय से श्रीजयकृष्ण को अपने डेरे में बुलाया। पहले तो चतुर जयकृष्ण आये नहीं, पर सवाई चतुर मोहनसिंह ने बहुत-सी मिन्नतें कीं, अतः वह कूमखेत में आ गये। वहाँ कुँ० मोहनसिंह ने उनको अपने तंबू में ख़ूब लच्छेदार बातों में उलझा दिया, और बातों-ही-बातों में पूर्व मंत्रणा के अनुसार जल्लादों को इशारा किया कि वे जयकृष्ण को मार डालें। ख़ुशाल जाट ने उनको पकड़ा, और तलवार लेकर सिर धड़ से अलग कर दिया। इस ख़ून में कुछ फुलारे भी शामिल थे। लाश को दुशाले में लपेटकर पहाड़ से नीचे फेंक दिया। यह घटना सन् १७७७ की है।

इस प्रकार बेचारे जयकृष्ण का काम तमाम कर कुँ० मोहनसिंह अल्मोड़ा आये। इत्तिफ़ाक़ से पं० हर्षदेव जोशी भी पाली से अल्मोड़ा आये थे। कुँ० मोहनसिंह ने उन्हें भी पकड़ा, और प्राणदंड देने को थे कि श्रीमोहनसिंह के भाई कुँ० लालसिंह ने फाँसी न देकर आजन्म क़ैद करने की

सिफ़ारिश की। यह इसलिये कि कुँ० लालसिंह तथा पं० हर्षदेव जोशी दोनों में मित्रता थी।

८७. राजा दीपचंद मारे गये

सन् १७७७ के अन्त में राजा दीपचंद तथा उनके दो लड़के, जो सीरा-कोट के क़िले में राजनीतिक क़ैदी थे, मर गये या मार डाले गये। कहा जाता है कि उनको खाना बहुत कम तथा बुरा मिलता था। आटे में मिट्टी मिलाई जाती थी। सुरती माँगी, तो जेल के कर्मचारी हाथ में थूक देते थे। इस तरह तड़प-तड़पकर उस बेचारे बूढ़े व कमज़ोर राजा ने शाहजहाँ की तरह अपने प्राण खो दिये।

राजा दीपचंद के मारे जाने पर अमरपुर के कुँ० जोधसिंह कठेड़िये अपने बेटे कुँ० शुभकर्णसिंह को, जो राजा दीपचंद के जवाई थे, कुछ कुमय्यों के कहने के अनुसार काशीपुर तक लाये, पर कुँ० मोहनसिंह के इशारे से नंदराम ने उन्हें कुछ भी सहायता न दी, इससे दोनों पिता-पुत्र लौट गये।

राजा दीपचंद के समय दो बातें उल्लेख योग्य और हुईं—

(१) कुँ० मोहनसिंह की लली आनंदकुँवरि का विवाह डोटी के राजा क़दम साईं के बेटे कुँ० दीप साईं के साथ हुआ।

(२) डोटी के राजा क़दम साईं की बेटी 'डोले के रूप' गढ़वाल के राजा ललितशाह के यहाँ जाती थी। कुमाऊँ राज्य बीच में पड़ता था। कहीं कोई तक़रार न हो, इस कारण डोटी का वकील श्रीअनिरुद्ध पंडेरु गढ़वाल गये। वहाँ से गढ़वाल का वकील आया, इधर से कुमाऊँ के वकील पं० मधुसूदन पांडे (पाटिया) एकत्र हुए। तीनों राज्यों के बीच धर्मपत्र लिखा गया। तब डोला गढ़वाल को गया।

८८. (५८) राजा मोहनचंद

[सन् १७७७—१७७९]

इतने हत्याकांड रचकर अन्त में कुँ० मोहनसिंह ने अपने को मोहनचंद के नाम से राजा बना लिया। आपका राज्याभिषेक बड़ी धूम-धाम से हुआ। रुपयों की 'वखेर' (न्योछावर) भी हुई। केवल दो साल के राज्य में उनके समय के १० ताम्रपत्र पाये गये हैं:—

१. सन् १७७७ जागीश्वर-मंदिर के नाम गूँठ।

२. ,, ,, ,, ,,

३. सन् १७७७ सीतलादेवी-मंदिर आठागुली।
४. ,, ,, पं० रधापति भंडारी के कुटुम्ब के नाम।
५. ,, ,, श्रीहुस्सैनबक्स के खानदान के नाम।
६. ,, ,, पाताल-भुवनेश्वर-मंदिर, गंगोली के नाम।
७. १७७८ नागनाथ-मंदिर, चंपावत।
८. ,, कपिलेश्वर-मंदिर, दुग।
९ ,, कालिका-मंदिर, गंगोली।
१० ,, भटनेश्वर-मंदिर, बौरारौ।

इससे ज्ञात होता है कि राजा मोहनचंद भी पुरोहितों व देवताओं को प्रसन्न करने के उतने ही इच्छुक थे, जितने उनके पूर्वज थे। उन्होंने अपने भाई कुँ० लालसिंह को तथा पाटिया के नौलखिया पांडे पं० मधुसूदन पांडेजी को मंत्री बनाया। ये पांडेजी शिवदेव जोशीजी के समय से नौलखा माल के ठेकेदार व खज़ांची थे। इसीसे 'नौलखिया' कहलाये। कहते हैं, इन्होंने राजा मोहनचंद को एक लाख रुपये उधार भी दिये। राजा मोहनचंद ने श्रीनंदराम को लिखा कि अब पहाड़ी इलाक़ा उसका (मोहनचंद का) हो गया है अब से देशी इलाक़ा नन्दराम का हुआ। अतः गूलरघट्टी दोनों इलाक़ों की सरहद नियुक्त की गई। पर नन्दराम ने राजा मोहनचंद की आज्ञा की उतनी परवाह न की। वह लखनऊ गया, और वहाँ नवाब अवध से संधि कर यह निश्चय कर लिया कि नन्दराम मालगुज़ारी अवध के ख़ज़ाने में जमा करेगा। नवाब अवध समय पड़ने पर सेना से मदद करेंगे। नन्दराम नवाब की ओर से तराई के सदर अमीन बनाये गये। इस प्रकार बली होकर नन्दराम ने राजा मोहनचंद को लिखा कि श्रीमनोरथ जोशीजी से कहें कि रुद्रपुर का क़िला व इलाक़ा भी उनके सिपुर्द करें। मोहनचंद ने मनोरथ जोशीजी को ऐसा ही लिखा। श्रीमनोरथ जोशी ने ऐसा करने से इनकार किया, बल्कि दोनों नन्दराम तथा राजा मोहनचंद से लड़ने को तैयार हो गये। पर नन्दराम ने एक चाल और चली। उसने मनोरथ जोशीजी से कहा कि "वह राजामोहनचंद का बाहरी मित्र है, पर भीतरी शत्रु यदि तुम व हम मिल जावें, तो इस कुमाऊँ की गद्दी को छीननेवाले राजा मोहनचंद को तख़्त से मार भगावें। अब चंद तो सब मर-मरा गये हैं, अब जोशी ही कुमाऊँ की गद्दी पर विराजमान होंगे।" नंदराम की इन लुभावनी व लच्छेदार बातों में मनोरथ जोशीजी महाराज फँस गये। वह थोड़ी सी फ़ौज लेकर बाजपुर से चलकर नंदराम से मिलने काशीपुर गये। वहाँ दग़ाबाज़ी से उस चतुर चौपड़बाज़ नंदराम द्वारा मारे

गये। नंदराम ने नवाब अवध के नाम से रुद्रपुर के इलाक़े पर भी क़ब्ज़ा कर लिया। इस तरह देशी इलाक़े पर से कुमाऊँ की राजसत्ता एक प्रकार से उठ गई। यह बात तराई के संबंध की है, भावर के बारे की नहीं। भावर में तो सदैव कुमय्यों का अधिकार रहा।

नानकमता व बिलारी बरेली के पठानों के पास गिर्वी थे। ये दोनों परगने तथा सरबना परगना भी नवाब अवध के हाथ आ गये। नवाब सन् १८०२ तक तराई के मालिक रहे, पश्चात् सारा इलाक़ा अँगरेज़ों के हाथ में आया। उस समय राजा शिवलाल, जो श्रीनंदराम के भतीजे तथा श्रीहरगोविंद के लड़के थे, तराई के सदर अमीन थे। किलपुरी बहुत दिनों तक कुमय्यें ज़मींदारों के हाथ में रही, पर बाद को यह भी नवाब के हाथ में चली गई।

पं० रुद्रदत्त पंतजी कहते हैं—"श्रीनंदराम ने श्रीशिवदेव जोशी के रिश्तेदार व तरफ़दार सब पर्वती ब्राह्मण, राजपूत तथा किसान वग़ैरह का सब माल-असबाब लूट लिया, और 'माल' में गाय भैंस पर चराई, रय्यत के ऊपर चाँटी, मुतफ़र्रिक़ात शायर वग़ैरह नई रकमें मुकर्रर कीं। देवताओं के चढ़ाव में से भी वह कुछ हिस्सा अपना लेता था, तो भी ठेका पूरा न हुआ।" बहुत-सी रिआया नाराज़ होकर माल (तराई-भावर) से उठकर चली गई।

किन्तु बैटन साहब ने नंदराम व शिवलाल के समय में तराई के प्रबंध की तारीफ़ की है—"सिवाय पुलिस के इन्तजाम के और सब बातों का अच्छा प्रबंध था। चोर-लुटेरे बहुत थे, जो (श्रीबैटन कहते हैं कि) अँगरेज़ी राज्यकाल में भी कम न थे। लेकिन तराई में नंदराम तथा चंद राजाओं के समय बसासत ज़्यादा थी। गूलें व नहरें प्रायः सर्वत्र व बहुत थीं। बहुत-सी नदियों के किनारे से नहरें बनाने में ख़ूब ध्यान दिया जाता था। जंगल काट दिया जाता था, जिससे बनिस्बत आज के आबहवा में भी फ़र्क़ था। उस समय मालगुज़ारी भी ज़्यादा थी। इन बातों का यद्यपि कोई ख़ास प्रमाण नहीं है, तथापि आम लोग ऐसा कहते हैं। यहाँ के काश्तकार थाडू व बोक्से हैं। तराई का इलाक़ा इन्हीं की काश्त में है। ये एक जगह नहीं रहते, इधर-उधर भटकते रहते हैं। अँगरेज़ी राज्य के स्थापनकाल से भी अच्छे-अच्छे काश्तकार देशी इलाक़े को चले गये हैं। आमदनी व काश्त के कम होने का कारण (श्रीबैटन की राय में) बंदोबस्त का ठीक न होना है तथा और भी—शिवलाल, लालसिंह तथा महेन्द्रसिंह के बीच ज़मींदारी के झगड़ों का होना, पुलिस की बदइन्तज़ामी, अँगरेज़ मालगुज़ारी-अफ़सरों की लेतलाली आदि-आदि।" यह रिपोर्ट श्रीबैटन ने सन् १८४४ में लिखी थी।

राजा मोहनचंद के समय कुमाऊँ-राज्य के कुछ लोग एक बार एक शेख को मय कुछ मुसलमान फ़ौज के कुमाऊँ के ऊपर चढ़ा लाये। वे बानणीदेवी के रास्ते आये। बख के ऊपर गढ़ी में शेख व राजा मोहनचंद की फ़ौज का युद्ध हुआ। शेख़जी युद्ध में हारकर देश को चले गये।

राजा मोहनचंद ने जैसा कि पहले कहा गया है, श्रीशिवदेव जोशीजी के सब दोस्त व रिश्तेदारों को मार भगाकर तख़्त पर बैठने का आयोजन किया था। श्रीलक्ष्मीपति जोशी भी, जो हर्षदेव जोशीजी के नायब थे, अल्मोड़ा में देवदार के पेड़ के पास मारे गए जब कि वे राजदरबार में राजा के हुक्म से बुलाये गये थे। इन काण्डों से सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गई। कुछ लोग पहाड़ को छोड़ देश को भागे, और वहीं बस गये। कुछ लौटे, कुछ न लौटे।

---

८९. गढ़वाल ने कुमाऊँ जीता

पं० हर्षदेव जोशीजी जन्मक़ैद में थे। पर वे महाचतुर पुरुष थे। उन्होंने राजा डोटी व राजा गढ़वाल दोनों को गुप्त पत्र भेजे। तमाम प्रजा राजा मोहनचंद के खूनी शासन से असन्तुष्ट थी। प्रजा के नेताओं ने भी इन राजाओं को पत्र भेजे राजा ललितशाह लोहाबा के रास्ते द्वारा में चढ़ आये। उनकी सेना जनरल प्रेमपति खंडूरी के अधिकार में थी।

गढ़वाली राजा का कुमाऊँ पर अधिकार होने की बाबत पं० रुद्रदत्त पंत-जी लिखते हैं—"राजा मोहनचंद के समय राजा प्रदीप्तशाह के पुत्र राजा ललितशाह गद्दी पर थे। जब हर्षदेवजी का पत्र वहाँ पहुँचा तो उस समय पं० जयानंद जोशी भी वहाँ थे। इनको पहले राजा प्रदीप्तशाह ने शिवदेव जोशीजी के कहने से छोड़ दिया था, पर बाद को जब मोहनचंद ने सब जोशियों को क़तल करने की ठहराई तो ये भागकर फिर गढ़वाल चले गये। वहाँ इन्होंने भी राजा को उभारा कि कुमाऊँ पर चढ़ाई करने का मौक़ा अच्छा है। इस युद्ध में जयानंदजी भी शामिल थे। जब राजा मोहनचंद ने गढ़वाली राजा से आपस में भाई-चारे की बातें होने को लिख भेजा, तो उन्होंने उत्तर दिया कि भाईचारा उनके पिता का राजा दीपचंद के साथ था। राजा मोहनचंद ने वह सब तोड़ डाला है। इधर हर्षदेवजी ने लिखा कि यदि वे क़ैद से मुक्त हो जावें तो वे गढ़वाल के एक कुँवर को कुमाऊँ की गद्दी पर बैठाने में तन-मन-धन से मदद देंगे। इस पर प्रसन्न होकर राजा ललित-शाह ने सेनापति प्रेमपति खंडूरी को राजा मोहनचंद को गद्दी से उतारने को सेना सहित आगे भेजा। पीछे से आप भी आये।"

राजा ललितशाह लोहाबा के रास्ते द्वारा पर चढ़ आये। उनकी सेना के मुक़ाबिले के लिये राजा मोहनचंद ने अपने भाई कुँ० लालसिंह को भेजा। और इधर मोहनचंद ने हर्षदेवजी को क़ैद से मुक्त कर उन्हें भी अपने देश के पुराने दुश्मन के ख़िलाफ़ लड़ने को उत्तेजित किया और यह भी लालच दिया कि इनाम में उन्हें उनके पुराने पद व जागीरें वापस दी जावेंगी। हर्षदेवजी ने क़ैद से मुक्त होने के लालच से ज़ाहिरा तौर पर तो हामी भर दी, पर ज्योंही वे युद्ध-यात्रा करने को थे, ख़बर आई कि कुमय्यों की बगवालीपोखर में बहुत बुरी हार हुई। कुछ कुमय्याँ फ़ौज भी गढ़-सेना से मिल गई थी। राजा मोहनचंद इस हार की ख़बर सुन भाग चले, और हर्षदेव-जी को भी भागने को कहा। पर हर्षदेवजी को कुछ भी उतावली भागने की न थी, क्योंकि गुप्त रूप से उन्होंने ही तो लेख पढ़कर गढ़वाली राजा को बुलाया था। वे रुक गये, तथा बाद को राजा मोहनचंद के रक्खे हुए गुप्तचरों की नज़र बचाकर भाग गये। और गढ़वाली राजा से मिलने को चले गये। राजा मोहनचंद गंगोली से काली कुमाऊँ को गये। वहाँ से टनकपुर के रास्ते लखनऊ के नवाब के यहाँ गये। बाद को नवाब फ़ैज़ुउल्लाखाँ (रामपुर) की शरण में चले गये। वहाँ उनको उनके भाई कुँ० लालसिंह तथा अन्य साथी भी मिल गये।

---

९०. (५९) राजा प्रद्युम्नशाह उर्फ़ प्रद्युम्नचंद

[सन् १७७९—१७८६]

राजा ललितशाह ने श्रीहर्षदेव जोशीजी को पाली में बुलाया, और उनकी सलाह से अपने बेटे प्रद्युम्नशाह को राजा दीपचंद का धर्मपुत्र बना-कर राजा प्रद्युम्नचंद के नाम से चंदों की राजगद्दी पर बैठाया। प्रद्युम्नशाह के अलावा राजा ललितशाह के तीन कुँवर और भी थे (१) कुँ० जयकृत शाह, (२) कुँ० पराक्रमशाह, (३) कुँ० प्रीतमशाह। राजा ललितशाह गनाई-गिवाँड़ के 'घाम' (Malaria) लगने से बीमार होकर मर गये। अतः कुँ० जयकृतशाह राजगद्दी पर बैठे।

राजा प्रद्युम्नचंद ने श्रीहर्षदेव, श्रीजयानंद तथा श्रीगदाधर जोशियों को राज्य के प्रधान-प्रधान पदों पर नियुक्त किया। ये अन्तिम दोनों ओलियागाँव के थे। राजा प्रद्युम्नचंद अच्छा व स्थायी प्रबंध करना चाहते थे, पर अठकिन्सन महोदय लिखते हैं—"लोग इन जोशियों के चालों (षड्यंत्रों), व रातदिन के

राष्ट्र-विप्लवों से उकता गये थे। उन्हें विश्वास न था कि ये लोग यहाँ पर स्थायी, निष्पक्ष व न्यायी सरकार स्थापित करेंगे।"

पाटिया के नौलखिया पांडे पं० मधुसूदन पांडेजी के पास राजा की तहसील का कुछ रुपया था, ऐसा राजकर्मचारियों ने कहा। इधर खज़ाने में भी द्रव्य न था। माँगने पर पांडेजी ने न दिया तो नगरकोटिया सिपाही पाटिया में गये और पांडेजी का घर घेर लिया। रात को उसी बड़े घर में, जो 'चौमहल' कहा जाता है, सिपाही रहे। उस रात को घर की सब तलाशी हुई। कुछ अशर्फ़ियाँ व रुपये वे लोग लाये, जो राजा के खज़ाने में जमा हुए।

कहते हैं कि जिस रात नगरकोटिया सिपाही पाटिया में नौलखिया पांडे के महल में रहे थे, उस रात भूत ने सिपाहियों को डराया था। सिपाहियों ने बंदूकें छोड़ीं, तब भूत भागा। कहते हैं, तब से बहुत वर्षों तक कभी-कभी वह भूत पाटिया के डांडे से रात के वक्त पुकारता था—"नगरकोटिया गये कि अभी पाटिया में हैं?" तब गाँव का जो कोई आदमी उसकी आवाज़ को सुनता तो यह कह देता था कि "नगरकोटिया पाटिया में बैठे हैं।" भूत फ़ौरन लौट जाता था। गाँव में किसी को न सताता था।

राजा ललितशाह मरे तो उनके बड़े बेटे कुँ० जयकीर्तिशाह राजा हुए। उन्होंने जेठे भाई होने के कारण अपने को बड़ा समझा, और अपने छोटे भाई राजा प्रद्युम्नचंद को लिखा कि वे उनको यथोचित सम्मान दर्शावें, और पत्र द्वारा भी सम्मान सूचित किया करें। यहाँ से लिखा गया कि कुमाऊँ ने गढ़वाल की महत्ता को कभी स्वीकार नहीं किया है। वे हर तरह से उस बड़ी गद्दी की मान-प्रतिष्ठा की रक्षा करेंगे, जिस पर कि वे बैठे हैं। इस करारे उत्तर को सुनकर गढ़वाल के राजा निरुत्तर हो गये, पर दिल ही दिल में खूब रुष्ट हुए।

इस बीच श्रीहर्षदेव जोशीजी ने रामपुर के नवाब फ़ैज़उल्लाखाँ को लिखा कि वे राज्यच्युत राजा मोहनचंद को कुमाऊँ पर चढ़ाई करने में मदद न दें। नवाब ने इसका संतोषजनक उत्तर न दिया, पर साथ ही यह लिख भेजा कि गद्दी से उतारे हुए राजा मोहनचंद के गुज़ारे के लिये कुछ सहायता चंदराज्य के ख़ज़ाने से अवश्य मिलनी चाहिये। इस बात का यहाँ से विश्वास तो दिलाया गया, पर राजा मोहनचंद को मदद मिली या नहीं, ठीक-ठीक ज्ञात नहीं।

अठकिन्सन साहब लिखते हैं कि राजा मोहनचंद को १०) रोज़ गुज़ारे के मंज़ूर हुए थे, पर न मिले। पं० रुद्रदत्त पंत लिखते हैं कि १०) रोज के हिसाब से ३००) माहवार रापुर भेजे जाते थे।

एक बार नवाब फ़ज़्ज़उल्लाखाँ ने काशीपुर को लूट लिया। उस वक्त लाखों का माल व नक़दी काशीपुरवालों की लूटी गई। इस पर पं० हर्षदेवजी ने युद्ध करने की ठानी, पर बाद को नवाब रामपुर के साथ संधि हो गई। दोनों ओर से पगड़ियाँ बदली गईं। तब से नवाब रामपुर ने तराई के ऊपर कोई हस्तक्षेप न किया।

---

९१. राजा मोहनचंद नागों को लाते हैं

राजलक्ष्मी का भोग भोगे हुए राजा मोहनचंद की १०) रोज़ में क्या गुज़र हो सकती थी! रामपुर से उठकर वह प्रयागराज में तीर्थयात्रा को गये। वहाँ उनको नागे साधुओं के नेतागण मिले। नवाब अवध, नवाब रामपुर से जब मदद न मिली तो राजा मोहनचंद ने महन्तों से मदद माँगी और कुमाऊँ को धनी मुल्क बताकर और अपने बुज़ुर्ग चंद नरेशों की गड़ी हुई दौलत का लालच तथा लूट की रँगीली बातें कह, उनको कुमाऊँ में चलकर चढ़ाई करने को राज़ी किया। चार महंत १४०० नागों की फ़ौज लेकर कुमाऊँ को चले, और श्रीबदरीनाथ-यात्रा के बहाने से कोशी के किनारे-किनारे अल्मोड़ा को आये। जब कोशी व सुँआल नदी के संगम पर चोपड़ा स्थान में पहुँचे, तब उनका असली रहस्य मालूम पड़ा। इस पर श्रीहर्षदेव जोशीजी ने कुमाऊँ की सेना को चाड़लेख मुक़ाम पर खड़ा कर दिया, और महन्तों के पास जाकर उनसे कुछ नज़राना लेकर लौट जाने को कहा। पर राजा मोहनचंद की कुमंत्रणा से उन्होंने लौटने के बदले लड़ाई ठानी। नागे साधू शिक्षित फ़ौज के सामने कैसे ठहर सकते थे। ७०० नागे वहीं कोशी में ढेर हो गये। बाक़ी भाग गये। तब से यह किंवदन्ती चल पड़ी—

"जोगिक् बाबोकू लड़ैं में के धरी छी।"

(जोगी के बाप का लड़ाई में क्या रखा है) अब यह लोकोक्ति उनके विषय में काम में लाई जाती है, जो अपना काम छोड़कर दूसरों के कामों में हस्तक्षेप करते हैं।

पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं—"नागों की फ़ौज का खर्च उन्होंने (नागों ने) खुद उठाया। बल्कि राजा मोहनचंद को भी उन्होंने ही खिलाया-पिलाया। यह फ़ौज सुँआल नदी के किनारे उतरी। हर्षदेवजी ने अपना आदमी भेजा। नागों से कहलाया कि वे तो दुनिया से अलग हो गये, वे आपस की लड़ाई में क्यों शामिल होते हैं? ५००) रु० 'गोला पुजाई' को

दिये। पर नागे न माने। दोनों फ़ौजों की मुठभेड़ हुई। गोलियों के बाद तलवारें चलीं। ७०० नागे मय दो महंतों के मारे गये। बहुत से पहाड़ के नीचे लुढ़क पड़े। ख़ून की नदियाँ बह गईं। उस दिन की लूट ने आस-पास के गाँववालों को मालदार बना दिया। नागों के जटाजूट व गोलों में बहुत-सी अशर्फ़ियाँ निकलीं। निशान व झंडे चाँदी के थे। तलवारों के ढेर मानिंद लकड़ी के लूटे गये। ढालों के भी ढेर थे। राजा मोहनचंद तथा बाक़ी नागे देश की ओर भाग गये।

---

९२. गढ़वाल से युद्ध

राजा प्रद्युम्नशाह के गद्दी पर बैठने से भी गढ़वाली व कुमय्याँ राजाओं के बीच का मनोमालिन्य दूर न हुआ। राजा प्रद्युम्नशाह का भेजा हुआ जवाब उनके बड़े भाई राजा जयकीर्तिशाह के दिल में काँटे की तरह चुभ गया। उनके सलाहकारों ने उनसे कहा कि राजनीति, धर्मनीति, लोकनीति के अनुसार उनका अधिकार बड़े भाई होने से गढ़वाल व कुमाऊँ दोनों राज्यों पर होना चाहिए, बल्कि कुछ लोगों ने यह भी कहा कि कुमाऊँ का नृपति-विहीन (लावारिस) राज्य उनके हाथ लग गया, अतः कुमाऊँ का राजा उनका करद (अधीन) राजा होना चाहिए। इस बारे में उनकी राज्यच्युत राजा मोहनचंद से भी लिखा-पढ़ी हुई। चतुर राजनीतिज्ञ श्रीहर्षदेव जोशीजी इस रहस्य के होनेवाले दुष्परिणामों को समझ गये। उन्होंने राजा जयकीर्तिशाह को लिखा कि वह उनको भेंट करने की आज्ञा दें, ताकि इस प्रश्न का निबटारा ज़बानी बातचीत से हो जाय। पर राजा जयकीर्तिशाह को पं० हर्ष-देवजी की सचाई में विश्वास न था, और यह ठीक भी था, क्योंकि उधर से पं० हर्षदेवजी लिखा-पढ़ी कर रहे थे, इधर से फ़ौज़ी तैयारियाँ भी हो रही थीं। ज्यों ही गढ़वाली राजा ने कुमाऊँ पर चढ़ाई की, और पं० हर्षदेव जोशी को चकित करना चाहा, त्यों ही यह जानकर अफ़सर एक बड़ी सेना लेकर युद्ध के लिये प्रस्तुत था। वास्तव में कुमाऊँ की सेना इतनी ज़्यादा थी कि गढ़वाली राजा को भागना पड़ा, और वह जंगल में ही मर गये। दूसरा वृत्तांत यह है कि वह हर्षदेवजी की आज्ञा से क़त्ल किये गये। कुमय्यें इस विजय से इतने प्रसन्न हुए कि वे लूट-पीट करते हुए श्रीनगर तक पहुँचे, बहुत से गाँवों में आग लगा दी। रास्ते में उन्होंने देवलगढ़ के पवित्र-मंदिर को भी लूट लिया। गढ़वाल में अब तक इस ज़बरदस्त लूट-खसोट को 'जोश्याणी' कहते हैं

क्योंकि जोशियों की ही कुमंत्रणा से श्रीनगर व आस-पास के गाँवों में खूब लूट-धाड़ हुई, और नर-हत्याएँ भी बहुत हुईं।

जब हर्षदेवजी जंग से लौटे थे, तो उनके सहायक कार्यकर्ता पं० जयानंद जोशी भी मर गये। पं० हर्षदेवजी ने अल्मोड़ा आकर अपनी स्थिति को मज़बूत करना चाहा, पर उनकी स्वार्थपरायण कूटनीति से चारों ओर उनके शत्रुओं की संख्या बहुत बढ़ गई थी। प्रायः सब श्रेणी के लोग उनके ख़िलाफ़ हो गए थे, क्योंकि लोग उनके रात-दिन के षड्यंत्र (चाले), मार-काट तथा लूट-खसोट से तंग आ गये थे।

---

९३. गढ़वाल में नृप-परिवर्तन

गढ़वाल में राजा जयकीर्तिशाह के मरने पर उनके छोटे भाई पराक्रमशाह ने आप राजा होना चाहा, लेकिन राज के पंचों ने पं० हर्षदेव जोशी के पास सूचना भेजी कि गढ़वाल-राज्य का बंदोबस्त राजा प्रद्युम्नचंद की मर्ज़ी के मुताबिक़ होवे। निश्चय यह हुआ कि राजा का राज्य-विस्तार होने से ठौर-ठौर का अलग राजा नहीं होता, राजा एक ही रहता है। इस कारण राजा प्रद्युम्नचंद गढ़वाल व कुमाऊँ दोनों के राजा रहे। यह फ़ैसला सिवाय कुँ० पराक्रमशाह के और सबों के पसन्द आया, क्योंकि वे ख़ुद राजा होना चाहते थे। पर उनकी सब तजवीजें कच्ची व निकम्मी होती थीं। उनके मददगारों में भी प्रायः सब व्यक्ति लचर नीति वाले होते थे। तभी से यह पर्वती क़िस्सा चलाः—

"कौ लाटा काथ बाँच सुण काला तू,
अनालेले घर मुसो दौड़ ।डुना तू।"

बाद को राजा प्रद्युम्नचंद अपने मौरूसी राज्य गढ़वाल में दखल लेने तथा उसका बंदोबस्त करने को अल्मोड़ा से गये। कुमाऊँ-राज्य का प्रबंध पं० हर्षदेव जोशीजी के हाथ में रहा। राजा प्रद्युम्नचंद गढ़वाल में जाकर अपने राज्य में राजा बने, और प्रद्युम्नशाह कहलाये।

---

९४. राजा मोहनचंद का षड्यंत्र

उधर राजा मोहनचंद ने फिर आग भड़काई। दक्षिण में काशीपुर के दीवान नंदराम को भी अपने पक्ष में किया, पूरब से राजा मोहनचंद व उनके भाई कुँ० लालसिंह आये। उधर से कुँ० पराक्रमशाह भी गढ़वाली फ़ौज

लेकर दौड़े चले आये। गढ़वाली राजा प्रद्युम्नशाह उर्फ़ प्रद्युम्नचंद तो पं० हर्षदेवजी की ओर थे, पर उनके भाई कुँ० पराक्रमशाह विरुद्ध थे। ये सब लोग पट्टी तल्लादोरा के पाली गाँव में एकत्र हुए। हर्षदेवजी सेना लेकर नैथाणागढ़ी में गये। जोशीजी और सेना के इन्तज़ार में थे, पर कोई भी लोग सहायता को न आये, बल्कि बहुत से भागकर दूसरी ओर चले गये। और साफ़-साफ़ कहने लगे कि वे उस राजा के लिए न लड़ेंगे, जो दिल में गढ़वाली था, और ज़ाहिरा कुमय्याँ बनता था, और कुमाऊँ की गद्दी की भलाई सोचना छोड़कर श्रीनगर की भलाई चाहता था। इस युद्ध में हर्षदेवजी की पूरी-पूरी हार हुई, और उन्हें बढ़ापुर की ओर भागना पड़ा। बेचारे प्रद्युम्नशाह भी गढ़वाल को भाग गये। इस प्रकार ७ वर्ष राज्य कर गढ़वाली राजा प्रद्युम्न-शाह का कुमाऊँ की राजगद्दी से प्रस्थान हुआ। राजा मोहनचंद ने हर्षदेवजी का पीछा उनको मारने के इरादे से किया, पर वह हाथ न आये।

राजा प्रद्युम्नचंद के समय के ये ताम्र-पत्र पाये गये हैं:—

१. सन् १७८१ पं० कृष्णानंद जोशी के नाम।
२. ,, १७८२ पं० बेनीराम उप्रेती के नाम।
३. ,, १७८४ पं० रेवाधर व बालकृष्ण जोशी के नाम।

---

९५. (६०) राजा मोहनचंद (दूसरी बार)

[सन् १७८६—१७८८]

अनेक जलवायु का सेवन करते, स्वदेश, विदेश, व परदेशों की ख़ाक छानते, अनेक समय, कुसमय, असमय, को देखते, मित्र, कुमित्र, सुमित्र, अमित्र सभी से प्रार्थना करते हुए अन्त में सन् १७८६ में अपने सब बैरियों को हराकर राजा मोहनचंद अल्मोड़ा में सर्वेसर्वा हो गये। बढ़ापुर में हर्षदेव का पीछा कर, काशीपुर के रास्ते लौट, राजा मोहनचंद मय अपने भाई कुँ० लालसिंह के अल्मोड़ा-महल में दाखिल हुए। पर खज़ाना ख़ाली था। फ़ौज को धन देने को द्रव्य न था। राजा मोहनचंद ने राज में 'माँगा' कर लगाया। कालीकुमाऊँ वालों की औरतों व बाल-बच्चों को पकड़कर तंग किया। ४ लाख रुपया कुमय्यों से लिया। दोनों महर व फर्त्याल दलों से धन वसूल किया। इस समय महरा दल ने फर्त्याल दल से कहा कि उस दल (फर्त्याल दल) ने जोशियों के तरफ़दारों का माल तो लूटा था, पर हम तो इस पर्वती क़िस्से के मुताबिक मारे गये:—

"चारो खै ग्यै तीतर चाखुड़ ।
जिबाली पड़ा मुस भ्याकुड़ ॥"

पं० हर्षदेव जोशीजी तराई-भावर की ओर भागे थे, वहाँ से उन्होंने गढ़वाल के राजा से मदद माँगी, पर प्रद्युम्नशाह गद्दी पर न थे। उनसे न तो गढ़वाली ख़ुश थे, न उन पर कुमय्यों का प्रेम था। इस पर वे राज-काज से एक प्रकार तटस्थ-से हो गये थे। यद्यपि ऐसा कहा जाता है कि कभी-कभी राजा पराक्रमशाह व राजा प्रद्युम्नचंद दोनों भाई मिल जाते थे, कभी ये दोनों अलग अलग हो जाते थे। राजा मोहनचंद ने राजा पराक्रमशाह के साथ संधि कर ली, जिससे दोनों राजा अपने-अपने राज्य में शान्ति-पूर्वक राज्य करें। अस्तु, जब हर्षदेवजी को कहीं से मदद न मिली तो उन्होंने अपने ही बल से बढ़ापुर में एक अच्छी सेना एकत्र की, और कुमाऊँ पर चढ़ाई कर दी। उधर राजा मोहनचंद केवल लूट-धाड़ में लगे थे। खज़ाना ख़ाली था, फ़ौज तनख़्वाह को चिल्ला रही थी और यह राजा भोग-विलास में इतने मस्त थे कि हवालबाग़ के रास्ते सिटौली व रैलकोट में हर्षदेवजी के आ जाने पर भी इन्हें ख़बर न थी। हर्षदेवजी की सेना में कुछ मुग़ल, कुछ बढ़ापुर के ठाकुर थे, बाक़ी उनके कुमय्यें साथी थे। रैलकोट व सिटौली के बीच विकट युद्ध हुआ। थोड़ी देर तलवार व बंदूकों का बाज़ार काफ़ी गरम हुआ। इस लड़ाई में राजा मोहनचंद के बड़े लड़के युवराज बिशनसिंह मारे गये। इस पर राजा घबड़ाये। उनकी फ़ौज के पैर उखड़ गये। राजा मोहनचंद तथा कुँ० लालसिंह दोनों बंदी बनाये गये। हर्षदेवजी की जीत हुई।

कुँ० लालसिंह को माफ़ी मिल गई, और वह छोड़ दिये गये, क्योंकि पं० हर्षदेव तथा कुँ० लालसिंहजी की दोस्ती थी। एक बार उन्होंने भी हर्षदेवजी की जान बचाई थी। कुँ० लालसिंह को पकड़कर छोड़ देने के कारण पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं कि एक नगरकोटिया सरदार इस्तीफ़ा देकर चला गया। कुँ० लालसिंह अपने भतीजे कुँ० महेन्द्रसिंह (दूसरे पुत्र राजा मोहनचंद) को लेकर रामपुर चले गये। हर्षदेवजी ने राजा मोहनचंद को लेकर मय अपनी फ़ौज के नारायण तेवाड़ी देवालय में डेरा किया। वहाँ राजा मोहनचंद क़ैद में रहे। पं० रुद्रदत्त पंतजी कहते हैं कि बाद को राजा मोहनचंद पंचों की राय से संवत् १८४५ सन् १७८८ में मारे गये। फ़्रैंसिस हैमिल्टन लिखते हैं—"हर्षदेवजी ने राजा को न मारने का बहाना कर उसको विना खाने के रक्खा और रोज़ पीटा, जब तक कि वह मर न गया। कई

दिनों तक राजा भूखा रहा, उसने तंगी सहीं......।" इस प्रकार राजा मोहनचंद के तूफ़ानी जीवन का अन्त हुआ, और आपके साथ ही कुमाऊँ के चंद राज्य का सूर्य भी अस्त हो गया।

दूसरी बार के अपने राज्यकाल में राजा मोहनचंद ने ये जागीरें प्रदान कीं:—

१. सन् १७८६ बागीश्वर-मंदिर।
२. ,, १७८७ ,, ,, ।
३. ,, १७८७ भैरव-मंदिर, अल्मोड़ा।
४. ,, १७८८ बागीश्वर-मंदिर।
५. ,, ,, भैरव-मंदिर, अल्मोड़ा।
६. ,, ,, रघुनाथ ,, ,, ।
७. ,, ,, बदरीनाथ,, ,, ।
८. ,, ,, पवनेश्वर-मंदिर, सालम।

राजा मोहनचंद को मारकर पं० हर्षदेवजी फिर कुमाऊँ के सर्वेसर्वा हो गये। उन्होंने गढ़वाल के राजा प्रद्युम्नचंद उर्फ़ प्रद्युम्नशाह को लिखा कि कुमाऊँ का राज्य उनका है, वह आकर राज्य करें, पर राजा ने पुराने ज़माने की मुसीबतों की याद कर तथा राजा पराक्रमशाह के मना करने से कुमाऊँ में दुबारा आने से इनकार किया। इस तरह कुमाऊँ की गद्दी कुछ दिनों विना राजा के रही। सारा राज्याधिकार पं० हर्षदेव जोशीजी के हाथों में रहा।

---

९६. (६१) राजा शिवसिंह उर्फ़ शिवचंद

[सन् १७८८]

कुमाऊँ की राजगद्दी पर राजा न होने की परिस्थिति बहुत दिनों तक न रही। पं० हर्षदेवजी यह बात अच्छी तरह जानते थे कि वह किसी चंद के नाम से ख़ुद राज्य कर सकते थे, किन्तु इच्छा होने पर भी वह अपने को गद्दी पर न बैठा सकते थे, क्योंकि वह जानते थे कि उनका वंश राजगद्दी पर स्थित न रह सकेगा। अतः उन्होंने फिर किसी चंदवंश के अवतंस की खोज की। राजा उद्योतचंद के एक रिश्तेदार कुँ० शिवसिंह उन्हें मिले, अतः उन्हीं को शिवचंद के नाम से राजा बनाया गया। वास्तव में यह तो मिट्टी के महादेव थे। प्रधान पुजारी तो हर्षदेवजी स्वयं थे। राजा शिवसिंह उर्फ़ शिवचंद जमराड़ी के रौतेला थे। ये नाम-मात्र के राजा थे। राजा प्रद्युम्नचंद के समय

से गोरखा-विजय तक सारा राज्य प्रबंध प्रायः जोशियों के अधिकार में रहा। यह राज्यकाल 'जोश्याल' के नाम से प्रसिद्ध है।

९७. कुँ० लालसिंह की जय

इस बार हर्षदेवजी अपनी राजनैतिक स्थिति को ठीक-ठीक न सँभाल सके थे कि कुँ० लालसिंह ने नवाब रामपुर (नवाब फ़ैज़उल्लाखाँ) की मदद से फिर कुमाऊँ पर चढ़ाई शुरू कर दी। पहली लड़ाई भीमताल के ढुंगसिल-नामक स्थान में हुई। इसमें अल्मोड़ा के राजा शिवचंद की फ़ौज के सरदार श्रीगदाधर जोशी मारे गये और फ़ौज में भगदड़ पड़ गई। कहते हैं, इस विजय से कुँ० लालसिंह इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने गदाधर का सिर काटा, और उसे अल्मोड़ा ले जाकर तल्लामहल के गणेश देउल के सामने अखरोट के पेड़ में लटका दिया था।

राजा की फ़ौज तथा हर्षदेवजी गढ़वाल को भागे, और कुँ० लालसिंह भागते हुए जोशी नेता तथा फ़ौज का पीछा करते हुए गढ़वाल के उल्कागढ़-नामक स्थान में पहुँचे। यहाँ पर पं० हर्षदेवजी ने अच्छा मुक़ाबिला किया और भारी संग्राम के बाद कुँ० लालसिंह को कोशी के चूकम-नामक गाँव में शरण लेने को बाध्य किया। यह घटना संवत् १८४६ सन् १७८६ की है। इसमें काफ़ी मुसलमान मारे गये थे। इस बीच में एक दूसरी गढ़वाली सेना आ गई। इसको राजा प्रद्युम्नशाह के छोटे भाई कुँ० पराक्रमशाह ने भेजा था। इसने कुँ० लालसिंह की मदद की और उसने संग्राम में फिर से आकर पं० हर्षदेवजी को मार भगाया। पं० हर्षदेवजी श्रीनगर में राजा प्रद्युम्नशाह उर्फ़ प्रद्युम्नचंद की शरण गये। राजा प्रद्युम्नशाह तो पं० हर्षदेव जोशीजी के पक्ष में थे, पर उनके भाई राजा पराक्रमशाह ज़िद्दी व अपने मन के थे। वह कुमाऊँ राजा से १½ लाख रुपया सालाना नज़राना लेकर राजा मोहनचंद की संतान को गद्दी पर बैठाने के पक्ष में थे। दोनों भाइयों की रायें भिन्न थीं, जैसाकि पहले से होता आया था। जब कि राजा प्रद्युम्नशाह ने जोशियों को अपने यहाँ शरण दी, राजा पराक्रमशाह सेना लेकर अल्मोड़ा पहुँचे और राजा मोहनचंद के पुत्र कुँवर महेन्द्रसिंह को केवल ४००००) लेकर राजा बनाया। वह भी ऐसे समय जबकि कुमाऊँ का सारा राज्य उनके हाथ में आ गया था। वह चाहते, तो ख़ुद राजा बन जाते।

---

९८. (६२) राजा महेन्द्रचंद

[सन् १७८८—१७९०]

राजा शिवचंद एक साल भी गद्दी पर न बैठने पाये। कुँ० लालसिंह से हराये जाने पर वह पं० हर्षदेव जोशीजी के साथ गढ़वाल को भाग गये थे क्योंकि वह वास्तव में पं० हर्षदेव जोशीजी के ही स्थापित किये हुए थे। फिर उनका पता नहीं चलता कि वह कहाँ गये, और उनका अन्त कैसे हुआ। सन् १८८८ में राजा मोहनचंद के पुत्र राजा महेन्द्रचंद गद्दी पर बैठे। राजा के चाचा कुँ० लालसिंह ने सब ऊँचे पद दीवान व बक्सी के अपने हाथों में ले लिये। उन्होंने जोशियों को .खूब तंग करना शुरू किया। कई देश से निकाले गये, कुछ क़ैद किये गये। कई को शायद फ़ाँसी पर भी चढ़ाया गया। उनकी जायदादें ज़ब्त हुईं। राजा पराक्रमशाह ने गढ़वाल में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि जिससे पं० हर्षदेव जोशीजी को वहाँ से भागना पड़ा। वह बरेली में सूबेदार मिर्ज़ा मेंहदीअलीबेग़ की शरण में पहुँचे। जब कुँ० लालसिंह को यह मालूम हुआ, तो यह समझकर कि न जाने वहाँ भी पं० हर्षदेव जोशी कुछ षड्यंत्र न रचे, फ़ौरन् सन् १७८९ में नवाब अवध से भेंट करने को गये, जबकि वह छखाता भावर के मुक़ाम खेड़ा में, जो काठगोदाम व हल्द्वानी के पूर्व तरफ़ गौला पार है, शिकार खेलने को आये थे। वहाँ पर उन्होंने कहा कि कुमाऊँ का राजा बराबर अवध-दरबार का मित्र रहा है, और तराई में नवाब की प्रभुता भी उन्होंने स्वीकार की।

पं० रुद्रदत्त पंतजी इस अन्तिम बात का ज़िक्र नहीं करते, बल्कि वह लिखते हैं—"इस बीच कुँ० पराक्रमशाह ने राजा प्रद्युम्नशाह को गढ़वाल के राज्य-शासन से अलग करना चाहा, तो राजा प्रद्युम्नशाह ने (पूर्व उपकार के बदले) पं० हर्षदेव जोशी को गढ़वाल में पैडूलस्यूं पट्टी जागीर में देकर अपनी सहायता के वास्ते रक्खा। इस बात की ख़बर पाकर कुँ० पराक्रमशाह ने पं० हर्षदेवजी को क़ैद करने की तजवीज़ की। हर्षदेवजी गढ़वाल से बढ़ापुर होकर बरेली गये। सूबा बरेली ने उन्हें ढाढ़स दिया, तथा १०) रोज़ देकर बरेली में ठहराया, और कहा कि वह मदद देकर उन्हें कुमाऊँ में उनके अधिकार दिला देंगे।"

राजा महेन्द्रचंद २ साल के लगभग कुमाऊँ के राजा रहे। सन् १७९० में नैपाल के राजा रणबहादुरशाह ने कुमाऊँ को अपने राज्य में मिलाने का

निश्चय किया। पं० हर्षदेवजी की लिखा-पढ़ी नैपाल से हुई। उसी साल क़ाज़ी जगजीत पांडे की मार्फ़त लाल मोहरवाला फ़रमान पं० हर्षदेवजी के नाम नैपाल से आया कि वह गोरखा सेना में शामिल होकर कुमाऊँ के विरुद्ध लड़ें, तो उनको वे कुमाऊँ में अधिकार दिलावेंगे। सन् १७९० में गोरखों ने कुमाऊँ पर अधिकार कर लिया। चंद हार गये, और तराई के रुद्रपुर इलाक़े में रहने लगे।

---

९९. मोहनचंद का वंश

राजा मोहनचंद के ख़ानदान के कई लोगों के नाम ऊपर आ गये हैं। इस ख़ानदान के बारे में कुछ और बातें लिखनी ज़रूरी हैं। श्रीबैटन साहब ने कुँ० मोहनसिंह उर्फ़ मोहनचंद को 'राजा दीपचंद का अज्ञातरूप से उत्पन्न अर्थात् नाजायज़ भाई बताया है' और मि० .फ्रेज़र ने सन् १८१४ की अपनी रिपोर्ट में इस ख़ानदान की उत्पत्ति कुँ० पहाड़सिंह से बताई, जिसको उन्होंने राजा बाजबहादुरचंद की नर्तकी का पुत्र बताया है। वह लिखते हैं—"कुँ० पहाड़सिंह के पुत्र कुँ० हरीसिंह थे, जिनके कुँ० मोहनसिंह उर्फ़ मोहनचंद जायज़ पुत्र थे। रौतेलों में चंदवंश के छोटे भाइयों के दोनों विवाहिता व अविवाहिता स्त्रियों से उत्पन्न पुत्र शामिल किये जाते हैं। पहाड़ में जायज़ व नाजायज़ संतान में कुछ भी फ़र्क नहीं माना जाता रहा है।" .फ्रेज़र साहब फिर लिखते हैं—"पं० हर्षदेव जोशीजी ने भी कुँ० मोहनसिंह को शाही ख़ानदान का माना है, यद्यपि वह वेश्या का पुत्र था, और नाजायज़ तौर पर उत्पन्न हुआ था। अतः वह पर्वती रिवाज के मुताबिक रौतेला कहा जावेगा, जोकि राजसी ख़ानदान में पैदा हुआ।"

.फ्रेज़र साहब का यह कहना कि "पहाड़ में जायज़ व नाजायज़ संतान में कुछ भी फ़र्क़ नहीं" सरासर ग़लत है। चंदों व रजवार अस्कोट के बारे में यह बात ठीक नहीं है, जैसा कि मि० पन्नालाल ने भी अपनी 'कुमाऊँ के रस्म-रिवाज' नामक पुस्तक में लिखा है। यह बात साधारण खस-जाति के बारे में सही हो सकती है, जिनमें अविवाहिता या 'ढांटी' के पुत्र भी पैतृक संपत्ति में हक़दार हो सकते हैं, पर विशुद्ध राजपूतों तथा उच्च कुल के ब्राह्मणों के लिये यह बात लागू नहीं।

अन्य किसी भी लेखक ने इन्हें नाजायज़ नहीं कहा है। हमने ३-४ वंशावलियाँ देखी हैं। जब राजा काशीपुर ने गज़ेटियरों के लेखों को प्रतिवाद

किया, तथा मानहानि की धमकी दी, तो वह भूल सुधार ली गई है। वंश-वृक्ष इस प्रकार है:—
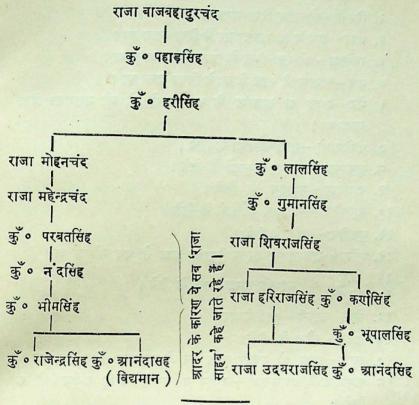
१००. चंदों की कर-नीति

अठकिंसन साहब लिखते हैं—

"चंदों के समय में ज़मीन का मालिक 'थातवान' कहलाता था। 'थात' के मानी ज़मीन के हैं। 'खायकर' व 'सिरतान' शब्द भी चंदों के हैं। खायकर वह कहा जाता था (और अब भी कहा जाता है), जो ज़मीन की पैदावार कमाकर खावे, और साथ ही रक़म यानी मालगुज़ारी भी दे। खायकर अनाज तथा नक़दी दोनों देता था। सिरतान उस असामी का नाम था (और है), जो नक़द टैक्स या कर देता था। कैनी खेत में काम करनेवाले गुलाम थे, और छयोड़ा भी मोल लिये घरेलू नौकर (दास) तुल्य होते थे। चंद-राजाओं के समय में ३६ क़िस्म के राजकर होते थे, जिनको थातवान राजकोष में जमा करते थे। उनमें से मुख्य ये थेः—

१. ज्यूलिया या झूलिया—जो झूलों या नदी के पुलों पर लिया जाता था।
२. सिरती—जो नक़द दिया जाता था।
३. बैकर—अनाज जो राजदरबार में दिया जाता था।
४. राखिया—जो रक्षा-बंधन के समय लिया जाता था।
५. कूत—अनाज जो रक़म के बदले लिया जाता था।
६. भेंट—राजा या राजवंश के राजकुमारों को जो नज़राना दिया जाता था।
७. घोड़ियालो—राजा के घोड़ों के लिये।
८. कुकरयालो—राजा के कुत्तों के लिये।
९. बाजदार—महाजन के लिये।
१०. बाजनियाँ—नर्तक व नर्तकियों के लिये।
११. भुकड़िया—सईस के लिये।
१२. माँगा—ज़रूरत पर जब कभी राजा प्रजा से धन माँगता था।
१३. साहू
१४. रंतगली } महाफ़ीस तथा लेखक के लिये।
१५. खेनि कपीनी—कुली बेगार।
१६. कटक— फ़ौज के लिये।
१७. स्यूक—राजा को मुकर्रर समय पर जो नज़राना दिया जाता था।
१८ कमीनचारी, सयानचारी—कमीन व सयाने आदि कर्मचारियों के लिये।
१९. गरखा नेगी—पटवारी व कानूनगोय के लिये।

'थातवान' अपनी 'थात' को सहसा छोड़ नहीं सकता था, और वहाँ की मालगुज़ारी का ज़िम्मेदार रहता था, चाहे ज़मीन कोई कमावे। मालगुज़ारी या रक़म वसूल करने के हुक्म बड़े सख़्त थे। कर की माफ़ी कठिनता से मिलती थी। सिर्फ़ अकाल के समय रक़म माफ़ होती थी। थातवान अपनी ज़मीन दूसरों को कमाने को दे सकता था। ये लोग थातवान के खायकर हो जाते थे, और 'सिरती' व 'ज्यूलिया' राजकर देने को बाध्य होते थे। थातवान ज़्यादातर खस राजपूत थे। उच्च जाति के लोग अपने को गर्खा कहते थे। उनमें भी 'कैनी' व 'छयोड़े' थे। थातवान भी कैनी हो जाता था, उस समय जबकि राजाः—

(१) ज़मीन संकल्प कर ब्राह्मण को दे देता था।

(२) या लड़ाई में मरनेवालों को रौत में देता था।
(३) या अपने दरबारी या अन्य को जागीर में देता था।

जो बात चाहे, राजा भूमि का मालिक होने से कर सकता था। ऐसे समय 'थातवान' जागीर पानेवाले का 'कैनी' हो जाता था।

यदि थातवान अपनी थात को छोड़ना चाहता था, तो वह थात की कुछ मिट्टी या एक पत्थर का टुकड़ा लाकर उसमें एक पैसा रख राजदरबार में राजा के सामने थात से अलग किये जाने की फ़रियाद करता था। कोई भी थातवान ज़बरदस्ती कैनी नहीं बनाया जाता था। यदि उसने कैनी होना स्वीकार कर लिया, तो वह गर्खा के पद से गिर जाता था, और उसके साथ हुक़्क़ा, पानी, ब्याह-शादी सब बंद हो जाते थे। यदि वह ज़मीन को छोड़ दे, तो वह गर्खा गिना जाता था। थातवान ज़्यादातर खस जाति के लोग थे। जिनके पास रौत व जागीर होती थी, वे अपने को रौत व जागीरदार कहते थे, यद्यपि मुक़द्दमे के समय अपनी ज़मीन को थात भी कहते थे। ब्राह्मण लोग खायकर व सिरतान न होते थे।

चंदों के समय खायकर मौरूसी न थे, वे निकाले जा सकते थे, और उनकी सन्तान बिना थातवान व मालिक की मर्ज़ी के खायकरी नहीं पा सकती थी। कर अनाज द्वारा दिया जाता था। कोई पक्की लिखा पढ़ी न होती थी। कभी-कभी खायकर को थातवान की निजी नौकरी भी करनी पड़ती थी। खायकर सिर्फ़ अपने बीज के दाम का हक़दार होता था, पर वास्तव में उस समय झगड़े बहुत कम होते थे। सिरतान नक़द धन देता था, और कोई टैक्स देने को बाध्य न था।

कैनी को थातवान की चाकरी करनी होती थी। बर्तन मलना, डाँडी ले जाना, कपड़े धोना, मृत्यु में लकड़ी ले जाना व और मदद देना, थातवान व राजा के मरने पर मुंडन करना पड़ता था। हरएक हुक्म मानना पड़ता था। कैनी जूठा न खाता था, पर छयोड़ा जूठा भी खाता था। कैनी को काम न करने पर राजदंड मिलता था। थातवान कैनी को बेच सकता था, पर बिना ज़मीन के नहीं। छयोड़ा को जब चाहे, तब दूसरे के हाथ बेच सकता था। कैनी भी अपने हक़ तथा कर्तव्यों को दूसरे के हाथ बेच सकता था।

सयाना, बूढ़ा व थोकदार

ज़मीन कमानेवाले तथा राजा के बीच और भी कर्मचारी कहीं-कहीं होते थे, जिनका ज़मीन पर हक़ था। पाली में वे सयाने कहलाते थे। पाली में चार सयाने थे—२ मनराल, १ विष्ट, १ बंगारी। कालीकुमाऊँ व जोहारा, दार्मा में वे बूढ़े कहे जाते थे। काली कुमाऊँ में भी वे चार थेः—(१) तड़ागी,

(२) कार्की, (३) बोरा, (४) चौधरी। लेकिन यहाँ महर, फरत्याल के दो धड़े होने से ये चार के बदले ८ बनाये गये। यहाँ इनकी आलें मुक़र्रर हो गईं। पट्टी चार आल के मानी ही यही हैं कि चार धड़ों की आलः—(१) तड़ागी आल, (२) कार्की आल, (३) बोरा आल, (४) चौधरी आल। जोहार व दार्मा में अब ता सभी बूढ़े हैं, पर तब एक-एक बूढ़ा था। अन्यत्र बूढ़े व सयानों का जो पद था, वह थोकदार के नाम से प्रचलित था। इन पदाधिकारियों के कर्तव्य व हक़ दोनों थे। एक पद कमीन का भी था, पर इसे केवल राजा को भेंट, बेगार व वर्दायश देनी पड़ती थी। उसको तनख्वाह मिलती थी, उसका गाँव में हक़ न होता था। सयाने, बूढ़े, थोकदार अपने गाँव बेच भी सकते थे। मनराल क़ौम के सयाने नक़ारे व निशान रखने के अधिकारी थे। बाद को राजा बाजबहादुर-चंद ने जोहार व दार्मा के बूढ़ों को भी यह हक़ दिया। सयाने को गाँवों की थात में भोजन पाने का हक़ था, अपने व अपने साथियों के लिये, जब कि वह गाँव में जावें। हर दूसरे साल एक रुपया फ़ी घर सयाने को मिलता था। त्यौहारों में भी अपने घर के खर्च को वह सामान लेता था। फ़सल में अनाज मुक़र्रर था। और राजा के 'माँगा' कर की तरह उसका भी एक कर मुक़र्रर था, जिसे 'डाला' कहते थे। पर इस 'डाला' की तादाद को राजा ख़ास हुक्म से मुक़र्रर करता था। उसके इलाक़े में लोग उसकी जातीय सेवा भी करने को बाध्य होते थे। सयानों को टैक्स वसूल कर राज-कोष में जमा करना पड़ता था। कालीकुमाऊँ के बूढों के अधिकार भी सयानों के-से थे, पर यहाँ के बूढ़ों से राजकाज में भी सम्मति ली जाती थी। इससे उनकी स्थिति और भी मज़बूत थी। इसीलिये कुमाऊँ के इतिहास में महर, फरत्यालों ने बहुत प्रसिद्ध भाग लिया है। जोहार व दार्मा में बूढों को विशेष अधिकार प्राप्त न थे, क्योंकि वे राज्यप्रबंध से बहुत दूर रहे हैं। थोक-दार सयानों व बूढ़ों से कुछ कम गिना जाता था। वह ढोल, नक़्क़ारे व निशान नहीं रख सकता था, और राज्य प्रबंध में उसकी सम्मति नहीं ली जाती थी। किन्तु ये तीनों पदाधिकारी फ़ौजी व दैशिक मामलों में सहायता पहुँचाने को बाध्य थे।

पधान

इनके नीचे हर गाँव में एक पधान था, जिसकी प्रायः वही सेवा मुक़र्रर थी, जो अब भी है। वह मालगुज़ारी वसूल करता था। पुलिस का कार्य अपने गाँव में करता था। वह गाँव में पैदा होनेवाले 'सायर' के अधिकार में भी रहता था। यह पद मौरूसी था।

कोटाल व पहरी

पधान के नीचे कोटाल होता था, जिसे पधान रख या निकाल सकता था। यह पधान का सहायक तथा लेखक का काम करता था। इन दो कर्मचारियों के अलावा प्रत्येक गाँव में एक पहरी होता था, जो प्रायः गाँव के चौकीदार की तरह होता था। वह चिट्ठी-पत्री ले जाता था, अनाज एकत्र करता, पहरा देता तथा साधारण काम करता था। यह ज़्यादातर शूद्र वर्ण का होता था। उसको प्रत्येक कुटुम्ब यानी मौ से फ़सल में अनाज और त्योहारों में भी कुछ दस्तूर मिलता था।

उपर्युक्त वर्णन चंद-राजाओं के देशिक शासन का कैसा अच्छा नमूना है।

कूर्माचल अँगरेज़ व गोरखालियों के आने तक स्वतंत्र रहा है। और एक छोटे से पर्वती राज्य ने जिस प्रकार अपना प्रबंध चलाया, वह प्रशंसनीय है। उन दिनों इधर-उधर देखने-भालने की सुविधायें कम थीं, और न इतना विद्या का प्रचार था कि सम्पत्तिशास्त्र के आचार्य राजप्रबंध में हों, तो भी उसके प्रबंध की प्रशंसा उदार चरित लेखक मि० अठकिन्सन जिन शब्दों में करते हैं, उनको हम ज्यों-का त्यों उद्धृत कर देते हैं—"I can therefore thoroughly put this account forward as an unique record of the civil administration of a Hill state untainted almost by any foreign admixture, for until the Gorkhali Conquest and Subsequently the British occutpation Kumaon was always independent."

मि० ट्रैल साहब चंद-राजनीति पर इस प्रकार प्रकाश डालते हैं—"चंद के समय में भी पृथ्वी का मालिक (अँगरेज़ व गोरखों की नीति की तरह) राजा ही था। गढ़वाली व कुमाऊँ के राजाओं की आमदनी मालगुज़ारी में ही परिमित न थी, बल्कि तिजारत, खान, न्यायपद्धति व जंगल की सम्पत्ति तथा क़ानूनी काररवाई के लिये भी राजकर लिये जाते थे। एक टैक्स घी-कर के नाम से लिया जाता था। प्रत्येक भैंस पर ।) साल लिया जाता था। कोलियों (कपड़े बुननेवालों) को भी टैक्स देना पड़ता था। ज़मीन पर टैक्स कम था। 'ऊपराऊँ' में $\frac{1}{3}$ हिस्सा राजकर लिया जाता था। अच्छी तलाऊँ में आधा। खानों में राजा का हिस्सा आधा होता था। वसूली दो प्रकार होती थी। एक साल ज़मीन से कर वसूल किया जाता था, दूसरे साल मनुष्यों से धन लिया जाता था। तराई-भावर में 'गाय-चराई' के नाम से भी टैक्स था।

सिरती-कर बहुत हल्का था। पर राज्यशासन का खर्च चलाने को और कर विशेषकर 'मौ-कर' व गृह-कर (House-tax) थे। इन सब करों का नाम छत्तीस रक़म व बत्तीस क़लम था। कहने को ६८ कर थे, पर वास्तव में इतने न थे। ये एक प्रकार के शेष थे। कहीं ⅓ व कहीं ⅖ हिस्सा कुल पैदावार का 'कूत' के रूप में लिया जाता था। ज़्यादातर चावल ही लिये जाते थे। ज़्यादा-से-ज़्यादा 'कूत' एक परगने में, एक बीसी ज़मीन में (जो एक एकड़ में २० गज़ कम होती है), १२ पिड़ाई यानी ४½ मन गेहूँ होता था। एक बीसी ज़मीन में २६ मन चावल तथा १० मन गेहूँ पैदा होते थे। खायकर को इस कूत के अलावा 'भेंट' भी देनी पड़ती थी। कैनी को मालिक की सीर की ज़मीन कमानी पड़ती थी, और उसका बोझ भी ले जाना पड़ता था। पाहीकाश्त ज़मीनों में रक़म की शरह भिन्न थी। अच्छे बसे हुए गाँवों में रक़म की दर कम थी, और जहाँ ज़मीन कमअसल होती थी, वहाँ भी साधारण सिरती ली जाती थी।

चंदों ने गूँठ में बहुत-सी ज़मीन चढ़ाई। उन दिनों प्रजा व परमात्मा दोनों को प्रसन्न करने का तरीक़ा यही था कि मंदिर बना दिये, और उनमें ज़मीन चढ़ा दी। यदि मंदिर का पुजारी धर्मात्मा हुआ, तो वह वहाँ पर शिक्षा, सत्संग व सदुपदेश से सुघड़ वातावरण उत्पन्न कर देता था, अन्यथा धूर्त, लम्पट व स्वार्थी लोगों के हाथों में इन संस्थाओं के आ जाने से ये संस्थाएँ व्यभिचार व दुराचार के अड्डे बन जाती थीं, जैसा कि प्रायः इन दिनों हो रहा है। कुमाऊँ का ⅕ हिस्सा पैदावार व उपजाऊ भूमि का गूँठों में चढ़ा है। कुछ महंत व मठधारी लोग मौज उड़ाते हैं। रिआया भूखों मरती है।

फ्रैंसिस हैमिल्टन साहब ने नैपाल के बारे में जो इतिहास लिखा है, उसमें कुमाऊँ के विषय में जो बातें लिखी हैं, उनको यहाँ पर उद्धृत करते हैं:—

"राइट साहब कहते हैं कि उनको कुमाऊँ के बारे में जो बातें ज्ञात थीं, वे उनको श्रीप्रतिनिधि तेवाड़ी व श्रीकनकनिधि तेवाड़ी ने बताई थीं। ये दो भाई कुमाऊँ से नैपाल गये थे। बड़े विद्वान् थे। इनके पूर्वज भी जयदेव त्रिपाठीजी राजा सोमचंद के साथ कालीकुमाऊँ आये थे, और वहाँ मंत्री भी रहे। ये दोनों भाई विद्वान् थे। फ़तेहगढ़ में इन्हीं राइट साहब को पं० हरिवल्लभ पांडे भी मिले, जिन्होंने कमल-लोचन के नाम से एक नक़शा भी बनाया, जिसमें पश्चिमी नैपाल का हाल था। वह भी बड़े विद्वान् थे, तथा गढ़वाली राजाओं के यहाँ नौकर थे। यह हरिवल्लभजी चंद-राजाओं की वंशावली श्रीथोरचंद से आरंभ होना बताते हैं। जब प्रथम चंद-राजाओं ने चंपावत में राज्य स्थापित किया, तो उनकी कुल आमदनी ३०००)

सालाना थी। उस समय वह करबीरपुर (जो कार्तिकेयपुर भी कहलाता था) के राजा को कर देता था। कल्याणचंद ने जब डोटी की लड़की को ब्याह कर सोर पाया, तो करबीर-राज्य के लिये २० राजकुमार आपस में लड़े। उन्होंने रुद्रचंद को पंच बनाकर फ़ैसला करने को कहा था। रुद्रचंद ने सबको कमीना (कमअसल) बताकर स्वयं राज्य ले लिया।

"चंदो के राज्य के समय अल्मोड़ा में १००० घर थे। एक घर में यदि १० आदमी गिने जावें, तो १०००० की आबादी हुई। यदि ५ का घर या कुटुम्ब माना जावे, तो ५००० की जनसंख्या हुई।

"चंपावती व कूर्माचल (यानी कालीकुमाऊँ) में २-३सौ घर थे। बाक़ी बड़े नगर गंगोली व पाली में थे, जहाँ १०० से ज़्यादा घर थे। कुमाऊँ की आबादी ५०००० कुटुम्ब बताई गई थी। यदि १० का कुटुम्ब हुआ, तो ५ लाख की बस्ती कुमाऊँ की चंद-राजाओं के समय रही होगी, और यदि कम-से-कम ५ का कुटुम्ब माना जावे, तो ढाई लाख की आबादी कूर्माचल-राज्य की रही होगी।

"ब्राह्मण सब शुद्ध व स्वच्छता से रहते थे। खान-पान, ब्याह-शादी में परहेज़ करते थे। अहीर, जाट, लोधी, व चौहान आदि किसान जातियाँ निम्न कोटि की गिनी जाती थीं। पर्वतों में ताँबे, शीशे व लोहे की खानें थीं। पनार नदी से सोना भी निकलता था, पर बहुत कम। कूर्माचल-राज्य की आमदनी १२५०००) की थी। यह आमदनी ब्राह्मणों की जागीरों के अलावा थी। सरकार सब प्रकार अच्छी थी। प्रजा सुखी थी। गढ़वाल के राजा अजयपाल के ख़ानदान के लोग करबीरपुर को कर देते थे।"

उपर्युक्त वर्णन में और बातें ठीक ही प्रतीत होती हैं, पर थोरचंद से चंद-वंश चला यह बात ठीक नहीं। चंदवंश राजा सोमचंद से चला, यह बात ऐसी ही ठीक है, जैसे दिन के बाद रात।

नक़द आमदनी १२५०००) लिखी गई है, सो उन दिनों के हिसाब से यदि इसे सवा बारह लाख कहें, तो अनुचित न होगा। फिर नक़दी के अलावा भूमि की उपज का हिस्सा भी 'कूत' के रूप में लिया जाता था अर्थात् अनाज व अन्य पदार्थ भी लिये जाते थे व धन भी। चंद राजाओं की आमदनी खासी थी। वे धनी थे। अन्त समय की मार-काट और लूट-खसोट ने उनके ख़ज़ाने को रिक्त बना दिया था, अन्यथा चंदों का राज्य शक्तिशाली व धन-शाली रहा है।

---

१०१. चंदों का पंचायती राज्य

कहा जाता है कि साधारणतः भारतीय लोग राजा के उपासक हैं। वे राजा को विष्णु का अवतार मानते हैं। यद्यपि भारत में भी प्रजातंत्र राज्यों का ज़िक्र आया है, तथापि ज़्यादातर लोग राजाओं के राज्य के ही भक्त रहे हैं। इसी प्रकार यद्यपि चंदों का शासन भी सरसरी तौर पर देखने से एकाधिपत्य शासन कहा व माना जाता है, तथापि यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो राजा सोमचंद ने यहाँ पर आरंभ से ही पंचायती राज्य (Party System Government) की नींव डाली थी। उन्होंने महर, फरत्याल दलों की स्थापना कर जब जिस दल का ज़ोर देखा, उसी दल के नेताओं के हाथ राज्यशासन की बागडोर देकर दल-शासन-नीति को महत्त्व दिया। जिसको ज़रा और गम्भीरता-पूर्वक देखने से साफ़ ज्ञात होगा कि चंदों का राज्य वास्तव में प्रजा-राज्य या पंचायती राज्य था।

अपने शासन का श्रीगणेश राजा सोमचंद ने चार बूढ़ों से स्थापित किया। ये चार बूढ़े चार आलों के थे—(१) कार्की, (२) बौरा, (३) चौधरी, (४) तड़ागी। इनके ऊपर दो मंडल थे—मल्लामंडल, तल्लामंडल।

विसुंग में उस समय पाँच थोक रहते थे—(१) महर, (२) फरत्याल, (३) देव, (४) ढेक, (५) करायत। ये पाँचों दल ज़बरदस्त थे। उक्त चार बूढ़ों ने इन पाँचों थोकों के ऊपर कर लगाने तथा थोकदारी शासन करने का प्रयत्न किया, तो पाँचों थोकों ने बग़ावत कर दी। उन चार बूढ़ों के सिर काटे, और उनको खड में डालकर एक चबूतरा बना दिया, जिसका नाम अभी तक 'बुड़चौंरा' कहा जाता है (बुड़ = बूढ़ा + चौंरा = चबूतरा)। उनमें से एक सिरकटा बूढ़ा कुछ दूर भागकर गया था, उस ठौर का नाम उसी दिन से 'मुँड़कटा' कहा जाता है।

राजा ने इस बग़ावत का अन्त करने के वास्ते कहा कि वे पाँच थोक अपने में से दो बूढ़े यानी सयानों को पंच छाँटें, उनकी राय भी राजकाज में ली जावेगी। उन्होंने एक महर व एक फरत्याल दो दलों के दो आदमियों को छाँटा। ये बड़े पंच समझे गये। बूढ़े बनाये गये। इन्हें भी पगड़ी दी गई। इनकी प्रतिष्ठा भी उक्त चार बूढ़ों के समान होने लगी। राजकाज में इन्हें भी अधिकार मिला। इनकी प्रभुता को देखकर उक्त पाँच थोकों में से तीन अन्य थोक (१) ऐर, (२) देव, (३) करायत जलने लगे। उन्होंने आपस में कहा कि पाँच थोक बराबर थे। अब ये दो दल पगड़ी पाकर प्रतिष्ठित बन

गये हैं, किन्तु वे ज्यों-के-त्यों रह गये। महरा व फरत्याल दोनों थोक के नेता राजनीति-निपुण थे। फरत्याल ने अपना एक भाई महरा को और महरा ने एक भाई फरत्याल को दिया। इस प्रकार पाँचों थोकों के कुटुम्ब आपस में दो दलों में बँट गये।

यह प्रथा तमाम कूर्मांचल में फैल गई। कहा जाता है कि इन पाँचों दलों की राय से राजकाज चलाया जाता था। जहाँ इनकी पंचायत होती थी, उस स्थल का नाम 'बाजाखल' है। वहाँ पर इस समय कर्ण करायत का स्कूल है। पंचायत में पाँच थोकों के पाँच हिस्से बराबर लिये जाते थे। अब भी यही दस्तूर है। एक महरा व एक फरत्याल, जो एक दूसरे के धड़े या दल में चले गये, उस धड़े का उपनाम 'तेथरी' रक्खा गया। अब भी जब पंचायत होती है, तो पाँच थोकों के पाँच रुपये लिये जाते हैं, और छठा रुपया 'तेथरी' का उस धड़े के नाम से लिया जाता है।

बिसुग के ठा० जमनसिंह ढेक ने हमें यह मनोहर कहानी महरा व फरत्याल दल की उत्पत्ति के बारे में बताई—"देश से कोई दो क्षत्रिय वीर कालीकुमाऊँ में आये। राजा उस समय कुटौलगढ़ के क़िले में थे। उनकी रानी गर्भवती थीं। बच्चा अवधि से ज़्यादा पेट में रह गया। रानी कष्ट पाने लगीं। राजा ने पंडितों से पूछा, तो उन्होंने मौज़ा भेटा के साँप का दोष बताया, जो एक बड़ी शिला के नीचे था। पंडितों ने कहा जब वह साँप मारा जावेगा तब राजा के संतान पैदा होगी। राजा ने राजसभा में कहा कि ऐसा वीर कौन है जो उस साँप को मार राजा का काम सिद्ध करे। यह बात देश से आये हुए दो क्षत्रिय भाइयों ने सुनी। उन्होंने कहा—यदि वे इस काम को करेंगे, तो क्या पुरस्कार मिलेगा? राजा ने कहा कि साँप को मारने पर राज्य में पद मिलेगा। तब बड़े भाई ने गदा मारकर शिला तोड़ डाली। किस्सा भी है—'फटकशिला फोड़कर फरत्याल नाम पाया'। दूसरे भाई ने कटारे से साँप मार डाला। संभव है, वह साँप को 'मारा, मारा' कहने से मारा या महरा कहलाया। इस प्रकार महरा व फरत्याल दो नामी पुरुषों से दो दल आरंभ हुए, जो आज तक प्रसिद्ध हैं। कुछ लोग कहते हैं कि बाद को इन दो भाइयों में वृथा कलह हुआ। फरत्याल ने कहा कि वह शिला न फोड़ता, तो साँप कैसे मारा जाता। महरा ने कहा, वह कटारे से न काट डालता, तो साँप कैसे मरता, बल्कि फरत्याल को खा जाता। इस प्रकार की वितंडा बढ़ने से दो भाइयों के दो दल हो गये और ये दल राजा सोमचंद के आने के पूर्व के थे। उन्होंने तो इन दलों को काबू में कर अपना काम निकाला।"

महरा व फरत्याल की दलबंदी का ब्यौरा इस प्रकार है:—

महर-दल

पट्टी विसुंग में महरा के धड़े में:—कोट महरा, रौतेली महरा, बुंगा महरा, कांडादेव महरा।

ये फरत्याल महरा के पक्ष में हैं—(१) रतन फरत्याल, (२) बुड़चौंरा फरत्याल, (३) जस्सू फरत्याल।

देव—पहले आधे महरा आधे फरत्याल दोनों दलों में बराबर विभक्त थे। आज महरा के पक्ष में कोई नहीं।

ढेक—ढेक ऐर, मल्ला ढेक महरा के पक्ष में पहले से थे, अब भी हैं। मेदी बनेला पहले फरत्याल के पक्ष में थे। भाइयों में आपस के विरोध होने से मेदी ढेक, ऐर मल्ला ढेकों की सहायता से महरा के पक्ष में हैं।

करायत—दो गाँव हैं—(१) टाँक करायत, (२) कर्ण करायत। पहले आधे-आधे बँटे थे, आज दोनों महरा के पक्ष में हैं।

फरत्याल-दल

फरत्याल के धाड़े में—थुवा महरा, तल्ला मल्ला डुंगरी, चौमोला, मेदी, शिवदास, पदी फरत्याल उर्फ़ सौंरू। देव पहले आधे थे, अब सब फरत्याल के पक्ष में हैं। ढेक आधे-आधे थे। आज बनेला ढेक फरत्याल के पक्ष में हैं।

इस महरा व फरत्याल दलबंदी के वर्णन से साफ़ ज़ाहिर हो जावेगा कि महरा व फरत्याल दल कोई ऐसे दल न थे, जिनमें अदलाव बदलाव न हो। फरत्याल महरा के और महरा फरत्याल के पक्ष में चले जाते थे। कभी-कभी वे ज़ोर से, दबाव से, या विचार-परिवर्तन से अपना दल या धड़ा बदल डालते थे। जो राजनैतिक दलबंदी में अब भी होता है।

उपर्युक्त दलों के अलावा कालीकुमाऊँ की प्रजा इन नामों से पुकारी जाती थी:—

१. चार बूढ़ा—(१) कार्की, (२) बौरा, (३) तड़ागी, (४) चौधरी।

२. पाँच थोक—(१) महरा, (२) फरत्याल, (३) देव, (४) ढेक, (५) करायत।

३. चार चौथानी—(१) देवलिया, (२) सिमल्टि या पांडे, (३) विंडा के तेवारी, (४) डड्या के विष्ट।

कोई मंडलिया पांडे तथा सैंज्याल विष्ट को भी चौथानियाँ में मानते हैं, कोई नहीं।

४. छः गौरिया या घरिया ?—शायद यह षटकुली ब्राह्मणों के लिये काम में लाया जाता हो। और इनमें बाद को आये पंत, पांडे, झा, जोशी, तेवाड़ी, भट, पाठक इत्यादि शामिल हों। यद्यपि कोई-कोई इन सबको चार चौथानियों में मानते हैं।

५. बारह अधिकारीः—(१) लड़वाल, (२) बैडवाल, (३) खतेड़ी, (४) महता, (५) धौनी, (६) मौनी, (७) लाड़, (८) स्वाल, इत्यादि।

६. पचबिड़िया—चार चौथानी व ६ घरिया या षट्कुली ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य ब्राह्मण पचबिड़िया कहलाते थे।

७. खतीमन ब्राह्मण—छोटे ब्राह्मण इस नाम से पुकारे जाते थे। डोटी में इनको खटख्वाला भी कहते हैं।

८. पौरी पंद्रह विश्वा—शूद्र (हरिजन) प्रजा इस नाम से पुकारी जाती थी। उनको भी पंचायत में बुलाया जाता था।

इन सब दलों के नेताओं को चंद-राजा दरबार में बुलाकर राज-काज की बातें पूछते थे, बाद को सारी प्रजा महर व फरत्याल धड़ों में बाँटी गई। अन्य सब धड़े उन बड़े धड़ों में विलीन हो गये। किन्तु उन महाशाखाओं की उपशाखाएँ उपर्युक्त थीं।

यह नहीं कहा जा सकता है कि दलबंदी सरकार का सारा ढाँचा राजा सोमचंद के समय में तय्यार हो गया था, जो बाद को बढ़ता गया या क्रम-क्रम से यह बढ़ोत्तरी को प्राप्त हुआ। लगभग १२००।१३०० वर्ष पूर्व की बात है, ठीक-ठीक कहना कठिन है।

इस समय की प्रजासत्तात्मक राज्य-प्रणाली से तुलना करने में वह अपूर्ण ज्ञात होगी, क्योंकि उक्त आठ व नौ सम्प्रदायों के नेतागण छोटे कम होते थे। जिस दल में जो नेता ज़ोरदार, धनवान्, विद्वान् या शक्तिवान् हुआ, वही पूज्य माना जाता था, वही नेता होता था। उस समय गुणवानों का आदर होता था। आजकल की तरह प्रत्येक व्यक्ति स्वयंभू नेता न बन जाता था। खुशामद, चुग़ली तथा देश-द्रोह से नहीं, बल्कि देशभक्ति, लड़ाई में बहादुरी या अन्य किसी सम्माननीय कार्य करने से ही लोग पूज्य माने जाते थे।

अतः उन सब नेताओं को जो सम्माननीय, विद्वान् तथा प्रजा-पूज्य होते थे, राजदरबार में बुलाकर चंद-राजा उनसे राज-काज संबंधी सम्मति लेते थे, और जिस दल का बहुमत या जिस समय ज़ोर देखा, उसी के अनुसार

शासन को चालित करते थे, बल्कि शासन की बागडोर उसी नेता को सौंपी जाती थी, जो सर्वमान्य समझा जाता था।

यह प्रणाली वर्तमान किसी भी शासन-प्रणाली से कम आदरणीय नहीं। विशेषतः जबकि देखा जाता है कि वर्तमान लोक-सत्ताक राज्य-प्रणालियों में छल, कपट, रिश्वत व धोखेबाज़ी की काफ़ी गुंजायश है। जब तक महर व फरत्याल व अन्य धाड़ों की राय से राज-काज चला, चंद-राज्य की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। पर बाद को जब कामांध राजाओं, विशेषकर राज्याधिकार-लोलुप दीवानों व मंत्रियों ने प्रजाविरुद्ध, लोकविरुद्ध, धर्मविरुद्ध तथा देशविरुद्ध काम करने आरंभ किये, दूरंदेशी छोड़कर स्वार्थसिद्धि को ही अपना लक्ष्य बनाया, तो लगभग १००० वर्ष का चंदों का पुराना राज्य—जिसको हम एक छोटा सा आदर्श राज्य कहने में संकोच न करेंगे—एक ही युद्ध में गोरखों ने ताशों के क़िले की तरह नष्ट-भ्रष्ट कर डाला, और २५ वर्ष बाद वह राज्य आसानी से अँगरेज़ों के हाथ आ गया। नैपाल व गढ़वाल ने अपने-अपने वास्ते स्वतंत्र या अर्द्ध स्वतंत्र राष्ट्र बचा ही लिये, पर कुमाऊँ सबों में शिक्षित तथा सभ्य होते हुए भी आपसी कलह तथा स्वार्थपूर्ण नीति से ऐसा जर्जरित हो गया कि गोरखों के एक ही धक्के को न सँभाल सका।

जब तक समाज के सम्माननीय सज्जनों की सुसम्मति से साम्राज्य चलाया जाता है, तो उसमें सब लोग दिलचस्पी लेते हैं। उसके लिये मरने-जीने को तय्यार रहते हैं, किन्तु जब कुछ स्वार्थी लोग केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धि को सामने रख, सब काम करते हैं, तो बड़े-बड़े साम्राज्य चौपट हो जाते हैं। एक छोटे-से कुमाऊँ-राज्य की क्या गणना ? चंदों के ताम्रपत्रों में भी सब कर्मचारियों के दस्तख़त होते थे, जिससे सब अफ़सरों की ज़िम्मेदारी का भाव सूचित होता है।

आजकल के बड़े-बड़े साम्राज्यों से मिलाने में तो कुमाऊँ-राज्य की गणना समुद्र के एक बिंदु के बराबर भी नहीं है, तथापि जब देखा जाय कि थोड़े से ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्यों ने किस प्रकार झूँसी, झाँसी या कन्नौज, जहाँ भी कहिए वहाँ से आकर यहाँ पर केवल १५ बीघा ज़मीन दहेज में पाकर इतने बड़े कूर्माचल-राज्य की नींव डाली, और सब लोगों को एक सूत्र में बाँधकर उनकी हर प्रकार सुव्यवस्था कर राज-काज चलाया, तो यह हमारे बुज़ुर्गों के लिये कम गौरव की बात नहीं, जब कि हम इस समय में एक छोटी सभा या संस्था को भी सुचारुरूप से चलाने में असमर्थ हैं।

इतिहास कूर्मांचल

पाँचवाँ भाग

५. गोरखा-शासन-काल

[सन् १७६० से १८१५ तक]

१. नैपाल का पूर्व इतिहास

चंद-राज्य के पश्चात् कुमाऊँ में पच्चीस वर्ष तक गोरखों का राज्य या शासन रहा। गोरखा एक प्रकार के फ़ौजी ढंग के लोग हैं, अतः उनका शासन भी फ़ौजी रहा। दैशिक शासन का अंश उसमें बहुत कम था। आपसी झगड़ों से कुमाऊँ-राज्य की शासन-शृंखला छिन्न-भिन्न हो गई थी। ख़ज़ाना खाली था। आपस की फूट से देश की स्थिति अस्तव्यस्त थी। सेना में गड़बड़ थी। तो भी यह ख्याल किसी को न था कि गोरखा लोग फ़ुरती से आकर लगभग १००० वर्ष के पुराने राज-शासन को एकदम अपने अधीन कर लेंगे। क्योंकि नैपाल-राज्य भी उस समय छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था। भाट-गाँव, बेनपा, ललितपाटन, कान्तिपुर अथवा काठमाँडू सब प्रान्त छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित थे। पश्चिम में डूलू, डोटी, जुमला, आछम आदि रियासतों में वैश्यवंश के राजा राज्य करते थे। पूर्व में किरान्तिवंश के छोटे-छोटे नेता राज्य करते थे। इसी प्रकार उत्तर की परिस्थिति भी थी। प्रत्येक शासक अपने को नैपाल का स्वतंत्र नृपति कहता था। इसमें से एक छोटे राज्य के शासक राजा नरभूपालशाह थे। इन्होंने पश्चिम के वैश्य राजाओं पर चढ़ाई की, पर सफलता न मिली। तब इन्होंने अपने पुत्र कुँ० पृथ्वीनारायण को भाटगाँव के राज्य में शिक्षा के लिये इस नियत से भेजा कि उस ओर का सब रहस्य उसके पुत्र को ज्ञात हो जावे। वहाँ वह राजकुमार सब बातों में दक्ष होकर सन् १७४३ ईसवी में पिता की मृत्यु पर गद्दी पर बैठे। वह बड़े चतुर थे। शासक व सेनापति दोनों थे। उन्होंने तख्त पर बैठते ही नुवाकोट पर अधिकार किया, और आस-पास के मुल्क को फ़तेह कर अच्छा धन बटोरा। धन के कारण अच्छे-अच्छे गोरखा योद्धा उनकी ओर हो गये। सन् १७६८ में उन्होंने भारी सेना लेकर नोआकाट, कीर्तिपुर, बेनपा, भाटगाँव आदि राज्यों पर अधिकार जमा लिया। बड़ी-बड़ी सख्त लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं, जिनमें बहुत से राजनीतिक अनाचार, दुराचार, पापाचार तथा अत्याचार सभी हुए, जिनका सहारा संसार के सभी ज़बरदस्त साम्राज्य-संग्रह-कर्ताओं को किसी-न-किसी रूप में लेना पड़ता है। राजा पृथ्वीनारायण सन् १७७५ में मर गए। उनके पुत्र राजा सिंहप्रतापशाह ने राज्य पाया। वह भी पूर्व में केवल

सुम्भेश्वर तक राज्य जीतकर सुरपुर को सिधारे। इनके बाद राजा रणबहादुर-शाह सन् १७७८ में गद्दी पर बैठे। उनके उम्र में छोटे होने से उनकी माता रानी इन्द्रलक्ष्मी संरक्षक (Regent) बनीं। यह बड़ी ज़बरदस्त तथा क्रूर स्वभाव की स्त्री थीं। उनकी संरक्षता में विजय का काम चलता रहा। सन् १७७९ में रानी को छोटे राजा के चाचा बहादुरशाह ने मार डाला, और राज्याधिकार अपने हाथों में ले दूसरे मुल्कों को फ़तेह करने के काम को बड़ी सरगरमी से शुरू किया। उन्होंने आछम, जुमला, डोटी के राजा पृथ्वीपतिशाह को निकाल-कर वहाँ पर अपना विजय-डंका बजाया।

लमजुंग और तांहन सबसे पहले हाथ आये। बाद को काली तक के सब चौबीसों राजा, जिनमें कच्च, परबत, प्रिसिंघ, सतून, इसनियाँ, मसकोट, डालकोट, उर्गा, गुतीया, जुमला, राघन, दारमा, जोहार, प्यूथान, धानी, जैसरकोट, चीली, गोलम, आछम, धुलेख, डूलू, डोटी आदि-आदि के थे, सब केन्द्रीय नैपाल-राज्य के अन्तर्गत हो गये। नैपाल-दरबार को कुमाऊँ-राज्य की व्यवस्था का सब हाल ज्ञात था। फिर चतुर राजनीतिज्ञ हर्षदेव जोशी-जी से उनका लिखा-पढ़ी हुई, उन्होंने रहे-सहे सब रहस्य बता दिये। और भी, यदि नैपाल-दरबार कुमोऊँ पर चढ़ाई करे, तो उन्होंने सहयोग करने का वचन दिया, और हर तरह सहायता देने को लिखा। श्रीअठकिन्सन कहते हैं—"इस बात का पूरा सबूत है कि जब गोरखाली लोग अल्मोड़ा में आये, तो उनके साथ श्रीहर्षदेव जोशीजी महाराज भी विराजमान थे। यही नहीं, नैपालियों ने उनको अपना पतिनिधि भी बनाना चाहा था, यदि गोरखा-सेना को चीन की लड़ाई में जाना पड़े तो। यह काम उनका देशद्रोह का था। मार-काट, लूट-खसोट के काम को छोड़ दें, पर दुश्मन से मिलकर अपने स्वदेश को पर-तंत्र बनाना महान् पाप है। माना कि फरत्यालों के हाथ में शासन आने से उनको कष्ट हुए हैं, पर क्या उनके शासन में फरत्यालों ने दुःख नहीं सहे ?" अठकिन्सन साहब खुद लिखते हैं—"we Find him (Harak Dev Joshi) join the Gorkhalis on their entering into Almora & also named as their representative should the Gorkhali troops be obliged to leave Kumaon against the Chinese.........For this conduct there can be no excuse & no matter how much he may have suffered at the hands of Phartiyals, the alliance of Harak Dev with the Gorkhalis cannot but be

looked on as selfish & unpratuotie (Atkinson's Gazetter vol xi. Page 609)

इन्हीं अठकिन्सन साहब ने शिवदेव जोशी व श्रीहर्षदेव जोशीजी की गुणगरिमा गाने में बहुत-सी स्याही खर्च की है, और अँगरेज़ों को भी पं० हर्षदेवजी ने काफ़ी से ज़्यादा मदद दी, किन्तु उन्हीं के एक विद्वान् अफ़सर उनको देशद्रोही बताते हैं।

२. गोरखों की चढ़ाई

इधर गोरखा फ़ौज सन् १७६० के आरंभ में डोटी से कुमाऊँ के ऊपर धावा करने को चल पड़ी, उधर सेनापति क़ाज़ी जगजीत पांडे की मार्फ़त पं० हर्षदेव जोशीजी के पास नैपाल-दरबार का लालमुहर वाला पत्र आया कि वह नैपाली सेना को मदद दें। अस्तु, हर्षदेवजी बरेली से कुमाऊँ में आये। गोरखा सेनापतियों के नाम ये थे:—चौंतरिया बहादुरशाह, क़ाज़ी जगजीत पांडे, श्रीअमरसिंह थापा, श्रीसूरसिंह थापा। एक सेना काली से सोर को गई, दूसरी सेना विसुंग पर क़ब्ज़ा करने को चली। जब इस चढ़ाई की खबर अल्मोड़ा पहुँची, तो तमाम में खलबली वा निराशा फल गई। राजा महेन्द्रचंद ने तमाम लड़नेवाले लोगों को बुलाया, और अपनी कुछ शिक्षित सेना लेकर गंगोली की ओर प्रस्थान किया। उधर श्रीलालसिंह भी उतनी ही सेना लेकर कालीकुमाऊँ की ओर बढ़े। सूबेदार अमरसिंह थापा ने कुमय्यों पर चढ़ाई की, पर राजा महेन्द्रचंद की फ़ौज ने उन्हें हरा दिया, और उन्हें कालीकुमाऊँ की ओर मुड़ने को विवश किया, जहाँ कि गोरखों को सफलता प्राप्त हुई। क्योंकि कोटालगढ़ के निकट गौतोड़ा गाँव पर उन्होंने कुँ० लालसिंह को छकाया, और उनके २०० आदमियों को मारकर उन्हें देश की ओर भागने को विवश किया। राजा महेन्द्रचंद अपने चाचा कुँ० लालसिंह की मदद के लिये जाने को थे कि उनको चाचा के हार की खबर मिली, और वह भी अपनी राजधानी अल्मोड़ा को बचाने की सब आशा छोड़कर कोटा की तरफ़ भागे, जहाँ रुद्रपुर से उसी समय कुँ० लालसिंह भी पहुँच गये। गोरखों ने इस तरह अपना रास्ता साफ़ देखकर अल्मोड़ा की ओर क़दम बढ़ाया, और हवालबाग़ के पास एक साधारण युद्ध के पश्चात् सन् १७६० तदनुसार संवत् १८४७ चैत्र कृष्णपक्ष प्रतिपदा के दिन अल्मोड़ा पर अपना आधिपत्य जमाया। पं० हर्षदेव जोशीजी क़ाज़ी जगजीत पांडे के साथ थे। खास कुमावनी सेना के वह अफ़सर बने थे।

बाद को एक बार राजा महेन्द्रचंद व कुँ० लालसिंह कालीकुमाऊँ की सिपटी व गंगोल पट्टी के बीच बिरगुल गाँव में व दूसरी बार बड़ाखेड़ा की घाटी (रास्ते) से गोरखों से अपना देश स्वतंत्र बनाने के अभिप्राय से लड़े; पर दोनों बार हार गये, और भागकर किलपुरी में रहने लगे।

३. चीन व तिब्बत से लड़ाई

सन् १७९१ में भी पं० हर्षदेव जोशीजी अल्मोड़ा में थे, और गोरखों को गढ़वाल पर विजय प्राप्त करने के लिये हर तरह से सहायता पहुँचा रहे थे। गोरखा गढ़वाल में लंगूरगढ़ से आगे न बढ़े। इस दुर्गम दुर्ग को सर करने में वे असफल रहे। और जब वे और सहायता मँगाकर इस पर फिर से चढ़ाई करने के उद्योग में थे कि नैपाल से खबर आई कि चीनियों ने नैपाल पर धावा मार दिया है, और यह भी हुक्म आया कि गोरखा अफ़सरान काली से उधर के मुल्क का अधिकार श्रीहर्षदेवजी तथा गढ़वाली राजा को देकर इधर को लौट आवें, पर राजा प्रद्युम्नशाह नैपाली अफ़सरों के रोब से ऐसे भयभीत हो गये थे कि उन्होंने २५०००) सालाना कर देना स्वीकार किया, और एक दूत नैपाल-सरकार का श्रीनगर में रखना भी मंज़र किया (इतिहासज्ञ रेपर इस जमा को ९०००) सालाना कहते हैं)। उधर नैपाल व चीन की लड़ाई के बारे में गोरखा लोगों ने कहा है कि 'उन्होंने चीन की फ़ौज के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। पर चीनी सरकारी इतिहास में कुछ और बात लिखी है। सन् १७८१ में टाशी लांमों का बड़ा लामा मरा। उसके बड़े भाई ने उसका सारा ख़ज़ाना छीन लिया, छोटे भाई को कुछ न दिया। छोटे भाई ने नैपाल से मदद लेकर तिब्बत पर चढ़ाई की। तिब्बतवालों ने नैपालियों को ७२०००) सालाना देना कहकर मोल ले लिया। यह धन न पाकर गोरखों ने सन् १७९१ में जाकर टाशी लांमों में लूट मार मचा दी। दूसरे साल चीनियों ने भारी सेना लेकर गोरखों को हराया ही नहीं, बल्कि सब हर्जाना रखा लिया, और पहले-पहल ३००० फ़ौज तिब्बत में रक्खी गई। नैपाल ने भी चीन को ख़िराज देना स्वीकर किया।

४. हर्षदेवजी फिर क़ैद

इसी लड़ाई के कारण नैपाल से लाल मुहर का हुक्म क़ाज़ी जगजीत पांडे के नाम आया था कि वह गढ़वाल का राज्य गढ़वाली राजा के तथा कुमाऊँ

का राज्य पं० हर्षदेव जोशीजी के हाथ सौंपकर मय सेना नैपाल को आवें। उस समय कुं० पराक्रमशाह ने सेनापति अमरसिंह थापा को समझाया कि कुमाऊँ का राज्य हर्षदेव को न दें, क्योंकि वह बड़ा दग़ाबाज़ व धोखेबाज़ है। उसकी पूरी-पूरी बातें वह जानते हैं। अतः सेनाध्यक्ष अमरसिंह थापा ने हर्षदेवजी को राज्य देने के बदले क़ैद कर लिया, और कहा, बाद सफ़ाई देने के कुमाऊँ का राज्य मिलेगा। पं० हर्षदेवजी ने इस बात की अपील क़ाज़ी जगजीत पांडे के पास की, तो उन्होंने कहा कि हर्षदेवजी उनके साथ नैपाल चलें, वहीं फ़ैसला होगा। जो फ़ौजी लश्कर नैपाल को चला उसके साथ गंगोली तक पं० हर्षदेव भी गये। इस बीच दूसरी 'लाल मुहर' नैपाल से आई कि चीनियों के साथ संधि हो गई है, नैपाली अफ़सरान पश्चिम का प्रान्त पहले की तरह नैपाल के अधीन करें, और अब तक यदि गढ़वाल व कुमाऊँ का राज्य किसी को नहीं दिया है, तो अब न दें। इस हुक्म के आते ही गोरखा-सेना रुक गई। इस बीच हर्षदेवजी को मालूम हुआ कि सरदार अमरसिंह थापा क़ाज़ी जगजीत पांडे की जगह में क़ाज़ी नियुक्त होंगे, अतः उनसे पिंड छुटाना कठिन होगा। इसलिये गोरखा पहरे को ग़फ़लत में पड़ा देख हर्षदेव जोशीजी क़ैद से भागकर जोहार की ओर चले गए। तब तक जोहार में गोरखों का शासन नहीं हुआ था।

इस बीच चीन से संधि की खबर आने पर गोरखा अफ़सर व सेना दोनों अल्मोड़ा को आ गये। अतः हर्षदेवजी पाली व बारामंडल में लोगों को गोरखों के खिलाफ़ न भड़का सके। जोहारी लोग फरत्याल के धड़े (दल) के थे। अतः उन्होंने ज़ाहिरा तो हर्षदेवजी को अपने यहाँ ठहराया, पर वास्तव में उन्हें क़ैद कर लिया, और उधर कु० लालसिंह तथा राजा महेन्द्रचंद को इस घटना की खबर भेजी। वे दोनों प्रसन्न हुए, क्योंकि वे दोनों अपने को कुमाऊँ का छत्रधारी राजा समझते थे। इन दोनों ने अपने एक रिश्तेदार कुँ० पद्मसिंह को भेजा। महरदल के लोग कहते हैं कि कुँ० पद्मसिंह जी हर्षदेवजी को मारने को भेजे गये, किन्तु जब वह मारा नहीं गया तो कुँ० पद्मसिंह हर्षदेवजी को क़ैद कर राजा महेन्द्रसिंह के पास लाने को भेजे गये होंगे। साँपों व सिंहों को वश में करनेवाले चतुर चालबाज़ पं० हर्षदेवजी ने एक चाल और चली। उन्होंने कुँ० पद्मसिंह को फुसलाकर अपने वश में कर लिया, और उनसे कहा कि यदि वह हर्षदेवजी की बातें मानें यह और उनके उद्योग में साथ दें, तो वह कुँ० पद्मसिंह को कुमाऊँ के तख़्त पर बिठा देंगे। हर्षदेव ने यह भी कहा कि लालसिंह व महेन्द्रसिंह असली नहीं, असली तो कुँ० पद्मसिंह हैं। अतः वह

उनको कुमाऊँ की राजगद्दी पर बैठाने का प्रयत्न करेंगे। सीधे-सादे कुँ० पद्मसिंह हर्षदेवजी की बातों में आ गये। हर्षदेवजी अब यही चाहते थे कि जिस तरह हो, राजा महेन्द्रचंद तथा कुँ० लालसिंह अल्मोड़ा न आवें। थापा दल के गोरखों को तो वे शत्रु बना ही चुके थे, उनको भी वह घृणा की दृष्टि से देखते थे। अतः कुँ० पद्मसिंह को साथ लेकर वे फिर गढ़वाली राजा की शरण में गये कि देखें वह क्या मदद देता है। पर राजा प्रद्युम्नशाह ने तोबा कर ली कि वह अब कभी कुमय्यों की राजनीति में दखल न देगा, और गोरखों के साथ उसे जो कुछ भुगतना पड़ा, उससे उसने उनके ख़िलाफ़ किसी झगड़े में अपने को डालना ठीक न समझा। कुँ० पद्मसिंह अपने दोस्तों के साथ कोटा को लौटने को बाध्य किये गये, क्योंकि गढ़वाली राजा ने कोई मदद देना स्वीकार न किया, और पं० हर्षदेवजी श्रीनगर में अपनी उधेड़बुन में लगे रहे, और गढ़वाल ने जो-जो तंत्र अपनी रक्षा के लिये रचे, उनमें ये भी प्रधान भाग लेते रहे।

राजा महेन्द्रचंद तथा कुँ० लालसिंह ने कई उद्योग गोरखों से राज्य छुटाने के किये, पर वे असफल रहे, क्योंकि कालीकुमाऊँ में महरों ने भी साथ न दिया।

---

५. रोहिला युद्ध

सन् १७९४ में नवाब महम्मदअलीखाँ को उनके भाई ग़ुलाममहम्मदख़ाँ ने मार डाला। मृत नवाब की बेगम ने नवाब वज़ीर अवध के यहाँ अर्ज़ी भेजी। नवाब वज़ीर धन लेकर इस मामले को रफ़े-दफ़े करने को थे कि अँगरेज़ी फ़ौज फ़तेहगढ़ से बरेली भेजी गई। श्री वारनहेस्टिंग्स की आज्ञा से यह युद्ध हुआ था। बरेली में अँगरेज़ी सेना नवाब वज़ीर अवध व उसकी सेना के इन्तिज़ार में थी कि नवाब ग़ुलाममहम्मदख़ाँ की फ़ौज ने पहले ही धावा बोल दिया। यह युद्ध बिठौरा गाँव के पास शंका नदी के किनारे हुआ, जो बरेली से पश्चिम की ओर लगभग ७ मील पर है। इस लड़ाई में नवाब ग़ुलाम-महम्मदख़ाँ हारकर भागे। पहले वे कुमाऊँ के भावर, फिर नाबेरना में आकर छिपे। अठकिन्सन साहब कहते हैं कि वे गढ़वाल के फ़तेचौड़-नामक स्थान में छिपे थे, पर पं० रुद्रदत्त पंतजी कहते हैं कि उन्होंने नाबेरना में मोरचे लड़ाई के वास्ते खुदवाये थे, जो अब तक विद्यमान हैं। बाद को नवाब वज़ीर का हुक्म पं० हर्षदेवजी के नाम हुआ कि वह ग़ुलाममहम्मदख़ाँ को कुमाऊँ

से भगा दें। हर्षदेवजी ने गढ़वाल से फ़ौज लेजाकर ग़ुलाममुहम्मदखाँ को निकलवा दिया। अन्त में वह काँगड़े के राजा संसारचंद के यहाँ चले गये। वहीं रहे। श्रीहर्षदेव जोशी ने राजा प्रद्युम्नशाह की फ़ौज गढ़वाल को भेज दी। आप अपने इरादे पूरे करवाने को नवाब वज़ीर के लश्कर के साथ हो गये। नवाब वज़ीर अवध लश्कर मारे गये नवाब मुहम्मदअलीखाँ के बेटे नवाब अहमदअलीखाँ को रामपुर में नवाब बनाकर का लखनऊ को कूच कर गया। श्रीहर्षदेव ने राजा टिकेटराय की मार्फ़त अपना उद्देश्य जतलाया। वहाँ से यह भरोसा श्रीहर्षदेवजी को मिला कि वह काशीपुर, रुद्रपुर आदि मुहालों के ज़मींदार बनाये जावेंगे, तथा माल के बीच के गाँव उनको जागीर में दिये जावेंगे। इस आशा पर हर्षदेवजी लखनऊ में डेरा डाले बैठे रहे।

ज्यों ही अँगरेज़ी सेना व नवाब की सेना रामपुर से उठी, तो राजा महेन्द्रचंद तथा कुँवर लालसिंह ने नवाब ग़ुलाममुहम्मद की सेना को अपनी फ़ौज में भर्ती कर लिया, और कुमाऊँ पर फिर धावा मारने की ठानी। क़ाज़ी अमरसिंह थापा ने इन रोज़-रोज़ के धावों से तंग आकर अल्मोड़ा से फ़ौज लेकर किलपुरी के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया और कुँ० लालसिंह तथा राजा महेन्द्रचंद दोनोंको वहाँ से निकाल दिया। ये दोनों वहाँ से बरेली गये, और वहाँ के सूबेदार के पास अपनी रामकहानी कही। सूबेदार ने इनकी अर्ज़ी नवाब वज़ीर अवध के दरबार में भेज दी। दरबार से सरदार हसनरज़ाखाँ, सरदार हैदरबेग़खाँ, तथा राजा टिकेटराय को आज्ञा मिली कि पं० हर्षदेव जोशी को साथ लेकर कुमाऊँ आदि प्रान्तों से वे गोरखों को बेदखल करा दें। अतः लड़ाई का सामान तय्यार होने लगा। हर्षदेवजी भी लखनऊ में थे। इन्होंने यह तरकीब बताई कि काशीपुर का कारिंदा शिवलाल है, तथा अल्मोड़ा की बातों से वाकिफ़ उनके पुत्र पं० जयनारायण जोशी हैं। इनकी मार्फ़त चिलकिया का 'घाटा' (रास्ता) बंद करा दिया जावे। अतः बरेली के सूबेदार अताबेग़ तथा कारिंदे शंभुनाथ के नाम हुक्म आया कि श्रीशिवलाल व श्रीजयनारायण जोशी को साथ लेकर चिलकिया का 'घाटा' बंद किया जावे। वहाँ पर फ़ौज का डेरा डाला गया, ताकि कोई रसद पहाड़ को न जाने पावे।

सरकार कंपनी बहादुर की तरफ़ से मि० चेरी लखनऊ में रेजिडेंट थे। इन्होंने नैपाल-सरकार तथा नवाब वज़ीर के बीच लिखा-पढ़ी करके संधि करा दी। लड़ाई होते-होते बच गई। नैपाल का वकील लखनऊ आया। वह पत्र लाया कि किलपुरी का परगना उन्होंने छोड़ दिया। वह परग़ना लखनऊ

शामिल समझा जावे। अब से नैपाल दरबार कोई तक़रार न करेगा। नवाब वज़ीर ने यह संधि स्वीकार की। लड़ाई बंद हो गई। पीछे राजा महेन्द्रचंद व कुँ० लालसिंह लखनऊ पहुँचे। नवाब वज़ीर ने उनको चाँचहट का इलाक़ा, जो पीलीभीत ज़िले में था, जागीर में दिया, और कुछ तराई का इलाक़ा भी उनके गुज़ारे के लिये दिया गया।

पं० हर्षदेव जोशीजी गढ़वाल में थे। वहाँ पहले तो वह गढ़वाली राजा से कुमाऊँ पर चढ़ाई करने को कहते रहे, पर जब राजा ने इनकार किया, तो मालूम होता है कि वहाँ वह नौकर हो गये। क्योंकि उनके दस्तख़त एक अर्ज़ी में पाये गये हैं, जो गढ़वाल-दरबार को भेजी गई थी कि पतलीदून से रोहिला नवाब ग़ुलाममहम्मदख़ाँ निकाला जावे। शायद वह भागकर वहाँ आया था। अवध-दरबार ने नैपाल व कुमावनी दरबार से निराश हुए दो चंदों (राजा महेन्द्रचंद तथा कुँ० लालसिंह) से जो संधि की थी, उससे भी श्रीहर्षदेवजी सख़्त नाराज़ थे। अतः राजा गढ़वाल से तो यह बहाना कर कि वह सताये हुए गढ़वालियों की फ़रियाद लेकर नवाब वज़ीर के दरबार में जाते हैं, पर वास्तव में वह उक्त संधि का विरोध करने को अवध के नवाब आसफ़ुद्दौला के दरबार में गये। नवाब ने उन्हें मि० चेरी पोलिटिकल ऐजेन्ट के पास जाने को कहा। जिसकी सम्मति से वह संधि नैपाल के साथ हुई थी, वही उस संधि को बदल भी सकता था। अतः सन् १७६७ में हर्षदेवजी गढ़वाली राजा के वकील बनकर बनारस में मि० चेरी पोलिटिकल ऐजेन्ट के पास गये। वहाँ इन्होंने चेरी साहब से बहुत कुछ बातचीत की, और कुछ पत्र भी भेजे। गोरखों ने जो अत्याचार कुमय्यों व गढ़वालियों पर किये, उनका भी दिग्दर्शन किया। मि० चेरी भी चतुर राजनीतिज्ञ थे। उस समय कंपनी सरकार अवध, रोहिलखंड तथा कुमाऊँ को सर करने की फ़िक्र में थी। उन्होंने यह जानकर कि हर्षदेव कुमाऊँ की लड़ाई में काम देगा, हर्षदेवजी को ख़ूब आश्वासन दिये। उनसे कहा कि उनका जो कुछ नुक़सान हुआ है, वह पूरा कर देंगे, वह न घबड़ावें। कम्पनी सरकार से उनकी परवरिश करावेंगे। जब कम्पनी के हाथ में रोहिलखंड आवेगा, तो हर्षदेवजी को उनका हक़ दिलाया जावेगा। जब कुमाऊँ को फ़तह करना होगा, तो उन्हें याद किया जावेगा। अतः चेरी साहब ने कुमाऊँ की सब बातें उनको लिखकर देने को कहा। हर्षदेवजी ने पूरी-पूरी बातें लिखकर दीं। चेरी साहब ने कहा कि उन्होंने उनकी रिपोर्ट बड़े अफ़सरों को भेज दी है। उनको ५०) महीना गुज़ारे को दिये गये कि वह

बनारस में बैठकर खावें। पं० हर्षदेवजी चेरी साहब के साथ बनारस में रहने लगे।

इसके बाद नवाब आसफ़ुद्दौला मर गये। नवाबी की बाबत उनके उत्तराधिकारियों में लड़ाई हुई। वज़ीरअली के साथ चेरी साहब लखनऊ से लौटकर बनारस आये। पं० हर्षदेव जोशीजी बनारस में ही थे। पश्चात् सन् १७६६ में मि० चेरी क़त्ल किये गये। उनके दोस्त नवाब वज़ीर-अली, जिसे वह नवाब बनाना चाहते थे, भाग गये। नवाब सआदतअलीख़ाँ लखनऊ की गद्दी पर बैठे। पं० हर्षदेवजी सब ओर से निराश हो गये। इस बीच इन्होंने नैपाल के निकाले हुए राजा रणबहादुर शाह से दोस्ती कर ली। इस राजा की बातें अन्यत्र भी प्रकाशित हैं। इसने अपने बेटे राजा गीर्वाणयुद्धविक्रमशाह को गद्दी पर बैठाया, पर आप भी हुक्म चलाता रहा। लोगों ने कहा कि दो राजाओं का हुक्म नहीं चलता। अतः राजा रणबहादुरशाह को पंचों ने बनारस भागने को बाध्य किया। हर्षदेवजी को काँगड़े के राजा संसारचंद ने अपने यहाँ बुलाया। बनारस से हरिद्वार पहुँचने पर वह बीमार हो गये, और हरिद्वार में ठहर गये।

राजा रणबहादुरशाह की बनारस से चिट्ठी व धर्मपत्र पं० हर्षदेव जोशीजी के नाम हरिद्वार में आये कि नैपाल में राजगद्दी फिर से प्राप्त करने को उन्हें मदद दें। वह उनके खर्च को धन भेज रहे हैं। धन आने पर पं० हर्षदेव जोशीजी ने अपने बड़े पुत्र श्रीजयनारायण जोशी को थोड़ी-सी फ़ौज लेकर नैपाल जाने को कहा। श्रीजयनारायण जोशी फ़ौज लेकर गढ़वाल के रास्ते ऊपरी ऊपर जोहार में पहुँचे। लिपा साँगुड़ी में डेरा किया। उस वक़्त भी मिलम्वालों ने वही पुरानी चाल चली। बाहर से बड़ी खातिर की व कहा कि उस जगह अच्छा स्थान नहीं, थोड़ी दूर नीचे उतरकर नीलम गाँव के ऊपर एक बड़ा 'उड्यार' (गुफ़ा) व मैदान है, वहाँ डेरा अच्छा होगा। पं० जयनारायणजी ने वहीं डेरा किया। उधर मिलम्वालों ने 'साँगा' पुल, जो गोरी के ऊपर था, तोड़ दिया। कहा कि कुछ दिन ठहरने पर वे पुल बना देंगे, तब वह दार्मा होकर नैपाल जा सकेंगे। उधर तो ऐसी बातें कहीं, इधर क़ाज़ी भक्ति थापा को अल्मोड़ा में ख़बर भेजी कि पं० हर्षदेव जोशी का पुत्र विश्वासघात करने को नैपाल जा रहा है। वह उन्होंने क़ैद कर रक्खा है, सेना भेजकर उसे पकड़ ले जावें। यह ख़बर सुन क़ाज़ी भक्ति थापा फ़ौज लेकर जोहार में गये। कुछ थोड़ा-सा युद्ध हुआ। अंत में जय-

नारायण पकड़े गये, और श्रीभक्ति थापा उनको पकड़कर अल्मोड़ा आये। बाद को वह बंदी बनाकर नैपाल भेजे गये।

हरिद्वार से उठकर हर्षदेवजी काँगड़े में राजा संसारचंद के पास चले गये। वहाँ पर नवाब गुलाममहम्मदखाँ साबिक़ नवाब रामपुर से इनकी भेंट हुई। उस लड़ाई में दोनों तबाह हो गये। दोनों पुराने दुश्मन मिल गये।

इस बीच भरतपुर की लड़ाई से भागकर महाराजा जसवंतराव होलकर ज्वालामुखी को गये। जनरल लेक साहब उनके पीछे भाखुवाल तक आये थे। उस समय राजा संसारचंद ने पं० हर्षदेव जोशी को जनरल लेक साहब के पास यह कहने को भेजा कि वह जसवंतराव होलकर को अपने इलाक़े में स्थान न देंगे। पं० हर्षदेवजी ने जनरल लेक साहब से यह बात कही, साथ ही अपनी रामकहानी भी कही। लेक साहब ने उनको सांत्वना दी, और फिर मिलने को कहा। लौटकर फिर हर्षदेवजी राजा संसारचंद के पास काँगड़े में आ गये।

पर काँगड़े के ऊपर भी गोरखा फ़ौज चढ़ आई। राजा संसारचंद घबड़ाये। उन्होंने श्रीहर्षदेव जोशी को महाराजा रणजीतसिंह के पास सहायता माँगने को भेजा। हर्षदेवजी ने महाराजा रणजीतसिंह से फ़ौज भी माँगी, साथ ही अपनी रामकहानी व कुमाऊँ पर गोरखों के अत्याचारों की बातें भी कहीं। सिखों ने राजा संसारचंद की मदद को आकर गोरखों को काँगड़े से बाहर निकाल दिया। उस दिन से काँगड़े का क़िला महाराजा रणजीतसिंह के हाथों आया। राजा संसारचंद उनकी मातहती में मांडलीक राजा हो गये।

काँगड़ा-युद्ध के पश्चात् पं० हर्षदेवजी ने अपने भतीजे पं० रामनारायण जोशी को राजा संसारचंद के पास छोड़ दिया, और आप गंगा के किनारे कनखल में आ बैठे। कहा कि अब वह वृद्ध हो गये हैं, अब राजनीति में भाग न लेकर सिर्फ़ गंगास्नान व ईश्वरभजन में अपना समय लगावेंगे।

पश्चात् श्रीभीमसेन थापा क़ाज़ी हुए। उन्होंने राजा गीर्वाणयुद्धविक्रम-शाह को अपनी गोद में लेकर राज का कारबार चलाया। बहुतेरे कारबारी उस समय क़त्ल करवाये गये थे। नैपाल-राज्य में भीमसेन थापा का हुक्म चलता था। उनको जनरल कहा जाता था।

---

६. पहला बंदोबस्त

संवत् १८४८—१८४६ (सन् १७६१—१७६२) में सूबा जोगामल्ल ने कुमाऊँ-राज्य का शासनाधिकार पाया, और पहला बंदोबस्त मालगुज़ारी

बाबत दिया। उन्होंने प्रत्येक आबाद बीसी (बीस नाली ज़मीन) में एक रुपया टैक्स लगाया। एक रुपया प्रत्येक बालिग़ आदमी से 'माँगा' (Poll tax) राजकर लिया जाता था। "घुरही पिछही" के नाम से सालियाना दो रुपये फ़ी मवासे ठहराये गये। साथ ही हरएक गाँव से "सुवाँगी दस्तूर" १) + मेजमानी =)६ = १=)६ दफ़तर के खर्च के लिये राजकर ठहराया गया।

---

७. नरशाही का मंगल

संवत् १८५० सन् १७६३ में क़ाज़ी नरशाह और उनके नायब रामदत्त शाही दैशिक शासक नियुक्त हुए, और सेनापति कालू पाँडे फ़ौज के मुखिया बनाये गये। सुब्बा नरशाह बड़े अत्याचारी व ज़ालिम कहे जाते हैं। नगरकोट तथा पश्चिम के पहाड़ों से बहुत-से सिपाही पाली, बारामंडल व सोर में बस गये थे। उन्होंने वहीं ब्याह भी कर लिये थे। क़ाज़ी नरशाह को उनकी राज-भक्ति पर संदेह हुआ। अतः उन्होंने सब नगरकोटिया सिपाहियों की मर्दुमशुमारी कराई और यह भी जाँच कराई कि कौन-कौन लोग कहाँ रहते हैं। उन्होंने यह भी तय किया कि एक निश्चित रात को एक निश्चित इशारे पर वे सब मारे जावें। ऐसा ही हुआ। नगरकोटियों की जुल्फ़ें होती थीं। उस रात को बहुतों ने अपनी जुल्फ़ें तलवार, छुरी, दराँती से काटीं, कई फ़क़ीर हो गये। इस तरह कुछ बच गये।

बाक़ी जहाँ मिले, वहीं मारे गये। अब भी लोग मंगल की रात को जबकि वे मारे गये थे, 'नरशाही का मंगल' कहते हैं। जब कभी कोई दग़ाबाज़ी या धूर्तता की बात हो, तब भी ऐसा ही कहते हैं। अत्याचारी व अन्यायी सुब्बा नरशाह नैपाल को बुलाये गये।

---

८. नैपाल में दलबंदी

उनकी जगह में संवत् १८५१ में श्रीअजबसिंह खवास सुब्बा तथा श्री श्रेष्ठ थापा कारदार और श्रीजसवंत भंडारी फ़ौजी सरदार यानी सेनापति नियुक्त हुए। काठमांडू में कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं, जिनका प्रभाव कुमाऊँ की राजनीति पर भी पड़ा। महाराजा बहादुरशाह जो सन् १७७६ में गद्दी पर बैठे थे, सन् १७६५ में अपने एक मातहत श्रीपरबल राना द्वारा तख्त से उतारे गये, और क़ैद में बड़ी मुसीबतें झेलकर मरे। नैपाल में भी कुमाऊँ के महर व फर्त्याल

दलों की तरह दो दल हो गये। एक तो पहले से चौंतारा या चौंतरिया दल कहलाता था। चौंतारा या चबूतरा ऊँची उठी जगह को कहते हैं। राजगद्दी भी ऊँची जगह में होती है। इसी से यह लोग चौंतरिया कहलाये यानी राज-पक्ष के। राजनीति में साम, दाम, दंड, भेद आदि बातों को जो जाने वह भी चौंतारा कहलाता है, अब तक यही एक दल नैपाल में था। इस समय एक दूसरा थापा दल भी हो गया था। यह दल उन लोगों का था, जो फ़ौजी विजय द्वारा साधारण स्थिति से प्रभुत्व को प्राप्त हुए थे। अतः नैपाल में थापादल की प्रधानता होने से संवत् १८५२ तदनुसार सन् १७६५ में सुब्बा श्रीअमरसिंह थापा, नायब सुब्बा श्रीगोविंद उपाध्याय, और सेनापति श्रीभक्ति थापा कुमाऊँ में प्रधान अफ़सर बनाये गये। दूसरे साल संवत् १८५३ सन् १७६६ में उक्त दोनों प्रधान व नायब सुब्बा हटाये गये, और उनके स्थान क्रम-क्रम से श्रीप्रबलराना तथा श्रीजयकृष्ण थापा ने लिये। संवत् १८५४-५५ सन् १७६७ में थापा-पार्टी हार गई। अतः इस साल थापा दल की जगह में श्रीबमशाह व श्रीरुद्रवीरशाह भेजे गये। जब जो दल प्रधान होता था, वह अपनी तरफ़ के कर्मचारी नियुक्त करता था।

---

९. ब्राह्मणों पर नया टैक्स

इनके छोटे-से शासनकाल में ब्राह्मण काश्तकारों पर 'कुशही' नाम से ५) रु० एक ज्यूला ज़मीन पर मालगुज़ारी लगाई गई। ज्यूला ६ से १३ एकड़ तक की ज़मीन को कहते थे। आज तक ब्राह्मणों पर मालगुज़ारी न थी। यह टैक्स कहा जाता है कि बहुत कम वसूल हुआ, पर यह असल में उन ब्राह्मणों को डराने व धमकाने के लिये लगाया जाता था, जो षड्यंत्र व राजद्रोह में भाग लेते थे। जब तक कोई ब्राह्मण शान्तिपूर्वक रहता था, तब तक यह कर वसूल नहीं होता था, पर जब वह राजनीति में भाग लेता था और खेती के काम में ध्यान न देता था, यह टैक्स उससे मय बक़ाये के वसूल किया जाता था। इस समय मालगुज़ारी वसूल करनेवाले श्रीकालधर व श्रीब्रह्मानंद उपाध्याय थे। दूसरे अमरसिंह थापा तथा अंगद सरदार फ़ौजी अफ़सर थे।

संवत् १८५६ में सुब्बा अजबसिंह, नायब सुब्बा श्रेष्ठथापा फिर नियुक्त हुए। श्रीविश्राम खत्री डिट्ठा बनाये गये।

संवत् १८५७-१८५८ अर्थात् सन् १८००—१८०१ में श्रीधौंकलसिंह बसन्यात क़ाज़ी तथा मेजर गनपति पाध्या सुब्बा नियुक्त हुए। श्रीधौंकल-

सिंह बड़े बेढब मिजाज़ के आदमी थे। फ़ौजी काम में भी वे होशियार न थे। एक फ़ौजी झगड़े में वह अपने हाथ से एक सिपाही को मारना चाहते थे, पर वहीं पर खुद ही 'ढाकचा' सिपाहियों ने बंदूक़ों के कुंदों से उन्हें मार डाला। इस साल नये राजा गीर्वाणयुद्धविक्रमशाह के गद्दी पर बैठने से राज्य भर से नज़राना लिया गया।

सन् १८०० में राजा रणबहादुर ने थापा मंत्रियों को निकालना चाहा, पर वे लोग दूसरी रानी महिला से मिल गये, और राजा को अपने पुत्र को गद्दी पर बिठाने को बाध्य किया। अतः राजा रणबहादुर की जगह राजा गीर्वाण युद्ध विक्रमशाह राजा हुए और रानी संरक्षक बनीं। राजा रणबहादुर साधु बन गये और अपना नाम स्वामी निर्गुणानन्द रक्खा। पहले देवपाटन में रहे, फिर ललितपुर में। ललितपुर में उन्होंने बड़ी धूर्तता की। जब उनकी एक स्त्री बीमार हुई और तेलूजी देवता की बहुत भेंट-पूजा करने पर भी आराम न हुआ, तो उन्होंने मूर्ति को तोड़ डालने तथा वैद्यों को फाँसी पर लटकाने का हुक्म दिया। बाद को वे बनारस को भेजे गये। सन् १८०२ में कुछ दिनों के वास्ते श्रीधौंकलसिंह की जगह में सेनापति रुद्रवीर सुब्बा हुए। 'टनकर' नाम से एक कर नया ठहराया गया। "रुपया सोलह आने का बहाल रहा।"

संवत् १८६० सन् १८०३ में क़ाज़ी गजकेशर पाँडे सुब्बा तथा सुबेदार कृष्णानंद अधिकारी नायब सुब्बा बनाये गये। इसी संवत् के भादों महीने की अनन्तचौदस को आधी रात से ७ दिन ७ रात तक बड़ा भारी भूचाल हुआ। बार-बार धरती हिली। बहुत मकान टूटे। श्रीनगर में राजा का महल टूटा। पर्वतों में दरारें आईं।

---

१०. गढ़वाल-विजय

संवत् १८६१ सन् १८०३ में गोरखों ने गढ़वाल को सर किया। गढ़वालियों ने भी लंगूरगढ़ की चढ़ाई से आज तक बड़ी बहादुरी से गोरखों का सामना किया था। वे बराबर लड़ते रहे और जब अवसर पाया, आस-पास के मुल्क को लूटते रहे। इस वर्ष गोरखा-नेता—सुब्बा अमरसिंह थापा, हस्तिदल चौंतरिया, बमशाह चौतरिया तथा रणजोर थापा नैपाल से आये। वे बड़ी विराट् व सुलझी हुई सेना लेकर गढ़वाल पर चढ़े। उधर से गढ़वाली राजा व उनके दोनों भाई, जिनका वर्णन श्रीहार्डविक ने इस प्रकार किया है, संग्राम में आये—

"(१) राजा प्रद्युम्नशाह--क़रीब २७ वर्ष के, नाटे क़द के, दुबले-पतले, ख़ूबसूरत, पर स्त्रियों की तरह दिखाई देते थे।

(२) कुँ० पराक्रमशाह—मज़बूत, बहादुर व मानुषिक् प्रवृत्ति के थे।

(३) कुँ० प्रीतमशाह—१६ वर्ष के क़रीब-क़रीब राजा की तरह थे।

तीनों मलमल के जामे (अँगरखे), रंगीन पगड़ियाँ तथा कमरबंद व सफ़ेद चूड़ीदार पैजामे पहने थे। गहने व आभूषण कुछ न थे।"

यमुना के उद्‌गम स्थान में रहनेवाले पलियागाड़ के ज्योतिषियों ने कह दिया था कि राजा की हार होगी और वे देहरादून को जावेंगे। ऐसा ही हुआ। देहरादून में राजा प्रद्युम्नशाह ने लंढौरा के गूजर राजा रामदयालसिंह की सहायता से १२००० फ़ौज एकत्र की। अपना राज्य लौटाना चाहा, पर खुड़बुड़े के पास गोरखों से लड़ाई हुई। राजा प्रद्युम्नशाह मारे गये। कुँ० प्रीतमशाह क़ैद होकर नैपाल भेजे गये। कुँ० पराक्रमशाह काँगड़े के राजा संसारचंद के यहाँ भाग गये। यह घटना सन् १८०४ की है।

श्रीअमरसिंह तथा उनके पुत्र श्रीरणजोर थापा गढ़वाल व कुमाऊँ दोनों के शासक रहे।

संवत् १८६२ तदनुसार सन् १८०५ में सर्वश्री ऋतुध्वज थापा, विजयसिंह साही, मिथुनदास कायस्थ, जयनारायण तथा हरदत्तसिंह ओझा प्रभृति अफ़सर कुमाऊँ में आये और मालगुज़ारी के बंदोबस्त की फिर से देख-भाल हुई। बहुत-सी माफ़ी व गूँठें ज़ब्त की गईं। इसका नाम 'रैबंदी' कहा जाता था।

---

११. सुब्बा बमशाह चौंतरिया

सन् १८०६ में श्रीऋतुध्वज थापा किसी कारण दोषी ठहराये गये, और उनको डोटी में फाँसी दी गई। उनकी जगह में सुब्बा चौंतरिया बमशाह नियुक्त हुए। इनके हाथ में कुमाऊँ का राज-काज सन् १८१५ तक रहा, जब कि अँगरेज़ों ने कुमाऊँ पर अपना अधिकार जमाया। काठमांडू में राजनैतिक हलचल के कारण फिर थापादल से चौंतरियादल के हाथ अधिकार आ गया। चौंतरिया बमशाह के नीचे ये कारदार अफ़सर नियुक्त हुए—श्रीवीरभंजन पाँडे, श्रीचामू भंडारी। कहा जाता है कि बमशाह चौंतरिया कुमाऊँ में पैदा हुए थे।

इनके समय में अव्वल, दोयम, सोयम, चहारुम चार शरहों से रक़म

(मालगुज़ारी) मुक़र्रर की गई। फ़ौज को तनख़्वाह के बदले प्रांत बाँटे गये। जब फ़ौजी अफ़सर तहसील को जाते थे, तब नक़दी कुछ न मिलती थी। बर्तन, कपड़ा, ग़ल्ला वग़ैरह मिलता था। बल्कि आदमी भी रक़म के बदले तहसील होता था। आदमी को रक़म के रूप में लेकर वे दूसरे के हाथ बेच देते थे। वह उनका ग़ुलाम गिना जाता था।

१२. श्रीहर्षदेवजी

जब राजा प्रद्युनशाह मारे गये, उनके एक भाई क़ैद हो गये, दूसरे काँगड़े को भागे तो हर्षदेवजी कनखल को चले गये थे। राजनीति में भाग लेने से तोबा कर ली थी, पर हरिद्वार व कनखल से होकर ही नैपाली लोग गढ़वाली स्त्री व पुरुषों को दास-दासी बनाकर देश-देशान्तरों में बेचते थे। इन ग़रीबों की फ़रियाद सिवाय हर्षदेवजी के और कौन सुनता? उन्होंने अँगरेज़ों के ऐजेन्ट श्रीफ़्रेज़र से दिल्ली में बहुत पत्र-व्यवहार किया। उधर वे नैपाल को भी न भूले। एक तो वहाँ उनका पुत्र क़ैद, दूसरा उनका मित्र राजा रणबहादुर राज्यच्युत था। अतः उस पागल राजा से भी इनका पत्र-व्यवहार होता रहा। अन्त में वह राजा अपने मुसाहिबों के षड़यंत्र से एक बार फिर नैपाल में पहुँच गया। पर इतने दिनों बाहर रहकर भी उसके स्वभाव में फ़र्क़ न आया। राजा ने अत्याचार करने शुरू किये, जिसके कारण सब दलों के लोग एक हो गये। एक दिन इस राजा का एक पर्चा पकड़ा गया, जिसमें उन लोगों के नाम थे, जो क़त्ल किये जानेवाले थे। उन नामों में प्रधान मंत्री शेरबहादुर का भी नाम था। अतः सन् १८०७ में शेरबहादुर ने रणबहादुर को मार डाला। इस कारण बहुत गड़बड़ मची। अन्त में फिर राजा गीर्वाणयुद्धविक्रमशाह गद्दी में बैठाये गये।

१३. गोरखा-शासन की अनीतियाँ

गोरखों ने देहरादून, सहारनपूर तथा काँगड़े, शिमले तक का मुल्क एक बार जीत लिया था। गढ़वाल में इन्होंने, कहा जाता है कि बहुत ही अत्याचार किये। कहते हैं, वहाँ से हर साल २०००० (?) तक दास-दासियाँ लाकर हरिद्वार की गोरखा-चौकी में बेचने को रक्खी जातीं थीं। ३० वर्ष के स्त्री व पुरुष बेचे जाते थे। १०) से ३०) तक इनकी क़ीमत होती थी। जुर्माना देने में भी लोग बेचे जाते थे। गोरखा अफ़सरों के धन माँगने पर न देने से सारे कुटुम्ब गिरफ़्तार

होकर बेचे जाते थे। माता-पिता पुत्रों को, चाचा भतीजों को, बड़े भाई छोटे भाइयों और बहनों को बेचने को बाध्य किये जाते थे।

यद्यपि कुमाऊँ के लोगों ने गोरखाली राज्य का विरोध कम किया, तो भी वे सताये गये, भारी कर देने को बाध्य किये गये, और बड़े-बड़े अत्याचार उन पर हुए। राज्य के बीच कुली व गोदाम (रसद) का कुछ दस्तूर या 'पड़त' मुक़र्रर न था, न कोई स्थायी प्रबंध था। गोरखाली लोग ज़बरदस्ती खाने को बिना क़ीमत दिये ले लेते थे। कुली के लिये ब्राह्मण, राजपूत, बनियाँ, खस-राजपूत जो होवे उसको फुसलाते थे या बहाना बताते थे कि कल उनसे कुछ बातें करनी हैं, वे मकान में आवें या पिताजी का श्राद्ध है या देवता की पूजा है, जब वे लोग प्रातःकाल जाते थे, तो बँधा-बँधाया बोझ पाते थे। ज़बर्दस्ती मारपीटकर बोझ को सिर पर रख चल देते थे। ये कुली कभी-कभी नज़र बचाकर बोझ को फेंक भाग जाते थे, पर उनको फिर पकड़ा नहीं जाता था। ब्राह्मण को भी बोझ ले जाने को बाध्य करते थे, कहते थे कि ब्राह्मण के पैर पूजे जाते हैं, सिर नहीं पूजा जाता। जब गोरखा लोग शहर या गाँव में आते थे, तो घर के मालिक को घर से निकाल देते थे। उन घरों की लकड़ी काटकर जलाते थे व जिन्स उस घर से निकालकर खाते थे। बग़ीचे में फल या फूल के पेड़ हों, तो फल खाकर पेड़ों में अपनी खुशरी की आज़माइश कर पेड़ों को काट डालते थे।

पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं, "गोरखा बदन का मज़बूत व लड़ने में बड़ा मर्द होता है। अपनी जान को खोना व दूसरे की जान को लेना इसके सामने बराबर है। नैपाल के राजा व उनके कामदार सिपाहियों को बतौर ग़ुलाम समझते थे।"

संवत् १८६५-६६ में पुराना ही बंदोबस्त बहाल रहा। कुमाऊँ के लाट चौंतरिया बमशाह ही रहे। संवत् १८६७ में 'लाल ढडे' बने। परगनेवार एक पट्टा लाल मुहर के नाम से जारी हुआ। उसमें सब शर्तें, रक़में, रक़बा वग़ैरह दर्ज किये गये। यही बंदोबस्त संवत् १८७१ तदनुसार सन् १८१४ तक जारी रहा।

गोरखाली शासन कुमाऊँ में २४ वर्ष रहा। इस बीच नैपाल में दो राजा यानी रणबहादुरशाह व उनके पुत्र राजा गीर्वाणयुद्ध विक्रमशाह हुए थे। नैपाल का यह दस्तूर था कि हर साल मुलकी व फ़ौजी अफ़सरों में अदली-बदली की जाती थी, जिस साल वे नियुक्त हुए, उस साल के सैनिक 'जागिचा' कहलाते थे, और 'माजली' यानी मुक़र्रर होने के साल से वे

'ढाकचा' कहलाते थे। दस्तूर व क़ानून कुछ मुक़र्रर व लिखा हुआ नहीं था। और कारदारों के बीच जिसके पास सिपाही ज़्यादा होते थे, उसका हुक्म माना जाता था। यानी एक कामदार किसी अपराधी को क़ैद करे या फाँसी दे देवे तो दूसरा कामदार उस दोषी को रिहाई दे देता था। जो तीसरा कामदार ज़बर्दस्त हुआ तो वह रिहाई पानेवाले मुजरिम को फिर गिरफ़्तारकर सज़ा करा देता था। जो गोरखों को पूरी तनख्वाह माह ब माह मिले व दर्जा इनका सिपाही का क़ायम रहे तो अपने मालिक की सेवा यह बराबर करते रहें। गोरखा सिपाही कभी-कभी चावल चबाकर भी दो-दो, तीन-तीन दिन तक लड़े थे। गोरखा नमकहलाल होते हैं। ग़ुस्सा व ज़िद इनमें बहुत होती है। सूरत इनकी हुणियों से मिलती है। यानी गोल मुख व नाक चिपटी व आँखें सूजी हुई। दाढ़ी, मूँछ अक्सर इनके कम होते हैं।

गोरखाली लोग देवता, शास्त्र, ब्राह्मण व गाय को बहुत मानते थे। इन बातों में वे दृढ़ रहते थे पर अपने नैपाल के अतिरिक्त और जगह के ब्राह्मणों व राजपूतों के साथ इनका व्यवहार अच्छा न होता था। खानदानी लोग साधारण व्यवहार व बातचीत में कोई-कोई अच्छे भी होते थे।

गोरखाली राजाओं का दिल बड़ा कठोर होता था। आदमी को मारना या चिड़िया को मारना वे बराबर समझते थे। जिस राजा का मुल्क ये लड़ाई में छीन लेते थे, प्रायः उसकी इज़्ज़त कुछ भी न रखते थे। अगर किसी को कुछ इज़्ज़त दी भी तो बिना तहक़ीक़ात थोड़े से अपराध पर फिर बिगाड़ देते थे। कारण यह कि और राजा का नाम सिवाय अपने नाम के बहाल रखना बुरा मानते थे। तो भी क्षत्रिय का धर्म-कर्म मुताबिक़ शास्त्र के ये पूरी तौर पर मानने का यत्न करते थे। पुराने मंदिर देवताओं के दस्तूर बहाल रखना व उनका जीर्णोद्धार कराना व नये मंदिर बनवाकर उनकी प्रतिष्ठा व पूजा करने में ये तत्पर रहते थे। गूँठ व माफ़ी भी देते थे। ब्राह्मण व गाय की पूजा भी करते थे। दान, यज्ञ भी करते थे। कभी-कभी जागीरें व गूँठें छीन भी लेते थे। ये बुद्धिमान् ज़्यादा न थे। व्यभिचारी भी होते थे।

२४ वर्ष के गोरखालियों के राज में कामदार झिजाड़, दन्या, दिगौली, कलौन, ओलियागाँव व गल्ली के जोशी रहे। द्वारा के चौधरी, गंगोली व उप्राड़ा, स्यूनराकोट तथा खूँट के पंत व अन्य लोग भी कामदारी में रहे। पंडिताई व वैद्यक में भी कुमय्यों का दर्जा अव्वल था। फ़ौज में भी कुमाऊँवाले बहुत भरती थे। पर गोरखाली लोग उनका विश्वास कम करते थे। उनकी इज़्ज़त भी मामूली थी।

कुमय्यों ने गोरखाली राज्य के विरुद्ध जो राज-विद्रोह नहीं किया, उसका कारण यह है कि राजा मोहनचंद तथा जोशियों के बीच लगातार राज-शक्ति को प्राप्त करने के लिये युद्ध होते रहे, और उनमें प्रजा को जो-जो कष्ट उठाने पड़े, उनकी सुनवाई कहीं भी न होती थी। अतः दीन प्रजा के लिये क्या? कोई भी राज्याधिकारी हुआ, वह उन्हें लूटने में ही लग जाता था। उसे तो वही तुलसीदास की उक्ति याद आती थी "कोऊ नृप होय हमैं का हानी।" इसलिये प्रजा किसी राज्य-शासन से भी संतुष्ट न थी, पर करे क्या? जिससे फ़रियाद करे, वही काटने को आवे।

गोरखा-राज्य की अत्याचारपूर्ण कहानियाँ अनेक हैं। शुरू में तो बहुत ही अत्याचार हुए। एक कहानी इस प्रकार है—एक बार एक नया टैक्स लगाया गया, जब लोगों ने देने से इनकार किया तो १५०० गाँव के पधान बुलाये गये, इस बहाने से कि उनको कर के नियम बताये जावेंगे। वे लोग आये और मारे गये, इसलिये कि औरों को नसीहत मिले। बहुत-से लोग रोहिलखंड में भाग गये। उनके ख़ानदान रोहिलखंड में बेचे गये। यद्यपि गोरखा-राज्य के अंतिम समय में शासन की त्रुटियों को सँभालने की चेष्टा की गई; तथापि गोरखा-राज्य ने 'गोरख्योल' के नाम से जो बदनामी कमाई है, वह सदियों तक न भूली जावेगी। लोग अब तक कहते हैं, "के मैं हूँ गोरखियोक राज है गोछै।"

सन् १८०६ में बमशाह (कोई-कोई इन्हें भीमशाह भी कहते हैं) कुमाऊँ के शासक हुए। इन्होंने शासन में सुधार करने की चेष्टा की। उन्होंने अल्मोड़ा के प्रधान-प्रधान ब्राह्मण व क्षत्रियों को बुलाया, और उनको घूस तथा आश्वासन देकर अपने वश में किया, और इस तरह बाहर के लोगों के हमलों को सफल न होने का मौक़ा दिया। जब कि गढ़वाल इस तरह पर शासित होता था कि वहाँ आबादी की जगह जंगल हो जाय, कुमाऊँ में यह बात न थी।

लोगों की निजी सम्पत्ति की रक्षा होती थी, पुरानी जागीरें बहाल रहीं, मालगुज़ारी पूर्ववत् वसूल होती रही, कुछ-कुछ न्याय करने का ढोंग भी रचा गया, और इन सबसे अच्छी बात बमशाह ने यह की कि रुपये अदा न करने के बदले कुटुम्बों का बेचा जाना बंद कर दिया गया। कम-से-कम काग़ज़ में ये बातें हो गईं, अमल में कहाँ तक लाई गईं, कह नहीं सकते।

बहुत-से कुमय्यें व गढ़वाली सेना में भर्ती किये गये, और पश्चिम दिशा को फ़तह करने के लिये भेजे गये। ये सेनायें स्थायी गोरखा सिपाहियों के साथ नहीं मिलाई जाती थीं। बल्कि ये एक प्रकार की स्वयंसेवक सेना

(Volunteer or tenitional army) थी, जिनको लड़ाई के समय पूरी तनख्वाह, और वक्त कमाने को ज़मीन या कम तनख्वाह मिलती थी। ये लोग ज़्यादातर गोरखा अफ़सरों की मातहती में रहते थे। कभी-कभी कुमावनी सेनापति के अधीन भी किये जाते थे। ये लोग स्थायी सेना की तरह चलाये जाते थे, पर गोरखा सिपाहियों से शक्ति में कम थे। यद्यपि योग्य अफ़सरों के नीचे उत्तम कार्य करने के क़ाबिल थे। कुमाऊँ में गोरखा सेना तमाम प्रान्त में यत्र-तत्र रक्खी हुई थी और उसी परगने को उसकी तनख्वाह देनी पड़ती थी, जहाँ कि छावनी होती थी। इससे बड़ा असन्तोष हुआ। सिपाहियों ने नैपाल-दरबार में नालिश की कि उनको कुमाऊँ में तनख्वाह नहीं मिलती। सन् १८०७-८ में एक जाँच कमेटी, श्रीरेवन्त क़ाज़ी की अध्यक्षता में, नैपाल-दरबार से भेजी गई। उसने कुछ सुधार के प्रस्ताव रखे। पर नक़ारखाने में तूती की आवाज़ कहाँ सुनी जाती है। यहाँ तो फ़ौजी अफ़सर सारे प्रान्त में अपना क़ब्ज़ा किये हुए थे और जल्दी-जल्दी रुपया बटोर धनी बनने के इच्छुक थे, क्योंकि वे थोड़े दिन रहते थे और बदल दिये जाते थे। इससे वे सुधार की बात क्या सुनते। तो भी १८०६ में बमशाह सुब्बा ने कुछ नियम बनाये। वे गोरखा-राज्य के अन्त तक जारी रहे। प्रधान अफ़सर हर साल बदले जाते थे। पदाधिकार के समय वे 'जागिरिया' कहलाते थे और पेंशन पाने पर 'ठाकुरिया'। उनकी तनख्वाह (बाली) किसी गाँव की मालगुज़ारी से प्राप्त होती थी। जाँच-कमेटी ने पिछली रक़में बहाल रखकर नई रक़में धीऊकर, टनकर, व मिझारी नियुक्त कीं।

कप्तान हिरसी का कहना है—"नैपाली अफ़सर अज्ञान, चंचल, दग़ाबाज़, विश्वासघाती और अत्यंत लालची होते थे। विजयी होने पर खूँखार और बेमुरव्वत। हारने पर नीच व दीन, उनकी शर्तों व संधियों पर विश्वास नहीं किया जाता।" (सन् १८१५ की रिपोर्ट में ये बयान हैं।) उन्होंने बाद को अँगरेज़ों की पोशाक, पद तथा सेना-संचालन की नक़ल की। कर्नेल, मेजर, कप्तान, सूबेदार, फ़ौजदार, सरदार, क़ाज़ी आदि पद बनाये, पर उनकी सेना होलकर व सेंधिया के मुक़ाबिले में नगण्य बताई जाती थी। तनख्वाह केवल ८) माहवार लड़ाई के समय, अन्य समय ६) थी।

पोशाक—पहले कुमावनियों के समय चौबंदी, पाजामा, टोपी, जूता था, बाद को गोरखा-समय में अँगरेज़ी लिबास भी हो गया।

शस्त्र—तलवार, खुकरी, चक्कू, लमछड़, बंदूक़। अफ़सर लोग तलवार

व ढाल तथा खुकरी व तीर-कमान ले जाते थे, जिनके संचालन में वे दक्ष होते थे। कभी-कभी वे खाँड़ा या भुजाली भी साथ रखते थे। उनके पास छोटी-छोटी तोपें भी थीं।

रात-दिन की लड़ाई लड़ने से कप्तान हेरसी फिर कहते हैं – "गोरखा-सेना बहादुर, निडर तथा शत्रु की परवाह न करनेवाली हो गई थी। वह प्रसन्न रहती थी और थकान की परवाह न करती थी...।" कई-कई लोग तो बड़े ही बहादुर थे। अब भी गोरखा सिपाहियों का मुक़ाबिला करनेवाले बहुत कम दल हैं। तथापि अपने राज्य-काल में जो-जो नृशंस अत्याचार उन्होंने किये, वे भूले नहीं जा सकते।

---

१४. गोरखा-न्याय के तरीक़े

न्याय करने का कोई ख़ास तरीक़ा न था। प्रत्येक अफ़सर अपने पद के अनुसार जैसा ठीक समझता, फ़ैसला करता था। तमाम कुमाऊँ में दीवानी व फ़ौजदारी के छोटे-छोटे मामले उस प्रान्त के फ़ौजी शासक करते थे। बड़े-बड़े मुक़द्दमे दैशिक शासक फ़ौजी शासकों की सहायता से करते थे। पर सैनिक अफ़सर अक्सर लड़ाई में यत्र-तत्र रहते थे। वे सब न्याय व मुक़द्दमों का काम अपने मातहत अफ़सर 'विचारियों' को सौंप जाते थे। अभियोग का तरीक़ा सरल था। वादी-प्रतिवादी के सरसरी इज़्हार लिये जाते थे, और फिर 'हरिबंस' उठाने को कहा जाता था। जहाँ प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं होते थे या गवाही परस्पर विरुद्ध होती थी, जैसे सरहदी मामलों में, तो अग्नि-परीक्षा होती थी, जिसको 'दिव्य' कहते थे।

(१) गोला-दीप (दिव्य)—इसमें एक लाल छड़ लोहे की गरमागरम हाथ में लेकर कुछ दूर चलना पड़ता था।

(२) तराज़ू-दीप (दिव्य)—इसमें कोई व्यक्ति, जो अपराधी समझा जाता था, पत्थर से तोला जाता था और किसी सुरक्षित स्थान में रखकर फिर उन्हीं पत्थरों से तोला जाता था। अगर वह दूसरे दिन भारी हुआ, तो निर्दोष, हल्का हुआ, तो दोषी समझा जाता था।

(३) कढ़ाई-दीप (दिव्य) – इसमें कढ़ाई के जलते तेल में हाथ डाला जाता था। यदि जले नहीं, तो निर्दोष समझा जाता था। जलने पर दोषी।

देहरादून के महंत गुरु रामराय को भी एक बार कढ़ाई-दीप-परीक्षा करनी पड़ी थी, जब कि उसे हत्या का अपराधी ठहराया गया था। उसका

हाथ जल गया, अतः उसे भारी जुर्माना देना पड़ा। फ़ैसला वहीं पर लिखा जाता था और सब दर्शकों को दिखाया जाता था। तब सफलीभूत पक्ष को दिया जाता था। असफल पक्ष अभियोग-अनुसार नहीं, बल्कि हैसियत के मुताबिक़ कर्रा जुर्माना देने को बाध्य किया जाता था। विरासत के, व्यवसाय के तथा अन्य मामलों में भी पंचायत मुक़र्रर होती थी और ये लोग कभी-कभी पुर्ज़ा डालकर फ़ैसला करते थे। वादी-प्रतिवादी के नाम छोटे-छोटे एक ही क़िस्म के काग़ज़ के टुकड़ों में लिखे जाते थे और वे मंदिर में रक्खे जाते थे। पुजारी जाकर एक को उठाता था। जिस पुर्ज़े को उसने पहले उठाया और उसमें जिसका नाम हुआ, वही सफल समझा जाता था। बहुत-से मामलों में तो फ़ैसला इस तरह पर होता था कि वादी किसी मंदिर में जाकर क़सम खाता था कि उसका मुक़द्दमा या आरोप ठीक है।

श्री ट्रेल साहब ने और भी अग्नि-परीक्षाओं का ज़िक्र किया है—

(१) तीर का दीप—जिसमें आदमी पानी में डुबाया जाता था, जब तक कि दूसरा आदमी एक तीर जहाँ तक जावे, वहाँ तक दौड़कर वापिस न आ जाता था।

(२) दोनों पक्ष के लड़के, जो तर नहीं सकते थे, पानी के कुंड में डुबाये जाते थे, जो देर तक जीता रहता था, वह जीतता था।

(३) ज़हर भी दिया जाता था। एक जड़ी विष की दी जाती थी, जो मर गया, वह तर गया, जो जी गया, वह जीता।

(४) एक किसी मंदिर में यदि धन का मुक़द्दमा होता था तो रुपये रक्खे जाते थे, ज़मीन का आरोप होता था, तो एक टुकड़ा मट्टी का उसी ज़मीन का रक्खा जाता था। यदि छः महीने भीतर उसके यहाँ कोई मृत्यु नहीं हुई, तो वह निर्दोष समझा जाता था। यदि कोई मृत्यु हो गई या दैवीय कोप हुआ, तो वह दोषी समझकर और दंडित किया जाता था।

---

१५. दंड-प्रथा

विश्वासघात के लिये प्राणदंड दिया जाता था। ख़ून के लिये फाँसी पेड़ में लटकाकर दी जाती थी। पर यदि ब्राह्मण ख़ून करता था, तो उसे देश-निकाले की सज़ा होती थी। गाय को इरादतन मारने, शूद्र के जातीय रिवाजों को तोड़ने, राजपूत या ब्राह्मण के हुक़्क़े को छूने में भी प्राणदंड दिया जाता था। चंद सरकार में फाँसी पेड़ में लटकाने या सिर काट डालने

से होती थी। पर गोरखों ने अंग-भंग करना भी आरंभ किया। कभी तो अपराधी बड़ी निर्दयता से मारा जाता था। "काटकर नमक-मिर्च भी लगाई जाती थी", ऐसा भी कहते हैं।

चंदों के समय में फाँसियाँ बहुत कम होती थीं। केवल कुछ शूद्रों को यदा-कदा फाँसी लगती थी, पर गोरखों के समय प्राणदंड एक साधारण बात-सी हो गई।

ट्रेल साहब लिखते हैं—"छोटी-छोटी चोरी करने में अपराधी नुक़सान पूरा करने को बाध्य किया जाता था। साथ ही कुछ जुर्माना उसे किया जाता था, और यदि अपराध ज़्यादा हुआ, तो हाथ या नाक काटी जाती थी। भारी चोरियाँ पहाड़ में बहुत कम होती थीं। हिन्दू-धर्मशास्त्र के विरुद्ध अपराध व व्यभिचार में जुर्माना होता था। छोटे दर्जे के लोगों में व्यभिचार पर केवल धन-दंड होता था। ऊँचे दर्जे के लोगों में व्यभिचार होने पर पुरुष को प्राण-दंड तथा स्त्री की नाक काटी जाती थी। स्त्री के व्यभिचार करने पर पुरुष यदि उपपति व स्त्री दोनों को मार डाले तो उसमें कोई सरकारी हस्तक्षेप न होता था। जिनको सज़ा क़ैद की मिलती थी, वे राजा के नौकर (कैनी) हो जाते थे। वे राजा की निजी ज़मीन या बग़ीचे में काम करते थे। तराई के गढ़गाँव-नामक राजसी गाँव में बसनेवाले अपराधियों को माफ़ी मिल जाती थी, चाहे उनका क़सूर कुछ भी हो। यदि किसी व्यक्ति ने आत्महत्या की, तो उसके नज़दीकी रिश्तेदारों को भारी धनदंड देना पड़ता था। गोरखा - राज्य के समय बड़ी-बड़ी विचित्र राजाज्ञाएँ (Ordinances) प्रचलित की जाती थीं, जिनके तोड़ने पर धनदंड देना पड़ता था। गढ़वाल में एक हुक्म जारी हुआ था, कोई औरत छत पर न चढ़े। बिना छत पर चढ़े देहातियों का काम कैसे चले! अनाज सुखाना, लकड़ी, घास जमा करना या कपड़े सुखाना आदि-आदि सब काम छत पर होते हैं। अतः औरतें छत पर जाती थीं। सरासर जुर्माना वसूल होता था। दोनों मर्द व औरतों को मुसीबत का सामना करना पड़ता था।"

---

१६. नैपाल के साथ अँगरेज़ों का युद्ध

जिस तरह इन पर्वतों में अँगरेज़ी साम्राज्य का विस्तार हुआ और नैपाल-सरकार की हार हुई, उसका वर्णन यहाँ पर किया जाता है। उस समय गोरखा-राज्य का विस्तार काँगड़े से लेकर इधर दार्जिलिंग के निकट तक

था। कहीं तराई इनके हाथ थी, कहीं नहीं। नाहन, देहरादून, जौनसार, बावर, गढ़वाल, कुमाऊँ, नैपाल उसकी तराई व कुछ हिस्सा बिहार प्रान्त की तराई का इनके अधिकार में था। इनका शासन फ़ौजी था। यत्र-तत्र लूट-पीट करना इनका प्रायः नित्य का काम था। अँगरेज़ी इलाक़ों में जब यह काम होने लगा, तो उन्होंने नैपाल-सरकार से लिखा-पढ़ी की, पर नतीजा कुछ न निकला।

सबसे पहला झगड़ा बुटवल से सन् १८०४ में शुरू हुआ। यह पहले राजा पल्या का था। गोरखों ने उसकी सम्पत्ति नैपाल में छीन ली थी, इससे बुटवल पर भी अधिकार कर लिया। यद्यपि यह कहा जाता है कि वह अँगरेज़ों के शासन में था। सन् १८१२ तक लिखा-पढ़ी होती रही, पर नैपाल ने कुछ न सुनी। अतः सन् १८१४ में गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्स ने इन ज़िलों को अँगरेज़ी राज्य में मिला लेने की आज्ञा जारी कर दी। अतः उन्होंने एक घोषणा निकाली कि नैपाल-सरकार ने पुरनियाँ, तिरहुत, सारन, गोरखपुर, बरेली ज़िलों में तथा जमुना व सतलज के बीच की संरक्षित भूमि में कई स्थानों पर अपना अधिकार ज़बर्दस्ती जमा रक्खा है, जिनमें बड़े-बड़े अत्याचार हुए हैं, इससे यह लड़ाई ठानी गई। एक अँगरेज़ी लेखक औवर कहता है कि सन् १७८७ से १८१२ तक गोरखों ने अँगरेज़ी इलाके के २०० गाँवों में क़ब्ज़ा किया था। राजा पाल्या की ज़मीन का फ़ैसला भी हो गया था। ३२०००) सालाना मालगुज़ारी में कंपनी-सरकार ने यह ज़मीन ले ली और नैपाल-सरकार ने उस वक़्त कुछ न कहा, पर बाद को बुटवल पर अधिकार कर लिया। बाद को एक कमीशन भी बैठा। बहुत लिखा-पढ़ी हुई, और अँगरेज़ों ने अप्रैल १८१४ में बुटवल-प्रान्त में अपना अधिकार जमाया। पर २६ मई १८१४ को नैपाली सेना ने श्रीमानराज फ़ौजदार के सेनानायित्व में बुटवल पर अधिकार जमा लिया। वहाँ के अँगरेज़ी पुलिस दरोग़ा व सिपाहियों को मार डाला। उस वक़्त ख़राब मौसम होने से अँगरेज़ सेना न भेज सके।

अँगरेज़ सरकार ने चिट्ठी भेजी। नैपाल-सरकार ने टालू उत्तर दिया। मई से नवंबर तक सारन ज़िले के पास के कुओं में ज़हर डाल दिया गया, ताकि अँगरेज़ी फ़ौज पानी पीवे, तो परलोक को पयान करे। अँगरेज़ों को सब बातें मालूम हो गईं। चार सेनाएँ नैपाल पर चढ़ाई करने को भेजी गईं।

(१) ८००० सेना मेजर-जनरल मारले के नीचे काठमांडू पर चढ़ाई करने के लिये।

(२) ४००० सेना मेजर-जनरल उड के नीचे गोरखपुर में संग्राम करने को।

(३) ३५०० सेना मेजर-जनरल जिलेस्वी की मातहती में देहरादून का फ़तह करने के लिये।

(४) ६००० सेना मेजर-जनरल ऑक्टरलोनी के चार्ज में सतलज व जमुना के बीच के मुल्क पर अधिकार जमाने को।

इनमें जनरल मारले व उड ने अच्छी काररवाई न की। ये अच्छे सेनापति साबित न हुए। यद्यपि जनरल मारले की सेना ८००० से १३००० की गई, तथापि उनको ऐसा भयभीत होना पड़ा कि विना किसी को चार्ज दिये वह भाग गये। हालाँ कि काठमांडू में गोरखा-सेना केवल ४००० या ५००० थी। जनरल मारले की सेना के १००० आदमी मारे गये, दो तोपें छीनी गईं। अठकिन्सन साहब कहते हैं कि ऐसा बुद्धू जनरल अँगरेज़ी सेना में शायद ही कोई होगा।

देहरादून में कलंगा व नाला पानी के क़िलों में बड़ी विराट् लड़ाई हुई। सेनापति बलभद्रसिंह थापा ३००-४०० सिपाहियों के साथ इन क़िलों के रक्षक थे। जब सहारनपुर से चलकर अँगरेज़ी सेनाएँ एक तिमली, दूसरी मोहन दर्रे से होकर देहरा पहुँची, तो अँगरेज़ी सेनाध्यक्ष कर्नल मौर्बी ने सेनापति थापा को रात के वक़् क़िला खाली करने को पत्र भेजा। उसने पत्र को फाड़ दिया और कहा, यह वक़. कोई पत्र भेजने का है, जब कि आदमी सो रहता है। ऐसे वक़् जवाब नहीं दिया जाता। पर उसने सलाम भेजा और कहला भेजा कि वह भेंट करने को आवेंगे।

यहाँ ५-४००गोरखों ने जिस बहादुरी से संग्राम किया और अँगरेज़ों के छक्के छुड़ाये, वह सोने की क़लम से लिखने लायक़ है। लड़ने में गोरखा के समान कोई नहीं। पर यदि वह बुद्धिमान् शासक भी होता, तो सोने में सुगंध हो जाता।

अस्तु, ५-४००० अँगरेज़ी शिक्षित सेना तथा कई तोपों के सामने क़रीब १ माह तक सख़्त लड़ाई लड़कर वीर सेनापति बलभद्र थापा अपने ७० बचे हुए बहादुर वीरों को लेकर खुकरी हाथ में ले सारी सेना को चीरते हुए पास के पहाड़ों में भाग गये। इन्होंने वीरता के साथ-साथ लड़ाई में शत्रुओं से उदारता भी दर्शाई। न विषदार तीर काम में लाये, न पानी में ज़हर डाला, न मुर्दों की बेइज्ज़ती की। बल्कि एक गोरखा सिपाही घायल हो गया था, वह अँगरेज़ी अस्पताल में क़िले से मरहम-पट्टी को आया। अच्छा होने पर फिर युद्ध में शामिल हो गया। देहरादून के ४०० गोरखों की वीरता, बहादुरी तथा सहनशीलता का गुणगान स्वयं अँगरेज़ों ने किया है।

इन ७० वीरों को पास ही ३००-४०० और सिपाही मिले, जो क़िले में इनकी मदद को जाना चाहते थे, पर ये सब मारे गये। ३० नवंबर १८१४

को देहरादून में, दिसंबर २४ को नाहन में अँगरेज़ों का अधिकार हो गया। उधर जैठक, रामगढ़ व मलाऊँ क़िलों में भी घोर संग्राम रहा।

इतनी लड़ाइयाँ इधर-उधर करके अब फिर लॉर्ड हेस्टिंग्स का ध्यान कुमाऊँ को सर करने की ओर गया। उनसे यह कहा गया कि शायद सुब्बा बमशाह थापा दल से रुष्ट हो गया है और वह अँगरेज़ों की तरफ़ आ जावे और कुमाऊँ को उनके सिपुर्द कर देगा। इसलिये नवंबर १८१४ में दिल्ली के सहायक ऐजेन्ट माननीय इ० गार्डनर मुरादाबाद भेजे गये, ताकि वह वहाँ जाकर सब बातों का पता लगावें और सुब्बा बमशाह के विषय में जाँच करें तथा उससे लिखा-पढ़ी करें। उस समय इतनी फ़ौज न थी कि गार्डनर साहब के साथ भेजी जाय। इसलिये शान्तिपूर्वक बातचीत करने का हुक्म हुआ, पर बाद को यह ख्याल कर कि यदि गोरखा अफ़सरों ने अँगरेज़ों की बात न मानी, तो कुमाऊँ में क़ब्ज़ा करने के लिये फ़ौज की नितान्त आवश्यकता होगी। यह तय हुआ कि मेजर जनरल जिलेस्वी एक कुमुक कुमाऊँ को भेजें, जिसमें कुछ स्थानीय रँगरूट भर्ती कर काम चल जायगा। बमशाह तथा उनके भाई हस्तिदल दोनों शासन से हाथ खींचने पर कहा जाता था कि ज़्यादा समय चिलकिया व ब्रह्मदेव के बीच गुज़रनेवाले तिजारत में ख़र्च करते थे, जिससे उन्हें ख़ूब आमदनी होती थी, क्योंकि यहाँ पूर्ण तिजारती अधिकार (Trade monopoly) उनको प्राप्त थे। साथ ही कम्पनी की भाँग की फ़ैक्टरी, जो काशीपुर में थी, पहाड़ के साथ अपना संबंध बराबर क़ायम किये हुए थी, क्योंकि पहाड़ में ही भाँग पैदा होती थी और वहाँ से वह काशीपुर के कंपनी के कारखाने में साफ़ की जाती थी। पहले गार्डनर को यह सरकारी शिक्षा दी गई थी कि वह सुब्बा बमशाह को यह लालच दे कि यदि कुमाऊँ को जीतने में मदद दे, तो उसे वहाँ तथा उसके भाई को डोटी में जागीरें दी जावेंगी, जो उनके कुटुम्ब व उनके भरण-पोषण के लिये काफ़ी होंगी। पर बाद को कुमाऊँ को अपने ही अधिकार में रखने का निश्चय किया गया, इस बहाने से कि सारी गोरखा-लड़ाई के ख़र्च के बदले में यह मुल्क उन्हें दिया जावे। पर वास्तव में कुमाऊँ को स्वहस्त करने का अभिप्राय यह था कि यहाँ से तिब्बत, चीन तथा मध्य एशिया को तिजारती मामलात में ज़्यादा आसानी थी। रास्ता अन्य प्रान्तों से ज़्यादा सुगम था। कुँ० लालसिंह के बारे में यह आज्ञा मि० गार्डनर को दी गई कि जैसे हो, उसे कुमाऊँ में आने न दिया जावे, क्योंकि उसका गद्दी पर बैठना लोग पसंद न करेंगे। जिस तरह उन्होंने व उनके भाई ने राज्याधिकार थोड़े दिनों के

लिये कुमाऊँ में पाया, उससे सरकार उनके पक्ष में न थी। अतः गार्डनर साहब को आज्ञा दी गई कि लालसिंह व उसके साथी कुमाऊँ के राजकाज में दखल देने न पावें और ज़रूरत पड़े, तो कुमाऊँ पर ज़बर्दस्ती अधिकार किया जावे। और यदि अँगरेज़ लोग चाहें कि कुमाऊँ में चंदवंश के किसी व्यक्ति को गद्दी दी जावे, तो राजा लक्ष्मीचंद के वंश के लोग कोटा में थे, सोर के जीवी में राजा कल्याणचंद के कुटुम्ब के लोग थे। इसके अलावा राजा रुद्रचंद के बहुत-से नाजायज़ पुत्र यत्र-तत्र थे। उधर राजा दीपचंद के वंशज कटघर में थे। वे कुँ० लालसिंह से कहीं बढ़कर हक़दार थे। यह भी गार्डनर से कहा गया था कि कुमाऊँ की गद्दी को ज़बर्दस्ती छीननेवाले तथा चंदवंश के छोटे (Junior) खानदान के कुँ० लालसिंह को गद्दी पर बैठाने के बदले सुब्बा बमशाह को कुमाऊँ का ज़मींदार बनाना ज़्यादा बेहतर होगा। २२ नवंबर-१८१४ को इन्हीं माननीय इ० गार्डनर ने सरकार की हिदायतों के उत्तर में यह पत्र भेजा था—"कुछ वर्षों तक मोहनसिंह के खानदान ने, रोहिले सिपाहियों की मदद से और उस डर से जो उसने अपने विरोधियों को मारकर उत्पन्न किया, अल्मोड़ा में नाममात्र का राज्याधिकार पाया। इसके बाद २५ वर्ष से भी ज़्यादा कुमाऊँ गोरखों के शासन में रहा। इसलिये न तो किसी नैतिक न वैचारिक् दृष्टि से लालसिंह कुमाऊँ की गद्दी का हक़दार हो सकता है। क्योंकि उसने लोगों के बीच अपने को बहुत ही अप्रिय बना लिया था।" बाद को २२ नवम्बर तथा ६ दिसम्बर १८१४ के पत्रों में मि० गार्डनर ने लिखा कि इस बात की कुछ भी आशंका नहीं है कि लालसिंह किसी तरह भी कुमाऊँ की राजनीति में दखल दे सकेगा। १४ दिसंबर १८१४ तथा २५ जनवरी १८१५ के पत्रों में सरकार ने मि० गार्डनर को साफ़-साफ़ लिखा कि कोई बात ऐसी न की जावे, जिससे लालसिंह को कुमाऊँ की राजगद्दी को प्राप्त करने में कुछ आशा जान पड़े। अतः जब कुँ० लालसिंह ने अँगरेज़ों के कुमाऊँ पर चढ़ाई करने पर मदद देनी चाही, तो उससे फ़ौरन् इनकार किया गया। उसके पोते परबतसिंह ने जब कुमाऊँ की ज़मींदारी पर अपना अधिकार होने का दावा पेश किया, तो उससे कहा गया कि ज़मींदारी का हक़ तथा राज्य-शासन एक ही व्यक्ति के अधिकार में होने से तथा पुराने राजाओं से वे गोरखों द्वारा छीने जाने से और गोरखों से अँगरेज़ों के हाथ आ जाने से कुमाऊँ के राज्य को ज़बर्दस्ती छीननेवाले मोहनसिंह के खानदान का कुछ भी हक़ नहीं हो सकता (सरकार को पत्र ता० १३ अगस्त १८२०, २८ अप्रैल १८२१ और फिर सरकार का पत्र ता० २६ मई १८२१)। ऐसा ही जवाब

परब्रतसिंह को तराई की ज़मींदारी के बाबत भी दिया गया। (बोर्ड का पत्र गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल को नं० ३५ ता० ४ मई सन् १८२१)। अँगरेज़ लोग योंही राजनीति में निपुण होते हैं, फिर हर्षदेवजी ने लालसिंह के विरुद्ध खूब विष उगला होगा।

अस्तु, असल में दिसंबर १८१४ में यह निश्चय किया गया था कि बमशाह के साथ बात-चीत का जो कुछ भी परिणाम हो, नैपालियों से कुमाऊँ को छीनने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिये। और लार्ड हेस्टिंग्स ने पहले ही अपना मन्तव्य प्रकट कर दिया था कि यदि उनको अपने काम में सफलता प्राप्त हुई, तो कुमाऊँ अँगरेज़ी राज्य में सदा के लिये शामिल किया जावेगा। अतः २२ दिसंबर १८१४ के पत्र में "कर्नेल गार्डनर की सेना ३००० तक हो और कप्तान हेरसी की १५०० हो" ऐसी आज्ञा दी गई। ये दोनों फ़ौजी अफ़सर कुमाऊँ में अधिकार जमाने को नियुक्त हुए। इन्होंने रोहिले भर्ती करने शुरू किये। और माननीय गार्डनर की आज्ञा के अनुसार इन दोनों ने कुमाऊँ में फ़ौजी हमला करने की तय्यारियाँ शुरू कर दीं। जनवरी १८१५ रोहिलखंड में सब बातें तय होने लगीं। मि० इ० गार्डनर तथा कर्नेल गार्डनर दोनों का हेडक्वाटर काशीपुर में था, और कप्तान हेरसी बरेली व पीलीभीत में अड्डा जमाये थे। डा० रदरफ़ोर्ड डॉक्टरी, कमसरेट, खज़ाने तथा डाक व जासूसी विभाग के अफ़सर थे। ज्योंही यह मालूम हुआ कि अँगरेज़ लोग कुमाऊँ पर चढ़ाई करनेवाले हैं, वहाँ की गोरखा-सेना में वृद्धि की गई। हस्तिदल को हुक्म हुआ कि खैरागढ़ और डोटी के क़िलों की रक्षा करें तथा सारदा के किनारे बनबसा व मुंडियाघाट में क़िले बनवावें। रामपुर के पठान भी फ़ौज में भर्ती किये गये। रुद्रपुर का ज़मींदार शाहवली पहाड़ की तलेटी की चौकियों का अफ़सर नियुक्त किया गया।

इधर अँगरेज़ों ने यह हुक्म निकाला कि कोई कंपनी की रिआया या मित्रराष्ट्र नैपाल-दरबार में नौकरी न करे, जो नौकर हैं, वे नवंबर १८१४ के अंत तक नौकरी छोड़ दें।

१४ दिसंबर १८१४ को कुमाऊँ के लोगों के नाम यह घोषणा अँगरेज़-सरकार ने निकाली—"अँगरेज़ सरकार ने गोरखों द्वारा किये हुए अत्याचारों व अनाचारों की दर्दनाक कहानियाँ बहुत दिनों से सुनी हैं, और जो हालत अन्यायी गोरखा-सरकार के नीचे होगई हैं, उनसे भी सरकार वाक़िफ़ है। जब तक उस सरकार का अँगरेज़-सरकार से दोस्ताना था और आपस में संधि थी, तब तक लोकविश्वास यह तकाज़ा करता था कि अँगरेज़ी सरकार

का आचरण उनके साथ दोस्ताना का रहे। इसीलिये वह चुपचाप व दुःख के साथ उस मुल्क की बरबादी और विनाश को देखने को मजबूर थी, जो गोरखों के राज्य-काल में कुमाऊँ की हुई। किंतु अब गोरखों के अकारण व अन्यायपूर्ण आक्रमण से, जो उन्होंने अँगरेज़ी इलाक़े में किया है, अँगरेज़ों को अपनी मान-प्रतिष्ठा व अधिकारों को क़ायम करने के लिये गोरखों के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ने को विवश होना पड़ा है। और अँगरेज़-सरकार को जो अत्याचारियों से कुमाऊँ की प्रजा को बचाने का मौक़ा मिला है, उसे वह ख़ुशी से काम में लाती है। अतः एक अँगरेज़ी-सेना उस मुल्क में गोरखा-सेना को तथा उनकी शक्ति व सत्ता को सदा के लिये वहाँ से दूर करने को भेजी गई है। अब लोगों को चाहिये कि इस बड़े काम में अपने भरसक अँगरेज़ों को मदद दें और अँगरेज़-सरकार की आज्ञा को चुपचाप व शान्तिपूर्वक मानें, जिनके मधुर व समानता के भावपूर्ण शासन में उनके उचित अधिकार तथा व्यक्तित्व व सम्पत्ति की पूरी-पूरी रक्षा की जावेगी।"

यह घोषणा यत्र-तत्र पहाड़ी इलाक़े में बाँटी गई। इसका नतीजा यह हुआ कि गोरखों ने जो पठान भर्ती किये थे, वे अँगरेज़ों में मिल गये। और ये लोग अशिक्षित (irregulars) सेना के रूप में कुमाऊँ में ख़ास सैनिक सेवा के लिये भर्ती किये गये।

मि० गार्डनर ने बमशाह के साथ फिर तेज़ी के साथ लिखा-पढ़ी आरंभ की। पर जब प्रतिफल कुछ न हुआ, तो १ जनवरी १८१५ को उन्होंने अपना दफ़तर मुरादाबाद से काशीपुर को हटा लिया, जहाँ से फिर उन्होंने नैपाली गवर्नर को पत्र भेजे। पर बमशाह ने मि० गार्डनर को तो कोई पत्र न भेजा बल्कि गवर्नर-जनरल के ऐजेन्ट मि० कोलब्रिज के नाम पत्र भेजे, जिनमें केवल दोस्ताना बातों का ज़िक्र था, कोई ख़ास प्रस्ताव न थे। किन्तु एक बात साफ़ ज़ाहिर थी, कितनाही असन्तुष्ट नैपाली लाट बमशाह नैपाल सरकार से हो, पर वह नैपाल के प्रति दग़ाबाज़ी का व्यवहार न करेगा। और जो विश्वास नैपाल सरकार ने उन पर रक्खा है, उसे वे कभी नष्ट न होने देंगे। कोई भी नैपाली अपने मुल्क के प्रति विश्वासघात न करेगा। अँगरेज़ों को नैपालियों की दग़ाबाजी पर नहीं, बल्कि अपनी ही शक्ति पर निर्भर रहना होगा। इस लड़ाई की ख़बर सुन कुँ० लालसिंह ने भी गोरखों के ख़िलाफ़ लड़ने को अर्जी दी, पर उसे लिखा गया कि उनको आज्ञा नहीं है। वे सहारनपुर में वारनहेस्टिंग्स के पास गये।

पं० हर्षदेवजी ने कंठी-माला पहन ली थी, और तोबा कर ली थी कि वह राजनीति में भाग न लेंगे, पर ज्योंही उन्होंने इस संग्राम की खबर सुनी तो वे सजग हो गये। जनरल मारटिनडेल की सेना के साथ ऐलची (Political Agent) मि० .फ्रेज़र थे। उनके साथ हर्षदेवजी की लिखा-पढ़ी आरंभ हो गई। ये महाशय गंगावास छोड़कर अपने 'पीर, बबर्ची, भिश्ती, खर" हरिबल्लभ पांडेजी को लेकर अँगरेज़ों की मदद को आ गये।

काशीपुर में कप्तान हेरसी ने सन् १८१४ में हर्षदेवजी को मि० फ़्रेज़र के साथ मिलाया, और उनका वर्णन इस प्रकार किया—"वह ऐसा ज़बरदस्त व्यक्ति है, जिसके नाम से गोरखा डरते हैं। उसके रिश्तेदार कुमाऊँ में ६००० तक हैं, वह ६८ वर्ष का है, किन्तु अभी तक चलता फिरता-हट्टा-कट्टा है, और उसकी सब इन्द्रियाँ चैतन्य हैं। और सतलज तक के पहाड़ी राजाओं में उसका प्रभाव अतुल है।" यह सन् १८१४ की बात है। मि० फ़्रेज़र ने उनके बारे में यह लिखा था—"यद्यपि दुर्भाग्य व निर्धनता से वह बहुत उदास है, तथापि उसका मन चंचल, उद्योगी तथा साहसी है।" यद्यपि सरकार ने पं० हर्षदेव जोशीजी से पहले ही कह दिया था कि अँगरेज़ कुमाऊँ पर अधिकार करेंगे, और किसी चंद को गद्दी पर न बैठायेंगे, तो भी उन्होंने अपना सारा प्रभाव अँगरेज़-सरकार की ओर डाला, क्योंकि उनका दल सदा कुँ० लालसिंह के खिलाफ़ था, पर गोरखों ने इस समय उसे दमदिलासा दिलाई। पं० हर्षदेवजी का पहला काम कनखल व काशीपुर से आकर अँगरेज़ों के साथ मिलने पर यह हुआ कि उन्होंने महर, फरत्याल, तड़ागी आदि में से बहुत-सी सेना एकत्र की। इनको और १०० लमछड़वालों को लेकर वे कप्तान हेरसी की फ़ौज की सहायता को उद्यत हुए। और उनकी सेना के साथ बराबर अल्मोड़ा को आये, जहाँ वे २६ जुलाई १८१५ को मर गये। वे दो लड़के व एक भतीजा छोड़ गये, जिनको अँगरेज़ सरकार ने पेंशन दी। ७० वर्ष के बूढ़े हर्षदेव ने अँगरेज़ों की खूब मदद की। कप्तान हेरसी ने उनको कुमाऊँ का 'अर्लवारविक' कहा है। उन्होंने चारों ओर को चिट्ठियाँ भेजीं कि अँगरेज़ों को मदद दो। लोग गोरखाली राज्य से उकता गये थे। इससे उन्होंने अँगरेज़ों को काफ़ी मदद दी।

हर्षदेवजी के बारे में पं० रुद्रदत्त पंतजी ने इतनी बातें और लिखी हैं—"चंडी के इलाके में हाँसी साहब बैठे थे, उनकी ओर से बराबर हर्षदेवजी को सांत्वना मिलती रही।

"जब सरकार कम्पनी बहादुर का इरादा कुमाऊँ प्रान्त को गोरखाली

लोगों से छीनने का हुआ, तब फ़्रेज़र साहब हर्षदेव जोशीजी की तलाश करते हुए यकायक कनखल में दाख़िल हुए। जोशीजी वहाँ एक खत्री के मकान में रहते थे। फ़्रेज़र साहब ने इनको बुलाकर कहा कि अँगरेज़ी सेना कुमाऊँ पर चढ़नेवाली है। सरकार से हुक्म आया है कि वे भी जंग में शामिल होवें। हर्षदेव जोशी यह बात चाहते थे कि किसी तरह उनका इरादा पूरा होवे। उन्होंने युद्ध में शामिल होना स्वीकार किया। तब फ़्रेज़र साहब ने कहा कि बाद फ़तह होने कुमाऊँ के तुम्हारे साथ वही सलूक किया जावेगा, जो और मुल्क के राजाओं के साथ किया गया है। और कहा कि उनकी बातें मि० चेरी तथा जनरल लेक के पत्रों से सरकार को सब मालूम हैं। साहब ने फ़ौज लेकर देहरादून में गोरखों के ऊपर चढ़ाई कर दी। हर्षदेवजी साथ रहे। इस युद्ध में श्रीचंद्रवीर कुँवर ख़ूब लड़े। इस लड़ाई में फ़्रेज़र साहब की जय हुई। तब श्रीफ़्रेज़र ने हर्षदेवजी से कहा कि कुमाऊँ के 'वाटे' में गार्डनर साहब की कमान है, उनकी चिट्ठी लेकर पं० हर्षदेव काशीपुर में गार्डनर साहब के पास जावें। पं० हर्षदेव जोशीजी के ऊपर मेहरबान होने का यह भी कारण था कि हर्षदेवजी ने गोरखा-सेना में जितने कुमय्यें थे, उन सबको पत्र भेजकर फ़्रेज़र साहब के पास बुला दिया। इन लोगों ने गोरखों के विरुद्ध युद्ध किया, बल्कि कई गोरखे भी फ़्रेज़र साहब के साथ मिल गये। इन सबको पेंशनें मिलीं।"

एक बात हमारी समझ में नहीं आई। पं० रुद्रदत्तजी लिखते हैं—"इसी जंग में हर्षदेव जोशी ने सरकार की बदौलत अपना बदला अमरसिंह थापा क़ाज़ी से पिछली दुश्मनी का पाया यानी अमरसिंह लड़ाई में हारकर अपने बेटों व बाल-बच्चों सहित व थोड़ी फ़ौज लेकर हर्षदेव जोशी के सामने क़िले से निकल देहरादून, हरिद्वार, काशीपुर व ब्रह्मदेव के रास्ते अपने मुल्क को गया था।" क़ाज़ी अमरसिंह थापा ने तो मलाऊँ के क़िले में बड़ी वीरता दर्शाई, बहुत दिनों तक वह लड़ता रहा। कुमाऊँ में हार होने पर भी वह लड़ता रहा। अँगरेज़ों ने उसकी बहादुरी का वर्णन किया है, तब वह हर्षदेवजी के सामने से देहरादून में कैसे गुज़रा, यह समझ में नहीं आता।

अस्तु, हर्षदेवजी गंगातट व कंठी, माला छोड़कर काशीपुर गये, "वहाँ गार्डनर साहब से मिले। कई दिनों तक वहीं रहे। गार्डनर साहब ने हर्षदेव जोशी से कहा कि कुमाऊँ के राज्य में उनके साथ ऐसा ही सलूक होगा, जैसा अन्य प्रान्तों में वहाँ के राजाओं के साथ किया जावेगा। और भी १८ सवाल (शर्तें ?) हर्षदेव जोशीजी ने मुल्क कुमाऊँ की बेहतरी को व अपनी नेकनामी को साहब के पास पेश किये। साहब ने सब मंज़ूर किये, बल्कि

उन सवालों (शर्तों ?) में से कोई-कोई अब तक कुमाऊँ राज्य में बरते जाते हैं।"

जनवरी आखीर में कुमाऊँ में धावा करने की सब तय्यारियाँ ठीक हो गईं। ४५०० आदमी दो तोपों को लेकर उद्यत हो गये। दो तरफ़ से धावा करना निश्चय हुआ, (१) कर्नेल गार्डनर ३००० सेना लेकर काशीपुर से चिलकिया तथा कोशी के रास्ते अल्मोड़ा को आवें। (२) कप्तान हेरसी १५०० जवान व अफसर लेकर पीलीभीत से काली होकर तामली दर्रे से काली कुमाऊँ को आवें। डोटी के राज्यच्युत राजा पृथ्वीपतशाह ने भी अँगरेज़ों से मदद माँगी कि अगर कुछ सेना उसे मिले, तो वह डोटी पर अधिकार जमावे। पहले उस ओर को ५०० सेना भेजना ठीक समझा गया, क्योंकि उस ओर अधिकार करने से नैपाल व कुमाऊँ का रास्ता बंद हो जाता, पर बाद को ठीक न समझकर यह ५०० की सेना वापस बुलाई गई, और कप्तान हेरसी की सेना के साथ चली।

९ फ़रवरी १८१५ को ५०० आदमी रुद्रपुर को भेजे गये, जहाँ उनसे कहा गया कि वे तब तक ठहरें, जब तक कि सारी फ़ौज पहाड़ को न चल पड़े। तब वे बमौरी (काठगोदाम ?) होकर बाराखोड़ा के क़िले पर हमला करें, और वहाँ से गोरखों को हटाकर रामगढ़ व प्यूड़े के रास्ते कर्नल गार्डनर को मिल जावें, जब कि वे पहाड़ों पर अपना अड्डा जमा लें। कप्तान हेरसी को फ़ौरन तामली दर्रा होकर काली कुमाऊँ पर चढ़ाई करने का हुक्म हो गया। खराब मौसम से देरी हो गई। कुली न आये। तो भी ११ फ़रवरी १८१५ को कर्नल गार्डनर सारी फ़ौज को लेकर काशीपुर से चल पड़े। साथ में पोलिटिकल ऐजेंट मि० गार्डनर भी थे। देशी इलाक़े में गाड़ियों तथा हाथियों पर सामान चला। पहाड़ी इलाक़ों में पहाड़ी लोग बोझ लेगये और कुछ माल हथियों पर चला, जिन्होंने अच्छा काम दिया। फ़ौजी लश्कर १२ को कन्यासी, १३ को चिलकिया, १४ को आमसोत पहुँचा। यहाँ से एक छोटी-सी गोरखा-सेना की टुकड़ी पीछे को हट गई। ता० १५ को अँगरेज़ों की लनडोरी (Advance party) के ढिकुली पर पहुँचने पर गोरखों ने अपने लकड़ी से घेरे हुए क़िले को खाली कर दिया, और कुछ मनीहार गोरखों का साथ छोड़कर अँगरेज़ो के साथ मिल गये। यहाँ पर एक छोटी-सी टुकड़ी सेना की देश व पहाड़ से संबंध क़ायम रखने को रक्खी गई। ता० १६ को चूकम में पड़ाव डाला गया। यहाँ पर दो रोज़ का मुक़ाम रहा ताकि सब सामान आ जावे। चूकम से दक्षिण-पूर्व की

और लगभग १५ मील पर गोरखों का कोटागढ़ी नाम का क़िला था। १८ फ़रवरी को ३०० आदमी इस किले को फतह करने को भेजे गये। गोरखा क़िले को छोड़कर पहाड़ों पर भाग गये। क़िला अँगरेज़ों के अधिकार में आ गया। ३०० आदमी टंगुड़ाघाटा पर क़ब्ज़ा करने को भेजे गये। ता० १९ को काठ-की-नाव-नामक लकड़ी के क़िले से गोरखों को हटाकर अँगरेज़ी सेना चूकम से ७ मील उखलढूँगा में पहुँची। उसी शाम को कुछ बदूक़ी लड़ाई के बाद टंगुड़ा व लोगलिया घाटों (दर्रों) पर भी अँगरेज़ों का अधिकार हो गया। इसी दिन ख़बर आई कि दो क़िले कोटे के भी शत्रु ने ख़ाली कर दिये हैं। ता० २१ को ७०० आदमी ६-७ मील पर सेठी मुक़ाम में पहुँचे। यहाँ पता चला कि अंगद सरदार ८०० गोरखाली सेना लेकर भुजाण मुक़ाम में डेरा डाले हैं, जो अल्मोड़ा की आम सड़क पर है। जहाँ पर कोटा तथा काठ-की-नाव की सेनाएँ भी आ मिली हैं। कर्नल गार्डनर ने रँगरूटों से गोरखा सेना का मुक़ाबिला भुजाण में करना ठीक न समझकर कोशी का रास्ता छोड़, दूसरा रास्ता पकड़ा।

२२ फ़रवरी को अमेल होते हुए ३०० आदमियों के साथ वे बिनकोट पहुँचे। वहाँ से चौमुखिया या चौमूदेवी-नामक ६३५४ फ़ुट ऊँची जगह पर क़ब्ज़ा करने के इरादे से कूच किया। पर वह पहाड़ी काफ़ी चढ़ाई में होने से केवल ४०-५० आदमी शाम को वहाँ पहुँच सके, कुछ रात को आये। दूसरे दिन सब आ गये। यहाँ बरफ़ गिरी थी, इससे पानी का कष्ट न हुआ। भुजाण में गोरखा-सेनापति अंगद सरदार को जब यह पता चला, तो उन्होंने भी वहीं चौमूदेवी पर अधिकार करना ठाना, पर वे जब चार मील दूर थे, तभी वहाँ पर अँगरेज़ों का अधिकार हो गया। वे अपने को कमज़ोर समझ धावा न मारकर पीछे को हटे। २५ तारीख़ को सारी सेना व सामान अँगरेज़ों का चौमूदेवी में पहुँच गया। यह जगह इनके बड़े काम की निकली। यहाँ से पश्चिमी कुमाऊँ तथा गढ़वाल दोनों ओर से इनको लिखा-पढ़ी करने का मौक़ा मिल गया। इस तरफ़ आने से उनको दाना, घास, अनाज व सब क़िस्म की चीज़ें प्राप्त हुईं। लोगों ने गोरखा-सेना का प्रायः सब हाल अँगरेज़ों को बता दिया और हर तरह से सहायता दी।

अँगरेज़ों की सेना कठाललेख डांडे पर स्थित थी। उधर गोरखा - सेना ने इस अँगरेज़ी सेना की बाढ़ को रोकने के इरादे से कूमपुर (रानीखेत के पास) के ५९८३ फ़ीट ऊँचे पहाड़ पर डेरा डाला। यहाँ सब लड़ाई का सामान लाया गया। क़रीब १००० फ़ौज उनकी यहाँ पर थी, और एक छोटी

तोप भी उनके पास थी। जगह उन्होंने ऐसी छाँटी थी, जहाँ पर से चारों ओर को नज़र पड़ती थी। अतः कर्नल गार्डनर ने बिना ज़्यादा सेना के इस गोरखा-सेना के साथ टक्कर लेना ठीक न समझा। २८ फ़रवरी से २२ मार्च तक अँगरेज़ी सेना कूमपुर के नज़दीक़ डेरा डाले रही। जब हापड़ व मेरठ से ८०० और पठान भर्ती होकर आ गये तब कूमपुर पर चढ़ाई हुई। अँगरेज़ों व गोरखों के बीच ताड़ीखेत की घाटी थी। कुछ गोरखे खुकरी लेकर अँगरेज़ों पर चढ़ने को थे कि दो लड़ाइयों में रोहिलों ने उन्हें हरा दिया। कर्नल गार्डनर ने कुछ सिपाही स्याहीदेवी को भेज दिये ताकि उस ऊँची जगह में क़ब्ज़ा करें और बाक़ी सेना ने कूमपुर पर धावा किया। गोरखों ने जब स्याहीदेवी को सेना जाती देखी, तो उन्होंने यह समझा कि कहीं वे घिराव में न आ जावें, इससे उन्होंने कूमपुर के क़िले में आग लगा दी, और ता० २४ मार्च को स्यूंनी व कटारमल होकर अल्मोड़ा की तरफ़ आकर सिटोली में अड्डा जमाया। अँगरेज़ इतनी जल्दी भागती सेना का पीछा न कर सके। वे ता० २६ को स्यूंनी, ता० २८ को कटारमल आये। जहाँ एक सूर्यमंदिर है, और जहाँ से अल्मोड़ा ७ मील दूर है।

वास्तव में यह कर्नल गार्डनर की बहादुरी नहीं है कि उसकी सेना इस खूबी से विना प्रयत्न के चढ़ी चली आई। यह शत्रु की कमज़ोरी थी। भाग्य व लोग दोनों गोरखों के खिलाफ़ थे और उनकी सेना १५०० से ज़्यादा कभी न थी। इसमें भी आधे गोरखा व आधे अन्य होंगे। उनके अन्याय से लोग उनकी मदद करना छोड़ अँगरेज़ों की मदद करते थे। ३००-४०० सरदार व सैनिक गोरखों का साथ छोड़ कूमपुर से कटारमल पहुँचने के बीच ही अँगरेज़ों की सेना में मिल गये। श्रीहर्षदेव जोशी ने अपना सारा ज़ोर अँगरेज़ों की तरफ़ डाला। लोग गोरखों के ख़िलाफ़ तो थे ही, इन्होंने भी इस अँगरेज़ों के जारी किये हुए यज्ञ में ख़ूब घृताहुतियाँ दीं। तमाम लोगों को भड़काया, और अँगरेज़ सरकार को मदद देने को उत्तेजित किया। अतः अँगरेज़ों के कटारमल आने पर कुल गोरखा-सेना १००० से ज़्यादा न होगी।

काली कुमाऊँ की ओर

जब कि अल्मोड़ा की तरफ़ इस तेज़ी से अँगरेज़ी सेना बढ़ रही थी, काली-कुमाऊँ की ओर से कप्तान हेरसी १५०० सेना लेकर १३ फ़रवरी को पीली-

भीत से बिलारी में आये। ठीक उसी दिन, जब कि कर्नल गार्डनर की सेना ने चिलकिया पर कब्ज़ा किया! बिलारी में कप्तान हेरसी ने वे पर्चे बाँटे, जो पं० हर्षदेवजी ने कुमय्यों के नाम निकाले थे। नतीजा यह हुआ कि १०० आदमी थोड़े दिनों में अँगरेज़ों की ओर आ गये, और यह खबर दी कि तामली के क़िले को फ़ौज खाली करनेवाली है। यह क़िला ३८४० फ़ीट ऊँची पहाड़ी में उस ओर बहुत बड़े मुल्क के हिस्से पर कब्ज़ा रखता था। ता० १८ को कप्तान ने कुछ सेना भेजकर कैलाघाटी के पास दो क़िलों पर अधिकार जमा लिया। गोरखा लोग आमखड़क होकर कटोलगढ़ को हटे, और थोड़ी सेना तामली में, छोड़ गये। रँगरूट उनके पीछे-पीछे दौड़े। दूसरे दिन १५० पहाड़ी लमछड़ बंदूक़ लेकर तामली पर कब्ज़ा कर लधिया घाटी में उतरे, जहाँ वे पहली टुकड़ी से मिल गये। ता० २८ फ़रवरी को महरा नेता सुबेदार बहादुरसिंह के नेतृत्व में, जो एक लायक़ व अनुभवी सेनापति था, ५०० रँगरूट तथा २०० कुमय्यें लमछड़ बंदूक़वाले कानदेव की पहाड़ी को लाँघकर कुमाऊँ राजा की प्राचीन राजधानी चंपावत में पहुँचे। खुद कप्तान हेरसी ने लिखा है कि वह सब काम कुमय्यों की ही बहादुरी से हुआ है। उन्होंने अपना "सामल कामल" लेकर अपनी बंदूकें लेकर गोरखालियों को हटाने (खदेड़ने) में जो मदद जी-जान से अँगरेज़ों को दी है, उसकी तुलना शायद ही कहीं इतिहास में मिलेगी। गोरखा सुबेदार कालीधर ने बरौली के पास बड़ापीपल पर कुछ विरोध किया, पर बहादुर सुबेदार बहादुरसिंह ने २६ फ़रवरी को उसे हराकर भगा दिया और वह भेड़-बकरी तथा माल-असबाब सब पीछे छोड़ गया। पर गोरखा-नेता ने १०० आदमियों को लेकर कटोलगढ़ पर अधिकार कर लिया। गोरखा-सेना के सब कुमय्यें अँगरेज़ों की तरफ़ हो गये। कप्तान हेरसी को ५०० आदमियों को बिलारी में छोड़ना पड़ा, ताकि सेनापति हस्तिदल सारदा को पार कर अँगरेज़ी सेना के पीछे से छापा न मार दे।

कप्तान हेरसी को यह आज्ञा थी कि वह सब पुलों को तोड़कर गोरखों को काली पार न करने दें। किनारे पर फ़ौज बिठा दें। ताकि बमशाह का बहादुर भाई सेनापति हस्तिदल डोटी व बाछम से भारी सेना लेकर अल्मोड़ा न जा सके। कप्तान हेरसी १३ मार्च को चंपावत आये और उन्होंने राजा पृथ्वीपतशाह डोटी के राज्यच्युत राजा को फ़ौज लेकर सरदार अमानख़ाँ के सेनानायित्व में डोटी पर चढ़ाई करने की भी आज्ञा दी। ता० १४ मार्च को गोरखों ने ब्रह्मदेव मंडी के पास कप्तान हेरसी की सेना पर धावा मारा लेकिन उन्हें पीछे हटना पड़ा यद्यपि अँगरेज़सेना की बड़ीभारी हानि हुई।

पृथ्वीशाह व उनके भाई जगजीतशाह इस लड़ाई में अँगरेज़ों के साथ थे। पृथ्वीशाह घायल हो गये। उनके चाचा मारे गये। अतः पृथ्वीशाह को पीलीभीत लौटना पड़ा। इस तरह पृथ्वीशाह के ग़ैरहाज़िर होने के कारण डोटी में फ़ौज न भेजी जा सकी। कप्तान हेरसी की फ़ौज काली के किनारे पहरा दे रही थी, और गोरखों के काली पार होने के रास्ते को रोक रही थी। साथ ही कुछ सेना कटोलगढ़ के क़िले में (जो चंपावत से उत्तर-पश्चिम की ओर थोड़ी दूरी पर था) छापा मार रही थी। इससे उसकी फ़ौज तितर-बितर थी। ३१ मार्च को सेनापति हस्तिदल ने चंपावत से २० मील पूर्व कुसुमघाट में काली नदी को पार कर अपनी फ़ौज कालीकुमाऊँ में खड़ी कर दी। यही नहीं, बल्कि जब कप्तान हेरसी बरमदेव के रास्ते उनसे लड़ने आये, तो उन्होंने गुमदेश पट्टी में, खिलफती के नीचे दिगाली चौड़ में, एक मिनट में हेरसी की फ़ौज को हरा दिया। कप्तान हेरसी भी घायल होकर गोरखां के हाथ बंदी हो गये। बाक़ी सेना देश को भाग गई। इस तरह काली-कुमाऊँ की चढ़ाई का अन्त हो गया। इस हार का कारण फरत्यालों को बताया गया कि उन्होंने गोरखों का साथ दिया। १४ जून १८१५ के पत्र में कप्तान हेरसी ने चंपावत के नज़दीक़ के एक गाँव वाले सरदार भाना कुलटिया के ऊपर इस हार का दोष मढ़ा, क्योंकि यह कहा गया कि फरत्याल लोग अँगरेज़ों की चढ़ाई से सशंकित थे, और महर-दल के हर्षदेव जोशी के प्रभाव के खिलाफ़ थे, पर यह बात वास्तव में मिथ्या सिद्ध होगी। पहले खद अँगरेज़ों ने कहा है कि "हर्षदेव ने महर व फरत्याल तथा तड़ागियों की सेना एकत्र की।" फिर फरत्यालों पर हार का सारा दोष मढ़ना मिथ्या है। बात दरअसल यह थी कि कप्तान हेरसी एक तो गार्डनर की तरह योग्य अफ़सर न थे, दूसरे उनकी सेना तितर-बितर हो गई थी, तीसरे सेनापति हस्तिदल एक ज़बरदस्त तथा अनुभवी लड़ाका था, और वह मुल्क डोटी के पास था, फिर हस्तिदल व उसके मँजे हुए वीर सैनिक जानों में पानी फेरकर अपने भाई बमशाह की मदद को जाने को तुले हुए थे। ऐसे बहादुरों का सामना करना ज़रा टेढ़ी खीर थी। यह पहले कहा गया है कि एक टुकड़ी ५०० फ़ौज की काशीपुर से रुद्रपुर होकर बमौरी (काठगोदाम) के रास्ते भीमताल को भेजी गई थी। इस फ़ौज ने बड़ाखोड़ा के छोटे क़िले पर अधिकार कर तारीख़ १ अप्रैल को भीमताल के पास के छोटे क़िले छखाता-गढ़ी पर अधिकार कर लिया था। बाक़ी कुछ नहीं किया।

तारीख़ ६ अप्रैल को कप्तान हरेसी के हार की ख़बर अल्मोड़ा में बड़ी

ज़ोर-शोर से फैली। लालमंडी के क़िले से गोरखा-सेना ने ख़ुशी की तोपें बड़ी शान से दागीं। जय-जयकार हुआ। उसी से कटारमल में ठहरी हुई अँगरेज़ी सेना को भी यह ख़बर मिली। ता० ७ को अल्मोड़ा के गोरखा लाट बमशाह ने अँगरेज़ी फ़ौज के सेनापति कर्नल गार्डनर को कप्तान हेरसी के घायल होकर क़ैद होने की ख़बर भेजी। पर यह भी लिखा कि वह बाइज़्ज़त तथा ख़बरदारी के साथ रक्खे जावेंगे। उसी दिन कर्नल गार्डनर के पास ले० मारटिनडेल का भी पत्र आया कि ता० २ अप्रैल को कप्तान हेरसी खिलपती में हार गये। इस अफ़सर ने लिखा था कि उसके पास ३०० आदमी थे, वह चंपावत लौटना चाहता था, पर हस्तिदल ने आकर उसकी फ़ौज को बहुत नुक़सान पहुँचाकर तितर-बितर कर दिया।

इस विजय से गोरखा लोग जितना फ़ायदा उठा सकते थे, उतना उन्होंने न उठाया, क्योंकि हस्तिदल-ऐसे नामी योद्धा की अँगरेज़ों पर विजयी सेना यदि सरगरमी से कर्नल गार्डनर की सेना पर टूटती, तो शायद था कि उनकी बहुत-सी अशिक्षित सेना भाग खड़ी होती। पर गोरखों ने कोई जल्दी न की, और इधर लार्ड हेस्टिंग्स ने २०२५ शिक्षित सेना कर्नल गार्डनर की रक्षा को भेजी। यह सेना कप्तान फेथफ़ुल (७६१ आदमी), मेजर पैटन (७६४) के अधीन थी, और ५०० आदमी गढ़वाल से मय १२ तोपों के कुमाऊँ को भेजे गये। इनके प्रधान सेनापति बने कर्नल निकोल्स, जो उस समय अँगरेज़ी सेना के Q. M. G. (क्वार्टर मास्टर जनरल) थे, और बाद को सर जैस्पर निकोल्स के नाम से भारतीय सेना के सेनापति बने। ता० ८ अप्रैल को उसी रास्ते, जिससे कर्नल गार्डनर अल्मोड़ा आये थे, कटारमल पहुँच गये। रास्ते में कोई विरोध न हुआ।

कर्नल निकोल्स ने सारी शिक्षित व अशिक्षित सेना के संचालन का भार अपने ऊपर लिया। उधर से हस्तिदल भारी सेना लेकर अल्मोड़ा पहुँचा। तोभी अब अँगरेज़ों को विजय का निश्चय हो गया, क्योंकि एक तो उनके पास शिक्षित सेना आ गई, दूसरे कई तोपें भी हो गईं। गोरखों की आपत्तियाँ बढ़ गईं। सेना के पास काफ़ी रसद न थी। आस-पास के गाँवों से लूट-पीटकर जो कुछ मिलता था, वह भी मिलना मुश्किल हो गया था, क्योंकि अल्मोड़ा व आस-पास के लोग लड़ाई के डर से अल्मोड़ा छोड़ अन्यत्र शान्तिपूर्ण स्थानों को भाग गये थे, और अफ़सरों के पास गोरखाली सेना को तनख़्वाह देने के लिये भी पैसे न थे। गोरखा लोगों के जो पत्र नैपाल को भेजे हुए अँगरेज़ों के हाथ लगे, उनसे उनके कष्टों का पता चला, और उनके वर्णन

को पढ़कर लार्ड हेस्टिंग्स ने तक 'गोरखों की देशभक्ति तथा देशहितैषिता' की प्रशंसा की।

चौंतरा बमशाह से अँगरेज़ों ने फिर बहुत लिखा-पढ़ी की, पर नतीजा कुछ न हुआ। वह साफ-साफ पत्र लिखता ही न था, और उसकी माँगें ऐसी थीं कि अँगरेज़ उन पर राज़ी न होते थे। गोरखा-अफ़सरों ने इस बीच नैपाल से और सेना भेजने को कहा। वहाँ से ४ मई को ६३३ गोरखा-सिपाही अल्मोड़ा को भेजे भी गये, पर वे अल्मोड़ा तब पहुँचे, जब उस पर अँगरेज़ों का अधिकार हो गया था। श्रीबमशाह को जब कहीं से सहायता न मिली, तो उन्होंने २२ अप्रैल को सेनापति हस्तिदल को गणानाथ की ओर भेजा। उनका इरादा यह था कि उस ओर से अँगरेज़ों पर पीछे से छापा मारें, इधर लालमंडी की सेना कटारमल में ठहरी हुई अँगरेज़ी सेना से मुकाबिला करेगी, तो उनकी विजय होगी। साथ ही उनका नैपाल, गढ़वाल तथा उत्तरी कुमाऊँ से संबंध स्थापित रहेगा। बात सैनिक दृष्टि से उत्तम थी। पर जब मुल्क उनकी तरफ़ होता, रसद व सहायक सेना बराबर आती रहती। अन्यथा जबकि दुश्मन सामने खड़ा हो, तब अपनी फ़ौज को विभाजित करना उच्च कोटि की सैनिक-कल्पना नहीं कही जा सकती। तो भी सेनापति हस्तिदल कलमटिया होकर एक टुकड़ी फ़ौज को गणानाथ को ले गये। यह रमणीक पर्वत अल्मोड़ा से १५ मील उत्तर की ओर है। गोरखा इस बात को गुप्त रखना चाहते थे, पर लोग उनके ख़िलाफ़ थे, अतः यह रहस्य भी अँगरेज़ों को ज्ञात हो गया। इस पर कर्नल निकोल्स ने २२ अप्रैल की शाम को एक टुकड़ी खिचड़ी सेना की, जिसमें ६०० आदमी थे, मेजर पैटन तथा कप्तान लीस की सेनाध्यक्षता में गणानाथ की ओर भेजी। गोरखे गणानाथ में अपना अड्डा जमाने भी न पाये थे कि इधर से अँगरेज़ सेना लेकर पहुँच गये। सेना को लोगों ने रसद व पानी पहुँचाया। हस्तिदल ने तीन अशर्फ़ियाँ गणानाथ को चढ़ाईं, पर प्रयत्न करने पर भी वे सिर से नीचे गिर पड़ीं, जो असगुन समझा गया। हस्तिदल ने कहा—"क्या जाने, देवता क्या नाराज भयो, भेट मान्ने ना।"

अँगरेज़ों ने पहुँचते ही गोलाबारी शुरू कर दी। विनायकथल के रमणीक मैदान में ता० २३ की शाम को लड़ाई हुई। लड़ाई थोड़ी देर हुई। श्रीहस्तिदल एक गोले से, जो उनके सिर में लगा, मारे गये। उनके मरने पर गोरखा सेना तितर-बितर हो भाग गई। इस लड़ाई में अँगरेज़ों के केवल दो सिपाही मरे, और इनसाइन ब्लेर भी मारे गये। २५ सिपाही घायल हुए। गोरखों के सेनापति हस्तिदल तथा सरदार जयरखा दोनों नेता मारे गये। ३२

सिपाही मरे। घायलों की संख्या ज्ञात नहीं। कुछ सिपाही अल्मोड़ा को लौटे, कुछ रास्ते में मरे, कुछ इधर-उधर को भाग गये। अँगरेज़ी सेना की एक टुकड़ी गणानाथ में रक्खी गई। बाक़ी सेना ता० २४ के दिन कटारमल को लौट आई।

चौंतरा हस्तिदल के मारे जाने से गोरखा सेना का एक रत्न खो गया। वह बड़ा ही होशियार, फ़ुर्तीला तथा समझदार अफ़सर था। उसका चरित्र अच्छा था, और बोल-चाल में भी वह मीठा बोलनेवाला था। नैपाल के राजा का चाचा होने से उसके उच्च विचार तथा उच्च गुण उसके उच्च कुल के योग्य ही थे। कर्नल निकोल्स ने इस बड़े व बहादुर सेनापति की बड़ी तारीफ़ लड़ाई के पत्रों में की है।

वीर हस्तिदल की मृत्यु तथा इस सफलता के अच्छे अवसर को हाथ से न जाने देने के विचार से कर्नल निकोल्स ने ता० २५ अप्रैल को अल्मोड़ा पर चढ़ाई शुरू कर दी। गोरखा-सेना का ज्यादा हिस्सा अंगद सरदार के नीचे पांडेखोला गाँव के ऊपर सिटोली की धार में स्थित था। यह पहाड़ अल्मोड़ा से भी दो मील और उधर कोशी से भी लगभग दो मील की दूरी पर है। दूसरा टुकड़ा कलमटिया में सरदार चामू भंडारी के नीचे अपनी दाहिनी बाज़ू की रक्षा के लिये स्थापित किया गया था। २५ अप्रल को १ बजे दिन के कर्नल निकोल्स अपनी सेना का ज्यादा हिस्सा लेकर कटारमल से चले, और सिटौंली पर धावा मारा। यहाँ पर गोरखों ने छाती तक खाइयाँ खोद रक्खी थीं, और लकड़ी के कटहरे उन पर खड़े कर रक्खे थे। कर्नल निकोल्स ने सामने अपनी तोपें खड़ी करके सेना को कहा कि उन खाइयों पर अधिकार जमावें। कप्तान फ़ेथफुल ने मय कटहरों के दो खाइयों पर क़ब्ज़ा कर लिया। कर्नल गार्डनर ने दूसरी ओर से धावा मारकर बाक़ी तीन खाइयों पर भी अधिकर कर लिया। इतने में ५० आदमी चौथी रेजिमेंट के उत्तर की ओर गये, और उन्होंने उस ओर की खाई में से गोरखों को खदेड़कर कलमटिया तथा सिटोली की बीच के गोरखा-सेना के संबंध को तोड़ दिया। अंत में सारी अँगरेज़ सेना सिटोली पर खड़ी हो गई। वहाँ पर पाँच रास्ते पाकर अँगरेज़ी फ़ौज पाँचों रास्तों से गोरखा-सेना को खदेड़ने लगी। गोरखे अपनी प्रसिद्ध बहादुरी से लड़े, पर वे हर जगह से हराकर अल्मोड़ा को भागने के लिये विवश किये गये। पीछे-पीछे अँगरेज़ी सेना चल रही थी। कर्नल निकोल्स ने उस दिन रात को पोखरखाली के ऊपर हीराडुँगरी पर्वत पर अपना डेरा डाला। यह मुक़ाम लालमंडी (वह

स्थान, जहाँ पर आजकल पल्टन रहती है, और जहाँ क़िला है) से लगभग २ मील दूर है। उसी रात के ११ बजे गोरखों ने एक ज़बरदस्त हमला किया, और अँगरेज़ों की जीती हुई जगह पर फिर अपना अधिकार करना ठाना। यह तो पहले कहा गया है कि चामू भंडारी की कुछ सेना कलमटिया में थी। उसने वहाँ से उतरकर रात को अँगरेज़ी सेना पर धावा मार दिया, और इधर लालमंडी की सेना ने बंदूकों की आवाज़ सुनकर इधर से भी सेना की एक टुकड़ी भेज दी। भीषण संग्राम रात को हुआ। गोरखों ने खुकरी लेकर तहलका मचा दिया। चामू भंडारी की सेना ने एक बार अँगरेज़ी सेना को परास्त कर दिया था। एक खाई व कटहरे पर अधिकार जमा लिया था, पर कर्नल निकोल्स तथा कर्नल गार्डनर साथ थे। उन दोनों ने काफ़ी सेना ले जाकर ख़ुद इस ज़बरदस्त हमले को रोका। २५ ता० की रात-भर यह लड़ाई होती रही। गोरखों ने जान हथेली पर रख व खुकरी लेकर जहाँ-तहाँ घनघोर युद्ध किया। दोनों ओर के बहुत लोग मारे गये। अँगरेज़ों की तरफ़ के ले० टैपली एक नौजवान अफ़सर मारे गये। रात आग लगने से गड़बड़ और भी ज़्यादा बढ़ गई। रात के झमेले में शत्रु ने मित्र को और मित्र ने शत्रु को न पहचाना। अँगरेज़ लोग कहते हैं कि २५ अप्रैल की भयंकर रात्रि को उनकी तरफ़ के २११ आदमी मारे गये। और लोग कहते हैं कि इससे चौगुने-पँचगुने आदमी वहीं ढेर लग गये होंगे, क्योंकि जब ख़ूँख़ार गोरखे खुकरी या खाँडा लेकर निकलते हैं, तो उनके सामने यमराज भी न ठहरेंगे। अँगरेज़ लोग कहते हैं कि इसका ठीक-ठीक पता नहीं कि कितने मारे गये हैं; क्योंकि अल्मोड़ा के बहुत-से ज़रूरी काग़ज़ात फूँके गये हैं।

---

१७. अँगरेज़ों से संधि

रात ही को लनडोरी सेना ने तोपें ले जाकर लालमंडी के क़िले के ७० गज़ दूरी पर अड़ा दीं, और प्रातःकाल वहाँ से प्रचंड गोलाबारी आरंभ कर दी। क़िले की दिवारें टूटने लगीं, जिनमें से गोलंदाज़ वहाँ से क़िले के भीतर की सेना की गति भी देख सकते थे। फ़ौज को इधर-उधर भागते देख उन्होंने समझा कि गोरखों ने क़िला खाली कर दिया है। वे क़िले की ओर बढ़े, पर भगा दिये गये। नौ बजे सुबह तक धड़ाधड़ तोप छूटती रहीं। उस वक़्त चौंतरा साहब ने एक चिट्ठी संधि की सफ़ेद झंडी के साथ भेजी। उसी के साथ कप्तान हेरसी का भी एक पत्र था, जिसमें कहा गया था कि लड़ाई बंद की

जावे। गोरखा लोग कुमाऊँ को छोड़कर अपने मुल्क नैपाल जाने को तय्यार हैं। कर्नल गार्डनर साहब भेजे गये कि वे चौंतरा बमशाह के साथ बातचीत करें। ता० २६ अप्रैल को यह बात निश्चय हो गई कि गोरखा लोग सब क़िलों को, जो उनके अधिकार में हैं, छोड़ देंगे, और कुमाऊँ से चले जावेंगे। उन्हें आश्वासन दिलाया गया कि वे अपनी बंदूकें, तोपें, अस्त्र-शस्त्र, फ़ौजी सामान तथा निजी सम्पत्ति लेकर काली-पार जा सकेंगे। अँगरेज़ उनकी रसद तथा भारबरदारी का प्रबंध कर देंगे।

ता० २७ अप्रैल सन् १८१५ को संधिपत्र पर हस्ताक्षर हुए कि गोरखा लोग मुल्क कुमाऊँ को अँगरेज़ों के सुपुर्द कर आप नैपाल को चले जावेंगे। अँगरेज़ों की ओर से पो० एजेन्ट माननीय इ० गार्डनर ने इस पर हस्ताक्षर किये, उधर गोरखा-अफ़सर बमशाह, चामू भंडारी तथा जसमदन थापा ने उस पर दस्तख़त किये। शर्त पूरी करने की ग़रज़ से गोरखों ने उसी दिन लालमंडी का क़िला ख़ाली किया, और इसका नाम फोर्टमोयरा रक्खा गया और अँगरेज़ों ने उसी दिन राजसी सलामी के साथ इसमें प्रवेश किया। कप्तान हेरसी मुक्त हुए। तमाम कुमाऊँ व गढ़वाल के गोरखा-अफ़सरों को, जो चौंतरा बमशाह के नीचे थे, इस्तीफ़े दाख़िल करने का हुक्म हुआ।

२८ अप्रैल १८१५ को चौंतरा बमशाह तथा उनके सरदारों ने मि० गार्डनर तथा कर्नल निकोल्स से भेंट की। कर्नल निकोल्स के तंबू में १६ तोपों की सलामी के साथ इन हारे हुए वीरों का शानदार स्वागत हुआ। दूसरे रोज़ अँगरेज़ लोग भी गोरखा-अफ़सरों से मिलने गये। उसी शाम को सरदार जसमदन थापा एक पत्र चौंतरा बमशाह से लेकर आये, और उसे सरदार अमरसिंह थापा तथा सरदार रणजोरसिंह के पास जैठक व नाहन भेजने को कहा, क्योंकि वहाँ जनरल ऑक्टरलौनी चढ़ाई कर रहे थे। पत्र की नक़ल यहाँ पर दी जाती है:—

"ता० २२ अप्रैल को गणानाथ के डांडे में लड़ाई हुई। हस्तिदल तथा जयरखा क़ाज़ी ६ सिपाहियों के साथ मारे गये। बाक़ी कुछ घायल हुए। शत्रु की ओर से एक कप्तान व कुछ आदमी मरे। शत्रु का दल कटारमल में था। टुकड़ियाँ स्याहीदेवी तथा धामस में थीं। २५०० आदमी फत्तपुर पहाड़ में कटहरों में थे। बागीश्वर का हमारा रास्ता ख़तरे में था, इसलिये मैंने हस्तिदल को गणानाथ भेजा। हस्तिदल तथा जयरखा की मृत्यु से शत्रु को विजय का विश्वास हो गया, पर फिर भी मैंने सेना को उचित स्थानों में रक्खा।

"मंगलवार ता० २५ को शत्रु योरपियनों को आगे कर और पीछे से फ़ौज चलाकर, आठ हाथियों पर तोपें रख, सिटोली पर चढ़ आया। इसकी खबर कप्तान अंगद ने मुझे भेजी। इसलिये मैंने भवानीबक्स सेना को भेजा, केवल एक पट्टी मैंने अपनी सहायता को रखी। मैं ज़्यादा फ़ौज नहीं भेज सकता था। यदि भेजता, तो सरदार रँगेलू की लालमंडी व चाड़लेख की सेना कम हो जाती। हमारे आदमी शत्रु की १००० बंदूक़ों की मार के सामने न ठहर सके, इसलिये खाइयों को छोड़ उन्हें भागना पड़ा। नरशाह चौंतरा ने कुछ सामान लेकर दूसरी तरफ़ बड़ा जोर लगाया, पर मेरी एक बंदूक़ और उनकी २० बंदूक़ों के बीच मुक़ाबिला कैसे हो सकता था। उनकी अग्नि-वर्षा के सामने ठहरना असम्भव था।

"शत्रु ने शहर में हमारा पीछा किया। फिर मैंने लालमंडी और नंदादेवी के क़िलों की रक्षा करने का इरादा किया। इस बीच कुछ अफ़सर व कप्तान अंगद निचले रास्ते से डोलियों में आये। मैंने तीस आदमियों से नंगी तल-वार लेकर हमला करने को कहा, लेकिन शत्रु ने दीपचंद के मंदिर में अड्डा जमाया, और क़िले में तोपों की झड़ी लगा दी। मैंने भंडारी क़ाज़ी को कलमटिया से फ़ौज को इकट्ठी कर पातालदेवी के ऊपर हीराडुंगरी पर छापा मारने को कहा। इस लड़ाई में हमें कामयाबी हुई। शत्रु के एक लेफ़्टैन और ६८ आदमी मरे। हमने उस जगह पर अधिकार कर लिया, पर हमारे अफ़सर सुबेदार जबर अधिकारी तथा मस्तराम थापा मारे गये। २० मिनट बाद एक बटालियन कर्नल गार्डनर तथा अन्य योरपियनों के साथ आई। फिर लड़ाई शुरू हुई, और सरदार रणसूर कार्की जमादारों तथा २५ बहादुर वीरों के साथ मारे गये। घायल होने से कोई न बचा। दोनों ओर बहुत मरे व घायल हुए। कर्नल ग़ार्डनर तथा कर्नल निकोल्स के भाई दोनों घायल हुए। मैंने जसमदन थापा के नीचे और फ़ौज भेजी, पर कुछ भाग गये, और कुछ ने भागने का ढंग दिखाया, इससे सेना आगे न बढ़ी। रात-भर बंदूक़ें व तोपें चलती रहीं। सुबह को भंडारी की बाक़ी सेना सिमतोले को हट गई, शत्रु क़िले पर चढ़ आया, और प्रचंड गोलाबारी जारी रही। ६ घंटे तक दोनों ओर से गोले चले, हमारी ओर से पत्थर भी फेंके गये। तोपों ने दिन-रात लगातार गोले चलाये। मर्द, औरत और जानवर सब आग के ख़तरे में थे। कप्तान हेरसी ने हमसे कहा कि हम राजा की चीज़ें व सामान लेकर चले जावें। मैंने जवाब दिया, अगर कुछ बच सके, तो अच्छी बात है। मैंने उनसे लड़ाई बंद करने को कहा। इस बीच मैंने चामू भंडारी को बुलाया, और हम चारों ने परिस्थिति

पर विचार किया। हमने सोचा कि हमारे पास बहुत-सा गोली-बारूद का सामान है। लेकिन बटोरे हुए सिपाही बिलकुल निकम्मे थे। जब वे लोग, जिन पर विश्वास किया जाता है, दुःख के समय साथ छोड़ दें, तो क्या किया जा सकता है? असली गोरखों ने ही अपने को सेवा के योग्य साबित किया, और 'बड़ादार' (मुखिया) ही केवल विश्वास के योग्य थे। इस पर मैंने विचार किया कि हमने अपने मालिक की शक्ति और धन को फ़िज़ूल नष्ट न करना चाहिए और मैंने मि० गार्डनर के साथ बातचीत करने की ठानी। गार्डनर से पूछने पर कि इस लड़ाई का कारण क्या है, उन्होंने कहा— बुटवल में तहसीलदार के ख़ून से गवर्नर-जनरल को बहुत बुरा लगा है, इससे उसने बड़ी तय्यारियाँ की हैं। इस समय उसने कहा है कि हमसे राज़ी होने पर भी कुछ लाभ न होगा, लेकिन यदि हमारे आपसी झगड़े तय हो जावें, तो अच्छा है। शर्त यह है, 'काली से परे चले जाओ और अपनी सरकार को लिखो कि एक एजेन्ट को गवर्नर-जनरल से संधि की शर्तें तय करने को भेजें।' इसलिये मैंने संधि-पत्र लिख दिया था, और अब सब बातें तय हो रही हैं। अब अँगरेज़ और गोरखालियों के बीच मैत्री-भाव स्थापित हो गया है। तुम भी इसलिए पश्चिम से अपनी सेना लेकर वापस होओ। हम काली के पूर्वी किनारे को जा रहे हैं, तुम भी लड़ाई खत्म करो, और जनरल औक्टरलोनी से संधि कर लो। अपनी सेना व सैनिक सामान को साथ लाओ तब हम मिलकर अपनी सरकार को लिखेंगे कि वह एक वकील गवर्नर-जनरल के पास सब मामला तय करने को भेजे।

अल्मोड़ा ता० २६ अप्रैल १८१५] हस्तिदल चौंतारा"

यह चिट्ठी जनरल औक्टरलोनी को भेजी गई। उन्होंने इसे नाहन के गोरखा-अफ़सरों के पास भेज दिया। इससे गोरखालियों के ओर की लड़ाई के वृत्तांत का पता चलता है। इस प्रकार गोरखा-राज्य का अन्त कुमाऊँ में हुआ।

---

१८. गोरखों की कर-नीति

गोरखों ने चंदों के बंदोबस्त को बिलकुल पलट दिया। 'छत्तीस रक़म व बत्तीस क़लम' की प्रथा उठाई गई। शेष बहुत बढ़ाया गया। उनके समय के कुछ टैक्सों के नाम ये हैं:—

टाँडकर या तानकर—चरखे करघे में कर।

मिझारी—अछूतों पर टैक्स चमड़े इत्यादि के वास्ते।

घी-कर—घी पर कर।

सलामी—अफ़सरों को जो नज़राने दिये जाते थे।

सोनिया फागुन—त्यौहारों पर नज़राना।

मालगुज़ारी व शेष इतने अधिक न थे। उनका तो एक मुक़र्रर निर्ख था। किन्तु अन्य कर बड़े ज़बरदस्त थे। ये कर इनकमटैक्स की तरह उघाये जाते थे। इन्तिज़ाम ठीक न होने से तथा फ़ौजी सिपाहियों को तनख़्वाह के बदले मुल्क दिये जाने के कारण देश प्रायः उजड़ गया था। ये फ़ौजी लोग मुल्क को मनमानी तौर पर लूटते थे। पैदावार भी कम हो गई थी। गोरखा लोग अनाज की क़ीमत भी बढ़ाने न देते थे। इससे किसान परेशान थे। यदि सूखा पड़ गया, तो बस, मृत्यु का सामना समझिए।

सन् १८१२ में गोरखा-सरकार को कुमाऊँ से जो आमदनी हुई, उसका ब्यौरा इस प्रकार है:—

मालगुज़ारी	८५,५२५)
सलामी नज़राना	२,७४३)
घी-कर	२,२५२)
मिझारी (डूमों से बाबत चमड़े के)	६३१)
टाँडकर या तानकर ?	५०,७४१)
सोनिया फागुन	१,३६०)
चुंगी तिजारत	७,५००)
खानों से चुंगी	२,४००)
काठ बाँस ,,	१,२००)
अन्य ,,	१६२)
आसमानी फ़रमानी (जुर्माना, .कुर्की)	२,५००)
	कुल १,६४,४२६)

उस समय भी कुमाऊँ में गढ़वाल से ज़्यादा बसासत थी, और खेती भी ज़्यादा थी। अतः सारे कुमाऊँ से ४०००००कच्चे रुपये वसूल होते थे और गढ़वाल से २०००००। इसके अतिरिक्त ज़रूरत पर 'मौकर' लगाया जाता था। यदि सरकार को १०,०००) की ज़रूरत है, तो वह टैक्स ५००० घरों में बाँटा जाता और वहाँ से वसूल किया जाता था। फ़ौजी अफ़सरों के सुपुर्द मुल्क किया जाता था। वे स्वयं अपनी तनख़्वाह वसूल कर लेते थे। वे कोई हिसाब सरकार को न देते थे, इसलिये उन्हें परवाह न थी कि

मुल्क उजड़े या बरबाद हो जावे । वे मनमाने टैक्स वसूल करते थे। किसान व ज़मींदार दे न सकते थे। सदैव रुपया बक़ाये में रहता था। लोग पकड़े जाते थे और रोहिलखंड की बाज़ारों में बेचे जाते थे।

तमाम गाँव उजड़ गये। बस्तियाँ जंगल बन गईं। जब गोरखा-सरकार का क़ब्ज़ा कुमाऊँ में हो गया, तो एक कमीशन काठमांडू से आया। उसने गाँव की हैसियत देखकर रक़म ठहराई। उसमें जो लोग तिजारत करते और लाभ उठाते थे, वे भी दर्ज किए गये थे। फाँटें व फर्द बनाकर नैपाल को भेजी जाती थीं। वहाँ से लाल मुहर लगकर वे वापस आती थीं, और हर इलाक़े में 'कमीनों' को दे दी जाती थीं। उसकी एक नक़ल अफ़सरों के पास रहती थी। रक़म वैसे ज़्यादा न थी, पर केन्द्रीय सरकार के ठीक-ठीक निगरानी न रखने से में नीचे के मातहत अफ़सर मनमानी करते थे। फ़ौजी शासक जितना जी आया, जुर्माना ठोक देते थे। कुमाऊँ से भी गढ़वाल में गोरखों ने ज़्यादा सख्ती की। इसीलिये केवल २५ वर्ष के राज्य में प्रजा में त्राहि-त्राहि मच गई, और कविवर गुमानीजी को यह पद लिखना पड़ाः—

"दिन-दिन खजाना का भारका बोकनाले।
शिव शिव चुलिमें बाल नैं एक कैका॥
तदपि मुलुक तेरो छोड़ि नैं कोइ भाजा।
इति बदति गुमानी धन्य गोर्खालि राजा॥"

गोरखों के समय परगने न थे, शायद पट्टियाँ थीं। वे लोग परगनों के वास्ते गर्खा, पाल, रौ, पट्टी, कोट, आल आदि शब्द काम में लाते थे। जो ज़मीन लोगों को सेवा के लिये दी जाती थी, वह 'मानाचौल' के नाम से कहलाती थी। मंदिरों की ज़मीन कत्यूरी व चंद राजाओं के समय 'विश्नु-प्रीति' कहलाती थी! 'गूँठ' शब्द गोरखों ने चलाया।

इतिहास कूर्मांचल

छठा भाग

६. अँगरेज़ी-शासन-काल

[सन् १८१५ से अब तक]

१. गोरखे स्वदेश को लौटे

ता० २७ अप्रैल, १८१५ को अल्मोड़ा की राजधानी में अँगरेज़ों का अधिकार होने से सारा कुमाऊँ उनके आधिपत्य में आ गया। मि० गार्डनर ने एक घोषणा निकाली (३ मई, १८१५) कि कुमाऊँ अँगरेज़ी राज्य में मिलाया गया है। अल्मोड़ा के नागरिकों से कहा गया कि वे नगर को लौट आवें और गाँव के लोगों से कहा गया कि वे अपने-अपने घरों को लौटें और अपने-अपने काम-धन्धों में लग जावें।

३० अप्रैल सन् १८१५ को गोरखों ने अपना सामान बाँधकर कूच का डंका बजाया। और १४ मई को शर्तनामे के अनुसार वे भूलाघाट होकर डोटी को गये। अन्यत्र किसी भी गोरखा-नेता ने किसी प्रकार का विरोध नहीं किया। सबों ने श्रीबमशाह चौंतरिया की संधि को मान लिया। बहुत-से तो उन्हीं के साथ डोटी को गये। पश्चिम में गोरखों के दो बड़े क़िले थे। एक पाली में रामगंगा के ऊपर नैथाणा-पर्वत में, दूसरा वहाँ से १२ मील उत्तर लोहबा-गढ़वाल में। इनमें से प्रत्येक क़िले में उनके १५० से ज़्यादा सैनिक न होंगे। अल्मोड़ा के सर होने के बाद गोरखों ने ख़ुद नैथाणा को ख़ाली कर दिया। लोहबा के क़िले पर वहाँ के लोगों ने चढ़ाई की। मि० गार्डनर ने उनको फ़ाजी सामान दिया था। अल्मोड़ा के क़िले के सर होने के चार दिन पहले ही उन्होंने पानी के रास्तों (घाटों) को बंद कर २२ अप्रैल सन् १८१५ को ही गोरखों को उस क़िले को ख़ाली करने को बाध्य किया था। गोरखों का कहना है कि वहाँ पर पं० हर्षदेव जोशीजी ख़ुद आये थे। उन्होंने लोगों को भड़काया। अँगरेज़ों से सामान माँगकर ले गये, और इस क़िले पर चढ़ाई की। यहीं पर एक प्रयत्न गोरखों को निकालने का लोगों ने स्वयं किया था, यद्यपि इसमें भी टेढ़ी तौर से अँगरेज़ों का हाथ था। गढ़वाल में गोरखों ने कुछ भी विघ्न या विरोध न किया। वह सारा ज़िला शान्तिपूर्वक अँगरेज़ों के अधिकार में आ गया। एक फ़ौज अँगरेज़ों की श्रीनगर में गई, और उसने वहाँ जाकर गढ़देश पर अधिकार कर लिया। कोई घटना ऐसी न हुई, जो वर्णन करने लायक़ हो।

ता० ३ मई १८१५ को गवर्नर-जनरल की आज्ञा से माननीय इ० गार्डनर कुमाऊँ के कमिश्नर तथा एजेन्ट गवर्नर जनरल बनाये गये । ८ जुलाई को मि० जी० डब्ल्यू० ट्रैल उनके सहायक बने । करनल निकोल्स (सेनापति) कुछ सेना लेकर मि० गार्डनर के साथ चंपावत को गये, उस समय जब कि सुब्बा बमशाह चौंतरिया अपनी सेना व सामग्री लेकर नैपाल को गये थे । करनल निकोल्स उनको काली पार कर आये । वहाँ जाकर श्रीबमशाह चौंतरिया ने दैशिक शासन की ओर अपनी दृष्टि डाली । नैपाल से जो संधि हुई थी, उसका अन्तिम निर्णय २ दिसंबर, १८१५ तक न हो सका । और ४ मार्च, १८१६ तक दोनों ओर से उसकी पूर्णतया स्वीकृति नहीं हुई ।

नैपाल व अँगरेज़ों के मध्य संधि स्वीकृत होने के समय तक कुमाऊँ व नैपाल की सरहद काली नदी स्थापित की गई । मि० गार्डनर को सरकार ने यह भी लिखा कि अगर तिब्बती तिजारत के लाभ के वास्ते काली पार और किसी जगह में क़ब्ज़ा करना ठीक हो, तो वह रिपोर्ट भेजें, ताकि संधि में वैसी शर्तें रक्खी जावें । इधर अँगरेज़ सरकार सुब्बा बमशाह चौंतरिया को भी मदद देना चाहती थी । ख़ासकर उस सस्ती संधि के बदले में, जो उन्होंने कप्तान हेरसी के कहने से अँगरेज़ों के साथ की थी । श्रीबमशाह चौंतरिया का इरादा अपने लिये डोटी में एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का भी था । अँगरेज़ों की भी यह इच्छा थी कि उनके व नैपाल राज्य के बीच एक मित्र राष्ट्र (Buffar State) होवे, तो अच्छा हो । चौ० बमशाह ने अपनी मिलनसारी का अच्छा प्रभाव अँगरेज़ों पर डाला था । अँगरेज़ लोग फ़ौज भेजकर भी श्रीबमशाह को डोटी की गद्दी पर बैठाने को तैयार थे । किन्तु श्रीबमशाह ने दूरदर्शिता से काम लिया । उन्होंने नैपाल के शत्रु से मदद लेकर, अपने देश में विद्रोह का झंडा उठा कर एक स्वतंत्र राष्ट्र स्थापित करना ठीक न समझा । अँगरेज़ों से उन्होंने कहा कि यदि वे ऐसा करेंगे, तो थापा-दल, जिसके नेता बीरवर-सरदार अमरसिंह थापा थे, इस पर बड़ा हो-हल्ला मचावेगा । अंत में चौ० बमशाह ने अपनी युक्ति से अपने को डोटी का सुब्बा (गवर्नर) बना ही लिया ।

पश्चात् नैपाल की संधि के बाबत जो-जो अड़चनें हुईं, उनका कुमाऊँ के इतिहास से विशेष संबंध नहीं है, तोभी संधि-विषयक थोड़ी-सी बातें कहकर यह कांड समाप्त किया जावेगा । अँगरेज़ लोग चाहते थे कि नैपाल की ओर से प्रतिनिधि श्रीबमशाह चौंतरिया बनें, ताकि संधि शान्तिपूर्वक स्वीकृत हो, पर नैपाल-दरबार में थापा-दल का ज़ोर था, और उन सबके नेता सरदार

अमरसिंह थापा थे। इन्होंने नाहन के पास मलाऊँ व जैथक क़िलों में प्रचंड बहादुरी के साथ अँगरेज़ी फ़ौज का सामना किया, और कुमाऊँ में हार होने पर भी इन्होंने हार न मानी। पर अन्त में बहादुरी के साथ लड़ते-लड़ते जब केवल दो सौ आदमी क़िले के भीतर बाक़ी रहे, तब इन्होंने संधि की। इनको भी देश के रास्ते काली पार जाने को राहदारी मिल गई, और अपना माल-असबाब ले जाने का भी हुक्म हो गया। ता० १५ मई १८१५ को श्री-अमरसिंह थापा ने भी संधि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। अतः शिमला से लेकर कुमाऊँ तक का सारा इलाक़ा अँगरेज़ों के हाथ आ गया। गोरखों को हथियार ले जाने का हुक्म न हुआ, पर सरदार अमरसिंह की संरक्षकता में जो सेना थी, उसको ख़ास तौर पर हथियार ले जाने की आज्ञा मिली। उनके फ़रमान में लिखा था—"क़ाज़ी अमरसिंह थापा को उनके चरित्र, बहादुरी, ऊँचे रुतबे, रण-कौशल तथा राजभक्ति के कारण, जो कि उन्होंने अपने सुपुर्द मुल्क के बचाव में दर्शाई, उनको व उनके साथियों को अपने-देश नैपाल तक हथियार ले जाने का हुक्म दिया गया है।"

अपने देश काठमांडू में पहुँचने पर इन्होंने चौ० बमशाह की संधि का घोर विरोध किया। अँगरेज़ तमाम तराई का इलाक़ा छीनना चाहते थे और अपना एक एजेन्ट काठमांडू में मय फ़ौज के रखना चाहते थे। नैपाल की तरफ़ से नैपाल-राज्य के राजगुरु पं० गजराज मिश्र प्रतिनिधि बनकर आये। इन शर्तों का थापा-दल ने विरोध किया। फिर लड़ाई की तैयारियाँ हुईं। जगह-जगह क़िलेबंदी व मोर्चाबंदी हुई। अँगरेज़ों की तरफ़ से भी जनरल औक्टर-लोनी सेना लेकर भेजे गये और इधर से करनल निकोल्स को कहा गया कि वे डोटी, बुटवल तथा पल्या पर चढ़ाई करें। थापा-दल तराई छोड़ने को भी राज़ी हो गया, पर रेज़ीडेंट रखने को सहमत न हुआ। जनरल औक्टरलोनी ने सेना उठाकर काठमांडू से २० मील मकवानपुर के पास खड़ी कर दी। यहाँ पर ता० २८ फरवरी सन् १८१६ को गोरखों से युद्ध हुआ। ८०० गोरखे मरे व घायल हुए। अँगरेज़ कहते हैं कि उनकी ओर के २ अफ़सर तथा २५० आदमी हताहत और घायल हुए। जब इस हार की खबर काठमांडू पहुँची, तो संधि उसी अनुसार हो गई जिस प्रकार अँगरेज़ चाहते थे। अर्थात् प्रायः सारी तराई छीनी गई, कुमाऊँ प्रान्त पर उनका अधिकार न रहा। काठमांडू में अँगरेज़ी रेज़ीडेंट रखना मंज़ूर किया गया। बाद को तराई का कुछ हिस्सा अँगरेज़ी सरकार ने नैपाल दरबार को वापस कर दिया। कुछ हिस्सा नवाब अवध को दिया गया, और मेछी व तिस्ता

नदियों के बीच का मुल्क राजा सिखम को दिया गया। व्यांस के पास के दो गांव तिनकर और छुंगरू, जो काली के पास हैं, सन् १८१७ में नैपाल ने माँगे। जाँच करने पर वे नैपाल के निकले। अतः वे चौं० बमशाह को दिये गये, जो उस समय डोटी के सुब्बा थे। बाद को उन्होंने कुन्ती व नाभी गाँव भी माँगे। इनके बारे में भी जाँच हुई, पर ये व्यांस परगने के निकले, और अभी तक व्यांस में ही शामिल हैं।

इस प्रकार नैपाली सरकार का शिमले से लेकर सिखम तक जो एक बार राज्य स्थापित हो गया था, उसके तीन बाज़ू तोड़ दिये गये। इसमें शक नहीं कि संसार-भर के सैनिकों में गोरखा सिपाही वीरता, रण-कौशल तथा निडरता में किसी से कम नहीं है। मुश्किल-से-मुश्किल काम करने को वह तैयार रहता है। इनके अफ़सर भी, जो कुमाऊँ व अन्यत्र में नियुक्त थे, बहादुर तथा आत्म-त्यागी थे। उन्होंने वीरता-पूर्ण बड़े-बड़े काम किये हैं। अँगरेज़ों की उस समय की फ़ौज साहस, सैनिक-शक्ति तथा ताक़त में गोरखों के बराबर न थी। मि० अठकिनसन अपने गज़ेटियर पृष्ठ ६७६ में ख़ुद लिखते हैं:—

"It is to be hoped that our statesmen and our soldiers will not forget the lesson that was taught them in the Nepalese war. It was chiefley evident and it was admitted on all hands at the time that in point of physical courage our native soldiers were altogether inferior to the Gorkhas. This was clear not only at the more conspicuous failures of Kalanga and Jaithak but throughout the war. On the other hand, the admirable operations of General Ochterlony proved beyond a doubt that under proper management our repaers were certain of success in a country of most extreme difficulty to all natives of the plains and offored to the bravert enemy that has ever met us in Asia."

अँगरेज़ लोग दैशिक शासन तथा राजतंत्र (Diplomacy) में सिद्ध हैं। ये बातें उनके स्वभाव में हैं। उन्हें सिखानी नहीं पड़तीं। यदि गोरखों में भी कुछ राजनीतिज्ञता होती, और अँगरेज़ों के उपर्युक्त गुण उनमें होते, तो वे कुमाऊँ प्रान्त क्या, सारे भारत के शासक जब चाहते, बन बैठते। उनके बराबर पर्वती लड़ाइयों में लड़नेवाली वीर जातियाँ एशिया में कम हैं।

वह गठीला बदन, वह नाटा क़द। निडर गोरखा सिपाही एक आदर्श सैनिक है, पर गोरखों ने शिक्षा से पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया था। यदि नैपाल दिमाग़ी शक्ति में ज़ोर दे, तो वह सब राष्ट्रों का सिरमौर बन जावे। क्योंकि सैनिक-शक्ति में वह बहुत बढ़ा-चढ़ा है।

सन् १७९० से १८१५ तक गोरखों ने बहुत-सा पर्वती प्रदेश जीता, पर उनका शासन कुटिल, कठोर तथा नासमझी का था। इससे सारा देश विरुद्ध हो गया। देश के विरुद्ध होने पर भी इन्होंने बहादुरी की। यदि लोग इनके पक्ष में होते, तो न जाने ये क्या करते। ज़रा ये युक्ति से काम लेते, और लोकप्रिय बनने की कोशिश करते, तो एक क्या, अनेक कुमाऊँ जीत लेते। पर कुमाऊँ के भाग्य में क्या था? न धर्मात्मा कत्यूरी ही रहे, न प्रतापी चंद रहे, न स्वतंत्र खस राजा रहे, और न वीर नैपाली ही रहे। सब शासक अपनी-अपनी करनी का फल प्राप्त कर विस्मरण के विश्रामालय में चले गये। अब १२० वर्ष से अँगरेज़ इस देश के शासक हैं। आगे जो हो।

---

२. गढ़वाल का बटवारा

सन् १८११ में राजा सुदर्शनशाह ने मेजर हेरसी को यह वचन दिया था कि अगर मेजर साहब गोरखों के पंजे से गढ़वाल को छुड़ाने में मदद दें, तो वे देहरादून तथा चंडी परगना अँगरेजों को दे दगे। सन् १८१५ में राज्यच्युत राजा सुदर्शनशाह को, जो देहरादून में बड़ी मुसीबत में रहते थे, गढ़वाली राज्य वापस मिला। अलकनंदा से इस पार का ही प्रान्त मिला। रवाईं परगना पहले न मिला था, बाद को मिल गया। देहरा व चंडी का इलाक़ा अँगरेज़ों ने अपने अधिकार में ले लिया। गढ़वाल के और राजकुमारों को कुछ भी हक़ न दिया। कुँ० प्रीतमशाह ने, जो नैपाल में कैद थे, छूटने पर गढ़वाल में ज़मींदारी के हक़ माँगे, पर वे भी न दिये गये। राजा गढ़वाल की सनद में यह लिखा गया कि वे आवश्यकता होने पर सहायता व सामग्री देने को बाध्य होंगे और अपने व अपने राज्य के बाहर व्यापार करने की सुविधाएँ स्थापित करेंगे। अपने राज्य को बिना अँगरेज़ी सरकार के हुक्म के न तो बेच सकेंगे, न रेहन रख सकेंगे। कुमाऊँ प्रान्त में यही एक स्वतंत्र राज्य रह गया। पहले यह कुमाऊँ डिवीज़न में था, अब सन १९३६ से पंजाब के राज्यों के साथ शामिल किया है।

---

३. पं० हर्षदेवजी का वसीयतनामा

कुमाऊँ के बारे में 'राजनीतिक चुटकुले' (Political notes on Kumaon) के लेखक ने, श्रीहर्षदेव जोशीजी महाराज के राजनीतिक चातुर्य्य की प्रशंसा करते हुए, उनके वसीयतनामे का (जो उन्होंने अपनी संतति के उपकार के लिये गणनाथ-मंदिर में आषाढ़ सुदी अष्टमी संवत् १८७८ (१८७२ ?) तदनुसार जुलाई १८१५ को लिखा था।) अँगरेज़ी भाषा में जैसा वर्णन किया है, उसका भावार्थ हम यहाँ पर देते हैं:—

"माननीय ईस्ट इन्डिया कंपनी की आज्ञा से सन् १८१४ में मि० विलियम फ्रेज़र ने कुमाऊँ को अँगरेज़ी राज्य में मिला लेने के लिये मेरी सहायता माँगी थी, जब कि मैं कनखल में ला० भारामल खत्री के मकान में रहता था। उस समय मि० फ्रेज़र ने मुझसे कहा कि अपनी शर्तें बताओ। उनके यह वचन देने पर कि मुल्क को अँगरेज़ी राज्य में मिला लेने पर मेरी शर्तें पूरी की जावेंगी, मैंने राजा, दीवान तथा कुमाऊँ की प्रजा व अपनी संतति के अधिकारों की रक्षा के लिये २१ शर्तें बनाईं, जिनमें से १८ मि० फ्रेज़र साहब ने स्वीकार कीं:—

(१) कुमाऊँ की राजगद्दी क़ायम रहेगी।

(२) हमारी इज़्ज़त वही रहेगी, जैसी हमारे बुज़ुर्गों की थी।

(३) प्राचीन राजाओं की दी हुई जागीरें बहाल रहें।

(४) ब्राह्मणों की सम्पत्ति वैसी ही क़ायम रहे, जैसी पहले थी।

(५) मंदिरों की गूँठें क़ायम रहें।

(६) कुमाऊँ, गढ़वाल व तराई के खायकर अपने हक़ों को साबिक़ की तरह बरतते रहें।

(७) क़ानूनगोइयाँ बहाल रहें।

(८) शासन धर्म-शास्त्र के मुताबिक़ हो।

(९) गोरखाली बंदोबस्त मनसूख हो, और पुराना बंदोबस्त बहाल रहे।

(१०) पहाड़ों में गोबध न हो और हमेशा बन्द रहे।

(११) हिन्दू-मुसलमानों का पानी सदा अलग रहा है, अब भी अलग रहे।

(१२) हिन्दू व मुसलमान अलग-अलग रहें।

(१३) इज़्ज़तदार आदमी अपनी पुरानी इज़्ज़त के हक़दार रहें।

(१४) शास्त्र से मर्यादित धर्म में हस्तक्षेप न हो।

(१५) पहाड़ के आदमी सीधे-सादे होते हैं। इस देश की औरतों को कोई बहकाने न पावे।

(१६) जो ब्राह्मण गोरखों के अत्याचारों से मुल्क छोड़कर भाग गये हैं, वे बुलाये जावें।

(१७) जिन लोगों को अधिकार है, उनके अलावा अन्य कोई मंदिरों में न आने पावें।

(१८) कंपनी ने मेरे लड़के को, जो नैपाल में राजनीतिक क़ैदी है, छुड़ाने की कृपा करनी चाहिये।

"मि० फ्रे़ज़र के विश्वास दिलाने पर मैं गढ़वाल गया, और उस ज़िले को अँगरेज़ी राज्य में मिलाने में फलीभूत हुआ। इसके बाद मैं मि० गार्डनर के साथ कुमाऊँ में गया और उसको अँगरेज़ी राज्य में मिलाने में जो सहायता मैंने की है, वह विश्वविदित है। अल्मोड़ा में विजय-शंख बजने पर वृद्धावस्था के कारण मेरी तन्दुरुस्ती ख़राब हो गई। अब मैं मृत्यु शय्या पर हूँ। मेरे वारिसों ने श्रीफ्रे़ज़र व श्रीगार्डनर के द्वारा कम्पनी सरकार को कहना चाहिये कि मेरी शर्तें पूरी करें। सारांश यह है कि यदि अँगरेज़ मेरी २१ शर्तों को पूरी करें, तो मेरी संतति सदा अँगरेज़ सरकार की भक्त रहे। अगर मेरी संतान राजभक्त रहने का पूरा उद्योग न करेगी, तो वह दुःखी होगी। और यदि सरकार अनुनय-विनय करने पर भी मेरी २१ शर्तों को पूर्ण न करे, तो कंपनी परलोक में उत्तरदायी होगी! मि० फ्रे़ज़र ने मुझे काग़ज़ दिखाये हैं, जिसमें मुझे खानदानी सलाहकार (Hereditary Councillor) बनाया गया है। गद्दी के बारे में भी कुछ उज्र किए हैं।"

पं० हर्षदेवजी के असली वसीयतनामे की एक नक़ल यहाँ पर दी जाती है, वह फ़ारसी-शब्दों से भरी है। वसीयतनामा अविकलरूप से यहाँ पर छापा जाता है। भाषा व व्याकरण सब पं० हर्षदेवजी का है:—

"तरजुमा चिट्ठी हिन्दी मोहरी जोशी हर्षदेव वालिदम के बरवख्त बूदन वैकुण्ठवासी वम्प्रहिलकारान खुद दादा रफ़्ताबूदन्द मय बिरादरान निजद फ़िदवी रसीदा अस्तफ़कूत।

नक़ल याददास्त जोशी ज्यू ने बरवख्त वैकुण्ठवासी होने के औलाद अपने के वास्ते अहवाल हक़ी लिखाकर सौंपत अहिलकार अपनों के किया।

मक़ूम अष्टमी सुदी आषाढ़ सम्वत् १८७२ विक्रमाजीत बमुक़ाम श्रीगणनाथ सम्वत् १८७१ आश्वन्य सुदी पड़ेवा के रोज बरहुक्म कम्पनी बहादुर केसे मिस्टर विलियम फ्रे़ज़र साहब बहादुर ने बीच कनखल के हवेली

भागमल खत्री की में दस्तगिरी हमारी की वास्ते करने फ़ते मुल्क कोहिस्तान के उस वख्त में साहब ममदूह ने फ़र्माया, जो कुछ की मुद्दा तुम्हारे दिल में कम्पनी के घर से वसूल करने के वास्ते तुम चाह रखते हो, सो अर्ज़ करो। बाद फ़ते होने के वसूल होंगे करके साहब ने हुक्म दिये जाने में राजा राज-पंचों मुल्क कुमय्यों को की और औलाद अपनी की बेहतरी के वास्ते तफ़सील बमूजिब मैंने मुदआ अर्ज़ की, सो साहब ममदूह ने कबूल की, बाकी मुद्दाइ हुक्म कम्पनी का ही हमको मुक़र्रिर होंगी।

यह कहके हुक्म अपनी तरफ़ से दिया—अव्वल कि इज़्त तुम्हारी कम्पनी के घर से मुआफ़िक राजाओं के मयफ़रज़न्दान होगी। दोयम हुक्म जनैंली तुम्हें मिलेगा। सेयम गढ़ व कुमाऊँ निज तुम्हारी ही हैं, इससे सिवाय जो मुल्क कोहिस्तान अमल दखल कम्पनी के में आवेगा, उसका बन्दोबस्त मार्फ़त तुम्हारे होगा। यह जो हुक़्म मिस्टर विलियम फ्रेज़र साहब बहादुर के देने से हमराह साहब बहादुर के होके गढ़माला पाली में पहुँचकर फ़तह गढ़ करवाया। बाद इसके बरहुक्म साहब बहादुर के वसीला चिट्ठी के हमराह गाड-नर साहब बहादुर के होकर मुल्क कुमाऊँ की तईं जो कुछ खैरख्वाही मुझ ग़रीब से बनी, सो जहान आलम में रोशन है। बीच अल्मोड़ा के नक़ारा फ़तेह का कम्पनी का बजाय करके उम्र मेरी ने वफ़ान दिया। अब मैं वैकुण्ठवासी होता हूँ। मेरे हक़ की हक़दार औलाद मेरी मार्फ़त साहब बहादुर के से (और अर्ज़ कर ले पास मिस्टर गाडनर साहब बहादुर के से) भी कम्पनी के घर से वसूल कर ले। मुद्दा यह तमाम इक्कीसों की थी बेहतरी तमाम मुल्क की और अपनी करके बीच दायरे दौलत कम्पनी अँगरेज़ बहादुर की खैरख्वाही की तईं मशगूल रहना, अगर इस बात के वास्ते क़ायमियत की जांफ़िशानी औलाद मेरी न करे, भला नहीं होगा, लेकिन हक़दारों को हक़ सरकार न पहुँ-चायेगी, तो अर्ज मेरी औलाद की साहबान लोग न सुनके दुरुस्ती मुआफ़िक़ मेरी अर्ज की हुई के न कर देवें, तो मैं दामनगरि आगपत में हूँगा, और किताब दिखाई उसमें साहब ममदूह ने लिखा दिखलाया। हक़दार क़दीमी मेरे तईं कौन्सल का ठहराया बतलाया। अव्वल मुद्दा गद्दी की में तकरार भी किया।

(तफसील मुद्दाहेज़दा १८)

(१) गद्दी राज कुमाऊँ की क़ायम हो।

(२) मुआफ़िक़ बुज़ुर्गान हमारों के मुआफिक़ इज्जत उस जगह क़ायम हो।

(३) ज़मींदारी बक्सी हुई राजाओं की हमारी तईं सो हमको मिले।

(४) मिलिकियत ब्राह्मणों की बतौर साबिक के क़ायम होवें।

(५) जो कुछ वास्ते देवतों के रुपया ज़मीन जो साबिक़ से क़ायम है सो बहाल रहै।

(६) बदस्तूर साबिक़ के खायकार हमारी कुमाऊँ के तराई की गढ़वाल की क़ायम रहै।

(७) कानूनगोई कुमाऊँ की इसदाय से ताल्लुक बुजुर्ग हमारी के रही सो अब भी क़ायम रहै।

(८) इन्साफ़ माफ़िक धर्मशास्त्र के हो।

(९) बन्दोबस्त गोरखालियों का बन्द होकर माफ़िक़ साबिक़ राजाओं के बन्दोबस्त होवें।

(१०) गोवध परवत में कभी नहीं हुआ अब भी न हो।

(११) जल, हिन्दू मुसलमानों का जुदा-जुदा रह आया है, सो ही अब भी रहै।

(१२) बिछौना, हिन्दू मुसलमानों का जुदा ही रहा है सो अब भी रहै।

(१३) हुरमत इज्जतदारों की मुआफ़िक आगे के रहै।

(१४) मज़हब, जो धर्मशास्त्र का चला आया है मुआफ़िक़ उसके में फ़र्क न पड़े।

(१५) आदमी पहाड़ का ग़रीबमुदा है, औरतें इस मुल्क की किसी के बहकावटी से बदइमान न हों।

(१६) गोरखों की बिद्दत से ब्राह्मण इस मुल्क से चले गये हैं, सो आबाद हों।

(१७) मकान देवतों के में सिवाय कदीम के जानेवालों के और कोई न जाय।

(१८) बेटा बड़ा मेरा कैद गोरखाली के में है नवाज़िस कम्पनी की से छूटे।"

पं० हर्षदेवजी की शर्तें अँगरेज़ी ग्रंथों में कहीं देखने में नहीं आईं। यदि मि० फ्रेज़र या मा० मि० गार्डनर के स्वीकृत हस्ताक्षर के साथ यह शर्तनामा पं० हर्षदेवजी के वारिसों के पास है, तो हम कहेंगे कि अँगरेज़ों ने उनके साथ विश्वासघात किया। अन्यथा मरते समय गणानाथ के मंदिर में अपने राजनीतिक पापों के प्रायश्चित्तस्वरूप उन्होंने अपनी याददाश्त लिखी

है, तो राजनीति में इसका मूल्य कुछ नहीं। अँगरेज़ों ने श्रीशिवदेव जोशी तथा श्रीहर्षदेव जोशीजी का वास्तव में बहुत गुण-कीर्तन किया है। शिवदेवजी वास्तव में नीतिनिपुण तथा कार्यदक्ष थे, किन्तु फरत्यालों के ग़दर के समय उन्होंने जो निर्दयता दर्शाई है, उससे अपनी सारी कीर्ति पर कालिमा पोत डाली है। बालीघाट-कांड की वर्बरता पैशाचिक है। हर्षदेव जोशीजी ने जो-जो राजनीतिक काम किये, उनका पूरा-पूरा वर्णन जहाँ तक हमें मिल सका है, हमने निःस्वार्थ-भाव से रक्खा है। इसमें संदेह नहीं कि अपने समय में हर्षदेव जोशीजी एक असाधारण राजनीतिज्ञ हो गये हैं। विद्वान्, गुणवान् सब कुछ थे। उन्होंने क्या किया, क्या न किया। कुमाऊँ से कलकत्ता उधर कांगड़े तक का मुल्क छान डाला, पर जिस प्रकार खुद अठकिन्सन साहब ने उनको खुदग़र्ज व देशद्रोही (unpatriotie & selfish) कहा है, वह हम "गोरखा-शासन-काल" में दर्शा चुके हैं। उधर चौंतरिया बमशाह ने बहुत कुछ अँगरेज़ों का साथ देने पर भी देशद्रोह नहीं किया। यद्यपि अँगरेज़ उनको डोटी का स्वतंत्र नृपति बनाने को तय्यार थे। किन्तु हर्षदेव जोशीजी ने तो क्या-क्या चालें कुमाऊँ के राजनीतिक चौपड़ में चलीं क्या नहीं? कितनों को राजा बनाया, कितनों को रंक! उस ज़माने के राजनीतिज्ञों के वे सरदार थे। अपने ही देशवासियों की सहायता से चंदों को निकाल, वे ख़ुद राजा या सर्वेसर्वा बन जाते, तो उनका यश सदा बना रहता, किन्तु विदेशियों के हाथ मातृभूमि को बेच डालना, दैशिक शास्त्र के अनुसार बड़ा भारी पाप है। राजनीति में शासक क्या-क्या धूर्तताएँ व कूटनीतिज्ञता करते हैं, क्या नहीं। किसी का सर उड़ा देते हैं, किसी के पैर काट डालते हैं। सब ग़ल्तियाँ माफ़ हो सकती हैं, पर देशद्रोह वह अपराध है, जिसका प्रायश्चित्त नहीं। जननी जन्मभूमि के प्रति जो विश्वासघात करता है, उसकी अपकीर्ति "यावत् गंगा कुरुक्षेत्रे......" तक बनी रहती है। विभीषण, जयचंद व अमीचंद को कभी मुक्ति न मिलेगी, पर रावण, पृथ्वीराज अमर हैं। अस्तु हर्षदेवजी चंदों को समाप्त कर गढ़वाली राजा को अल्मोड़ा लाये, उन्हें हटाकर गोरखों को गद्दी पर बैठाया। कई बार मुसलमानों की शरण में गये, अन्त में अँगरेज़ों को कूर्मांचल का शासक बना, आप गणानाथ में मर गये। कहते हैं कि सरकार ने उनको एक अच्छा इलाक़ा जागीर में देना चाहा था, पर वे १०००) पेंशन पर राज़ी हो गये। एक अँगरेज़ लेखक ने कहा है कि उनको ३०००) माहवार पेंशन देने का आयोजन सरकार ने किया, पर बाद को १०००) में ही वे राज़ी हो गये। उनकी जागीर के पुराने गाँव, (जैसे

बजेल, गंगोलाकोटुली, झिजाड़, पिथराड़, रीठागाड़ के गाँव, इसलना, किराड़ा, खड़ाऊँ आदि) बहाल रहे। उनके पुत्र पं० मधननारायणजी को केवल ५००) पेंशन मिली, पर वे जल्द मर गये। अतः श्रीगुजलला को केवल १००) पेंशन बड़ी मुश्किल से मिली। (ब्राह्मणों में सबसे पहले तम्बाकू पीना गुजलला ने चलाया।) तत्पश्चात् उनके पुत्र पं० बदरीदत्त जोशीजी को ५०) रु० माहवार मिले। अब यह बंद हो गई है। उधर पं० हर्षदेव जोशीजी के भाई पं० जयकृष्णजी के पुत्रों—लक्ष्मीनारायण व गंगादत्तजी को १००) माहवार मिले। बाद को पं० लक्ष्मीनारायण के पुत्रों (१) श्रीकृष्ण, (२) रतनपति, (३) चूड़ामणि, (४) ईश्वरीदत्त, (५) गोविन्दवल्लभ को ५०) माहवार मिले। वे १०)-१०) रु० आपस में बाँट लेते थे। अन्तिम व्यक्ति श्रीगोविन्दजी के मरने पर पेंशन खत्म हो गई।

४. चंदों के राजमंत्री क़ानूनगो बनाये गये

कुछ खानदान चंदराज्य के समय मौरूसी दफ़तरी या लिखवाड़ थे। उनको मासिक वेतन के बदले ज़मीन मिली हुई थी। सरकार ने वह ज़मीन सन् १८१८ में ज़ब्त कर ५ कानूनगोइयाँ इस प्रकार सदा के लिये मुक़र्रर कर दीं (१) झिजाड़ खानदान—१ क़ानूनगोई (२) दन्या खानदान—२ क़ानूनगोइयाँ (३) चौधरी ख़ानदान—२ कानूनगोइयाँ। उस समय इनकी तनख्वाह २५ रु० माहवार ठहराई गई। सन् १८१८ में कुमाऊँ में पाँच क़ानूनगो थे। सर्वश्री (१) माना चौधरी, (२) नारायण चौधरी, (३) रतनपति जोशी (४) त्रिलोचन जोशी (५) रामकृष्ण जोशी। १५३५ रु० रक़मी ज़मीन इनके पास थी। वह चंदों के समय से 'मान—चावल' के नाम से इनको मिली थी। ट्रेल साहब ने इस प्रकार का प्रस्ताव भेजाः—

श्रीरामकृष्ण को	३०) माहवार
श्रीत्रिलोचन को	३०) ,,
श्रीमाना चौधरी को	३०) ,,
श्रीरतनपति को	२०) ,,
श्रीनारायण चौधरी को	१५) ,,

पर कंपनी के बोर्ड ऑफ़ डाइरेक्टरों ने इनकी तनख्वाह ११ मई १८१६ को २५) रु० माहवार ठहराई। माफी ज़मीनें ज़ब्त की गईं। ये मौरूसी क़ानूनगोइयाँ कहलाती हैं। इनमें से चार अल्मोड़ा में हैं। एक कानूनगोई सन् १८६१ से नैनीताल ज़िले को बदली गई है।

५. चंदवंश के अन्तिम राजा

प्राचीन चंदराजाओं के राजवंश का कुछ वर्णन करना आवश्यकीय है:—

राजा महेन्द्रचंद व राजा लालसिंह ने गोरखों के खिलाफ़ लड़ने की आज्ञा माँगी थी पर यह आज्ञा न मिली। अँगरेज़ों ने इनको सदैव अनधिकारी राजा बताया है। इसी से लड़ने की आज्ञा भी न दी हो, ताकि ये लोग राज्य के हक़दार न बन बैठें। एक गजेटियर में इनके मूल पुरुष को बाजबहादुर चंद की दासी (छ्योड़ी) का पुत्र लिखा गया, पर जब काशीपुर के राजा साहब ने उसका विरोध किया, तो दूसरे गजेटियर में उनको सौतेला—राजा काशीपुर लिखा गया। अँगरेज़ों ने यह भी कहा कि उन्होंने राज्य गोरखों से लिया है, चंदों से नहीं लिया, इसलिये कुमाऊँ की गद्दी न तो राजा महेन्द्रचंद, न राजा लालसिंह किसी को न दी। सन् १७६० में राजा लालसिंह ने किलपुरी में अपनी राजधानी बनानी चाही, पर गोरखों ने वहाँ से उन्हें मार भगाया। अन्त में नवाब अवध के पास राजा महेन्द्रचंद ने राजा लालसिंह को भेजा। बीमार होने से वे ख़ुद न जा सके। वज़ीर टिकैतराय की मार्फ़त राजा लालसिंह ने अर्ज़ी पेश की। नवाब अवध ने राजा के गुज़ारे के लिये तराई में १६ गाँव असली तथा ७ गाँव दखली जागीर में दिये, जिसमें १६ हज़ार रुपये की सालाना आमदनी थी। राजा महेन्द्रचंद के मरने पर जागीर रानी के नाम हुई। बाद को कुछ मुक़द्दमेबाज़ी होने पर जागीर राजा लालसिंह के हाथ आ गई। कुछ इस कांड में भेद समझा गया। अल्मोड़ा व काशीपुर दोनों राजवंशों में वैमनस्य हो गया। पाटिया के पांडे गुरु थे। उन्होंने कहा कि राजा लालसिंहजी ने धर्म-विरुद्ध काम किया है, वे गुरुमंत्र न देंगे। तबसे सेलवाल जोशी इनके गुरु व पुरोहित हुए। चंदों का वंश दो कुटुम्बों में बँट गया (१) अल्मोड़ा, (२) काशीपुर।

अल्मोड़ा-ख़ानदान (बड़े भाई का)

प्रतापचंद

राजा महेन्द्रचंद के पुत्र राजा प्रतापचंद हुए। इनको अल्मोड़ा की जागीर मिली तथा दो गाँव मुरादाबाद में मिले। २५०) रु० माहवार पेंशन मिली। बड़े रूपवान भोलेभाले पुरुष थे। पर थोड़ी अवस्था में स्वर्ग को गये।

राजा नंदसिंह

इनके पुत्र राजा नंदसिंह थे। ये डिपुटीकलक्टर भी रहे। ३२ वर्ष के

लगभग ये भी स्वर्ग को सिधारे। पहले इनको २५०) पेंशन के मिले। बाद को १२५) किए गए।

राजा भीमसिंह

इनको कोई पेंशन न मिली। यह पहले सरिश्तेदार थे, बाद को बंदोबस्ती तहसीलदार रहे। बड़े रोब-दोब के आदमी थे। तेज़-मिज़ाज भी थे। पर यह भी ३०-३२ वर्ष में स्वर्ग को सिधारे।

इनके दो पुत्र हुए—(१) कुँ० राजेन्द्रसिंह और (२) कुँ० आनंदसिंह। कुँ० राजेन्द्रसिंह बड़े दर्शनीय थे। नैपाल में इनका विवाह हुआ था। यह भी छोटी उम्र में मर गये। कुँ० आनंदसिंह अभी हैं। चंदराजवंश के होने से राजा कहे जाते हैं। इन्होंने विवाह नहीं किया है। नंदादेवी की पूजा यही करते हैं। आप एक बार कौंसिल के मेम्बर भी रहे हैं।

काशीपुर राज

राजा लालसिंह को किलपुरी में जागीर मिली थी, पर वहाँ की हालत ख़राब होने से सरकार ने उनके वारिसों को किलपुरी के बदले चाँचट में १६ गाँव दिये। वह किलपुरी के ज़मींदार भी रहे। राजा प्रतापचंद ने चाँचट तथा बाज़पुर के हिस्से के बारे में दावा किया था, पर वह बोर्ड से खारिज हो गया। उसमें यह फ़ैसला हुआ कि राजा लालसिंह ख़ानदान के प्रधान पुरुष थे। जागीर उन्हीं के नाम थी, और उन्हीं की होनी चाहिए।

राजा गुमानसिंह

सन् १८२८ में राजा लालसिंह की मृत्यु होने पर उनके पुत्र राजा गुमानसिंह राजा हुए। यह ज़्यादातर रुद्रपुर में रहते थे, जहाँ इनका एक क़िला भी था। पिंडारी-नेता अमीरख़ाँ ने इस क़िले पर चढ़ाई की, पर राजा गुमानसिंह ने उसे मार भगाया। उसके कई साथी मारे गये। १८३५ में रुद्रपुर व ग़दरपुर का इलाक़ा इनको जमींदारी में मिला। शर्त यह थी कि वह इस इलाक़े में खेती बढ़ावेंगे और इसकी तरक़्क़ी करेंगे। वह सन् १८३६ में मर गये।

माननीय राजा शिवराजसिंह

इनके बाद सन् १८३६ में इनके नाबालिग़ कुँवर शिवराजसिंह राजा हुए। सन् १८४१ तक रियासत कोरट में रही। सन् १८४८ में रुद्रपुर व ग़दरपुर की ज़मींदारी से इन्होंने इस्तीफ़ा दे दिया, क्योंकि इन पर इलज़ाम यह था कि यह उस इलाक़े का प्रबंध ठीक-ठीक न कर सके। सन्

१८४० में राजा शिवराजसिंहजी ने काशीपुर में पांडों से ज़मीन लेकर महल बनवाया, और रुद्रपुर छोड़कर वहीं रहने लगे। यह बाद को काशीपुर के २० मौज़ों के मालिक हो गए। सन् १८५७ में राजा शिवराजसिंहजी ने सरकार की मदद की। इससे इनको ग़दर के बाद जागीर मिली। सन् १८६६ में श्रीजॉन इँगलिश के कहने पर इनको चांचट के बदले बढ़ापुर की जागीर दी गई। ५७,००० एकड़ आबाद भूमि, जो अफ़ज़लगढ़ के बाग़ी नवाब की ज़ब्त की हुई थी, इनको मय जंगल के माफ़ी में मिली। यह बड़ी कौंसिल के मेम्बर भी थे। इनका मान अधिकार-प्राप्त नरेशों का-सा था। इन्हीं की यादगार में अल्मोड़ा की शिवराज - संस्कृत - पाठशाला बनी। यह सन् १८८६ में मर गए। आपके चार पुत्र थे—(१) कुँ० हरिराजसिंह, (२) कुँ० कीरतसिंह, (३) कुँ० जगतसिंह और (४) कुँ० कर्णसिंह।

राजा हरिराजसिंह

ज्येष्ठ पुत्र राजा हरिराजसिंह गद्दी पर बैठे। यह सन् १८९८ में मर गए। आपके दो पुत्र हुए—(१) कुँ० उदयराजसिंह और (२) कुँ० आनंदसिंह। दोनों विद्यमान हैं।

राजा उदयराजसिंह

सन् १८९८ में राज्य के उत्तराधिकारी हुए। नाबालिग़ होने से रियासत कोरट भी रही। बिजनौर व बढ़ापुर की जायदाद तो माफ़ी है, उसके अलावा काशीपुर में इनके ३० गाँव हैं, जिनकी मालगुज़ारी ९५९०) है, और पहाड़ कोटा में दो छोटे गाँव ७४) मालगुज़ारी के हैं। रियासत की कुल आमदनी १॥ लाख की कही जाती है। देशभक्त कुँ० आनंदसिंह अब अलीगढ़ में बरौली राज्य के भी मालिक हैं। कुँ० कीरतसिंह तथा कुँ० जगतसिंह के संतान न हुई। कुँ० कर्णसिंह के कुँ० भूपालसिंह हैं। आपके पास ६ मौज़े हैं।

राजा उदयराजसिंहजी का विवाह बेशहर-राज्य में हुआ। दोनों सगी बहनें उनकी रानियाँ हैं। राजा बेशहर के संतान-हीन मरने पर वहाँ का राज्य काशीपुर के कुँवरों को मिलना चाहिए था, पर ऐसा न होकर किसी दूसरे को दिया गया है।

---

६. अवशिष्ट अंश

कूर्मांचल का इतिहास प्रायः यहाँ पर समाप्त हो गया है। कत्यूरी, चंद, खस तथा गोरखा-शासन की बातें जो-जो ज्ञात थीं, पिछले भागों में दिखाई जा चुकी हैं। १२० वर्ष से इस देश में अँगरेज़ी राज्य स्थापित है। भारत में

अँगरेज़ी-शासन का इतिहास प्रायः एक ही प्रकार का है। अँगरेज़ी-शासन का इतिहास साफ़ साफ़ लिखना कठिन है, क्योंकि प्रेस ऐक्ट तथा राजद्रोह की समस्याएँ बड़ी कठिन हैं। पराधीन जाति अधिकार-प्राप्त शासकों का इतिहास खुले दिल से लिख नहीं सकती। उसमें अनेक प्रकार की रुकावटें हैं। भारत का अँगरेज़ी-शासन का इतिहास स्वतंत्रता प्राप्त होने पर लिखा जावेगा। इसलिये अवशिष्ट में आज तक की ज्ञातव्य बातें बिना किसी आलोचना के जोड़ दी गई हैं।

---

७. अँगरेज़ी शासन-प्रणाली

सन् १६०० में ईस्ट इन्डिया कंपनी बनी। यह एक तिजारती संघ था। सन् १६०८ से कंपनी के कर्मचारी मुग़ल-दरबार में जाने लगे। पहले सूरत में, बाद को बंबई, मद्रास व कलकत्ते में कोठियाँ बनाकर जिस प्रकार कम्पनी के कूटनीतिज्ञ कर्मचारियों ने पार्लियामेंट की सहायता से सारे भारतवर्ष में अँगरेज़ी साम्राज्य की जड़ जमाई, वह कहानी विश्व-विदित है।

इसी कंपनी ने एक भाँग की फ़ैक्टरी काशीपुर में बनाई थी। वहाँ कम्पनी के अफ़सर आते थे। वे सब कुमाऊँ की भूमि की अलौकिक छवि को देखकर प्रसन्न होते थे। सन् १८०२ में लॉर्ड वैलेस्ली ने मि० गाट को यहाँ के जंगलों, जलवायु तथा साधारण परिस्थिति का निरीक्षण करने को भेजा। सन् १८११-१२ में श्रीयुत मूरक्रेफ्ट और कप्तान हेरसी तिब्बत में गये। वहाँ पकड़े गये। उन्होंने छूटने पर कुमाऊँ के बारे में बड़ी लच्छेदार रिपोर्ट भेजी। बाद को माननीय गार्डनर साहब ने भी एक रिपोर्ट भेजी। कुछ लोग कहते हैं कि मारक्विस ऑफ़ हेस्टिंग्स उर्फ़ लॉर्ड मौयरा भी काशीपुर के रास्ते कुमाऊँ में आये थे। वह यहाँ की भूमि, जलवायु, दृश्य तथा साम्पत्तिक पदार्थों को देखकर चकित हो गये, और उन्होंने एक गुप्त रिपोर्ट भेजी, जिसमें लिखा था—"मैं स्वप्न में भी कुमाऊँ के अद्भुत दृश्यों व हिमालय की नैसर्गिक छटाओं को देखता हूँ, और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह दिन जल्द आवे, जब यह सुंदर देश हमारे हाथ में आ जावे।"

नैपाल की लड़ाई के पूर्व ही कम्पनी के भारतीय कर्मचारियों ने कुमाऊँ को अँगरेज़ी राज्य में शामिल कर लेने का निश्चय कर लिया था। नैपाल का युद्ध तो एक अच्छा बहाना मिल गया। लॉर्ड हेस्टिंस उर्फ़ मौयरा को विलायत के डाइरेक्टरों ने लड़ाइयों में

बहुत रुपया फूँकने का दोष लगाया। कुमाऊँ व नेपाल में लड़ाई करने के बाबत कैफ़ियत माँगी, पर इस अक्खड़ शासक ने परवाह न की।

भारत में अँगरेज़ी-साम्राज्य या ब्रिटिश पार्लियामेंट के नाम पर बड़े-बड़े कर्मचारी राज्य करते हैं। ऐसी शासन-प्रणाली को नौकरशाही (Bureaucracy) का उपयुक्त नाम लोकमान्य तिलक ने दिया था। अँगरेज़ी साम्राज्य का शासन-वृत्त इस प्रकार है—

राजराजेश्वर (नियमबद्ध नरेश)
|
प्रिवी कौंसिल (सलाहकारिणी समिति)
|
प्रधान मंत्री व मंत्रिमंडल (वास्तविक शासक)
|
कामन्स सभा (प्रजावर्ग) (नीति-निर्धारक सभा) — लॉर्ड-सभा (प्रभुवर्ग) (धनी लोगों की पर्य्यालोचक सभा)
|
भारत मंत्री (भारत का प्रधान शासक)
|
वायसराय (नौकरशाही का सिरगिरोह)
|
मंत्रिमंडल (आठ मंत्रियों की समिति)
|
एसेम्बली — नरेन्द्र मंडल — कौंसिल-स्टेट
|
प्रान्तीयलाट
|
प्रान्तीय एसेम्बली — मंत्रि-मंडल — कौंसिल
|
कमिश्नर
|
डि० कमिश्नर
|
डि० कलेक्टर
|
तहसीलदार
|

नायब तहसीलदार (या पेशकार कुमाऊँ में)
|
पटवारी
|
थोकदार
|
पधान
|
प्रजावर्ग

राजराजेश्वर लंदन में रहते हैं। वह इंगलैण्ड के किंग (राजा) तथा भारत के सम्राट् या राजराजेश्वर कहलाते हैं, क्योंकि वह यहाँ के ६०० से ऊपर देशी रजवाड़ों के भी नृपति हैं। यद्यपि वह साम्राज्य की राजनीति, सेना तथा समाज के प्रधान प्रतिनिधि माने जाते हैं, पर वह एकतंत्र शासक नहीं हैं। वह नियम-बद्ध सम्राट् कहे जाते हैं। विना मंत्रियों की सम्मति के वह कोई काम नहीं कर सकते। उनका एक निजी मंत्रिमंडल भी होता है, पर उसे कोई राजनीतिक शासन-अधिकार नहीं होते। वह केवल एक सलाहकारिणी तथा सूचना देनेवाली समिति के तौर पर होता है। शासन की असली बागडोर मंत्रि-मंडल के हाथ में होती है। इँगलैण्ड में दलबंदी-शासन-नीति का प्राबल्य है। वहाँ लगभग ४½ करोड़ मनुष्यों में से ६१५ प्रतिनिधि छाँटे जाते हैं, जो पार्लियामेंट-नामक राज्य-सभा में बैठकर राज्य-शासन के लिये नियम व क़ानून बनाते तथा शासननीति निर्धारित करते हैं। मुख्य दल कट्टर (Conservative), उदार (Liberal) तथा मजूर (Labour) हैं। फ़ैसिस्ट तथा कम्यूनिस्ट दो नये दल अभी-अभी बने हैं। जिस दल के ज्यादा नेता पार्लियामेंट के सदस्य छाँटे जाते हैं, उसी के प्रधान नेता को बुलाकर राजराजेश्वर राज्य-शासन को मुहरें व बागडोर सौंप देते हैं। राजमंत्री राजा व प्रजा दोनों के सामने ईमानदारी से काम करने की शपथ लेते हैं। पार्लियामेंट का नया चुनाव मंत्रिमंडल की हार पर या हर पाँचवें वर्ष में होता है अथवा जब प्रधान मंत्री नये चुनाव के लिये राजराजेश्वर को सम्मति दें, तब होता है। मंत्रिमंडल लॉर्ड-सभा की केवल सम्मति, किन्तु कॉमन्स सभा की कसरत राय के अनुसार चलता है।

भारत-साम्राज्य के शासन के लिये एक खास मंत्री रक्खा गया है। वही वास्तव में भारत का मुख्य शासक है। मंत्रिमंडल नीति निर्धारित करता है,

और भारत-मंत्री शासन करता है। वह भारतीय प्रजा के सामने नहीं, बल्कि विलायती प्रतिनिधि-मंडल के सामने भारतीय शासन के लिये उत्तरदायी माना जाता है। उसके नीचे भारत के वायसराय या गवर्नर-जनरल हैं। इनके भी आठ मंत्रियों का एक मंत्रिमंडल है, जिसमें सेनापति भी शामिल हैं। ये आठ मंत्री वायसराय की आज्ञा से तमाम भारत का शासन करते हैं। होने को तीन सभायें यहाँ पर भी हैं, पर वे नाममात्र को हैं—

(१) एसेम्बली—साधारण जनता की छाँटी हुई सभा।

(२) कौंसिल ऑफ़ स्टेट—बड़े-बड़े पूँजीपति व ज़मींदारों की छाँटी तथा सरकार द्वारा नामज़द मेम्बरों की सभा।

(३) नरेंद्र-मंडल—राजा-महाराजाओं की सभा, देशी राज्यों के विषय में बातचीत करने को।

इन तीन सभाओं की बातें व बहस सरकार सुन लेती है, पर करती अपने मन की है। इनकी सम्मति के अनुसार वह कार्य करने को बाध्य नहीं।

प्रान्तीय शासन

प्रान्तीय लाट वायसराय के नीचे काम करते हैं। ये एक प्रान्त के शासक हैं। इनके भी चार से छ तक मंत्रियों का मंत्रिमंडल था, जिनमें आधे नौकरशाही के तथा आधे प्रजा के छाँटे थे। संयुक्तप्रांतीय कौंसिल में सन् १६३६ तक १२३ सदस्य थे, जिनमें से १०० लोक-निर्वाचित तथा २३ सरकार द्वारा नामज़द थे। इनके प्रस्ताव सरकार सुन लेती थी, और इनके प्रश्नों का मनमाना उत्तर भी दे देती थी, पर करती थी अपने मन की। नई शासन-पद्धति की चर्चा अन्यत्र है।

---

८. क़िस्मतों व ज़िलों का शासन

लाट के नीचे कमिश्नर कार्य करते हैं। वह एक क़िस्मत के शासक कहे जाते हैं। उनके नीचे कलेक्टर या डि० कमिश्नर होते हैं, जो ज़िले के शासक हैं। इनके नीचे डिप्टी कलेक्टर होते हैं, जो परगना या सब डिवीज़न के अफ़सर कहे जाते हैं। इनके नीचे तहसीलदार, जो तहसील के शासक हैं। तहसीलदार तथा नायब तहसीलदार के नीचे क़ानूनगो या सुपरिन्टेन्डेन्ट पटवारी होते हैं। इनके नीचे पट्टी के पटवारी होते हैं। थोकदार व पधान गाँवों के शासन में पटवारी की सहायता करते हैं।

ये सब शासक लोग नीचे से लेकर ऊपर तक क्रम-क्रम से अपने से ऊपर के अफ़सरों के प्रति अपने कामों के लिये ज़िम्मेदार हैं। इँगलैंड में सरकार प्रजा के सामने अपने कार्यों के लिये ज़िम्मेदार है, किंतु भारत में नहीं है। इँगलैंड के सरकारी कर्मचारी अपने को राजा-प्रजा दोनों का सेवक समझते हैं। प्रजा मालिक समझी जाती है, किंतु यहाँ सब सरकारी अफ़सर अपने को मालिक क्या राजा से भी ज़्यादा समझते हैं। प्रजा की इज़्ज़त कुछ भी नहीं, न उसके अधिकार ही सुरक्षित हैं। यही असल में भारत में स्वराज्य-आन्दोलन का ध्येय है। स्वराजी लोगों का यही दावा है कि भारत का शासन भारतवासियों द्वारा भारत के हित के लिये हो। शासक-मंडल भारतवासियों के प्रति उत्तर-दायी हो।

---

९. भारतीय शासन

उपर्युक्त मूलदैशिक शासकों के अलावा ३५ करोड़ आदमियों का शासन-कार्य ३०-३५ विभागों में विभाजित है, जिनके प्रमुख भी बड़े-बड़े वेतन-भोगी तथा अधिकारशाली शासक है।

(जल, थल, वायु)

सेना, रेल, तार, डाक, जहाज़, देशी राज्य, इनकमटैक्स, विदेशी माल पर चुंगी आदि-आदि विभाग अखिल भारतीय हैं। इनकी आय अखिल-भारतीय ख़ज़ाने में जाती है। इनके शासक वायसराय या गवर्नर-जनरल के प्रति उत्तरदाता हैं।

---

१०. प्रांतीय शासन

प्रांतीय शासन भी अनेक विभागों में विभाजित है। यथा—

१. साधारण शासन (तमाम देश का शासन-प्रबंध)
२. गढ़ कप्तानी (पुल, सड़क, नहर, मकान, बिजली का प्रबंध)
३. स्टाम्प
४. जेल
५. डॉक्टरी व अस्पताल
६. पेंशन
७. पुलिस
८. तन्दुरुस्ती व सफ़ाई

९. मालगुज़ारी
१०. रजिस्टरी
१२. खेती
१३. शिक्षा
१४. न्याय
१५. जंगलात
१६. उद्योग-धंधे
१७. छापेख़ाने व काग़ज़, क़लम वग़ैरह
(Printing & Stationery)
१८. तक़ावी व ऋण
१९. ....
२०. ....

मूल विभाग ये हैं। वैसे छोटे-मोटे उपविभाग और भी हैं। इन सब विभागों के प्रधान अफ़सर प्रांतीय लाट के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

वैसे ज़िलों के मूल शासक डि० कमिश्नर हैं, पर कुमाऊँ में आरंभ से ही कमिश्नर ही एकतंत्र शासक रहे हैं। यह प्रांत एक छोटी-मोटी नवाबी के रूप में अलग ही रहा है। कमिश्नर ही यहाँ के हाईकोर्ट, वही हर्ता-कर्ता-धर्ता चिरकाल तक रहे हैं। राष्ट्रीय नेता पं० गोविन्दवल्लभ पंतजी अपनी 'शासन सुधारों का सूक्ष्म विवरण'-नामक पुस्तिका में लिखते हैं—"जो कष्ट और असुविधायें भारतीय व प्रान्तीय क्षेत्र में हैं, उनके अतिरिक्त कुमाऊँ प्रान्त में विशेष स्थानीय बाधायें भी हैं। कुली - उतार की अपमान-जनक और नीति-विरुद्ध प्रथा (जो अब बाघनाथ की कृपा से उठ गई है) और जंगलात के व्यापक दुःखों से सब कुमावनी व्यथित हैं। इनके अतिरिक्त कुमाऊँ प्रान्त का शिड्यूल्ड डिस्ट्रिक्ट समझा जाना और यहाँ के इन्तज़ामियाँ हाकिमों के अधीन यहाँ के सब दीवानी मुक़द्दमों का होना, यहाँ की जनता की स्वाधीनता के बाधक हैं। इनके अतिरिक्त बेनाप, नयाबाद, जंगली जानवर, लाइसेंस, घराट, आबपाशी, बेगार, तराई भावर की मनमानी सुल्तानी आदि के कई कष्ट हैं।"

ये कष्ट देश में नहीं हैं। ये पर्वत की विशेषताएँ हैं। सन् १८१५ से आज तक प्रायः कमिश्नर ही कुमाऊँ के सर्वेसर्वा रहे हैं, वे ही यहाँ का शासन मनमाने तौर पर करते रहे हैं।

---

११. कमिश्नरों की सूची

आज तक जितने कमिश्नर हुए हैं, उनमें से जितने नाम ज्ञात हुए हैं, वे यहाँ पर उद्धृत किये जाते हैं:—

१. माननीय ई० गार्डनर	सन् १८१५ लगभग छः माह तक
२. मि० ट्रैल	,, १८१६—१८३०
३. करनल गोयन	,, १८३०—१८३६
४. श्रीलशिंगटन	,, १८३६—१८४८
५. श्रीबैटन	,, १८४८—१८५६
६. सर हेनरी रामजे	,, १८५६—१८८४
७. श्रीफिशर	,, १८८४—१८८५
८. श्रीरौस	,, १८८५
९. करनल ग्रिग	
१०. करनल अर्सकिन	
११. करनल डी० टी० राबर्ट्स	
१२. मि० डेबिस	
१३. मि० ग्रेसी	
१४. सर जॉन कैम्पबैल	,, १९१३
१५. मि० विनढम	,, १९१३—२४
१६. मि० स्टाइफ	,, १९२४—३१
१७. मि० स्टबस	,, १९३१
१८. श्रीओयन	
१९. श्रीइबटसन	

हाल में कुमाऊँ कमिश्नरी कहने को तोड़ी गई है, पर नैनीताल के डि० कमिश्नर कुमाऊँ कमिश्नरी का भी काम करते हैं। (जो लोग अस्थायी रूप से कमिश्नर रहे हैं, उनकी लिस्ट मिलनी कठिन है, अतः उनके नाम नहीं लिखे गये हैं। ये ही नाम कठिनता से लिखे गये हैं, क्योंकि ठीक लिस्ट खोज करने पर भी हमें नहीं मिली।)

---

१२. माननीय इ० गार्डनर

मि० गार्डनर कूर्मांचल के प्रथम शासक नियुक्त किये गये थे। पर यह कुमाऊँ को जीतकर छः महीने भी शासन न करने पाये कि अन्यत्र बुलाये

गये। सन् १८१५ में उनको पुलिस व माल के महकमे में आदमी भरती करने का हुक्म मिला। जून १८१५ में लड़कों के बेचने की प्रथा उठाई गई।

---

१३. मि० ट्रेल

कुमाऊँ के असली प्रथम शासक यही थे। यह पहले गार्डनर साहब के सहायक नियुक्त हुए थे। उनके बदल जाने पर यह सन् १८१५ से १८३५ तक कमिश्नर रहे। सन् १८१६ में कुमाऊँ फ़रुखाबाद के बोर्ड ऑफ़ कमिश्नरों के अधीन रक्खा गया। कत्यूरी, चंद, खस, गोरखा, सबका राज्य नष्ट हो गया। अन्त में अँगरेज़ों के हाथ में इस देश की बागडोर आई। अँगरेज़ उस समय देवता की तरह माने व पूजे जाते थे। मि० ट्रेल एक ज़बर्दस्त शासक बताये जाते हैं। अँगरेज़ी राज्य की जड़ कुमाऊँ में उन्होंने ही जमाई। एकतंत्र शासक थे। जो चाहते, करते थे। स्वयं नियम व क़ानून बनाते और उन्हीं के मुताबिक़ चलते थे। ऊपर के क़ानून को न जानते न मानते थे। मुक़द्दमे इतने पेचीदा न होते थे। "न वकील, न अपील, न दलील।" सरसरी तौर पर फ़ैसले होते थे। अठकिन्सन उनके शासन को "माँ-बाप सरकार, सख्त तथा एक तंत्री" बताते हैं। और भी—"ऊपरी सरकारी नीति को ट्रेल साहब न मानते थे। वह मनमाने, पर न्यायी शासक थे। उन्होंने जो क़ानून देश में बनते थे, वे देखे ही न थे। उन्होंने अपने क़ानून व नियम अलग बनाये।" बर्ड साहब ने लिखा है—"उनके जाने पर कोई भी स्थायी क़ानून कुमाऊँ में नहीं था, क्योंकि क़ानून बनानेवाला चला गया था।"

जब वह बंदोबस्त करते थे, तो लोगों ने गाँव की मालगुज़ारी माफ़ होने के बाबत प्राचीन राजाओं के ताम्रपत्र पेश किये। आपने उनमें से सैकड़ों को रद्द कर दिया, और कह दिया कि लोग तवे व गगरी बना लें।

सन् १८१७ में यहाँ पर रेगूलेशन १० लगाया गया, जिससे कुमाऊँ के अफ़सरों को सब मुक़द्दमे सिवाय खून, डकैती, धोखेबाज़ी के करने का हुक्म हुआ। इन बातों के लिये अलग कमिश्नर रखने की आज्ञा हुई, पर यहाँ ऐसे मुक़द्दमे नहीं हुए।

सन् १८२८ में बरेली की अदालत में यहाँ के फ़ौजदारी मुक़द्दमे भेजने की आज्ञा जारी हुई। ८,८८१) के ठेके पर कुछ ज़मींदार तराई-भावर में मनमानी चुंगी वसूल करते थे। वह बंद की गई।

पहले कुमाऊँ में स्त्री के ज़ार (उपपति) को मारने पर पति को फाँसी न

होती थी, यदि वह सरकार को उपपति के मारने की चेतावनी दे देता था। पर सन् १८१७ में यह रिवाज़ बंद किया गया। १८२० में मि० ट्रेल ने ।) के कोर्ट-फ़ीस स्टाम्प जारी किये। वकील उस वक्त न थे। अगर आदमी खुद हाज़िर मुक़द्दमे में न होता था, तो वह एजेन्ट को भेज सकता था। सन् १८२४ में तराई मुरादाबाद-ज़िले में बदल गई। भावर को मि० ट्रेल ने न बदलने दिया।

सन् १८२६ में देहरादून व चंडी के इलाक़े भी कुमाऊँ में शामिल हो गये, पर देहरादून १ मई सन् १८२६ तक कुमाऊँ में शामिल रहा, बाद को अलग हो गया।

सन् १८२७ में देशी सिपाहियों पर मुक़द्दमा चलाने का अधिकार मजिस्ट्रेटों को मिला, और सन् १८२८ में जन्म-मृत्यु तथा विवाह के रजिस्टर में दर्ज होने की प्रथा चली।

सन् १८३१ में कुमाऊँ इलाहाबाद की निज़ामत अदालत के अंदर आया, और बोर्ड रेवेन्यू के अधीन किया गया।

सन् १८३० में मि० ट्रेल बरेली को बदले। १८३५ में उन्होंने कुमाऊँ से अपना संबंध-विच्छेद किया।

ट्रेल साहब को अठकिन्सन साहब ने न्यायी लिखा है, किन्तु कूर्मांचली लोगों की धारणा इसके विपरीत है।

कूर्मांचल में गो-वध न होने देने की पं० हर्षदेव जोशीजी की शर्त थी, पर ट्रेल साहब ने गो-वध की आज्ञा दे दी। इस पर यहाँ के हिन्दुओं ने विरोध किया, तो ट्रेल साहब ने कह दिया कि जो हिन्दू गो-वध का विरोध करते हैं, वे कुमाऊँ में रहने योग्य नहीं। वे बनारस को बदले जाने चाहिए। पर्वती लोगों ने जो पहाड़ छोड़कर देश नहीं जाना चाहते थे, यह सोचकर कि कहीं वे बनारस को न भेजे जावें, चुप्पी साध ली। यह बात मि० केनडी साहब ने अपने 'बनारस व कुमाऊँ'-नामक पुस्तक में लिखी है।

श्रीयुत बर्न साहब ने ट्रेल-शासन के बारे में यह लिखा है—"कुमाऊँ के फ़ौजदारी न्याय में बहुत बड़े सुधार की आवश्यकता है। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि लोग विना दोष आरोपित किये जेल में ठूँसे जाते थे या वर्षों तक सड़कों पर काम करने को बाध्य किये जाते थे।"

उन्होंने यद्यपि यहाँ की भूमि के बाबत यह खतरनाक सिद्धांत निकाला कि इसकी मालिक ईस्ट इंडिया कम्पनी है (The East India Company had Sovereign rights over lands in Kumaon), तथापि इनका सन् १८२३ का बंदोबस्त, जो ८० साल का बंदोबस्त कहलाता है, अब तक आदर्श तथा न्यायोचित बंदोबस्त कहा जाता है। उन्होंने गाँवों की

सरहदें ठीक कर दी थीं, और गाँव के अंदर की ज़मीन गाँव-निवासियों की बता दी थी। जब १८२० में राजा सुदर्शनशाह को टिहरी का राज्य वापस मिला, तो कुमाऊँ में बड़ी हलचल मची। ट्रेल-गर्दी से लोग नाराज़ थे ही, लोगों ने कहा, जब गढ़वाल का राज्य वापस मिल गया, तो कुमाऊँ का राज्य भी क्यों न वापस दिया जाय? इस पर मि० ग्लेन जाँच को भेजे गये। पर लिया हुआ राज्य कौन लौटाता था!

१४. श्रीगोयन

सन् १८३१ में करनल गोयन कमिश्नर नियुक्त हुए। बोर्ड ऑफ़् डाइरेक्टरों ने अपनी देख-भाल इस साल से ज़्यादा कर दी। १८३६ में दासता का अंत हो गया। अब तक दासों के बेचने की चुंगी, मर्दों का अपनी औरतों का बेचना तथा विधवाओं का बेचना ही बंद हुआ था, अब 'छ्योड़ों' तथा 'हलियों' का बेचना भी बंद किया गया। लोगों ने मुक़द्मे दायर किये कि उनको हक़ मिलने चाहिए, पर ये सब खारिज किये गये। इसी साल माफ़ी ज़मीनों की जाँच हुई। दफ़्तरों का प्रबंध ठीक किया गया। पागलों की भी व्यवस्था की गई।

गो-वध छावनियों में ही परिमित रहा। लोगों ने गो-वध के विरुद्ध घोर आंदोलन किया। १८३६ में काशीपुर के परगने मुरादाबाद में और तराई रोहिलखंड में शामिल किये गये। दिव्य की प्रथा भी उठाई गई। सन् १८२७ तक दीवानी की केवल एक अदालत थी और ट्रेल साहब उसके अधिपति थे। सन् १८३७ में ८ क़ानूनगोयों को मुंसिफ़ी के अधिकार दिये गये, और उनके ऊपर एक सदर अमीन बनाया गया। ये २५) तक के मुकद्दमे कर सकते थे। सन् १८३० में इनको ५०) तक के अधिकार मिले। सदर अमीन को १००) तक के अधिकार थे। इसके ऊपर के मुक़द्मे कमिश्नर के यहाँ होते थे। इसी साल स्टाम्प की फ़ीस २) सैकड़ा लगाई गई।

सन् १८३७ में बर्ड साहब कुमाऊँ की शासन-पद्धति की जाँच को भेजे गये। उन्होंने बड़ी कड़ी रिपोर्ट भेजी। ट्रेल साहब तथा गोयन साहब के शासन की भरपेट निंदा की। सिर्फ़ सहायक कमिश्नर मि० बैटन की प्रशंसा की। उनकी रिपोर्ट का सारांश अन्यत्र आ गया है।

सन् १८३६-४० में बोर्ड ने बटवारे, पटवारी के हिसाब, सम्मन, चौकीदार, इस्टाम, मुआविज़ा, ग्राम-पुलिस आदि के विषय में बड़े लंबे-चौड़े सरक्यूलर भेजे, पर कुछ माने गये, कुछ नहीं। क्योंकि शासन एकतंत्री, मनमाना तथा ग़ैरआइनी था।

बंदोबस्ती नियम यहाँ भी लागू हुए, और श्रीबैटन बंदोबस्ती अफ़सर बनाये गये।

सन् १८४३ में यह नियम हुआ कि व्यभिचार-संबंधी क़ानून कुमाऊँ में भी लागू हों।

सन् १८३६ में कुमाऊँ व गढ़वाल दो ज़िले, जो तब तक एक थे, अलग किये गये और दोनों का प्रबंध अलग-अलग अफ़सरों को सौंपा गया।

कमिश्नर दोनों ज़िलों के एक रहे। सन् १८४२ में फिर दोनों भावर-तराई इलाक़े कुमाऊँ में शामिल हो गये, और तराई नाम का एक अलग ज़िला बनाया गया।

पोलिटिकल नोट्स के लेखक ने "ट्रैल को ज़ालिम, गोयन को निर्बुद्धि तथा बैटन और बिकेट को स्वार्थ-परायण तथा रामजे को एकाधिपति शासक" लिखा है।

---

१५. श्रीबैटन

सन् १८४८ में लशिङ्गटन साहब के मरने पर बैटन साहब कमिश्नर हुए। यह बड़े योग्य अफ़सर बताये जाते हैं। पर थे वही एकतंत्री शासक, किन्तु यह थोड़ी बहुत नियमों की पूर्ति भी करते थे।

सन् १८५२-५३ में चाय की खेती के वास्ते ज़मीनें लोगों को प्रदान की गईं।

सन् १८५५ में 'रक़म' अर्थात् मालगुज़ारी के बारे में नियम बने।

सन् १८४०-४१ में श्रीलशिङ्गटन साहब के समय में नैनीताल का बंदोबस्त हुआ। नैनीताल इन्हीं के समय में बसा।

कविवर गुमानी पंत ने लशिंगटन साहब की प्रशंसा में जो छंद हवालबाग़ में बनाकर सुनाया था, उसे हम यहाँ पर उद्धृत करते हैं—

"हुनर्गाह कीना न विर्सा महीना न दौलत महीना तलपना न धरवर।
लगी क़र्ज़दारी यही मर्ज़ भारी हरो अर्ज़ सारी सुनो बन्दि परवर॥
मुझे ख़ूब रोज़ी इनायत करो जी ख़ुशी से लशिंटन कमिश्नर बहादुर।
बड़े आप दानी करें दुआबानी हमेशा गुमानी खड़ा होय हाज़िर॥"

इससे ज्ञात होता है कि श्रीलशिंगटन कुछ लोकप्रिय अफ़सर थे।

सन् १८५२ में 'कलकत्ता रिव्यू'-नामक पत्र में कुमाऊँ के शासन के बारे में यह लिखा गया था—"४० वर्ष से कुमाऊँ में अँगरेज़ी राज्य स्थापित है। क्या हम अपनी संरक्षता का अच्छा जवाब दे सकते हैं? हमें डर है कि इस

प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में नहीं हो सकता।......बहुत-से रुपये नाममात्र की फ़ौजी सड़कों व पुलों में ख़र्च किए गए हैं, किंतु यह भी ठीक है कि इन पुलों पर कोई आदमी न चला, और वे पुल उन सड़कों पर हैं, जो कहीं को नहीं जातीं।"

इस आलोचना के मानी जो होते हैं, उसे पाठक समझ लें। उन दिनों कम्पनी के नौकरों का मुख्य उद्देश्य जल्दी से जल्दी धनवान् बनकर घर जाने का था।

१६. रामजे साहब

सन् १८५६ में बैटन की जगह कप्तान रामजे (जो बाद को मेजर जनरल सर हेनरी रामजे कहलाये) कुमाऊँ के शासक हुए। यह स्काटलैंड के निवासी थे, और एक कुलीन वंश (लार्ड ख़ानदान) के थे। लॉर्ड डलहौज़ी इनके चचेरे भाई थे। सन् १८५६ से १८८४ तक यह कमिश्नर रहे। इससे पूर्व छोटे पदोंपर थे। यह वैसे ४४ वर्ष तक इस प्रान्त में शासक रहे, जिनमें २८ वर्ष तक कुमाऊँ के कमिश्नर रहे। और इनका यहाँ पर अखंड शासन रहा। अँगरेज़ लेखकों ने उनको कुमाऊँ के राजा(King of Kumaon) नामक पदवी से विभूषित किया है। उनको कुमाऊँ का क़ैसर कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति न होगी। पर वह कुमाऊँ में 'रामजी साहब' के नाम से पुकारे जाते थे। रामजे साहब को अभी तक कुमाऊँ का बच्चा-बच्चा जानता है। वह यहाँ के लोगों से हिल-मिल गये थे। घर-घर की बात जानते थे। पहाड़ी बोली भी बोलते थे। किसानों के घर की मडुवे की रोटी भी खा लेते थे और सबकी बातें सुन लेते थे, पर करते थे अपने मन की। पूर्व कमिश्नर सर हेनरी लशिंगटन साहब की कन्या से उनका विवाह हुआ था। वह सन् १८८४ में जबर्दस्ती रिटायर किए गये। रिटायर होने के बाद भी वह सन् १८९२ तक रामजे हौस अल्मोड़ा में रहे। वह यहीं रहना चाहते थे, पर उनके लड़के उनको ज़बर्दस्ती ले गये। जाने के वक़्त कहा जाता है कि वह बहुत रोये। अपने सुन्दर बँगले को सरकार के हाथ बेच गये। अब वह सेशन हौस का भी काम देता है तथा बड़े-बड़े अफ़सर व प्रतिष्ठित पुरुष वहाँ ठहरते हैं। वह चार महीने बिनसर, चार महीने अल्मोड़ा तथा चार महीने भावर में रहते थे। बीच-बीच में दौरा भी करते थे।

पहले उन्होंने बिनसर में बँगला बनवाया, बाद को खाली में। अल्मोड़ा, हल्द्वानी व रामनगर में भी उनके बँगले थे।

पादरी डॉ० जॉर्ज स्मिथ साहब ने तो उनको भारत के १२ बड़े राजनीतिज्ञों में शामिल किया है। कारण यह होगा कि रामजे साहब ईसाई-मत के

बड़े प्रचारक थे। पादरियों को बड़ी मदद देते थे। वह चाहते थे कि सारा कुमाऊँ इसाई हो जावे। इसी से शायद पादरी स्मिथ ने उनको उच्चकोटि का शासक बताया हो।

इसमें शक नहीं कि रामजे साहब बड़े ज़बर्दस्त शासक थे। उनका शासन नवाबी ढंग का तथा न्याय क़ाज़ी का-सा था। इस मुल्क को ग़ैर-आइनी बनाने का श्रेय आप ही को है। ऊपर से नये-नये क़ानून बनकर आते थे, पर आपने कह दिया कि आप उन्हें कुमाऊँ में न लगावेंगे। वहाँ उन्हीं का हुक्म क़ानून था। कहा जाता है कि एक बार उन्होंने किसी वकील की किताब के पन्ने फाड़ डाले थे।

कुमाऊँ-संबंधी राजनीतिक नोट्स के लेखक ने लिखा है—"जिन्होंने उनकी (रामजे साहब की) हाँ में हाँ मिलाई, उनको रामजे साहब ने पद व नौकरियाँ दीं, जिन्होंने उनका विरोध किया, उनको खड में डाल दिया।"

उन्होंने अँगरेज़ों को यहाँ बसाने की नीति का विरोध किया। कह नहीं सकते कि उन्होंने यह किस इरादे से किया। आया यह ख़याल हो कि कुमाऊँ में कुर्म्यें ही रहें या यह कि अँगरेज़ ज़्यादा आवेंगे, तो उनके मनमाने शासन पर हस्तक्षेप करेंगे, और आलोचना भी करेंगे। ठीक-ठीक कहा नहीं जाता, क्योंकि कोई बातें उनके समय की तजुरबेकार लेखकों द्वारा लिखी नहीं मिली हैं। रामजे साहब ने यहाँ की तिजारत की रक्षा के लिये भी काफ़ी उद्योग किया। किंतु सबसे प्रशंसनीय काम तराई भावर को आबाद करने का है। भावर में पहले खेती तो होती थी, पर नहर इतनी विस्तृत व पक्की न थी। देहाती लोग छोटी-छोटी नहरें (गूलें) काटकर ज़मीन आबाद करते थे। रामजे साहब ने ठौर-ठौर में नहरें बनवाईं, सड़कें बनवाईं, नगर बसाये तथा भावर में खेती का विस्तार बढ़ाया। भावर के शासक इंजीनियर, जंगलात-अफ़सर तथा विश्वकर्मा या निर्माता (P. W. D. Officer) वह स्वयं थे। बंदोबस्त भी उन्होंने ही किया। हिसाब भी वही रखते थे। उन्होंने सर्वत्र हरे-भरे खेत खड़े कर दिये और मलेरिया का त्रास भी कम हो गया। लॉर्ड मेयो भावर, नैनीताल तथा अल्मोड़ा में बिनसर तक आये थे। वह भावर के प्रबंध से बहुत प्रसन्न हुए।

रामजे साहब यहाँ पर सिविल पुलिस नहीं, बल्कि रेवेन्यू पुलिस के पक्षपाती थे, और अभी तक कुमाऊँ में सिर्फ़ कुछ बड़े नगरों को छोड़कर ज़्यादातर रेवेन्यू पुलिस है।

---

१७. सन् ५७ का ग़दर

रामजे साहब के चार्ज लेने पर उत्तरी भारतवर्ष में ग़दर मच गया। पहाड़ों में हर तरह शांति रही। किंतु तो भी रामजे साहब ने यहाँ पर मार्शल लॉ (फ़ौजी क़ानून) जारी किया। "जिसने चीं-चपड़ की या जिस पर शुबहा हुआ, वह या तो जेल में ठूँसा गया, या चानमारी से मारा गया।" नैनीताल का 'फाँसी गधेरा' तभी से उस नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ बाग़ियों को फाँसी दी गई।

गढ़वाल में बाग़ी एक ऊँची टिबरी में, जो गंगा नदी के किनारे थी, खड़े करके चानमारी द्वारा मारे जाते थे। केवल एक आदमी घायल होकर नदी में गिरा, और नदी पार कर भाग गया।

काली कुमाऊँ में नवाब वाजिदअलीशाह की ओर से कहते हैं, श्रीकालू महरा के नाम गुप्त पत्र आया कि यदि पर्वती लोग ग़दर में शामिल होंगे, तो जितना धन चाहेंगे, मिलेगा। शर्त यह हुई कि पहाड़ी इलाक़ा पर्वतियों का रहेगा, देशी इलाक़ा नवाब का। श्रीकालू महरा बिसुंग के प्रधान नेता थे। उन्होंने गुप्त मंत्रणा की कि कुछ लोग नवाब की तरफ़ हो जावें, कुछ अँगरेज़ों की तरफ़। जो कुछ जहाँ से मिलेगा, वह आपस में बाँट लेंगे।

अतः श्रीकालू महरा, श्रीआनंदसिंह फर्त्याल तथा श्रीबिसनसिंह करायत तो लखनऊ के नवाब के यहाँ को गये। ठा० माधोसिंह फर्त्याल, ठा० नरसिंह लठवाल तथा ठा० खुशालसिंह जुलाल आदि अँगरेज़ों की तरफ़ रहे।

पहले तीन औनाखेड़ा में पकड़े गये। श्रीकालू महरा की चानमारी नहीं हुई, वह ५२ जेलों में घमाये गये। श्रीआनसिंह व बिसनसिंह मारे गये। श्रीकालू महरा के छोटे भाई ने अँगरेज़ों द्वारा पकड़े जाने के भय से फाँसी खा ली।

श्रीमाधोसिंह, नरसिंह आदि को जागीरें बरेली तथा पीलीभीत में मिलीं। ये बातें ठा० जमनसिंह ढेक ने हमें बताईं।

जब ग़दर की खबर फैली, तो रामजे साहब गढ़वाल के बर्फ़िस्तान में थे। वह अल्मोड़ा आये और फिर नैनीताल गये। पहली जून को भगेड़ शरणागत बरेली से हल्द्वानी आये। मुरादाबाद से कुछ लोग कालाढूँगी आये। जून ता० ६ से देश की खबर बंद हो गई। जुलाव में कंडी-कंडी मसूरी के साथ डाक-व्यवहार जारी हुआ। कोटा भावर व तराई में गद्दारों ने खूब लूट-पीट की। केवल हल्द्वानी की रक्षा रामजे साहब कर सके, क्योंकि ज्यादा फ़ौज न थी। कोटे की तहसील रमपुरियों ने लूट ली। अँगरेज़ों के सरदार धनसिंह व कुछ

सिपाही मारे गये। बहुतों को, जो लूटधाड़ करते थे, फाँसी दी गई। इससे बदमाश डर गये। अँगरेज़ लोग जो भागकर मैदानों से नैनीताल आये, उनको सरकार की तरफ़ से गुज़ारा दिया गया। नवाब रामपुर अँगरेज़ों की तरफ़ थे, किन्तु ईद में रामपुर में गदर की संभावना समझ तथा उनके नैनीताल पर धावा करने के डर से, अँगरेजी मेमें अल्मोड़ा भेजी गईं। १७ सितंबर को १००० गद्दारों ने हल्द्वानी पर क़ब्ज़ा कर लिया। ता० १८ को कप्तान मैक्सवल ने उनको हराया। १६ ऑक्टोबर को ५०० गद्दारों ने आकर फिर हल्द्वानी पर क़ब्ज़ा कर लिया। बाद को अँगरेज़ों ने छापे मारे, जिससे सवार व गद्दार दोनों भाग गये। भारतीय स्वतन्त्रता के ग़दर के नेता फ़ज़लहक़ ४५०० आदमियों तथा ४ तोपें लेकर झंडा में तथा कालेखाँ ४००० आदमी तथा ४ तोपें लेकर बहेड़ी के रास्ते आये, पर इनको कई बार हार खाकर जाना पड़ा पहाड़ में कहीं भी ग़दर नहीं हुआ। जहाँ किसी ने कुछ किया, तो उसकी चानमारी हो गई। इससे कुछ न होने पाया।

ग़दर के समय .कुली मिलने कठिन थे। जून में रामजे साहब ने जेल से बदमाश .कैदियों को छोड़कर .कुली का काम लिया, और उनसे कहा गया कि यदि वे ठीक काम करेंगे,तो छोड़ दिये जावेंगे। इन .कुलियों की कालाढूँगी में डाकुओं से लड़ाई हुई। कई को इन्होंने मार डाला। कुछ लोगों का कहना है कि बदमाश.कैदियों को सिपाही बनाया गया, जिन्होंने रियाया को ख़ूब लूटा।

---

१८ बंदोबस्त या भूमि-कर नीति

राजा या शासक को राज्यप्रबंध के निमित्त कर या टैक्स लेने का अधिकार है। मनु ने अध्याय ७, श्लोक २६ से ३२ तक जो बातें कहीं, उनका सार यहाँ देते हैं:—

"जैसे जोंक, बछड़ा और भ्रमर थोड़ा-थोड़ा रक्त, दूध तथा मधु को खाते हैं, ऐसे ही राज्य से राजा सालाना कर को थोड़ा-थोड़ा लेवे। पशु व सुवर्ण के लाभ में से राजा पचासवाँ भाग लेवे। ऐसे ही धान्यों का छठा, आठवाँ या बारहवाँ भाग लेवे। भूमि की उत्कर्षता, न्यूनता तथा जुताई का कम या ज़्यादा श्रम देखकर यह कर लेने का विकल्प है। वृक्ष, मांस, मधु, घी, गंध, औषध, रस, पुष्प, मूल, फल, पत्र, शाक, तृण, चर्म, बाँस का पात्र, मट्टी का पात्र, पत्थर का पात्र इन सत्रहों का छठा भाग राजा लेवे।"

हिन्दू राजा इसी आदर्श से चलते थे। मरहठों ने चौथ याने चतुर्थांश लिया। किन्तु अँगरेज़ों के नियम इस विषय में अभी तक रबड़ की तरह

तनाव वाले हैं। बंदोबस्त के विषय में कोई स्थायी नीति नहीं है। बंगाल से बनारस तक पक्का व स्थायी बंदोबस्त हुआ। पीछे नीति बदल गई। प्रत्येक बंदोबस्त में कर-वृद्धि कर देना ही सरकारी नीति रही है। देश में तो एक ज़मीन के बंदोबस्त से ही लोगों को प्रचुर कष्ट है, पर पर्वत में कुमय्यों को दो बंदोबस्तों के बीच दबना पड़ा है—(१) ज़मीन का बंदोबस्त, (२) दूसरा उससे भी विकट जंगलात का बंदोबस्त।

कुमाऊँ के राजा सीधे-सादे नृपति थे। उनके अधिकार सीमाबद्ध थे। वे एकतंत्री नहीं थे। महर व फरत्याल-नामक यहाँ के पुराने दलों के लोगों से उनकी नीति संशोधित होती थी। राजधानी के निकट कुछ ज़मीन राजा के भंडार के लिये ख़ास तौर पर अलग रक्खी जाती थी, और वह राजा के निजी खर्च से जोती व बोई जाती थी। यह बात खुद ट्रेल साहब ने लिखी है। इससे स्पष्ट है, हिन्दू नृपति अपने को ज़मीन का मालिक नहीं, बल्कि संरक्षक समझते थे। किन्तु अँगरेज़ों ने उस नीति को बदल दिया।

यहाँ पर बौरा, बोहरा व विष्ट ज़मीन के थातवान गिने जाते थे, पर अँगरेज़ों ने कहा कि सब ज़मीन की मालिक सरकार है। इसी नीति के अनुसार गाँव के अंदर की बेनाप ज़मीन 'घट, गाड़, जंगल, इजर, बंजर, नदी' आदि सब भूमि सरकार की समझी गई। लोग एक प्रकार के 'खायकर' हो गये। हालाँकि गाँव के भीतर के वे तमाम सम्पत्ति के अधिकारी होने चाहिए थे। इसी नीति को काम में लाकर सरकार ने कुमाऊँ के जंगल तथा सब बेनाप ज़मीन गज़ट के प्रस्तावों द्वारा छीन ली।

बंदोबस्त-संबंधी कुछ बातें

राजा व प्रजा के बीच ज़मीन की बाबत लेन-देन संबंधी जो लिखा-पढ़ी होती है, उसे बंदोबस्त कहते हैं। बंदोबस्त के मानी इन्तज़ाम के हैं। प्रत्येक गाँव का ख़ुलासा हाल, पैदावार, नहर, ज़मीन किस क़िस्म की है, नाप कितनी है, बेनाप कितनी है, सरहदें क्या व कहाँ हैं, हिस्सेदार आदि कौन हैं, आसामी, सिरतान, खायकर कितने हैं, क्या-क्या चीज़ें पैदा होती हैं, यह ख़ुलासा एक काग़ज़ में लिखा होता है, जिसे 'वाजिबुल अर्ज़' कहते हैं। पहाड़ों में ये बातें ज़्यादातर फ़ाँट में दर्ज होती हैं। बाक़ी हाल बंदोबस्ती रिपोर्टों में दिखलाया जाता है। जहाँ बंदोबस्त होने को हो, वहाँ एक रिपोर्ट पहले सरकार के पास बंदोबस्ती अफ़सर बनाकर भेजता है, जिसे इब्तिदाई-रिपोर्ट कहते हैं। उसकी मंज़ूरी ऊपर के अफ़सरों के पास से आने पर बंदोबस्त आरंभ होता है।

ज़मीन के नक़शे बनाये जाते हैं, जिनमें खेतों के नंबर डाले जाते हैं। इसके बाद खसरे बनते हैं। खसरों में हिस्सेदार, खायकर व सिरतानों के नाम मय नंबर खेतों के जो जिसके हिस्से में हों, दर्ज किये जाते हैं। पश्चात् मुन्तख़िब बनते हैं। इसमें गाँव के हरएक हिस्सेदार व खायकर तथा नंबर खेतों के दर्ज किये जाते हैं, और वे जिसके क़ब्ज़े में हों, नंबरवार दिखाये जाते हैं। पहले तेहरीजैं भी बनती थीं, जिसमें रक़बा जमीन हरएक गाँव का व हरएक हिस्सेदार व खायकर का दर्ज रहता था। फाँटों में कुल रक़बा ज़मीन जो जिस हिस्सेदार की है, उसके नाम तथा कुल मालगुज़ारी के दर्ज की जाती है। कुमाऊँ में ज़मीन इन दर्जों में विभाजित की गई है—(१) तलाऊँ, (२) अव्वल, (३) दोयम, (४) इजरान या कटील। ज़रब निकालने का तरीक़ा बिकेट साहब ने बनाया, जिनका बंदोबस्त ८० साल के नाम से प्रसिद्ध है। (यह सन् १८२३ व संवत् १८८० में हुआ, इससे साल अस्सी का बंदोबस्त कहा गया। कोई-कोई ग़लती से सन् ८० भी कह देते हैं।)

फ़र्ज़ कीजिए, यदि देवदत्त के नाम ५० नाली ज़मीन है, और वह इस तरह विभाजित है—

तलाऊँ	अव्वल	दोयम	इजरान कटील	कुल
३०	१०	५	५	=५०
३	१॥	+	$\frac{1}{2}$	
—	—	—	—	=११२॥
९०	१५	५	२॥	

तो मालगुज़ारी या रक़म ११२॥ नाली पर लगाई जावेगी। तलाऊँ ज़मीन तिगुनी की जाती है, अव्वल ड्योढ़ी, दोयम वैसी रही, और इजरान कटील आधी की जाती है। इसको जरब बीसी कहते हैं।

रक़म की शरह ॥) से ३) तक फ़ी बीसी है। बीसी बीस नाली यानी एक ऐकड़ के क़रीब ज़मीन समझी जाती है।

तराई-भावर में ४५।५५ के गाँव भी हैं। अर्थात् गाँव की उपज में से ४५ फ़ीसदी हिस्सेदार का ५५ सरकार का हिस्सा होता है। चंदों के समय में राज अंश छैहाड़ा यानी छठा अंश उपज में से लिया जाता था।

गाँव से मालगुज़ार या पधान मालगुज़ारी वसूल कर पटवारी को देता है। पटवारी खज़ाने में जमा करता है। मालगुज़ार को ५) फ़ी सैकड़ा मालगुज़ारी में से दस्तूर मिलता है। तराई-भावर में कहीं १०) मिलता है। थोकदारों को ३) फ़ी सैकड़ा उन गाँवों की मालगुज़ारी में से दिया

जाता है, जिनके वे थोकदार हों, किन्तु नैनीताल के महरागाँव में थोकदारी का दस्तूर १०) रु० सैकड़ा है। यह रामजे साहब की खास मेहरबानी थी। कहीं-कहीं थोकदारियाँ ज़ब्त की गई हैं।

बंदोबस्त की सब कारस्वाई प्रान्तीय गज़ट में छपती है। उसके बाद उज्र.दारियाँ सुनी जाती हैं, तब काग़ज़ात कौंसिल में पेश किये जाते हैं। वहाँ से मंज़ूर होने पर बंदोबस्त पक्का समझा जाता है। बंदोबस्त की मियाद कहीं-कहीं १ वर्ष से लेकर ३० वर्ष तक थी, अब ४० वर्ष रक्खी गई है। मालगुज़ारी की शरह ५५ के बदले ३५ से ४० तक रक्खी गई है।

बंदोबस्ती शब्द जो पर्वतों में काम में लाये जाते हैं।

ज़मीन तथा बंदोबस्त-संबंधी जो शब्द कुमाऊँ में काम में लाये जाते हैं, वे भी जानने योग्य हैं, उनकी तालिका यहाँ पर दी जाती है:—

१. तलाऊँ—वह ज़मीन, जिसमें सिंचाई होती है।

२. सेरा, सीरा, कुलोगो, पगखेत—आबपाशी वाली ज़मीन। सीम या सीमार वह जगह है, जिसमें पानी पैदा होता है, और केवल खरीफ़ की फ़सल होती है। यह ज़मीन दलदल भी कही जा सकती है।

३. उपराऊँ—ऊँची ज़मीन, जिसमें सिंचाई नहीं हो सकती।

४. चौंर, तप्पड़—अच्छी चौरस भूमि।

५. टीट, उखड़—बंजर ज़मीन।

६. सार, तोक, टानो—खेती के एक सिलसिले, जिनका अलग नाम होता है।

७. बाड़ो—खेत।

८. गड़ो, खेत, कयाँलो, पुछड़ो, हाँगो—छोटे-बड़े खेतों के नाम।

९. गैर—घाटी में जो खेती होती है।

१० कमुन—कमाया हुआ खेत।

११. बाँज—बिना खेती का खेत।

१२. रेलो—ढालू ज़मीन।

१३. सीर—खुद काश्त ज़मीन।

१४. तैलो—जिसमें सूर्य आवे (Sunny)।

१५. सेलो—जिसमें सूर्य न आवे (Shadey)।

मल्ला—ऊपर का।

तल्ला—निचला।

वल्ला—इधर का।

पल्ला—उधर का ।
बिचला—बीच का ।
पगार, भिड़ या भीड़—खेतों की दीवारें ।
पैर – पहाड़ या दीवार का टूटना ।
इजर, खील, कटील—जंगल की नई ज़मीन जो जाती गई ।
ठुला—बड़ा ।
नाना—छोटा ।
उतार, उलारो—उतराई ।
घट—पनचक्की ।
ओखल—ओखली ।
खालो—खलियान, जहाँ अनाज पछाड़ा जाता है ।
खोड़—काँजीहौस ।
गोठ, खरक, ग्वाड़—गौशाला ।
धारा—चश्मा पानी ।
नौला—बावरी ।
छीड़ा—जलप्रपात ।
अव्वल, दोयम } ज़मीन की क़िस्में ।
बीसी—बीस नाली यानी एक एकड़ के क़रीब ज़मीन ।
कुल, कूल या गूल—पानी की नहर ।
भाँता—तराई की दलदल ज़मीन ।
वन—जंगल ।
डानो, धुरा—ऊँचे पहाड़ ।
धार—पहाड़ की पीठ ।
डाक—पहाड़ में चौड़ी ज़मीन ।
कोट बुंगा—छोटे क़िले या क़िलेनुमा पर्वत ।
काँट, टिबड़ी, टीबा—छोटी चोटियाँ ।
खौड़—विना पेड़ों का पर्वत ।
भ्योल, कफाड़—खड ।
कराल—पहाड़ की ढालू ज़मीन ।
सैन या सैण—मैदान जगह ।
बगड़—नदी के किनारे की मैदान ज़मीन ।

गाड़, गधेरा — छोटी-छोटी पहाड़ी नदियाँ।

रौ—नदी का गहरा हिस्सा।

खाल—छोटा-छोटा कुंड।

ख्वाल या बाखली—गाँव के मकानों की क़तार।

ताल या तलौ—तालाब।

पोखर—छोटा तालाब।

फुलै—फुलवाड़ी।

नाली—क़रीब २ सेर का काठ या धातु का बर्तन। देहातों में इसमें अनाज भरकर नापा जाता है। जिस ज़मीन में २ सेर यानी १ नाली अन्न बोया जाता है, उसे भी १ नाली ज़मीन कहते हैं।

पाथा या माणा—ये छोटे वज़न हैं।

मुट्ठी—जितना अनाज मुट्ठी में आवे। जितना मुट्ठी अनाज जिस ज़मीन में बोया जावे, वह उतनी मुट्ठी ज़मीन कहलाती है।

अन, गाल्ल—अनाज।

कूत, अधिया या अध्योल—अनाज की शरहें, जो काश्तकार ज़मीन के मालिक को देता है।

थात—वह ज़मीन, जहाँ मनुष्य क़दीम से रहता है।

थातवान—ज़मीन का मालिक।

रौत—बहादुरी करके जो ज़मीन जागीर में मिले।

मरौत—लड़ाई में मारे जाने पर जो ज़मीन उसके खानदान को मिले।

बाँट, अंस—ज़मीन का जो हिस्सा जिसके क़ब्जे में आया हो।

हिस्सेदार—गाँव के सहयोगी मालिक।

ज़मींदार—राजपूत किसान।

पाल—राजाओं ने जो ज़मीन अपने वास्ते रक्खी।

राठ—घराना, कुल।

धाड़ा—दल।

अनबटा या संजायत—जो ज़मीन बँटी न हो।

मौ—कुटुम्ब।

बंधक—जो ज़मीन गिरवी हो।

ढाल भोल—जो ज़मीन बेची गई हो।

अकर—विना कर की ज़मीन।

गूँठ या विष्णुप्रीत—जो ज़मीन मंदिरों को चढ़ाई गई हो।

संकल्प—जो ज़मीन संकल्प करके दी गई हो।

पधान (प्रधान)—मालगुज़ार, लंबरदार।

पट्टा पधानचारी—पधान को जो गाँव का पधान मुक़र्रर होने का हुक्मनामा सरकार से मिलता है।

हक़ या दस्तूर पधानचारी—जो हक़ मालगुज़ारी में से पधान को मिलता है। कहीं धन, कहीं मुफ़्त ज़मीन।

थोकदार—कई गाँवों का एक ग्रामीर अफ़सर, जो पुलिस को कार सरकार में मदद देते हैं, ये कहीं-कहीं सयाना, कमीन या बूढ़ा भी कहलाते हैं।

परगना—ज़िले का हिस्सा।

पट्टी—परगना का खंड, गाँवों का समूह।

खायकर—मौरूसी असामी (खाय + कर = जो ज़मीन कमावे, खावे तथा कर दे) यह बेदखल नहीं हो सकता है।

सिरतान—वह असामी, जो मौरूसी नहीं। यह बेदखल हो सकता है।

सिरती—जो चीज़ें सिरतान ने मालिक को देनी हों।

पायकाश्त—एक गाँव का सिरतान असामी, जो अन्य गाँव में ज़मीन कमाता हो।

रक़म—मालगुज़ारी को कहते हैं।

पनघट—पानी की जगह।

गौचर—चरागाह।

नयाबाद—बेनाप ज़मीन जो आबाद की जावे। बंदोबस्त तक वह नयाबाद कहलाती है।

पहाड़ों में आबादी लायक़ ज़मीन कम रह गई है। बहुत-सी ज़मीन जंगलों में दबी है। आबादी बढ़ रही है। इसलिये सब ज़बर्दस्त लोग गोचर व पनघट भी आबाद कर रहे हैं। नयाबाद की दरख़्वास्तें पड़ती हैं। उनमें उज्रदारियाँ होती हैं। नियम सख़्त बन गये हैं। बहुत मुक़द्दमे होते हैं। ज़बर्दस्त बाज़ी मार ले जाते हैं। ग़रीबों के बैल-बधिया बिक जाते हैं।

---

१६. बंदोबस्त ज़िला नैनीताल

पहाड़ी इलाक़ा

		कुल जमा
पहला बंदोबस्त	१८१५ में श्रीगार्डनर के समय	१५८८७)
दूसरा ,,	१८१७ में श्रीट्रेल ने किया	—
तीसरा ,,	१८१८ ,,	—
चौथा ,,	१८२० ,,	१६४५४)
पाँचवाँ ,,	१८२३	—
छठा ,,	१८२८	२१०८६)
सातवाँ ,,	१८३२	२१३८४)
आठवाँ ,,	—	—
नवाँ ,,	१८४२-४६	२३३४२)
दसवाँ ,,	१८६३-१८७३ (विकेट)	३४८८३)
ग्यारहवाँ ,,	१६०० गूज	५०३१४)

भावर

	मालगुज़ारी	रेंट
१८१५	११८५)	
१८२०	४१७४)	
१८२८	६६२४)	
१८३३	७७१०)	
१८४३	१२६५४)	
१८८६	५१३६६)	१४५०००)
१६०३	९६५६२)	१८५४७८)
वर्तमान	२११६२५)	

तराई

	मालगुज़ारी
सन् १७०३	४८०००)
,, १८१५	६२०००)
,, १८४३	७०२६३)
,, १८८५	६६५५६)
वर्तमान	२४६८५४)

परगना काशीपुर

१८३६	
१८७६	१०२३६७)
वर्तमान	१०५३८८)
नैनीताल-ज़िले की मालगुज़ारी	११२०६७)
	६०४६८७)

अल्मोड़ा-ज़िला

अल्मोड़ा में आरंभ से आज तक १० बंदोबस्त हुए हैं, जिनका ब्यौरा इस प्रकार है—

				मालगुज़ारी
पहला बंदोबस्त १८१५-१६ संवत् १८७२ में मा० गार्डनर ने किया				७०,६६६)
दूसरा बंदोबस्त		१८१७ में मि० ट्रेल ने किया		७३,३५६)
तीसरा	,,	१८१८	,,	७६,६३०)
चौथा	,,	१८२१	,,	८७,३२०)
पाँचवाँ	,,	१८२३	,,	६६,४२५)
छठा	,,	१८२९	,,	१,०४,६८०)
सातवाँ	,,	१८३२-३३	,,	१,०७,०४४)
आठवाँ				
नवाँ	,,	१८४२-४६	बैटन	१,१२,२६४)
दसवाँ	,,	१८६३-७३	श्रीब्रिकेट	२,२६,७००)
ग्यारहवाँ	,,	१८६६	श्रीगूज	२,७६,०८६)

अल्मोड़ा-ज़िला में कहा जाता है कि मालगुज़ारी ।।।=)।। बीसी से ज़्यादा नहीं है। नौकरशाही का कहना है कि मालगुज़ारी पर्वतों में कम है, पर यहाँ के लोगों का कहना है कि उन्हें ज़्यादा कर देने की शक्ति नहीं है। देश के लिये तो 'आगरा टिनेन्सी ऐक्ट' बन गया है, जिससे किसी अंश में वहाँ की रिआया को लाभ पहुँचा है, किन्तु कुमाऊँ के लिये वह नियम लागू नहीं है। यहाँ की पद्धति दूसरी है। वह श्रीस्टौवल की बनाई है। उसी के अनुसार यहाँ कार्य होता है। वह पुरानी हो गई है। सरकार ने नई पद्धति बनाने को कहा था, पर बनाई नहीं है।

अल्मोड़ा का बंदोबस्त अधूरा है। यहाँ की सरहदें व नक़्शे तथा काग़ज़ात ठीक नहीं हैं। बंदोबस्त सन् २८ में आरंभ हुआ था, पर थोड़ा-सा काम होकर धन की कमी के कारण स्थगित किया गया है।

प्रजा-पक्ष का यह कहना है कि बंदोबस्त स्थायी हो, और उसका संचालन एक स्थायी नीति द्वारा चालित हो।

१९. जंगलात की नीति

सन् १९१७ में कुमाऊँ के भूतपूर्व कमिश्नर मि० स्टाइफ ने, जो उस समय जंगलात बंदोबस्त के अफ़सर थे, अपनी रिपोर्ट में लिखा था:—

"कुमाऊँ का यह जंगलात बंदोबस्त कुमाऊँ के जंगलों के उत्पादन, रक्षा तथा किसी योग्य एजेन्सी द्वारा क्रय-विक्रय (Exploitation) करने के निमित्त है।"

और भी—"मैंने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि अल्मोड़ा के जंगलों में क्रय-विक्रय करने लायक़ काफ़ी सम्पत्ति है। उनका क्रय-विक्रय होना चाहिए, अन्यथा वे बरबाद हो जावेंगे। कुमाऊँ को कोई हक़ नहीं कि इस प्रकार जंगलों को बरबाद करे। इस प्रान्त में जंगल ही एक सम्पत्ति हैं, जो लाभदायक हैं, जिनकी आमदनी से प्रान्त तथा साम्राज्य के कोष को लाभ पहुँच सकता है। मैंने यह भी सूचित कर दिया है कि जंगलात की नीति से यदि किसी कुमावनी को कोई कष्ट हो, तो उसका कोई ख्याल न होना चाहिए।"

स्टाइफ़ साहब से किसी का मतभेद हो, पर उनको साफ़-साफ़ बातें प्रकट कर देने के लिये धन्यवाद भी देना चाहिए।

कुमाऊँ में जंगलात की नीति से जितना असन्तोष था, और अभी है, वह इसी कारण से कि स्टाइफ़ साहब की नीति के अनुसार काम हुआ। सरकार ने न आव देखा न ताव, नाक की सीध में काम किया। प्रजा के कष्टों का कुछ भी ख्याल न हुआ। अधिकारों की तो बात ही दूर रही, क्योंकि नौकरशाही-साम्राज्य में अधिकार कहाँ?

अँगरेज़ों ने कुमय्यों पर यह भी दोष लगाया कि उन्होंने सारे जंगल बरबाद कर दिये, पर ज़्यादातर जंगल गोरखों ने काटे। अँगरेजों ने खुद लिखा है—

"The Gurkhas in then turn were much impressed by the natural security of then stronghold, & they proceeded to denude the hill sides of any trees that might offord cover to a besieger." (See Almora Gazetter by walton page 209)

साफ़ है कि ऊँचे-ऊँचे पर्वतों के पेड़ गोरखों ने अपने क़िलों की हिफ़ाज़त के लिये काटे। कुमय्यों ने बहुत कम काटे।

चंद व कत्यूरी राजाओं के समय मनुस्मृति के अनुसार राज्य होता था। 'वापी, कूप, तड़ाग, देवालय व वृक्ष' लोक-सम्पत्तियाँ समझी जाती थीं, इनमें सबका अधिकार था।

गोरखों ने 'घी-कर' और काठबाँस तथा कत्थे पर कर लगाया। बाक़ी जंगल में जो चाहता था, घास-पेड़ काट सकता था और मनमाने डंगर चुगा सकता था।

अँगरेज़ों ने सम्पत्तिशास्त्र के अनुसार यहाँ के जंगलों की रक्षा की नीति चलाई। पर जंगल क़दीम से कुमय्यों की सम्पत्ति थे। वे यकायक नुक़सान के बहाने छीने नहीं जा सकते थे। तब 'Sovereign Rights' का सिद्धान्त निकाला गया, और इसी सिद्धान्त के अनुसार सीधे-सादे लोगों के अधिकार छीने गये।

जंगलात बनाने का पहला मन्तव्य मि० ट्रेल ने १८२६ में किया। उन्होंने भावर में 'थापलों' से साल काटना बंद किया। १८५५-६१ तक जंगल बहुत काटे गये। ठेकेदारों ने रेल के स्लीपरों के लिये अनेक पेड़ काट डाले। सन् १८६१ में रामजे साहब ने जंगलात का बंदोबस्त किया। जंगलात की हिफ़ाज़त व रक्षा के नियम बनाये गये। सन् १८६८ में जंगल सिविल से उठाकर जंगलात अफ़सरों के नीचे रक्खे गये. पर बहुत-से जंगल १९१२ तक डि० कमिश्नरों के अधिकार में थे। रिज़र्व बनाने के पूर्व अल्मोड़ा में २,९०,५५,७२७ एकड़ अर्थात् ४५४० वर्गमील ज़मीन में ज़िला-फ़ारेस्ट थे। सन् १९१४ में अल्मोड़ा में एक डिवीज़न के चार डिवीज़न बने। अब दो रह गये हैं। इन जगहों में नये जंगल बनाये गये—

बलढौटी	४६३ एकड़	१८७५
कालीमठ	४७० ,,	१८९४
सिटौली	६१८ ,,	१९०४
देवलीडांडा	३४ ,,	१९०५
चिलकाबिटा	६ ,,	१९०५
धुराड़ी	२३ ,,	१९०५
चौसली	४० ,,	१९०५
मटेला	९१ ,,	१९११

सुराबरसीमी	१२ एकड़	१६१२
चितई	५४ „	१६११
मानिला	७५६ „	१६०८
चक्रगाँव	४४५ „	१६१२
कपोली	२६० „	१६१२
बमतठौन	६० „	१६१८
चडाग	५३६ „	१६०६

प्रथम चरण

सन् १८५८ से मद्रास व बंबई में जंगलों की रक्षा होने लगी। १८६५ में फिर यत्र-तत्र जंगल रक्षित किये। तभी जंगलात की रक्षा का क़ानून बना। कुमाऊँ में स्याहीदेवी, बिनसर, भाटकोट गागर, ऐड़द्यो आदि जंगलों में फ़ॉरेस्ट-गार्ड रक्खे गये। भावर के जंगल भी तभी से सुरक्षित हुए। १८६३ में नैनीताल में एक कान्फ़रेंस जंगलात के बाबत हुई। १८६८ में यू० पी० में मेजर पिपरसन पहले कन्सरवेटर नियुक्त हुए। १८७५ में ३७०० वर्गमील में जंगलात का अधिकार हो गया, और कुमाऊँ में एक जंगलात अफ़सर नियुक्त हुआ। १८८२ में जंगलात इम्पीरियल से प्रान्तीय (Provincial) हो गया। सारे कुमाऊँ का भी एक जंगलात अफसर नियुक्त हुआ। १६०५ में पूर्वीय सर्किल बना। १८६३ में जंगलात सुरक्षित किये गये, और १६१२ में सिविल से जंगलात महकमे को दिये गये। १८११ से १८१७ तक स्टाइफ़ व नेलशन साहबान ने जंगलात का बंदोबस्त किया। उससे रिआया के बहुत-से हक़ काटे गये। ट्रेल साहब ने अस्सी साल के बंदोबस्त में रिआया के जो हक़ गाँव की सरहदों के अंदर रक्खे थे, उन पर पानी फिर गया।

१८१५ से १८७८ तक जंगलात के प्रथम चरण में कोई कष्ट कुमाऊँ की प्रजा को न हुआ। १८१८ से १८२८ तक ट्रेल साहब ने काठ-बाँस तथा कत्थे की निकासी का ठेका भावर में दे दिया। यह ठेका १८५८ तक जारी रहा। १८५८ से १८६८ तक भावर में जंगलात के शासक भी सर हेनरी रामजे रहे। और सन् १८६८ में भावर का जंगल संरक्षित (preserved) किया गया और १८७७ में वह १८६५ के क़ानून के मुताबिक़ सुरक्षित (Reserved) किया गया, और उसमें जंगलात का प्रबंध हो गया। १८७८ में जंगल का क़ानून फिर से तरमीम हुआ। तदनुसार ६३८ वर्ग मील ज़मीन कुमाऊँ में सुरक्षित जंगल क़रार दी गई। नैनीताल का जंगल १८७६ में, रानीखेत के जंगल १८७३ में तथा बलढौटी के १८७५ में

सुरक्षित किये गये। बलढौटी जंगल में से ६-७ कम्पार्टमेंट अल्मोड़ा-चुंगी-बोर्ड को मिल गये हैं।

द्वितीय चरण

१८७८ से १८९३ तक कुमाऊँ में जंगलात का द्वितीय चरण कहा जाना चाहिए। १८८५ से १८९० तक कुछ जंगल लोहे की कम्पनी को दिये गये। कुछ जंगल चाय-बग़ीचों के वास्ते भी दिये गये। १८९० में गागर, निगलाट और डोलमार, मोरा जंगल सुरक्षित किये गये।

१८८६ और १८९० के बीच मछोड़, भतरौंज, स्यूनी, स्यून, विल्लेख, कथलेख, गनियाद्योली, करचूली, चिलियानौ, चौबटिया, पढ़ौली, द्वारसूँ, स्याहीदेवी, ऐड़्यो आदि अल्मोड़ा-ज़िले में और चीना, बुढलाकोट, नलेना, भवाली, जाख, लड़ियाकाँटा, कूरिया आदि नैनीताल में संरक्षित बनाये गये। यह १८९३-१९१० के बीच सरक्षित से सुरक्षित क़रार दिये गये।

तृतीय चरण

तृतीय चरण जंगलात का १८९३ से वर्तमान समय तक है। यही सबसे ज़्यादा कष्टदायक रहा। १८९३ में कुछ महामूर्तियों ने नैनीताल में बैठकर यह राजाज्ञा निकाली कि नाप ज़मीन के अलावा जितनी बेनाप, ऊसर, बरफ़ानी, नदी, तालाब, चट्टान, गाड़, गधेरे, जंगल, नज़ूल आदि-आदि ज़मीनें हैं, वे सब सरकारी हैं। प्रजा का उनमें कोई हक़ नहीं। कहते हैं, जंगलात की इस नीति में इन त्रिमूर्तियों—का सर जॉन हिवेट, सर जॉन कैंबल तथा सर पी० क्लटरबक—का ज़्यादा भाग था। ये तीनों मित्र व शिकारी थे। साथ-साथ शिकार को जाते थे। जंगलों से आमदनी भी सोची गई, उनकी रक्षा भी हो गई तथा शिकारगाहों की भी रक्षा हो गई।

इसी बीच अ, ब, स तीन प्रकार के जंगल बनाये गये। 'अ' में प्रजा को कोई हक़ नहीं दिये गये। 'ब' में कुछ हक़ रक्खे गये। 'स' गाँव के नज़दीक के खुले जंगल कहे गये। सन् १८९४ में देवदार, चीड़, कैल, साल, सीसू, तुन, खैर आदि वृक्ष सुरक्षित बनाये गये। ये राजकीय वृक्ष (Royal tree) कहलाये। इनका नाप में भी विना आज्ञा काटना मना किया गया। बहुत विस्तृत नियम बने कि लोग क्या करें क्या न करें। जंगलों में विना आज्ञा शिकार खेलना तथा तालों में मछली मारना भी बन्द किया गया। बहुतों को जुर्माना किया, बहुतों को जेल। पतरौलों ने न-जाने क्या-क्या कष्ट प्रजा को दिये।

सन् १८११ से १८१७ तक जो बंदोबस्त जंगलात का हुआ, उसमें प्रजा

के सब जंगल छीने गये। गाँव की सरहदों तक जंगलात के पीलपाये आ गये। पत्ती तोड़ने में भी जुर्माना किया गया। बहुत आन्दोलन प्रजा ने इस बंदोबस्त के खिलाफ़ किया, पर कुछ सुनाई न हुई। बेनाप की कौन कहे, नाप की ज़मीन भी जंगलों में ले ली गई। आलू-मूली के दाम दिये गये।

इस बंदोबस्त को देखकर सरकार के विरोधियों की कौन कहे, सरकार के समर्थकों तक ने इसके विरुद्ध आवाज़ें उठाईं, पर कुछ सुनवाई न हुई।

लोग समझ न सके कि जिन जंगलों से वे बरसों से फ़ायदा उठाते आये हैं, उनमें से अब उनका काटना गुनाह क्यों और सरकार का काटना पुण्य क्यों! चंद, कत्यूरी, गोरखा, खस किसी भी राजा ने इस प्रकार आज तक घास, लकड़ी, कोयला बेचने की नीति चालित नहीं की थी।

सन् १९२१ में क़ुली-उतार के विरुद्ध तुमुल आन्दोलन हुआ। सूखा पड़ा, अन्न-कष्ट प्रजा को हुआ। जंगलों में सूखा पड़ने से जगह-जगह आग लगी। अधिकारी-वर्ग क़ुली-उतार के बंद होने से रुष्ट थे। उन्होंने कहा, यह आग प्रजा ने असहयोगियों के कहने से लगाई है। अतः बहुत-से लोग (न जाने कितने बेगुनाह थे !) लंबी-लंबी मियाद को जेलों में ठूँसे गए!

तत्कालीन कमिश्नर श्री पी० विन्ढन यद्यपि राजनीतिक आंदोलनों के शत्रु थे, तथापि देहाती किसान, मज़दूरों के पक्षपाती थे। उनसे सहानुभूति रखते थे। उन्होंने क़ुली-उतार प्रान्त से उठाया तो नहीं, पर हाँ, स्वयं उन्होंने दौरे में क़ुली-उतार से काम नहीं लिया। उन्होंने दूर दृष्टि से देखकर ख्याल किया कि कुमाऊँ में वास्तव में जंगलात से बड़े कष्ट हैं। उन्होंने सरकार से कहकर एक जाँच-कमेटी बैठाई। तमाम में वे घूमे और उन्होंने गवाहियाँ लीं। लोगों के कष्टों की जाँच की, और एक रिपोर्ट लिखी, जो उस तंगी के समय उदार कही जा सकती है। उन्होंने प्रजा को कुछ और हक़ देने तथा कुछ जंगलों को खोल देने की सिफ़ारिश की। गाँव के भीतर आध मील तक कोई भी पीलपाये न रखने को भी लिखा। सरकार ने उनकी बहुत-सी बातें मानीं। बाद को कई जंगल खोले गए और कुछ सख्तियाँ कम की गईं। पर कहीं-कहीं हालत बदस्तूर रही, और है।

कुमाऊँ सर्किल अलग बनाया गया। उसके संचालन के लिये कुछ निर्वाचित, कुछ नामज़द मेम्बरों तथा कुछ सरकारी कर्मचारियों की एक कमेटी बनाई गई, जिसका नाम कुमाऊँ-जंगलात-कमेटी है। इसमें कुमाऊँ के जंगलात-संबंधी बातों पर विचार होता है। सरकार यहाँ भी सब कुछ सुन लेती है, पर करती अपने मन की है। पंचायती जंगल बनाने का ढिंढोरा भी खूब पीटा

गया, पर इनसे प्रजा का वास्तविक लाभ होगा या नहीं, कह नहीं सकते; क्योंकि जब तक जंगलात क्या सरकार की तमाम शासन-नीति प्रजा-प्रिय न हो, और शासन-प्रणाली उत्तरदायी न हो, तब तक भारतवासी सुख की नींद नहीं सो सकते।

कुमाऊँ सर्किल अलग बनाया गया, पर इससे ज़्यादा लाभ सरकार को नहीं है। केवल लीसे व कुछ लकड़ी के बल पर यह सर्किल चल रहा है, इसमें व्यय ज्यादा, लाभ कम है। लाभ भावर के जंगलों में ज़्यादा है, पर वे जंगल कुमाऊँ-जंगलात-कमेटी के दायरे से बाहर हैं।

कुमाऊँ क्या सारे प्रान्त के जंगलों का प्रबंध लाट साहब होममेम्बर की सहायता से करते हैं। क्योंकि यह विभाग १९२१ के सुधारों में हस्तान्तरित नहीं हुआ। असली शासक चीफ़ कन्सरवेटर हैं, जो होममेम्बर की आज्ञा से चलते हैं। उनके नीचे कई कन्सरवेटर हैं, उनमें से एक कुमाऊँ सर्किल के शासक हैं। उनके नीचे कई डि० कन्सरवेटर, रेंजर, डि० रेंजर, फ़ौरेस्टर तथा पतरौल हैं, जो जंगलात का प्रबंध करते हैं।

जंगल पर्वत की शोभा हैं। राष्ट्र की सम्पत्ति हैं। जलवायु को शुद्ध करनेवाले हैं। कृषकों के प्राण हैं। उनकी रक्षा के विषय में अब मतभेद नहीं है। किन्तु जंगल प्रजा के सुख के लिये होने चाहिए, उसके दुःख के हेतु न हों। जंगल मनुष्यों के लिये हों, न कि मनुष्य जंगलों पर न्यौछावर किये जावें। जंगल सुरक्षित व संरक्षित रहें, साथ ही प्रजा के अधिकार भी सुरक्षित व संरक्षित हों, तभी लोगों को संसार में सच्ची सुख-शान्ति प्राप्त हो सकती है। नीति के विषय में हम एक ही दृष्टान्त देकर इस प्रकरण को समाप्त करेंगे। स्टाइफ साहब जब कमिश्नर होकर यहाँ आये, तो कुमाऊँ-जंगलात-कमेटी के प्रेसिडेंट भी वही बनाये गये। सिटौली व कलमटिया जंगलों में कुछ भी अधिकार प्रजा को नहीं दिये गये थे। लेखक ने, जब वह कुमाऊँ-जंगलात-कमेटी का सदस्य था, एक मेजरनामा पेश किया कि गाँववालों को उन जंगलों में हक़ दिये जावें। स्टाइफ साहब ने विरोध करते हुए कहा—'ये जंगल चंद व कत्यूरियों के बनाये नहीं हैं, ये अँगरेज़ों के बनाये हैं। इनमें लोगों को हक़ नहीं प्राप्त हो सकते।"

जब लोगों ने सन् ३० में सिटौली में सभा कर सत्याग्रह करने की ठानी, तो अल्मोड़ा के डि० कन्सरवेटर बाबू हीरासिंहजी ने लोगों को बुलाकर 'पिरूल व सूखी लकड़ी' का हक़ दे दिया। सत्याग्रह - आन्दोलन ठंडा हो गया। देहात के भोले-भाले लोग थोड़े में संतुष्ट हो जाते हैं।

जंगलात की आमदनी

जंगलात की आमदनी आरंभ में इस प्रकार थी—

१८१७-१८ में २,४८१)

१८१८-१९ में ३,२००)

१८२८-२९ में ४,०२५)

यह कुल कुमाऊँ क़िस्मत की आमदनी थी, और ज़्यादातर यह भावरी इलाक़े से होती थी।

अँगरेज़ों का कहना है कि गोरखा व अन्य राजाओं के समय 'घी-कर'-नामक टैक्स लिया जाता था। गोरखों के समय 'घीकर, गोबर तथा पुछिया' नाम के कर थे। हेड़ी मेवाती भावर में 'दोनियाँ' नाम का टैक्स वसूल करते थे। (दोनिया='फ़ी दौण' यानी जहाँ भैंस, गाय बाँधी जाती थी।) अतः वे एक दोना घी तथा चार पैसे कर के वसूल करते थे। अँगरेज़ों ने इसी बिना पर तराई में चराई लगाई। उन्होंने कहा कि उपर्युक्त सब कर डंगरों पर थे। सन् १८२२-२३ में २०७७) तक आमदनी इस चराई से हुई। १८२३ में कमीन, सयाना व थोकदारों के डंगरों को चराई माफ़ की गई। १८२६ में कुमाऊँ व रोहिलखंड की सरहद मुकर्रर की गई।

कुमाऊँ-डिवीज़न में केवल पर्वतों के जंगल हैं। १८६९-१८८० तक कुल आमदनी जंगलात से २,१९,२५२) हुई थी।

सन् १९१२ से कुमाऊँ-सर्किल अलग बनाया गया। उसमें इस समय चार डिवीज़न हैं—(१) गढ़वाल, (२) नैनीताल, (३) पूर्वीय अल्मोड़ा, (४) पश्चिमी अल्मोड़ा। सन् १९१२ से आज तक के जो आँकड़े आमदनी खर्च के मिल सके हैं, वे यहाँ दिये जाते हैं:—

सन्	आमदनी	खर्च	बचत या	घाटा
१९१२-१३	२,२४,७४५)	२,४९,०३२)	+	२,४२,४७)
१९१३-१४	२,३९,००७)	३,७१,९२९)	+	१,३२,९२२)
१९१४-१५	१,५७,५८८)	७,६४,६३०)	+	६,३७,०४२)
१९१५-१६	६,०९,१४७)	१०,६३,९६७)	+	४,५४,८५०)
१९१६-१७	१३,७६,६८९)	१४,६०,५७८)	+	८३,८८९)
१९१७-१८	२२,१९,३०३)	१७,२२,५४६)	४,९६,७५७)	+
१९१९-२०	१८,१८,२२०)	२३,६०,६५२)	+	३,४६,६७०)
१९२०-२१	२२,८८,४३७)	२१,१८,०८८)	१,७०,३४९)	+
१९२१-२२	१२,०५,०५७)	१२,६३,१२१)	+	५८,०६४)

सन्	आमदनी	खर्च	बचत	घाटा
१९२२-२३	७,६०,१३५)	१०,०७,८१५)	+	२,४७,६८०)
१९२३-२४	७,६७,४६५)	८,८७,९६५)	+	१,२०,५००)
१९२४-२५	६,४३,२१४)	९,७७,६०१)	+	३४,६८७)
१९२५-२६	७,८०,३७४)	६,५१,६५६)	१,२८,७१५)	+
१९२६-२७	९,१६,१२७)	८,८२,९०३)	३६,२२४)	+
१९२७-२८	१०,६८,२१८)	१०,६०,१४७)	८,०७१)	+
१९२८-२९				
१९२९-३०	७,६४,१८५)	७,३५,०११)		
१९३०-३१				
१९३१-३२				
१९३२-३३	८,६२,४०५)	७,४४,८१६	१,१७,५८९)	+

अतः देखा जायगा कि कुमाऊँ सर्किल से आमदनी के बदले अभी तक घाटा ज्यादा हुआ है। आमदनी के डिवीज़न हल्द्वानी, रामनगर व कालागढ़ हैं। ये कुमाऊँ में होते हुए भी कुमाऊँ-सर्किल से बाहर हैं। इनकी १९२७-२८ की आमदनी व खर्च का ब्यौरा इस प्रकार था—

	आय	व्यय	बचत
हल्द्वानी-डिवीज़न	८,०१,२३२)	२,५१,१३६)	५,५०,०९६)
रामनगर ,,	४,९८,४५०)	१,६७,४०८)	३,३१,०४४)
कालागढ़ ,,	२,३०,५८४)	१,६१,४३५)	६९,०६०)

ये डिवीज़न संयुक्तप्रान्त में शामिल किये गये हैं। कुमाऊँ-सर्किल वास्तव में एक डिवीज़न के बराबर है।

जंगलात अवश्य रहेंगे और रहने चाहिए, किंतु वे प्रजा के सुख के लिये हों, केवल शोषण-नीति के द्वारा ही न चलाये जावें। पतरौल गाँववालों को बहुत तंग करते हैं। मि० विन्ढम कमिश्नर ने इस बात को समझ लिया था कि पतरौल गाँववालों को सताता है, उन्होंने उसका नियंत्रण कम कर दिया था। अब प्रजातंत्र राज्य में जंगल प्रजा के सुख के लिये संचालित होंगे।

---

२०. महकमा आबकारी

(इक्साइज़ या मादक पदार्थ)

चंद व गोरखों के समय आबकारी का महकमा न था। चरस, चंडू, अफ़ीम, भंग, शराब पर कोई चुंगी न थी।

६ अप्रैल, १८२३ की रिपोर्ट में ट्रेल साहब लिखते हैं—"उच्च जाति के ब्राह्मणों को छोड़कर जो चरस पीते हैं, तम्बाकू सब पीते हैं। उच्च जाति के लोग सुरती खाते हैं सुरती और लोग भी खाते हैं। कुमाऊँ में शराब डूमों को छोड़कर और कोई नहीं पीता। गढ़वाल में कुछ ब्राह्मण-कुटुम्बों को छोड़कर शराब पीने में कोई परहेज़ नहीं है। एक प्रकार की घर बनाई (ह्विस्की) शराब सब पीते हैं। हिन्दू कलवारों की बनाई पियेंगे, अन्य की नहीं।" अल्मोड़ा में तम्बाकू पीना श्रीगुजलला ने चलाया।

कुमाऊँ का आबकारी महकमा सन् १८२२ से अलग बना। सन् १८२२ में कुमाऊँ की कुल आमदनी शराब, चरस वग़ैरह से ५३४) थी। भावर इसमें शामिल था, तराई न थी। तराई का शासन पीलीभीत व बरेली के कलेक्टरों के अधीन था।

१८३७ तक आबकारी से आमदनी १३००) से ज़्यादा न हुई, किन्तु १८६१ में यह ४६, ५४८) हो गई।

१८६१ में अल्मोड़ा ज़िले में ८ दूकानें शराब की थीं, जिनसे २२, ७५७) की आमदनी सरकार को हुई।

१८६१-६२ में कुल दूकानें देशी शराब की ४१ थीं। अँगरेज़ी की १३ थीं। अब तराई भी इसमें शामिल हो गई। कुल आमदनी उस साल इस प्रकार हुई—

देशी शराब से ४२, ०६२)
चरस गाँजे से ७,६६०)
अफ़ीम से ७, ०७०)
विदेशी शराब से १, ६०४)
५८, ७२६)

सन् १८६०-६१ में तराई में शराब से २२, ४६५) तथा चरस से ३,१६०) और अफ़ीम से ३,५५०) हुई। ८५ मन चरस, १४ मन अफ़ीम व... गैलन शराब प्रतिवर्ष खर्च होती रही है। १६०२-३ में कुल आमदनी नैनीताल में इस प्रकार थी—

देशी शराब से ६६, ६००)
विदेशी ,, १३, ६५६)
गाँजा-चरस से १७, ५४८)
अफ़ीम से ५, ८६५)

३१ मार्च सन् १६२६ को अन्त होनेवाले साल में कुल आमदनी मादक विभाग से इस प्रकार हुई—

नैनीताल १,७६,३४४)
अल्मोड़ा ५८,२०३)
२,३७,६४७)

देशी शराब इस प्रकार खर्च हुई—
नैनीताल-ज़िले में ३६,००१ गैलन
अल्मोड़ा में १३,१५७ गैलन
(एक गैलन लगभग ४ सेर का होता है।)
अल्मोड़ा (रानीखेत) में ६,३७४ गैलन बीर शराब बनी।
विदेशी शराब के आँकड़े इस प्रकार थे—

ज़िला	लाइसेंस	दूकानों में	होटलों व डाकबँगलों में	
नैनीताल	१०	६,२१४ गैलन	१४	१,९७१ गैलन
अल्मोड़ा	६	४,०७६ ,,	४	५३ ,,

नैनीताल-ज़िले में रेल में दो लाइसेंस थे, और उनमें ४२१ गैलन शराब उड़ी। कानटीनों का हिसाब यह था—
नैनीताल में २ लाइसेंस २८२ गैलन
अल्मोड़ा व रानीखेत छावनी में } ३४,५७२ ,,

देशी शराब से आमदनी इस प्रकार हुई—
ननीताल १,०९,५२८), अल्मोड़ा ४०,९८०)

	अफ़ीम की आमदनी कुल	अफ़ीम ख़र्च हुई
नैनीताल	१२,१६१)	१२२½ सेर
अल्मोड़ा	२,६०५)	३० सेर

भाँग, चरस, गाँजा—

बिक्री से	चरस	भाँग	चरस लाइसेंस	भाँग
नैनीताल	२४,०००)	१३६)	१६,१५४)	७५)
अल्मोड़ा	५,१४३)	१२)	४६३१)	१३)

	चरस	भाँग
नैनीताल	४२२ सेर	१८२ सेर
अल्मोड़ा	१११ सेर	सेर

कांग्रेस की यह नीति है कि नशे की चीज़ें न बनाई जावें, न बेची जावें। नशीली वस्तुओं को बेचकर जो धन उत्पन्न होता है, वह महात्मा गांधी के वचनानुसार पाप की कमाई है। जाति को नशेबाज़ न बनाया

जावे। पर सरकार कहती है कि यदि वह मालगुज़ारी नहीं लेती है, तो लोग नाजायज़ तौर पर बहुत-सी शराब व नशीली चीज़ें बना लेते हैं। नशा-नाशिनी सभाएँ तथा राष्ट्रीय महासभा नशीली वस्तुओं के विरुद्ध बहुत आन्दोलन करती चली आ रही हैं, किन्तु जब तक जाति को प्रारम्भ से ही सदाचार की शिक्षा न दी जावे, तब तक सुधार होना कठिन है। १½ करोड़ की आमदनी संयुक्त-प्रांत में मादक पदार्थों द्वारा सरकार को होती है। यह किस प्रकार कम की जावे, यह प्रश्न प्रजातंत्र राज्य के सामने आवेगा।

लोहाघाट, पिठौरागढ़ व धारचूला में शराब बाहर से नहीं जाती है, वहीं बनती रही है। पर अब धारचूला की दूकान उठा दी गई है। जोहार दार्मा में भोटवालों को शराब बनाने का हुक्म है। वे कोई मालगुज़ारी नहीं देते। पर भोट के इलाक़े के बाहर वे शराब नहीं बना सकते। सन् १९०६ तक चरस कुमाऊँ में भी बनती थी, किन्तु अब पहाड़ी चरस का बनाना व बेचना जुर्म है।

ज़्यादातर शराब नैनीताल, अल्मोड़ा, रानीखेत, पिठौरागढ़, बागेश्वर, भवाली, हल्द्वानी, काशीपुर, रामनगर व तराई के इलाक़ों में खर्च होती है। थाड़ू व बोक्सा खूब उड़ाते हैं। शहरों में अँगरेज़ी पठित व सभ्यता के प्रेमी पुरुष विलायती शराब पीते हैं। पल्टन के सिपाही तथा गोरों के नौकर-चाकर तथा नगरों के शिल्पकार भी खूब उड़ाते हैं। देहातों में अभी शराब का प्रचार कम है। चरस पीते हैं। तमाखू, सिगरेट व बीड़ियों का ख़ूब प्रचार है। कहीं-कहीं स्त्रियाँ भी (निम्न-जाति की) तमाखू पीती हैं। बागेश्वर, कत्यूर व पिठौरा-गढ़ में काफ़ी शराब बिकने लगी है।

---

२१. लाइसेंस-नीति

कुमाऊँ के लोग सदा से हथियारों के प्रेमी रहे हैं, और सेना में उन्होंने बहादुरी दर्शाई है। यह चंद-राज्य के इतिहास से प्रतीत होगा। यहाँ लोग लँबछड़, बंदूक़, भाले, खुकुरी, तलवार, खाँडे स्वयं बना लेते थे। पर्वती लोग शिकार खेलने तथा मांस के प्रेमी रहे हैं। जंगलों में से अनेक प्रकार से वे शिकार मारते रहे हैं। कुत्तों को ले जाकर जंगलों में घेरा डालकर वे वन-मृगों को मारते थे। पर अब यह अँगरेज़ी क़ानून द्वारा बंद है।

सन् १८५७ के ग़दर में अँगरेज़ों को कुमय्यों ने काफ़ी मदद दी। रामजे साहब ने ख़ुद इसको स्वीकार किया, किन्तु ग़दर के बाद जब बड़ी सरकार

से हथियार छीनने का हुक्म आया, तो रामजे साहब ने लॉर्ड केनिंग को लिखा—"मेरी हज़ारों रिआया शान्त व राजभक्त रही है, क्या मैं अपने राजभक्त हिन्दू, गोरखा (हाइलैण्डर) पर्वतियों को राजभक्ति का यह इनाम दूँ कि उनकी उन बंदूक़ों को छीन लूँ, जिनको वे हमारी सेवा में उस समय काम में लाये, जब कि हम कठिनाई में थे।" रामजे साहब की ज़बर्दस्त दलील की जय हुई। पहाड़ियों की बंदूक़ें नहीं छीनी गईं।

किन्तु फिर १८८८-८६ में देखने के बहाने से कि कितनी बंदूक़ें व तलवारें किसके पास हैं, सब लोगों के अस्त्र-शस्त्र अदालत में मँगाये गये। वहाँ कहा गया कि उन पर लाइसेंस लगेगा। जिन्होंने लाइसेंस लिया, उनके अस्त्र-शस्त्र वापस हुए, बाक़ी तोड़े गये। कुछ लोगों ने स्वयं अपने घरों में तोड़ डाले, और उनकी दरातियाँ बनाई गईं।

पहाड़ में खुकुरी का ज्यादा रिवाज रहा है। अब भी यह अस्त्र प्रत्येक के घर में पाया जाता है, किन्तु लाइसेंस की कुटिल नीति से बेचारे पर्वती भाई दुःखी हैं। जंगली जानवर उनकी खेती चर जाते हैं और बेचारे कुछ कर नहीं पाते। जब तक इङ्गलैण्ड की तरह डाकख़ाने में द्रव्य जमा कर प्रत्येक भारतवासी को बंदूक़ व अस्त्र-शस्त्र रखने का अधिकार न हो, तब तक लोगों का कष्ट दूर न होगा, न उनमें आत्मसम्मान ही आवेगा।

पुलिस

कत्यूरियों के राम-राज्य में पुलिस की आवश्यकता न थी। चंदों के समय पहाड़ में पुलिस का प्रबंध थोकदार व पधानों के हाथ था। तराई-भावर में मेवाती व हैड़ी क़ौम के मुसलमान थे, जो वहाँ के चौकीदार या पुलिसमैन थे। गोरखों के समय फ़ौजी शासन था, सब अफ़सर व सैनिक सेना व पुलिस दोनों का काम करते थे। कहा जाता है कि ये लोग खुद भी चोरी करते थे। किन्तु अँगरेज़ी शासन के आरंभ काल में भी हेड़ी व मेवाती इस अधिकार में रहे। इनके नेता ऐनख़ाँ हेड़ी को इलाका कल्याणपुर में ३,०००) की जागीर मिली, और तुरपख़ाँ को चार गाँव मिले। १८१७ में ऐनख़ाँ का यह ठेका था कि वह बमौरी (वर्तमान काठगोदाम), कोटा, ढिकुली, रुद्रपुर, चिलकिया, काशीपुर के दरों (घाटों) की देख-भाल व रक्षा करें, तथा अमीनख़ाँ मेवाती कालीकुमाऊँ, ब्रह्मदेव, चौभैंसी, बिलारी आदि के संरक्षक थे। इन लोगों से यह ठेका था कि वे वहाँ चोरी, डकैती न होने देंगे, और यदि चोरी-डकती हुई, तो माल को पूरा करेंगे। ये लोग ८८८१) सरकार को देते थे, और कुछ टक्स लोगों से लेते थे। स्पष्ट है कि वे

कितना वसूल न करते होंगे। पुलिस-चौकियाँ मानो ठेके पर चलती थीं, अतः मि० शेक्सपियर डि० सुपरिन्टेन्डेन्ट के कथन से यह प्रथा उठ गई। कुमाऊँ-बटैलियन के लोग प्रत्येक घाटों (दरों) में रक्खे गये। कुछ चौकीदार नियुक्त किये गये। १८२३ में ट्रेल साहब ने रिपोर्ट की कि सारा रास्ता मैदान का बंद है। देशी इलाक़े में बड़ी चोरियाँ व डकैतियाँ हो रही हैं, अतः १८२३ से यह प्रथा उठा दी गई। ऐनखाँ के खानदान को पेंशन दी गई, और बाजपुर, जसपुर, बढ़ापुर, कोटद्वार आदि स्थानों में पुलिस-चौकियाँ रक्खी गईं। मेवाती व हैड़ी लोग इनाम के लोभ से चोर-डाकुओं को पकड़ते रहे, पर डकैतियाँ कम न हुईं। रुद्रपुर एक बड़ा शहर था, किन्तु डकैतियों से बरबाद हो गया। इसी कारण १८३७ में ठाकुरद्वारा, जसपुर, बाजपुर, काशीपुर इलाक़े मुरादाबाद में बदले गये। रुद्रपुर व किलपुरी तथा अन्य तराई के इलाक़े बरेली व पीलीभीत में शामिल किये गये। यह भी हुक्म हुआ कि कोई पहाड़ी आदमी अप्रैल से मध्य नवंबर तक देश में मुक़द्दमों को न बुलाया जावे। भावर तराई में जंगलों के बीच लीकें काटी गईं, जिनमें सवार पहरा करते थे। बाद को फिर १८७२ में तराई का इलाक़ा कुमाऊँ में शामिल किया गया।

पर्वत में साधारण (Regular) पुलिस पहले से न थी। यहाँ के ज़िले अपराधी (Criminal) नहीं समझे गये। सन् १८१६ में ट्रेल साहब ने लिखा था—"इस (कुमाऊँ) प्रांत में अपराधों की संख्या कम होने से फ़ौजदारी पुलिस की आवश्यकता नहीं है। क़तल (मंसमार) को यहाँ कोई नहीं जानता। चोरी व डकैतियाँ बहुत ही कम होती हैं। अँगरेज़ी सल्तनत के यहाँ पर क़ायम होने के समय से अब तक जेल में १२ से ज़्यादा क़ैदी कभी नहीं हुए, जिनमें ज़्यादातर मैदानों के रहनेवाले थे।" १८२२ में कमिश्नर ने लिखा—"पिछले वर्ष केवल ६६ आदमी अल्मोड़ा-जेल में थे, जिनमें से ६ क़तल के मुजरिम थे, जो इतने बड़े ज़िले के लिये कुछ भी नहीं है। चोरियाँ व डकैतियाँ पहाड़ की तलेटी में होती हैं, पर वे देश के लोगों द्वारा की जाती हैं।" यहाँ पर ज़्यादा मौतें जंगली जानवर, साँप तथा आत्म-हत्या से होती थीं। स्त्री-संबंधी मुक़द्दमे ज़्यादा होते थे। १८२४ में दास-दासी बेचने की प्रथा बंद हो गई, और १८२९ में सती की प्रथा भी क़ानूनन् बंद की गई।

पहाड़ों में अल्मोड़ा का थाना सबसे पुराना है। यह १८३७ में बना। नैनीताल का सन् १८४३ में और रानीखेत का सन् १८६९-७० में बना।

कुछ पुलिस यात्रा-लाइन में भी रहती है। नैनीताल, भवाली,

भीमताल, ज्योलीकोट तथा खैरने में पुलिस-चौकियाँ हैं। अल्मोड़ा में अल्मोड़ा व रानीखेत के थानों के अलावा भिकियासैण व गनाई में पुलिस-चौकियाँ हैं। ५-४ वर्ष से काठगोदाम-अल्मोड़ा गाड़ी-सड़क में भी पुलिस-चौकियाँ ट्रैफ़िक पुलिस के नाम से ज्योलीकोट, मजखाली, कटारमल आदि स्थानों में बन गई हैं। लोहाघाट में भी पुलिस-थाना असहयोग के कारण खुला था, पर अब बंद है। पिठौरागढ़ में खज़ाने की रक्षा के लिये कुछ सशस्त्र पुलिस रहती है। पहाड़ों में अब भी सिविल पुलिस नहीं है, बल्कि माल (रेवेन्यू) पुलिस है। यहाँ पर पटवारी व पेशकार थोकदार व पधानों की सहायता से पुलिस का काम करते हैं। हाल में अल्मोड़ा के भीतर कुछ पट्टियाँ पुलिस के अधिकार में दी गई हैं; किन्तु पर्वत के लोग सिविल पुलिस को नहीं चाहते। रामजे साहब ने लिखा था—"मैं समझता हूँ कि हमारा गाँव-संबंधी पुलिस का तरीक़ा भारत में सबसे अच्छा है। इसमें फेरफार करना बुद्धिमानी न होगी। यह ग्राम-पुलिस सस्ती है, इसमें सरकार का कुछ भी ख़र्च नहीं होता (सिवाय भावर पुलिस के), और वेतनभोगी सिविल पुलिस के होने से जो झंझट व तकलीफ़ें होती हैं, उनका इसमें अभाव है। ये ही बातें इसके पक्ष में हैं।"

जो बात रामजे साहब ने शायद सन् १८५८ में लिखी थी, वह अभी तक कुमाऊँ पर्वतों के सुप्त गाँवों के लिये लागू है। कई बार यहाँ पर भीतरी गाँवों में पुलिस रखने का विचार सरकार का हुआ, पर खर्च की कमी से यह बात न होने पाई। सन् १९२१ में क़ुली-उतार-आन्दोलन के समय ग्राम ख़बर थानों के खोलने की थी, पर वह फलीभूत न हुई। कुमाऊँ की पुलिस का प्रधान केन्द्र नैनीताल में है। वहीं से पुलिस अन्यत्र भेजी जाती है। लंदन की पुलिस की तरह यदि पुलिस ईमानदार तथा स्वकर्तव्य-रत हो, तो प्रजा सुखी होती है। पुलिस अत्याचारी व घूसख़ोर हो, तो सारी रिआया दुःखी होती है। यहाँ के लोग ज़्यादातर अशिक्षित, सीधे-सादे तथा नई सभ्यता के नये क़ानूनों से अनभिज्ञ हैं। पटवारी, पेशकार, पधान, पंच तथा पतरौल उनको काफ़ी तंग करते हैं। यदि पुलिस और रक्खी जावेगी, तो उन बेचारों के नाकों-दम होगा। सभ्यता के साथ-साथ अपराधों की वृद्धि भी होती रहती है, और अपराधों की वृद्धि के साथ पुलिस भी आ पहुँचती है। पुलिस व सेना अँगरेज़ी राज्य के प्रबल, प्रतापशाली व प्रभावशाली पाये हैं। इनके अधिकार असंख्य हैं। इनकी शक्ति विराट् है। पुलिस के विरुद्ध किसी को कुछ कहने की सामर्थ्य कहाँ! पुलिस की कारस्वाइयों के सामने बड़े-बड़े शक्तिशाली,

समर्थ व विद्वान "किंकर्तव्य विमूढ़" हो जाते हैं । निर्बल देहाती प्रजा का क्या कहना !

पुलिस का इन्तज़ाम सारे प्रान्त का इन्स्पेक्टर-जनरल के हाथ में होता है। उनके नीचे हर ज़िले में पुलिस के सुपरिन्टेन्डेन्ट होते हैं, जिनके नीचे डि० सुपरिन्टेन्डेट तथा इन्स्पेक्टर व सब इन्स्पेक्टर होते हैं। कुमाऊँ डिवीज़न भर के लिये केवल एक पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं। ग़ैरआइनी ज़िला होने से यहाँ सिविल पुलिस कम है। पुलिस का प्रबंध यों पुलिस अफसरों के हाथ में रहता है ; किंतु लाट, कमिश्नर, डि० कमिश्नर व मजिस्ट्रेट अवसर पड़ने पर पुलिस को बुला सकते हैं, और उसको हर प्रकार की आज्ञा दंगा-फ़साद के दमन तथा राजकीय कामों के लिये दे सकते हैं।

सरकार अब इन प्रांतों में भी सिविल पुलिस रखने के पक्ष में है। १९२५ की रिपोर्ट में सरकार ने यह नोट लिखा है—

"The duties of Malguzars or padhans have been considerably lightened by the abolition of coolie utar in 1921. The result is that coolies are no longer to be supplied except voluntarily. The non-co-operation movement has affected the position of Padhans as well as of thokdars and their authority has somewhat weakened. The swaraj movement has resulted not only in an increase of independence amongst people, but also in some contempt for authority and lawlessness."

अर्थात्—"सन् १९२१ में कुली-उतार बंद होने से मालगुज़ार व पधानों का काम हल्का हो गया है। नतीजा यह हुआ है कि सिवाय ख़ुश ख़रीद के अब और कुली नहीं दिये जावेंगे। असहयोग-आन्दोलन से पधान व थोकदारों की मानमर्यादा में अन्तर आ गया है, और वह कुछ कमज़ोर हो गई है। स्वराज्य-आन्दोलन से लोगों में स्वतंत्रता के भाव ही नहीं आये हैं, किन्तु किसी अंश में शासन व क़ानून के प्रति घृणा के भाव भी उत्पन्न हुए हैं।"

आगे चलकर १९२५ के गज़ेटियर के परिशिष्ट में यह लिखा है—"अब रामजे साहब की राय का परिशोधन होना ज़रूरी है! १९२०-२२ के असहयोग-आन्दोलन से पटवारी की स्थिति में कुछ अन्तर आ गया है। अब कुमाऊँ के लोग वैसे सीधे-सादे नहीं रहे हैं, और उनकी बढ़ती हुई स्वतंत्रता के कारण पटवारी को ये दस्तूरियाँ लेने में कठिनाई पड़ गई

है—कुली, नाली, मकान तथा पुराने हक़। पटवारी की शक्ति कम हो रही है, और उसका पट्टी में दबदबा कम हो गया है। यह संभव है कि कहीं-कहीं गाँव-पुलिस का ढंग बदला जावे।"

इस समय पुलिस-स्टेशन कुमाऊँ में इस प्रकार हैं—

अल्मोड़ा—१ थानेदार, ५ हेड, ४० कानिस्टेबुल (इनमें सशस्त्र पुलिस भी शामिल हैं।)

रानीखेत—२थानेदार, ८ हेड, ५७ कानिस्टेबुल।

गनाई चौकी—१ हेड, ३ कानिस्टेबुल।

भिकियासैंण—१ हेड, ३ कानिस्टेबुल।

नैनीताल

थाने —मल्लीताल, तल्लीताल, हल्द्वानी, रामनगर, जसपुर, काशीपुर, बाजपुर, गदरपुर, किच्छहा, सितारगंज, खटीमा, भवाली।

चौकियाँ—काठगोदाम, लालकुआँ, कालाढूँगी, सुल्तानपुर, गड़प्पू, केलाखेड़ा, टनकपुर, मक्रोला, खैरना, भीमताल, बीरभट्टी। काशीपुर व जसपुर में ग्राम-चौकीदार भी हैं। सारे कुमाऊँ में क़रीब २४ थानेदार, ६५ हेड, ७०० कानिस्टेबुल, १३० ग्राम-चौकीदार तथा २०-३० तक सड़क-पुलीस के कानिस्टेबुल हैं। कुमाऊँ-पुलिस का सदर दफ़्तर नैनीताल में है। पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्ट सारे कुमाऊँ के एक हैं।

---

२२. बंदीगृह या जेल

चंदों के समय जेलख़ाने थे। पर इतनी सख़्ती बंदीगृहों में न थी, जितनी अँगरेज़ी शासन में है। क़ैदी राजा के बग़ीचे व खेतों में काम करते थे। उनको "बन-बाण' भी कहा जाता था। उनको अपनी जगह में दूसरा आदमी रखकर अपने घर जाने का हुक्म भी था। घर जाकर वे ब्याह, व्रतबंध भी कर आते थे। बुरी आबहवा में खेती करनेवाले क़ैदियों को एक प्रकार से मुक्ति मिल जाती थी, उनके साथ बुरा बर्ताव न होता था। कत्यूरियों के समय में तो "जेल दारोग़ा ने त्यागपत्र दे दिया था" ऐसा पं० रामदत्त त्रिपाठीजी ने लिखा है—"क्योंकि उनका कुछ काम न था। कोई अपराधी जेल में न आता था।"

अँगरेज़ी राज्य के आरंभ काल तक यहाँ पर अपराधियों की संख्या बहुत कम थी। "सन् १८१६ में केवल ६६ मनुष्य अल्मोड़ा-जेल में थे," ऐसा मि० ट्रेल ने लिखा है। अब भी औसतन यहाँ पर अपराधियों की संख्या कम है।

१८१५ में अल्मोड़ा में जेल खुल गया था। यह पहले उस जगह था, जहाँ पर अब अस्पताल है। शायद राजमहल की एक कोठरी में था। अब जेल हीराडुंगरी के पास एक ऊँची जगह में है, जो ५४३६ फुट ऊँची है। ठीक-ठीक पता न चला, पर अनुमान है कि यह जेल १८२२-२३ में बना। ननीताल का जेल १९०२-३ में बना। एक जेल हल्द्वानी में भी है। जाड़ों में नैनीताल का जेल हल्द्वानी चला जाता है। गर्मियों में नैनीताल आ जाता है। रानीखेत में छोटी पुलिस हवालत है। पर्वती क़ैदी अब भी जेलों में कम रहते हैं। देश के जेलों से भंगी, नंबरदार तथा कारीगर बुलाकर जेल का काम चलता है।

अल्मोड़ा-जेल चौथे दर्जे का जेल है। यहाँ १४१ क़ैदियों के लिये जगह है। किंतु यहाँ की औसत रोज़ाना हाज़िरी ६० के भीतर है।

नैनीताल-जेल ५वें दर्जे का जेल है। इसमें १०० आदमियों के लिये स्थान है। यहाँ ज़्यादातर हवालाती रहते हैं। सज़ा होने पर वे बरेली भेजे जाते हैं। यहाँ की रोजाना हाज़िरी ८० के लगभग है।

---

२३. न्याय व शासन-विभाग

सभ्य राष्ट्रों में शासन के तीन विभाग हैं:—(१) व्यवस्थापक, (२) शासन, (३) न्याय।

व्यवस्थापक संस्थायें दैशिक शासन-संबंधी क़ानून बनाती हैं, तथा नीति निर्धारित करती हैं। शासकगण उन क़ानूनों, नियमों व नीतियों को काम में लाते हैं। न्यायाधीश लोग निष्पक्ष होकर यह देखते हैं कि शासकगण व्यवस्थापकों के बनाये नियम व क़ानूनों को ठीक तौर पर बरत रहे हैं या नहीं। यदि कहीं प्रजा पर अन्याय हो या प्रजागण नीति के अनुसार न चलकर अत्याचार या पापाचार करें, तो उनको दंडित किया जाता है। सभ्य शिक्षित राष्ट्रों में ये तीन संस्थाएँ अलग होती हैं। भारत में ये सब विदेशी शासकों के अधिकार में हैं। फिर कुमाऊँ में तो गैर-आइनी ज़िला होने से और भी परिस्थिति खराब है।

ज़िला कुमाऊँ (जिसके सन् १८९२ ई० में बँटकर अल्मोड़ा व नैनीताल-नामक दो ज़िले हो गये तथा जिसमें सन् १८३८ तक गढ़वाल भी शामिल था) १८१५ में अँगरेज़ी शासन के भीतर आया, और सन् १८१६ में फर्रुखाबाद-कमिश्नरों के बोर्ड के अधीन हुआ।

ऐक्ट नं० १० सन् १८३८ के अनुसार उक्त ज़िले पश्चिमोत्तर प्रान्त के सदर दीवानी अदालत, सदर निज़ामत अदालत और सदर बोर्ड माल के अधीन हुए। उधर १० जुलाई १८३७ को सरकार की आज्ञानुसार काशीपुर का परगना मुरादाबाद से मिलाया गया। साथ ही तराई भी रुहेलखंड की कलक्टरियों से मिला दी गई।

सन् १८६४ तक कुमाऊँ और गढ़वाल के ज़िले सदर दीवानी अदालत, सदर निज़ामत अदालत और सदर बोर्ड माल के मातहत रहे। उस वर्ष ये ज़िले सदर दीवानी अदालत के अधिकार से बाहर हो गये।

तराई के परगने सन् १८५८ में कुमाऊँ के कमिश्नरी के अधिकार में आये, परन्तु सन् १८६१ में फिर कमिश्नरी रुहेलखंड के नीचे चले गये। फिर उस साल ऐक्ट १४ सन् १८६१ के अनुसार उक्त परगने आइनी कचहरियों और उनकी व्यवस्था-प्रणाली से पृथक् होकर एक खास अफ़सर के अधीन हुए।

बोर्ड (Board of Revenue) यहाँ का मालगुज़ारी के विषयों में अधिष्ठाता हुआ। उक्त व्यवस्था के अनुसार भूमि के मालगुज़ारी-संबंधी सब मामले केवल माल की कचहरियों में सुने जाते थे। ऐसी नालिशों में अपील पहले कमिश्नर साहब की कचहरी में, तदनन्तर सदर बोर्ड की कचहरी में होती थी। अब भी ऐसा ही है।

सन् १८९४ तक कुमाऊँ के कमिश्नरों को पूर्ण अधिकार फाँसी तक के थे। फाँसी की अपील हाइकोर्ट में न होती थी। हाइकोर्ट फाँसी के हुक्म की पुष्टि करती थी। सन् १८६४ से सन् १६१४ तक कमिश्नर कुमाऊँ यहाँ के सेशन जज हो गये। सन् १६१४ में यहाँ पर जजी अलग खुली, और तब से हाईकोर्ट से सीधा संबंध स्थापित हो गया।

दीवानी-संबंधी न्याय

दीवानी के मामलों में १८१५ से १८२६ तक एक ही अदालत कमिश्नर की थी। सब मुक़द्दमे वहीं होते थे। १२ दिन से कोई मुक़द्दमा ज़्यादा न चलता था। वकील कोई न थे। आठ आने के स्टाम्प में डिगरी की नक़ल मिलती थी। पहला मुंसिफ़ सन् १८२९ में नियुक्त हुआ, पश्चात् सात क़ानूनगोयों को मुंसिफ़ के अधिकार दिये गये। कमिश्नर के सरिश्तेदार सदरअमीन बनाये गये। १८३८ में ये पद तोड़ दिये गये। क़ानून १०, १८३८ के अनुसार दो ज़िले बनाये गये, एक गढ़वाल का, दूसरा कुमाऊँ का। इनमें एक-एक सीनियर असिस्टेंट कमिश्नर तथा सदरअमीन नियुक्त

हुए। मुंसिफ़ी के अधिकार तहसीलदारों को भी दिये गये, क्योंकि यहाँ अलग मुंसिफ़ अभी तक नियुक्त नहीं हुए हैं। तहसीलदार, डिप्टी-कलेक्टर तथा डिप्टी-कमिश्नर ही मुंसिफ़ व सबजज का काम करते हैं। अभी तक दीवानी के मुक़द्दमे भी शासन-विभाग के अफ़सर ही करते हैं।

---

२४. शिक्षण-नीति

कुमाऊँ के लोग कत्यूरी व चंद-शासन-काल से ही शिक्षित रहे हैं। यह हम उनकी शासन-नीति में दर्शा चुके हैं।

सन् १८२३ में ट्रेल साहब ने लिखा था—"कुमाऊँ में आम स्कूल नहीं हैं, और निजी स्कूलों में केवल उच्चकोटि के लोग शिक्षा पाते हैं। पढ़ानेवाले पंडित ब्राह्मण हैं, जो पढ़ना-लिखना व हिसाब सिखलाते हैं। प्रतिष्ठित ब्राह्मणों के लड़के संस्कृत पढ़ते हैं, और वे पढ़ने को काशी भेजे जाते हैं। और वहाँ वे हिंदू शिक्षा-पद्धति के अनुसार शिक्षा प्राप्त करते हैं।"

नाव में धमकी देकर नैनीताल नगरी को श्रीनरसिंह से ले लेनेवाले बैरन साहब ने अपनी 'हिम्माला' पुस्तक में सन् १८४० में लिखा था—"All the paharis of Kumaon, however poor, could read and write" अर्थात् कुमाऊँ का हरएक पहाड़ी, चाहे कितना ही ग़रीब हो, पढ़ना-लिखना जानता है। गोरखा-राज्य में शिक्षा का भी काफ़ी ह्रास हुआ। तो भी अँगरेज़ों के आने के समय कुमाऊँ में १२१ पाठशालाएँ हिंदी व संस्कृत की थीं। ये निजी घरों में थीं। कहीं-कहीं पंडित लोग अपने घरों में पढ़ाते थे। इन १२१ में से ५४ पंडित मुफ़्त यानी विना शुल्क लिए छात्रों को पढ़ाते थे, और ६७ पंडितों को कुछ आमदनी होती थी, जो ६॥) या १०) माहवार से ज्यादा न होगी। सन् १८५० में थौर्टन साहब लिखते हैं कि इन स्कूलों में ५२२ छात्र थे, जिनमें ⅘ ब्राह्मण थे, बाकी अन्य। इनके अलावा एक स्कूल और था, जिसमें १० छात्रों को उर्दू पढ़ाई जाती थी। सन् १८४० में अँगरेज़ों ने एक स्कूल श्रीनगर में खोला। ५) माहवार टीचर को दिये जाते थे। यह ५) भी लावारिश-फंड से दिये गये। बाद को कलकत्ते की शिक्षा-समिति की सिफ़ारिश से दो स्कूल और खुले। एक २०) माहवारी खर्च पर कुमाऊँ में, दूसरा १५) माहवार के हिसाब से गढ़वाल में। सन् १८४१ में कमिश्नर लशंटिन ने एक संस्कृत-पाठशाला खोली, जो बाद को बंद हो गई।

सन् १८५७ से कुमाऊँ में शिक्षा-विभाग स्थापित हुआ, और कुमाऊँ-सर्किल उसका नाम पड़ा। सितंबर १८५८ में सोमेश्वर, धमाड़, (घलाड़?) सत्राली, द्वाराहाट और निरई में स्कूल खुले। इन पाँच स्कूलों में २२५ छात्र थे।

मार्च १८५६ में चंपावत, पिठौरागढ़, गंगोलीहाट, स्याल्दे, गनाई, भिकियासैंण, देघाट में स्कूल खुले। छात्र-संख्या ६०० हो गई। १८६७ में ३२ स्कूल थे, और सन् १८७२ में छात्र-संख्या १८१५ थी। सन् १८७१ में सोमेश्वर, द्वाराहाट, बेनीनाग, दार्मा, देवलथल, चौपखिया में तहसीली स्कूल थे। इनमें से बेनीनाग, दार्मा, द्वाराहाट के स्कूल स्याल्दे, खेतीखान और बगवालीपोखर को बदल गये।

सन् १८७१ में शिक्षा इन्स्पेक्टर मेजर गार्डन की जगह पं० बुद्धिवल्लभ पंत इन्स्पेक्टर हुए। आपके समय शिक्षा की जो उन्नत्ति हुई, उसका ब्यौरा नीचे के आँकड़ों से ज्ञात होगा:—

सन् १८७१ में पंतजी के चार्ज लेने पर कुमाऊँ में २ देहाती मिडिल स्कूल, ११६ छोटे स्कूल थे, जिनमें ८४८८ छात्र थे।

१८८८-८६ में जब उन्होंने छोड़ा, तो कुमाऊँ में एक कॉलेज, तीन हाईस्कूल, १७ मिडिल स्कूल तथा २०४ देहाती स्कूल थे, जिनमें १०६२७ छात्र पढ़ते थे। कुमाऊँ में शिक्षा की जड़ जमानेवाले पं० बुद्धिवल्लभ पंतजी थे।

१८४४ में मिशन स्कूल खुला, जो १८७१ में रामजे कॉलेज हो गया था, किन्तु एफ़० ए० कक्षा के टूटने से वह फिर रामजे हाईस्कूल हो गया। अल्मोड़ा में अँगरेज़ी शिक्षा का श्रीगणेश करनेवाला यही स्कूल है।

रामजे साहब ने १८७४ में अपनी रिपोर्ट में लिखा था—"सबको पढ़ाना कठिन होगा। हमें कुछ लोगों को कामचलाऊ शिक्षा देनी चाहिए, बनिस्बत इसके कि कुछ थोड़े से लोगों को ज़्यादा खर्च करके अच्छी शिक्षा दी जावे। यदि कोई होशियार लड़का ऊँची शिक्षा प्राप्त करना चाहे; तो उसे छात्रवृत्ति दी जावेगी। हल्क़ाबंदी स्कूलों के टीचरों को ५) माहवार मिलते हैं। इतने में मामूली शिक्षा देनेवाले आदमी मिल जाते हैं। यद्यपि हमारा शिक्षा-संबंधी कारबार पिछड़ा-है, तथापि कुमाऊँ में पढ़े-लिखे लोगों की संख्या औसत से ज़्यादा है।"

३१ मार्च १६२८ को कुमाऊँ में शिक्षा की हालत यह थी:—

जिला	जन-संख्या	छात्र बालक	बालिकाएँ	कुल
नैनीताल	२७६८७५	६५४१	१५२१	११०६२
अल्मोड़ा	५३०३३८	२३५६३	१५८७	२५१८०

देहाती प्राइमरी स्कूल

ज़िला	कुल स्कूल	कुल छात्र	कुल ख़र्च
नैनीताल	१६०	७६१५	७२५०५
अल्मोड़ा	३६०	२०७७३	१५४६५६

अल्मोड़ा-ज़िले में मिडिल स्कूल

इस समय अल्मोड़ा-ज़िले में १४ हिंदी मिडिल स्कूल हैं। उनके नाम, तथा जिस सन् में वे खुले उसका ब्यौरा इस प्रकार है:—

१. काँडा— सन् १६०२
२. पाली— ,, १६०२
३. पिठौरागढ़— ,, १६०२
४. खेतीखान— ,, १६०६
५. अल्मोड़ा टौन स्कूल— सन् १६०७
६. सोमेश्वर— सन् १६२०
७. गंगोलीहाट — ,, १६२४
८. बेनीनाग— ,, १६२६
६. डिंडीहाट— ,, १६२६
१०. मानिला— ,, १६२७
११. जयंती या जैंती— ,, १६२८
१२. बागेश्वर— ,, १६२८
१३. देवलीखेत— ,, १६२८
१४. कपकोट— ,, १६२६

स्वराजिस्ट लोग बोर्ड में सन् १६२३ से जाने लगे। उन्होंने छोटे स्कूलों की कौन कहे, ८-६ मिडिल स्कूल ६ वर्ष के अंदर खोल दिये। शिक्षा-प्रचार में उन्होंने काफ़ी उन्नति की। जैंती का स्कूल सालम के देशभक्त रामसिंह धौनीजी की यादगार है। आप वहाँ के मेम्बर थे, तथा कुछ काल तक चेयरमैन भी रहे। मिडिल स्कूलों को खोलने में ७ से १४ तक स्कूलों के लोगों ने भी क़ाफ़ी उत्साह दर्शाया है। एतदर्थ वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। अल्मोड़ा में शिक्षित वर्ग काफ़ी हैं। खास अल्मोड़ा नगरी में पढ़े-लिखे लोगों की संख्या काफ़ी है। देहातों में भी लोग प्रान्तीय औसत से अच्छी संख्या में पढ़े-लिखे हैं। विद्या की भूख बढ़ रही है। तो भी देहातों में पढ़े-लिखों की औसत-संख्या १० फ़ीसदी से ज़्यादा नहीं है।

सन् १८३२ में अल्मोड़ा के देहाती स्कूलों की संख्या इस प्रकार थी। इन सबका प्रबंध ज़िला-बोर्ड के हाथ में है—

नाम स्कूल	संख्या	छात्र-संख्या
मिडिल ज़िला-बोर्ड	१०	१०३६
,, इमदादी	३	२२,४
,, निजी	१	५४
प्राइमरी ज़िला-बोर्ड	२७४	१८१४
,, इमदादी	९१	३१२७
ट्रेनिंग	२	१५
बढ़ई	१	२२
रात्रि-पाठशाला	१	३२
संस्कृत	३	८१
कन्या ज़िला-बोर्ड	५	२०३
,, इमदादी	१४	३५५
,, निजी	२	२८

नैनीताल

नैनीताल नगरी की शिक्षा का वृत्तान्त नैनीताल के वर्णन में दिया गया है। नैनीताल ज़िला सन् १८६१ में बना। उस समय वहाँ जसपुर में सिर्फ़ एक तहसीली स्कूल तथा १३ देहाती स्कूल थे, जिनमें ३०६ छात्र शिक्षा पाते थे। ३ कन्या-पाठशालाएँ थीं, जिनमें दो अमेरिकन मिशन के प्रबंध में थीं, और तीसरी सरकारी इस्टेट के ख़र्च से चलती थी। १५ लड़के जो वर्नाक्यूलर मिडिल पास करने को गये, उनमें से सब फ़ेल हो गये, केवल एक लड़का पास हुआ। १३ स्कूल भावर में तथा ८ तराई में थे। इनकी हालत और भी खराब थी। भावर के स्कूलों का प्रबन्ध मिशन-वालों के हाथ था, और तराई का सुपरिन्टेन्डेन्ट के हाथ। न तो टीचर अच्छे थे, न कोई निरीक्षण का ढंग था।

नैनीताल में शिक्षा का प्रबंध पहले से कमज़ोर हालत में रहा है। एक तो भावर व पहाड़ जाने में स्कूलों की दशा ठीक नहीं रहती। दूसरे मलेरिया से ग्रस्त लोग स्कूलों में पढ़ने नहीं जाते। थाड़ू, बोक्से तो स्कूलों में जाते नहीं। यद्यपि अब कुछ थाड़ू पढ़-लिख गये हैं।

नैनीताल में देहाती मिडिल स्कूल काशीपुर, खटीमा, लोहाली, भीमताल, जसपुर में हैं। यहाँ के पढ़े-लिखों की संख्या ५ प्रतिशत से ज़्यादा न होगी।

नैनीताल में दो हाईस्कूल हैं, और काशीपुर में भी एक हाईस्कूल है, तथा चुंगी के भीतर प्रारंभिक शिक्षा निःशुल्क तथा अनिवार्य है। हल्द्वानी में एक अँगरेज़ी मिडिल स्कूल है। अँगरेज़ी अब देहाती स्कूलों में भी पढ़ाई जाती है।

शिक्षा के विषय में राष्ट्रीय पक्ष की यह नीति है कि सर्वत्र प्रारंभिक शिक्षा निःशुल्क व अनिवार्य होवे। ऊँची शिक्षा की भी यत्र-तत्र सुविधाएँ हों। साधारण शिक्षा के साथ-साथ शिल्प, औद्योगिक तथा व्यवसाय-संबंधी शिक्षा भी सिखाई जावे। प्रत्येक स्कूल में सैनिक शिक्षा की भी व्यवस्था हो। सफ़ाई, खेतीबाड़ी, तन्दुरुस्ती की पुस्तकें ही न पढ़ाई जावें, वरन् व्यावहारिक बातें भी बताई जावें। सर्वत्र व्यायामशालाएँ भी खुलें, ताकि कोई भी बच्चा, स्त्री, पुरुष राष्ट्र का शिक्षा से वंचित न रहे। कोई भी मनुष्य दुर्बल न हो। राष्ट्र के लोग नाना प्रकार के कला-कौशलों से सम्पन्न होकर अपनी संसार-यात्रा को सुखपूर्वक तथा सम्मानपूर्वक व्यतीत कर सकें। उनको अपने देश, जाति तथा समाज का गौरव हो। वे राष्ट्र को अपना इष्टदेव समझें। जननी जन्मभूमि के लिये बलिदान होने को भी तैयार रहें। राष्ट्र का यह कर्तव्य है कि वह देखे कि कोई बच्चा शिक्षा से वंचित तो नहीं है। वह दुर्बल न हो। वह साफ़-सुथरा व तन्दुरुस्त रहे। वह अपनी आजीविका स्वयं कमा सके। वह अन्न-वस्त्र से दुखी न हो। वह अपने देश-समाज व धर्म की सेवा में अनुरक्त हो। यह शिक्षा का उद्देश्य है।

---

२५. कौंसिलों का जन्म

सन् १८५८ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अन्यायी शासन उठ गया। महामना महारानी विक्टोरिया ने भारत के शासन की बागडोर अपने हाथों में लेकर एक राजकीय घोषणा द्वारा दुःखी भारतवासियों को सांत्वना दी। किन्तु इसके विपरीत अँगरेज़ी बादशाहों के नाम पर स्वयं राजकाज चलानेवाली शासक-मंडली (नौकरशाही) ने भारत के लोगों को निहत्था कर मानो, इस घोषणा पर पानी फेर दिया। सन् १८५७ में भारतीय लोगों ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिये सशस्त्र राजक्रान्ति की, किन्तु आपसी फूट तथा विश्वासघात के कारण सफल मनोरथ न हुए। नौकरशाही ने वह तरकीब सोची, 'न रहे बाँस न बजे बाँसुरी' सारे भारतवर्ष के लोगों को निहत्था कर दिया। शस्त्र छीने गए। उन्हीं को शस्त्र रखने का अधिकार हुआ, जिनके पास लाइसेंस हों, या जो क़ानून द्वारा माफ़ किए गए हों या जो राजभक्त हों। इस तरह शस्त्र छीने जाने

पर सशस्त्र क्रांति द्वारा स्वराज्य-प्राप्ति का द्वार भारतवासियों के लिये सदा को बंद-सा हो गया। स्वराज्य-प्राप्ति के दो साधन रहे (१) समाचार-पत्रों में आंदोलन, (२) सभाओं में भाषण या व्याख्यान देना तथा अफ़सरों के सामने सर झुकाना। सरकार ने एक तरीक़ा और निकाला। वह था कौंसिलों का जन्म। यानी लोगों के प्रतिनिधि छाँटकर, उनकी एक सभा बनाई जावे, जिनमें वे अपने मनोविकारों को प्रकट करें, किन्तु यह आंदोलन सब वैध थे, क्योंकि किसी भी प्रकार अवैध व अराजक आंदोलन को सरकार दबा देती थी। आलोचना व पर्य्यालोचना सब मृदु भाषा में होती थी। स्पष्ट, सत्य तथा तथ्य भाषी को अभी स्थान न था। १८३३ से क़ानून-समितियाँ यहाँ बनीं, जिनका संशोधन १८५३ में हुआ, किन्तु सन् १८६१ तक इन कौंसिलों में अफ़सर लोग ही क़ानून बनाते तथा वे ही शासन चलाते थे। सन् १८६१ में नया क़ानून पास हुआ, उसमें कुछ ग़ैर सरकारी सदस्य भी कौंसिलों में रखे जाने का नियम बना। ये लोकनिर्वाचित न थे, बल्कि सरकार द्वारा निर्वाचित थे। संयुक्तप्रान्त में लाट साहब की सभा १८८६ में खुली। १८९२ में सदस्यों की संख्या १५ मुक़र्रर की गई। १८८६ में ६ से १२ तक सदस्य थे, इनमें से ⅓ ग़ैर सरकारी सदस्य थे। कुछ संस्थाओं को मेम्बर छाँटने का अधिकार मिला। १९१२ में संयुक्तप्रान्त की कौंसिल के १५ के बदले ५० सदस्य नियुक्त किये गए, जिनमें से २१ लोक-निर्वाचित थे, उसका संघठन इस प्रकार थाः—

नामज़द मेम्बर—२० सरकारी, १ भारतीय व्यापार-मंडल का प्रतिनिधि, बाक़ी ग़ैरसरकारी — २६

नामज़द विशेषज्ञ	२
छाँटे हुए—	
बड़ी चुंगियों से	४
छोटी चुंगी व ज़िला-बोर्ड से	६
प्रयाग-विश्वविद्यालय से	१
ज़मींदारों में से	२
मुसलमान	४
अपर इण्डिया व्यापार-मंडल	१
	४९
लाट साहब या सभापति	१
	५०

पर कुमाऊँ प्रान्त को श्रीकर्टिस व श्रीमेस्टन साहब (Sir James Meston) की कृपा से इन सुधारों से भी वंचित रहना पड़ा, क्योंकि उन्होंने कहा कि कुमाऊँ ग़ैरआइनी ज़िला है। यह वैसा ही रहने दिया जावे, और वह प्रतिनिधि पाने के योग्य नहीं। आपने तो कुमाऊँ को असभ्य भी बता दिया।

इसके विरुद्ध कुमाऊँ में बड़ा आन्दोलन हुआ। अल्मोड़ा-कांग्रेस ने बड़े कड़े प्रस्ताव पास किये, तब राम-राम कर १९१९ में कुमाऊँ को एक नाम-ज़द मेंबर मिला। उस साल माननीय तारादत्त गैरोला प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य सरकार द्वारा छाँटे गये। कुमाऊँ को अपना प्रतिनिधि छाँटने का अधिकार वास्तव में १९२१ में मिला। १९१९ के सुधारों के अनुसार (जो मांटेगू चेम्सफ़ोर्ड-सुधार के नाम से विख्यात थे) कुमाऊँ के तीनों ज़िलों को प्रान्तीय कौंसिल के लिये एक-एक मेम्बर छाँटने का अधिकार मिला। कुमाऊँ के मुसलमान पीलीभीत के शामिल किये गये। कुमाऊँ + पीलीभीत को एक मुसलमान मेम्बर छाँटने का अधिकार मिला, किन्तु बड़ी एसेम्बली के लिये यह रोहिलखंड से संबंधित किया गया।

निर्वाचक-मंडल

इन लोगों को निर्वाचन अर्थात् प्रतिनिधि छाँटने का अधिकार दिया गया था:—

(१) साधारण मतदाता की आयु २१ वर्ष की हो, किन्तु मेम्बरी के उम्मीदवार की २५ से ऊपर हो।

(२) जो शहर या क़स्बे में ३६) साल के किराये के मकान में रहते हों।

(३) जो २००) की वार्षिक आय पर कर देते हों।

(४) जो २५) मालगुज़ारी देता हो।

(५) मौरूसी कृषक (खायकर) हो, और २५) वार्षिक लगान देता हो।

(६) या साधारण कृषक (सिरतान) हो, जो ५०) वार्षिक लगान देता हो।

(७) कुमाऊँ-प्रान्त के पर्वती इलाक़े में रहनेवाला हिस्सेदार, खायकर या माफ़ीदार हो।

(८) इनकम-टैक्स देता हो।

(९) पेंशनर सैनिक या सिपाही हो।

कुमाऊँ में १९२१ की गणना के अनुसार वोटरों की संख्या इस प्रकार थी:—

अल्मोड़ा में—क़रीब सवा लाख।

नैनीताल में—क़रीब चौदह हज़ार।

अल्मोड़ा में ज़्यादा वोटर हैं, और ज़िला भी बड़ा है। इससे वहाँ मेम्बरों की संख्या दो होनी चाहिये थी, किन्तु एक ही मेम्बर दिया गया।

१६०५-१६०६ के बीच जो सुधार हुए, वे 'मॉरले-मिन्टो' के नाम से संबंधित हैं। पर वे नगण्य साबित हुए। युद्ध के बीच भारत ने बड़ी सहायता साम्राज्य को पहुँचाई, तब मांटेगू, चेम्सफ़ोर्ड दो बड़े राजनीतिज्ञ शासन-सुधारों का मसौदा बनाने को नियुक्त हुए। सन् १६१७ में भारतवासियों को युद्ध में विशेष सहायता देने के लिये उत्साहित करने को उत्तरदायी शासन-प्रणाली स्थापित करने की घोषणा हुई। यह प्रणाली सन् १६२१ से काम में लाई गई। उसके अनुसार प्रान्तीय कौंसिल के १२३ सदस्य बनाये गये, जिनमें २३ सरकार द्वारा नियुक्त किये हुए, तथा १०० लोक-निर्वाचित थेः—

सदस्यों की संख्या—

(१) आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, लखनऊ, बनारस, बरेली से	प्रत्येक नगर से १	६
(२) शहर मेरठ और अलीगढ़ से		१
(३) मुरादाबाद और शाहजहाँपुर से		१
(४) ज़िला मेरठ, बुलंदशहर, अलीगढ़ और गोरखपुर प्रत्येक ज़िले से २		८
(५) अन्य ४४ ज़िलों से जिनमें अल्मोड़ा, नैनीताल, गढ़वाल भी थे प्रत्येक से १		४४

मुसलमान-सदस्य

६ नगरों से	४
पीलीभीत-कुमाऊँ से	१
४४ ज़िलों से	२४
अँगरेजों का प्रतिनिधि	१
आगरा ज़मींदारों की ओर से	२
तालुक़ेदारों की ओर से	४
भारतीय व्यापार-मंडल	१
अँगरेज़ी व्यापार-मंडल	२
प्रयाग-विश्वविद्यालय	१
	१००

२३ नामज़दों में से १६ सरकारी अफ़सर थे, बाक़ी ग़ैर-सरकारी सदस्य, जिनको सरकार नियुक्त करे। वे प्रायः सब राजभक्त लोग होते आए हैं।

कांग्रेस ने इन सुधारों को नगण्य बताते हुए इनका विरोध किया, बल्कि सन् १९२१ में बहिष्कार भी किया, पर १९२३ में स्वराज्य-दल ने अड़ंगा-नीति लेकर वहाँ जाना निश्चय किया, और १९३० में सत्याग्रह-संग्राम के छिड़ने पर फिर छोड़ दिया। इस पर माडरेट व राजभक्त-दल के लोगों के कौंसिलों में पहुँचकर अनेक लोक-विरुद्ध व नीति-विरुद्ध प्रस्ताव व क़ानून पास करने के कारण कांग्रेस ने फिर १९३३ में कौंसिलों में अपनी एक टुकड़ी भीतर भी युद्ध करने को भेजने की ठहराई।

वर्तमान प्रान्तीय एसेम्बली में २२८ सदस्य हैं। ये सदस्य अपना ही मंत्रिमंडल छाँट सकेंगे। अल्मोड़ा को २ मेम्बर मिलने चाहिए थे, पर अभी तक एक ही सदस्य मिला है। एक स्थान शिल्पकारों को दिया गया है।

राष्ट्रीय दावा प्रतिनिधि-मंडल के विषय में इस प्रकार है—प्रत्येक १८ वर्ष से ऊपर के मनुष्य (स्त्री व पुरुष दोनों) को प्रतिनिधि छाँटने का अधिकार हो। बहुमत जिस दल का हो, उसको मंत्रिमंडल बनाने का हक़ हो। गवर्नर नियमबद्ध शासक हो। उसको केवल राष्ट्र-विप्लव के समय ही हस्तक्षेप करने का अधिकार हो, अन्यथा सब राज-काज चलाने का अधिकार लोक-निर्वाचित मंत्रिमंडल को हो। और मंत्रिमंडल निर्वाचक-मंडल के प्रति अपने कार्यों के लिये ज़िम्मेदार हो।

२२८ मेंबरों में से कुमाऊँ-प्रांत को एसेंबली में बहुत कम मेंबर मिले हैं—

गढ़वाल—२

अल्मोड़ा—२ १ शिल्पकार

नैनीताल—१

अल्मोड़ा के साथ अन्याय हुआ है, ३ नहीं, तो २ सदस्य अवश्य मिलने चाहिए थे, क्योंकि यहाँ वोटरों की संख्या ज़्यादा है। लगभग १ लाख ३५ हज़ार वोटर सारे ज़िले में हैं। ज़िला क़रीब १०० मील लंबा तथा १५० मील चौड़ा है। मुसलमानों को भी अलग सीट नहीं मिली। नैनीताल व अल्मोड़ा के मुसलमान बरेली में शामिल किये गये हैं। बरेली में ज्यादा तादाद मुसलमानों की होने से कुमाऊँ के मुसलमानों को सीट मिलना कठिन है। ऐसे ही गढ़वाल ज़िला बिजनौर में शामिल किया गया है। शिल्पकारों को १ जगह अल्मोड़ा में मिली है। यह सीट बारी-बारी से गढ़वाल व नैनीताल को दी जानी चाहिए थी।

प्रान्तीय कौंसिल (अपर हाउस) में १ सीट कुमाऊँ को मिली है, और उसमें ला० मोहनलाल साहजी खज़ांची निर्वाचित हुए हैं।

अब तक कुमाऊँ में जो सज्जन मेंबरी में छाँटे गये हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं:—

पुरानी कौंसिल

अल्मोड़ा

१. राजा आनंदसिंहजी १९२१-२३ (अल्मोड़ावाले)
२. पं० हरगोविंद पंतजी १९२३-२६ तक
३. पं० बदरीदत्त पांडेजी १९२६-२९ तक
४. ठा० जंगबहादुरसिंह विष्टजी १९३० से ३६ तक

नैनीताल

१. राय पं० नारायणदत्त छिमवाल साहब
२. पं० गोविंदवल्लभ पंतजी
३. ठा०.........नयालजी
४. पं० प्रेमवल्लभ वेलवालजी

गढ़वाल

१. राय पं० तारादत्त गैराला बहादुर (नामज़द)
२. बा० मुकुंदीलाल साहब
३. सरदार नारायणसिंह बहादुर

नयी एसेम्बली के मेम्बर जो १९३७ में छाँटे गये
(५ साल को)

अल्मोड़ा से—

१. पं० हरगोविन्द पंतजी
२. मु० रामप्रसाद टम्टाजी (शिल्पकारों के प्रतिनिधि)

नैनीताल से—

१. कुँ० आनन्दसिंहजी काशीपुर (निर्विरोध)

गढ़वाल से—

१. ठा० जगमोहनसिंहजी
२. पं० अनुसूयाप्रसादजी

यू० पी० कौंसिल में
(९ साल को)

ला० मोहनलाल साहजी रईस व बैंकर

भारतीय एसेम्बली में—

सर्व-प्रथम राजा शिवराजसिंहजी नामज़द मेम्बर रहे।

१९३३ में पं० गोविन्दवल्लभ पंत महोदय छाँटे गये। आपके प्रान्तीय एसेम्बली में आ जाने पर १९३७ में पं० बदरीदत्त पांडेजी भारतीय एसेम्बली के सदस्य निर्विरोध छाँटे गये।

सन् १९३७ में कांग्रेस का बहुमत हुआ, किन्तु मंत्रिमंडल लेने के विषय में बहुत वादानुवाद हुआ। दिल्ली में यह तय हुआ कि मंत्रि-पद गवर्नर के आश्वासन देने पर लिया जाय कि वह मंत्रियों के रोज़ाना काम में हस्तक्षेप न करेंगे। तीन माह तक बहस चली। अन्त में ता० ७ जुलाई १९३७ को वार्धा में महात्मा गांधी ने मंत्रि-पद ले लेने को कहा। यह कूर्माचल का सौभाग्य है कि उसके गौरव एवं देशपूज्य नेता इस प्रान्त के प्रधान मंत्री ता० १६—७—३७ को नियुक्त किये गये।

मंत्रिमंडल के अधिकार सीमाबद्ध हैं। प्रान्तीय लाट ही क़ानूनन सर्वेसर्वा माने गये हैं। वे आर्डिनेंस (विशेष क़ानून) भी विना मंत्रियों की सम्मति के बना सकेंगे, किन्तु वादानुवाद के पश्चात् यह तय हुआ है कि गवर्नर (१) प्रान्त में अशान्ति फैलने पर, (२) अल्पमत के अधिकारों पर कुठाराघात होने पर, (३) उच्च आई० सी० एस्० के नौकरों की हक़तलफ़ी पर ही अपने अधिकारों को काम में लावेंगे। देखें, आगे क्या हो।

---

२६. राष्ट्रीयता की लहर

ऊपर दर्शाया जा चुका है कि सन् १८५७ में भारतवासियों ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिये उत्तर भारत में तुमुल संग्राम किया। बहुत कुछ बहादुरी दिखा तथा अँगरेज़ों के छक्के छुड़ाकर भी अन्त में वे हार गये। अँगरेज़ों की बन आई। उन्होंने भारतवासियों को ख़ूब दबाया, और निहत्था (अस्त्र-शस्त्र-रहित) कर दिया।

सन् १८५८ में कम्पनी की शासन-प्रणाली को तोड़कर, महारानी विक्टोरिया ने सब राज-काज को अपने हाथों में लिया। उन्होंने एक राज-घोषणा प्रकट की, जिसमें लिखा था कि भारतवर्ष की काली व गोरी प्रजा में किसी प्रकार का भी भेद-भाव न होगा, सबको योग्यतानुसार पद प्राप्त होंगे। इससे लोगों को शान्ति हुई, तथा उन्हें बहुत कुछ आशा भी हुई, पर वह मृगतृष्णा-मात्र थी। काग़ज़ की बातें ठीक थीं, पर अमली बर्ताव में तब की तो

कौन कहे, अभी तक वे बातें काम में नहीं आई हैं । आई भी हैं, तो अंशमात्र में ।

सन् १८७५ में महाराजा गायकवाड़ को गद्दी से उतारा गया । उन पर दोष लगाया गया कि उन्होंने एक अँगरेज़ रेज़िडेंट को विष देकर मारा है । इस पर जाँच के लिये एक कमीशन बैठा । उसके हिन्दुस्तानी मेम्बरों (महाराजा ग्वालियर, महाराजा जयपुर, सर दिनकर राव) ने महाराजा गायकवाड़ को निर्दोष बताया । पर अँगरेज़ों ने दोषी ठहराकर गद्दी से उतार दिया । इस पर बड़ी उत्तेजना फैली । लार्ड लिटन अच्छे शासक न थे । इनकी नीति से लोग असन्तुष्ट थे । इँगलैण्ड व रूस के बीच अनबन हुई । हिन्दुस्तानी पत्रों ने रूस का पक्ष लिया । लार्ड लिटन ने इस आन्दोलन को रोकने के लिये 'वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट' पास किया, इससे भारतीय समाचार-पत्रों की स्वाधीनता छीन ली गई । १८८० में लार्ड रिपन ने, जो एक उदार शासक थे, इस क़ानून को रद्द कर दिया । उन्होंने स्थानीय स्वराज्य जिला-बोर्ड तथा चुंगी-बोर्डों की भी नींव डाली ।

यों १७५७ से जब पलासी का युद्ध हुआ और १८५७ के बीच जब भारतीय स्वतंत्रता के लिये सशस्त्र क्रांति हुई, अखबारों व सभाओं द्वारा शासन की आलोचना होती थी, किन्तु सबसे पहले संगठित रूप से लोकमत को प्रदर्शित करने का श्रेय बंगाल के ब्रिटिश-इन्डियन-एसोसिएशन को है । इसका जन्म १८५१ में हुआ । यह बंगाल के बड़े-बड़े ज़मीदारों व पूँजीपतियों की सभा थी, किन्तु प्रजापक्ष के लिए सदैव अपनी आवाज़ उठाती थी । इसी बीच बंगाल, बंबई व मद्रास में भी क़रीब-क़रीब एक-दो वर्षों के बीच एसोसिएशन खुले, जिन्होंने प्रजा-पक्षीय शासन-प्रश्नों पर लोकमत को संगठित रूप से प्रदर्शित किया ।

सन् १८८३ में मिस्टर इलबर्ट ने, जो वायसराय की केबिनेट के क़ानूनी सदस्य थे, एक बिल पेश किया, जो 'इलबर्ट-बिल' के नाम से प्रसिद्ध है । अभी तक हिन्दुतानी मजिस्ट्रेट व जजों को किसी गोरे अभियुक्त का मुक़द्दमा करने का अधिकार न था । इस बिल का उद्देश्य था कि ज़ाब्ता फ़ौजदारी की धारा सब के लिये चाहे वे गोरे हों या काले एक-सी की जावे । इस पर अँगरेज़ व अन्य गोरे लोग बहुत बिगड़े । उन्होंने इस मसौदे का बहुत बड़ा विरोध किया । शिक्षित भारतवासियों ने भी अँगरेज़ों को भला बुरा कहा, और क़ानून के समर्थन में सभायें हुईं । अल्मोड़ा में भी पं० बुद्धिवल्लभ पंतजी के सभापतित्व में सभा हुई । सरकार ने वह बिल वापस ले लिया, पर भारतवासियों व

अँगरेज़ों में उससे बड़ा भारी विरोध फैला। लार्ड रिपन को उसके कारण १८८४ में इस्तीफ़ा देना पड़ा। जाते समय भारतवासियों ने उनको सैकड़ों अभिनन्दन पत्र दिये। इँगलैंड से उनकी अवधि बढ़ाने को कहा। कलकत्ते से बंबई तक उनका ऐसा सम्मान हुआ कि आज तक किसी वाइसराय का नहीं हुआ। इस आन्दोलन से भी भारतवासियों को अपनी परिस्थिति का ज्ञान हो गया।

लार्ड मैकौले के समय से जब भारत में अँगरेजी शिक्षा का प्रचार बढ़ा, तो बहुत-से भारतवासी उच्च शिक्षा से परिवेष्ठित हो विलायत पहुँचे। उनमें नये विचारों का समावेश हुआ। स्वाधीनता, समानता व बंधु-भाव के आदर्श लोगों में फैले। उनको अँगरेजी शासन-प्रणाली तथा भारतीय शास्त्र-प्रणाली का मिलान करने का अवसर मिला। १८२८ में राजा राममोहनराय ने बंगाल में ब्रह्मसमाज की स्थापना की। उनका नया धर्म जाति-पाँति के बंधनों का तोड़नेवाला तथा राष्ट्रीयता का समर्थक था। १८७५ में स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज को जन्म दिया। इन दोनों ने समाज-सुधार पर भी ज़ोर दिया, और सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का आग्रह किया। जिन लोगों ने विश्वविद्यालयों में अँगरेज़ी साहित्य, इतिहास, साइन्स का पठन-पाठन किया, वे भारत में भी अँगरेज़ी शासन-प्रणाली को स्थापित करने के सुनहले स्वप्न देखने लगे। आरंभ में बहुतों को तो यह विश्वास था कि अँगरेज़ लोग भारत में भारत की भलाई के लिये परमात्मा की प्रेरणा से आये हैं। १८७० में यह क़ानून पास हुआ कि भारतवासियों को विना परीक्षा के सिविल सर्विस में नौकरियाँ मिलें। परन्तु इसका परिणाम संतोषजनक न हुआ। लार्ड डफ़रिन के समय नौकरियों की जाँच के लिये एक 'पब्लिक सर्विसेज कमीशन' नियुक्त हुआ। इस रिपोर्ट के अनुसार नौकरियाँ तीन श्रेणियों में विभाजित हो गईं:—

(१) सिविल सर्विस।

(२) स्टेट्यूटरी सिविल सर्विस।

(३) प्रान्तीय शासक-वर्ग।

स्टेट्यूटरी सिविल सर्विस के बारे में रामजे साहब ने लिखा था कि कुमाऊँ में उसके योग्य कोई व्यक्ति नहीं है।

भारतवासियों को बराबरी का पद फिर भी न मिला। विश्वविद्यालयों से बहुत-से शिक्षित लोग पास होकर निकल रहे थे, जो अँगरेज़ी-भाषा में योग्यतापूर्वक वाद-विवाद कर सकते थे। किन्तु राज्य में बड़े-बड़े पद तब

तक केवल अँगरेज़ों को ही दिये जाते थे। उनका व्यवहार शिक्षित भारत-वासियों के प्रति अच्छा न होता था। इन्हीं कारणों से शासकों तथा शासितों के बीच भेद-भाव बढ़ता गया। एक दूसरे को शंका की दृष्टि से देखने लगे। कर्नल ओलकोट तथा श्रीमती ऐनीबेसेन्ट द्वारा संस्थापित थियोसोफिकल सुसाइटी ने भी समानता व बंधुभाव के विचार फैलाये।

राष्ट्रीयता व स्वतन्त्रता के प्रसिद्ध लेखक जॉन स्टुअर्टमिल ने जातीयता व राष्ट्रीयता की मीमांसा करते हुए लिखा है कि वह कई बातों के सम्मिश्रण से बनती है। यथाः—

(१) ख़ून या नस्ल का एक होना।
(२) देश का एक होना।
(३) भाषा का एक होना।
(४) सरकार का एक होना।
(५) संस्कृति (Culture) का एक होना।

लगभग २०० वर्ष से ये बातें योरप में फैल रही थीं। इनकी चर्चा भारत में भी हुई। भारत में यद्यपि नाना जाति, वर्ण व सम्प्रदाय के लोग हैं, तो भी वे एक ही देश के वासी हैं। उनके सुख-दुःख एक हैं। जननी जन्मभूमि के नाते से सब एक सूत्र में बँधे हैं। इन्हीं भावनाओं को लेकर समस्त पराधीन भारतीय जनता का असन्तोष प्रकाश करने के लिये भारत की सर्वश्रेष्ठ व महामान्य राष्ट्रीय महासभा (इन्डियन नेशनल कांग्रेस) का जन्म हुआ। कांग्रेस के जन्मदाताओं में सबसे पहले उदार-चरित तथा स्वतंत्रता के पुजारी श्री० ए० ओ० ह्यूम का नाम लिया जाता है। उन्होंने सामाजिक सुधार के लिये पूना में कुछ भारत के प्रधान-प्रधान नेताओं को बुलाया था। कहते हैं कि तत्कालीन वाइसराय लार्ड डफ़रिन की गुप्त राय थी कि यह सभा समाज-सुधार के साथ शासन की आलोचना भी किया करे। पूना में हैज़ा हो जाने से कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन बम्बई के गोकुलदास-तेजपाल-संस्कृत-कॉलेज में २८ दिसंबर १८८५ को हुआ। वहाँ केवल उस समय २८ प्रतिनिधि थे, उनके नाम ये हैं—

सर्वश्री (१) दीवान बहादुर रघुनाथ राव (२) महादेव गोविन्द रानाडे, (३) बैजनाथ, आगरा, (४) अध्यापक के० सुन्दरम्, (५) रामकृष्ण भंडारकर, सरकारी नौकर होने से यह प्रतिनिधि न हो सके।

प्रतिनिधियों में ये सज्जन थेः—

सर्वश्री (६) ह्यूम, (७) उमेशचन्द्र बनर्जी, (८) नरेन्द्रनाथ सेन,

(६) वामन सदाशिव आपटे, (१०) गोपाल गणेश आगरकर, (११) गंगाप्रसाद वर्मा, (१२) दादाभाई नौरोज़ी, (१३) काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग, (१४) फ़ीरोजशाह मेहता, (१५) दीनशा वाचा, (१६) नारायण गणेश चंदावरकर, (१७) पी रंगैया नायड्, (१८) सुब्रह्मण्य अय्यर, (२०) एम्० वीर राघवाचार्य्य, (२१) केशव पिल्ले। इनके अलावा ७ नामी पत्रों के संपादक थे।

इन २८ महापुरुषों से आरंभ होकर आज कांग्रेस एक कल्पवृक्ष के समान हो गई है, जिसकी सुशीतल छाया में तमाम भारतवासी सानंद बैठकर जननी जन्मभूमि के उद्धार की बातें कर सकते हैं।

प्राचीन काल के उन अँगरेज़-हितैषी पुरुषों के नाम, जिन्होंने भारतीय स्वतंत्रता के साथ सहानुभूति दर्शाई थी, सदा आदर से लिये जावेंगे—सर्वश्री जान ब्राइट, हेनरी फ़ासेट, ह्यूम, सर विलियम वैडरबर्न, चार्ल्स ब्रैडला, डबल्यू० ग्रैडस्टन, लार्ड नॉर्थब्रुक, ड्यूक आफ़ अर्गिल, लॉर्ड स्टैनले, नार्टन, जनरल बूथ, मि० मांटेगू।

कांग्रेस के इतिहास में हमारे इन हिन्दुस्तानी राजनीतिक बुज़ुर्गों के नाम सदा आदर से लिये जावेंगे, क्योंकि इन्होंने अपनी हड्डियों व रक्त से कांग्रेस के वृक्ष को हरा-भरा किया। सर्वश्री—(१) दादा भाई नौरोज़ी, (२) आनन्द चार्लू (३) दीनशा वाचा, (४) गोपालकृष्ण गोखले, (५) सुब्रह्मण्य अय्यर, (६) बदरुद्दीन तय्यबजी, (७) काशीनाथ तैलंग, (८) उमेशचन्द्र बनर्जी (९) बालगंगाधर तिलक, (१०) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, (११) लाजपतराय (१२) फीरोजशाह मेहता, (१३) आनंदमोहन वसु (१४) मनमोहन घोष, (१५) लालमोहन घोष (१६) अयोध्यानाथ, (१७) राजा रामपालसिंह, (१८) कालीचरण बनर्जी, (१६) नवाब सय्यद मुहम्मदबहादुर (२०) दाजी अब्बाजी खरे, (२१) गंगाप्रसाद वर्मा, (२२) रघुनाथ नरसिंह मुधोलकर, (२३) शंकरन नय्यर, (२४) केशव पिल्ले, (२५) विपिन-चंद्र पाल, (२६) अम्बिकाचरण मजमदार, (२७) भूपेन्द्रनाथ वसु, (२८) विशननारायण दर, (२६) रमेशचन्द्रदत्त, (३०) सुब्बाराव पंतलू, (३१) मुरलीधर, (३२) सच्चिदानंदसिंह।

पुराने बुज़ुर्गों में पूज्य मालवीयजी तथा श्रीविजयराघवाचार्य अभी तक जीवित हैं।

प्राचीन लोगों का उद्देश्य उस समय राजभक्तिमय था। उनको अँगरेज़ी राज्य के प्रति श्रद्धा थी। वे शासन में कुछ सुधार चाहते थे, और चाहते थे

कि सरकार द्वारा उनकी सेवाएँ स्वीकृत हों। गांधी-युग में ये सब बातें पलट गई हैं। अब कांग्रेस देश में पूर्ण स्वतंत्रता की दावेदार है।

भारतीय स्वतंत्रता के पुजारियों में महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, रानी झाँसी के नाम सदा आदर, श्रद्धा व भक्ति से लिये जावेंगे, किन्तु वर्तमान राष्ट्रीयता के अवतार लोकमान्य तिलक थे। राजनीति के वे ही आचार्य थे। उनके बाद गांधी-युग में जिन नेताओं ने अपना सर्वस्व जातीयता के लिये न्यौछावर किया, उनके नाम कांग्रेस के इतिहास में सदा सुनहरे हरूफ़ों में लिखे रहेंगे—

(७) त्यागमूर्त्ति मोतीलाल नेहरू, (२) देशबंधु सी० आर० दास, (३) देशप्रिय सेन गुप्त, (४) गणेशशंकर विद्यार्थी, (६) अभयंकर, (६) श्रीमहम्मदअली

ये सज्जन अभी तक कांग्रेस की सेवा में संलग्न हैं—महात्मा गांधी, पूज्य मालवीयजी, सर्वश्री राजेंद्रप्रसाद, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, गोविन्द-वल्लभ पंत, सत्यमूर्ति, राजगोपालाचार्य, नारीमैन, भूलाभाई देसाई, वल्लभ भाई पटेल, आसफ़अली, अब्दुलगफ़्फ़ारखाँ।

महात्मा गांधी ने तो कांग्रेस की कायापलट कर दी है। उन्होंने उसको देशभक्ति की उच्चतम सीढ़ी पर पहुँचने का प्रयत्न किया है।

सन् १८८५ से आज तक बराबर कांग्रेस के अधिवेशन होते रहे हैं। १६३५ में इसकी स्वर्ण-जयंती तमाम भारत में धूमधाम के साथ मनाई गई। आरंभ के अधिवेशनों में शासन में क्या-क्या सुधार होने चाहिए, उन बातों पर राजभक्तिपूर्ण तथा नम्रता-पूर्वक प्रस्ताव पास किये जाते थे। सरकार ने भी यह नीति चली कि जो-जो बड़े आलोचक कांग्रेसवादी होते थे, उनमें से प्रायः सबों को उच्च पद दिये गये, तथा और भी अनेक प्रकार से उनको अपना समर्थक बनाने की नीति बरती। कई फँसे, कई न फँसे। न फँसनेवालों में लोकमान्य तिलक, श्रीविपिनचंद्रपाल तथा लाला लाजपतराय थे। ये लाल-बाल-पाल कहलाते थे। सबसे ज़बर्दस्त राष्ट्रीय नेता लोकमान्य तिलक थे। सबसे प्रथम राजद्रोह की धारा का प्रयोग उन्हीं पर हुआ। उनकी आरंभ से ही यह धारणा थी कि अँगरेज़ लोग भारतोद्धार नहीं, बल्कि स्वार्थ-साधन को आये हैं। भारतवासियों को अपने भाग्य का निबटारा स्वयं ही करना होगा। श्रीमोतीलाल नेहरू तथा श्री सी० आर० दास के टक्कर के राष्ट्रीय नेता भारत में विरले ही होंगे।

सन् १६०५ में बंगभंग-आंदोलन ने उग्र रूप धारण किया। बड़े-बड़े नरम

नेता भी गरमदली हो गये। सन् १९०६ में ऋषिवर दादाभाई नौरोज़ी ने भारत का राष्ट्रीय ध्येय 'स्वराज्य' बताया। आरंभ से ही भारतीय राजनीतिज्ञ दो दलों में विभाजित थे—(१) मृदु-नीतिज्ञ, (२) उग्र-नीतिज्ञ। कुछ मृदु-नीतिज्ञ नेताओं का अटल विश्वास रहा है कि अँगरेज़ लोगों को भारत में भारत की भलाई के लिये परमात्मा ने भेजा है। लोकमान्य तिलक का दल इन विचारों के विरुद्ध था। सन् १९०७ में सूरत में झगड़ा हो गया। इन दो दलों के बीच की खंदक और भी चौड़ी व गहरी हो गई। तब से यह दल नरम व गरम कहलाये। नरम दल के नेताओं को सरकार अपनाती रही है, और गरम दल के नेताओं को अर्द्ध-चंद्र दिखाती आई है।

बंग-भंग की आग खूब भड़की। तमाम भारत में इसके विरोध में सभाएँ हुईं। यहाँ तक कि सन् १९१२ में स्वयं राजराजेश्वर को भारत में पधारकर शांति स्थापित करनी पड़ी।

कूर्माचल में।

कूर्माचल में कांग्रेस की स्थापना सन् १९१२ में हुई जब कि कांग्रेस की बैठक प्रयाग में हुई थी। यहाँ के कई सज्जन प्रतिनिधि बनकर गये थे—पं० वाचस्पति पंत, पं० ज्वालादत्त जोशी, पं० हरिराम पांडे, मुंशी सदानंद सनवाल, शेख मानुल्ला, पं० माधव गुरुरानी तथा श्रीबदरीदत्त जोशी (रायबहादुर) ये ही सज्जन कुमाऊँ में कांग्रेस की सृष्टि करनेवाले कहे जा सकते हैं। ये सब मृदु-नीतिवाले राजनीतिज्ञ थे। किंतु तत्कालीन राजनैतिक प्रश्नों पर ये यदा-कदा विचार कर लिया करते थे। आज की तरह उन दिनों कांग्रेस का कोई सुसंगठित दफ़्तर ज़िलों में न था। केवल साल में एक बार कांग्रेस की चर्चा होती थी। लखनऊ में डा० हरीदत्त पंत, मुंशी गंगाप्रसादजी के सहयोग से कांग्रेसवादी हो गये थे। कुछ दिनों देशभक्त पं० श्रीकृष्ण जोशीजी भी कांग्रेसमैन रहे।

१९१६ में भी बहुत-से कूर्माचली कांग्रेसमैन बनकर लखनऊ गये थे। १९१३ में स्वामी सत्यदेवजी यहाँ पधारे। आपने यहाँ पर शुद्ध साहित्य-समिति-नामक संस्था खोली। नवयुवकों को राष्ट्रीय संदेश सुनाया।

जून १९१३ में श्रीबदरीदत्त पांडेजी ने 'अल्मोड़ा अखबार' का संपादन अपने हाथों में लिया। पत्रिका राष्ट्रीय ढंग से निकलने लगी। नंदादेवी में सभाएँ भी होने लगीं।

१९१४ में होमरूल की धूम थी। यहाँ पर भी सर्वश्री मोहन जोशी,

चिरंजीलाल, अय्यर हेमचन्द्र, बदरीदत्त पांडे प्रभृति सज्जनों ने होमरूल-लीग की स्थापना की।

पश्चात् सन् १६१६ में पं० गोविन्दबल्लभ पंत, पं० प्रेमबल्लभ पांडे, ला० इंद्रलाल साह, ठा० मोहनसिंह दड़म्वाल, पं० हरगोविन्द पंत, ला० चंद्रलाल साह, श्रीबदरीदत्त पांडे, पं० लक्ष्मीदत्त शास्त्री प्रभृति लोगों ने निजी परामर्श कर 'कुमाऊँ परिषद्'-नामक राजनीतिक संस्था खोली। इसके कई अधिवेशन हुए:—

सन् १६१७	अल्मोड़ा	सभापति	पं० जयदत्त जोशी (गल्ली)।
,, १६१८	हल्द्वानी	,,	पं० तारादत्त गैरोला रायबहादुर।
,, १६१६	कोटद्वार	,,	पं० बदरीदत्त जोशी रायबहादुर।
,, १६२०	काशीपुर	,,	पं० हरगोविन्द पंत।
,, १६२३	टनकपुर	,,	पं० बदरीदत्त पांडे।
,, १६२६	गनियाँद्योली	,,	बा० मुकुंदीलाल।

परिषद् की शाखाएँ तमाम में थी। इसने कुली-उतार, जंगलात, लाइसेंस, नयाबाद, बंदोबस्त आदि-आदि विषयों में काफ़ी आन्दोलन किया।

१६२३ के बाद परिषद् कांग्रेस में ही विलीन हो गई। माडरेट लोग काशीपुर की बैठक में कुली-उतार न देने तथा असहयोग के प्रस्ताव पास होने पर परिषद को छोड़ कर चले गये थे।

कुमाऊँ में कांग्रेस को महात्मा गांधी की सत्याग्रह-प्रणाली में लाने का प्रारंभिक श्रेय इन सज्जनों को है:—ठा० रामशरणसिंह, पं० रामदत्त जोशी, पं० गोविन्दबल्लभ पंत, देशभक्त मोहन जोशी, पं० हरगोविन्द पंत, पं० हर्षदेव ओली, ला० चिरंजीलाल, डा० हेमचन्द्र जोशी, ठा० गुसाईंसिंह, श्रीबदरीदत्त पांडे, स्वामी सत्यदेव, श्रीमधुसूदन गुरुरानी। उन हज़ारों देश-भक्तों का नाम कौन गिना सकता है, जिन्होंने बलिदान कर आत्मसमर्पण किया।

१६१४-१८ के बीच योरप में भारी युद्ध हुआ। भारत के नेताओं ने (यहाँ तक कि महात्मा गांधी व लोकमान्य तिलक तक ने) काफ़ी सहायता सरकार को दी। किन्तु जब उपहार मिलने का समय आया, तो रौलट-ऐक्ट नाम का एक काला क़ानून बनाया गया। मतलब यह था कि जो कोई भी स्वराज्य के लिये आन्दोलन करे, वह पकड़ लिया जावे। "न अपील, न दलील, न वकील" इस क़ानून की विशेषता थी। सन् १६१६ में महात्मा गांधी ने इसके विरोध में सत्याग्रह-आंदोलन आरंभ किया। सर्वत्र विश्वव्यापी हड़तालें हुईं। पंजाब में जलियानवाला बाग़ में हजारों लोग

मारे गये। भयंकर परिस्थिति हो गई। कांग्रेस की नीति में बड़ा भारी परिवर्तन हुआ। आज तक कांग्रेस का ध्येय राजभक्ति-पूर्ण सहयोग तथा वैध उपायों द्वारा अँगरेज़ी साम्राज्य के भीतर स्वराज्य प्राप्त करना था। अब असहयोग की नीति काम में लाई गई। सरकार के दाबू व अन्यायी क़ानूनों को तोड़कर जेल जाना ही श्रेयस्कर समझा गया। हज़ारों मनुष्य सन् १९२१-२२ में खुशी-खुशी से जेलों में गये। स्कूल, न्यायालय, कौंसिल, टाइटिल तथा विदेशी कपड़ों का बहिष्कार की बाबत सर्वत्र सभायें हुईं। आत्मत्याग, आत्मतपस्या तथा आत्मबलिदान द्वारा देशोद्धार करना तथा स्वतंत्रता प्राप्त करने का राष्ट्र ने निश्चय किया। महात्माजी ने सत्य व अहिंसा द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने का मार्ग दिखाया।

सन् १९२१ में कुमाऊँ में भी असहयोग की लहर फैली। काशीपुर में कुली-उतार के विरुद्ध सत्याग्रह करने का प्रस्ताव पास हो गया। बागेश्वर में पतितपावनी सरयू के तट पर ४०००० कूर्मांचली वीरों ने गंगाजल उठाकर कुली-उतार न देने की भीष्म - प्रतिज्ञा की। तमाम कूर्मांचल जाग उठा। ठौर-ठौर में सभाएँ हुईं। बहुत-से देशभक्त जेलों में ठूँसे गये, यद्यपि आन्दोलन सर्वत्र शान्तिमय था। उनके नाम इस प्रकार हैं:—सर्व-श्री ठा० मोहनसिंह मेहता कत्यूर, पं० हरिकृष्ण पांडे ओकाली, वैष्णव-बंधु पं० बदरीदत्त व पं० मोतीरामवैष्णव, पं० मोतीराम त्रिपाठी कत्यूर, पं० केदारदत्त पंत शास्त्री, ला० नाथूलाल साह, पं० शिवदत्त जोशी (पाली, पछाऊँ), पं० प्रयागदत्त पंत (पिठौरागढ़), श्रीबदरीदत्त पांडे, पं० गंगाराम, प्रेमलाल वर्मा, रामलाल वर्मा, नरसिंह, शिवदत्त जोशी, गंगाराम वर्मा, खीमानंद, पद्मादत्त त्रिपाठी, किशोरीलाल, देवीलाल वर्मा, श्यामलाल साह, तेजसिंह, हीरासिंह, बंसीधर जोशी, गोपालदत्त भट्ट, मोहन जोशी डॉ० चंद्रदत्त पांडे (बलिया से पकड़े गये।) धर्मानंद, शीशराम, भगीरथ खुल्बे।

काशीपुर से पं० रामदत्तजी, ला० रामशरणसिंह मेहरोत्रा, गुड़िया प्रभृति बहुत-से लोग जेलों में गये।

कुली-उतार के बाद सूखा पड़ा। जंगलों में गरमी के कारण प्रचंड आग लगी। उसका दोष कुमाऊँ-परिषद् के नाम डाला गया। बहुत-से कूर्मांचली जेलों में भेजे गये।

पश्चात् महात्मा गांधी ने चौरा-चौरी की दुर्घटना के कारण सत्याग्रह-संग्राम स्थगित कर दिया। देशबंधुदास तथा त्यागमूर्ति मोतीलालजी ने

कौंसिलों में जाने का विधान किया। स्वराज्य-पार्टी बनी। ६ वर्ष तक कौंसिलों में अड़ंगा-नीति से काम लिया गया। पर सन् १६३० में लाहौर-कांग्रेस में भारत का ध्येय पूर्ण स्वराज्य (Complete Independence) रक्खा गया। उधर लंदन में सरकार ने गोलमेज़-सभा बुलाई।

नमक-क़ानून तथा अन्य क़ानून तोड़े गये, हज़ारों लोग जेलों में गये। कुमाऊँ से भी सैकड़ों कृष्णभवन के यात्री बने! कई सौ पधान व थोकदारों ने इस्तीफ़े दिये। इधर कालीकुमाऊँ उधर पाली पछाऊँ की सल्ट पट्टियों में लगानबंदी की आवाज़ उठी। सरकार ने पुलिस भेजकर दूनी मालगुज़ारी वसूल की। सन् १६३१ में महात्मा गांधी तथा लार्ड इरविन के बीच संधि हो गई। राजनीतिक क़ैदी छूटे। महात्माजी दूसरी गोलमेज़-सभा में गये। पर आते ही बंबई में गिरफ़तार किये गये। कुमाऊँ में भी गिरफ़्तारियाँ हुईं। १६३२ में सत्याग्रह-आन्दोलन ग़ैरक़ानूनी क़रार दिया गया। कांग्रेस को ऑर्डिनेंसों द्वारा कुचलने की नीति ठहराई गई। सर्वत्र भारी दमन का प्रयोग किया गया।

महात्माजी ने हरिजनों के लिये उपवास किया। वह सन् १६३३ में छोड़े गये। पश्चात् कांग्रेसी नेताओं की एक सभा पूना में हुई। उसमें यह तय हुआ कि वायसराय को लिखा जावे कि महात्मा गांधी से बातें करें। पर वायसराय ने कहा कि जब तक गांधीजी सत्याग्रह व भद्र अवज्ञा की नीति को न छोड़ेंगे, तब तक उनके साथ कोई बातें न हो सकेंगी। महात्माजी ने सामूहिक सत्याग्रह स्थगित कर दिया। अपने प्यारे आश्रम को छोड़ दिया, व्यक्तिगत सत्याग्रह का आदेश दिया। वह पहली अगस्त १६३३ को फिर जेल भेजे गये। किन्तु हरिजनों के लिये भूख हड़ताल करने पर छोड़ दिये गये। महात्माजी बाइज़्ज़त संधि चाहते हैं। नौकरशाही कहती है कि कांग्रेस इज़्ज़त तथा अवैध आंदोलन को ताख में रख सिर झुकाकर मिलने आवे, तब वह बातें करेगी। भारतवासी भारत में भी वैसा ही स्वराज्य चाहते हैं, जैसा इंगलैंड में है, अर्थात् जनता के छाँटे हुए प्रतिनिधि अपना मंत्रि-मंडल बनाकर भारत में भारत की इच्छा के मुताबिक़ राज्य करें। भारतवासी राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता चाहते हैं, ताकि वे अपने भाग्य का निबटारा आप कर सकें।

नौकरशाही ने हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिख, हरिजन (अछूत), ऐंग्लो-इंडियन, तथा यूरोपियन इन दलों में भारत को विभाजित कर दिया है। ऐसे नेता इंगलैंड में भेजे, जिनमें कभी मतैक्य हो नहीं सकता था। जितने भी प्रतिनिधि गोलमेज़-सभाओं तथा संयुक्त पार्लियामेंटरी कमेटी में गये हैं, प्रायः सब गोलमेज़िये (कुछ मुसलमान सदस्यों को छोड़कर, जो

ऐसे हैं कि जिनका कभी सरकारी कर्मचारियों से मत-भेद नहीं हो सकता) असंतुष्ट होकर आये हैं। वैध आंदोलन के आचार्य सर तेजबहादुर सपरू अपने प्रिय सखा श्रीजयकर को छोड़कर राजनीतिक क्षेत्र से अलग हो गये हैं। क्योंकि टोरीदल इस समय विलायत में प्रधान है। भारत-मंत्री सर सैम्युएल होर एक ऐसे सिद्ध-हस्त राजनीतिज्ञ आये हैं कि उन्होंने लार्ड विलिंगडन को साथ लेकर तमाम राष्ट्रीय आन्दोलन को एक प्रकार से दबा डाला है। उन्होंने एक ऐसा शासन-चक्र तैयार किया है, जिसमें भारत-वासियों को स्वराज्य देते हुए कहकर भी कुछ भी नहीं दिया है। सर सैम्युएल होर और लार्ड विलिंगडन ने इस समय प्रजा - पक्ष को दबाकर ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति और बाहरी शान को संसार के सामने बढ़ाने की काफ़ी चेष्टा की है। वैध आन्दोलन से वे कुछ देना नहीं चाहते। अन्य आन्दोलनों को वे अवैध कहकर कुचल डालना चाहते हैं।

सन् १९२०-२१ के आन्दोलन में मुसलमान साथ थे, पर बाद को हिन्दुओं ने शुद्धि संघटन तथा मुसलमानों ने तंजीम तबलीग़ का झंडा उठाया। दोनों में लड़ाई हो गई। जो देश के लिए बहुत अहितकर सिद्ध हुई है।

१८९२, १९०९ तथा १९१९ के शासन-सुधारों से नौकरशाही की स्वेच्छाचारिता में कुछ थोड़ा बहुत फ़र्क़ हुआ है, किन्तु अभी तक भारत में दायित्वपूर्ण शासन स्थापित नहीं हुआ है। कुमाऊँ तो अभी तक ग़ैर-आइनी ज़िला है। इस शताब्दी में एक नये युग का जन्म हुआ है। राष्ट्रीयता की लहर सारे देश में फैल रही है। किन्तु संगठन तथा सामाजिक सुधार दोनों की भारत में ख़ासकर कुमाऊँ में बड़ी आवश्यकता है। भारत का लक्ष्य स्वराज्य है। माडरेट दल औपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion Status) चाहते हैं। कांग्रेसवादी चाहते हैं कि भारत के भीतर भारतवासी सब प्रकार से स्वतन्त्र व खुदमुख्तार हों नौकरशाही चाहती है कि उसका बोल-बाला रहे। जी-हज़ूर चाहते हैं कि अँगरेज़ों का राज्य क़ायम रहे, और सदा उनको टाइटिलें, जागीरें व नौकरियाँ मिलती रहें। ऐसे समय भारत की नैया पार लगानेवाले भगवान् ही हैं। वे ही इस गिरे हुए देश को शक्ति दें कि वह स्वराज्य प्राप्त कर सके।

इस समय तो सर सैम्युएल होर ने जो स्वराज्य का मसौदा बनाया, वह भारत को पीछे ले जानेवाला है।

१. वायसराय व भारतमंत्री ही सर्वेसर्वा होंगे।

२. सेना में प्रजा के छाँटे प्रतिनिधियों को केवल आलोचना का अधिकार

है। सेना के भारतीय करण की कोई अवधि नहीं रक्खी गई है । जल व वायुसेना में तो भारतवासियों के अधिकार नगण्य हैं।

३. खज़ाने व टकसाल पर गवर्नर-जनरल का अधिकार रहेगा। एक रिज़र्व बैंक बना है, जिसका शासन नौकरशाही के हाथ रक्खा गया है । राजनीतिज्ञों का अंदाज़ा है कि नये भारत-विधान में २० फ़ीसदी खर्च प्रजाप्रतिनिधियों के हाथ तथा ८० फ़ीसदी नौकरशाही के हाथ रहेगा।

४. रेलों का प्रबंध भी एक रेलवेबोर्ड के अधीन रक्खा गया है, जिसमें प्रजापत्त के अधिकार सामान्य हैं।

५. फिडरल सरकार तब क़ायम होगी, जब ५० फ़ीसदी रजवाड़े वहाँ आने को राज़ी हों।

६. गवर्नर-जनरल को पूर्ण अधिकार है कि वे जब चाहें, ऑर्डिनेंस बना सकेंगे। फिडरल सरकार के बनाये क़ानून भी यदि चाहें तो रद्द कर दें। वे चाहें तो शासन-विधान को ही तोड़ सकते हैं । उनके अधिकार अनियमित हैं।

७. विदेशी राजनीति पर तथा देशी रजवाड़ों पर भी वायसराय का ही अधिकार होगा।

८. नौकरशाही के बड़े-बड़े अफ़सरों को भारतमंत्री ही नियुक्त करेंगे, वे ही हटा भी सकेंगे।

९. व्यापार व व्यवसाय पर भी नियंत्रण है।

१०. सम्प्रदायवाद के अनुसार चुनाव होगा तथा नौकरियाँ भी उसी के अनुसार बाँटी जावेंगी।

फिडरल-सरकार का ढाँचा ऐसा बना है कि उसमें किसी भी ख़ास दल का बहुमत होना कठिन है, राष्ट्रीय दल के बहुमत को रोकने के लिये तो सम्प्रदायवाद का जाल बिछाया गया है।

भारतीय स्वतंत्रता का संग्राम अनेक विघ्न-बाधाओं के सामने भी जारी है। बेड़ा पार लगानेवाले प्रभु हैं।

वन्दे मातरम्।

प्रान्तीय शासन

प्रान्तीय शासन लोक-निर्वाचित मंत्रियों के हाथ में रहेगा, किन्तु यहाँ भी गवर्नर के अधिकार प्रायः गवर्नर-जनरल के-से रक्खे गये हैं। वे मंत्रियों की सम्मति मानें या न मानें । वे अपने अलग सलाहकार भी रक्खेंगे।

हिन्दू-मुसलमानों का समझौता नहीं हो सका है। अतः चुनाव-मंडल दोनों के अलग होंगे।

भारत क्या योरप के राजनीतिज्ञों का कथन है कि सन् १९३५ की भारत-शासन-सुधार स्कीम एक नई बला है। इसका चलना कठिन है। देखें, आगे क्या होता है।

इतिहास कूर्मांचल

सातवाँ भाग

७. जातियाँ, मनुष्य, धर्म

रस्म-रिवाज, मंदिर, त्योहार, इत्यादि ।

१. कूर्मांचल के निवासी

कौन कह सकता है कि पृथ्वी कब बनी ? पहला मनुष्य कब बना ? उसको किसने बनाया, और उसके माता-पिता कौन थे ? पृथ्वी के मूल निवासी कौन थे ? उनके बाद कौन आये ? वे कहाँ से आये ? ये बातें भूतकाल के गर्भ में छिपी हैं। परमात्मा ने या उस विराट् अदृश्य शक्ति ने ये बातें नहीं बताई हैं। अथवा यह कहिये कि इन रहस्यों को मनुष्य ठीक-ठीक समझ नहीं सका है। विकासवाद के ज्ञाता कहते हैं कि जल से वनस्पति, उससे पशु, उससे मनुष्य हुए। पर जल, वनस्पति तथा पशुओं को बनानेवाला कौन है ? ब्रह्मविद्या तथा वेदान्तशास्त्र ने भी अनेक तर्क किये हैं, पर मूल बात का फ़ैसला नहीं हो सका है कि पृथ्वी कब बनी ? किसने बनाई ? क्यों बनाई ? संसार को चालित करनेवाली महाशक्ति की उत्पत्ति कैसे हुई ?

कोई कहता है कि ९ करोड़ वर्ष हुए जब यह पृथ्वी बनी थी। कोई उससे ज्यादा कोई कम काल पृथ्वी की उत्पत्ति की बाबत बताते हैं। अनेक ऋषि-मुनि व विद्वानों के अनेक मत हैं। आखिर को कल्पनाशक्ति रुक गई। तब एक सर्वशक्तिमान पुरुष इस संसार या ब्रह्मांड का संचालक माना गया, और यह कहा गया कि उसी को सब बातें ज्ञात हैं। आध्यात्मिक जगत् में ईश्वरीय कल्पना ही सबसे विराट् है। गीता में ज्ञान, बुद्धि तथा मन इन सबों से भी ईश्वर को बड़ा बताया गया है, पर तत्त्वज्ञानी तथा वैज्ञानिक पुरुषों ने ईश्वर को न मानकर पृथ्वी, आकाश, पशु-पक्षियों व मनुष्य को तथा प्राणि-मात्र व जड़जगत् को तत्त्वों के सम्मेलन से बना हुआ माना है। फिर भी यह शंका उत्पन्न होती है कि तत्त्व किसने बनाये ? कब बनाये ? क्यों बनाये ? इन विषयों का कोई उत्तर अभी तक नहीं मिला है, न निकट-भविष्य में मिलने की आशा है।

वेद हमारे पुराने ग्रंथ हैं। बहुमान्य हैं। उनमें ऋषि-मुनि कहे जानेवाले प्राचीन विद्वान् पुरुषों के विचार संग्रहीत हैं। उनमें जो देव व दानव या देवासुर संग्राम है, वह आर्य व अनार्य का संग्राम माना गया है। देवताओं को आर्य या श्रेष्ठ पुरुष कहा गया है। ये लोग पढ़े-लिखे, ईश्वरभक्त, दानी, परोपकारी, सज्जन तथा गौरवर्ण के कहे गये हैं। दूसरा शब्द जो दैत्य, दानव व दस्यु संज्ञा-वाचक है, उसके मानी असभ्य, जंगली, धर्म व आचारहीन

पुरुषों के हैं। जिन लोगों ने आर्य-धर्म को न माना, वे इस नाम से पुकारे गये होंगे। जब आपस में प्रतिद्वन्दिता होती है, तो एक दूसरे को अपशब्द कहते हैं।

अस्तु ! यहाँ के मूल-निवासी दस्यु माने जाते रहे हैं, जिनको प्राचीन जात्याभिमानी लेखकों ने डोम, चांडाल, अंत्यज, अस्पृश्य, शूद्र, श्वपच आदि नामों से संबोधित किया है, किंतु इस समय महात्मा गांधी की कृपा से वे सब हमारे ग़रीब भाई हरिजन कहे जाते हैं। इनसे पहले कौन यहाँ थे, यह बात नहीं कही जा सकती। ये यहीं के रहनेवाले थे या अन्यत्र से आये, ये बातें भी ज्ञात नहीं। सारे भारत के मूल-निवासी डोम यानी शूद्र-वर्ण के लोग माने जाते हैं। कुमाऊँ के भी सबसे पहले बाशिंदे यही थे। इनमें भी यह न था कि सब लोग अपठित व अज्ञानी थे। कई लोग पठित व तत्त्वज्ञानी भी हुए हैं, और संतों के समान पूजे गये हैं।

दस्युओं के पश्चात् राजी या राज्य-किरात जाति के लोग आये हैं। पश्चात् खस जाति, फिर बीच-बीच में नाग, शक, हूण, यवन आदि जातियों ने धावा मारा है। पश्चात् ये सब जातियाँ आर्यों द्वारा हराई गईं, और यहाँ पर सब मिल-जुलकर रहने लगीं।

किंतु कुमाऊँ में अठकिंसन साहब कहते हैं—"दो जातियाँ इस समय प्रधान हैं:—डोम व खस। वैदिक आर्यों की संख्या कम है। अन्य छोटी-छोटी उपजातियाँ जो यहाँ आती गईं, वे इन्हीं दो महाजातियों के प्रकांड वक्षस्थल में विलीन हो गईं।"

वायुपुराण में पर्वत पर बसनेवाली इन जातियों के नाम आये हैं: - गंधर्व, किन्नर, यक्ष, नाग, विद्याधर, सिद्ध, दानव, दैत्य।

अठकिंसन के मतानुसार—"गंधर्व गांधार देश के रहनेवाले हैं। किन्नर कुमाऊँ के पश्चिम जौनसार, बावर तथा नाहन में रहनेवाले कुनैतों को कहा गया है। पौराणिक यक्ष व अर्वाचीन खस एक ही जाति के हैं। (यद्यपि पुराणों में खस शब्द कई बार आया है।) सिंध व हिंदूकुश के लोग विद्याधर माने गये हैं। नाग जाति तमाम भारत में फैली है। कुमाऊँमें नागपुर (नाकुरी) में रहती है। दानव यहाँ दानपुर में रहते हैं। दैत्य पुराने दस्यु हुए।"

बाराही संहिता में उत्तरी भारत के देशों के यह नाम बताये हैं:—कैलाश, हिमवन, वसुमानगिरि, धनुषमान, क्रौंच मेरु, उत्तर कुरु, केकय (झेलम के पास), भोगप्रस्थ (हरिद्वार), त्रिगर्त (कोट कांगड़ा), काश्मीर, दरद, बनराष्ट्र (शायद कालसी व जमुना के पास), ब्रह्मपुर (कत्यूरी राज्य), दारुवन,

अमरबन, राज्य-किरात, खस (कूर्माचल में), एक कर्ण (नैपाल), स्वर्ण-भूमि (तिब्बत), चीण......इत्यादि।"

साथ ही उत्तरीय पर्वतों में बसनेवाली ये जातियाँ कही गई हैं, (१) दरद, (२) काश्मीर, (३) कम्बोज, (४) गांधार, (५) चीण, (६) शक, (७) यवन, (८) हूण, (९) नाग, (१०) खस, (११) किरात।

इनमें से प्रथम पाँच यहाँ पर नहीं हैं। अन्तिम ६ जातियाँ कूर्माचल में होनी मानी गई हैं। श्रीकनिंघम, अठकिन्सन, पादरी ओकली आदि लेखकों ने कूर्माचल में डोम, किरात, थाड़ू, बोक्से, नाग, खस, शक, हूण, यवन, आर्य इन प्रधान जातियों का आना माना है। अतः उनका थोड़ा-बहुत इतिहास हमने लिखने की चेष्टा की है। हमने यत्र-तत्र से लेखकों की सम्मतियाँ संकलित की हैं। अपनी तरफ़ से बहुत कम बातें लिखी हैं। केवल अपने अनुभव व अन्वेषण का अंश संक्षेप में जोड़ दिया है।

अठकिंसन साहब तथा उनके पूर्व व बाद के लेखक कहते हैं कि कुमाऊँ के मुख्य बाशिन्दे खस जाति के हैं। यद्यपि उनके रस्म-रिवाज देश से आये हिन्दुओं से कुछ भिन्न हैं, तथापि वे हिन्दू हैं और उनमें भी धार्मिक कट्टरता भरी है। खस-जाति आर्यजाति की एक शाखा है, जिसका पूर्ण विवेचन आगे आवेगा। उत्तर में कुछ लोग ख़ास तिब्बत के हैं। ये हुणिये कहलाते हैं। खंपा व लामा भी इनको कहते हैं। इनके रस्म-रिवाज भिन्न हैं, उसके बाद भोटिये हैं। अँगरेज़ लेखक तो इनको तिब्बती लोगों के वंशज मानते हैं, क्योंकि कुछ-कुछ ये उन्हीं-से दिखाई देते हैं। तथापि उनके निकट रहने से कुछ रस्म-रिवाज इनके तिब्बतियों के-से हैं, पर इनमें कई लोग इधर के भी मिल गये हैं। ये मुग़ल या शक-जाति के बताये जाते हैं, पर हुणिये इनको खस-जाति का होना कहते हैं, परन्तु ये लोग अपने को हुणियों से श्रेष्ठ समझते हैं। और ये भी अपने से नीचे प्रान्तवालों को खस-जाति का होना कहते हैं। इन जातियों के अतिरिक्त यहाँ पर राज्य-किरात या राजी-जाति के कुछ लोग हैं, जो यहाँ के प्राचीन निवासी हैं। ये अस्कोट, जागीश्वर के निकट तथा दार्मा व्यास में रहते आये हैं। थाड़ू व बोक्से तराई - भावर में रहते हैं। कहने को यह अपने को चित्तौर-गढ़ के राना तथा धारानगरी के पँवार राजपूत बताते हैं, पर ये मुग़ल-जाति के माने जाते हैं। नाग-जाति यद्यपि कभी भिन्न रही हो, पर अब खस-जाति में विलीन हो गई है।

शूद्रों को छोड़कर अन्य सब जातियाँ प्रायः भारतवर्ष में जातियों के केन्द्रस्थल मध्य एशिया से आईं। वहीं से वे सर्वत्र में फैलीं।

यहाँ के सबसे प्रथम निवासी दस्यु या शूद्र माने गये हैं। उनके बाद शायद राजी या राज्य किरात आये। पश्चात् वीर व शक्तिशाली खस-जाति ने इन सबको मार भगाया, और उनको अपनी प्रजा बनाया। वैदिक आर्यों ने आकर दोनों खस व शूद्रों को जीता, और इनको अपने से कुछ कम समझा। जैसा कि जीतनेवाले तथा जीतेजानेवाले लोगों के बीच के संबंध में कुछ राजनीतिक ऊँच-नीच का भेद-भाव होता ही है। आर्य या हिन्दुओं ने अन्य जातियों को अनार्य, यवन, म्लेच्छ, वृषल शब्दों से पुकारा, तो मुसलमानों ने उनको काफिर, ग़ुलाम आदि नीच संज्ञाओं से संबोधित किया। इसके बाद सर्वश्रेष्ठ शासक व महाशक्तिशाली अँगरेज़ों ने सब जातियों को जीतकर उनको हेय संज्ञावाचक (Native) नेटिव शब्द से विभूषित किया। विजयी जाति सदा अपना प्रभुत्व कमजोरों पर जमाती हुई आई है। विजय के सामने बड़े-बड़ों को झुकना पड़ता है, और अपनी राज्यश्री, अपनी संस्कृति तथा अपनी सभ्यता तथा इनसे भी सर्वश्रेष्ठ सांसारिक सम्पत्ति 'स्वतंत्रता हरण' का तिरस्कार किसी-न-किसी अंश में सहन करना पड़ता है। पराधीनता बड़ी बुरी वस्तु है। यह मनुष्य को नीचे गिरा देती है, और उसे वहुत कुछ जाति-अपमान सहन करने को विवश करती है।

साम्राज्य-शासकों, राजनीतिज्ञों तथा स्वार्थसाधकों की बात जाने दीजिए, भारतवर्ष में बड़े-बड़े ब्रह्मवादी तथा वेदान्तधर्मानुगामी हो गये हैं, और समानता व बंधुभाव के प्रचारक भी बहुत हुए हैं, पर शास्त्र का धर्म दूसरा व बर्ताव का धर्म दूसरा ही संसार में देखा गया है।

प्राचीन लेखक तथा इतिहासकारों ने पूर्व-काल में भिन्न-भिन्न जातियों को जिन-जिन कोटियों में विभाजित किया है, उनका दिग्दर्शन यहाँ पर किया गया है। अर्वाचीन काल में सिद्धांत बदल गये हैं। अब ऊँच-नीच, खान-पान तथा परस्पर व्यवहार की बाबत विचारों में परिवर्तन हो गया है। अब लोग कहते हैं कि मनुष्य-मात्र सब एक ही हैं। कोई जाति न बड़ी, न छोटी। हिंदुओं में जो चार वर्ग (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) माने गये हैं, उनमें कोई ऐसा कठिन भेद-भाव प्राचीन-काल में न था, जो अब माना गया है। ये सब वर्ग सब एक ही मूलशाखा की विशाखा व प्रशाखा हैं। हिंदू-मात्र सब एक ही सूत्र में बँधे हैं। उनमें न कोई छोटा, न बड़ा। जो जितना पराक्रम व पौरुषार्थ दरसावेगा, उसी के अनुसार उसको समाज में सम्मान का पद प्राप्त होगा, जो समाज का तिरस्कार करेगा, वह स्वयं तिरस्कृत होगा। अतः इस पुस्तक में दस्यु, डोम तथा खस शब्दों का जहाँ कहीं भी प्रयोग

किया गया है, वह केवल ऐतिहासिक विवेचन के रूप में है। वे शब्द किसी भी प्रकार अनादर-सूचक न समझे जाव, क्योंकि अब जाति धार्मिक व सामाजिक सिद्धांतों के अनुसार नहीं, वरन् राष्ट्रीय साम्पत्तिक सिद्धांतों तथा परस्पर प्रेम, ऐक्य व जातीय सद्भावनाओं से ही प्रकट होती है। एक भेष, एक भाषा, एक भाव तथा एक देश यही जातीयता के चिह्न हैं। अब कोई भी मनुष्य-मात्र अमुक जाति का होने से ऊँच-नीच न गिना जावेगा। गुण, कर्म तथा स्वभाव से ही वह ऊँच या नीच गिना जावेगा।

जब राष्ट्रीयता के नाते पारसी, मुसलमान, यहूदी तथा अँगरेज़ भी अपने भाई हैं, तब हिंदू-मात्र को अपने सम्प्रदाय के सब अंगों को एक ही सूत्र में बँधा हुआ न मानना, विडंबना होगी। कूर्मांचल में जो भी जातियाँ आकर बसी हैं, वे सब भ्रातृ-भाव के बंधन से बँधी हैं। हरिजन, खस, किरात, राज्य-किरात, शक, हूण, आर्य सब जातियों की जन्मभूमि अब एक है। उनके अधिकार एक हैं। उनमें कोई भेद-भाव नहीं है। वे सब एक ही जननी-जन्म-भूमि की संतान हैं। भगवान् करें, ऐसी धारणा सबके हृदय में हो।

---

२. मानव जाति पर जलवायु का प्रभाव

जातियों के आचार-विचार, रहन-सहन तथा गुण, कर्म, स्वभाव के संबंध में अन्वेषण करनेवाले अठकिंसन, कनिंघम आदि विद्वानों का मत है कि हिमालय प्रांत में जातियों के संबंध में तीन मुख्य भेद जाने व माने गये हैं। कहीं-कहीं जहाँ आने-जाने की सुविधाएँ रहीं, वहाँ तो जातियों में कुछ-कुछ संपर्क हो गया, किंतु जहाँ आने-जाने की सुविधाएँ कम रहीं, वहाँ जाति-भेद बहुत कम हुआ।

(१) हिमालय के उस पार का प्रांत बिलकुल तिब्बती है। वहाँ के रस्म-रिवाज, बोली वग़ैरह तिब्बती हैं। वहाँ चीज़ें बहुत कम पैदा होती हैं। कठिन भूमि है। वहाँ जो बातें सैकड़ों वर्ष पूर्व जैसी थीं, आज भी प्रायः वैसी हैं।

(२) उससे नीचे भोट प्रांत की आबहवा व पैदावार नीचे के देश से भिन्न है। यहाँ भी प्रचंड बर्फ़ पड़ती है। जाड़ा तिब्बत से ज़्यादा नहीं, तो कम भी नहीं होता। यहाँ भी वनस्पति साधारण है, और देश की चीज़ें भी उत्पन्न नहीं होतीं।

(३) हिमालय के इस पार भोट के नीचे का प्रान्त साधारण तौर पर

भारत से मिलता-जुलता है । ज़्यादा बसासत ६०००′ के नीचे के पर्वतों में है। यहाँ की आबहवा जाड़ों में ठंडी, गरमी में गरम तथा वर्षाकाल में खूब वर्षा देनेवाली है, और खेती में प्रायः वे ही चीज़ें उत्पन्न होती हैं, जो उत्तरी-भारत में उत्पन्न होती हैं।

आबहवा के अनुसार मनुष्यों के गुण, कर्म, स्वभाव पाये जाते हैं। जहाँ-जहाँ शीत ज़्यादा है, वहाँ तिब्बती रस्म-रिवाज हैं । जहाँ शीत कम है, वहाँ भारतीय ढंग है। ऊपरी मुल्कों में शुद्धि, नहाने-धोने तथा खान-पान में वह ज़ोर नहीं दिया जाता, जो नीचे की ओर है। ऊपरी जातियों में आपसी संमिश्रण कम होता है। नीचे ज़्यादा होता है। रस्म-रिवाज व विचार भी बदलते रहते हैं, पर ऊपर ऐसा कम होता है।

---

३. प्रधान जातियों का संक्षिप्त विवरण

(शूद्र या हरिजन)

शूद्र लोग डोम, दानव, दैत्य, अस्पृश्य, अछूत, चांडाल, शूद्र न जाने किस-किस नाम से पुकारे जाते रहे हैं। अब यह हरिजन कहाते हैं। इनको पहले खस जाति ने, फिर आर्यों ने हराया। जिन लोगों ने आर्य-धर्म को किसी प्रकार मान लिया, वे शूद्रवर्ण में गिने गये। जिन्होंने न माना, वे बुरे-बुरे विशेषणों से याद किये गये। ये लोग सदियों से एक प्रकार के खस राजपूतों, ब्राह्मणों व राजपूतों के दास रहे। गोरखा-शासन-काल में यदि कोई अन्त्यज किसी द्विज का हुक्का छूता था या गो-वध कर देता था या कोई जाति के बंधन तोड़ डालता था, तो उसको प्राणदंड होता था। डोमों में भी अनेक प्रकार की उपजातियाँ हैं, और इनमें भी जाति-भेद माना जाता है। ऊँच-नीच का भेद-भाव माना जाता है। इतिहास में ये लोग ज़्यादातर काले व बदसूरत होने कहे गये हैं। दाढ़ी व मूँछें भी इनके कम होती हैं। किन्तु पर्वत में कई अछूत कही जानेवाली जातियाँ स्वच्छ व ख़ूबसूरत हैं। शूद्र लोग गो-मांस भी खा लेते थे। मारते नहीं थे, मरे हुए डंगरों को खा लेते थे। मांस-मदिरा का परहेज़ भी कम था। ये आर्यों के चलन में कम चलते थे, पर अब सुधार हो रहा है। कुमाऊँ के अछूत सन् १९१३ में लाला लाजपतराय के शुभागमन से सचेत हुए।

सुनकिया ग्राम में शुद्धि हुई। शिल्पकार कहे गये। बहुतों ने जनेऊ भी पहनी। द्विजों का-सा रहन-सहन बनाया। बहुतों ने घृणित प्रथाओं को छोड़

सभ्यता व शिक्षा का मार्ग ग्रहण किया। इस समय महात्मा गांधी की कृपा से इनका प्रश्न बहुत आगे है। ५-६ करोड़ संख्याधारी अछूत जाति के लिये उन्होंने विश्वव्यापी अपील की है कि भारत से अस्पृश्यता उठाकर हरिजनों को हर तरह हिन्दू समझा जावे। उन्हें मंदिर-प्रवेश तथा जलाशय के उपयोग का अधिकार दिया जावे। रोटी-बेटी का परहेज़ चाहे द्विज रक्खें, पर उन्हें अस्पृश्य न समझें। इस प्रकार की प्रार्थना उन्होंने हिन्दुओं से की है। यहाँ पर भी सन् १९३४ में पं० हृदयनाथ कुँजरू तथा सेठ जमनालाल बजाज ने आकर नंदादेवी में हरिजनों के प्रति प्रेमपूर्वक बर्ताव करने का उपदेश दिया। श्रीमुरलीमनोहर का मंदिर उनके लिये खोला गया। श्रीबदरीश्वर में एक सभा हुई, जिसमें हिन्दू-जाति से अस्पृश्यता को उठाने का प्रस्ताव पास हुआ। पं० गोविन्दवल्लभ पंतजी ने द्विजों के साथ हरिजनों का सहभोज तथा जलपान करने का प्रस्ताव ही पास न किया, किन्तु ये बातें स्वयं करके दिखाईं। सब हिन्दुओं की शुद्ध अभिलाषा है कि हरिजनों के वास्ते पहले जो कुछ भी बर्ताव रहा हो, अब हर तरह उन्हें अपनाया जावे।

---

४. किरात

अठकिंसन साहब कहते हैं कि "किरात, नाग व खस" जातियाँ भारत में उसी रास्ते से आईं, जिस रास्ते से आर्य आये। सबसे पहले किरात आये फिर खस, तब शक, नाग व पश्चात् हूण व यवन। पहली शताब्दी में किरात लोग यमुना की घाटी में रहते हुए जाने गये हैं। नैपाल में कहा जाता है कि किरात लोग कभी वहाँ के शासक थे। राइट साहब ने नैपाल-वर्णन में २९ किरात-राजाओं के नाम ढूँढ़ निकाले हैं। कुमाऊँ में चंद राजाओं के ८ पुश्त बाद १४ शासकों के विचित्र नाम आये हैं, (जड़, जीजड़, जाजड़ इत्यादि) ये खस राजा समझे जाते हैं, किन्तु अठकिंसन साहब इनको किरात राजा कहते हैं। किरात जाति का वर्णन पुराणों में है। रुद्र ने किरात के रूप में गंगानदी के निकट अर्जुन को दर्शन दिये थे। रामायण में इनको स्वर्ण रंगवाले तथा दर्शनीय बताया गया है। नैपाल में कहा जाता है कि किरातों ने द्वापर युग में १० हज़ार वर्ष तक राज्य किया था। जब सम्राट अशोक नैपाल में गये, तो उन्होंने वहाँ किरातों का राज्य पाया। यह ईसा से तीन शताब्दी पहले की बात है। किरात लोग अब सिक्खम व नैपाल के बीच के हिस्से में ज़्यादा रहते हैं। अब ये वहाँ लिम्बू भी कहे

जाते हैं। ये लोग छोटे क़द के होते हैं, चपटे मुँह व नाक, आँखें सूजी हुई होती हैं। खूब दृढ़ होते हैं। इनका धर्म बौद्ध है। किरात व किरान्ति दोनों एक ही संज्ञावाचक हैं। यद्यपि कुछ अँगरेज़ी विद्वान् लेखक कत्यूरियों को भी किरान्तिवंश का कहते हैं, पर इसका कोई प्रमाण नहीं है, केवल अनुमान है।

राजी या रावत जाति के स्त्री-पुरुष

किरात व राज्य-किरात में भेद-भाव मानना कठिन है। किन्तु ये लोग तिब्बतियों की तरह तन्दुरुस्त थे, और खस जाति की तरह आर्य-वर्ण व रंग-रूप के थे। कहते हैं कि अस्कोट के राजी इन्हीं के अवतंस हैं, जो जंगलों में बस गये हैं या बसने को बाध्य किये गये हों। बाराही संहिता में राज्य-किरातों की भूमि अमरबन व चीण प्रान्तों के बीच बताई गई है, जो इस समय जागीश्वर व तिब्बत के बीच का प्रान्त माना जाता है। कुमाऊँ के रावत राजा भी राज्य-किरातवंश के होने कहे जाते हैं। अठकिन्सन साहब तल्लादेश, भावर के लूल

तथा जागीश्वर के पास के रौतों को भी राज्य-किरात जाति के बताते हैं। कहा जाता है कि पहले लूलों का उस ओर छोटा-छोटा राज्य था। अब भी ये धनी ज़मींदार हैं। ध्यानिरौ, आगर व छखाता के पहाड़ों में ये लोग बसते हैं। मि० क्रोक साहब लिखते हैं—"राजी जंगली जाति है। जो थाड़ू से भी हेय गिनी
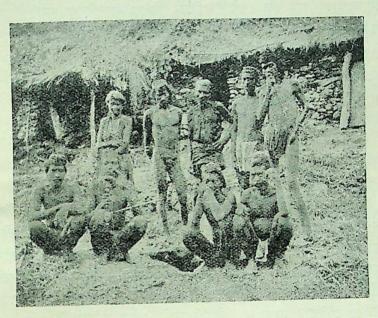
राजी या रावत जाति के लोग

जाती है, यह जंगलों में रहती है। ये लोग लकड़ी के बर्तन बनाते हैं। अपने को राजा कुटपुरनील कपाल के वंश का बताते हैं। राजी का देवता बाघनाथ है। कर्क संक्रान्ति को त्योहार मानते हैं। हिन्दू हैं। श्राद्ध करते हैं।"

प्राचीन लेखक टॉलमे कहते हैं कि किरात लोग किराडिया में रहते थे, जो पैंटेपोलिस नगर (वर्तमान मीरकन सराय) तथा टोकसान (अराकान) नदी के बीच में था। पुराणों में इनको लौहित्य व ब्रह्मपुत्र नदी के पास देश में रहनेवाला माना गया है। त्रिपुरा का पूर्व नाम किरात था। इनके देश का नाम किर्रदेही या किरोदेही भी था, जो अब शायद गिरीडीह हो गया है।

राज्य-किरात लोग शायद दार्मा, ब्यांस, चौंदास के कुछ लोग हों, तो असंभव नहीं। ये मुगल जाति के हैं। नैपालियों से मिलते-जुलते हैं। अब राज-किरात लोग ज्यादातर नैपाल, सिक्खिम दार्जिलिंग आदि स्थानों में रहते हैं।

टॉलमे तथा विश्वकोष के इस विवेचन को ठीक मानने से अठकिन्सन साहब का यह सिद्धान्त कि किरात लोग भी मध्यएशिया से खैबर दर्रे के द्वारा भारत में आये, ठीक नहीं जँचता। ये लोग नैपाल, सिक्खम तथा पूर्वीय सरहदों के दर्रों से आये कहे जाते हैं। यह बात संभव भी है, क्योंकि ये लोग ज़्यादातर उसी ओर बसते हैं। किन्नर, किरात, राज्यकिरात, राजी में फ़र्क़ कम माना गया है। बल्कि कोलों को भी कुछ लोग किरातों में शामिल करते हैं। गोसाईं तुलसीदास भी कहते हैं—

मिलहिं किरात कोल बनबासी।
वैषानस बटु गृही उदासी॥

---

५. अस्कोट के राजी

इस समय जो राजी लोग अस्कोट में रहते हैं, वे अपने को कुमाऊँ का मूल-निवासी बताते हैं। वे कहते हैं कि सबसे पहले वह आये, और लोग उनके बाद आये। राजी के मानी जंगलों में रहनेवाले के हैं। ये लोग नैपाल में भी हैं। अब तो ये बहुत कम हैं। पहले अच्छी संख्या में होने बताये जाते हैं। हथियार इनके तीर-कमान हैं। ये कहते हैं कि दुनिया के राजा होने का अधिकार उनका था, क्योंकि उनके पूर्वज दुनिया के राजाओं व क्षत्रियों के सगे बड़े भाई थे।

राजी कहते हैं कि जब दुनिया बनाई गई थी, उस समय दो भाई राजपूत थे। बड़े भाई को शिकार खेलने का शौक़ बहुत था। वह ज़्यादातर जंगल में रहने लगा। इसी कारण राज्य छोटे भाई को मिला। जब छोटा भाई अच्छी तरह राज्य में स्थिर हो गया, उसने बड़े भाई से कहा कि उनको शिकार का शौक़ बहुत है, इससे वे सदैव जंगल में रहें, शहर में न आवें, अपने को जंगल का मालिक समझें। तबसे बड़ा भाई जंगल में रहने लगा, और अपने को राजी कहने लगा। उसकी संतान भी जंगल ही में रहने लगी। पेड़ों के फल, फूल व जड़ खाकर गुज़र करने लगे। हर तरह के जंगली मांस के अलावा घरेलू मुर्ग़ियाँ, सुअर, व भैंस, 'गुणी' (लंगूर) सब खाने लगे। कपड़ों के बदले एक बक्कल पहनते हैं। तमाम प्रकृति को देवता मानते हैं। महादेव, देवी व गंगा को भी मानते हैं, मसाण व भूतों को भी पूजते हैं। डूम की छूत मानते हैं। जब डूम राजियों के घर-भीतर आ घुसे, तो २२ जगह

से पानी लाकर घर को लीपते हैं। बासन व बर्तनों को धोकर सुखाते हैं। नगर व गाँव के आदमियों से अपनी स्त्रियों का परदा करते हैं। चोरी व व्यभिचार को बुरा समझते हैं। ३ पुश्त तक आपस में विवाह नहीं करते, बाद को कर लेते हैं। विवाह में कुछ भी खर्च नहीं करते। सिर में चुटिया रखने को ही व्रतबंध करना कहते हैं। जब कोई मर गया, तो उसको फूँक देते हैं। १० दिन तक रोज़ सायंकाल समय थोड़ा भात व पानी मुरदे के नाम पर घर से बाहर रख आते हैं, इसी को सद्गति समझते हैं। जब कोई उनका प्रधान (सिरगिरोह) राजा के पास आता है, तो वह राजा की गद्दी के निकट बैठता है। राजा को छोटे भाई तथा रानी को बहू के नाते से पुकारेगा। राजा को उसे बड़ा भाई यानी 'दाज्यू' कहना होता है।

अब कुछ-कुछ ये लोग अस्कोट में रह गये हैं, वहाँ पर काठ के बर्तन अच्छे-अच्छे बनाते हैं। अब राजी खेती भी करने लगे हैं। नदियों के किनारे सोना भी धोते हैं। कहते हैं कि देश में भी राजी जाति के लोग हैं। नैपाल इलाक़े में भी हैं।

कुमाऊँ-राज्य में तो बहुत से राजी सभ्य होकर राजपूतों में मिल गये हैं। गाँवों में बसकर कमीन व मालगुज़ार भी बन गये हैं। कुमाऊँ में लूलठ्युरा, छयोल तथा वष्टिया वग़ैरह गाँवों में, छखाता में रौत के नाम से फतेपुर, हैड़ी आदि गाँवों में बसते हैं।

पुराणों में एक कथा राजा वेन की है। यह चंद्रवंशी राजा था। वह शास्त्र व वेदों का विरोधी था। इससे प्रजा ने उसे मार डाला। उसके वंश में कोई राजा होने लायक़ न था। तब सब कर्मचारियों ने एकत्र हो, उसकी मृत-देह को मथा। उसके बायें हाथ से एक काले रंग का, छोटी आँखवाला नाटा पुरुष निकला। वह कुरूप था। उसको देखकर ब्राह्मणों ने कहा कि यह मनुष्य राजा वेन के पाप से बना है। इससे राज्य के अयोग्य है। जब वह मनुष्य आज्ञा के लिये खड़ा हुआ, तो ब्राह्मणों ने कहा—'निषीद' अर्थात् बैठ जा। तब वह बैठ गया। इसीसे वह निषाद कहलाया। दाहिने हाथ के मथने से एक सुंदर, सुडौल व सुघड़ मनुष्य पैदा हुआ, जिसका नाम पृथु हुआ। इससे जगत् का नाम पृथ्वी पड़ा। पृथु पृथ्वी का राजा हुआ, निषाद जंगलों का। संभव है, राजी भी इन्हीं निषादों में से हों। क्योंकि उनकी कहानी भी इस पौराणिक कहानी से मिलती है। इन राजियों की बोली भी कुमाऊँ की बोली से भिन्न है। राजी यह भी कहते हैं कि देश व पहाड़

के राजियों की बोली एक ही है। उसमें भेद नहीं है। उनकी बोली का कुछ नमूना यहाँ पर देते हैं:—

राजी बोली	कुमय्याँ बोली	हिन्दी
हितलो	यथ आ	इधर आ
कोताघत	उथ जा	उधर जा
ग्वथा मां चीपीयन्	कांहै आछा	कहाँ से आये हो
ग्वथा जिगार	कां जांछा	कहाँ जाते हो
दे	आज	आज
कीले	भोल	कल
नीवक	पोरूं	परसों
ना वयां	मैंकन दिय	मुझे दो
नीन्रा	तु ले	तू ले
नी	तु	तू
ना	मैं	मैं
दे हां चिजानी	आज के खाछ	आज क्या खाया
छूवै	बैठ नै	बैठ जा
य की	उठ	उठ जा
भात्तजा	खाण खा	खाना खाओ
भात्त कै जानी	खाण खाछै	खाना खा लिया
ती तुङ्	पाणि पे	पानी पी
ढाड़ी किन	ठाड़ हुण	खड़ा होना
ईस	से जा	सो जा
योङू	बाटो	रास्ता
नीक चिकुनै	भाल छौ	अच्छे हो
म्है वयां	आग दिय	आग दो
निमक्यनर	तुमन दिछु	तुम्हें देता हूँ
हाँ वयाँ	नि दिन्यु	नहीं देता
टुकौ कै पुवाँन	सांस पड़िगे छ	शाम हो गई
गाजिरौ कै खोअन्	रात ब्यै गेछ	रात खुल गई
लाप अ	ल्यौ	लावो
तीला पत्य	पाणि ल्यौ	पानी लावो
तिवुवाँ वोये	पिंछा	पीते हो

राजी बोली	कुमय्याँ बोली	हिंदी बोली
नै तु और	पछु	पीता हूँ
चु जावरे	खां छु	खाता हूँ
कै इस जियर	सेजानु	सो जाते हैं
निंग पया किनौहियन	तेरो चेलो कब भौछ	तेरा लड़का कब हुआ
ना वरी गुन	हम ठुल छूं	हम बड़े हैं
नी ची चंजिगुन	तुम नान छौ	तुम छोटे हो
नि हाँक चिवियन	किलै आछा	क्यों आये हो
नि हंक चिभैकर	के मांग छा	क्या माँगते हो
हं कहाँ चिगा	किलै नी जाना	क्यों नहीं जाते
निं मे तांग कुनीले	तेरि ज्वे छनै छ	तेरी स्त्री है
हलङ् आयो चिवियन	हल बै आछा	हल जोत आये हो
नि सियन	तु मरि जालै	तू मर जायगा
हानोन चिगुनीर	मारूंल के कर लै	मारूँगा तो क्या करेगा
निकुच्या हनावनी	किलै मार छै	क्यों मारता है
भायर भाट्ट पीय कुनास हम वयेर	भैर बामण ऐरौ छ के दिनुं	बाहर ब्राह्मण आ रहा है, क्या देवें
इसे हंक तैहना पोस्यां	इनल किलै मंगाछ	इन्होंने क्यों मँगाया है
इचे कताई हना पोस्या	एतुक कैहुणी मँगई	इतने किसके लिये मँगाये हैं
सीपन	मरणो	मरना
हियन	हुणो	होना
अतर	ऐल	अब
चिभीरै	ऊंछा	आते हो
वीयर	ऊंछू	आता हूँ
किना चि विपर	कब आलै	कब आवेगा
हं घैला चिगुनीर	के करना छै	क्या करता है
आखु विपन	को आछ	कौन आया है
आखु कानि	को आछ	कौन आया है
है स्प कौनी	पछ्याण	पहचान
हंग च्य हमावनी	किलै मांछै	क्यों मारता है
तारा कौनी	हल्ल नी कर	हल्ला मत कर
निंगहा नामक	तरो नौं केछ	तेरा नाम क्या है

राजी बोली	कुमय्याँ बोली	हिन्दी बोली
हाँ वये	नि दिनै	नहीं देते
अतर अगरा कै हिन कि लेक गाहिन	ऐल अबेर है गेछ भोल जूंल	अब देरी हो गई है कल जावेंगे
निचेह रैकोकि	तुम पछ्याणछा	तुम पहचानते हो
नैस्य कारलम	हम पछ्याणनु	हम पहचानते हैं
गजिरौ ताघत बाघो तिजारि	रात भैर न जा बाग खालो	रात बाहर मत जा बाघ खायगा
देव लागो कोनेर भीतर लौ	द्यो लागणोछ भीतर आ	वर्षा हो रही है, भीतर आ
नी खोत छुजी	भलिकै भैजा	अच्छी तरह बैठो
गरा	धान	धान
दरो	चावल	चावल
घुमड़	ग्यूं	गेहूँ
मां अखू	माश	उर्द
पित्तअ	रैंश	लोभिया
चीईणा	चिणा	चीना
मांदीद्रो	मानिरो	सवाँ
मंडुवा	मडुवा	मड़वा
चआना	चाण	चना
तिलड़ू	तील	तिल
कपाऊख	कपास	कपास
माखूर	मशुर	मसूर
बड़हर	भट	भरट
		इत्यादि

गिनती

राजी	कुमय्याँ	राजी	कुमय्याँ	राजी	कुमय्याँ
ग	एक	पाँ	पाँच	नौव	नौ
नी	द्वी	तुरकौ	छै	दख	दस
खुड़्	तीन	खात्त	सात्	डाक	सौ
पारी	चार	आट्ठ	आठ		

दिनों के नाम

राजी	कुमय्याँ	राजी	कुमय्याँ	राजी	कुमय्याँ
दे	ऐत्वार	नीव	मंगल	पारीख	बीपै
किलेक	सोमबार	कुंव	बुध	पाँच	शुक्र
				खात्रव	छुंजर

यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि किन-किन भाषाओं से इनकी बोली मिलती है।

अठकिन्सन साहब लिखते हैं—"राजी लोग पौराणिक राज्य किरात हैं, यह बात निर्विवाद है। राजियों के एक देवता का नाम खुदाई है। इसका मुसलमानों के खुदा से कोई संबंध नहीं है। ये लोग तीन पुश्त भीतर विवाह नहीं करते। लड़की के दाम भी नहीं चुकाते। अस्कोट के राजी कुलदेवता की पूजा के लिये धन ले लेते हैं, इसलिये चौगर्खा के राजी अस्कोट के राजियों को कम समझते हैं। वे चुटिया रखते हैं। चूँकि वे अपने को राजवंश का कहते हैं, इसलिये वे सिर्फ राजा के अलावा अन्य को प्रणाम नहीं करते। वे राजा को 'भाऊ' (छोटा भाई) कहते हैं, और रानियों को 'नब्वारी' (बहू) और वे अपने को 'दाज्यू' कहा जाना पसंद करते हैं। ब्रह्मदेवमंडी से ऊपर कई गाँवों में लूल रहते हैं। छखाता में कई गाँवों में रौत या रावत रहते हैं, जो अपने को राजवंश का बताते हैं, और बालेश्वर के ताम्रपत्र में जो किरान्ति शब्द आया है, वह उन्हीं के वंशज माने गये हैं। लूल लोग जनेऊ पहनने लगे हैं, पर रावत नहीं पहनते। दोनों अपने को राजपूत कहते हैं। वाराही-संहिता में जो लौल शब्द आया है, संभव हो, ये लूल उसी देश के रहनेवाले हों।"

---

६. हूण या हुणिये

हिम या हिमाचल के पास रहनेवाली जातियों का नाम हुणियाँ या भोटिया है। तिब्बत का स्थानीय नाम बोध है (बोध मानी बौद्धों का देश), जो भारत में भोट में परिवर्तित हो गया है। कुमाऊँ में भोट तिब्बत के इस ओर के प्रान्त को कहते हैं, जो हिमाच्छादित प्रान्त के पास का नाम है। इसके मानी उस देश से हैं, जहाँ भोटिये रहते हैं। शौकों को भी भोटिया कहते हैं। तिब्बत के लोगों को कुमाऊँवाले हुणिये कहते हैं, और उनके देश को हूण देश कहते हैं। श्रीमूरक्रेफ्ट ने, जो १८१२ में तिब्बत में गये थे, इसकी उत्पत्ति

'ऊन देश' से बताई है। उनके साथी श्रीविलसन ने इसे ह्यूँ + देश यानी हिम का देश कहा जाना माना है। किन्तु असली नाम हुणदेश है, जिसका तात्पर्य्य है हुणियों का निवासस्थान। अठकिन्सन साहब इन हुणियों को इतिहास-प्रसिद्ध हून (Huns) से भिन्न मानते हैं, किन्तु संस्कृत-ग्रन्थों में हूण शब्द अनेक स्थलों में आया है, और इस हूण संज्ञा से उत्तर के हुणियों या लामां से बोध होता है।

हुन या हुणिये भारत में एक ही समझे जाते हैं। विश्वकोष में लिखा है कि ये लोग चौथी शताब्दी में योरप व भारत में साथ ही आये। कोई-कोई उनको तुर्क भी कहते हैं। वे बड़े भयंकर लड़ाके थे। योरप में राजा ऐटिला (King Altila) तथा बालामीर उनके सरदार थे। इनको बलमीर या बालाम्बर भी कहा गया है, जो भारतीय नाम ज्ञात होते हैं। हुंगेरियन व मगर दोनों प्रायः एक ही जाति के माने गये हैं। पहली शताब्दी में चीनियों ने उन्हें हराकर पश्चिम व दक्षिण की ओर भगाया। उन्होंने योरप व भारत का कुछ हिस्सा जीता। आरंभ में वे चीन के पश्चिम में रहते थे।

कालिदास ने रघु के दिग्विजय के वर्णन में हूणों का उल्लेख किया है—(देखिए सर्ग ४)

> विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीर विचेष्टनैः।
> दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धान् लग्न कुंकुम केसरान्॥ ६७॥
> तत्र हूणावरोधाना भर्तृषु व्यक्त विक्रमम्।
> कपोल पाटलादेशी बभूव रघु चेष्टितम्॥ ६८॥

अतः अज के समय हूण लोग सिंधु के तट पर आये थे। किसी-किसी पुस्तक में सिंधु के बदले वक्षु (Oxus) पाठान्तर है, और यही ठीक भी ज्ञात होता है।

सन् ४२५ ई० में फ़ारस के बादशाह ने हूणों को हरा दिया, पर बाद को उसके पुत्र फ़िरोज़ को खुशनिवाज ने हराया। इससे ज्ञात होता है कि हूण पारसी हो गये थे। फ़ारस के बाद वे भारत की ओर दौड़े। उनका दल टिड्डियों की तरह चलता था। गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त को हूणों ने मार डाला। सन् ४९९ ई० में तोरमाण या तुरमनशाह ने भारत में साम्राज्य स्थापित किया। उनका शासन पश्चिमी भारत में था। उनके पुत्र मिहिरगुल उर्फ़ मिहिरकुल पहले बौद्ध थे, बाद को कट्टर शव हो गये। वह बड़ा अत्याचारी था। उसे सन् ५३२ ई० में गुप्त सम्राट् नरसिंह गुप्त तथा मालवा के राजा यशोधर्मन् ने हराया। वह भागकर कश्मीर, हिमालय व कुमाऊँ को चला गया। तब से

हूण जाति क्षत्रिय दरजे में मानी जाने लगी। कुछ लोगों का कहना है कि शकों की तरह हुणिये भी हिमालय के दर्रों से भारत में फैले। यहाँ ये लोग हिमालय के उत्तरी भाग में रहते हैं। लामे, खंपे भी कहलाते हैं। ये एक अजब प्रकृति के मनुष्य हैं। ये प्रायः सब बौद्ध हैं। "ओइ मानी पद्मे हूम" कहकर एक जंत्री घुमाते रहते हैं। उसमें 'चीरें' भी बंधी होती हैं। मठों में लामा बैठते हैं, जो रात-दिन तपस्या करते रहते हैं। गुप्त मंत्र गुनगुनाते रहते हैं। कहते हैं कि उनमें से जादू-टोना करनेवाले लामा मुर्दों की खोपड़ी में खून पीते हैं। बड़े-बड़े उग्र व भयानक नाच नाचते हैं। इनमें कई भाइयों की एक शादी होती है। कौन कह सकता है कि ये वेही हून या हूण हैं, जो प्राचीन काल में भारत के वा योरप के शासक रहे हों। कुमाऊँ में भी कुछ काल तक इनका राज्य रहा हो।

---

७. शक

महाभारत में कहा गया है कि यह जाति वक्रतप और विदेहों के बीच में रहती है। विदेह जाति तिरहुत (बिहार) में बसती थी। एक स्थल में कहा गया है कि यह जाति जमुना पर्वत तथा निषादों के मुल्क के बीच रहती थी, जो सिंधु नदी के पश्चिम तरफ़ परोपनिष देश में रहते थे। फिर कहा गया है कि ये लोग शालवंशी तथा कोंकण देश के बीच रहते थे। वायु पुराण में कहा गया है कि यह जाति तुशराज में रहती थी, जो पीती व अंताचर (सरहदी) लोगों के बीच का प्रदेश था। इन बातों से ज्ञात होता है कि पौराणिक काल में इनकी बस्तियाँ यत्र-तत्र भारतवर्ष में थीं। यूनान के लेखकों ने इनको शैकी (Sack) कहा है; और टौलमे ने इंडो-सिथियन (Indo-skythians)। उनकी भाषा शाकारि कहलाती थी। उनकी भाषा बरार व वाह्लिक प्रांत के बीच की है। यह प्राकृत या विभाषा कहलाती है। शावरि, अभिरक, द्राविड़ी, उत्कली के सदृश यह विभाषा भी चांडाली कहलाती है।

मैक्रिन्डल के 'प्राचीन भारत' (Ancient India)-नामक पुस्तक में टौलमे-नामक यात्री व प्राचीन यूनानी विद्वान ने सिदिया को पूर्वीय एशिया तथा पश्चिमी व मध्य एशिया की भूमि को बताया है, किंतु नक़शे में उसे गंगा के उत्तर में बताया है। गंगा के उद्गम के निकट की भूमि का नाम क्लाइंगाइन रक्खा है, जो शायद केदारखंड हो। उसमें यह भी लिखा है कि पहले बाल-टिस्तान या छोटे तिब्बत-प्रांत को शकाई कहते थे। शक जाति भारत में वहीं से

आई। विश्वकोष में लिखा है कि शक जाति मध्य एशिया से आई। चीन वालों के ग्रंथों में लिखा है कि वे भेड़-बकरी चराने वाले तथा ऊन बेचने वाले थे, जो काशगर व खसगिरि के पर्वतों के निकट रहते थे। १२०-१४० वर्ष ईसा से पूर्व वहाँ आये। १६० वर्ष ईसा से पूर्व चीनियों ने उनको हराकर
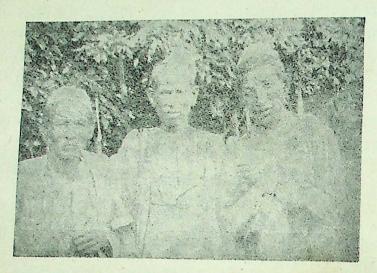
पूर्वी भोट के पुरुष

दक्षिण की ओर भगाया। तब वे शायद कुछ अफ़ग़ानिस्तान की राह और कुछ तिब्बत की राह कुमाऊँ होते हुए भारत में फैले। अफ़ग़ानिस्तान का पूर्व नाम शकस्थान या शकद्वीप भी था। फ़ारस के लेखकों ने उसे सेजिस्तान भी कहा है। उनके शासक या राजा छत्रप कहलाते थे। ५७ बी० सी० में उनको सम्राट् विक्रमादित्य ने हराया। दोनों पार्थव्य व मालव्य जातियों ने मिलकर हराया। सम्राट् विक्रमादित्य शकारि कहे गये। कुछ लोग इनको सिथियन कहते हैं, पर कुछ लोग इनको योरप की सिथियन जाति से भिन्न कहते हैं। यूनानियों ने इनको सकाई कहा है। चीनी इनको सेक या सौक कहते थे। सिथियन जाति के लोगों का मूल-स्थान कारपेन्थियन पर्वत तथा डौन नदी के बीच था। वे सो ईरानी थे। पशु-प्रकृति-पूजक थे। उनकी कब्रें अब तक पाई जाती हैं।

पुराणों में इस जाति की उत्पत्ति सूर्यवंशी राजा नरिष्यंत से कही गई है। राजा सगर ने इस राजा नरिष्यंत को राज्यच्युत कर देश से निकाल दिया। खस, यवन, किरात जातियों की तरह यह जाति भी वर्णाश्रम

धर्म का पालन न करने तथा ब्राह्मणों से अलग रहने से म्लेच्छ कही गई। पर आधुनिक विद्वानों का मत है कि मध्य एशिया को शकद्वीप भी कहते
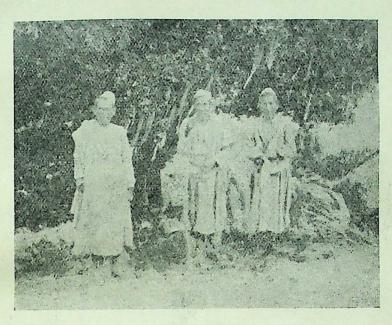
भोटिया लोग

थे। यूनानी लोग उसे सिरिया भी कहते थे। ईसा से २०० वर्ष पूर्व यह जाति भारत में बड़ी बलवान् थी। इन्होंने काश्मीर से लेकर मथुरा व महाराष्ट्र पर अधिकार कर लिया था। लगभग २०० वर्ष तक भारत में राज्य किया। इनके सम्राट् कनिष्क व हविष्क बड़े प्रतापी हुए हैं।

कुमाऊँ व गढ़वाल से कुछ पुराने काग़ज़ात दिल्ली के विषय में जो पुरातत्त्ववेत्ता श्रीकनिंघम साहब के पास पहुँचे, उनके आधार पर आप लिखते हैं— "कहा जाता है कि मौर्य्यवंश का आखिरी राजा राजपाल कुमाऊँ के राजा शकादित्य द्वारा मारा गया था। इस राजा ने दिल्ली पर चढ़ाई की थी। शकादित्य राजा का नाम था या पदवी (शक + आदित्य = शकों का सूर्य्य), कहा नहीं जाता। यह नाम विक्रमादित्य का नहीं है, क्योंकि वे तो शकों पर विजय पाने से शकारि कहलाये।" ये बातें कनिंघम साहब ने एक हस्तलिखित 'राजावली' नाम की पुस्तक से लिखी हैं, जो उन्हें कुमाऊँ से प्राप्त हुई। अतः स्पष्ट है कि शकों ने किसी अज्ञात समय में कुमाऊँ में राज्य किया था। किन्तु जोहार में शकिया लामा के अलावा अन्य शक राजा का नाम हमें ढूँढने पर भी न मिला।

जोहार व दार्मा में कुछ प्राचीन शक जाति के लोगों का होना बताया
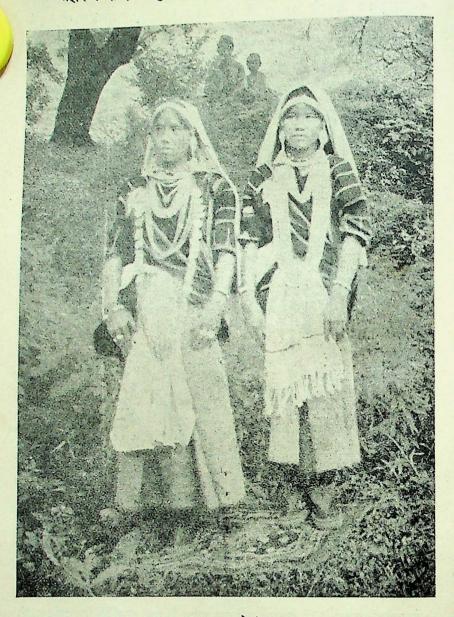
भोटिया औरतें
(चाँदी के गहने पहने हैं ।)

जाता है । यद्यपि वर्तमान समय में कुछ इधर के लोग भी उनमें मिल गये हैं ।

---

९. नाग

पुराणों व प्राचीन ग्रन्थों में नाग-जाति का बहुत उल्लेख है। ये लोग सर्पों की, विशेषकर मणिधारी सर्पों की पूजा करते थे। ये पर्वतों व मैदानों में दोनों जगह पाये जाते थे। इनके राजा तक्षक ने इन्द्रप्रस्थ बनने का विरोध किया, पर पांडवों ने उसे हराया। कहा जाता है कि नाग लोग हिमालय के उस पार के लोग थे, जिन्होंने नाग को अपना राष्ट्रीय चिह्न बनाया। पुराणों

भोटिया औरतें

में नाग कभी मनुष्य हैं, कभी सर्प। ऐसा सम्मिश्रण उनके बारे में पाया जाता है, उससे ठीक पता लगना कठिन है। किन्तु एक बात प्रसिद्ध है कि एक बार नागों को दबाने, नहीं-नहीं नेस्तनाबूद करने का प्रयत्न हिन्दुओं ने किया। खांडव वन में नागों का भयंकर वध हुआ। पांडवों ने उनको मगध देश में हराया। जनमेजय ने सर्पों का यज्ञ ही किया कृष्ण भगवान् ने भी उनको

यमुना नदी से भगाकर कुमाऊँ में शरण लेने को बाध्य किया। कभी-कभी आर्यों ने नाग-कन्याओं से गांधर्व विवाह भी किये हैं। नैपाल में नागहृद-नामक एक तालाब है, जो काठमांडू के निकट है। वहाँ नागों का राजा कर-कोटक रहता था। उसके नाम पर अब भी हर साल मेला लगता है। तिब्बत वाले अपने को नागवंशी और अपनी भाषा को नाग-भाषा कहते हैं। "आर्यों व नागों में पहले लड़ाई होकर बाद को उनके व विष्णु के बीच संधि हो गई। और यह संधि बोधिसत्व आर्य बलोकितेश्वर के द्वारा हुई," ऐसा पुराणों में लिखा है। इससे स्पष्ट है कि किसी काल में विष्णु के उपासक हिन्दुओं में, सर्पों के उपासक नागों में तथा बौद्धमार्गियों में संधि हो गई, जो प्रायः अब तक विद्यमान है। क्योंकि हिन्दू-धर्म में बौद्ध मत की कुछ बातें आ गई हैं, बुद्ध एक अवतार ही माने जाते हैं। सर्पों की पूजा प्रायः तमाम भारत में प्रचलित है। नाग-पंचमी का त्यौहार नाग-जाति का सूचक है। गढ़वाल में नाग लोग अलखनंदा नदी की घाटी के बीच नागपुर पट्टी तथा उर्गम में रहते थे। इस समय भी शेषनाग की पूजा पांडुकेश्वर में

पूर्वी भोट की स्त्रियाँ

होती है। भीखल नाग रतगाँव में, सांगल नाग तलोर में, बनपा नाग मरगाँव में, लोहनदेव नाग जिलम में और पुष्कर नाग नागनाथ में पूजे जाते हैं। इनमें नाग-सिद्ध या नागचल पर्वत बामन नाग की यादगार है। कुमाऊँ में भी अनेक नाग-मंदिर हैं—(१) महर पट्टी के बस्तड़ी गाँव में शेष नाग हैं।

बेनीनाग व पुंगराऊ पट्टी में ८ नाग हैं—बेनी नाग, काली नाग, फेनी नाग, धौल नाग, करकोटक नाग, पिंगल नाग, खरहरी नाग, अठगुली नाग। इन सबकी पूजा होती है। पांडेगाँव, छखाता में भी करकोटक नाग हैं। दानपुर में बासुकी नाग हैं। सालम में नागदेव, पद्मगीर तथा और भी कई मंदिर हैं। कालसी का जो अशोक-स्तूप है, कहा जाता है कि वह भारत तथा नाग-जाति के बीच की राज्य-सीमा थी।

कुछ लेखक नाग व शक दोनों जातियों को सिथियन जाति का बताते हैं। नाग भारत में बहुत पहले आ गये थे। शक लोग उनके बाद आये। श्रीक्रोक साहब कहते हैं कि नाग लोग पाताल में थे। वहाँ २० करोड़ नाग थे। उनके यहाँ रत्न बहुत थे। वे अनार्य-जाति के थे। उन्होंने आर्यों का बड़ा ज़बरदस्त मुक़ाबिला किया। कुछ लोगों का कथन है कि आर्य व मुग़ल-जाति का संग्राम आर्य व नाग जाति का संग्राम कहा जाता है। इस समय नाग लोग आसाम में हैं। वे अब प्रायः जंगली हैं। ये नाग तो बहुत कुछ सभ्य थे। तभी तो आर्यों ने नाग-कन्याओं से विवाह किया था। अर्जुन ने ऊलोमी-नामक नाग-कन्या से गांधर्व विवाह किया था। गढ़वाल में कुछ नागवंशी ठाकुर हैं। संभव है, वे इस नाग-जाति के हों, क्योंकि नाग लोग क्षत्रिय माने गये हैं।

कुछ लेखक नागों को शक-जाति की एक शाखा बताते हैं। नागवंशी राजा आठ हुए हैं। इन्होंने विक्रम-संवत् १५० तथा २५० के बीच राज्य किया। मथुरा से लेकर भरतपुर, ग्वालियर, उज्जैन आदि उनके अधिकार में थे। गुप्त-वंश ने इनको पछाड़ा। प्रयाग के क़िले के भीतर के स्तूप में लिखा है कि सम्राट् समुद्रगुप्त ने गणपति नाग को पराजित किया। यह जाति भी हिमालय के पार की थी। पुरुवंशी आर्य राजाओं का नागवंशी राजाओं से विरोध रहा। सिकंदर के सफ़रनामे में लिखा है कि तक्षशिला में नाग राजा ने बहुत साँप पाले थे, जिनकी पूजा होती थी। नाग-जाति कुमाऊँ में इस समय कोई भिन्न नहीं है, न इसके किसी राजा के होने का ज़िक्र है। मानसखंड से ज्ञात होता है कि नाग लोग पाताल-भुवनेश्वर तथा नाकुरी (नागपुर) के बीच रहते थे। यह जाति भी इस समय खस-जाति में विलीन हो गई हो, तो शक नहीं। वराहपुराण में नागों की उत्पत्ति कश्यप ऋषि तथा उनकी स्त्री कद्रू से हुई। उनसे आठ पुत्र हुए—अनंत, वासुकी, कंबज, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख, कुलिक और अपराजित। ये सब नागपुत्र कहलाये।

यवन—कुछ लेखकों का कथन है कि यहाँ पर यवन जाति के लोग भी आये। यवन शब्द से इस समय मुसलमानों का भी बोध होता है, पर प्राचीन काल में यूनान देश के निवासियों को यवन कहते थे। यूनान (Greece) में पहले आयोनिया-नामक प्रान्त या द्वीप था। इसका संबंध पहले पूर्वीय देशों से बहुत था। इनको भारतवासी उस समय 'यवन' कहते थे। बाद को इसका अर्थ और भी विस्तृत हो गया। रोमन, तुर्क, पारसी आदि सभी विदेशियों को यवन कहा जाने लगा। बाद को यवन शब्द का अर्थ म्लेच्छ भी हो गया, पर महाभारत के समय यवन व म्लेच्छ दो भिन्न जातियाँ थीं। इनकी उत्पत्ति पुराणों में वशिष्ठ की कामधेनु की 'योनि' से मानी गई है। मुसलमानों के लिये यह शब्द शिवाजी तथा औरंगज़ेब के समय से काम में लाया जाने लगा। यूनान के विद्वान् 'टौलमी' का नाम यवनाचार्य था। वह एक विश्वविदित ज्योतिषाचार्य थे, जिसका उल्लेख वराहमिहिर ने भी किया है। यवनों की लिपि यवनानि कही जाती थी, ऐसा व्याकरणाचार्य पाणिनि ने लिखा है। काल यवन म्लेच्छ राजा भगवान् कृष्ण से कई बार लड़ा था। अठकिंसन साहब कहते हैं कि कूर्माचल में भी कुछ यवन आये थे। इस समय वे कौन हैं, ऐसा कहना कठिन है।

---

१०. खस जाति

वेद नहीं लिखे गये थे। श्रुति, स्मृति, दर्शन, उपनिषद्, पुराण आदि सब भविष्य के गर्भ में छिपे थे। लोग स्वच्छंद रहते थे। जो मन में आया, किया; जो तबियत में भाया, खाया। वैवाहिक संबंध भी जैसा ठीक जँचा, किया। ऐसे समय पुरातत्त्व शास्त्रियों का कथन है कि एक विराट् व वीर जाति संसार की सब महाजातियों के मूल-स्थान काकेशस पर्वत से भारत की ओर चली, और काशगर (खशगिरि) से लेकर तमाम खासिया पर्वत तक की भूमि पर उन्होंने अधिकार जमा लिया।

महाभारत में इस जाति की उत्पत्ति के बारे में बड़ी ही विचित्र कथा है, जैसी कि प्रायः सब पौराणिक कथाएँ होती हैं। लिखा है, एक बार राजा विश्वामित्र वशिष्ठ मुनि के पास गये। उनकी कामधेनु नंदिनी को देखकर प्रसन्न हो गये। जब वशिष्ठ से कामधेनु माँगकर न मिली, तो ज़बरदस्ती—ले जाने लगे। तब नंदिनी क्रोधित हुई। उसके बदन से इन क्षत्रिय जातियों की सेना निकली—

असृजन् पल्लवान पुच्छात् प्रश्नवाद् द्राविडाञ्छकान्।
योनि देशाश्च यवनान् शकृतः शवरान् बहून॥ ३५॥
मूत्रतश्चा सृजत् कांश्चिच्छवरांश्चैव पार्श्वतः।
पौण्ड्रान् किरातान् यवनान् सिंहलान् बर्बरान् खसान्॥ ३६॥
चिबुकाश्च पुलिंदांश्च चीनान् हूनान् सकेलरान्।
ससर्ज्ज फेनतः सा गौम्लेच्छान् बहु विधानपि॥ ३७॥
(महाभारत आदिपर्व अध्याय १७६)

अर्थात् पूँछ से पल्लवगण, थन से द्राविड़ और शकगण, गोबर से कांची-गण, पार्श्वभाग से शवर और फेन से पौण्ड्र किरात, यवन, सिंहल, वर्बर,

खस जाति के पुरुष

खस, चिबुक से पुलिंद, चीन, हूण, केरल आदि-आदि।

यदि पौराणिक नंदिनी को पृथ्वी माना जाय, तो ये जातियाँ उसके भिन्न स्थानों से आई या वहाँ रहती थीं।

उद्योगपर्व अध्याय १६० तथा १६१ में लिखा है कि खस-जाति के लोग दुर्योधन की ओर थे।

प्राच्यैः प्रतीच्यै रथ दक्षिणात्यै रुदिच्य काम्बोज शकैः खशैश्च
(श्लोक १०३ ; २१)

अर्थात् खसदेश के रहनेवाले दुर्योधन की ओर थे।

द्रोणपर्व अध्याय १२१ श्लोक ४३ में लिखा है—

अयोहस्ता शूलहस्ता दरदास्तङ्गणा खशाः।
लम्पकाश्च कुलिंदाश्च चिक्षिपुस्ताश्च सात्यकी॥

दरद, खस, टगण, लंपाक आदि लोग दुर्योधन की तरफ़ थे। ये सात्यकी के विरुद्ध पत्थर, भाले व तलवारों से लड़े थे।

राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर के लिये भेंट लेकर आनेवाले राजाओं में हम देख चुके हैं कि खस लोग भी थे। (देखिए वैदिक व पौराणिक काल)

कर्णपर्व अध्याय ८ श्लोक १८ में लिखा है कि कर्ण ने भी खसदेश के राजा को जीता—

"गान्धारान्मद्रकान मत्स्यांस्त्रिगर्तास्तंगणान् खशान्।"

कल्कि पुराण में खस-जाति का ज़िक्र आया है—

खश काम्बोज कान्सर्वान्छवरान् वर्वरानपि। ३२।
मरुः खशैश्च काम्बोजैयु युधे भीम विक्रमैः।
देवापि समरे चीनैर्वर्वरैस्तद् गणैरपि॥ ४१॥
(तृतीयांश अध्याय ६)

पूर्वीय व पाश्चात्य दोनों विद्वानों ने इस जाति के विषय में जो कुछ लिखा है, उसका सारांश हम यहाँ पर देते हैं। मि० अठकिन्सन लिखते हैं:—"कहा जाता है कि अशोक के समय खसों को यक्ष कहते थे। यही शब्द बाद को खस में परिवर्तित हो गया। महाभारत में इन जातियों के नाम आये हैं:— अभीर, दरद, काश्मीर, खसीरा, अन्तचारा इत्यादि। ग्रीक लेखक प्लिने ने खसीरा को कैसरी (Casiri) लिखा है। दूसरे यूनानी विद्वान् टौलमे ने अपने भ्रमण-वृत्तांत में एक सीता (Saeta) नगर का ज़िक्र किया है, जो खसिया प्रान्त में था, जिसका राजा भी खसिया था। पर्वतों में सबसे पुरानी जाति का नाम उन्होंने केसी (Cesi) लिखा है जो प्रत्यक्ष में खस-जाति का सूचक है। प्लिने के लेखानुसार खस जाति किसी समय नैपाल व कुमाऊँ से भी आगे शायद खसिया पर्वत तक की शासक थी। कुछ प्राचीन लेखकों ने कुमाऊँ को निषधदेश बताया है और नल-दमयंती को कुमाऊँ का नृपति माना है।

इन्हीं नल दमयन्ती के नाम से यहाँ पर तालाब भी विद्यमान है। कुछ लोग निषध देश को जबलपुर के पास के प्रान्त को कहते हैं। निषाद लोग वनवासी तथा पर्वती अवश्य थे, पर उनका संबंध कुमाऊँ से न था। अठकिन्सन उनको परोपनिष देशवासी बताते हैं। कनिंघम के मतानुसार यह देश पश्चिमी सरहद में क़ाबुल के पास था।"

ह्यूनसाँग ने अपनी यात्रा के वर्णन में दारुवन (दारुकवन) व अमरवन का ज़िक्र किया है। यह प्रदेश जागीश्वर के पास की भूमि मानी गई है। उन्होंने भागीरथी के तट पर ब्रह्मपुर राज्य का भी उल्लेख किया है। मारकंडेय पुराण में ब्रह्मपुर की सीमा इस प्रकार दी गई है:—एक ओर वनराष्ट्र, दूसरी ओर एक-पाद खसदेश तथा स्वर्णभूमि-प्रान्त बताये हैं। वनराष्ट्र जमुना के किनारे कालसी व जौनसारबावर प्रान्त माने गये हैं। ऐका जाति नैपाल की है। ये लोग किरातों से मिलते-जुलते माने गये हैं। स्वर्णभूमि तिब्बत का नाम है। इसलिये अठकिन्सन कहते हैं कि खसदेश यहाँ पर सिवाय कुमाऊँ के अन्य हो नहीं सकता।

वैदिक काल के लोग कूर्माचल या कुमाऊँ-प्रान्त से इतने जानकार न थे, जितने पौराणिक काल के आर्य। पर इतनी बात अवश्य है कि ये पर्वती प्रान्त बहुत प्राचीन समय से पवित्र समझे गये हैं। यद्यपि वैदिक आर्य लोग इन अपने अवैदिक पर्वत-वासियों को जाति-पाँति में अपने से कुछ कम समझते थे, तथापि ये लोग वैदिक आर्यों से सभ्यता में कम न थे। वे आध्यात्मिकता में कम हों, पर राज्य-प्रबंध में वे भी दक्ष थे। वे क़िलों में व रक्षित नगरों में रहते थे। वे धातुओं के उपयोग जानते थे, और अस्त्र-शस्त्रों से लड़ते थे।

खस-जाति का इतिहास बहुत विस्तृत है। एक समय उत्तरी भारत में यह बहुत शक्तिशाली थी। विष्णुपुराण में यक्ष की कन्या का नाम उषा था। वह कश्यप की स्त्री थी, और दक्ष व राक्षसों की माता थी। विष्णुपुराण के यक्षों को पश्चिम के लेखकों ने खस माना है। पुराणों में राक्षस, यक्ष व नाग सब आदित्यों के सेवक बताये गये हैं। संभव है, सूर्यपूजक रहे हों। यक्ष, राक्षस व नाग समुद्र-मंथन के समय भी थे। यक्षों का राजा कुबेर था, वह कैलास में रहता था। यक्ष लोग ग्रामीण भी कहे गये हैं। अठकिंसन कहते हैं:— "खस लोग पहले अरट्ट व बसातियों के बीच रहते थे। अतः खस या यक्ष लोग पहले पंजाब में कहीं रहते हों। अशोक के समय यक्ष लोगों ने बड़े-बड़े भवन (चैत्य) बनाये। वे फ़ौज में भी भरती होते थे। दीपवंश में कहा गया है कि यक्ष लोग हिमवन में हिंदूधर्म में दीक्षित किये गये थे।

वायुपुराण में कहा गया है कि "खस एक जाति थी, जिसे राजा सगर नष्ट करना चाहते थे, पर वशिष्ठ की कृपा से वह बच गई। मनु ने खसों को आर्य जाति से पतित क्षत्रिय कहा है। मार्कंडेय पुराण में खस लोग एक पाद नैपाल तथा स्वर्ण-भूमि के बीच रहते हुए कहे गये हैं।"

"महाभारत में कहा गया है कि खस लोग स्वर्ण-भूमि से युधिष्ठिर के लिये पिपिलिका स्वर्ण लाये थे।"

"खस व खोह शब्द का प्रचार एशिया के तमाम प्रांतों में विस्तृत रूप से रहा है। खोकीन, खोआस, खोआसपेस आदि क़ाबुल की नदियाँ खस जाति की द्योतक चिह्न हैं। हिंदूकुश व कशकारा आदि नाम भी खस जाति से ही संबंधित होने कहे गये हैं।"

कर्नेल विलफ़र्ड ने अपने एक लेख में खस-जाति की बस्तियाँ काशगर, काश्मीर,कुमाऊँ से लेकर खासिया पर्वत तक फैली हुई बताई हैं। हिरोडोटस ने एक किसिया देश का वर्णन किया है, और स्ट्रैबो ने भी सूसा प्रान्त का नाम किसी-आई बताया है। दारा की फ़ौज में कहा जाता है कि 'खसियाई' जाति के लोग थे। काकेशस तथा काशियन पर्वत, जिनका ज़िक्र प्लिने व टौलमे ने किया है, इसी जाति से संबंधित कहे जाते हैं। काकेशस पर्वत काश्मीर से लेकर ओक्सस नदी तक माना गया है। उससे आगे का पूर्व-देश खसियन पर्वत प्राचीन लेखकों द्वारा कहा गया है।

लंका के कुछ प्राचीन काग़ज़ातों में उन लोगों के वर्णन में, जिन्होंने अशोक के सामने हार खाई, खस जाति का भी वर्णन आया है। तिब्बती भाषा के अन्वेषक श्रीतारानाथ ने उस वृत्तान्त को इस प्रकार लिखा है:— "चम्पर्ण राज्य में, जहाँ कुरु-जाति राज्य करती थी, एक सूर्यवंशी राजा था जिसका नाम नेमित था। उसके ६ लड़के विवाहिता स्त्रियों से थे। इसके अलावा उसका एक लड़का वैश्य-कन्या से था। इसको उस राजा ने पाटलिपुत्र इसलिये इनाम में दिया कि उसने खस-राज्य के नैपालियों तथा अन्य पर्वती लोगों पर विजय प्राप्त की। यहाँ पर नैपाल-राज्य को भी खस-जाति के अधीन होना कहा गया है।" (अठकिन्सन)

काश्मीरी विद्वान् कल्हण पंडित की बनाई हुई राजतरंगिणी में खस-जाति का वर्णन बहुत स्थानों में पाया गया है। कहा है कि जलोद्भव राजा ने शक, खस, टंगन, माधव आदि जातियों का दमन किया। राजा मिहिरकुल के समय में, जबकि काश्मीर में दरद, भोटिया व म्लेच्छ जातियाँ रहती थीं, खस जाति के लोग नरपुर में रहते थे। खस राजा ने काश्मीर

के राजा क्षेमगुप्त को विवश किया कि वह उनको अपने ३६ गाँव दे दे। काश्मीरी रानी दिद्दा का उपपति एक खस था। उसका नाम फालगुण था। काश्मीर में एक खसालय-प्रान्त था, जो खैसाल घाटी में था जिसका खसराज भागिक था। वह बनशाला-भवन में रहता था। खस लोग विसलाटा-प्रान्त में भी रहते थे। वे बड़े बीर थे, उन्होंने एक बार राजा के सेनापति को मार डाला। आसपास के पहाड़ी राज्यों के लोग काश्मीरियों को कशीरू कहते थे। इन कशीरुओं या खशीरुओं से ही काश्मीर नाम विख्यात हुआ हो; यद्यपि कुछ काश्मीरी पंडित यह भी कहते हैं कि कश्यप ऋषि ने काश्मीर प्रान्त बसाया।

हरिवंश में लिखा है कि जब परशुराम ने क्षत्रियों के विनाश की ठानी, तो खस लोग, जो मैदानों में रहते थे, भागकर पर्वतों में चले गये। बहुत-से जलपेश को गये। और-और पर्वतों की घाटियों द्वारा पर्वतों में छिप गये। इन लेखों से स्पष्ट है कि काश्मीर-प्रान्त में खस-जाति बहुत प्राचीन काल से रहती आई है। अठकिन्सन साहब कहते हैं—"आर्यों की चढ़ाई पर खस-जाति मैदानों से उत्तर की ओर हिमालय पर्वत में भगाई गई, और दक्षिण में उसे विन्ध्याचल पर्वत में भागना पड़ा, परन्तु जितने लोकव्यापी वे कुमाऊँ में हैं, उतने अन्यत्र नहीं। कुल्लू के कुनैत लोग अब भी दो दरजों में विभक्त हैं:—खसिया और राव; किन्तु खस लोग ज्यादातर गढ़वाल व कुमाऊँ व नैपाल में बहुतायत से हैं। इस जाति के लोग कहा जाता है कि विंध्याचल व बीकानेर में भी हैं। वे लोग खोसा कहलाते हैं, और उनमें बहुत-से मुसलमान भी हैं।"

राजस्थान के लेखक टॉड साहब खोसा-जाति को सेहराई की एक शाखा बताते हैं। कुमाऊँ की खस-जाति की बोली राजपूताना की हिन्दी से कुछ-कुछ मिलती है, ऐसा सिंध गज़ेटियर के लेखक श्रीह्यूज साहब कहते हैं। वे कहते हैं कि यह बोली रोहिलखंड तथा गंगा के मैदानों में बोली जानेवाली बोली से भिन्न है। उनका कहना है कि खोसा या खस लोग सिंध, थार, परकार की जंगली बस्तियों तथा बिलोचिस्तान में भी हैं। बक्खर व शिकारपुर में तो वे कसरत से हैं, पर वहाँ वे मुसलमान हैं। छोटा नागपुर व उड़ीसा में भी खस-जाति के लोगों का पाया जाना कहा जाता है। छोटा नागपुर में, सरगूजा रियासत में लेखक को रहने का अवसर मिला है। वहाँ के पर्वतियों की बोली कुछ-कुछ कुमावनी से मिलती है। यद्यपि उसमें कुछ-कुछ बिहारी बोली का लहज़ा आ गया है। पर मूल-बोली एक ही प्रतीत होती है।

खस-जाति के लोग काश्मीर से नैपाल तक जहाँ कहीं भी पाये जाते हैं, अठकिंसन साहब लिखते हैं कि वे कुमाऊँ की खस-जाति से मिलते हैं। और अपने विषय में जो वृत्तान्त वे कहते हैं, वह भी बहुत अंशों में एक ही है। वे कहते हैं कि वे राजपूत थे, और भाग्य के फेर से उन्हें ऐसी जगहों में जाना पड़ा, जहाँ वे क्षत्रियधर्म या हिन्दू-धर्म का पालन पूरी-पूरी तौर पर न कर सके। इसलिये समाज में वे राजपूत कक्षा से कुछ कम गिने गये। नैपाल के खस जाति के लोग तो बहुत-कुछ गोरखों में रल-मिल गये हैं, पर कुमाऊँ की खस-जाति के लोग बिलकुल आर्यों से मिलते हैं। आर्यों में व उनमें फ़र्क नहीं है। यह बात प्रायः सब लेखकों ने कही है। पढ़े-लिखे जितने भी खस-जाति के राजपूत हैं, वे तुलना में आर्यों से किसी बात में कम नहीं हैं। कुमाऊँ की खस-जाति की बोली हिन्दी की रूपान्तर-मात्र है। यह किसी प्रकार भी विदेशी भाषा नहीं कही जा सकती। तिब्बती लोगों में, शक-जाति में व खस जाति के लोगों में बहुत फ़र्क़ है। भारत में आबहवा के लिहाज़ से वर्ण में कहीं कहीं फ़र्क़ आ गया है। देश-प्रदेशों में बसने से थोड़ा-बहुत फ़र्क़ गुण, कर्म, स्वभाव में आ ही जाता है, पर यह बात निर्विवाद कही जा सकती है कि कुमाऊँ की खस-जाति के लोग सब प्रकार से हिन्दू हैं। उनकी बोली, रस्म-रिवाज, धर्म बहुत अंशों में आर्यों से मिलते हैं। केवल थोड़े-से रस्म-रिवाज भिन्न हैं। इन लोगों का प्रभाव भोट के भोटियों पर भी पड़ रहा है। वे भी तिब्बती रस्म-रिवाज छोड़कर हिन्दू आचार-विचारों को स्वच्छन्दता-पूर्वक ग्रहण कर रहे हैं।

पहले कहा जा चुका है कि काशगर-प्रान्त खस-जाति का नाम रक्खा हुआ प्रदेश है। इसमें चितराल, मसन व मस्तूज रियासतें हैं। इनके शासक कटौर-खानदान के हैं। इसलिये दो लेखक मि० टामस तथा सर हेनरी इलियट ने कत्यूरी राजाओं को इसी कटौर वंश से मिलाया है, और कुमाऊँ में राज्य करनेवाले कत्यूरियों को भी खस-जाति का सिद्ध करने की कोशिश की है। इस विषय में जो प्रमाण इलियट साहब पेश करते हैं, वे वास्तव में बड़े ज़बरदस्त-से प्रतीत होते हैं। वे कहते हैं कि कटौर-ख़ानदान ने ८वीं शताब्दी से क़ाबुल में राज्य किया। कुमाऊँ में भी प्रायः उसी शताब्दी में कत्यूरियों की राजधानी जोशीमठ से आई। 'जमीयत-तवारीख़' में लिखा है—"वासुदेव के बाद कनक राजा हुए, और वे क़ाबुल के भारतीय सम्राटों में से आखिरी शासक थे, और ये कयोरमन खानदान के थे।"

वे फिर कहते हैं कि गढ़वाल के राजाओं की वंशावली कनक व कंक

से ही आरंभ होती है। साथ ही जोशीमठ में जो कत्यूरी राजा हुए, उनका वंश राजा बासुदेव से प्रारंभ होता है। इन बातों को मिलाकर सर हेनरी इलियट ने यह निदान निश्चित किया है कि काबुल के कटोरवंशी व कुमाऊँ के कत्यूरवंशी दोनों एक ही थे। काबुल के हिन्दू राजा कनक का कलर नामक ब्राह्मण मंत्री था। उसने राजा को मारकर अपना वंश चलाया। अलबरूनी क़ाबुल के कटोर-खानदान को तुर्क-जाति का कहता है। अतः यदि हम इलियट साहब के निश्चय को ठीक मानें, तो कत्यूरी राजवंश वालों को भी हमें तुर्क-खानदान का मानना पड़ेगा, और यदि कत्यूरियों को खस-जाति का माना जाय, तो खस-जाति में भी कई चक्रवर्ती सम्राट् होने का पता चलता है।

किन्तु ये बातें कल्पना-मात्र हैं। तमाम में यह बात प्रचलित है कि कत्यूरी राजा अयोध्या के सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। उनकी भाषा तुर्क व खस नहीं, बल्कि संस्कृत थी। उनके ताम्रपत्र संस्कृत में थे। उन्होंने अपने को आर्य-जाति का कहा है। कुमाऊँ व क़ाबुल में एक ही समय में बासुदेव व कनक नामी राजाओं का होना कोई असंभव बात नहीं। कत्यूरी राजा सूर्यवंशी थे, वे अयोध्या से आये थे। उनका राज्य क़ाबुल तक था। वे ही क़ाबुल के राजा किसी समय रहे हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। इलियट साहब ने यह भी दलीलें पेश की हैं कि कत्यूरी राजा सूर्य के उपासक थे। उनके सिक्कों में सूर्य की मूर्ति थी, और काश्मीर व क़ाबुल के राजाओं के भी राजचिह्न यही थे। हम इस सिद्धान्त को मानने को तैयार नहीं हैं कि कत्यूरी राजा तुर्क या खस-जाति के थे। वे खस-जाति के राजा रहे हों, पर स्वयं वे वैदिक आर्य-जाति के थे। कत्यूरियों ने खस-जाति को अपनी प्रजाओं में से एक प्रजा माना है। (देखिये कत्यूरी-शासन-काल।)

श्रीमैक्रिन्डल कहते हैं कि टौलमे ने लिखा है कि काशिया प्रान्त ओक्सस नदी के पास था, और खस-जाति बहुत प्राचीन काल से हिमालय प्रान्त में रहती आई है।

सम्राट् बाबर ने भी खोह व काशगर में खस-जाति के रहने का वर्णन किया है। संस्कृत में काशगर को खसगिरि पर्वत कहा गया है। ज़ेन्दावस्था में खसाघरी शब्द आया है।

सर ए० ब्राइन अपनी पुस्तक 'संप्रदाय व जातियाँ' में लिखते हैं— "नैपाल में राजपूतों के बाद खस, पश्चात् गुरंग, फिर मगर, तब सुनवार

श्रेष्ठ गिने जाते हैं। नैपाल की खस-जाति बिलकुल हिन्दू है। इन्होंने (Tribes & Castes in Punjab) में लिखा है कि "पंजाब के पहाड़ी इलाक़ों में खस लोग कुनैत कहलाते हैं। वहाँ करान व राहू दो उप-जातियाँ भी हैं। खस लोग उनसे लड़कियाँ लेते हैं, पर देते नहीं। उनमें पुजारी व क्षत्रिय-मात्र दो जातियाँ हैं।"

श्रीक्रोक साहब लिखते हैं--"खस लोग आर्य-जाति के थे। बाद की आर्य जातियों ने आकर उनको पहाड़ों में ढकेला। उनके उत्तराधिकारी कुमाऊँ-के खस राजपूत हैं। वे अपने को राजपूत कहते हैं। जो आर्य-धर्म की ऊँची रस्मों का पालन न करने से लोगों की नज़रों में गिर गए! कुमाऊँ में देश की आर्य-ज्ञातियों से भिन्न हो जाने से उनके धार्मिक आचार व विचारों में अन्तर आ गया, पर अब मार्ग की सुगमता से वे फिर हिन्दूधर्म की बातों को जानने व मानने लगे हैं।"

क्रोक साहब यह भी लिखते हैं कि नैपाल के खस लोग सबसे अधिक हिन्दू-धर्म के मानने वाले हैं। उनमें से सेना के अफ़सर भी हैं।

नैपाल के इतिहासकार श्रीकिर्कपैट्रिक ने भी खस जाति का उल्लेख करते हुए कहा है कि वे एक ज़बरदस्त जाति के लोग थे।

मि० शेरिंग डिप्टी-कमिश्नर अल्मोड़ा लिखते हैं—"अल्मोड़ा व गढ़वाल ज़िले के ज्यादातर लोग खस जाति के हैं और वे एक ऐसी हिन्दी भाषा बोलते हैं, जो राजपूताना की भाषा से मिलती है। खस व खो शब्दों की उत्पत्ति खोफीनी, खोआस, खोआसपेस आदि क़ाबुल की नदियों के नाम से है, जिनका ज़िक्र यूनानी लेखकों ने किया है। और इन शब्दों में भी पाया जाता है। हिन्दूकुश, कशगरा (खशगिरि) काशमीर (खशमीर)..........

"खस लोग आर्य हैं, और आर्यों की उसी विराट् जाति के एक अंग हैं, जो वैदिक काल में भारत में आई, और गंगा के किनारे तथा अन्यत्र फैल गई। उनके वास्ते हिन्दू-शास्त्रों में कुछ हेय शब्द आये हैं, क्योंकि उन्होंने ब्राह्मणों के चलाये उस जातीय धर्म को नहीं माना, जिसे धर्मशास्त्र ठीक कहते हैं। वे हिन्दू हैं, ऐसे ही जैसे उनके देश के भाई। और अपने प्रति घृणा की दृष्टि को मिटाने के लिये वे देश के आये हुए लोगों के रस्म-रिवाजों का पूरी तौर पर पालन करने की कोशिश में हैं।

"खस-जाति के बारे में एक आश्चर्य-जनक बात यह है कि यह भारत के तमाम हिस्सों में पाई जाती है। कहीं ये लोग बौद्ध हैं, कहीं मुसलमान और कहीं हिन्दू।"

पादरी ओकली साहब 'होली हिमालया'-नामक पुस्तक में खस-जाति के बारे में लिखते हैं —"कुमाऊँ की खस-जाति की उत्पत्ति उस जाति से निकाली जा सकती है, जिनमें आर्य या सिथियन खून था। जो एक समय उत्तर-पश्चिम भारत में प्रधान थी, किन्तु बाद को उसकी शक्ति तोड़ी गई। उनकी सन्तान उत्तर-पश्चिम में अब कुछ मुसलमान हैं, नैपाल व आसाम में बुद्ध हैं। कुमाऊँ में वे हिन्दुओं के साथ रहने से अपनी उत्पत्ति को भूल गये हैं। कुमाऊँ में खस जाति के शासक कत्यूरवंशी थे, और क़ाबुल में भी उनके शासक कत्यूरा या कटोरवंश के थे। वहाँ वे खो या खोशा-जाति के ऊपर राज्य करते थे। वे अब भी चितराल, काशगर, काश्मीर, हिन्दूकुश के प्रधान निवासी हैं, और खस-जाति का आदि स्थान भी यहीं बताया जाता है।"

डॉक्टर राय पातीराम बहादुर लिखते हैं--"पहले गढ़वाल व कुमाऊँ में खस ज़्यादा थे। एक पुरानी किम्बदन्ती है 'केदारे खस मंडले।' अब इनमें से बहुतों ने अपने को क्षत्रियों के समान बना लिया है।" आगे चलकर फिर वे अपनी राजभक्ति पूर्ण भाषा में लिखते हैं—"कुमाऊँ व गढ़वाल के खसिये २००० या उससे ज़्यादा में क्षत्रिय जाति की उच्च सीढ़ी में चढ़ गये हैं। इसमें उनको अँगरेज़ जाति ने तथा पश्चिमी शिक्षा ने अच्छी सहायता दी है। अब उन ब्राह्मणों की सन्तानों ने, जिन्होंने इनको क्षत्रिय के दरजे से कम माना था, इनको जनेऊ पहना दी है।...... इस समय बहुत-सी उप-जातियों की संख्या खसियों को अपने में शामिल कर लेने से वृद्धि को प्राप्त हो गई है।"

रायबहादुर पं० धर्मानंद जोशी एम्० बी० ई० लिखते हैं—"शुद्ध क्षत्रिय जाति गढ़वाल में नहीं है। लेकिन कई कुटुम्ब अपने को पुराने क्षत्रियों के वंशज कहते हैं, जैसे वर्तवाल, असवाल, कुँवर, झिनक्वान, फणस्वाँण, सजवान, रावत, विष्ट, नेगी, गुसाईं, भंडारी आदि। इन क्षत्रियों तथा उपर्युक्त राजपूतों के अलावा वहाँ कुछ खसिये हैं, जो प्राचीन जातियों के अवतंस हैं, जिनमें शायद क्षत्रिय खून नहीं है। उनका पद डूमों से ऊँचा है। वे साधारणतः राजपूतों में शामिल किये जाते हैं। वे सीधे-सादे तथा सच्चे होते हैं। वे खूब मज़बूत होते हैं।"

श्रीफ़्रैंसिस हैमिल्टन अपनी पुस्तक 'नैपाल राज्य' (Kingdom of Nepal) में लिखते हैं—"पश्चिम की ओर का मुल्क, जो नैपाल व काश्मीर के बीच में है, और जिसमें वर्तमान शासकों ने अपने राज्य का विस्तार किया है, प्राचीन हिन्दूशास्त्रों में खस-देश माना गया है। और यहाँ के निवासी खसिये कहे जाते थे। यह जाति राजपूतों से कुछ कम समझी जाती है।" वे

फिर लिखते हैं "किरातों का कुमाऊँ व नैपाल में कीचक भी कहते हैं। नैपाल की भाषा पर्वती तथा उसके पश्चिम की भाषा खस कहलाती है। ब्राह्मण तथा निम्न श्रेणी की स्त्रियों से संबंध होने से जो संतान होती है, वह खस होने पर भी नैपाल में खत्री कहलाती है। थापा, घराती, कार्की, माजी, वसनात, विष्ट, राना, खड़का खस जाति के हैं, पर यह जनेऊ पहनते हैं और क्षत्रियों या खत्रियों की तरह रहते हैं। ये सेना में सरकारी अफ़सर हैं। श्रीभीमसेन व अमरसिंह थापा, जो कुमाऊँ में नैपाल-राज्य के समय क़ाज़ी पद पर थे, खस जाति के थे। थापा दो प्रकार के हैं—(१) खस, (२) रंगू। घराती भी दो प्रकार के हैं—(१) खस, (२) भुजाल। राजाओं में भी दो भेद हैं—(१) खस (२) मगर। माँझी व धीवर भी खस थे, जो हिन्दू बनाये गये।......कुमाऊँ व नैपाल के लोग खसिये तथा खश-देश-वासी कहलाते थे। पर जो लोग बाहर मैदानों से आये, वे इसका प्रतिवाद करते हैं।"

ऊपर के लेखों से स्पष्ट है कि खस-जाति एक ज़बरदस्त तथा शक्तिशाली जाति थी। वह मध्य एशिया से आकर तमाम उत्तरी भारत में फैल गई। कुछ लोगों का कहना है कि खस-जाति खसगिरि से लेकर आसाम के खासिया पर्वत तक फैली थी, पर मेजर गुरडन की खासी-जाति (The khasis by Major Gurdon) पढ़ने से ज्ञात हुआ कि आसाम की खासी-जाति खस-जाति से भिन्न है। आप लिखते हैं कि श्रीरौबर्ट लिंडसे उनको तारतार कहते हैं, पर वे चीनी-भारती (Indo-Chinese) हैं।

यह जाति बड़ी लड़ाका व गुस्सेबाज़ थी। यह आर्य-जाति में थी, किन्तु यह कहा जाता है कि यह वैदिक युग के पूर्व ही भारत को चली आई। डा० लक्ष्मीदत्त जोशीजी ने 'खस-कुटुम्ब-पद्धति' में यही सिद्ध किया है कि खस लोग आर्य-जाति के हैं, पर वे वेदों के या वैदिक रिवाजों के बनने के पूर्व भारत में आये। खस-जाति के प्राचीन लोग स्वतंत्र धर्म के पालन करनेवाले थे। संभव है कि आर्यों के वैदिक धर्म को चलाने के समय इन्होंने उस धर्म को न माना हो, और ये रुष्ट होकर आर्यों के पूर्व भारत में आ गये हों। इसका प्रमाण यह है कि इस जाति में कुछ निम्नलिखित रिवाजों का चलन है, जो वैदिक आर्यों में नहीं है:—

(१) घर जवाईं, (२) जेठों, (३) झंटेला, (४) सौतिया बाँट, और (५) टेकुवा।

(१) (अ) घर जवाईं— कभी-कभी कोई मनुष्य अपने यहाँ अपने

जवाईं को घर में रख लेता है, विवाह या विना किसी विवाह किये हुए भी। सम्पत्ति में लड़की का अधिकार रहता है, लड़के का नहीं, जब तक कि खास दाननामा न हो। विधवा भी घर जवाईं रख सकती है, पर विना वारिसों की सम्मति के वह पैतृक सम्पत्ति को उसे नहीं दे सकती।

(ब) असल व कमअसल दोनों का हक़ बराबर होता है।

(२) जेठों—कहीं-कहीं जेठा भाई अन्य भाइयों से सम्पत्ति के बटवारे के समय कुछ ज्यादा हिस्सा पाता है, इसे 'जेठों' कहते हैं।

(३) झंटेला— यदि कोई स्त्री, जिसके पहले पति से पुत्र हो, दूसरे पति के यहाँ चली गई, तो पहले पति की सन्तान 'झंटेला' कहलाती है। इनका हक़ चाहे असल हो, चाहे कम असल, बराबर होता है।

(४) सौतिया बाँट—कहीं-कहीं पहले यह दस्तूर था कि पुत्रों में बराबर हिस्सा न बाँटा जाकर मनुष्य की जितनी स्त्रियाँ (जो आपस में सौत कहलाती हैं) हों, उनमें सम्पत्ति बराबर बाटी जाती थी। यह रिवाज अब उठ गया है।

(५) टेकुवा—कोई स्त्री (विशेषकर विधवा) अपने घर में एक पुरुष को रस्म या विना रस्म के रख लेती है । वंश इस पुरुष से नहीं, बल्कि स्त्री के पूर्व पति के गोत्र के अनुसार चलेगा। इस टेकुवे की संतान को हक़ मिल जावेगा, पर टेकुवे को खाने पीने के अलावा सम्पत्ति में कोई हक़ नहीं होता।

कुछ संप्रदाय विना कोई वैवाहिक संस्कार के विधवा सधवा जैसी भी हो, स्त्रियों को घर में रख लेते हैं।

इन्हीं रिवाजों का विस्तृत विवरण जिसे डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशीजी ने अपनी पुस्तक 'खस-कुटुम्ब-कानून' (Khasa Faimly Law) में वेदों के पूर्व के अनार्य रिवाजों की संज्ञा के नाम से पुकारा है, और इनका मार्मिक विवेचन अपनी तेजस्वी बुद्धि तथा अन्वेषण-शक्ति से किया है। और ये रिवाज मिताक्षर स्मृति में न होने से उन्होंने इन रिवाजों के माननेवालों को खस-जाति का कहा है।

उक्त बातें स्टौवेल मैन्युअल, श्रीपन्नालाल-पद्धति तथा 'खस-कुटुम्ब-क़ानून' से संकलित की गई हैं। डॉ० जोशी ने (पृष्ठ ४६-५० में) एक तालिका और दी है, जिसमें खस-जाति तथा मिताक्षरी हिन्दू के बीच के रिवाजों का अन्तर बताया है:—

खस	मिताक्षरी हिन्दू
१. उपपति रक्खा जा सकता है। भाई की विधवा स्त्री बनाई जाती है।	१. उपपति (टेकुवा) नहीं रक्खा जाता, और न विधवा-विवाह का चलन है।
२. स्त्री विशेषकर खरीदी जाती है। धन दिया जाता है।	२. विवाह एक पवित्र संस्कार समझा जाता है। स्त्री के लिये धन नहीं दिया जाता।
३. विवाह विना धार्मिक रीतियों के भी हो सकता है।	३. कन्यादान तथा आंचल का होना आवश्यक है।
४. वैवाहिक संबंध टूट सकता है।	४. वैवाहिक संबंध अटूट है। तलाक़ की प्रथा जारी नहीं है।
५. ढांटी विवाह जायज़ है।	५. ढांटी विवाह अनुचित समझा जाता है।
६. यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक नहीं।	६. यज्ञोपवीत धारण करना अनिवार्य है।

श्रीपन्नालाल आई० सी० एस्० ने अपनी पद्धति में इन सम्प्रदायों को मिताक्षरा-क़ानून को मानने वाला बताया हैः—

(१) ब्राह्मण

अवस्थी—अस्कोट के।
भट्ट—बिषाड़ के।
बिष्ट—गंगोली के।
जोशी—चीनाखान, दन्यिां, गल्ली, झिजाड़, लटौला, मकिड़ी, मसमोला, पोखरी, सिलवाल वर्ग के।
कारनाटक—करड़िया खोला के।
पांडे—बाड़खोड़ा, देवलिया, मनोलिया, पल्यूँ, पाटिया, सिमल्टिया वर्ग के।
पंत—शर्म, श्रीनाथ, नाथू, भाऊदास तथा पारासर गोत्र के।
तेवाड़ी—श्रीचंद तेवाड़ी के सब असली वंशज।
उप्रेती—अल्मोड़ा के।
वैद्य या मिश्र—दिवदिया के।

(२) क्षत्रिय

राजा काशीपुर के खानदान के असली वंशज। राजा आनंदसिंह

अल्मोड़ा (चंद राजाओं के अवतंस)। जीवी सोर के थोकदार कुँ० रायसिंह चंद व उनके असली वंशज। सब रजबार।

(३) वैश्य

सब जन्म के वैश्य

यह लिस्ट ठीक ठीक ज्ञात नहीं होती। इसमें मतभेद की बहुत गुंजाइश है। कुमाऊँ में उक्त उच्च वंशों के अलावा वास्तव में कई और भी वंश होंगे, जो मिताक्षरा-क़ानून से शासित होते हों। कुमाऊँ में कई असली राजपूतों के ख़ानदान के हैं, जिनका ज़िक्र अन्यत्र आवेगा। पर अठकिन्सन साहब व अन्य अँगरेज़ लेखकों का यह कहना है कि उन्होंने भी धनी खस-जाति के लोगों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित कर दिये हैं। इसलिये वे भी खसजाति में गिने गये। पर यह बात उन राजपूतों के लिये लागू न हो सकेगी, जो डोले के रूप में स्त्रियों को अन्य राजपूत घरों से लाते हैं, पर देते नहीं। राजपूतों में यह विवाह जायज़ हैं। यहाँ के वैश्य भी खस व राजपूत-जाति में से डोले के रूप में कन्याएँ ले आते हैं, पर उनको देते नहीं। वे वैश्य ही माने जाते हैं।

अँगरेज़ व भारतीय दोनों लेखकों ने कुमाऊँ की ज़्यादा संख्या खस-जाति की बताई है, किंतु आजकल यह कहना कि अमुक जाति खस है, अमुक नहीं, बड़ा कठिन है। अठकिन्सन साहब कहते हैं कि "बहुत-से पढ़े-लिखे लोग अपने को खस व खसिया कहे जाने से नाराज़ होते हैं। धनी लोग अपने को राजपूत व ठाकुर कहते हैं। सन् १८७२ में १,२४,३८३ मनुष्यों ने अपने को खस-जाति का बताया। सन् १८८१ में खसिया व खस राजपूत सब राजपूत-श्रेणी में गिने गये।"

यह भी कहा जाता है कि खस जाति के पहले जनेऊ न थी। अब भी बहुत-से लोग जनेऊ नहीं पहनते। चंद राजाओं के समय खस लोगों को भी तीन पल्ले की जनेऊ देकर राजपत बनाया। बहुत से खस राजपूत जनेऊ नहीं पहनते।

मनु ने भी खस-जाति को क्षत्रिय माना है, किन्तु उनको वृषल संज्ञा से विभूषित किया है:—

> शनैकस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
> वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मण अदर्शनेन च ॥ ४३ ॥
> पौण्ड्काश्चौड्द्रविड़ाः काम्बोजा यवनाः शकाः।
> पारदापल्हवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥ ४४ ॥

(मनुस्मृति, अध्याय १०)

भाषार्थ—ये क्षत्रियादि जातियाँ यज्ञोपवीतादि क्रियाओं के लोप से ब्राह्मण द्वारा याजन, अध्यापन और कर्म न कराने से हौले-हौले लोक में शूद्रत्व को प्राप्त हुईं:—पौंड्रक, औंड्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, अपल्हव, चीन, किरात, दरद और खस।

मनु ने तो यह दर्शाया है कि खस लोग भी राजपूत या क्षत्रिय थे, जो जातीय धर्म तोड़ने से निम्न श्रेणी के माने गये। उन्होंने आर्य-धर्म को न माना, इससे वे वृषल कहे गये। कुछ लोग कहते हैं कि खसिया कोई भिन्न जाति नहीं, बल्कि वे राजपूत थे, जो राजपूतों की पंक्ति से गिर (या खिसक) जाने से खसिये या खस-राजपूत कहलाये।

अर्वाचीन विद्वानों का मत है कि ये जातियाँ अन्यत्र से आकर भारत में बसीं, किन्तु पौराणिक मत के अनुसार ये जातियाँ भारत के भिन्न-भिन्न द्वीपों में रहती थीं। गुण, कर्म व स्वभाव के अनुसार वे ऊँची या नीची गिनी गईं।

कुछ लोग खस-जाति को कुमाऊँ के आदि निवासियों में शामिल करते हैं, पर यह बात ठीक नहीं है। ऊपर के ऐतिहासिक अन्वेषण से यह पता चल गया होगा कि खस-जाति कहाँ से आई। वे लोग वहीं से आये, जहाँ से आर्य। उन्होंने यहाँ के मूल निवासी डोमों को हराकर अपने अधीन किया। वे वास्तव में आर्यों के बड़े भाई थे, क्योंकि वे उनसे पहले यहाँ आये।

खस-जाति का रूप-रंग सब आर्यों का-सा है। क्योंकि वे ख़ुद भी आर्य-जाति के हैं। देश से आये लोगों तथा उत्तरी भारत के खस-जाति के लोगों में बाहरी रूप-रंग में कोई फ़र्क़ नहीं है। श्रीअठकिन्सन तथा पादरी ओकली साहब दोनों विद्वान् लेखकों ने कहा है—"कुमाऊँ के खस लोग देखने में आर्यों के समान हैं। उनकी भाषा प्रायः हिन्दी से मिलती-जुलती है। गढ़वाल व नैपाल में उनमें बहुत कुछ मुगल-जाति का रक्त चला गया है, पर कुमाऊँ में ऐसा कम देखने में आता है।" सिवाय उत्तरी भागों के अन्यत्र आर्यों व खसों में बहुत कम अन्तर है। खस लोग कुछ नाटे होते हैं, पर पर्वतों में प्रायः लंबे मनुष्य कम होते हैं।

खस-जाति के लोग सच्चे व ईमानदार हैं। छल-कपट कम है। यद्यपि अब मार्ग की सुगमता से तथा देश के चतुर चालाक लोगों के साथ सम्पर्क होने से वे भी चालबाज़ हो गये हों, तो भी ग्रामों में उनकी ईमानदारी व सचाई निर्विवाद है। योग्य नेता मिलने पर वे बहादुर भी होते हैं। कत्यूरी, चंद, गोरखा, अँगरेज़ी, सब राज्यों के समय फ़ौज में उनकी बहादुरी जानी व मानी गई है। उनमें बड़े-बड़े पैके, वीर हुए हैं। इनकी कहानियाँ यत्र-तत्र

गाई जाती हैं। 'चाले' (ग़दर) रचने तथा छापा मारने में खस-राजा सदा बड़े सिद्धहस्त रहे हैं।

पुराने व नये इतिहासकारों ने इस विराट्र व वीर जाति के बारे में जो कुछ लिखा है, उसका संग्रह हमने इसलिये किया है कि आम लोगों को इस बात का परिचय हो कि किस लेखक ने क्या बातें लिखी हैं। यद्यपि सरकारी गज़ेटियरों तथा लेखकों ने 'खसिया' शब्द का उपयोग किया है, पर कुमाऊँ की साधारण बोली में किसी को खसिया नहीं कहा जाता। खस-जाति के लोग 'ज़मींदार' के नाम से पुकारे जाते हैं। उनको पधान कहा जाता है, क्योंकि वे इस भूमि के 'थातवान' माने गये हैं। यह उन्हीं का परिश्रम है कि तमाम कुमाऊँ को उन्होंने हरी-भरी तथा उपजाऊ भूमि में परिवर्तित किया। जिनके हाथों में क़लम है तथा राजद्वार की शक्ति का जिनको अभिमान है, वे जो चाहें विजित जाति के बारे में लिख दें, पर हम कहेंगे कि इतनी बात निर्विवाद है कि चाहे खस-जाति वेद-पुराणों के बनने के पूर्व आई हो, या आर्य सिद्धांतों को न मानती हो, तथापि एक समय यह जाति बड़ी ज़बरदस्त रही है। इनका प्रभाव क़ाबुल से लेकर खासिया पर्वत तक था। कुमाऊँ में भी इन्होंने २६० वर्ष तक राज्य किया। खंड राज्य तो इनका और भी विस्तृत था। ये क़िलों में रहते थे। छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त थे। बिरादरी का प्रेम इनमें काफ़ी था। अब इस समय इनमें तथा राजपूतों में बहुत कम फ़र्क़ है। क्योंकि जैसा अन्य राजपूत करते हैं, वैसा ही ये भी करते हैं। ये लोग प्रायः सब शिक्षित होते जा रहे हैं, और आत्म-सम्मान, सभ्यता तथा सदाचार की सीढ़ियों में चढ़कर अच्छे रस्म-रिवाजों को ग्रहण करने लगे हैं।

श्रीमद्भागवत द्वितीय स्कंध चतुर्थ अध्याय में लिखा है—

किरातहूणांध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकंकायवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयः शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रयविष्णवे नमः॥

परमेश्वर की भक्ति करने से ये सब जातियाँ चाहे संस्कार-हीन हों, तर जाती हैं।

तुलसीदासजी ने भी कहा है—

स्वपच सबर खस जमन जड़ पाँवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात॥

यहाँ की खस-जाति का इतिहास वीरता-पूर्ण है। चंद-राजाओं ने भी उनको यज्ञोपवीत-संस्कार द्वारा द्विज राजपूतों की सीढ़ी में चढ़ा दिया। ये लोग हर तरह हिंदू-धर्म को मानते हैं। हिंदुओं की तरह कपड़े खोलकर

खाना खाते हैं। हिंदू-देवी-देवताओं को भी ग्राम-देवताओं के साथ-साथ पूजते हैं। विद्या, शिक्षा, सभ्यता व सदाचार से यह जाति फिर शक्तिशाली हो जावेगी, ऐसा अनुमान ही नहीं, बल्कि दृढ़ विश्वास है।

---

१०. थाड़ू

इस जाति के लोग कुमाऊँ व नैपाल की तराई में बहुत प्राचीन काल से रहते आये हैं। तराई के मलेरिया को किसी ने जीता, तो इन्होंने। ये लोग

थाड़ू लोग

देश में जाने से डरते हैं कि कहीं घाम लग जायँगे। ये तराई के कीड़े हैं। यदि ये तथा इनके भाई बोक्से न हों, तो शायद ही तराई इतनी आबाद रहे।

ये बड़े मौजी जीव हैं। ख़ुशदिल व ख़ुशमिज़ाज होते हैं। बड़ी ख़ातिर पाहुने की करते हैं। इनकी स्त्रियाँ इनको अपने से कम समझती हैं। मर्द को चौके में नहीं आने देतीं। बाहर परोस कर देती हैं। पति को कम खानदान का तथा अपने को राजवंश का कहती हैं। श्रीइलियट साहब कहते हैं कि "थाड़ू अपने को चित्तौर से आया हुआ बताते हैं। थाड़ू भूत प्रेत से बहुत डरते हैं। जब अँधेरा होता है, वे घर बंद कर लेते हैं, सिर्फ़ आग लगने की आवाज़ पर द्वार खोलेंगे। वनस्पतियों के ढेर में बिना पत्ता, पत्थर या टहनी डाले वह दिन में भी नहीं चलता। देश के लोग उनको जादू टोनावाला कहते हैं। वे खेदे में मदद देते हैं।" श्रीक्रोक साहब कहते हैं कि "इनमें मुग़ल व द्रविड़-रक्त मालूम होता है।" द्रविड़ की तो नहीं कहते ; किन्तु हाँ, मुग़ल-रक्त अवश्य है।

थाड़ू लोग नैनीताल तराई की किच्छहा तहसील से लेकर शारदा नदी के किनारे ज़्यादा रहते हैं, यद्यपि उधर ये नैपाल की तराई में भी रहते हैं। पर कुमाऊँ में किच्छहा, खटीमा, रमपुरा, सतारगंज, क़िलपुरी, नानकमता, चंदनी, बनबसा आदि स्थानों में रहते हैं। इनके इलाक़े को बिलारी कहते हैं। दक्षिण में ये मझोला तक हैं, आगे नहीं।

इनके यहाँ गोत्र या घराने को 'कुरी' कहते हैं। इनमें ये 'कुरियाँ' प्रधान हैं—१. बड़वायक, २. बट्ठा, ३. रावत, ४. बृत्तिया, ५. महतों और ६. डहैत।

इनमें बड़वायक ज़्यादा समझे जाते हैं। क़िस्सा भी है—"बढ़ गये तो बड़वायक, नहीं तो थाड़ू के थाड़ू।" बड़वायक एक प्रकार के थोकदार-से हैं। कोई-कोई बड़े ज़मींदार हैं। हाथी भी रखते हैं। आपस में पंचायत, राज़ीनामा या हुक़्क़ा-पानी चलाना आदि काम ये ही करते हैं। दो-एक और भी 'कुरियाँ' हैं। यथा—

(१) सौसा कुरी—तेल पेरने से कुछ कम समझे जाते हैं, पर हैं थाड़ू।

(२) गुसाईं गिरि या गिरनामा—थाड़ू के-से हैं। उन्हीं में रहते हैं, लेकिन उनसे ब्याह नहीं करते, चाहे औरत एक दूसरे की भगा लें। इनके विषय में कहा जाता है कि लड़ाई में गिर जाने से ये गिरनामा कहलाये। लड़ाई से भागे तथा लोथ के नीचे छिप गये, इससे कम समझे जाते हैं।

रावत अपने को धारानगरी के पँवार कहते हैं। धंगड़ा भी कहाते हैं। थाड़ुओं का भात नहीं खाते हैं। उन्हीं के-से हैं।

(३) गडौरा—जनेऊवाले हैं। गड़ेरिये है । ठाकुर भी कहे जाते हैं। ब्याह धंगड़ा व रावत में भी नहीं होता, पर स्त्री एक दूसरे की भगा लेते हैं।

थाड़ू खुद तो मैले व गंदे रहते हैं, नहाते-धोते कम हैं, पर घर आँगन इनके साफ़ रहते हैं। लीप-पोतकर व चिन्हा बनाकर उनको स्वच्छ रखते हैं। गोशाला भी इनकी साफ़ रहती है। इसे नित्य साफ़ करते हैं। गोशाला को शाल कहते हैं। हरएक के मकान के साथ एक चौपाल या बँगला होता है, जिसे अतिथिशाला कहना चाहिए। यही बैठक भी है। अपने घर के अंदर किसी को नहीं आने देते।

अनाज रखने के स्थान को 'कोटिया' कहते हैं। घुइयाँ रखने की एक बाँस की बड़ी हवादार टोकरीनुमा चीज़ को 'बखारी' कहते हैं। पानी रखने की जगह 'अटा' कहलाती है। यहाँ पर मिट्टी के घड़े व पीतल के कलसे तथा लोटे, गिलास वग़ैरह सब साफ़-सुथरे व ढकन-सहित रक्खे रहते हैं। उन्हें किसी को छूने नहीं देते। छूने पर घड़ों को फोड़ डालते हैं। तथा धातु के बर्तनों को मिट्टी से धोकर साफ़ कर लेते हैं। भुस रखने की जगह अलग होती है, वह 'भुसौड़ी' कहलाती है। औरतों को वय्यरबानी, लड़की को लल्ली तथा लड़कों को 'लौंडा' कहते हैं । जब तक मालूम हुआ, नातेदारी में ब्याह नहीं करते, पर परहेज़ कुछ नहीं। ये लोग अपना मकान अपने आप बना लेते हैं। प्रायः सब काम अपने आप कर लेते हैं।

इनके कुछ देशी बामन हैं। किसी के पर्वती पुरोहित भी हैं। पर उनसे सिवाय कथा बाँचने के और कोई काम नहीं कराते। लड़का होने पर स्त्री ६ रोज़ में शुद्ध होती है। छट नामकर्म की कोई रस्म अदा नहीं करते। जो जी में आया, लड़के-लड़की का नाम खुद रख लेते हैं। स्त्री के रजस्वला होने पर छूत नहीं मानते । स्त्री सब काम-धंदा करती रहती है। केवल वह सिर के बाल खोल देती है। व्रतबंध या जनेऊ का चलन इनमें नहीं है। केवल चुटिया रख लेते हैं। कोई-कोई अब जनेऊ भी पहनते हैं, और उसे उतार भी लेते हैं। विवाह बचपन में माँ-बाप ठहराते हैं। विवाह की चार रस्में हैं—(१) अपना पराया, (२) बात कही, (३) विवाह और (४) चाला।

(१) 'अपना पराया' मँगनी है। इसमें एक गुड़ की भेली या मिठाई व कुछ मछलियाँ लड़केवाले लड़की के वहाँ ले जाते हैं। जो लड़कीवालों ने स्वीकार किया, तो 'राम-राम समधी' कहकर विवाह ठहर जाता है। गुड़ बाँटा जाता है।

(२) 'बात कही' में जब लड़के-लड़की सयाने हो जाते हैं, तो विवाह के १०-५ रोज़ पहले लड़केवाले लड़कीवाले के यहाँ जाते हैं और विवाह

की तिथि निश्चित करते हैं। इस दिन भी मिठाई, पेड़ा या गुड़ बाँटा जाता है। शराब भी उड़ती है। यह बात इतवार या बृहस्पतिवार को होगी। इसको 'पिछौंचा' भी कहते हैं।

(३) विवाह—विवाह ज़्यादातर माघ या फुलौरा दूज में होता है। इतवार व बृहस्पति को होता है। बरात जाती है। कोई देवी देवता नहीं पूजते हैं। न ब्राह्मण को बुलाते हैं। एक टोकरी में पाँच कपड़े, मछली, दही तथा एक घड़ा पानी का रक्खा जाता है। घड़े के ऊपर एक चिराग़ होता है। यह लड़की के घर में रक्खा जाता है। इसकी सात भाँवरें (भौंरी) स्त्री-पुरुष कर लेते हैं। विवाह के बाद एक दिन को लड़की वर के यहाँ जाती है, फिर लौट आती है।

(४) दो तीन महीने बाद चैत व वैशाख में स्त्री पति के यहाँ जाती है, इसे 'चाला' कहते हैं।

ये लोग ब्राह्मण के हाथ का भोजन नहीं करते। जो श्रद्धा हुई, लड़की को दे देते हैं। कहते हैं, वे वेद पुरान 'काहू सारे' को नहीं मानते। 'मँगनई' छोटेपन में होती है, पर विवाह ज़्यादा उम्र में होता है। कुछ खटपट होने से रिश्ता टूट भी जाता है।

थाड़ू चोरी-डकैती जानते ही नहीं। सीधे-सादे तथा ईमानदार होते हैं, पर औरत भगाने में सिद्धहस्त होते हैं। व्यभिचार को ये कुछ बुरी दृष्टि से नहीं देखते। इससे व्यभिचार है भी कम, यद्यपि एक स्त्री कभी-कभी १५-२० घरों में भी चली जाती है। थाड़ूओं की स्त्रियाँ थाड़ूओं के अतिरिक्त औरों के साथ नहीं भागतीं न व्यभिचार ही कराती हैं।

थाड़ू वैसे भूत-प्रेत को पूजते हैं, पर वे शाक्त भी हैं। शिव को भी पूजते हैं, पर सिर्फ़ एक दिन यानी शिवरात्रि को। उस दिन व्रत रखते हैं और निकटवर्ती मंदिर के मेले में जाते हैं। फलाहार करते हैं। कार्त्तिकी पूर्णमासी को शारदा नदी के मेलाघाट स्थान में गंगा-स्नान को भी जाते हैं।

थाड़ू अपने बुज़ुर्गों को पूजते हैं। हरएक थाड़ू के मकान के पास एक चबूतरे पर एक देवता स्थापित रहता है। इसको कालिका, नगरयाई, देवी, भुइयाँ या बूढ़े बाबा कहते हैं। इनको नारियल, बकरा, मुर्ग़ी, शराब, सुअर चढ़ाते हैं; सुअर ज़्यादातर बूढ़े बाबा को चढ़ाया जाता है। माघ में या आसाढ़ में इन ग्राम-देवताओं को पूजते हैं।

थाड़ू 'जागर' नहीं लगाते पर 'गणत' कराते हैं। 'गणतुवा' को भराड़े कहते हैं। उसके शरीर में देवता चढ़ता है, पर जागर नहीं लगता। 'भराड़े' को कुछ दस्तूर भी मिलता है।

आपस में राम-राम कहकर शिष्टाचार सूचित करते हैं। छोटी औरतें 'पायलागन' भी करती हैं। ब्राह्मण को 'बमना' कहते हैं, उसे भी 'पायलागन' करते हैं। 'सारो' व 'ससुर' इनकी प्रिय बोली है, सबको 'सारो' कहकर संबोधन करते हैं। औरतें 'नटिया' या 'लगो' कहती हैं।

कद्दू कुम्हड़ा (पेठा), लौकी या तुरई की बेल को छत के ऊपर चढ़ा लेते हैं।

थाड़ू मिलने पर शराब ख़ूब पीते हैं। तमाखू तो हर वक़्त पीते रहते हैं। घर ही में बना लेते हैं। मुर्ग़ी, अंडा, शराब, मांस, मछली से इन्हें प्रेम है। मुर्ग़ी पहले ख़ूब पालते थे, अब चलन कुछ कम हो चला है। सुअर का मांस इनको बड़ा प्रिय है। दही, दूध कम बरतते हैं। बच्चों को भी दूध के बदले 'माँड' पिलाते हैं। दूध कोई पीवेगा, तो भैंस का। घी भी कम बरतते हैं। तेल, मिर्च, लहसुन, प्याज़ का व्यवहार ख़ूब करते हैं। किसी-किसी थाड़ू की २००-४०० तक गायें होंगी, पर वे जंगलों में छूटी रहती हैं। वे जंगली जानवरों-सी हो जाती हैं, उन्हें बड़ी कठिनता से चारों ओर से घेरकर व रस्से डालकर या जाल में फँसाकर पकड़ते हैं। इन्हें दूध पीने की फ़िक्र नहीं, पर फ़िक्र यह है कि बैलों की नस्ल ख़ूब बढ़े, और इनको खेती में सुगमता पहुँचे। ये लोग गोचर या चरागाह को गौड़ी कहते हैं।

जंगली जानवरों का शिकार ये खाबर से करते हैं, जो एक रस्सों का विचित्र जाल-सा होता है। मछलियाँ मारने के भी अनेक प्रकार के ढंग हैं। जाल, धींवरी, गोदड़ी आदि से मारते हैं। जाल सूत का तथा 'धींवरी' व 'गोदड़ी' बाँस के छिलकों से बनाते हैं। थाड़ू को मछली, भात तथा शराब बहुत प्रिय है।

दशहरा या दिवाली के त्यौहारों को थाड़ू कुछ भी नहीं करते, पर होली ख़ूब मनाते हैं। माघ की पूर्णमासी से होली गाने लग जाते हैं। फाल्गुन से दिन में गाते हैं। हिन्दुओं की धुलैंडी के ८ दिन बाद अपनी धुलैंडी करते हैं। तब तक होली गाते हैं। औरतें व मर्द दोनों नाचते हैं। ख़ूब शराब पीते हैं। खाना-पीना भी ख़ूब होता है। मर्द व औरत साथ-साथ भी नाचते हैं। एक मर्द के बाद एक औरत मिलकर गोलाकार वृत्त में नाचते हैं। इसे खिचड़ी नाच या होली कहते हैं। 'बनजारा' होली ज़्यादा गाते हैं। एक-एक झिंगुली, एक-एक पगिया बाँधकर तथा मोरपंख लेकर ताल, सुर के साथ नाचते हैं।

प्रत्येक गाँव में एक गाने व नाचने वाला लड़का होता है, जो औरत बनकर नाचता है, उसे 'नचनियाँ' कहते हैं। उसको गाँव से कुछ दस्तूर भी मिलता है। नाच इनका कुछ-कुछ नैपालियों से मिलता है।

इनके प्रायः सब झगड़े पंचायत में तय हो जाते हैं। पधान की ज़्यादा मान्यता होती है। पधान के सहायक को 'भलेमानुस' कहते हैं। उसको पहले ॥ फ़ी बीघा दस्तूरी मिलती थी। अब बंद हो गई है। पधान को १०) फ़ी सैकड़ा मालगुज़ारी में से मिलता है, और गाँव के असामी उसको उसकी निजी खेती बाड़ी में भी मदद देते हैं। ज़मीन तराई में बहुत है। जो जितना जोत सके। अनाज खूब पैदा होता है। धान बहुत व कई क़िस्म के होते हैं। हंसराज व बासमती बढ़िया चावल हैं। गेहूँ, चना, मसूर भी खूब होते हैं। एक बीघा में ७ मन धान, ३-४ मन गेहूँ तथा ४-५ मन तक मसूर व चने पैदा होते हैं। इनकी खेती नापकर लगान लिया जाता है। ।≡) से १) तक फ़ी बीघा मालगुज़ारी ली जाती है। ५०-६०, कभी-कभी १०० बीघा तक ज़मीन एक थाड़ू जोत लेता है। ७-८ बार हल हरएक खेत में चलाते हैं। अदल-बदलकर खेतों को जोतते हैं।

थाड़ू एक मौजी जीव है। वह तराई व वन का राजा है। खाओ, पिओ, मौज करो, यह उसका सिद्धान्त है। उसे आगे आने वाले दिन की परवाह नहीं। थाड़ू ग़रीब हुआ, तो अपने भाई की नौकरी कर लेता है। थाड़ू के सीधा-सादा होने से सेठ-साहूकार लोग इन्हें खूब लूटते हैं। हर प्रकार के फेरी वाले इनके घरों में पहुँच जाते हैं। कुमाऊँ के ओली लोग इनके साहूकार ज़्यादा हैं। २) महीना फ़ी सैकड़ा ब्याज लेते हैं। बाप-दादों के समय का धन पड़ा है। बेचारा थाड़ू अदा नहीं कर सकता। सूद देते-देते वह हार जाता है, पर ईमानदार होने से वह कभी ना नहीं कहता। साहूकार लोग चक्रबृद्धि ब्याज भी ले लेते हैं।

अब कुछ कोऑपरेटिव बैंक सरकार ने खोले हैं, जो थाड़ुओं की पूंजी से खुले हैं। यहाँ जमा पर ॥) सैकड़ा सूद दिया जाता तथा १) सैकड़ा लिया जाता है। वसूली करने में काफ़ी सख्ती होती है। कभी-कभी बैल, बर्तन व डंगर नीलाम हो जाते हैं।

अब तो थाड़ू कुछ-कुछ पढ़ने-लिखने लगे हैं। कुछ थाड़ू पंडित, पटवारी व पेशकार भी हो गये हैं। पर अभी अविद्या बहुत छाई हुई है। थाड़ू खेती खूब करता है, पर वह मौजी जीव भी है। अवसर मिलने पर खूब मौज भी करता है। अपनी चौपाल में बैठकर जब वह तम्बाकू पीता है, तो अपने

को संसार का शाहंशाह समझता है। यदि कोई अच्छी तरह थाड़ू से न बोले, तो वह किसी की परवाह भी नहीं करता।

मर्द तो अंगा, कुरता, धोती, टोपी या साफ़ा पहनते हैं पर औरतें ज़ेवर, व मालाओं की बड़ी शौक़ीन होती हैं। हँसुली, दुअन्नी, चवन्नी, अठन्नी या रुपये की माला पहनती हैं। सिर में इनके चुट्टा होता है। नाक में फुल्ली सोने की होती है। कपड़े इनके लहँगा, ओढ़नी व अँगिया काले रंग के होते हैं।

यद्यपि किस्मत कुमाऊँ से बेगार उठ गई है, तथापि अभी थानेदार व अन्य कर्मचारी इनसे बेगार लेते रहते हैं। थाड़ू एक दूसरे की मदद वक्त आने पर कम करते हैं। इससे धूर्त कर्मचारियों का शासन इन पर बहुत चलता है। पहले के पुराने अँगरेज़ी अफ़सर इनकी बड़ी इज़्ज़त करते थे, पर अब के रूखे अफ़सर कम पूछते व परवाह करते हैं।

ये ज़्यादातर नैपाली-से दिखाई देते हैं। इसमें शक नहीं कि ये मुग़ल-जाति के हैं। कम-से-कम बहुत-सा रक्त इनमें मुग़ल-जाति का है। द्रविड़-जाति का ख़ून इनमें होना श्रीक्रोक साहब ने किस प्रमाण से लिखा, कहा नहीं जा सकता। किन्तु ये अपने को राणा प्रताप के वंश का कहते हैं। बैटन साहब यह लिखते हैं कि थाड़ू अपने को थाड़ू कहे जाने के बारे में यह कहते हैं कि उनके बुज़ुर्ग चित्तौरगढ़ से लंका की लड़ाई में गये। वहाँ डर से थर-थर काँपने लगे, इससे थाड़ू कहलाये। इस पर उनके जाति-पाँति वालों ने हँसी की तो ये भाग कर तराई को आ गये।

थाड़ू को बैलों तथा गाड़ी का बड़ा शौक़ होता है। बैलों की सेवा थाड़ू खूब करता है। हर थाड़ू के पास एक गाड़ी अवश्य होगी। गाड़ी को यह लेहरू, तांगा, रहलू, छकड़ा, गाड़ी आदि के नाम से पुकारते हैं (बोक्से छोटी गाड़ी को रैकी कहते हैं)। गाड़ी में अपने कुटुम्ब को बिठाकर आप हाँकता हुआ मेले में जाते वक्त थाड़ू बड़ा प्रसन्न होता है।

---

११. बोक्सा

ये लोग कुछ-कुछ थाड़ुओं के समान हैं। इनका कुछ वृत्तान्त कूर्माचल के भौगोलिक विभाग में भी आया है। ये पीलीभीत ज़िले के तराई-भावर से लेकर पूर्व में चाँदपुर तक पाये जाते हैं। पश्चिम में गंगा नदी के किनारे तक और कुछ-कुछ देहरादून में भी यत्र-तत्र बसे हैं। ये अपने को पँवार

राजपूत कहते हैं। इलियट साहब इनके बारे में लिखते हैं—"उनके नेता उदयजीत की धारानगर के राजा जगजीत के साथ लड़ाई हुई। ये लोग लड़ाई में हारकर शारदा नदी के किनारे बनबसा में आकर बस गये। उदयजीत के वहाँ आने पर वे कहते हैं कि कुमाऊँ के राजा ने उनसे मदद माँगी। पँवारों ने उस संग्राम में विजय प्राप्त की। कुमाऊँ के राजा ने प्रसन्न होकर उनको वह भूमि, जो बुक्साड़ कहलाती है, जागीर में दी। वे बनबसा छोड़कर वहाँ बस गये।" पँवार राजपूत तो आर्य हैं, वे एक प्रसिद्ध जाति के क्षत्रिय हैं। संभव है कि ये कभी पँवार राजपूत हों। पर इलियट साहब लिखते हैं—"इस समय तो इनमें राजपूतों के कोई भी लक्षण नहीं दिखाई देते हैं। ये भी अनार्य जाति के लोग ज्ञात होते हैं। इनमें कुमाऊँ में बाहर से आये हुए लोगों के कुछ भी चिह्न नहीं हैं। ये लोग भी करीब-क़रीब थाड़ू की तरह दिखाई देते हैं। और ये तराई के प्राचीन निवासियों में से हैं। इनमें उच्च वंश से पतित हुए लोगों के कुछ भी राज-चिह्न नहीं देखने में आए। ये लोग साधारणतः निम्नकोटि के हिंदुओं के-से आचार व व्यवहार रखते हैं।" आइने-अक़बरी में भी इनके प्रान्त बुकसाड़ का ज़िक्र आया है, जो उस समय काफ़ी आबाद तथा विस्तृत परगना था। इनमें कुछ सिख भी हैं। शायद नानकमता में गरुद्वारे के प्रभाव से ये सिख हो गए हों।

तिब्बती मनुष्य

ये लोग बिलकुल अज्ञान दिखाई देते हैं, और सुस्त होते हैं। वे कुछ खेती

तथा जंगली मांस पर गुज़र करते हैं। जंगली सुअर का मांस बहुत पसंद करते हैं। इसी कारण वे अपने गाँवों की बस्ती को बार-बार बदलते रहते हैं। कहीं-कहीं वे जंगली चीज़ों का संग्रह करते हैं, पर कोई खास नियम नहीं है। ये लोग उद्योग-धंदे न कुछ करते हैं, न जानते हैं। ये लोग अपने गाँवों को बार-बार बदलते रहते हैं। और सोना नदी की बालू को धोकर कभी-कभी सोना भी निकालते हैं।

हमने इनको इनके गाँवों में जाकर देखा, तो ये पूछने पर अपने को पँवार राजपूत ही बताते हैं। इनके विषय में जो किंबदन्ती है कि ये लोग जादू-टोना जानते थे, और मनुष्य को जानवर बना देते थे, उसका ये अब प्रतिवाद करते हैं। "बोग्साड़ की विद्या मारू" ऐसा जगरिए कहते हैं, पर ये इस पर हँसते हैं। कहते हैं कि पुरानी बातें वे नहीं जानते। इनकी स्त्रियों में परदा प्रथा नहीं है। ये काशीपुर की बालसुंदरीदेवी को मानते हैं। उसकी पूजा को चैत के महीने में काशीपुर जाते हैं। और जब कभी मिन्नत चढ़ानी कर रक्खी हो, तो अन्य दिनों में भी पूजा को जाते हैं। शिव व विष्णु को भी मानते हैं। 'जागर' नहीं लगाते। देवी को बकरा चढ़ाते हैं। मुर्ग़ी, सुअर नहीं पालते। थाड़ुओं की तरह ये भी ख़ूब मछली खाते हैं। मछली के शिकार के दिन सारा गाँव नदी के किनारे चला जाता है। घर में कोई नहीं मिलता। मांस रोज़ नहीं खाते; पर जब मिला, तो ख़ूब खाते हैं।

चुटिया सब रखते हैं, पर जनेऊ नहीं पहनते। अब कोई-कोई पहनने लगे हैं। इनके गुरु या पुरोहित गौड़ ब्राह्मण हैं। थुआल व छिमवाल ब्राह्मण भी हैं। विवाह वगैरह सब काम प्रायः थाड़ुओं की तरह होता है, थाड़ू विवाह में मंडप नहीं बनाते, ये बनाते हैं। विवाह छोटों व बड़ों दोनों में होता रहा है। विवाह एक गोत्र व रिश्तेदारी में नहीं करते। पहाड़ वालों से ब्याह-शादी नहीं करते। हिंदू-त्यौहारों को मानते हैं। पीर-नत्थे, पधान (बुग्सा देवता) को भी पूजते हैं। उसे पूरी, प्रसाद व फूल चढ़ाते हैं। पीर के चौतरे को थरप करना यानी थापना कहते हैं। इनकी थाड़ुओं से रिश्तेदारी नहीं होती। थाड़ू इनको नरियल, तम्बाकू पीने को दे देगा, पर निगाली न देगा। इनमें पढ़े-लिखे कोई नहीं। ये श्राद्ध करते हैं, पर केवल कनागतों में। औरतें त्यौहारों को गाती-बजाती हैं। मांस-मदिरा इनको ख़ूब प्रिय है। कोई-कोई शराब नहीं पीते। औरतें मकानों में हाथी, मोर, घोड़ा आदि की तसवीरें बनाती हैं, जिन्हें चीन्हा कहते हैं। इनके मकान मिट्टी व फूस के होते हैं।

ये बड़े ईमानदार व सच्चे होते हैं, झूठ बहुत कम बोलते हैं। ज़मींदार

व सरकार किसी की धौंस बरदाश्त नहीं करते। यदि किसी ने 'तू तड़ाप' से कुछ कहा, तो नाराज़ हो जाते हैं। ज़मींदार ने यदि सख्ती की, तो एकदम सब गाँव छोड़कर चले जाते हैं।

घर व आँगन प्रायः साफ़ रखते हैं, पर उसके बाहर प्रायः मैला रहता है। खाद को यों ही बाहर फेंक देते हैं, बल्कि गौशालाओं के बाहर जमा कर देते हैं, खेतों में नहीं डालते। खेतों में डंगरों को बाँध देते हैं। ये लोग ज़्यादातर बुग्साड़ में रहते हैं, जो काशीपुर और गूलरबोज के बीच में है। अब ये बहुत कम हो चले हैं, कुछ हज़ार ही रह गये हैं।

बोक्सों की बोली भी रोहलखंडी देहाती है।

---

१२. आर्य-जाति

कहा जाता है कि आर्य लोग मध्य एशिया के काकेशस पर्वत से आये। एक शाख वहाँ से योरप को गई, एक यहाँ को आई। फ़ारस की किताबों में ऐर्य्य शब्द आया है। ऐरियाना प्रान्त में हिरात, अफ़ग़ानिस्तान, ख़ुरासान, बिलोचिस्तान भी गिने जाते थे। ईराक को 'आर्यक' भी कहा गया है। फ़ारस का नाम ईरान भी है। काकेशस में एक स्थान का नाम अभी अरिओई है। यूनान (ग्रीस) का पुराना नाम आरजिया था। जर्मनी प्रान्त के हरमन प्रान्त का पुराना नाम 'आर्यिनस' था। आयर्लैन्ड को पहले इरिन कहते थे। संभव है, आर्य लोग काकेशस से चलकर जहाँ-जहाँ गये हैं, वहाँ आर्य शब्द का अपभ्रंश होकर स्थानीय भाषा में उसका रूपान्तर हो गया हो। आर्यों का आदि स्थान मध्य एशिया बताया जाता है, किन्तु कोई स्कैंडिनेविया तथा उत्तरी ध्रुव भी बतलाते हैं।

संसार में सबसे पहले सभ्यता को प्राप्त करनेवाले आर्य लोग ही कहे गये हैं। ये लोग गौर वर्ण के, सुडौल अंग के और डील-डौल के लंबे होते हैं। इनका माथा ऊँचा, बाल घने और नाक उठी तथा नुकीली होती है।

आर्यों के भारत में आने का रास्ता हिंदूकुश तथा खबर का दर्रा ही बताया जाता है ; किंतु सन् १८४० में प्रो० बेनफ़ी ने यह सिद्धांत निकाला कि आर्य लोग कुछ दिनों तिब्बत में रहे, वहाँ से कुमाऊँ व गढ़वाल के दर्रों के रास्ते इंद्रप्रस्थ में आये। किंतु बहुत-से विद्वानों ने न केवल इसकी तीव्र आलोचना ही की ; बल्कि इसे बिलकुल विपरीत माना। इस सिद्धांत के अन्वेषण के लिए बहुत समय व धन चाहिए। डॉ० जोशी भी इसी बात के

समर्थक हैं कि आर्य-जाति तिब्बती दर्रों के रास्ते कुमाऊँ होकर भारत में फैली।

रामायण में एक जगह यह बात कही गई है कि उत्तर कुरु के लोग उदार, धनशाली, प्रसन्न तथा दीर्घजीवी थे। वहाँ न ज़्यादा गरमी है, न ज़्यादा जाड़ा। वहाँ बीमारी, शोक, डर, वर्षा तथा सूर्य का कोई भय नहीं है। कुछ लोगों का कथन है कि उत्तर कुरु-प्रांत के भीतर कुमाऊँ था। कुछ लोग इसे काश्मीर से कुमाऊँ तक का प्रांत ठहराते हैं।

भारत में आर्यों का प्रथम निवास-स्थान सिंधु नदी से लेकर गंगा तट तक बताया गया है। वहीं पर वेद, उपनिषद्, दर्शन और पश्चात् रामायण, महाभारत व पुराणों की रचना हुई।

---

१३. कूर्मांचल के संप्रदाय

कूर्मांचल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्ण के लोग रहते हैं, उनके बारे में जो-जो बातें हमें ज्ञात हो सकी हैं, उनका दिग्दर्शन यहाँ पर किया जाता है। भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रांतों से आकर लोग यहाँ पर बसे हैं।

---

१४. ब्राह्मण वर्ग

कूर्मांचल में ब्राह्मणों के अनेक वर्ग पाये जाते हैं, तथापि मुख्यकर ४ श्रेणियाँ यहाँ के ब्राह्मणों की प्रधान हैं। इनमें से पहली व दूसरी श्रेणी के ब्राह्मण कत्यूरी तथा चंद-राजाओं के समय में आकर यहाँ बसे। तीसरी श्रेणी में कुछ तो यहाँ मध्य काल के खस-राजपूतों के समय के रहनेवाले हैं। इनका आचार-व्यवहार उपर्युक्त ब्राह्मणों से कुछ भिन्न है। कुछ ब्राह्मण पंजाब, नैपाल तथा गढ़वाल से भी यहाँ आये हैं।

(क) उच्च कोटि में वे ब्राह्मण गिने जाते हैं, जो छठी से आठवीं शताब्दी के बाद दक्षिण या पूर्व-भारत से आकर यहाँ बसे। ये लोग कत्यूरी व चंद-राजाओं के गुरु, पुरोहित, मंत्री, पंडित, वैद्य, ज्योतिषी, कर्मकांडी, पौराणिक, धर्माध्यक्ष आदि हुए।

(ख) इन्हीं ब्राह्मणों में से कुछ कुटुम्ब आचार व व्यवहार में न्यूनता होने वा धन के अभावादि से, कभी-कभी संबंध कम होने से वृत्ति वा अन्य कार्य करने लगे। ये वृत्तिवान ब्राह्मण कहलाये। ये प्रथम पदवालों से कुछ

कम समझे गये, दूसरी श्रेणी में माने गये। इनमें विवाहादि संबंध, खान-पान पृथक-पृथक् रहने पर भी धन, विद्या, प्रतिष्ठा बढ़ जाने से ये कुछ पीढ़ियों बाद उच्च जाति के ब्राह्मणों से संबंध कर लेते हैं, वा दोनों मिल जाते हैं। आचार-व्यवहारादि सब इनमें प्रायः एक ही हैं। एक ही मूल पुरुष की संतानें यत्र-तत्र फैली हुई हैं।

(ग) पूर्वकाल से यहाँ बसनेवाले कुछ ब्राह्मण, जो खस-राजपूतों के गुरु-पुरोहित थे, अपने-अपने ग्रामों के तथा पेशे के नाम से विख्यात हैं।

(घ) कई ब्राह्मण ऐसे हैं, जिनमें कराव (ढाँटी का रिवाज), हल जोतना आदि बातें प्रचलित हैं।

अब यहाँ पर प्रधान-प्रधान ब्राह्मणों का वंश-विवरण दिया जाता है:—

पन्त—भारद्वाज गोत्री (भारद्वाजाङ्गिरस बार्हस्पत्य इति त्रिः प्रवरः माध्यन्दिनी शाखा) पं० जयदेव पंत कोंकण-देश से तीर्थ-यात्रा को आये। गंगोली के भी तीर्थों की यात्रा की। १०वीं शताब्दी में चंद-राजाओं के समय आये। गंगोली में तत्कालीन मणकोटी राजा के दरबार में गये। उन्होंने प्रतिष्ठा-पूर्वक ठहराया। रिखाड़ी ग्राम जागीर में दिया। बाद को उप्रेतियों से लेकर उप्रेत्यड़ा अथवा उप्रड़ा गाँव भी जागीर में दिया। जयदेवजी के पुत्र रविदेव, उनके रामदेव। रामदेवजी के भानुदेव, पश्चात् उनके श्रीधर और श्रीधर के बलभद्र हुए। बलभद्रजी के पुत्र शिवदेव, उनके दामोदर, शंभुदेव व भानुदेव तीन पुत्र हुए। दामोदर से शर्म व श्रीनाथ दो पुत्र हुए। भानुदेव के नाथू और विश्वरूप। शंभुदेव के भवदास। इन्हीं चार भाइयों के नाम से पंत इस समय चार घरानों (राठों) में विभाजित हैं— (१) शर्म, (२) श्रीनाथ, (३) नाथू, (४) भवदास। सन् १५०० ई० के लगभग उप्रेती घराना अत्याचारी होने से राजदृष्टि से उतर गया। उक्त चारों पंत-बंधु मणकोटी दरबार में प्रतिष्ठा पा गये। (१) शर्म राजवैद्य हुए (२) श्रीनाथ राजगुरु, (३) नाथू पौराणिक, (४) भवदास सेनाध्यक्ष। उक्त तीन पंत मांस नहीं खाते। भवदास घराने के मांस खाते हैं। राजा ने सेना में होने से मांस खाने की आज्ञा देदी। नाथू के छोटे भाई विश्वरूप उप्रेतियों के संबंधी होने से उन्हीं के पक्ष में रहे। राजा ने समझाया और उनके भाई भी समझाते रहे कि उप्रेतियों का साथ छोड़ें, पर विश्वरूपजी हठ में आ गये, भाइयों का कहना न माना। हठ करने से हठवाल कहलाने लगे। कुछ लोग कहते हैं कि दरबार से बहिर्मुख होकर हाट में रहने लगे, इससे हटवाल पंत कहे जाते हैं।

सन् १५६५ ई० के लगभग कुमाऊँ का राजदरबार अल्मोड़ा में आया। मणकोटी राजा का गंगावली-राज्य चंद-राज्य में शामिल हुआ। चंद-राजाओं के दरबार में भी पन्तों की प्रतिष्ठा बढ़ती रही। अनेक अच्छे अच्छे शास्त्रज्ञ विद्वान्, कवि और उत्तम-उत्तम वैद्य पंतों में समय-समय पर होते रहे, जिनको अनेक ग्राम जागीर में मिलते रहे।

शर्म पंत—इस वंश के पंत अल्मोड़ा, उप्रड़ा, कुनलता, बरसायत, बड़ाऊँ जजूटा, मलेरा, अधार, छखाता, मालून में रहते हैं।

श्रीनाथ—तिलाड़ी, पांडेखाला, अग्रौन में।

नाथू—डुमालखेत, खूंट, ज्योली, सिलौटी में।

भवदास या भौदास—पाली, स्यूनराकोट, गरों, भटगाँव, धनौली, खनताली आदि-आदि।

पंत महाराष्ट्र देश के रहने वाले हैं। किन्तु यहाँ पर ये लोग तेवाड़ी, जोशी, पांडे, भट्ट, पाठक आदि सम्प्रदायों से विवाह करते है। इनकी स्त्रियाँ भी चाहे किसी गोत्र से आई हों, मांस नहीं खा सकतीं। इनकी कन्याएँ अन्यत्र ब्याही जाने पर चाहें, तो मांस खा सकती हैं, पर अक्सर देखा गया है कि पंत-कन्याएँ मांस से परहेज़ करती हैं।

पाराशरी पंत—पं० जयदेव पंतजी के साथ उनके बहनोई पं० दिनकरराव पंत पाराशर गोत्री भी दक्षिण से आये थे। मणकोटी राजा ने जोग्यूड़ा ग्राम जागीर में दिया। उनके वंशज कालसिला, पिपलेत, चिटगल तथा गंगोली के अन्य ग्रामों में भी रहते हैं। ये मांस खाते हैं। कोई-कोई लोग इनके मूल पुरुष का नाम नीलमणि पंत भी बताते हैं।

वशिष्ठगोत्री पंत—इन दो पंतों के अलावा कुछ वशिष्ठगोत्री पंत भी हैं, जो बलना व कुड़कोली में हैं। ये पाराशर व भारद्वाज पंतों से वैवाहिक संबंध करते हैं। मांस भी खाते हैं।

पांडे—(१) मंडलिया पांडे—श्रीचतुर्भुज पांडे सारस्वत ब्राह्मण खरोटा के रहनेवाले कुँ० सोमचंद के साथ कालीकुमाऊँ में आये। जब कुँवर सोमचंद ने कालीकुमाऊँ का राज्य पाया, तो इनको मंडलिया का पद दिया। मनली गाँव जागीर में मिला। यह मल्ले मंडलिया नाम से कहलाये। इनकी संतान मानजी वगैरा गाँवों में रहती है। मंडलिया के मानी यह हैं कि राजा सोमचंद उन दिनों कालीकुमाऊँ के छोटे राजा थे। डोटी के महाराजा के ताबेदार मंडलेश्वर राजा कहलाते थे, इसलिये राजा सोमचंद ने अपने छोटे राज्य के दो हिस्से किये—(१) मल्ला-मंडल, (२) तल्ला-

मंडल। इन मंडलों के कर्मचारी (जो उस समय कारदार कहे जाते थे) मंडलिया कहे गये।

चतुर्भुज मल्ला-मंडल के कर्मचारी थे, और तल्ला-मंडल के कर्मचारी श्रीमूलदेव पांडे शर्मा सारस्वत ब्राह्मण थे। ये भी कुँ० सोमचंद के साथ आये थे। इन दोनों के वंशज अब मंडलिया उर्फ़ मानलिया पांडे कहे जाते हैं। ये ज़्यादातर काली कुमाऊँ में हैं। दो-एक घर अल्मोड़ा में भी हैं।

(२) देवलिया पांडे (गौतमगोत्री)—अठकिन्सन कहते हैं कि गौतमगोत्री पांडे थोहरचंद के समय कांगड़े से आये। वे पांडेखोला, चामी, हाट, छचार में रहते हैं।

पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं कि श्रीजयंतीदेव पांडे शर्मा पश्चिम ज्वालामुखी से कुँवर वीरचंद के पास डोटी की तराई में आये। जब वीरचंद राजा हुए, तो उन्होंने पांडेजी को अपना पुरोहित बनाया। देवल उर्फ़ द्योलगाँव जागीर में दिया। इनकी औलाद देवलिया उर्फ़ द्योलिया कहलाई। 'भोजक' भी कहे जाते हैं। मल्ला मंडलिया व देवलिया पांडे दोनों एक ही क़िस्म के ब्राह्मण गिने जाते थे। द्योलिया पांडे द्योल, छाना, पल्यूं, संगरौली, पांडेखोला, बिलकोट, छचार, बाँसभीड़ा, झिजाड़, पाटिया आदि ग्रामों में रहते हैं।

पं० रामदत्त ज्योतिर्विदजी लिखते हैं कि गौतमगोत्री पांडों के मूल-पुरुष पं० बालराज पांडे यहाँ ज्वालामुखी कोट कांगड़ा से आये थे। उक्त स्थानों के अलावा इनके वंशज बाड़ी व दोनाई ग्राम (गढ़ मुक्तेश्वर) में रहते हैं।

पल्यूंवालों के ताम्रपत्र में लिखा है:—

कल्याणचन्द्रसुतं रुद्रनरेन्द्र सूनुः।
श्रीलक्ष्मणेन्द्र तनयेन धुरन्धरेण॥
भूमिर्मनारथ भगीरथ पण्डताभ्याम्।

(३) वत्स भार्गवगोत्री पांडे—इस गोत्र के मूल-पुरुष, जो कुमाऊँ में आये, वे श्रीब्रह्म पांडे थे। वे कांगड़े से आये। राजा संसारचंद के यहाँ वैद्य हुए। इनके चार पुत्र हुए—(१) बद्री, (२) कालधर, (३) दशरथ, (४) देवकीनंदन।

(१) बद्री (अठकिन्सन इनको बालमीक भी कहते हैं) की सन्तान नायल या पारकोट में रही। ये पारकोटी पांडे या नायल के पांडे कहलाते हैं। (२) कालधर की संतान सीरा में वैद्य हैं। (३) दशरथ के घराने के अनूपशहर में रहते हैं, प्रसिद्ध वैद्य हैं। (४) देवकीनंदन की संतान मझेड़ा में रही। (किन्तु अठकिन्सन साहब कहते हैं कि दशरथ की संतान मझेड़ा

में रही, और देवीवल्लभ के वंशज अनूपशहर को गये । ये सब ब्रह्म पांडे के पाँच पुश्त बाद माघ पांडे के पुत्र थे) राजा के पुरोहित भी रहे ।

(४) सीमाल्टीय पांडे—कश्यपगोत्री श्रीहरिहर पांडे राजा सोमचंद के साथ आये थे, ऐसा स्व० ज्योतिषाचार्य पं० मनोरथ शास्त्रीजी ने लिखा है । पर पं० रुद्रदत्त पंतजी ने श्रीधर पांडे शर्मा को कन्नौज से आया हुआ बताया है । वह डोटी की तराई में कुं० वीरचंद को मिले । उन्होंने राजा होने पर उनको अपना गुरु बनाया । रसिपौला गाँव जागीर में दिया, जिसका नाम पीछे सीमाल्टीय हुआ । बाद को चंद-राजाओं ने एक सिमल्टिया पांडे को रसोइयों के दग़ाबाज़ी करने पर अपना विश्वासपात्र जान रसोइया बनाया, और सब लोगों से कहा कि उनके हाथ का भोजन करें । अठकिन्सन साहब कहते हैं कि सिमल्टिया या सीमाल्टीया की व्युत्पत्ति श्रेष्ठ मंडल से है, जिनके मानी रसोई के हैं (They are also called Semaltiyas or Shimaltiyas from the village of that name, which is derived from Srestha-mandala, the kitchen, their office being that of *rasoya* or purveyor and cook—Atkinson) । अब वे ढोलीगाँव, सिमल्टा, कुमाऊँ, सालम, चंफानौला, पचार, चामी, बिजौरी, मानिली आदि स्थानों में रहते हैं । श्रेष्ठमंडली पांडे से ही ये लोग सीमाल्टीय या सिमल्टिया पांडे कहलाये । अठकिन्सन साहब को किसी ने यह बात ग़लत बताई कि श्रेष्ठ मंडल के मानी रसोईघर के हैं । सीमल्टीया पांडे वास्तव में सबसे पुराने व प्रतिष्ठित बंश के हैं, जो शायद चंद या कत्यूरी राजाओं के साथ आये । सबसे पहले राजगुरु ये ही ज्ञात होते हैं । राजगुरु होने से ही ये श्रेष्ठ मंडलिया पांडे कहलाते थे । कालीकुमाऊँ में ये अभी विशेष आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं ।

(५) काश्यप गोत्री पांडे—यह बड़खोड़ा के पांडे भी कहलाते हैं । श्रीमहती पांडे कान्यकुब्ज ब्राह्मण कन्नौज से कूर्मांचल में आये । उनके सिंह व नृसिंह दो पुत्र हुए । बटोखरी (ड्यालगढ़ी उर्फ बड़ो खड़ी) में ठहरे । यह स्थान काठगोदाम के निकट है । पहले वहाँ क़िला व बाज़ार था । राजा ने इनको गुरु भी बनाया । इनमें से नृसिंह की संतानें बैरती, भाटकोट, गिंवाड़, खरगोली, पीपलटांडा आदि में रहती हैं । सिंह की संतान पांडेगाँव सिलौटी, बाड़ाखेड़ी, नाहन, नैपाल आदि स्थानों में हैं । नैपाल में इस समय भी राजगुरु हैं ।

(६) भारद्वाजगोत्री पांडे—पं० श्रीवल्लभ पांडे उपाध्याय कान्यकुब्ज ब्राह्मण कन्नौज के खोर ग्राम से चंद-राजा के समय आये थे—

श्रीखोर ग्राम वास्तव्यं कान्यकुब्ज कुलाग्रणी ।
श्रीवल्लभ समायातः कूर्मादोगण पर्वते ॥

खोर ग्राम में चार भाई थे । देवदत्त, हरिदत्त, शंभुदेव तथा श्रीवल्लभ । इनमें से पं० श्रीवल्लभजी कुमाऊँ को आये । यह ठीक-ठीक ज्ञात नहीं कि ये कत्यूरी राजाओं के समय आये या चंदों के, पर ऐसा ज्ञात होता है कि ये दोनों के राजगुरु रहे । श्रीवल्लभजी पांडे उपाध्याय भी कहे जाते थे, क्योंकि वे संस्कृत के धुरंधर विद्वान् थे ।

अठकिंसन - गज़ेटियर में उनके बारे में जो कुछ लिखा है, उसका कुछ अंश यहाँ पर उद्धृत करते हैं:—

"श्रीवल्लभ पांडे उपाध्याय कन्नौज के कन्नौजी (कान्यकुब्ज) ब्राह्मण थे । वे राजगुरु थे । कहते हैं, आपने कालीमाटी पर्वत में लकड़ी न मिलने से राजा के भंडार से लेकर लोहे का होम कर दिया । कालीमाटी पर्वत में राजा का शस्त्रागार या सेलख़ाना था । पांडेजी ने रात को वहाँ पहुँचने पर लकड़ी माँगी । संत्रियों ने मज़ाक़ में लोहे के डंडे दे दिये । पांडेजी तंत्र-शास्त्री थे । उन्होंने लोहे का होम कर दिया । तभी से वहाँ की मट्टी काली होनी कही जाती है । जिस शाखा ने लोहे का होम किया, वह लौहहोमी अर्थात् लोहनी कहलाई । जो लोग वेद में निपुण थे, वे कांडपाल या कन्याल कहलाये, क्योंकि वे वेदों के कांडों या रिचाओं के पालक थे । पहले इनको लोहना, थापला, सत्राली आदि जागीरें मिलीं । सत्राली के जिस स्थान में श्रीवल्लभजी रहते थे, वहाँ से पानी दूर था । उनकी स्त्री को पानी पूजा के लिये दूर से लाना पड़ता था । एक दिन उनकी स्त्री थक जाने से पानी को हाथ में न लाकर सिर पर धरकर लाई । श्रीवल्लभजी ने कहा कि पूजा का पानी सिर पर रखने से भ्रष्ट हो गया है । इस पर स्त्री नाराज़ हो गई, कहने लगी कि यदि ऐसे ही तांत्रिक पंडित हों, तो या तो पानी ख़ुद ले आओ, या पैदा कर लो । इस पर पांडेजी ने कहा कि वे देवता से प्रार्थना करेंगे कि पानी यहीं पर निकल आवे ; किंतु पानी के निकलने पर आश्चर्य न करना । इस पर पांडेजी ने कुशा घास उखाड़ी, पानी निकल आया । पंडितानीजी आश्चर्य में आकर 'हें हें' कहने लगीं । पानी कम हो गया । वह धारा अभी तक श्रीवल्लभजी के धारे के नाम से विख्यात है ।" (गज़ेटियर जिल्द १२, पृष्ठ ४२५-४२६)

बाद को राजा ने इस वंश के लोगों को राजगुरु भी बनाया। पांडिया उर्फ़ पाटिया गाँव जागीर में दिया। गुरु भी बनाया। इस वंश के लोग पाटिया, कसून, पिलिख, बरेली, अनूपशहर, मेरठ, पतेलखेत, भैंसोड़ी, ओकाली बल्दगाड़, भगौती, आदि स्थानों में रहते हैं। लोहनी व कांडपाल लोहना, कांडे, कोटा, कुमल्टा, लछमपुर, थापला, कांटली, भेटा, पनेरगाँव, भाड़कोट, खाड़ी, बंटगल, काफड़ा, कोतालगाँव, ताकुला, मनार, अल्मोड़ा आदि-आदि स्थानों में फैले हैं।

जोशी

जोशी, ज्योतिषी, ज्योतिर्विद सब एक ही संज्ञावाचक हैं। जो ज्योतिष-शास्त्र को जाने, वह ज्योतिषी उर्फ़ जोशी कहा जाता है। पुराने ताम्रपत्रों में 'जोईशी' लिखा है। मध्य प्रदेश व दक्षिण में जोशी लोग बड़े विद्वान् हैं व प्रतिष्ठित पदों पर हैं, पर संयुक्तप्रान्त में वे सामान्य गिने जाते हैं, किन्तु कूर्मांचल में वे काफ़ी प्रतिष्ठित समझे जाते हैं। यद्यपि राजनीति में ज़बरदस्त भाग लेने से उनके ख़िलाफ़ जन श्रुति भी काफी है, देश के जोशी ज्यादातर सामवेदी हैं। पहाड़ के यजुर्वेदी हैं। ये लोग देश के जोशियों से भिन्न हैं। पहाड़ में जोशी लोग ज्यादातर कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। वे षट्कुली ब्राह्मणों में से हैं। ज्योतिषी होने से जोशी कहलाए। राजनीतिक बागडोर उनके हाथ में होने से वे काफ़ी प्रभुता पा गए। आरंभ में ज्योतिषी होने से ही जोशी कहे गए।

इनकी बुद्धि, गुणग्राहकता, राजनीतिक चातुर्य निर्विवाद है। अनेक शताब्दियों तक इन्होंने कुमाऊँ के राजाओं व लोगों को शतरंजों की गोटों की तरह नचाया है। तमाम राजनीतिक शक्ति ज़्यादातर झिजाड़, दन्या व थोड़ी-सी गल्ली के जोशियों के हाथ रही। अँगरेज़ी शासन-काल में अब चीनाखान व मकिड़ी के जोशी भी आगे बढ़ गए हैं।

झिजाड़ के जोशी—पं० सुधानिधि चौबे (सनाढ्य ?) कान्यकुब्ज ब्राह्मण ने, जो उन्नाव में ड्योड़ियाखेड़ा के रहनेवाले थे, कुँ० सोमचंद का पत्रा देखकर कहा था कि विचार करने से जोतिषानुसार उनको शीघ्र ही उत्तर की ओर राज्य-प्राप्ति होनेवाली है। तब कुँ० सोमचंद ने सुधानिधिजी से कहा कि यदि उन्हें राज मिला, तो वे उनको अपना वज़ीर बनावेंगे। जब राजा सोमचंद कुमाऊँ में आये, तो सुधानिधि साथ आये थे। राज पाने पर वे वज़ीर या दीवान बनाए गए। चंपावत में सेलाखोला गाँव में रहने से सेलाखोला के जोशी कहाये। अल्मोड़ा बसने पर झिजाड़ उर्फ झुस्याड़ गाँव में रहने से झिजाड़ के जोशी भी कहाये। इन गाँवों के अलावा अमोली व

डुंराकोट गाँव भी पट्टीचालसी में मिले। श्रीहेरम्ब जोशीजी राजा लक्ष्मीचंद के समय में अल्मोड़ा आये। इनके पुत्र श्रीविष्णुदास व नरोत्तम जोशीजी को झिजाड़ मिला। वे राजा त्रिमलचंद के मंत्री थे। इनके पुत्र श्रीजयदेवजी को दशलता व बजेलगाँव मिले। उनकी संतान में से पं० शिवदेव जोशीजी राजा कल्याणचंद, व दीपचंद के समय प्रसिद्ध मंत्री थे। श्रीशिवदेव जोशीजी के दो पुत्र थे—(१) जयकृष्ण(२) हर्षदेव जोशी। इन्होंने चंद, गोरखा व अँगरेज़ी शासनकाल में अपने राजनीतिक कौशल से सबको चकित किया। सरकारी पेंशनर भी हुए। इनके पं० मधननारायण गुजलला व पं० बदरीदत्त जोशी हुए, जो आखिरी पो० पेंशनर थे। जयकृष्णजी के लक्ष्मीनारायण हुए। ये बक्सी कहलाते हैं, क्योंकि ये फ़ौजी सरदार भी थे। श्रीविष्णुदासजी के ऋषीकेश हुए। इनके मनोरथ, पद्मापति, जयकृष्ण, बालकृष्ण, दामोदर हुए। मनोरथजी की ५ सन्तानें हुईं—रामकृष्ण, लक्ष्मीकान्त, दयानिधि, बीरभद्र, बलभद्र। रामकृष्ण को कलौनग्राम मिला। सुप्रसिद्ध विद्वान् हरिदत्तजी षट्शास्त्री इन्हीं के वंश में थे। लक्ष्मीकान्त को कोताल गाँव मिला। इनकी सन्तान जयानंद व नरोत्तम जोशी थे। जयानंदजी के धरज्यू, रतनपतिज्यू,जीवनाथज्यू हुए। रतनपतिजी के पुत्र प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ गौरीदत्तजी हुए। एक भाई को बालिया गाँव भी मिला। इनकी सन्तान गंगादत्त वाला, वग़ैरह हैं। हेरम्ब जोशी की जिस सतान को सेलाखोला मिला, वे सेलाखोला के जोशी कहाये। ये सब मल्ले जोशी कहे गये। सुधानिधिजी की संतान में श्रीविजयदास जोशीजी को चौगर्खा में दिगौली गाँव मिला। दिगौली के तल्ले जोशी कहलाते हैं। ये लोग अब तक भी दीवान कहे जाते हैं। अब ये लोग सेलाखोला, झिजाड़, दिगौली, नई गाँव, बलिया गाँव, बाराकोट, कलौन, कोटालगाँव, अल्मोड़ा आदि-आदि स्थानों में रहते हैं। ये लोग महर के धड़े के हैं। ये सब गर्गगोत्री जोशी हैं।

दन्या के जोशी—उपमन्युगोत्री श्रीनिवास द्विवेदी प्रयागराज के समीप जयराज मकाऊ के निवासी राजा थोहरचंद के समय १४वीं शताब्दी में काली-कुमाऊँ में आये। राजा ने पांडे का पद देकर चौथानी ब्राह्मणों में नियुक्त किया, और चौकीगाँव रहने को दिया। कुछ पीढ़ियों बाद इनमें से एक भाई नैपाल को गये, वहाँ प्रतिष्ठापूर्वक दरबारी हुए। कुछ भाई वैद्य हुए। जो भाई काशी से ज्योतिष पढ़कर आये, वह जोशी कहलाये। १६वीं शताब्दी में श्रीरघुनाथ जोशी को चौगर्खा में दन्या गाँव जागीर में मिला। दन्या के जोशी कहलाने लगे, जागीश्वर मंदिर के प्रबन्धकर्ता रहे। अल्मोड़ा में जब दरबार आया, तो श्रीभरत जोशी राजपदाधिकारी हुए। दीवान कहलाने लगे। राजा

बाजबहादुरचंद व उद्योतचंद के समय जयदेव जोशी एवं राजा जगतचंद व देवीचंद के समय श्रीवीरभद्र जोशी मंत्री रहे। राजा कल्याणचंद के समय शिवदेव जोशी, भवानन्द एवं हरिराम जोशी मंत्री हुए। यशोधर जोशी के नाम से जशपुर बसा। ये तराई के अधिकारी थे। शिवदेवजी की सन्तान में त्रिलोचन जोशीजी गोरखा-राज्य के समय दीवान तथा अँगरेज़ी राज्य में सदर-अमीन रहे। उनके पुत्र पं० बदरीदत्त जोशी अँगरेज़ी राज्य में रामजे साहब के समय एक विराट् राजनीतिज्ञ हो गये हैं। भवानन्दजी की संतान में कृष्णदेव जोशी राजा दीपचंद के समय से महेन्द्रचंद के समय तक मन्त्री रहे। गोरखा-राज्य में भी श्रीकृष्णदेव तथा श्रीजीवानन्द जोशी कारदार रहे। हरिराम जोशीजी की सन्तान में रामकृष्णजी गोरखा के समय दीवान, बाद को अँगरेज़ी राज्य में मुंसिफ़ रहे। अब यह दन्या, अल्मोड़ा, चौगर्खा, सोर, काँडा आदि स्थानों में रहते हैं। ये भी दीवान कहे जाते हैं। चंदराज्य में ये फरत्याल धड़े के थे। झिजाड़ की गद्दी मल्ली, यह गद्दी तल्ली कहलाती थी।

गल्ली के जोशी—आंगीरसगोत्री कन्नौज से दो भाई श्रीनाथूराज व विजयराज ज्योतिषाचार्य यहाँ आये। कत्यूरी राजा के समय में कार्त्तिकेयपुर नगरी में ठहरे। कत्यूर के निकट सेढे (सेणू) गाँव जागीर में मिला। राजज्योतिषी नियुक्त हुए। सेढ्याल जोशी कहे गये। अठकिंसन साहब कहते हैं कि ये लोग अपने को खोर के पांडे के वंश का बताते हैं। एक भाई को पाला गाँव जागीर में मिला। इस वंश के लोग अब तक ज्योतिष का काम करते हैं, माला के जोशी कहलाते हैं। पं० रुद्रदेव जोशीजी ने ज्योतिषचन्द्रार्क ग्रंथ बाजबहादुरचंद के समय बनाया था।

सर्प व पल्यूड़ा में भी एक भाई की संतान को जागीरें मिलीं। यहाँ भी बहुत-से सुयोग्य ज्योतिर्विद हुए हैं। ग्वालियर-दरबार में भी इस बंश के पुरुष को दानाध्यक्ष पद मिला। श्रीरमापति दैवज्ञ अद्भुत ज्योतिषी हुए हैं। नाहन में भी धर्माधिकारी हैं। श्रीपद्मनिधि जोशी को गल्ली गाँव मिला। तब से गल्ली के जोशी कहलाये। सन् १६२६ में राजा त्रिमलचंद के दरबार में श्रीदिनकर जोशी ब्राह्मणों के हिसाब के लेखक नियुक्त हुए। सहायक दीवान कहलाये। तब से राजकाज में भाग लेने लगे। ये गल्ली में रहते हैं। इस गोत्र के जोशी चौड़ा, कपकोट, खखोली, हनेती, खाड़ी, गणकोट, सर्प, पल्यूड़ा, माला, कत्यूर, गल्ली, महिनारी तथा कुछ लोग मसमौली व गढ़वाल में भी रहते हैं।

भेरंग के जोशी—मणकोटि राजा के समय डोटी इलाक़े के पीउठणा

स्थान से श्रीहरि शर्मा कान्यकुब्ज ब्राह्मण कौशिकगोत्री, गंगोली में आये। ज्योतिष में प्रवीण होने से पोखरी गाँव मिला, तब से भेरंग के या पोखरी के जोशी कहे जाते हैं। राजा बाजबहादुरचंद के समय श्रीमनोरथ जोशी को जागीर मिली। राजा उद्योतचंद के समय श्रीऋषीकेश जोशी को सेलोनी ग्राम ताम्रपत्र करके दिया गया। राजदरबार में ज्योतिषी रहे। मालावालों के सहयोगी रहे। चार राठ या चार घराने इनमें भी हैं। माधवजी की सन्तान छखाता में रहती है। पं० रामदत्त ज्योतिर्विद पं० कृष्णानंद जोशीजी को गंगोली में आना बताते हैं। ऐसा भी कहते हैं कि इनके मूल पुरुष ने कटार मारकर जल निकाला था, उस जलाशय का नाम रुड़की मंगरू है।

लटौला जोशी—पं० रुद्रदत्त पंतजी कहते हैं कि श्रीशशि शर्मा कन्नौज से चंदवंश के समय कालीकुमाऊँ में आये। पं० रामदत्त दुबे ज्योतिर्विद श्रीपचारद दुबे शुक्ल ब्राह्मण का कुमाऊँ में बदरीनारायण-यात्रा को आना बताते हैं। स्त्री गर्भवती थी। जोशीमठ में रमाकान्त-नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। गंगोली में मणकोटि राजा ने राज्य में ठहराया। लटौला प्रभृति गाँव जागीर में मिले। लटौला जोशी कहलाये। पं० रुद्रदत्तजी कहते हैं—"ब्राह्मण विद्वान् थे, पर उनकी ज़बान तुतलाती थी। इस कारण उनको लाटो यानी गूंगा जाशी कहते थे, जिसके कारण जो गाँव जागीर में मिला, उस गाँव का नाम लाटोवाला उर्फ़ लटौला गाँव प्रसिद्ध हुआ।" ये लटौली, उर्ग, भेटा, पाटिया, भैंसोड़ी, तिलाड़ी, सकतौली, जजूटा आदि गाँवों में रहते हैं।

शिल्वाल जोशी—राजा सोमचंद के समय कन्नौज के निकट असनी गाँव से भारद्वाजगोत्री त्रिवेदी लंकराज तीर्थयात्रार्थ कुमाऊँ में आये। वहाँ शिलग्राम जागीर में मिला। शिल्वाल जोशी कहलाये। श्रीपृथ्वीराज जोशी अल्मोड़ा आये। पं० श्रीचंद त्रिपाठी ने इनको अपनी कन्या ब्याह दी। अल्मोड़ा की भूमि में तृतीयांश भी दिया। राजा ने इनको पुरोहिताई भी दी। पृथ्वीराज की ३ सन्तानें हुईं—(१) रुधाकर, (२) दयाधर, (३) भाष्कर। तीनों ज्योतिष में अच्छे विज्ञ हुए। रुधाकरके घरानेके लोग शिल्वाल जोशी कहलाये। अल्मोड़ा जोशीखोला में रहते हैं। एक भाई राजा लालसिंह के साथ काशीपुर गये। वहीं पुरोहित हो गये।

सैंज के जोशी—भास्कर की संतान को अल्मोड़ा राजधानी आने पर सैंज, अनुली प्रभृति ग्राम बिसौत पट्टी में मिले। ये सैंज के जोशी कहलाते हैं। अल्मोड़ा व बिसौत में रहते हैं।

मकड़ी व खेर्द के जोशी—उपर्युक्त वंश में दयाधर की संतान क

ज्योतिर्विद्या की वृत्ति द्वारा खेर्द तथा मकड़ी-नामक ग्राम राजद्वार से प्राप्त हुए। मकड़ी के रहनेवाले मकड़ी के जोशी तथा खेर्द के जोशी कहलाते हैं।

चीनाखान के जोशी—पं० लीलानंदजी के समय की एक वंशावली बनी है। उसमें लिखा है कि महाराजा ज्ञानचंद के समय हरू व वरू-नामक दो ज्योतिर्विद् बंधु थे। उनमें से जपाकर की संतान को श्रीहाट जागीर में मिला, वे सेलालखोला के जोशी कहलाये। प्रभाकरजी को सिलग्राम जागीर में मिला। नरोत्तमजी की संतान बिसौत में बसी। देवनिधि की संतान विष्णु बल्लभ वग़ैरह मकीड़ी को गये। सुधाकरजी की संतान पं० चंद्रमणि जोशी गोरखा राज्य के समय फ़ौजदार हुए। उनको धुरा गाँव जागीर में मिला, धुरयाल कहलाये। बाद को चीनाखान में रहने से चीनाखान के जोशी कहे गये। वाल्टन साहब ने लिखा है कि ये जोशी अल्मोड़ा के किसी जोशी से अपना संबंध होने का प्रतिवाद करते हैं। वे कन्नौज के तीन ब्राह्मणों से अपना वंश चलना कहते हैं।

त्रिपाठी—तिवाड़ी भी कहे जाते हैं। (कुछ लोग अपने को त्रिवेदी भी लिखते हैं) गौतमगोत्री सामवेदी हैं। गुजरात देश के अमलाबाद बड़नगर के निवासी पं० श्रीचंद तिवारी मय अपने पुत्र पं० शुकदेव तिवारी के राजा उद्यानचंद के समय आये। राजा ने पिता के बदले पुत्र की ख़ातिर ज़्यादा की। लड़के की मुलाक़ात हुई, पर पिता की न हुई। श्रीचंद (इनको लोग भूल से सैजन्द तिवाड़ी भी कहते हैं) नाराज़ होकर अल्मोड़ा की ओर आ गये। तब अल्मोड़ा न बसा था, राजधानी खगमराकोट में थी। वहाँ पर मांडलीक कत्यूरी राजा का राज्य था। राजा का माली डाली ले जाता था। श्रीचंद त्रिपाठी ने माली से पूछा कि कहाँ को वह डाली ले जाता है? उसने कहा, राजा के लिये ले जाता हूँ। तब त्रिपाठीजी ने कहा कि वह फल राजा को मत देना, उसके भीतर दूसरा फल है इसको राजा देखे या खायेगा तो अशुभ फल होगा। माली ने राजा से वे बातें कहीं। राजा ने उत्सुकता से नींबू को काटा, तो उसके भीतर दूसरा फल निकला। तब राजा को आश्चर्य हुआ। राजा ने उस ब्राह्मण को बुलाया। पूछा कि वे कहा के हैं। ब्राह्मण ने अपने देश, जाति तथा आस्पद का वर्णन किया। तब राजा ने प्रणाम-पूर्वक कहा कि उन्होंने जो कहा है, उसी के माफ़िक यह फल निकला। अब इसके निमित्त क्या करना चाहिए। तब उन्होंने कहा कि जहाँ यह फल पैदा हुआ है, उस बाग़ को दान करके ब्राह्मण को दे देना चाहिए। राजा ने कहा कि दान

के पात्र ता वही हैं। उन्होंने कहा, वे तो परदेशी हैं। दूर गुजरात के रहनेवाले हैं, वे यहाँ पर भूमि लेकर क्या करेंगे। किंतु राजा ने जब हठ किया, तो उन्होंने जगह लेनी अंगीकार की। तब प्रायः सारी अल्मोड़ा की भूमि संकल्प करके श्रीचंद तेवाड़ी को दे दी। अल्मोड़ा में जल कम था। तिवाड़ीजी तांत्रिक विद्या में प्रवीण थे, उन्होंने प्रोक्षण करके जल पैदा किया। इन्हीं की संतान अल्मोड़ा के तिवाड़ी कहलाये। जब चंद राजा बालोकल्याणचंद ने अल्मोड़ा बसाया, तो कहा जाता है कि इनको भूमि (जो दसगुना अधिक थी) छखाते के नंदीग्राम में दी, किंतु इस ग्राम का पता इस समय नहीं चलता।

श्रीचंद त्रिपाठी के पहले पुत्र शुकदेव को कालीकुमाऊँ में बिंडा गाँव जागीर में मिला, उनकी संतान बिंडा के तिवाड़ी कहलाते हैं। अल्मोड़ा में आकर श्रीचंद त्रिपाठीजी के तीन पुत्र हुए—(१) देवानंद, (२) जगन्नाथ, (३) जयराम त्रिपाठी।

(१) देवानंद के दो पुत्र हुए—(१) मघी, (२) गंगा त्रिपाठी। मघी की संतानें खोल्टा में रहती हैं। गंगा त्रिपाठी के वंशज निशणी ग्राम तथा जाख में रहते हैं, और अल्मोड़ा के समीप इजर, चीनाखाना, धारानौला, कुंगाड़खोला, शैल, पणिउड्यार में रहते हैं। खैरना व मजेड़ा ग्राम में भी इसी वंश के त्रिपाठी रहते हैं।

(२) पं० जगन्नाथ त्रिपाठी के मनी, महानंद, जयशर्मा तीन पुत्र हुए। मनी की संतान मध्य अल्मोड़ा के त्यूनरा मुहल्ले में एवं चौगर्खा के चितै ग्राम में रहते हैं। रामपुर व काशीपुर में भी हैं। महानंद के घराने के लोग तल्ली चौंसार, खरकोट, डुबकिया (अल्मोड़ा) में रहते हैं। डुबकिया के लक्ष्मीपति त्रिपाठी को करास ग्राम मिला। ये लोग धर्माधिकारी भी हैं। जयशर्मा के तीन पुत्र थे—संताकर, रखमी, भीखा। संताकर की संतान में नारायण तेवाड़ी हुए, जिन्होंने बाजबहादुरचंद की रक्षा की, और जागीरें पाईं। नाम अमर हो गया। राजा ने इनको चौथानी ब्राह्मणों में भी शामिल किया। इनके नाम का मंदिर अभी तक अल्मोड़ा में विद्यमान है। इनकी संतान मल्ली चौंसार, सुप, बरेली, चाऊपुर, चंदौसी, हाथरस आदि में हैं। राजा बाजबहादुरचंद ने सुपै, लोहस्याल आदि गाँव भी दिये। रखमी के पुत्र नीलकंठ को कैड़ारौ में बगड़ ग्राम मिला। वे वहाँ के तेवाड़ी कहलाते हैं। इसी वंश में कुछ लोग अग्निहोत्री भी कहलाते हैं, जो चौंसार में रहते हैं।

रखमी के संतान मध्ये दयानंद हुए। ये पोखरखाली में रहते हैं। भीखा की संतान ज्योली में रहती है। इनमें कमलापति के पुत्र श्रीगंगाराम

शास्त्री बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। गोरखा-राज्य में उनको मल्ला स्यूनरा में कई ग्राम जागीर में मिले। उधर धनियाँकोट में लोहाली, मजेड़ा, हरतोला, सेल टूना आदि मिले। पुश्तैनी शास्त्री की उपाधि भी मिली।

(३) जयरामजी की संतान थपलिया में रहती है।

कहा जाता है कि तिमली, रमड़ा, दोरा, दैरी प्रभृति के अन्यान्य त्रिपाठी गढ़वाल से आये हुए हैं। गौतमगोत्री और सामबेदी ये भी हैं, और ये भी अपने को श्रीचंद की संतान मध्ये बताते हैं।

भट्ट—विशाड़ के भट्ट ब्राह्मणों के मूल-पुरुष श्रीविश्व शर्मा दक्षिण द्रविड़-देश से ब्रह्म उर्फ़ बम राजाओं के समय सोर में आये। बम राजाओं ने उन्हें वेदपाठी जानकर अपने यहाँ आश्रय दिया। विश्वाड़ उर्फ़ विशाड़ गाँव जागीर में दिया। पश्चात् राजकर्मचारी भी बनाया। अब ये लोग विशाड़, पल्यूँ, खेतीगाँव, पांडेखोला, काशीपुर, रामनगर आदि स्थानों में रहते हैं। ये भट्ट लोग मांस नहीं खाते। पं० रामदत्त ज्योतिर्विद् कहते हैं कि अच्युत भद्र शर्मा भट्टाचार्य तैलंग-देश से मणकोटी राजा के समय आये।

विशाड़ के भट्टों के अलावा कुछ प्रकार के भट्ट और भी पाये जाते हैं। राजा भीष्मचंद के राज्य में बनारस से दक्षिण के ब्राह्मण भट्ट आये। राजा ने शुद्ध ब्राह्मण देखकर दरबार में हलवाई बनाया। इस खान-दान के लोग अल्मोड़ा में रहते हैं।

बिसौत (भटकोट) के भट्ट भी अपने को काशी से आया बताते हैं।

मिश्र वा वैद्य—उपमन्युगोत्री श्रीनिवासद्विवेदी प्रयागराज से काली-कुमाऊँ में आये। पांडे सकूनत से चौथानी ब्राह्मणों में गिने गये। वैद्यक, शास्त्र में दक्ष होने से वैद्य या मिश्र कहलाये। इनकी संतान कालीकुमाऊँ दिवदिया, कुंज, छखाता तथा अल्मोड़ा में हैं।

कोठारी · श्रीसूर्य दीक्षित कोठारी नागर ब्राह्मण मालावार के कोठार नगर से कुमाऊँ में आये। गंगोली के मणकोटी राजा ने ब्राह्मण को विद्वान् जानकर अपने राज्य में टिकाया। इनको कोठी या भंडार का रक्षक बनाया। इससे ये कोठ्याली उर्फ़ कोठारी कहलाये। इनके गाँव का नाम भी कोठ्यारा हो गया। अब यह कोठ्यारा में रहते हैं।

पं० रामदत्त ज्योतिर्विद् कहते हैं कि कोठारी लोग दक्षिण के कोंकण देश के किरात गाँव से आये। ये लोग भी पंत कहलाते थे, पर कुठार (भंडार) का काम मिलने से कोठारी कहलाये।

विष्ट डड्या, पाटणी, कुलेटा, गुरल, रस्यारा ये सब एक ही क़िस्म के ब्राह्मण चंदों के समय गिने जाते थे। लेकिन कारदारी के अनुसार राजा की तरफ़ से दरजा अलग-अलग था:—

डड्या विष्ट—श्रीदेवनिधि सारस्वत ब्राह्मण कुँवर सोमचंद के साथ कालीकुमाऊँ में आये। जब कुँवर साहब को चंपावत का राज्य तब देवनिधि ब्राह्मण को अपना कारदार बनाया। फ़ौज तथा दफ़तर में मिला, काम करने से विशिष्ट उर्फ़ विष्ट पद मिला। तब से डड्या के विष्ट कहलाये।

पाटणी—जिस ब्राह्मण को, चंद राजाओं ने काली पार डोटी के राजा के पास बतौर राजदूत के भेजा व जो लड़ाई-झगड़ों में वकील या ऐलची का काम करता था, उसको पार + तरणी = पातणी या पाटणी ब्राह्मण कहते थे। गाँव का नाम भी पाटण व पाटन रक्खा। जब इनकी संतान बढ़ी तो सोर के किसी बम राजा ने अपना दीवान भी बनाया। उनकी संतान मझेड़ा (सोर) गाँव में रहती है। बम राजाओं के उठने पर चंदों के दरबार में एक पाटणी बराबर रहता था।

यह भी खि़दमत इस पाटणी क़ौम को मिली थी कि जब सिमल्टिया पांडे वग़ैरह रसोई बना चुकते थे, तो पाटनी व पुनेटा खाने को चखते थे, ताकि जो चीज़ ठीक न बनी हो, वह ठीक बनाई जावे।

कुलेटा पांड़े—यह लोग राजा चंद के समय में राणी के गुरु थे और पीछे से कोई रसोई भी बनाते थे। बाद को शायद गुरुराणी कहलाये।

गुरेला पांडे—यह लोग चंदों के राज्य में राणी के पुरोहित थे, और रसोई भी बनाते थे।

रस्यारा—इस घराने को पाँडे का पद नहीं मिला। यह केवल रसोई बनाते थे। इनकी संतान कालीकुमाऊँ, बौरारौ के रिस्यारगाँव में रहती है।

सौज के सौंज्याल विष्ट—श्रीचंद्रधर सारस्वत ब्राह्मण कुँ० सोमचंद के साथ कालीकुमाऊँ में आये। जब वह राजा बने, तो चंद्रधर को फ़ौज के दफ़्तर में काम मिला। विशिष्ट उर्फ़ विष्ट का पद मिला, सौंज गाँव में रहने से सौंज्याल विष्ट कहलाये।

उपाध्याय—सोर में खोली के उपाध्याय व सौंज्याल विष्ट एक ही क़िस्म के ब्राह्मण हैं। अध्यापक होने से उपाध्याय कहलाये। देवी के भक्त हैं।

पाठक—श्रीजनार्दन शर्मा सारस्वत ब्राह्मण थानेश्वर कुरुक्षेत्र से मणकोटि राजा के यहाँ गंगोली में आये। राजा ने कालिकादेवी के मंदिर में पाठ करने को नियुक्त किया। तब से यह पाठक कहलाये। जिस ठौर में पाठक ब्राह्मण ने घर (जिसे पर्वती भाषा में कुड़ा कहते हैं) बनाया, वह जगह (पठ + कुड़ा) पठक्यूड़ा कहलाई। पं० रामदत्त ज्योतिर्विद इनको शांडिल्य-गोत्री कान्यकुब्ज नरोत्तम वेदपाठी के (जो अवध के साँडी-पाली गाँव में रहते थे) वंशज बताते हैं।

दसौली, कराला, ज्योली, दूसरे 'पठक्यूड़ा' में भी कुछ पाठक हैं, वे शायद अन्यत्र से आये हुए हैं।

श्रीअठकिन्सन कहते हैं—"काश्यपगोत्री पाठकों के मूल-पुरुष श्रीकमलाकर थे। वे अवध के सनारनपाली गाँव से आये थे, और मणकोटी राजा के यहाँ रहे। शांडिल्यगोत्री पाठकों के मूल-पुरुष जनार्दन थे, जो थानेश्वर से आये। पल्याल घराने के पाठक पाली में रहते हैं।"

उप्रेती—पं० रुद्रदत्तपंतजी लिखते हैं—"कत्यूरी राजा के समय डोटी के चौकी गाँव से शंभु शर्मा कनौजियाब्राह्मण कालीकुमाऊँ से आये। जहाँ पर ब्राह्मण रहते थे, उस गाँव का नाम प्रेती उर्फ़ पेती गाँव था। इससे वे उप्रेती कहे गये। ये लोग पेती, कूँ गाँव, सूपाकोट आदि-आदि स्थानों में रहते हैं।"

पं० रामदत्त ज्योतिर्विदजी लिखते हैं—द्रविड़ देश के वाजपेयी महाराष्ट्र ब्राह्मण शिवप्रसाद मणकोटि राजा के समय आये। मणकोटि राजा ने उप्रेत्यड़ा गाँव दिया। सिंह, श्रीधर, देव और पृथ्वीधर इन चार घरानों में बँटे हैं। मणकोटि राजा के वज़ीर थे। पर इन्होंने दग़ा करके राजा को मारा। रानी सती हुई। पुत्र को पंतों को सौंप गई। उप्रेती राज्याधिकार से च्युत हुए। पीछे चंद दरबार में भी ये रहे। चौगर्खा में खेतीधूरा, कफलनी में बारामंडल में सुपाकोट, पाटिया, अले में, कुमाऊँ, में बाँकूबिंडा में इधर फल्दा कोट में भी ये रहते हैं। झिजाड़ ग्राम में भी सुपाकोट के उप्रेती हैं। सोर में हुड़ेती आदि ग्रामों में रहते हैं। कुछ बागेश्वर के उत्तर में भी। इनमें भी समय-समय में अच्छे विद्वान् हुए हैं। गोरखा के समय पं० जयकृष्ण उप्रेती सेनाध्यक्ष थे। इनके वंशज अल्मोड़ा में रहते हैं।

पाटिया, झिजाड़, सुपकोट के उप्रेती एक वंश का होना बताते हैं और अन्य उप्रेतियों को दूसरे वंश का होना कहते हैं। पं० गंगादत्त उप्रेतीजी उप्रेतियों को महाराष्ट्र ब्राह्मण बताते हैं।

अवस्थी या ओस्ती—मैथिल ब्राह्मण अस्कोट के राजबार उछवपाल के समय वहाँ आये। उनका नाम पं० विद्यापति अवस्थी था। पं० रुद्रदत्तजी इनको कन्नौजिया ब्राह्मण बताते हैं। ये केवल अस्कोट में रहते हैं। यह लोग राजबारों के दीवान, गुरु, लेखक, कारबारी, पुजारी व रसोइये का काम करते रहे हैं।

झा या ओझा—पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं—"रामा ओझा मैथिल ब्राह्मण चंद-राज्य के समय कुमाऊँ में आये। उनकी संतान को राजा ने डिंडीहाट के निकट अस्कोट गाँव में देवी की पूजा करने के लिये पुजारी रक्खा। अब तक उनकी संतान वहाँ हैं। पं० रामदत्तजी लिखते हैं—"ओझा तिरहुत वा मिथिला से नैपाल, डोटी होते हुए अस्कोट पहुँचे। रजबार वंश से प्रतिष्ठा मिली।" ये अब अस्कोट में रहते हैं। कुछ काली पार भी रहते हैं।

उपाध्याय—काली पार नैपाल से आये हुए ब्राह्मण हैं। इनके पूर्वज वेदपाठी व कर्मकांडी ब्राह्मण थे।

अधिकारी—भट्ट वंश के श्रीजैराम व पारासर दो भाई मेवाड़-देश से कुमाऊँ में आये। पहले कत्यूरी राजाओं के कारदार थे। रंतगल गाँव में रहने से रंतगली कहलाये। रंतगली कौम को राजाचंद ने अपना कारदार बनाया। तराई में अधिकारी होने से अधिकारी कहाये। काशीनाथ अधिकारी ने काशीपुर बसाया।

भाट—श्रीकालीशरण राय उर्फ़ भाट ज्वालामुखी से कालीकुमाऊँ में आया। उसकी सन्तान कालीकुमाऊँ के अनेक गाँवों में रहती है।

दुर्गापाल या दुगाल—ये ब्राह्मण भारद्वाजगोत्र के हैं। वे कहते हैं कि वे कत्यूरी राजाओं के समय कन्नौज से आये। कोई तो कहते हैं कि वे दुर्गा-देवी के रक्षक या पुजारी थे। कोई कहते हैं कि वे दुर्ग के यानी किले के रक्षक थे। वे वेद पुराणों के पाठक थे।

मठपाल या मढ़पाल—ये भी भारद्वाज गोत्र के हैं। ये कहते हैं कि मधु व श्याम दो भट्ट दक्षिण से यहाँ आये। वे ज्योतिष में ऐसे प्रवीण थे कि उन्होंने पेट के बालक के चिह्नों को बता दिया। जब सत्य निकला, तो राजा ने घुसिला का गाँव जागीर में दिया। कुछ जोशी हो गये, बाकी भट्ट रहे। राजा त्रिमलचंद ने द्वाराहाट के बदरीनाथ मंदिर से बौद्ध ब्राह्मणों को निकाल इनको पुजारी का पद दिया। तब से ये भट्ट कहाये, और वहीं रहते हैं। मठ के अधिकारी होने से मठपाल कहाये।

वैष्णव—खैरागढ़ से महंत सेवादास आये। राजा ने वैष्णव-मंदिरों

की पूजा करने को बुलाया। यहाँ अब भी पुजारी हैं। महंत को शादी करने का अधिकार नहीं है। ये लोग अल्मोड़ा, कत्यूर, बौरारो में रहते हैं

भट्ट—अठकिंसन साहब कहते हैं—"भट्ट लोग भारद्वाज, उपमन्यु, विश्वामित्र व काश्यप गोत्री हैं। ये लोग कहते हैं कि वे भट्टाचार्य थे। कुछ लोग अभयचंद के समय, कुछ भीष्मचंद के राज्य के समय आना कहते हैं। कुछ कहते हैं कि श्री व हर दो भाई आए। राजा के यहाँ नौकर हुए। जिन गाँवों में बसे, उन्हीं के नाम से कहे गए यथा—बड़ुवा, कपोली, धनकोटा, डालाकोटी, मठपाल। ये लोग सब आपस में विवाह करते हैं। भट्टों में कुछ लोग देश के महाब्राह्मणों का काम भी करते हैं। ग्रहणदान भी लेते हैं। भैंस, बकरी व घोड़े का दान भी लेते हैं। ये ब्याह-शादी, बृतपंद नामकर्ण आदि में भी दक्षिणा लेते हैं।"

कुछ पुजारी लोग भी अक्सर अपने को भट्ट कहते हैं।

जागेश्वर के पंडे -"ये बड़ुवा कहे जाते हैं। पर अपने को भट्ट कहते हैं। राजा उद्यानचंद के ज़माने में बनारस से आना कहते हैं। पर ज़्यादा प्रचलित बात यह है कि ये दक्षिणी भट्ट की संतान हैं, जो उन जंगमों के साथ आए, जिनको शंकराचार्य ने तमाम मठ व मंदिरों में रखा भट्टजी ने पहाड़ी ब्राह्मणी से विवाह किया, जिसकी संतान वटुक ऊर्फ बड़ुवा कहलाई।"

पं० रामदत्तजी लिखते हैं,—"शंकराचार्य के समय कुमारिल स्वामी आए दक्षिण भट्ट ब्राह्मण साथ था, जिसने पहाड़ी ब्राह्मण की लड़की ब्याह ली। बड़ुवा उसकी संतान कहलाई। ये जागीश्वर मंदिर के पुजारी हैं।"

मंटनियाँ—दक्षिण से आए। मनटांण गाँव मिला। तब से मंटनिया कहे जाते हैं। श्रीचंदत्रिपाठी ने इनकी बड़ी परवरिश की। अल्मोड़ा में ज़मीन में भी हिस्सा दिया। तब से अल्मोड़ा के त्रिपाठियों के हर काम में शरीक रहते हैं।

दुमका—यह पहले पालीपछाऊँ के रहनेवाले थे। नारायण तेवाड़ी ने अपने आश्रम में रक्खे। तब से अल्मोड़ा में रहते हैं, दुमका कहे जाते हैं।

पनेरू—गणेश पनेरू राजा सोमचंद के साथ कुमाऊँ में आया था। उसका बंश पनेरू कहलाया।

अन्य ब्राह्मण

पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं—"बहुत ब्राह्मण कुमाऊँ के पुराने ब्राह्मण कहे जाते हैं। उनका आस्पद अक्सर गाँव के नाम से है।

राजाओं के समय बाजार को हाट कहते थे। जैसे द्वाराहाट, तैलीहाट,

सेलीहाट, गाँवहाट, सीतलाहाट, बाड़ाहाट, डिंडीहाट, गंगोलीहाट बगड़ीहाट इत्यादि। इन हाटों के पुराने बाशिंदे हटवाल भी कहे जाते थे।

चहज गाँव के पुराने ब्राह्मण चहजी ऊर्फ चौदसी कहाते थे। ये लोग चहज, दत्वाली, तपाड़ा, खोली, चिफड़थाड़ा आदि में रहते हैं। चौदसी ज्योतिषी का काम करते हैं, अतः ये जोशी भी कहे जाते हैं।

गुराणी—गुराण गाँव के
छिम्वाल—छिमी गाँव के
मंटनिया – मंटना गाँव के
कपोली—कपोला गाँव के
दुगाल - दुग गाँव के
बनौला—बनौली गाँव के
सनवाल—सन गाँव के

और भी गाँव के नाम से ये जातियाँ प्रसिद्ध हैं—बगड़वाल, सेलाकोटी मनौली, नेउली, रैगनी, पवनै, शिवनै, जनकंडिया, जुकंडिया गहत्याड़ी, चौसाल, कफड़िया, कफलिया, घरवाल, मुनगली, मतोली, नयाल, अधै, कनौणियाँ, बटौला, चमड्याल, बेलाल, सती, खत्या, मनकुन्या, मनोली, अगरवाल, चिनाल, खोनिया, सुनाल, आदि आदि।

"गढ़वाल से आये हुए वुधाणी चौगर्खा वुधमन्या में रहते हैं। गढ़वाल उर्फ गरवाल आस्पदवाले चौगर्खा के मैना गाँव में रहते हैं। नैपाल से आये हुए दुम्का ब्राह्मण कोटौली में रहते हैं। ऊपर लिखे हुए ब्राह्मणों का रिश्ता पुराने ब्राह्मणों से होता है।"

पं० रामदत्त ज्योतिर्विद लिखते हैं—"ग्राम के नाम से व वृत्ति के नाम से अनेक जातियाँ यहाँ पर हैं। जैसे पूजा करने से पुजारी, भक्ति करने से भक्त, दरबार में हरिकीर्तन करनेवाला हरबोला, फूल देनेवाला फुलारा, मठ की रक्षा करनेवाला मठपाल, दुर्ग के या मंदिर के रक्षक दुर्गापाल, रानी को मंत्र देने से गुरुरानी, बेल देकर आशीर्वाद देनेवाले बेलवाल इत्यादि। इस प्रकार तीन सौ से अधिक जातियों में ब्राह्मण विभक्त हैं। कोई उपर्युक्त पंत, पांडे आदि की संतान हैं, कोई देश से अकेले आकर बस गए। इनमें से कुछ संक्षिप्त जातियाँ, जिनका पता चला है, यहाँ भी दर्ज की जाती हैं—

कपिलाश्रमी, दुर्गापाल, मठपाल, भक्त (गल्ली की जोशी के संतान बताते हैं), हैड़िया, पढ़ालनी (सिल्वाल जोशी की संतान बताते हैं), सती, सुनाल, बिजरौला (ब्रजवाजी ब्राह्मण हैं), कनवाल, ल्वेसाली (त्रिपाठी की

संतान) बिलवाल, कैनी (पाठक की नसल में), गुनी (गुणवंत), उपरिया, दुमका (पालीपछाऊँ से फैले), सुयाल, बलूटिया व डोन्याल बमेटा (त्रिपाठी बतलाते हैं ।)

हरबोला, पलड़िया, सुनरी, कापुडी, रतखनिया, गरजाला, नौलिया, तोलिया, अनडोला, पोड़िया, बुढ़ाल कोटी, मसाल, बधणियाँ, पडनड़िया, छिम्वाल, गरवाल, त्रिल्वाल, खोलिया, दाणी, बखलिया, डाल, कोकला, मुनगली, कुमटिया, नौगई, ककड़खनियाँ, डूंठलिया, पेटसाली, चुपड़ाल, नगरकोटिया, बल्याड़ी, रुवाली, मद्यानी, भटगैं, गरजौला, नगरकोटी, ढौन्याल, सांगुड़ी, लौंडारी, फलढाड़ी मालकनियाँ, तिलाड़ा, फपती, घमस्वांल, हर्षोलिया, वोखलिया, किरमोली, ऐचरिया, निलपहाड़िया ।"

---

१६. अठकिन्सन साहब का अन्वेषण

कूर्माचल के आधुनिक व्यास अठकिंसन साहब कहते हैं (गज़ेटियर पृष्ठ ४२८-२६-३० जिल्द १२) "२५० ब्राह्मणों की लिस्ट उनको मिली है, जिनमें ज्यादा खेती करते व हल चलाते हैं । वे शिव व विष्णु को पूजते हैं खासकर भैरव को। उनका लिस्ट देना वाजिब नहीं। वे गाँवों के नाम से पुकारे जाते हैं । कुछ लोग देश के ब्राह्मणों से अपना वंश चलना कहते हैं । सरनी, डोमाल गहतोड़ी, कत्यानी, गरवाल अपने को तेवाड़ी कहते हैं। मुनगली, चौबे होना कहते हैं । पपनै डोटी का उप्रेती होना कहते हैं । चौनाल अपने को मथुरा का चौबे कहते हैं, जो मैनोली में बसने से पांडे हो गए, और चौनी में जाने से चौनाल कहाए। कुठारी अपने को पंत कहते हैं ।

गोस्यूड़ी, दौर्बा, सनवाल, दुनिला अपने को पांडे होना कहते हैं। लमडारी, छिमवाल, फुलौरिया, ओली, नौनिपाल, चौदसी, डालकोटी, बुढला-कोटी, दुलारी, धुरानी, पचोलिया, बनरिया, गरमोला, बलोनियाँ, बिड़िया अपने को जोशी कहते हैं ।

कपूली, धानखोला (धनखोला अपने को जोशी बताते हैं।), भगवाल (भगवाल अपने को बनारस का भट्ट बताते हैं) । मुरारी डोटी का भट्ट बताते हैं । जाली, नखयाल, थपल्याल, हरिबोला कहते हैं कि वे उपाध्याय हैं । भनौटिया अपने को गौड़ ब्राह्मण कहते हैं । मस्याल कान्यकुब्ज ब्राह्मण बताते हैं । पाटसी कहते हैं कि वे पाठक थे। बरणियाँ कहते हैं कि वे

बनारस से आये, और राजा के ज्योतिषी थे। वे जातियाँ, जो अपने को अन्य आस्पदवाला बताने का प्रयत्न नहीं करतीं, ये हैं—खोलिया, कनवाल, ल्वेसाली, कफड़िया, बिठरिया, मेलकनियाँ, नैनोलिया, मेल्टी, तरारिया, हटवाल, पोखरिया, छटगुलिया, इनके अतिरिक्त १५० अन्य। वे अपनी शाखा व प्रवर की बात कुछ भी नहीं जानते, बहुतों को गोत्र का नाम भी ज्ञात नहीं। कनसेरी बिभांडेश्वर के पुजारी हैं, जिस नाम का कोई दूसरा मंदिर नहीं है। अकरिया कहते हैं कि वे कर नहीं देते थे, इससे अकरिया कहाये। बलड़िया पुण्यागिरीदेवी के पुजारी हैं। धुंगस्याल स्यूनी के राजपूत हैं, जो ब्राह्मण थे, पर कुछ अपराध करने से क्षत्रिय बनाये गये। रस्यारा राजा के रसोइये थे। नामगी भोटियों के पुरोहित हैं। फुलारा नंदादेवी को फूल देते थे। गैरभनरियाँ संतानहीनों की क्रिया करने वाले थे। पनेरू पानी पिलाते थे। डोबा के डोवाल जगरिये हैं। भूत-प्रेत लग जाने पर वे ही संरक्षक समझे जाते हैं, और 'जागर' को बुलाए जाते हैं। ओली लोग ओलों से रक्षा करते हैं और कुँआर में प्रत्येक गाँव मे अपना दस्तूर लेते हैं। चिलकोटी चौगर्खा में सैम के पुजारी हैं। १८७२ की मर्दुमशुमारी में १०८२८३ ब्राह्मणों में से ४४१२२ अपना आस्पद व परिचय नहीं दे सके। और बाक़ी लगभग ५०००० खस-ब्राह्मण होंगे।

कालीकुमाऊँ में राजाओं के समय ब्राह्मणों के चार भेद थे—(१) चार चौथानी, (२) पंचबिड़िया, (३) खतीमन या खटकाला, (४) कुलेमन।

---

१७. राजा रुद्रचंद का विभाजन ?

एक काग़ज़ हमको पं० परशुराम जोशी मौजा सकनौली से मिला है। वह राजा रुद्रचंद के समय का बताया जाता है। उसको हम ज्यों का त्यों छापते हैं। इतिहास में लिखा गया है कि राजा रुद्रचंद के समय एक कौंसिल बैठी थी, उसमें सब ब्राह्मणों की सूची तैयार हुई। संभव है, यह काग़ज़ वही हो। इस समय तो इसमें मत-भेद होगा। पर यह गणना प्राचीन काल की होने से हम इसको ऐतिहासिक महत्त्व के कारण स्थान देते हैं। इसमें समस्त कूर्माचली ब्राह्मण तीन श्रेणियों में विभाजित किए गए हैं—

कूर्मांचल के ब्राह्मणों की सूची

(१) पंत ४ राठ
(२) जोग्यूड़िया पाराशरी
(३) आचार्य (हनेरा नाठ है)
(४) इटवाल पंत
(५) उप्रेती ४ राठ कुल
(६) जोशी झिजाड़
(७) पाठक हाट
(८) भेटा जोशी
(९) कसौन, पाटिया, वूल
(१०) सिणै जोशी (गली)
(११) छाना पांडे
(१२) बिसाड़ भट्ट
(१३) पाटनीगाँव
(१४) सिलवाल जोशी
(१५) शैचंद त्याड़ी कुल
(१६) भट्ट खेतीगाँव
(१७) जोशी लटोलो
(१८) बूस्ती अस्कोट
(१९) ओझा सोर
(२०) जात लोइनी कन्याल
(२१) कोठ्यारी कोठेरा
(२२) जोशी भेरंग
(२३) पांडे मझेड़ा
(२४) खाली उपाध्याय, सीरा पंत
(२५) पांडेखोला पांडे
(२६) बेलकोट पांडे
(२७) सौज्याल विष्ट
(२८) डड़ा विष्ट
(२९) रस्यारगाँव रस्यारा
(३०) पांडे पल्यूं
(३१) दिप्तीया मिसर
(३२) पांडे छचार
(३३) जोशी दन्या
(३४) जोशी दिगौली
(३५) पांडे पतेलखेत
(३६) जोशी स्यूनरी
(३७) पाठक दसौली, दसा
(३८) मांडली पांडे
(३९) खेती उपाध्याय
(४०) बिछराल
(४१) पारकोटी पांडे
(४२) नायल पांडे
(४३) बैड़ती पांडे
(४४) पुनेठो, कुलेठो
(४५) बयाला पांडे
(४६) गढ़वाल त्याड़ी
(४७) सीरा व पाल जोशी
(४८) ढोलीगाँव पांडे
(४९) सिमलटिया, देवलिया
(५०) उर्ग जोशी सोर
(५१) करड़िया
(५२) धुरियाल जोशी
(५३) बिसौत जोशी
(५४) डूँगा कन्याल, जोशी और पंत
(५५) काना कुमयाँ
(५६) पाठक पठक्यूड़ा दानपुर
(५७) उपाध्याय दुग
(५८) गौखुरी पंत
(५९) नैणी जोशी
(६०) डढोली त्याड़ी
(६१) कुड़कोली पंत

(६२) थपलिया, बौरारौ सतराली
(६३) बाराकोटी
(६४) खरही-पंत, त्याड़ी, जोशी
(६५) ,, कन्याल जोशी
(६६) पोसालिया
(६७) हुवेनिया
(६८) समकूणाँ चनोलो
(६९) पतड़िया जोशी
(७०) मेलटी पांडे
(७१) धौलाड़ी-जाल, बौरारौ
(७२) अचरिय
(७३) टुरेड़ा, पोकाल
(७४) शिवनांइ
(७५) गुरानी
(७६) ढुगाल
(७७) मठपाल
(७८) उलटणियाँ
(७९) सनवाल
(८०) जखन्याल जोशी
(८१) नहरगी
(८२) नागिलो
(८३) मुलगड़ी
(८४) गौलहरड़िया
(८५) दढ़माऊलों
(८६) भदरिया
(८७) देवखोलिया
(८८) सौजा पाठक
(८९) ढुंगसिला
(९०) चिलवाल
(९१) बिलवाल
(९२) मलटणियाँ
(९३) फुलारो
(९४) गैरखेती जोशी
(९५) मांतोलिया
(९६) कत्यूर जोशी
(९७) हिचोड़ी पांडे
(९८) पोथिङ गढ़मौलिया
(९९) चौदसी, चौसजी
(१००) हतवाल
(१०१) चनौलो
(१०२) हलचनौलो
(१०३) पौकाल
(१०४) झिरौटिया
(१०५) बिरौड़िया
(१०६) संगरौलिया
(१०७) चिमरिया
(१०८) द्योखोलिया
(१०९) कोटगाड़ो
(११०) कापड़ी
(१११) सेलौटो
(११२) बेड़िया
(११३) विलवाल
(११४) पूठो
(११५) घगौलो
(११६) फुटसिला भाट
(११७) बजखेती
(११८) काँणखेती
(११९) गैनोड़ी
(१२०) नेवालिया
(१२१) मंगोलो
(१२२) सेलिया
(१२३) भटगाँइ
(१२४) पोखरिया
(१२५) तेलिया

(१२६) अकुराल
(१२७) सोटो
(१२८) बहेड़िया
(१२६) कफड़ी कन्याल
(१३०) स्याँकोटी
(१३१) ताँखोंलो
(१३२) बजेड़िया
(१३३) पासदेव
(१३४) सिरोलिया
(१३५) खुनौलिया
(१३६) पुठणिया
(१३७) बालतोड़ी
(१३८) इड़ाकोटी
(१३६) डुनियाल
(१४०) फुलपतिया
(१४१) चिमरिया
(१४२) कोणाखेती
(१४३) मभिवाल
(१४४) सैजां जोशी
(१४५) ततराड़ी
(१४६) खुनौलिया
(१४७) कुसौलिया
(१४८) घघौलो
(१४६) खडेरी
(१५०) पुठणियाँ

---

१८. पं० गंगादत्त उप्रेतीजी का मत

पं० गंगादत्त उप्रेतीजी ने इन ब्राह्मणों को सेना के योग्य बताते हुए उच्चकोटि का ब्राह्मण बताया है: —

जाति गल्ली	कान्यकुब्ज	ब्राह्मण	कन्नौज से	आये
,, झिजाड़	चौबे	,,	प्रयाग	,,
,, लटोली	ज्योतिषी	,,	कन्नौज	,,
,, पोखरी	,,	,,	नैपाल	,,
,, दन्या	,,	,,	प्रयाग	,,
,, सिलवाल	,,	,,	कन्नौज	,,
,, चीनाखान, धूरा	,,	,,	,,	,,
,, दफौट	,,	,,	,,	,,
,, मसमोली	,,	,,	दक्षिण	,,
,, खटकीनी	,,	,,	कन्नौज	,,
,, बाड़वे	,,	,,	झाँसी	,,
,, पैठाण	गौड़	,,	,,	,,
,, चहज	कान्यकुब्ज	,,	कन्नौज	,,

जोशी नगीला	उपाध्याय	ब्राह्मण	झाँसी	से आये
,, दैना	ज्योतिषी	,,	नैपाल	,,
,, रैलकोट	ज्योतिषी	,,	,,	,,
पंत हटवाल	भट्ट	,,	बनारस	,,
,, उप्राड़ा जोग्यूड़ा इत्यादि	महाराष्ट्र	,,	दक्षिण	,,
,, आगौ	कान्यकुब्ज	,,	नैपाल	,,
,, सांगड़ी	,,	,,	कन्नौज	,,
उप्रेती	महाराष्ट्र	ब्राह्मण	दक्षिण	,,
त्रिपाठी अल्मोड़ा	गुजराती	,,	गुजरात	,,
कार्नाटक ,,	दक्षिण	,,	दक्षिण	,,
पांडे बरखोड़ा	कान्यकुब्ज	,,	कन्नौज	,,
पांडे देवली	पंडा	,,	पंजाब	,,
,, पारकोटी	,,	,,	,,	,,
,, मजेड़ा	उपाध्याय	,,	नैपाल	,,
,, सिमलटाना	कान्यकुब्ज	,,	झूँसी	,,
,, रस्यारा	,,	,,	झाँसी	,,
,, पाटिया	उपाध्याय	,,	बाँदा	,,
,, बयाला	भट्ट	,,	बनारस	,,
,, बेलकोट	कान्यकुब्ज	,,	कन्नौज	,,
,, गडौली	,,	,,	,,	,,
,, सूपी	,,	,,	,,	,,
,, लेजम	पांडे	,,	दक्षिण से	,,
भट्ट खेतिगौं आदि	द्रविड़	,,	दक्षिण	,,
पाठक पठक्यूड़ा	कान्यकुब्ज	,,	कन्नौज	,,
,, दसौली	भट्ट	,,	,,	,,
पुनेठा	कान्यकुब्ज	,,	झाँसी	,,
वैद्य सीरा	उपाध्याय	,,	नैपाल	,,
वैद्य अनूपशहर	,,	,,	,,	,,
विष्ट डड्या	,,	,,	झाँसी	,,
,, गडेरा	,,	,,	कन्नौज	,,
पाटणी	मिश्र	,,	मध्य-प्रदेश	,,

उपाध्याय खोली आदि	गौड़	झाँसी से आये
,, खेती ,,	उपाध्याय	नैपाल ,,
कुलेठी	भट्ट	दक्षिण ,,
संगेठा	कान्यकुब्ज	कन्नौज ,,
डमठा	भट्ट	दक्षिण ,,
गौरिया	,,	,, ,,
गुरेलो	,,	,, ,,
ओझा	उपाध्याय	नैपाल ,,
ओस्ती	मिश्र	मैथिल या पटना ,,
लोहनी	उपाध्याय	बाँदा ,,
कन्याल	,,	,, ,,
थपलिया	,,	,, ,,
पनेरू	,,	,, ,,
कोठारी	भट्ट	दक्षिण ,,
गौतोड़ी	गौड़	झाँसी ,,
पाँडे वसैल	पांडे	झूसी ,,
भट्ट	भट्ट	बनारस ,,
गुराणी	,,	नैपाल ,,
हरिबोला	उपाध्याय	दक्षिण ,,

---

१९. अन्य ब्राह्मण

पं० गंगादत्त उप्रेतीजी ने इन ब्राह्मणों को द्वितीय श्रेणी में रक्खा है:—

जाति	आस्पद	कहाँ से आए थे
१ दुगाल	भट्ट	दक्षिण
२ दुमका	,,	नैपाल
३ मनटणियाँ	उपाध्याय	,,
४ कपुली	भट्ट	,,
५ कफलटी	मिश्र	कन्नौज
६ पुंडौला	,,	,,
७ जखोली	,,	,,

जाति	आस्पद	कहाँ से आए थे
८ चरम्याल	जोशी	आगरा
९ कापड़ी	भट्ट	बनारस
१० बगोली	गौड़	झाँसी
११ गोठलिया	जोशी	गढ़वाल
१२ धौणिया	तेवाड़ी	दक्षिण
१३ बलिया	जोशी	कन्नौज
१४ बटगली	भट्ट	बनारस
१५ कन्याल	कन्याल	कन्नौज
१६ सरणी	तेवाड़ी	गुजरात
१७ नैण	पाठक	कन्नौज
१८ ढैला	ढैला	?
१९ बुघाणी	बुघाणी	गढ़वाल
२० बसगाई	बसगाई	,,
२१ कबड्वाल	कबड्वाल	,,
२२ उपाध्याय	उपाध्याय	झूँसी
२३ बिनवाल	बिन्वाल	पूर्व
२४ सेलिया	सेलिया	अवध
२५ सुयाल	सुयाल	अवध
२६ चौथिया	चौथियो	नैपाल
२७ बगौरिया	बगौरिया	,,
२८ घरियाल	घरियाल	,,
२९ घिलडियाल	गौड़	गढ़वाल
३० करगेती	ज्योतिषी	पीलीभीत
३१ कनेली	,,	कन्नौज
३२ मलसुनी	,,	,,
३३ स्यूरी	,,	,,
३४ करसरिया	,,	,,
३५ कठौलिया	तिवाड़ी	गुजरात
३६ असवाड़ा	,,	,,
३७ चौनाल	,,	,,
३८ बसोटी	मिश्र	कन्नौज

जाति	आस्पद	कहाँ से आए थे
३९ धौलखनी	मिश्र	कन्नौज
४० घुगत्याल	"	"
४१ छिम्वाल	—	—
४२ कन्याणी	भट्ट	बनारस
४३ धुरकी	"	"
४४ सिटौला	मिश्र	रोहिलखंड
४५ बसौला	"	"
४६ डिंगरिया	"	"
४७ चौनिया	"	"
४८ चिमखोला	"	"
४९ ब्रिमली	"	दक्षिण
५० बगौनिया	"	"
५१ डालाकोटी	"	कन्नौज
५२ रतखनिया	"	"
५३ नैन्वाल	"	"
५४ नौलिया	"	"
५५ सैलिया	"	"
५६ स्यूरिया	"	"
५७ सिलफोड़ी	"	नैपाल
५८ गुनी	"	"
५९ फुलारा	"	बनारस
६० कनेली	"	दक्षिण
६१ नौरियाल	"	"
६२ भव्वाल	"	"
६३ कुलेठा	"	"
६४ टकवाल	"	नैपाल
६५ मनौलिया	"	कन्नौज
६६ मेलकनिया	"	"
६७ चंदोला	"	गढ़वाल
६८ नौगाई	"	बनारस
६९ खरख्वाल	"	कन्नौज

जाति	आस्पद	कहाँ से आए थे
७० नदोलिया	मिश्र	कन्नौज
७१ रमक	,,	,,
७२ करगेती	,,	नपाल
७३ लौकोटी	,,	,,
७४ पढलिया	,,	,,
७५ कश्मीरी	,,	पंजाब
७६ दड़म्वाल	,,	गढ़वाल
७७ कनसेरी	,,	,,
७८ हतेली	,,	,,
७६ मन्यूटिया	,,	,,
८० गड़मौलिया	,,	,,
८१ कुमया	,,	नैपाल
८२ कुकरेती	मिश्र	गढ़वाल
८३ ग्वालकोटी	,,	कन्नौज
८४ डुंगरियाल	,,	गढवाल
८५ नौटियाल	,,	,,
८६ रतखनियाँ	,,	नैपाल
८७ तलड़िया	,,	,,
८८ घनेला	,,	,,
८६ ढढुला	,,	,,
६० मश्याल	,,	बदायूँ
६१ सती	,,	नैपाल
६२ सौलिया	,,	कन्नौज
६३ नागाई	,,	,,
६४ गरवाल	,,	,,
६५ रूवाली बरतोला	,,	,,
६६ डोलिया भट्ट	,,	अवध
६७ इजटा	,,	कन्नौज
६८ मध्योली	,,	नैपाल
६६ वाछमी	,,	अज्ञात
१०० गड़ियाल	,,	बिहार

जाति	आस्पद	कहाँ से आए थे
१०१ अघोई	मिश्र	बिहार
१०२ गुनी	,,	मध्य-प्रदेश
१०३ बिन्वाल	,,	कन्नौज
१०४ मनौलिया	,,	अवध
१०५ नौलिया	,,	कन्नौज
१०६ खराल	उपाध्याय	चित्रकूट
१०७ मध्वोलिया	ज्योतिषी	कन्नौज
१०८ गडियूड़ा	भट्ट	झाँसी
१०६ अनरौला	,,	बनारस
११० चौड़ियाल	,,	भैपाल
१११ कुमया	उपाध्याय	,,
११२ रैंगुणी	,,	,,
११३ पचोलिया	,,	,,
११४ घसकोड़ी	,,	,,
११५ चहाली	भट्ट	बनारस
११६ ओलिया	उपाध्याय	नैपाल
११७ मुनौली	,,	,,
११८ बैनै	,,	,,
११६ किमाड़ी	कान्यकुब्ज	कन्नौज
१२० बड़ुवा	भट्ट	बनारस
१२१ गौली	पांडे	कन्नौज
१२२ गौताड़ी	चौबे	नैपाल
१२३ बगोली	गौड़	झाँसी
१२४ बाराकोटी	जोशी	कन्नौज
१२५ बेलवाल	ब्राह्मण	दक्षिण
१२६ चिल्वाल	ज्योतिषी	झूसी
१२७ बजखेती	,,	नैपाल
१२८ बालसुणी	बुग्राणा	गढ़वाल
१२९ खाली	जोशी	नैपाल
१३० बरतोला	,,	,,
१३१ चौलेटा	,,	,,

जाति	आस्पद	कहाँ से आए थे
१३२ वेड़िया	कारनाटक	दक्षिण
१३३ गोलनासेटी	भट्ट	बनारस
१३४ केराला	,,	बनारस
१३५ डुँगराकोटी	गौड़	झाँसी
१३६ अटवाल	अग्निहोत्री	लखनऊ
१३७ भाट	भट्ट	बनारस
१३८ दंतोलिया	उपाध्याय	नैपाल
१३९ पचौली	गौड़	,,
१४० संगवाल	,,	,,
१४१ मुराड़ी	भट्ट	,,
१४२ चौल्या	चौबे	मथुरा
१४३ गडियूड़ा	भट्ट	बनारस
१४४ पपनै	,,	,,
१४५ रिखाड़ी	पन्त	नैपाल
१४६ बास्ते	भट्ट	,,
१४७ मुनगली	ब्राह्मण	,,
१४८ सनवाल	पांडे	दक्षिण
१४९ बुघाणा	ब्राह्मण	गढ़वाल
१५० कपुली	भट्ट	बनारस
१५१ चंदोला	मिश्र	गढ़वाल
१५२ सुल्याल जोशी	जोशी	कन्नौज
१५३ धनखोला	भट्ट	बनारस
१५४ करगेती	ज्योतिषी	गढ़वाल
१५५ वगडवाल	ब्राह्मण	दक्षिण
१५६ हटवाल	,,	,,
१५७ चहजी	,,	,,
१५८ चौडासी	,,	,,
१५९ चरमाल	जोशी	आगरा
१६० ओली	पांडे	कन्नौज
१६१ मेलकनियाँ	उपाध्याय	झाँसी
१६२ छिमवाल	चौबे	,,

जाति	आस्पद	कहाँ से आए थे
१५३ गरबाल	ब्राह्मण	कन्नौज
१५४ वधाणी	भट्ट	बनारस
१५५ सती	गौड़	कन्नौज
१५६ छतगुली	ओझा	पटना
१५७ बमनपुरी	गौड़	गढ़वाल
१५८ मठवाल	महाराष्ट्र	दक्षिण
१५९ दुमुका	उपाध्याय	नैपाल
१६० मनरिया	भट्ट	दक्षिण
१६१ बचखेती	,,	,,
१६२ बड़सीची	गौड़	झाँसी
१६३ कापड़ी	भट्ट	बनारस
१६४ कोटगाड़ा	उपाध्याय	नैपाल
१६५ गड़मौलिया	,,	,,
१६६ थपल्याल	,,	,,
१६७ नागीला	,,	,,
१६८ बुघाणी	,,	,,
१६९ बाराकोटी	,,	,,
१७० डंगवाल	,,	,,
१७१ पतड़िया	,,	,,
१७२ हिंगचुड़िया	,,	,,
१७३ कपकोटी	,,	,,
१७४ नौरगी	जोशी	दक्षिण
१७५ चपड़वाल	,,	,,
१७६ विष्टाल	भट्ट	बनारस
१७७ भट्ट	,,	झाँसी
१७८ ,,	,,	नैपाल
१७९ छिम्वालनेगी	चौबे	झाँसी
१८० छुपका	आदिगौड़	,,
१८१ पडौला	ज्योतिषी	नैपाल
१८२ बगुनी	गौड़	जनकपुर
१८३ अनरणी	उपाध्याय	नैपाल

जाति	आस्पद	कहाँ से आए ये
१८५ मौतोड़ी	जोशी	नैपाल
१८६ बगौली	गौड़	झांसी

२०. क्षत्रिय व राजपूत वर्ग

सूर्यबंशी राजपूत—कत्यूरी राजा लगभग २ । ३००० वर्ष हुए अयोध्या से आये थे । उनकी राजधानी जोशीमठ में थी । पश्चात् वे कबीरपुर उर्फ़ कार्त्तिकेयपुर में आए । उनकी संतान में इस समय सबसे प्रतिष्ठित व सम्माननीय—

(१) अस्कोट के रजबार हैं । इनकी वंशावली अन्यत्र दी गई है । यही एक पुराना घराना है, जो २,५०० वर्ष पूर्व से अपने को कूर्माचल का निवासी होने का अभिमानी हो सकता है । ये भगवान् रामचन्द्र के वंश में से हैं । अब इनकी एक छोटी-सी ताल्लुकेदारी है । इनको ही रजबार की पदवी है । इनकी रियासत का बटवारा नहीं हो सकता । बड़े को गद्दी मिलती है । ये राजा की तरह माने जाते हैं । रजबारों की स्त्रियाँ बहुरानियाँ कहलाती हैं । बाक़ी वृत्तांत अस्कोट-प्रकरण में मिलेगा ।

(२) जसपुर के रजबार ।

(३) सल्ट, सैनमानुर, कहेड़गाँव, तामाढौन के मनुराल तथा उदयपुर, भल्टगाँव और हाट व चचरौटी के मनुराल इनका सांकश्यक गोत्रतथा पंच प्रवर है । बाजबहादुरचंद ने इन सबों को इनका राज्य छीन कर साधारण ज़मींदार बना दिया ।

(४) साबली के विष्ट जो साबलिया विष्ट भी कहलाते हैं तथा बंगारस्यू के बंगारी जिनको रौत भी कहते हैं, अपने को सूर्यवंशी राजपूत बताते हैं । अठकिंसन कहते हैं कि "ये अब धनी व उच्च कोटि के खस-राजपूतों से संबंध करते हैं । जो धनी हैं, वे प्रतिष्ठित समझे जाते थे । क्योंकि प्राचीन काल से सयाने कहे जाते रहे हैं । कुछ लोगों को जो ग़रीब हैं, अपनी आजीविका के लिये मज़दूरी भी करनी पड़ती है । चौकोट के रजबार कत्यूरी राजाओं मध्ये हैं । वे अब फ़ौज में भरती होते हैं, रजबारों की स्त्रियाँ बहूरानी तथा मनुरालों की राजाई कहलाती हैं । अठकिन्सन लिखते हैं कि न तो मनुराल न रजबार अपनी स्त्रियों के हाथ का बनाया भोजन करते हैं । लेकिन इन बातों में परहेज़ नहीं है—सेम, पालक, बैंगन, कद्द, ककड़ी, घुइयाँ (पिनालू) व कुछ अन्य तरकारियों में यदि दही डाला होगा तो अपनी औरतों

द्वारा पकाई हुई खावेंगे । औरतें मडु.वा खाती हैं, पर मर्द नहीं खाते। और न तो मर्द न औरत प्याज़, लहसुन, मूली, सलजम, जंगली सुअर व भेड़ का गोश्त खावेंगे। राजवार लोग अपने पूर्वजों की पूजा करते हैं और शक्ति के उपासक हैं। वे रौतेला, विष्ट, साहू और बंगारियों से विवाह करते हैं। ग़रीब आदमी साधारण खस-राजपूतों से भी विवाह करते हैं। पर इन बातों में अब बहुत परिवर्तन हो गया है।

विष्ट—ये लोग काश्यप, भारद्वाज और उपमन्यु गोत्र के हैं। माध्यन्दिनी शाखा तथा प्रवर दोनों पंच व त्रिप्रवर के हैं। ठीक शब्द विशिष्ट है, जिसके माने 'उच्च' तथा 'सम्माननीय' के हैं। यद्यपि अब यह जाति हो गई है, तथापि यह वास्तव में पद है। रावत, राना व नेगी के मानी भी उच्च व श्रेष्ठ के हैं। ये लोग अपने को चित्तौरगढ़ से आया हुआ कहते हैं। उपमन्यु गोत्रवाले उज्जैन से साबली (गढ़वाल) में आये, वहाँ से कुमाऊँ में आये ये लोग मनुराल, कालाकोटी, कत्यूरी, नेगी, रौतेला, लाटवाल, खरकू, महरा आदि से विवाह करते हैं। केवल गोत्र का परहेज़ करते हैं अर्थात् उसी गोत्र में विवाह नहीं करते हैं। विष्ट निम्नांकित उपजातियों में पाये जाते हैं:—बोरा, दरम्वाल, सौन, गैड़ा, बिसरिया, खरकू, काथी, खंडी, उलसी, भिलौला, चिलवाल, डहिला, भैंसोड़ा, चम्याल, बानी, धनियां, वगड़वाल। छखाता के सौन-विष्ट अपने को जाय बेहेड़ी के ठाकुर कहते हैं।

विष्टों ने कुमाऊँ के इतिहास में बड़ा ज़बर्दस्त भाग लिया है। वे सोमचद के समय से दैशिक शासक चंपावत में रहे, और रुद्रचंद के समय भी वे शक्तिशाली रहे। गैड़ा विष्टों को बाजबहादुरचंद लाये। उनमें अगर गैड़ा पूरनमल व मानिकचंद गैड़ों ने कुछ दिनों खूब रोब गाँठा। देवीचंद के समय सर्वेसर्वा रहे।

कालाकोटी—ये लोग भी सूर्यवंशी कत्यूरी राजाओं की संतान अपने को बतलाते हैं। दुग दानपुर में रहते हैं।

कड़ाकोटी—सूर्यवंशी राजपूत हैं। ककलासौं में ज़्यादातर रहते हैं।

---

२१. अन्य सूर्यवंशी राजपूत

(१) रैकाल—रैकामल्ल राजा की संतान जो कभी डोटी व सोर सीरा के राजा थे। ये उसी ओर पाये जाते हैं।

(२) उदयपुर के मनुराल।

पड्यार—चौगर्खा के पड्यार भारद्वाज गोत्र के हैं। शाखा धनुर्वी तथा

त्रिप्रवर है। वे अपने को डोटी के मल्ल राजा की संतान बताते हैं। गढ़वाल में इसी नाम से कहे जाते थे, किंतु कुमाऊँ में विष्ट कहे जाते थे; पर जब वे चौगर्खा के पड्यारकोट में बसे, तब से पड्यार कहे गये। अन्यत्र वे विष्ट कहे जाते हैं। ये लोग सेना में सिपाही व सेनापति रहे हैं। बड़े मशहूर लड़ाके थे। इतिहास में इनका नाम आता है। ये खेती करते हैं, पर अठकिन्सन साहब कहते हैं कि ये चपरासी बनेंगे, पर हल न जोतेंगे। मल्ला व तल्ला कत्यूर में भी रहते हैं।

ब्रह्म उर्फ़ बम—सोर के पुराने राजा की संतान अब बहुत कम हैं। शायद नैपाल में हैं। ये भी सूर्यवंशी हैं।

कारकी—ये लोग अपने को चित्तौरगढ़ के राणा के वंश में से होना बताते हैं। सूर्यवंशी राजपूत हैं। कत्यूरी राजाओं के समय यहाँ आये।

---

२२. चंद्रवंशी

चन्द्रवंशी राजपूत—कोई कहते हैं कि राजा सोमचंद भूसी से आये, कोई कहते हैं कि लोग उन्हें बुला लाये। कोई कहते हैं कि वह बदरीनाथ की यात्रा को आये थे। वह चंदेले राजपूत थे। कन्नौजके सम्राट् उस समय चंदले राजपूत थे, जिनमें राजा जयचंद, जो पृथ्वीराज के समकालीन थे, प्रसिद्ध हैं। किन्तु इलियट साहब कहते हैं—"चंदेले राजपूत प्रयाग की ओर नहीं हैं। वे बुंदेलखंड में चंदेरी या चंदेली में ज्यादा हैं। संभव है, सोमचंद झाँसी से आये हों, भूसी से नहीं।" पर कुमाऊँ में सर्वतोमुख यही सुना जाता है कि वे प्रयाग के पास भूसी नगर से आये। उनका विस्तृत वर्णन अन्यत्र 'चंद्रशासन-काल" में दिया गया है। अब उनके खानदान के लोग (१) अल्मोड़ा में राजा आनंदसिंह हैं। (२) काशीपुर (नैनीताल) में राजा उदयराजसिंह व कुँ० आनंदसिंह व कुँ० भूपालसिंह आदि हैं। चंदेले राजपूत कुमाऊँ में गद्दी पर बैठने पर चंद कहे गये। वही वंश का नाम हो गया।

रौतेले—ये चंदों की ही संतान हैं। चंदों में बड़े बेटे का पद गुसाईं होता था। वह राज्य का अधिकारी होता था। छोटों का नाम रौतेला था। अठकिंसन का मत है…"इन रौतेलों में असल व कमअसल सब शामिल हैं।" रौतेले सब जगह फैले हुए हैं, जिनमें से जो ज्ञात हैं, वे यहाँ दिये जाते हैं—

(१) परगना सोर पट्टी खड़ायत में मौज़ा जीवी व सलमोड़ा में।

(२) कोटा में मौज़ा परेवा।

(३) परगना ध्यानीरौ पट्टी मल्लीरौ में जमराड़ी व रौतेलाकोट गाँवों में।

अठकिंसन साहब कहते हैं—"ये तीन रौतेले अपने को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। राजा शिवसिंह रौतेला जमराड़ी से आये थे। ये तीन घराने उच्च कोटि के राजपूत व राजवंशों में विवाह करते हैं। जीवी व सल्मोड़ावाले तो डोटी के वैश्य राजाओं से भी संबंध करते हैं। अन्य खसियों तथा वैश्यों से विवाहादि करते हैं।"

(४) परगना बारामंडल पट्टी तिखून के बंटगल, सल्ला, रैगल, कबला आदि गाँवों में।

(५) उच्चूर पट्टी के पिठौनी गाँव में।

(६) अठागुली पट्टी—मौज़े छाना, छब्बीसा, उम्वाड़ी।

(७) बौरारौ पट्टी—खाड़ी गाँव।

(८) परगना चौगर्खा पट्टी रीठागाड़ —नौगाँव, छौना, बिलौरी, मटेला।

(९) परगना पाली पट्टी सिलोर—मौज़े तिपोला, सरणा।

(१०) पट्टी तल्ला द्वारा में साहुणी व मासौ में।

(११) नया पट्टी में मौज़े सब्रोली।

(१२) कफलासों पट्टी में फलसौं व शिरकोट में।

(१३) महरयूड़ी में मौज़ा बचकोट उर्फ़ बचकाँडे।

(१४) धनियाँकोट के मौज़े हरतप व सिमलखा में और भी कई गाँवों में रहते हैं। यथा—स्यालगढ़ी, दाड़िमा, ऐराड़ी, नरोली, पिंडौली, डंग्यूड़ा, बदनौली, पत्तापाणी, बगवाली, पिलसाज आदि-आदि।

ये सब अपने को काश्यपगोत्री, माध्यन्दिनी शाखा तथा त्रिप्रवर का बताते हैं और ज़्यादातर शाक्त हैं। ये अपनी स्त्रियों के हाथ का भात नहीं खाते थे, मड़ुवा भी नहीं खाते थे। ये लोग सिपाही बनते हैं, कुछ नौकरी करते हैं, बाक़ी खेती। पर अब पुरानी बातें सब मिटती जाती हैं।

खरकू—ये रौतेले गुसाईं अपने को कत्यूरी ख़ानदान के बताते हैं। पहले इनका बड़ा प्रभाव था। विजयचंद के समय श्रीसुखराम खरकू बड़े प्रभावशाली फ़ौजदार हुए हैं।

अन्य चन्द्रवंशी—मणकोटी राजा की संतान नैपाल के इलाक़े पीउठना में हैं। कुमाऊँ में अब कम हैं। कुछ रौतेले इनके वंश के कहीं-कहीं गंगोली में हैं।

२३. अन्यान्य राजपूत

बोरा—बोरारौ के बोरा तथा कैड़ारौ के कैड़ों को कोई-कोई विष्ट मध्ये ही बताते हैं। उनका गोत्र व शाखा भी विष्टों की-सी है। वे कहते हैं कि उनका मूलपुरुष दानुकुमार या कुम्भकर्ण काली कुमाऊँ के कोटालगढ़ में रहता था। उसने राजा कीर्तिचंद को कत्यूरी राजाओं को दबाने में बड़ी मदद दी। उनको देवीधुरा से कोशी तक का मुल्क जागीर में मिला। वे काली कुमाऊँ के ध्यानीरौ में हैं, पर उनके चलन अठकिंसन कहते हैं कि "खस-राजपूतों के-से हैं। वे शिव की शक्ति को पूजते हैं और ग्रामदेवता हरू, भैरव व भूमियाँ को भी। वे किसान व सिपाही हैं। बौरारौ पट्टी इन्होंने ही बसाई।" ६ राठ बौरे बौरारौ में हैं। नैनीताल के बेलुवाखान के थोकदार अपने को बोहरा लिखते हैं।

[कुथलिया बोरा—गंगोली में व अन्यत्र कुछ बौरे भाँग के कुथले व बोरे बनाते हैं। घराटों के पत्थर भी बनाते हैं। पर ये कम समझे जाते हैं। किन्तु ये भी अपने को पंजाब के कांगड़े जिले से आया हुआ कहते हैं। और रुपया उधार लगानेवाले हमीर बोरहा की संतान बताते हैं। पंजाब में बोहरा जाति सूदखोर अब तक है। किन्तु न-जाने क्यों ये अस्पृश्यों में गिने जाते रहे हैं।]

कैड़ा—कैड़ा लोग कैड़ारौ में हैं। इनका कृष्णासन गोत्र है। ये भी बौरों की तरह हैं। अपने को महरा व मेरों की तरह चौहान कहते हैं। जब बौरों ने बौरारौ आबाद किया, तो कैड़ों ने कैड़ारौ आबाद किया। वे काली कुमाऊँ के ध्यानीरौ पट्टी में भी रहते हैं। ये अपने को जीतराज के वंश का बताते हैं, पर अठकिंसन कहते हैं कि ये खस-राजपूत हैं।

बसेड़ा—इस क़ौम के राजपूत ने पूर्व से आकर सीरा के रैका राजा को जीता, और तीन पुश्त तक राज्य किया। बाद को रैका राजा ने बसेड़ा को हराकर फिर अपना राज्य क़ायम किया। अब तक इनकी सन्तान सोर, सीरा में है।

रावत—यह रावत काली कुमाऊँ के पुराने बाशिन्दे हैं। दौणकोट के राजा थे। जब राजा सोमचंद काली कुमाऊँ के राजा हुए, तो श्रीवीरसिंह राजपूत ने जो राजा सोमचंद के साथ आये थे, दौणकोट के राजा को जीतकर दौणकोट इलाके को चंद-राज्य में शामिल किया। इनकी संतान पट्टी चारआल के सल्लीगाँव व गुमदेश में रहती है।

(अठकिंसन व अन्य लेखक इनको राज्य-किरात कहते हैं। कोई लेखक खस-राजपत कहते हैं।)

खाती—ये लोग फल्दाकोट में राज्य करते थे। राजा कीर्तिचंद ने खाती राजा का इलाक़ा छीना। अब यह सिलोर व अन्य स्थानों में हैं। यह अपने को सूर्यवंशी राजपूत कहते हैं।

पंचपुर्वीया—नीचे लिखी यह पाँच जातियाँ पंचपूर्वीया कहलाती हैं। इनको राजा रतनचंद डोटी से अपने साथ लाये थे—

देउबा—मौज़े रोवा गरखा पस्पा से।

सोराड़ी—मौज़े संगोड़ सोराड़ी तल्ली मल्ली से।

पुरुचूड़ा—मौज़े रुंदाकोट गरखा पुरचूड़ी से।

चिराल—मौजे छवटी चिराल से।

पड़ेरु—गरखा पड़ेरु से।

इनको यहाँ लाकर परगने में जागीर देकर बसाया। इनसे चंद-राजाओं का रिश्ता-नाता होता था। बाद कुछ दिनों के चिराल-वंश के लोग फिर डोटी को चले गये। अतः चिराल को छोड़कर अन्य खानदानों की औलाद सोर में विद्यमान हैं। कुछ काली कुमाऊँ में भी हैं।

तड़ाकी उर्फ़ तड़ागी—ठा० बीरसिंह राजा सोमचंद के साथ काली-कुमाऊँ में आये। ख़ैरख़्वाही के सबब तड़ित उर्फ़ तड़िती का पद पाया। (तड़ित के मानी बिजली के हैं।) इनकी संतान कालीकुमाऊँ अल्मोड़ा वग़ैरह स्थानों में विद्यमान हैं। कोई लोग इनको कायस्थ भी कहते हैं। बाद को राजपूतों से संबंध होने के कारण क्षत्रिय कहे गये।

बुटौला, रावत, बागड़ी—इन लोगों का कहना है कि वे कत्यूरी राजा के समय में आये, पर ठीक-ठीक हाल ज्ञात नहीं है।

महता—महता वंशवाले कई स्थानों में हैं। कहीं खोलिया-महत भी कहलाते हैं। यह लोग पँवार-राजपूत धारानगरी से आना कहते हैं। कत्यूरी राजाओं के समय में आये।

असवाल, बर्त्वाल—कत्यूरी राजाओं के वक़्त धारानगरी से आये हुए पँवारवंशी होना कहते हैं।

राणा—चित्तौड़ के राणा की औलाद में होना तथा कुछ कत्यूरी राजाओं के वक़्त वहाँ से आना बताते हैं, किंतु इनका गोत्र व शाखा विष्टों के समान है। कुछ लोग कहते हैं कि उनको बाजबहादुरचंद के समय एक मठपाल यहाँ लाए। वे एक देवता को पूजते हैं। शाक्त हैं और साहू, चौधरी व विष्टों से, जो भिन्न गोत्र के हैं, विवाह करते हैं। ये खेती का काम करते हैं।

बलदिया—बलदिया खानदान के लोग अपने को कठेड़ का कठेड़िया राजपूत होना कहते हैं। कत्यूरी राजाओं के समय में यहाँ आए।

बसनाल—यह चौहान राजपूत होना तथा दिल्ली से आना कहते हैं। कत्यूरी राजाओं के समय में आये। बासी गाँव जागीर में मिलने से बसनाल कहलाये।

कठायत—यह लोग अपने को कठेड़ का कठेड़िया राजपूत बताते हैं। सोर के बम राजा के राज्य-काल में यहाँ आये। कुछ चौहान बताते हैं। काश्यप गोत्रवाले। भीम कठायत कत्यूरियों का प्रसिद्ध मंत्री था। नीलू कठायत ज्ञानचंद के समय एक ज़बर्दस्त सेनापति था। बाद को उसके वंशज रसोई के दरोगा रहे। यह ऐतिहासिक खानदान है।

रावत—डूँगराकोट के रावत अपना पद पायक बतलाते हैं, जिसके मानी पहलवान के हैं।

मिराल—पट्टी मल्ला दोरा मौज़ा मिरे के मीराल अपने मूल-पुरुष को राजपूताना से आया हुआ, राठौर-वंश का राजपूत बताते हैं। वे कत्यूरी राजवंश के समय में आए। इसी तरह रौना, विजयपुरिया भी उदयपुरी राणा के खानदान में से अपने को कहते हैं।

अधिकारी—अधिकारी भी विष्टों ही में से हैं। वे पुण्यागिरि की काली के उपासक हैं। चार राठें या घराने अपने को अधिकारी होना कहते हैं—स्यूनियाँ, नेनियाँ, मूलिया, मौन या महत। ये भारद्वाज गोत्री हैं।

महरा—मारा, माहरा व महरा तीन प्रकार से उच्चारण होनेवाले एक ही जाति के हैं। ये भारद्वाज व काश्यप गोत्र के हैं। भारद्वाजगोत्री कहते हैं कि उनके पूर्वज मैनपुरी के चौहान थे, जो कालीकुमाऊँ में आकर वहाँ के सिरमोली गाँव में रहे। काश्यप गोत्रवाले अपने को झूसी के पँवार कहते हैं, जो राजा सोमचंद के साथ आये। वे मारा इसलिये कहलाये कि उनकी युद्धिवाणी 'मारो-मारो' थी। भारद्वाज गोत्रवालों का मूल-पुरुष जगदेव था। उनको धारानगरी का पँवार राजपूत भी कहा गया है। उनमें से एक भाई के वंशज महरा, दूसरे के फरत्याल कहलाये। इन दो 'धाड़ों' फ़िरक़ों ने कुमाऊँ की राजनीति में बड़ा भाग लिया, जिसका ज़िक्र समय-समय पर आवेगा। वे शाक्त हैं, पर ग्राम-देवताओं को भी पूजते हैं। ये किसान हैं, कुछ गाय पालते हैं, कुछ सिपाही हैं। कुछ लोग बड़े ज़मींदार भी हैं। अच्छी हालतवाले राणा, राजबार, विष्ट तथा तड़ागियों से ब्याह-शादी करते हैं, ग़रीब लोग खस-राजपूतों से। कुमाऊँ में थोकदार हैं। छखाते में भी थोकदार

हैं। कालीकुमाऊँ में कोट के महरा के दो लड़के थे चाँदा व समर। समर के छ लड़के हुए। एक लड़का बुंगा में, तीन लड़के कोद्याल में, दो कांडादेव में बसे। चाँदा के लड़के थुवागाँव में बसे, जहाँ पहले थुवाल ब्राह्मण रहते थे। इससे थुवा महरा कहलाये।

नेगी—यहाँ पर चार गोत्रों के हैं, (१) काश्यप, (२) भारद्वाज, (३) गौतम, (४) शांडिल्य। माध्यन्दिनी शाखा तथा त्रिप्रवर के हैं। कुछ लाग कहते हैं कि धारानगरी से आये। अन्य कहते हैं कि वे मेवाड़ के चौहान हैं। इनका ज़िक्र अन्यत्र भी आवेगा। कई क़िस्म के नेगी हैं।

ब्रह्मकुंडी उर्फ़ भकुण्डी या भकूनी—यह अपने को पँवार राजपूत, कत्यूरी राजा के राज्य के समय आना कहते हैं। फ़ौज में भरती थे। गाँव का नाम वह्निकुंडी उर्फ़ भकुंडी हुआ, जो बाद को भकून हो गया। ये शायद तोप चलानेवाले थे। चंद राजा के समय ये फ़ौज में झंडेबरदार थे। अब अनेक गाँवों में रहते हैं।

१—जंबूवाल (जम्वाल) या डोग्रा २—नगरकोटिया ३—पुरणिया ४—गुलेरिया	ये चार जाति के राजपूत चंद राजाओं के समय पश्चिम के जम्बू, नगरकोट, पुरनपुर व गुलेर नगरों से आये हुए

हैं। ये फ़ौज में सिपाही थे। यत्र-तत्र बिखरे हैं।

पँवार—पँवार व प्रमरवंशी राजपूत भी कई गोत्रों के यहाँ हैं। यथा—सौनक, काश्यप, भौम, भारद्वाज—इनकी शाखा माध्यन्दिनी है, प्रवर पंचप्रवर है। ये कहते हैं कि उनका मूल-पुरुष नरेन्द्रसिंह कत्यूरियों के समय उज्जैन से आया था, और राजा के यहाँ नौकर हो गया। कुछ लोग धारानगरी से राजा बैतालदेव कत्यूरी के समय आना कहते हैं। अब उनके ख़ानदान के लोग जिस गाँव में बसे, उसी नाम से कहलाये। शालनी,शूरानी,ऐड़ा, बेशड़ा, मेर सब पँवार राजपूत अपने को बताते हैं। वे शाक्त हैं, और त्यौहारों में अपने हथियारों की पूजा करते हैं।

हर तीसरे साल शक्ति की पूजा होती है। ये लोग चंदा कर उसका ख़र्च बरदाश्त करते हैं। इस समय अष्ट बलिदान होता है। ये खेती व नौकरी करते हैं। उच्च घर के लोग राजबार, मनराल, विष्ट, अधिकारियों से ब्याह करते हैं, और ग़रीब लोग नेगी, भोजक और बजेटा से।

टाकुली—यह अपने को गढ़वाल के रावत बतलाते हैं। गोत्र भारद्वाज है, पर शाखा व प्रवर नहीं जानते। वे कहते हैं कि राजा पूर्णचंद के समय

उनका एक पुरखा कर वसूल करने को गया। वह ऐसा क़ामयाब हुआ कि सिर्फ़ राजा को बर्फ़ देने के इक़रार पर उनको गाँव जागीर में मिला। पर अठकिन्सन कहते हैं कि चंद राजा पूर्णचंद से बहुत पीछे दानपुर में गये, इसलिये यह कहानी निस्सार है। कुछ टाकुली जनेऊ पहनते हैं, कुछ नहीं। उनकी औरतें कंबल बुनती हैं। वे खेती करते हैं, सिपाही हैं, और गाय बकरी पालते हैं। वे खस राजपूतों से व्याह करते हैं, जो कि वे स्वयं हैं। वे हरू, छुरमल, कालचंद और लाटू को पूजते हैं। मल्लादानपुर में ये लोग औरों से प्रतिष्ठित समझे जाते हैं। वहाँ के पुराने मांडलीक राजा थे।

भंडारी या भनारी—लोग कहते हैं कि वे चौहान हैं। उनका मूल-पुरुष सोमचंद राजा के समय चंपावत नगरी में राजा का भंडारी था, इससे भंडारी कहलाये। वे पहले चंपावत के पास वज़ीरकोट में बसे थे। बाद को अल्मोड़ा राजधानी आने पर वे भनरगाँव में बसाये गये, और भनारी नौला भी उन्होंने बनाया। दूसरी किम्बदन्ती यह है कि वे डोटी से आये। वहाँ इस वंस के बहुत-से हैं। नैपाल के भंडारी कोंकण से आना कहते हैं। कुमाऊँ के भंडारी सब राजपूतों से विवाह करते हैं। वे शिव व शक्तियों को पूजते हैं, साथ ही सैम, हरू, ग्वाल्ल, कालसाईं, नागमल, हुरमल्ल सबको पूजते हैं। इस समय वे ज़्यादोतर खेती करते हैं।

खड़ायत—कालीकुमाऊँ के पुराने राजपूत हैं। चंदों के समय फ़ौज में थे। एक वीर जाति के लड़ाके थे। इन्होंने फल्दाकोट में बड़ी वीरता से फ़तेह पाई। वहाँ के काठी राजपूतों को मार भगाया।

नग्रात—चंद राजाओं के सैनिक रहे। राजपूताना से आना बताते हैं।

मियाँ—दलजीतसिंह व अजबसिंह ये दो भाई चंद राजाओं के समय में पश्चिम नौलागढ़ से अल्मोड़ा आये। चंद राजा ने इन दोनों को फ़ौज में भरती किया। पहले इनके जनेऊ न थी। यहाँ आकर जनेऊ पहनी। दोनों की संतानें कुमाऊँ में हैं।

फुंगर चौकी के बौरा—यह अपने को कुमाऊँ के सबसे पुराने 'थातवान' या बाशिन्दे कहते हैं। दैत्य की संतान बताते हैं। जब राजाओं के समय में ज़मीन बाबत कोई फ़ैसला दिव्य की रूप से होता था, तो यह बौरे अपनी "थात" यानी मौरूसी जगह समझकर कुछ दस्तूर हरएक फ़रीक़ैन से लेते थे। अब यह दस्तूर नहीं रहा। परगना कालीकुमाऊँ में इनके पास अभी तक थोकदारी सबसे ज़्यादा है।

अन्य राजपूत—पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं कि निम्नलिखित क़ौमें

नैपाल से यहाँ आईं। पहले कुमाऊँ के कुछ हिस्से में डोटी के महाराजा का अधिकार था। बाद चंदों ने लड़ाई लड़कर वह मुल्क काली का अपने मातहत किया। चंदों का प्रताप बढ़ा देखकर डोटीवाले कुछ राजपूत छिपकर चंद राजाओं से मेल-मिलाप रखने लगे। जब चंद लड़ाई को जाते थे, तो वे 'कुमक' यानी लड़ाई की खबरें चंद राजाओं को बताते थे। वह बातें डोटी के शाही राजा को ज्ञात हुईं, तो ये जातियाँ वहाँ से निकाली गईं। चंदों ने इन्हें अपने यहाँ आश्रय दिया:—

(१) डोटियाल (डोट्याल)—नैपाल के इलाक़े से आये हुए।
(२) रोड्याल—परगने नेटा, मौज़ा रोडी से आये हुए।
(३) धामी—वजंग्याँ गर्खा से आये हुए।
[(२) व (३) जातियाँ ठकुरानी राजपूत गिनी जाती हैं।]
(४) भंडारी—डोटी के जुरायल गर्खा से।
(५) विष्ट— " "
(६) गुनपाल रौल डोटी के गुनपाल गर्खा से।
(७) बोहरा—डोटी के जुरायल गर्खा से।
(८) नौल्पा— " "
(९) सौन—डोटी से आये हुए। कालीकुमाऊँ में सौन पट्टी के थोकदार भी हैं। छखाते के सौन-विष्ट थोकदार अपने को जामबहेड़ी के ठाकुर कहते हैं।
(१०) कुच्याल—डोटी के कुच्याल गर्खा से।
(११) रिखल्या—रीखली गर्खा डोटी के इलाक़े से।

जंगलिया—अपने को पड्यार राजपूत कहते हैं।

मेढ़ राजपूत—ज़्यादातर अल्मोड़ा ज़िले में हैं। अपने को झूँसी से आना बताते हैं। वर्मा लिखते हैं। सुनार का पेशा भी करते हैं। कुछ नौकरी भी करते हैं। सुनारों में से किसी-किसी को अँगरेज़ी फ़ाँटों में कुँवर राजपूत भी लिखा है।

---

२४. दिगर राजपूत

अठकिन्सन साहब कहते हैं—"मेरी लिस्ट में कोई २८० वर्ग के राजपूत हैं। पर ये खस राजपूत हैं। ये भारद्वाज गोत्र के राजपूत कहे जाते हैं। पर वे न तो गोत्र के मानी जानते हैं, और न यही कि एक गोत्र का दूसरे

गोत्र से क्या संबंध है। कुछ छ पल्ली कुछ तीन पल्ली जनेऊ पहनते हैं। उनका पेशा खेती, नौकरी, तिजारत व कुलीगीरी है। कुछ लोग गाय पालते हैं और घी, दूध बेचते हैं। वे अपने गाँव के राजपूतों को छोड़कर अन्य गाँव के सब राजपूतों से वैवाहिक संबंध कर लेते हैं। वे शिव तथा गाँव के सब देवताओं को पूजते हैं। वे भात अपने ही जातिवालों के हाथ का या पुरोहित का बनाया खाते हैं। रोटियों को थोड़ा-सा घी लगाकर शुद्ध होना समझते हैं। वे सीधे-सादे, कम खर्चवाले तथा मेहनती हैं। अपने गाँव से और बाहर की बातों को नहीं जानते और ग्राम-देवताओं की पूजा की दावत में बड़ी ख़ुशी से शामिल होते हैं। कुछ लोग अपना परिचय ख़ास तौर पर देते हैं:—

मेर—कहते हैं वे राजा के लिये पत्तल बनाते थे।
बड़िया—टोकरी बनाते थे।
भोजक—कहते हैं कि काँगड़े से आये।
पजाई—कुम्हार हैं।
शौका—बकरी मारनेवाले हैं।
महौत—हाथी के सवार थे।
सौन—कुछ जनेऊ पहनते हैं, कुछ नहीं।
दड़म्वाल—राजा को दाड़िम देते थे।
मच्छुवा—मछली मारनेवाले।
छलाल—घर सजानेवाले।
ठढ़वाल—ठट्ठा करनेवाले।
राजकोली—राजा का कपड़ा बुननेवाले।
बतनियाँ—राजा के अनाज को साफ़ करनेवाले।
ततवानी—पानी गरम करनेवाले।
घोका—देवचेलियों की संतान।
तपासी—जोगी व पहाड़ी स्त्रियों की संतान।
समाल—अपने को नैपाल का राना कहते हैं।
नौनिया—अपने को विष्ट बताते हैं।
घुंघुटिया—चौहान कहते हैं।
चौड़िया, काला—, भुनियां, हरकोटिया — ये भोटिये हैं, जिनको राजपूत का पद दिया गया।
बिनसरिया—ये बिनसर के हैं, जहाँ बिनेश्वर शिव की पूजा होती है।

कुछ दानपुर के हैं (जिनका ज़िक्र अलग आवेगा)। भतरौला ऐसे बदसूरत हैं, जैसे कि उस नाम की चिड़िया।

काला—ये इसलिये कहलाते हैं कि उनके पूर्वज 'काले' बहिरे थे।

दोसाँध—कुमाऊँ व गढ़वाल की 'दोसान' सरहद में रहनेवाले।

चकाना—इसलिये कहलाते हैं कि उनके बुज़ुर्ग झगड़ालू थे।

कुछ लोग गाँवों के नाम से पुकारे जाते हैं, (१) सुतार गाँव के सुतारा, (२) नेरी के नेरिया, (३) सुरणा के सुराणी, (४) चौमू के चौम्वाल, (५) दफ़ौट के दफ़ौटी (६) गढ़वाल के गढ़होली (७) जाख के जखवाल, (८) बनौलीकोट के बनौला इत्यादि।"

२५. खस-राजपूत

पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं, "खस-राजपूतों में भी दो भेद माने जाते हैं; (१) पुराना, (२) नया। खस-देश का पुराना 'थातवान' यानी पुराना बाशिन्दा। नया वह है, जो और देशों से समय-समय पर आया। किसी के जनेऊ है, किसी के नहीं है। पुराने के साथ रिश्तेदारी होने से अब दोनों मिल गये हैं। एक ही जाने व माने जाते हैं।"

दानपुर के खस-राजपूत

"दाणों— ये लोग अपने मूल-पुरुष को दानव या दैत्य बतलाते हैं।

टाकुली आदि भी अपने मूल-पुरुष का दानव होना वर्णन करते हैं, जिसके नाम से उनका परगना दानपुर कहाया।

कौरंगा, सोरागी, वाछिमी, पाणो, कारकी, टाकुली, दाणो आदि—ये लोग अपने को गढ़वाल, बारामंडल आदि स्थानों से आकर वहाँ बसना बताते हैं। अब तो सब खस-राजपूतों में गिने जाते हैं। बहुतों के गले में जनेऊ भी नहीं है। किंतु रिश्ता दोनों जनेऊवालों व बिना जनेऊवालों में होता है। विवाह का चलन भी खस-राजपूतों की तरह है। कुछ फ़र्क़ नहीं, तो भी नीचे प्रांत के खस-राजपूत इनसे रिश्ता-नाता व खान-पान में भेद-भाव रखते हैं। क्योंकि दनपुरियों का चलन कुछ कम समझते हैं। कहते हैं, ये जुहारियों का हुक्का पीते हैं।"

तल्ला दानपुर के खस-राजपूत

गड़िया, दिठाला, कपकोटी, ऐठाणी, डोस्याल, वाफ़िला, भौंखाल आदि का चलन मल्ला व तल्ला दानपुरवालों का एक ही है।

२६. अन्य क़िस्म के खस-राजपूत

राजी रावत—फ़तेहपुर छखातेवाले रावत कहते हैं कि वे टनकपुर भावर के राजा थे। अपने को राजपूत बताते हैं। अब जनेऊ भी पहनते हैं।

स्याँनिग्रा—काली कुमाऊँ में रहते हैं। ये भी यहाँ के पुराने बाशिंदे गिने जाते हैं। राजियों की कक्षा में समझे जाते रहे हैं।

राजी—कुमाऊँ के पुराने बाशिंदे चौंगर्खा व अस्कोट में हैं। पूरा वृत्तांत अन्यत्र है।

साँवलिया(या सम्मल)—ये २६ दुमोला में रहते हैं। कभी मलुवा-ताल के आस-पास के राजा थे, अब ज़मींदार हैं।

---

२७. पं० गंगादत्तजी की मीमांसा

पं० गंगादत्त उप्रेतीजी ने अपनी 'कुमाऊँ की फ़ौजी जातियाँ'-नामक पुस्तिका में राजपूतों को तीन कक्षाओं में बाँटा है:—

प्रथम कक्षा के:—

जाति	वंश	कहाँ से आये
१ चंद्र	चंद्रवंशी	भूँसी से आये।
२ रजबार	सूर्यवंशी	अयोध्या से आये।
३ मनरवाल या मनुराल	,,	,, ,, ,,
४ मियाँ	—	पंजाब से आये।
५ रौतेला	चंद्रवंशी	भूसी से आये।
६ पड्यार	मियाँ	पंजाब से आये।
७ सोराड़ी	देव	नैपाल से आये।
८ बशेड़ा	राजपूत	झाँसी से आये।
९ बम	—	नैपाल से आये।
१० गुलरिया नेगी	मियाँ	पंजाब से आये।
११ पुरखिया नेगी	सूर्यवंशी	,, ,, ,,
१२ शाही	—	नैपाल से आये।
१३ द्योबा	देव	सिंघ से आये।
१४ द्योबा या द्यौ	,,	नैपाल से आये।
१५ देव	,,	,, ,, ,,
१६ कुँवर	सूर्यवंशी	अयोध्या से आये।

जाति	वंश	कहाँ से आये
१७ बैतड़ा	देव	नैपाल से आये।
१८ रोडियाल	,,	,,
१९ कुँवर	सूर्यवंशी	,,
२० कुँवर गौतम गोत्र	,,	,,
२१ ,, ,,	,,	भूँसी से आये।
२२ कुँवर रौतेला	राजपूत	अवध से आये।
२३ बशेड़ा	बशेड़ा	नैपाल से आये।
२४ कुँवर	कुँवर	,,
२५ असवाल	नागवंशी	गढ़वाल से आये।
२६ खवास	कुँवर	भूसी से आये।

कुँवर की एक शाखा 'कुवाँवीं' नाम से कही जाती है। पाली पछाऊँ में है। इन २६ कोटि के क्षत्रियों को आपने असली या 'जंगकारी' राजपूत बताया है।

---

२८. दूसरे दरजे के राजपूत

जाति	वंश	कहाँ से आये	
२७ स्योंतरी	राजपूत	धारानगर	से आये।
२८ महोड़ी (मुहारी)	,,	,,	,,
२९ घुगत्याल	,,	नैपाल	,,
३० पछैंरावत	,,	धारानगर	,,
३१ जिनौला	,,	झाँसी	,,
३२ सलौणा	,,	,,	,,
३३ हीत	कुरुवंशी	,,	,,
३४ महर	मरहटा	दक्षिण	,,
३५ कड़ाकोटी	कत्यूरी	अवध	,,
३६ तढियाल	राजपूत	गढ़वाल	,,
३७ कठैत	,,	पंजाब	,,
३८ विष्ट	,,	गढ़वाल	,,
३९ पँवार राजपूत	पँवार	गढ़वाल	,,
४० बहनाल	चौहान	दिल्ली	,,

जाति	वंश	कहाँ से आये
४१ नेगी	रघुवंशी	भूँसी से।
४२ कठैत	राजपूत	नैपाल से।
४३ मंगचाड़ी	राजपूत	भूँसी से।
४४ पहला नेगी	"	पंजाब से।
४५ राजपँवार	पँवार	धारानगर
४६ जौलाड़ा	"	धारानगर
४७ मछाड़ भंडारी	राजपूत	नैपाल
४८ मछाड़ बडेला	"	नैपाल
४९ मछाड़ बगेती	"	"
५० लाड	ठाकुर	"
५१ पाटड़ी	"	"
५२ कोटनै	विष्ट	"
५३ परेवा	राजपूत	"
५४ महता	"	"
५५ रिठाल	पँवार	दक्षिण से।
५६ रावत	झाड़खंडी कुँवर	झाँसी से।
५७ बसाणी	महता	नैपाल से।
५८ मजिला	राजपूत	"
५९ बणकोटि	राना	चित्तौरगढ़ से।
६० दाणो	दानो	बंबई से।
६१ धात्री	कुँवर	नैपाल से।
६२ मेटवाल	रावत	गढ़वाल
६३ कोस्यारी	सूर्यवंशी	नैपाल
६४ पतलिया	"	गढ़वाल
६५ ऐटारटी	रौतेला	नैपाल
६६ दहेबा	दहेबा	"
६७ कपकोटी	राजपूत	दक्षिण से
६८ महता	महत	बनारस
६९ महरा या मारा	पँवार	मैनपुरी
७० कारकी	राना	चित्तौरगढ़
७१ फरत्याल	सूर्यवंशी	राजपूताना

जाति	वंश	कहाँ से आये
७२ चौधरी	पँवार	झाँसी
७३ महर	राना	चित्तौरगढ़
७४ लोदियाल	,,	,,
७५ भकुनी खत्री	बूढ़ाथोकी	नपाल
७६ पैठाणी	चौहान	दिल्ली
७७ तलोट, घटरी	पँवार	,,
७८ सेलदार	राजपूत	धारानगर
७९ रमोला	चौहान	गढ़वाल
८० बजेली	राजपूत	देश से
८१ सिला	,,	गढ़वाल से
८२ नगरकोटी	नगरकोटी	पंजाब से
८३ गड़िया	सूर्यवंशी	गढ़वाल
८४ जेष्ठा	दानववंशी	,,
८५ कनौजी	,,	,,
८६ नेगी	राना	चित्तौरगढ़
८७ रावत	रावत	गढ़वाल
८८ खाती	राठौर	झाँसी
८९ डोटियल	राना	नैपाल
९० दोसाड़विष्ट	पँवार	धारानगर
९१ कैड़ा	राजपूत	राजपूताना
९२ टाकुली	पँवार	धारानगर
९३ कुमलनियाँ	राना	चित्तौरगढ़
९४ बसन्वाल	चौहान	दिल्ली
९५ ख्यूँ साल	राजपूत	गढ़वाल
९६ मिरवाल	राना	चित्तौरगढ़
९७ तड़ागी	कायस्थ	झूँसी
९८ कारकी	राना	नैपाल
९९ बौरा	दानववंशी	पंजाब
१०० चौधरी	पँवार	पंजाब
१०१ महरा	,,	मैनपुरी
१०२ फरत्याल	राजपूत	राजपताना

जात	वंश	कहाँ से आये
१०३ करायत	,,	,,
१०४ देव	देव	नैपाल
१०५ ढेक	राजपूत	झाँसी
१०६ लडवाल	,,	,,
१०७ मौनी	राजपूत	झाँसी
१०८ ककेड़वाल	,,	,,
१०६ धौनी	,,	झूँसी
११० महता	,,	,,
१११ मवाल	कुँवर	नैपाल
११२ कडवाल	राजपूत	झाँसी
११३ मटेड़ा	रजबार	अवध
११४ जीना	राजपूत	रोहिलखंड
११५ भोजक	पँवार	धारानगर
११६ मलसुनी	सौन	नैपाल
११७ पटवाल गुसैं	ठाकुर	पंजाब
११८ डांगी	,,	गढ़वाल
११६ फरत्याल	राजपूत	अवध
१२० बोरा	,,	नैपाल
१२१ ,,	जाट	झूँसी
१२२ कड़ाकोटी हरनौली	राजपूत	गढ़वाल
१२३ कपकाटी	शाही	नैपाल
१२४ धनकी	ठाकुर	राठौर
१२५ गुरंग	थापा	नैपाल
१२६ मगर	,,	,,
१२७ थापा	,,	,,
१२८ मल्ल	मल्ल	,,
१२६ कफलिया	राना	चित्तौरगढ़
१३० गैड़ा	,,	,,
१३१ डसीला	,,	,,
१३२ विष्ट	चौहान	दिल्ली
१३३ कठौला	कठेरिया	पीलीभीत

जाति	वंश	कहाँ से आये
१३४ विष्ट	राजपूत	पंजाब
१३५ खन्वाड़ी नेगी	चौहान	गढ़वाल
१३६ ढेक	राजपूत	पंजाब
१३७ सौन काला	ब्रम	नैपाल
१३८ सौन गोरा	,,	,,
१३९ कुँवर	कुँवर	नैपाल
१४० बजेली	ठाकुर	अवध
१४१ धौनी	पँवार	झूँसी
१४२ बोरा	जाट	नैपाल
१४३ कठैत	राजपूत	अवध (रोहिलखंड ?)
१४४ डिगारी	,,	पंजाब
१४५ कड़ायत	,,	नैपाल
१४६ खवास	कारकी	,,
१४७ कनवाल	राजपूत	कन्नौज
१४८ मणकोटी	ठाकुर	अवध
१४९ बौरा जैंता	बौरा	नैपाल
१५० बौरा पीता	,,	,,
१५१ कोठयाल	कुँवर	,,
१५२ खड़ायत	पाल	अवध
१५३ गैढ़ा	राना	चित्तौरगढ़
१५४ भनारी	राना	,,
१५५ कारकी	,,	,,
१५६ डोटयाल	,,	,,
१५७ बोरा	दानववंशी	बंबई
१५८ महर	राना	राजपूताना
१५९ नयाल	राना	चित्तौरगढ़
१६० सौन	,,	,,
१६१ कठेड़िया	कठेड़िया	पीलीभीत
१६२ कुलौला	कुलौला ?	गढ़वाल
१६३ पाटणी	पाटनी	पटना
१६४ धामी	राना	चित्तौरगढ़

जाति	वंश	कहाँ से आये
१६५ डंगवाल	राजपूत	राजपूताना
१६६ ढुंगसिल	यादव	पंजाब
१६७ सिमलगौना	,,	,,
१६८ नौणियाँ	,,	धारानगर
१६९ कुलौला	राजपूत	अवध
१७० तिपौला	रौतेला	झाँसी
१७१ मंगचाड़ी विष्ट	सूर्यवंशी	झूँसी
१७२ उनीणी विष्ट	चंद्रवंशो	कारनाटक, दक्षिण
१७३ गैड़ा विष्ट	सूर्यवंशी	चित्तौरगढ़
१७४ विजयपुरी	राना	,,
१७५ वसनाल नेगी	,,	,,
१७६ विजयपुरी	राना	चित्तौरगढ़
१७७ मिराल	,,	,,
१७८ बंगारी	पँवार	धारानगर
१७९ बसनाल	चौहान	दिल्ली
१८० डंगवाल	राना	चित्रकूट
१८१ पँवार	नागवंशी	धारानगर
१८२ रणकुनी	कशमीरी	बनारस
१८३ बघरी	राना	चित्तौरगढ़
१८४ घयाड़ा	राजपूत	गढ़वाल
१८५ सौन	,,	नैपाल
१८६ भनारी	,,	,,
१८७ सलौणा	,,	,,
१८८ हीत	कुरुवंशी	नैपाल
१८९ नौणियाँ	यादववंशी	धारानगर
१९० भनारी	पँवार	,,
१९१ क्वीराविष्ट	राजपूत	पंजाब
१९२ पैता रावत	,,	,,
१९३ अदगारी	,,	,,
१९४ जलाल	,,	रोहिलखंड
१९५ बेढुला	राना	चित्तौरगढ़

जाति	वंश	कहाँ से आये
१९६ तढयाल	राजपूत	नैपाल
१९७ भुलाणी	पँवार	,,
१९८ तलोटा	,,	गढ़वाल
१९९ धाणिक	कुँवर	धारानगर
२०० स्यूँतरी	राजपूत	,,
२०१ माहोड़ी	,,	अवध
२०२ गुरौ	(गोरखा !)	नैपाल
२०३ घुगत्याल	राजपूत	नैपाल
२०४ जिनौला रावत	,,	,,
२०५ विष्टतिमली	विष्ट	गढ़वाल
२०६ थैत	राजपूत	नैपाल
२०७ पँवार	पँवार	गढ़वाल
२०८ बहनाल	चौहान	दिल्ली
२०९ पहला नेगी	राजपूत	गढ़वाल
२१० बाघ राजपूत	,,	अवध
२११ राछोड़े	ठाकुर	रछोड़
२१२ कुमयाविष्ट	विष्ट	पंजाब
२१३ हरन्वाल नेगी	चौहान	गढ़वाल
२१४ भेडारी	राजपूत	पंजाब
२१५ रमोला	चौहान	गढ़वाल
२१६ सेजाली राजपूत	राजपूत	अवध
२१७ सत्याल ,,	,,	,,
२१८ मुल्या	राना	चित्तौरगढ़
२१९ नयाल	पँवार	धारानगर
२२० कोरंगा	,,	,,
२२१ वाफिला	रौतेला	,,
२२२ घपौला	देव	,,
२२३ कोटौला	विष्ट	नैपाल
२२४ पटवाल	ठाकुर	पंजाब
२२५ बनैन	रौतेला	नैपाल
२२६ चौना	राजपत	,,

जाति	वंश	कहाँ से आए
२२७ खड़ैविष्ट	ठाकुर	अवध
२२८ खनी	राजपूत	नैपाल
२२६ खाल	रावत	अजमेर
२३० तपसी	भनारी	बनारस
२३१ डुंगरियाल	राजपूत	पंजाब
२३२ नैक	,,	,,
२३३ चकाना	जाट	बदायूँ
२३४ मुस्यौनी	राजपूत	नैपाल
२३५ डोलिया	राजपूत	नैपाल
२३६ सुयाल	,,	,,
२३७ बेसरिया	,,	,,
२३८ सेलाकोटी	,,	,,
२३९ बलिया	,,	,,
२४० चौथिया	,,	,,
२४१ झिंगरियाँ	,,	,,
२४२ पजैं	,,	,,
२४३ पुरणियाँ	,,	,,
२४४ अलमियाँ	,,	,,
२४५ कन्वाल	,,	,,
२४६ बनौला	,,	,,
२४७ भाट	,,	,,
२४८ बेढुला	राना	चित्तौरगढ़
२४९ घुड़दौड़ा	राजपूत	गढ़वाल
२५० डंगसिल	,,	पंजाब
२५१ भैंसोड़ा	पँवार	धारानगर
२५२ बंगारी	,,	,,
२५३ डिगारी	राजपूत	अवध
२५४ सौन	,,	,,
२५५ भाट	,,	,,
२५६ अणर	,,	,,
२५७ जंताल	,,	,,

जाति	वंश	कहाँ से आये
२५८ जलाल	राजपूत	अवध
२५६ ढटोला	ठाकुर	मध्यदेश
२६० कोटलिया	,,	,,
२६१ डोलिया	,,	अवध
२६२ बनालो	,,	,,
२६३ बगड़वाल	,,	नैपाल
२६४ चम्पाल	बहादुर	,,
२६५ गैलाकोटी	राजपूत	,,
२६६ मलाड़ा	,,	अवध
२६७ नैलिया	,,	,,
२६८ डंगरियाल	,,	,,
२६९ खन्वाड़ी नेगी	चौहान	दिल्ली
२७० भुलाणी	पँवार (जाट हैं ?)	गढ़वाल
२७१ तलाटा	,,	दिल्ली
२७२ कोलोला रावत	राजपूत	अवध
२७३ मुनार	,,	पंजाब
२७४ चरक	बोरा या जाट	,,
२७५ बैरा	राजपूत	अवध
२७६ पँवार	नागवंशी	धारानगर
२७७ धयाड़ा	धयाड़ा	गढ़वाल
२७८ बेढुला	राना	चित्तौरगढ़
२७९ अदगारी	ठाकुर	बनारस
२८० पनेटा रावत	,,	,,
२८१ कीरा रावत	,,	,,
२८२ टनियाँ	राजपूत	बदायूँ
२८३ बेसरिया	,,	अवध
२८४ बोलदिया	,,	नैपाल
२८५ सेटी	,,	,,
२८६ शौन	पँवार	धारानगर
२८७ बिरूड़ी	ठाकुर	अवध
२८८ सिराल	राजपूत	गढ़वाल

जाति	वंश	कहाँ से आये
२८६ डढरी	,,	,,
२६० बघरी	,,	,,
२६१ रावल	रावत	अजमेर
२९२ करौला	राजपूत	गढ़वाल (उर्फ नेगी)
२६३ बिलवाल	,,	कन्नौज
२६४ बहरैं	,,	कन्नौज
२६५ गड़सेरा	,,	,,
३६६ जरूवाल	,,	,,
३६७ पोखरिया सौन	,,	नैपाल
३९८ ताड़ी	,,	गढ़वाल
२६६ नगरकोटी नेगी	राना	चित्तौरगढ़(पंजाब ?)
३०० पंडा	पंडा	रोहिलखंड
३०१ भुन्याल	राजपूत	,,
३०२ तरसाल	,,	,,
३०३ थपल्याल	रावत	गढ़वाल
३०४ कुलस्याल	राजपूत	,,
३०५ घ्योसाल	,,	,,
३०६ रकटोला	,,	,,
३०७ जमनाल	,,	,,
३०८ कंडारी	,,	,,
३०६ दसौनी	,,	नैपाल
३१० छुरौला	,,	कन्नौज
३११ तिलाल	,,	,,
३१२ सलनी	,,	,,
३१३ गोलदार नेगी	,,	पंजाब
३१४ बसरी	,,	,,
३१५ पलनी	,,	,,
३१६ बैड़िया	,,	राजपूताना
३१७ कोपाल	,,	कन्नौज
३१८ डोगरा	,,	पंजाब
३१६ भंडारी नेगी	,,	कन्नौज

जाति	वंश	कहां से आये
३२० दिगौड़ा गुसाईं	राजपूत	कन्नौज
३२१ बोहरा विष्ट	,,	,,
३२२ असगोला राजपूत	,,	,,
३२३ कीरा	,,	,,
३२४ नौधरिया नेगी	,,	,,
३२५ निनौला विष्ट	,,	राजपूताना
३२६ भवाड़ी	,,	,,
३२७ सतपोला	,,	,,
३२८ नेवै	,,	,,
३२९ पत्याल	,,	,,
३३० कनौणिया विष्ट	,,	,, (कन्नौज से ?)
३३१ चौधरी	राजपूत	राजपूताना
३३२ गुडयाल	,,	,,
३३३ कन्याल	,,	,,

२९. तीसरे दर्जे के राजपूत

इनके बारे में ज्ञात नहीं कि ये राजपूत कहाँ से आये:—सिराड़ी, कोट्यूड़ी, नगोलिया, बोकड़, सिला, दुणिया, कमनाल, गौणी, खत्री-नेगी, दानव, ढैला, बेलवाल, बहरो, झुन्याल, घणिक, गड़सेरा-ठाकुर, ठठोला, फीचा, ख्यूंसाली, बिरुड़ी, अघोई, छुपका, देवली, तरसलिया, कुमाल्टा, चोरमी, पलनी, बशेड़ी, अधिकारी, मेलवाल, सौन-विष्ट, सत्याल, बोखड़ा, डुन्या, करम्याल, गौणी-सौन, हरड़िया, बलौलिया, बड़िया, सेलिया, नैक, चनरा, महत, लामाकोटी, सुयाल, कोटलिया, धर्मस्याल, चम्पाल, पिलख्वाल, चिल्वाल, डंगसरी, उलसै, धिलोल, बानी, नगोलिया कमनाल, भुकाणी, हरन्वाल, डहिला, ततराड़ी, सिलबासी, धंगोला, न्यौलिया, मलाड़ा, चहजी, खड़का, दसौनी, वोटा, डडिया, चौनाल, लटवाल, सलाल, स्यूनी, बरगै, जराल, सलिया, जीना, सलोणा जिनौला, नगोलिया, गौणी, डुंगस्याल, बसौली, गंगोला, भनारी, बरौलिया, चनार, लामाकोटी, बोडुलिया, चम्पाल, झिजरिया, पुरणियाँ, अलमियाँ, पजैं, फूल, खरकाला, जनौटी, बगड़वाल, रौन, ऐड़ी, चाड़, घूडाल, कुपाल रफ़ाल, अस्याल, कनारी, सिराल, चल्यूड़ी धौल्याड़ी, डढरी, बुडोड़ा, नखुरिया, इजराल, कोटिया, सलडिया, कुलस्याल, तड़पाल, भौरियाल, बिरड़िया, हरड़ा,

रौत्याड़ी, वाब्रिला, कन्वाल, बोरा, ज्वाल, गड़िया, कनौजी, मेटवाल कोस्याड़ी, पतलियाँ, घोकरी, बघरी, ताड़ी, वाछमी, दनपुरिया, टँगणिया, छुटौला, गैल, रौत, धारकोटी, ऐठाणी, दाणो, बिसरिया, भनौला, बनौला, होलरिया, खेतोला, कुमैयाँ, गड़िया, गुखवाल, ढिमवाल, धोकती, बघरी, कुमलता, बैराका, अदकरिया, सलदिया, गुटपड़ी, कुम्दल, चौबिया, बगोली, मौतोड़ी, खड़ी, बजेली, बिजेपुरी, बुधनी, बाक, कनौली, नैल्वाल, कोलसारा, बड़िया, कापड़ी, जिवाल, देव, कफ़लिया, चौतार, कोतलिया, कोटगाड़ी, झिजरिया, चौथिया, बनिया, टकवाल, पतनी, दानी, लाड, पोखरिया, कोटनै, मेटवाल, पतलिया, ऐटारी, डहैला, ढोकटी, बनौली, चरम्याल, गैलकोटी।

---

३०. चतुर्थ श्रेणी के राजपूत

पं० गंगादत्त उप्रेतीजी ने इन राजपूतों को चतुर्थ श्रेणी में रक्खा है:— "सेटी, तिल, भंडारी स्यांलिया, जोल्याल, धुरियाल, बजलिया, डडवाल, सौन, आगरी, दानी, नयाल, पोखरिया, रावत, महर, खटगिड़िया, लूल, दिवारा, बुरम्याल, बकौरियाल, गौड़, बैद्वाल, लोडियाल, मतलिया, जगरिया, नैक, डुंगरियाल, पंद्रबिरया, नाई, धोबी, ठठेरा, नैक, बड़िया।" पर इन सब को .खूब हट्टे-कट्टे होने से फ़ौज के लायक़ बताया है।

---

३१. वैश्यवर्ग

कुमाऊँ में वैश्य लोग बहुत थोड़े हैं। देहात में तो बहुत ही कम हैं। ज़्यादातर अल्मोड़ा, नैनीताल, रानीखेत, बागेश्वर, भवाली आदि स्थानों में रहते हैं। पर हैं ये ज़बरदस्त। अपने को क्षत्रियों से बड़ा समझते हैं। उनकी लड़कियाँ 'डोले' के रूप में ले आते हैं, पर देते नहीं। ये सब यहाँ साह कह-लाते हैं, जो साह सेठ साहूकार या महाजन से बना है। प्रायः सब बनिये मांस भी खाते हैं। साह लोग ज़्यादातर तिजारत, व्यापार आदि काम करते हैं। कुछ नौकरी करते हैं। थोड़े-बहुत खेती भी करने लगे हैं।

अग्रवाल—ये लोग अग्रोहा के राजा उग्रसेन की संतान होना बताते हैं, जो पंजाब के सिरसा ज़िले में है। जिस लड़के ने ग़लती से ग़लत गोत्र में विवाह किया, वह गौलगोत्री कहाया।

कुछ अग्रवाल अपने को राजपूत कहते हैं, पर शहाबुद्दीन गोरी ने जब अग्रोहा को जीता, और ये उसका विरोध न कर सके, तो इन्होंने वैश्य-वृत्ति धारण

कर ली। अग्रवाल मांस नहीं खाते, पर कुमाऊँ में खाने लगे हैं। आपस में भी खानपान एक है।

ठुलघरिये साह—चंद-राजाओं ने जब-जब भावर-तराई व पहाड़ से अनाज, तेल, नमक वग़ैरह ज़मीन की रक़म के एवज़ में लेना शुरू किया, तो उसके रखने को जो मकान बनाया, उसका नाम घरों का गंज यानी (ठुलाघर) बड़ा घर रक्खा। जो साह लोग उस (ठुलाघर) के संरक्षक अफ़सर हुए, वे ठुलघरिये साह कहलाये। ये लोग चंद राजाओं के समय खज़ांची भी रहे और अब भी हैं। कुमाऊँ में ये सबसे प्रतिष्ठित गिने जाते हैं। गर्गगोत्री अपने को कहते हैं।

गंगोला—ये साह लोग पहले गंगोली में मणकोटी-राज्य-काल में थे, अब भी हैं। अल्मोड़ा बसने पर जो अल्मोड़ा में आये, वे 'गंगोला' उपनाम से प्रसिद्ध हुए।

सलीमगढ़िया—दो-एक खानदान सलीमगढ़ से आये, ये सलीमगढ़िया साह कहलाते हैं। सलीमगढ़ दिल्ली के निकट है। इनकी ब्याह-शादी गंगोलों से नहीं होती, इससे कुछ लोग इनको गंगोला साहों में से होना बताते हैं।

कुमय्यें साह—जो साह लोग चंद-राज्य के समय अल्मोड़ा बसने पर कुमाऊँ से अल्मोड़ा आये, वे कुमय्ये कहलाये। ये प्राचीन राजधानी चंपावत के साह लोग थे। सबसे पुराने साह यही हैं।

तोला—चंद-राजाओं के समय जो शाह लोग तोलने का काम करते थे, वे 'तोला' कहे गये। 'चून' वग़ैरह असल दाल से जो बचता था, उसमें से आधा गंज का भंडारी पाता था आधा तोला साह।

जकाती या जगाती—चंद-राजाओं के समय जो साह बाज़ार से 'जकात' यानी कर उगाहने का काम करता था, वह 'जकाती' कहा जाता था।

खोलभितेरिया—चंद-राजाओं के समय उस साह को 'खोलभितेरिया' कहते थे, जो राजा की कोठी या क़िले के भीतर जाकर काम करता था, 'खोली' यानी दरवाज़े के भीतर का कारदार खोलभितेरिया कहा जाता था।

चौधरी—बाज़ार का अफ़सर चौधरी कहलाता था, और जो बाज़ार का निरीक्षक होता था, वह 'चकुड़ायत' कहा जाता था। ये लोग अब भी इसी नाम से पुकारे जाते हैं। चकुड़ायत बाज़ार की देखभाल के अलावा वहाँ ये सब खबरें राजदरबार में पहुँचाता था।

कोटा तथा छखाता बल्यूटी में भी चकुड़ायत हैं। ये देश से आये वैश्य हैं।

द्वाराहाट के चौधरी—ये लोग अपने को पश्चिमी ज्वालामुखी से आया हुआ बताते हैं। इनकी संतान में से श्री मैसी साहू राजा उद्योतचंद की फ़ौज में सेनापति थे। वह बौधाण की लड़ाई में मारे गये, वीर-पुरुष थे। खैरख्वाही के बदले श्रीमैसी साहू के बेटे श्रीअर्जुन साहु को रिवाड़ी वग़ैरह गाँव जागीर में मिले। इनकी संतान अभी विद्यमान है। ये अब 'चौधरी' कहाते हैं, पर इनके नाम में 'दत्त' शब्द लगता है। राजाओं के वक़्त में ये लेखक, मुत्सद्दी व नायब दीवान भी रहे। इससे दो क़ानूनगोइयाँ भी इस ख़ानदान में मौरूसी हैं। रिवाड़ी-नगर पंजाब में है। शायद ये लोग वहीं से आये हों और अपने गाँव का नाम भी रिवाड़ी इसीसे इन्होंने रक्खा होगा। इनका गोत्र वत्स भार्गव है। श्रीचिन्ता चौधरी बाजबहादुरचंद के समय प्रसिद्ध दरबारी थे।

नैनीताल के प्रसिद्ध रईस लाला मोतीराम साह के पूर्वज श्रीगुसाईं साहू डोटी नैपाल के क्षत्रिय थे। उनके वंशवाले अपने को क्षत्रिय कहते हैं। यद्यपि वे कुमाऊँ में अब साह कहे जाते हैं।

छखाता के ढुंगसिल तथा रानीबाग़ के साह बड़ोखरी सीतलाहाट के चौधरी व साह थे। कुछ छखाता के सौखोला गाँव में रहते हैं।

तम्बोली—ये पान बेचनेवाले वैश्य हैं। पर अब ये अन्य काम भी करने लगे हैं, जैसे और लोग पान बेचने का काम करते हैं। पर्वतों में दो-तीन घर हैं। ज़्यादातर तराई भावर में हैं।

खत्री—कुमाऊँ के खत्री देश से आये हुए हैं। पिठौरागढ़, गंगाली आदि परगनों में रहते हैं। गोत्र इनका वत्स भार्गव है। ये पूर्वीय व पश्चिमीय वर्गों में विभाजित हैं। ये जनेऊ पहनते हैं। ये अपने को क्षत्रिय कहते हैं। यहाँ पर ये खस-राजपूतों से संबंध करते हैं। अपनी लड़की नहीं देते, पर खस-राजपूतों की लड़कियाँ ले लेते हैं।

काशीपुर, जसपुर व हलद्वानी के खत्री विशेष धनवान् व प्रतिष्ठित हैं। कपड़े का बहुत-सा ब्यापार इनके हाथ है।

कायस्थ—ये अपने को चित्रगुप्त की संतान बताते हैं। यहाँ पर्वतों में थोड़े-से कायस्थ आये थे, जो अठकिंसन कहते हैं कि खस-राजपूतों में विलीन हो गये हैं।

देश के कायस्थ १२ गोत्रों में विभाजित हैं, वे अपना अस्तित्व वहाँ अभी बनाये हुए हैं, बल्कि वे नौकरी व राजनीति में चतुर गिने जाते हैं।

---

३२. कुछ अन्य वर्ग

पटुवा—राजा इन्द्रचंद के समय पाट का कारख़ाना चंपावत में जारी हुआ था। नन्नू पटुवा देश से बुलाया गया था। उसकी संतान यहाँ हैं। ये अनन्त, डोर, रक्षा आदि बनाते हैं, और ज़ेवरात व माला गुँधते हैं।

नाई—कुछ यहीं के बाशिन्दे खस-राजपूतों में से हैं। कुछ सुधना नाई की संतान में से हैं। सुधना नाई राजा सोमचंद के समय कालीकुमाऊँ में आये थे। ये भी चानवाल, काश्यप व भारद्वाज गोत्री हैं। ये बड़े चतुर होते हैं।

ठठेरा—राजा बाजबहादुरचंद के समय कुन्दन ठठेरा कुमाऊँ में आया था। उसकी संतान यहाँ विद्यमान है।

धोबी—कुछ देश से आये। कुछ यहीं की खस-ज़ाति मध्ये हैं।

सौन-अगारी—ये खान में काम करनेवाले तथा धातुओं को गलानेवाले थे। रामगाड़ घाटी में आगर पट्टी इन्हीं के नाम से प्रख्यात है। सन् ७२ में ८०६ थे। सम्पत्तिशाली होने से अच्छी कोटि के हिन्दुओं की चलन में चलने लगे हैं। पहले यह लोहे की रुड़कियों में काम करते थे, पर अब सड़क बनाते, ठेके करते तथा खेती करते हैं। धनी भी हैं।

सर जॉर्ज इलियट कहते हैं—"वायुपुराण में लिखा है कि कुछ गंधर्व आग्नेय कहाते थे। इनका काम पृथ्वी से धातु निकालना था।" आग्नेय से आगुरी न हो गये हों। ये सब देखने में अच्छे होते हैं। इनमें से कुछ अपने को गौड़ भी कहते हैं। छखाते के धर्माधिकारी पं० महादेव पंतजी ने इनको व्यवस्था दी कि ये ब्रह्मसूत्र के अधिकारी हैं। तब से ये जनेऊ पहनते हैं। चंदन भी लगाते हैं। श्रीबची गौड़ इनमें एक नामी पुरुष हो गये हैं। इन्होंने कई धर्मशालाएँ, मन्दिर व 'नौले' (बावरियाँ) बनवाईं।

---

३३. तराई भावर की जातियाँ

निम्न-लिखित जातियाँ विशेषकर तराई भावर में पाई जाती हैं, और प्रायः शूद्र-जाति में गिनी जाती हैं:—

अहार—ये तराई में रहते हैं। कुछ खेती करते हैं, और कुछ चोरी, डकैती भी करते रहे हैं।

अहीर—ये गाय पालनेवाले हैं। इनका क़दीमी पेशा यही है। तराई भावर में रहते हैं।

गड़ेरिये--ये भेड़, बकरी पालनेवाले हैं। ज़्यादातर तराई में रहते है।

भंगी—ये सर्वत्र ज़्यादातर नगरों में हैं। ये अपने को वाल्मीकि की संतान कहते हैं। जब मुसलमान आये, तो कुछ मेहतर शेख़ हो गये, बाक़ी हिन्दू रहे। ये लालबेगी कहलाते हैं। ये अपने पुरोहित को लाल-गुरु कहते है। ब्याह में भाँवरे पड़ते हैं। ये सफ़ाई का काम करते हैं।

भाट—ये अपने को वीर लोगों की प्रशंसा करनेवाले तथा गवैये कहते हैं, पर दर असल ये याचक हैं।

धानक—ये तराई में रहते हैं, और मुर्ग़ी पालते हैं। ये अहेरियों व बहेलियों की तरह होते हैं।

गूजर व जाट--ये जातियाँ भी ज़्यादातर तराई भावर में रहती हैं। ये डंगर पालती हैं।

काछी व कहार—ये भी ज़्यादातर तराई भावर में हैं। कुछ शहरों में पाये जाते हैं। कहारों की कई उपजातियाँ हैं। कहार ज़्यादातर डाँडी व पालकी ले जाते थे। नावर पालकी ले जाते हैं। धीमर मछली मारते हैं। मल्लाह नाव चलाते हैं। बाड़ी टोकरी बनाते हैं। बाथम अनाज सुखाते हैं। ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का बनाया भोजन खा लेते हैं। कोई तो जूठे पत्तल भी खा जाते हैं। ये पंचपांडव, नारायण, शक्ति, गुरु रामराय, दूधिया सिद्ध तथा हनुमान् को पूजते हैं। इनके चार राठ या गोत्र ये हैं:--खानी, धानिक, गड़िया और खरवाड़ा।

कलवार—कुछ शहरों में शराब बेचते हैं और कुछ तराई में रहते हैं। शराब बनाते हैं।

खटिक—ये सूअर तथा मुर्ग़ी पालते हैं। काशीपुर व जसपुर इलाक़े में पाये जाते हैं।

कोरी—तराई में ज़्यादा हैं। किसान हैं। खेती करते हैं।

कुर्मी व लोध—ये लोग भी तराई में रहते हैं। कुली का काम करते हैं। कुछ खेती करते हैं। कुर्मी खानों में भी काम करते हैं।

माली— ये लोग बग़ीचों में काम करते हैं। खेती भी करते हैं। फल-फूल बेचते हैं। ज़्यादातर देशी इलाक़े में रहते हैं।

पासी—इस जाति के लोग भी ज़्यादातर तराई भावर में रहते हैं।

भुड़जी या भड़भूजा—ये अनाज को भूनते तथा भाड़ झोंकते हैं। खीलें बनाते हैं। कुछ खेती करते हैं।

बनजारे—यह चलती-चलाती जाति है। ये गाड़ियों, घोड़े, गदहों व

खच्चरों में अनाज ले जाते हैं। दूकानदारी करते हैं। ये हिन्दू व मुसलमान दोनों हैं। हिन्दुओं में दो कोटि के हैं—(१) लामवान, (२) लादानी। लामवान खेती भी करते हैं, और लादानी बोझ लादते हैं।

साँसिये—यह एक जंगली जाति है, जो जंगली मांस तथा कंद मूल-फल खाकर गुज़र करती है। चोरी भी ये लोग करते हैं। कहा जाता है कि ये लोग कुत्ते, साँप व चूहे भी खा जाते हैं।

नट व कंजर—ये मय अपनी स्त्रियों के नाचते, गाते-बजाते हैं, और खेल-तमाशे दिखाते हैं। तराई भावर में रहते हैं। बादी व हुड़कियों के देशी भाई हैं।

---

३४. शिल्पकार वर्ग

प्राचीन काल में शूद्र, डोम या अन्त्यज कही जानेवाली जाति अब शिल्पकार के नाम से पुकारी जाती है। महात्मा गांधी की कृपा से वे हरिजन कहे जाने लगे हैं। सन् १८७२ में वे १०४६३६ थे। इनमें भी ऊँच-नीच के भेद-भाव हैं।

(१) प्रथम श्रेणी में कोली, टमटे, ओड़, लोहार गिने जाते हैं:—

कोली—१८७२ में १४२०६ थे। ये कपड़े बुनते थे। घर-घर 'रहटे' (चरखे) व कतुवे चलाते थे। कोली कपड़ा बनाते थे। उसे घर-बुण (Home-Spew) कहते थे। मशीनों के चलने से ये लोग बेकार हो गये हैं। अब खेती करते तथा जानवर पालते हैं।

टमटा—ताम्रकट का अपभ्रंश शब्द है। तांबे के बर्तन बनानेवाले ठठेरे की तरह हैं। ये सन् १८७२ में १४० थे। इनमें पहले कुछ कुरीतियाँ थीं, किन्तु अब इन्होंने काफ़ी जातीय सुधार में भाग लिया है। कई लोग पढ़-लिखकर उच्च पदों पर पहुँच गये हैं।

ओड़—मकान की चुनाई करनेवाले राज या मिस्त्री। इनमें बढ़ई, मिस्त्री, राज तथा खानों से पत्थर निकालनेवाले बाड़े भी शामिल हैं।

बाड़े—राजाओं ने देवी की पूजा में बलि चढ़ाने के लिये भैंसों को रखने की जगह का नाम बाड़ा रक्खा, उसका ज़िम्मेदार कर्मचारी बाड़े कहा जाता था। इस जाति के लोग खानों से पत्थर भी निकालते हैं।

ओड़ - 'ओड़ यानी मिस्त्री। पहाड़ी भाषा में ओड़ा 'दीवार' को कहते हैं। अतः दीवार तथा मकान की चुनाई करनेवाला 'ओड़' कहा जाता था।

लोहार—लोहकार। लोहे का काम करनेवाले। 'ल्वार' भी पहाड़ी

भाषा में कहे जाते हैं। ये तमाम गाँवों में पाये जाते हैं। इनको गाँवों में कमाने को ज़मीन भी मिलती है, और अनाज भी।

तिरुआ—तीर बनानेवाला। अब शिकलगर हैं। ये भी लोहार-वर्ग के हैं।

ढाड़ी—"खस-राजपूत थे, जो जातिच्युत कर शूद्र बनाये गये।" (अठकिन्सन)

(२) दूसरी कक्षा में भूल, रूड़िया, चिमड़िया, आगरी, पहरी समझे जाते हैं

भूल—तिल, लाई, सरसों आदि से तेल निकालनेवाला। कोल्हू चलानेवाला। बतौर तेली के है। इनमें बाड़िया भी शामिल हैं। ये मुर्गी व सूअर पालते हैं।

रूड़िया—यह रिंगाल (बाँस जाति की घास) तथा बाँस से सब प्रकार की टोकरियाँ (डाले, सूप, कोरंगे) चटाइयाँ बनाते हैं। खेती भी करते हैं।

बारुड़ी यह भी रूड़ियों में शामिल हैं। टोकरी बनाते हैं।

बाँसफोड़—बाँस को फोड़ने व छीलनेवाले भी इन्हीं में शामिल हैं। इनको बैड़ी भी कहते हैं।

चिमड़िया—ये खैराती हैं। लकड़ी के बर्तन (ठेके, पाले, फरुवे आदि) बनाते हैं।

पहरी—यह देश के गुड़ैत की तरह गाँव के चौकीदार तथा प्रधान का दूत होता था। यह प्रधान के सब काम करता था। कुली भी जमा करता था रसद एकत्र करता था। इसको कुछ ज़मीन मुफ़्त मिलती थी। उसे वह बेच न सकता था। शूद्रों को सेवा के बदले जो ज़मीन दी जाती थी, वह खंडेला कहलाती थी, और उसका हक़दार खंडेलुवा कहलाता था।

(३) तीसरे दर्जे के शूद्र चमार, मोची, बखरिया, धूना व हनकिया हैं:—

चमार—चमड़ा साफ़ करनेवाले व रँगनेवाले हैं। मोची चमड़े का काम करनेवाले तथा जूता वग़ैरह बनानेवाले को कहते हैं। ये अपने को बैशुवा भी कहते हैं।

बखरिया—ये राजाओं के समय घोड़ों के सईस थे। अब बहुत कम हैं।

धूना—ये रुई साफ़ करनेवाले हैं। बहुत कम हैं। सिर्फ़ कहीं शहरों में हैं।

हनकिया—ये कुम्हार हैं। मिट्टी के बर्तन बनाते हैं। पर संख्या में कम हैं।

(४) चौथी कक्षा में बादी, हुड़किया, दरजी, ढोली, डुमजोगी, भाँड़, पहरी, हलिया आदि हैं।

बादी—यह गाँव का गवैया, बजैया तथा बाजीगर है। यह गाँव-गाँव माँगता है। इनका कुनबे-का-कुनबा एक गाँव से दूसरे गाँव में जाता है। यह

वाद्यी का अपभ्रंश है। यह मनमानी चीज़ें गाँववालों से माँगता है, न देने पर गाली देता है। ये मछली व चिड़िया को भी पकड़ते हैं। मुर्ग़ी व सूअर भी पालते हैं।

हुड़किया— यह 'हुड़का' बजाकर अपनी औरतों को नचाता है।

ढोली—ये भी ढोल बजाते हैं। कुछ लोग अपनी औरतों को नचाकर पैसे व अन्न माँगते हैं। इनमें बजनियाँ (वाद्यनियाँ) ढोल बजानेवाले तथा बाजदार (वाद्यदार) वा बाजे का बोझ ले जानेवाले दोनों शामिल हैं।

दरज़ी—ये औजी (अज्जुक) भी कहलाते हैं। ढोली भी होते हैं। ये लोग ढोलक बजाकर कहानियाँ कहते तथा देवी नचाते हैं (देवता अतराते हैं)। कुछ खेती-बारी भी करते हैं।

डुम जोगी—माँगनेवाले डूम हैं। ये खेती भी करने लगे हैं। पाली-पछाऊँ में नानकशाही जोशी भी इसी नाम से प्रख्यात हैं।

पहरी उर्फ़ जल्लाद—यह शब्द प्रहारी (प्रहार करनेवाला या मारनेवाला) का अपभ्रंश है। ये लोग फाँसी देनेवाले, बेंत लगानेवाले तथा सिर काटनेवाले थे। मेहतर का काम भी करते थे।

हलिया—यह हल जोतता तथा ज़मीन की सफ़ाई का काम करता है।

बागुड़ी—मृग यानी जंगल के जानवरों को मारनेवाला।

जहाँ डूम लोग रहते हैं, वह जगह डुमगेला, डुमौड़ा या भुल्यूड़ा इत्यादि कही जाती है।

हलिया हल चलानेवाले को कहते हैं, वह सन् १८४० तक ज़मीन के साथ या बिना ज़मीन बेचा जा सकता था। 'छयोड़ा' दास भी बेचा जा सकता था, चाहे वह खस-जाति का क्यों न हो। अन्य शूद्र नहीं बेचे जा सकते थे। पहली व दूसरी कोटि के अन्त्यजों में विवाह हो सकते हैं तथा दूसरी व तीसरी में भी विवाह होते हैं, यद्यपि कहीं-कहीं रुकावटें सामान्य हैं। पत्थर तोड़ने का काम कोई भी कर सकता था। पत्थर तोड़नेवाले 'ढुंङफोड़' कहलाते थे। प्रत्येक शूद्र को अपने-अपने पेशे के अनुसार काम करना होता था, न करने पर गाँववाला शिकायत कर सकता था। अठकिन्सन साहब कहते हैं—"कुछ शूद्र अपने को गोरखनाथ ब्राह्मण की संतान बताते हैं, और अभक्ष्य गोमांस खाने के कारण पतित समझे गये।" वे इन ग्राम-देवताओं को पूजते हैं:—गंगानाथ, मसान, खबीस, ग्वाल्ल, क्षेत्रपाल संम, ऐड़ी, कलबिष्ट, कलुवा, चौमू, वधान, हरू, लाटू, मेलियाँ, कत्यूरी राजा, रूनियाँ, बालचन, कालचनभौसी, छुरमल्ल आदि जिनका वृत्तान्त अलग मिलेगा। जिनके बदन में ये देवता 'अतराते' हैं, वे कूदते हैं, उछलते हैं,

चिल्लाते हैं और राख, कोयले फेंकते हैं और बिच्छूघास से अपने को पीटते हैं। ये तिल व चावल चबाते हैं। ये बिलकुल पागल से दिखाई देते हैं, तब ढोली व बादी बुलाये जाते हैं। कुछ लोग 'पुछ्यार' (जिनसे बातें पूछी जावें) होते हैं। वे देवता की बात बताते और ये चीजें देवता को चढ़ाते हैं—"खड़े उर्द (ज्यादातर उर्द की) व चावल, पकाया दाल-भात, बकरी की मेंगनी, रोली, सिन्दूर, सफेद, पीला, लाल, नीला वस्त्र अलग-अलग देवताओं को चढ़ता है। हलुवा, बताशे, सुपारी, मसाले, कौड़ी, ताँबे के पैसे, नारियल, कीलें, त्रिसूल, दूध, दही, जवान भैंसे, बकरी, मुर्गे व सूअर भी मारे जाते हैं। देवता का मंदिर व मढ़ी जिसे 'देवथान' कहते हैं, एक टीले पर होता है। उसमें १०-२० पत्थर लगे रहते हैं, और एक झंडी होती है। यहाँ एक पत्थर सादा या तराशा हुआ होता है। इसी की पूजा होती है। यह पत्थर कभी-कभी घर की छत (धूरी) में रक्खा रहता है। जन्म, विवाह व गृह-प्रवेश में अर्थात् नये घर में जाने के वक़्त देवता की पूजा की जाती है।

शूद्रों के पहले शिखा तो होती थी, पर सूत्र न होता था। अब सुधारक दल-वाले पहनने लगे हैं। त्यौहारों को वे रोली लगाते हैं, पर वे नाक से कपाल तक रोली लगाते हैं। द्विज केवल मस्तक ही में लगाते हैं। वे श्राद्ध कनागतों की अमावास्या को करते हैं। भांजा या जमाई उनका ब्राह्मण होता है। उसे ही दक्षिणा मिलती है। शूद्र लोग मरी गाय का मांस खाते थे, पर गाय मारते नहीं थे। अन्य सब मांस खाते हैं। अब गाय खाने की चाल सुधारक दल उठाते जा रहे हैं। वे भी भंगी, ईसाई व मुसलमान की छूत मानते थे। अठकिन्सन साहब लिखते हैं—"विवाह का कोई समय मुक़र्रर नहीं। जब जी में आया, कर लिया। बड़े भाई की स्त्री को छोटा भाई रख लेता है।" क़िस्सा है कि "माल भिड़ उधर बेर ताल भिड़ ऊँछ" ऊपर की दीवाल टूट-कर नीचे आती है। जब बड़ा भाई मर जाता है, तो कुटुम्ब का भार छोटे पर पड़ता है। बड़ा भाई छोटे भाई की स्त्री को घर में नहीं रखता। यदि रखता है, तो बदनामी होती है। वह उसे बिरादरी में दूसरे को दे देता है। वह जी चाहे, दूसरे घर जा सकती है। दाम चुकाने पड़ते हैं। वर्जित कुल लड़की, बहिन, चाचा, चाची व भाई के हैं या जिनके साथ वे खा-पी नहीं सकते। बहुत लोग अपनी कन्याओं को वेश्या बनाते हैं।"

३५. चंद-राजाओं के समय में कौन क्या थे ?

पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं—इस देश में कुछ जातियाँ ऐसी हैं, जिनका

आस्पद या खानदान का नाम उनके पेशे या सेवा से चला है। बहुत-से ऐसे नाम अभी तक चले आते हैं, उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ पर दिया जाता है:—

पांडे—यह पद उसी ब्राह्मण को चंद राजाओं के समय मिलता था, जिसे राजा अपना गुरु या पुरोहित नियुक्त करते थे। उस समय राजगुरु की इतनी प्रतिष्ठा थी कि जब कभी राजा दरबार में बैठे हों, और राजगुरु दरबार में आ पहुँचे, तो राजा फ़ौरन अपनी गद्दी से उठकर राजगुरु के स्वागत को जाते थे। दरबार के सब कर्मचारी भी उठ खड़े होते थे। जब राजा गुरुजी को अपनी दाहिनी ओर बैठा लेवें, तब वे ख़ुद बैठते थे और तब कर्मचारी गण भी अपनी जगहों में बैठते थे। जब कभी राजा कहीं को दौरे में या यात्रा को जाते थे, तो सवारी गुरु की व राजा की एक क़िस्म की होती थी। राजगुरु या राजपुरोहित की संतान बढ़ने पर गुज़ारे के लिये गाँव जागीर में मिलते थे; किंतु उनका नौकरी-पेशा नहीं समझा जाता था।

सिमल्टिया पांडे—पहले राजा चंद के गुरु थे, पीछे कुछ लोग रसोई बनाने में भी नियुक्त हुए।

रस्यारा—इस पद के लोग चंद राज्य में रनवास में पक्की रसोई बनाते थे।

पाठक—इस पदवाले तीन क़िस्म के ब्राह्मण हैं, किंतु कार्य सबका एक ही था। ये लोग देवताओं के मंदिरों में पाठ करते थे।

पाटणी—ये ब्राह्मण चंद-राज्य में राजदूत यानी एलची का काम करते थे।

विशिष्ट उर्फ़ विष्ट—राजा सोमचंद ने जब कुमाऊँ में राज्य स्थापित किया, तो जंगी व मुल्की छोटे कर्मचारियों के ऊपर जो बड़ा अफ़सर होता था, वह विशिष्ट उर्फ़ विष्ट कहलाता था।

डड़्या विष्ट—इनको दैशिक शासन में ज़्यादा अधिकार थे। ये दंड देने यानी जुर्माना लेनेवाले विष्ट कहे जाते थे। जिसका अपभ्रंस "डांडिया उर्फ़ डड्या" हो गया।

सौंज्याल विष्ट—इनका सैन्य में ज़्यादा अधिकार था, इसलिये ये सैन्याल उर्फ़ सैंज्याल विष्ट कहे जाते थे।

विष्टालिया उर्फ़ विष्ट—विष्ट अफ़सरों के नीचे जो छोटे कर्मचारी होते थे वे विष्टालिया उर्फ़ विष्ट कहे जाते थे।

विष्टालिया—दूसरी क़िस्म के वे कहे जाते थे, जो विष्टाली कचहरी में जहाँ दैशिक व सैनिक पंचायतें होती थीं, लेखक या कार्यकर्ता होते थे। अब दोनों वर्ग के विष्टालिया विष्ट ही कहे जाते हैं।

विष्ट—चंद-राज्य के आख़री शासन-काल में राजाओं ने पुराने खस-

राजपूतों को भी विष्ट का पद दे दिया। यहाँ तक कि वे वज़ीर व बक्सी भी बनाये गये। अतः जिस गाँव का खस-राजपूत विष्ट अफ़सर बना तो सारा गाँव अपने को विष्ट कहने लगा।

नेगी— चंद राजा जिसको 'नेग' याने स्थिर कर (वाजिबुल अदा) वसूल करने का अधिकार देते थे, वह नेगी कहलाता था, चाहे वह ब्राह्मण, राजपूत व खस-राजपूत कोई हो।

नेगी— मरहरिया, हरन्वाल आदि जो सेना में सिपाही होते थे, उनसे काम लेनेवाला भी 'नेगी' कहलाता था।

बहादुर नेगी—चंद-राजाओं के समय जो कोई बहादुरी का काम करता था, वह बहादुर नेगी कहलाता था, और खालसा गाँव में कुछ दस्तूर भी उसे मिलता था।

रंतगली— श्रीजयराम पारासरगोत्री मेवाड़ा भट्ट को कत्यूरी राजा ने, पुराने रंतगली वंश की संतान न रहने से रंतगल गाँव जागीर में दिया। इस कारण यह भी रंतगली कहलाये। चंद-राजाओं के समय रंतगली लोग राज-दरबार में लेखक के पद पर थे।

अधिकारी— रंतगली वंश में से जिसको राजा ने तराई में शासन-अधिकार दिया, वह अधिकारी कहाया।

पतड़िया पत्रा (पातड़ा) यानी तिथि-पत्र हर रोज़ राजा को सुनानेवाला।

डागी जोशी—ये दरबार में रात को जागते रहते थे। जब रात के समय राजा अमुक घंटा या घड़ी बीतने की बात पूछते थे, तो ये बताते थे।

घड़्याली—डागी जोशी का सहायक, जो घड़ी पूरी होने पर घड़ियाल यानी घंटा बजाता था। यह भी डागी जोशी की तरह ज्योतिष पढ़ा होता था। डागी जोशी की जगह भी काम करता था।

हरिबोला—चंद-राजाओं के दरबार में एक पहर रात बाक़ी रहे जो 'हरिबोल' 'हरिबोल' कहकर दरबार के चारों तरफ़ फिरता था, वह हरिबोला कहाता था। अब भी इसी नाम से कहे जाते हैं। पं० गंगादत्त उप्रेतीजी इनको दक्षिण का उपाध्याय ब्राह्मण बताते हैं।

गंगाविष्णु— राजाओं के उठने के पूर्व दरबार के चारों ओर जो 'गंगा विष्णु' कहता तथा गंगा-स्तोत्र पढ़ता था, वह गंगाविष्णु कहाता था।

खौकिया—मावा (जिसे पर्वती में खुआ या खौक भी कहते हैं) की मिठाई बनानेवाला ब्राह्मण खौकिया कहा जाता था।

फुलारा—राज-दरबार में फूल लानेवाले। तीन जाति के फुलारा यहाँ हैं—(१) गढ़वाल से आये, (२) डोटी से आये, (३) यहीं के पुराने ब्राह्मण। कई क़िस्म के फुलारे थे (१) मडै फुलारा, (२) फुलिया फुलारा, (३) रेतिया फुलारा, (४) बेलपत्रिया फुलारा, (५) कुशिया फुलारा। पांडे गाँव कोटा में एक पंच पल्लविया फुलारे भी हैं। अर्थात् जो जिस चीज़ को लाता था, वह वैसा फुलारा कहाता था।

सेज्याली—कपड़े, दुशाले, शिरोपाव याने खिल्लत की चीज़ें रखने की जगह का नाम चंदों के समय 'सेंज्याल' कहलाता था। उसका कर्मचारी 'सेंज्याल' कहा जाता था।

सुनार—स्वर्णकार या ज़रगर—यह कोईज़ाति नहीं, पेशा है। पपदेव सुनार काली कुमाऊँ के कई जगहों में रहते हैं। डोटी से आये हैं। चार तरह के हैं—(१) चम्फ़ावत के राजपूत, (२) देश से आये हुए देशी सुनार, (३) गढ़वाल से आये हुए, (४) डोसाल जो चंद-राज्य के समयआए—

अल्मोड़ावाले अपने को मेढ़ राजपूत कहते हैं। वर्मा लिखते हैं—

ये लोग चंद-राजाओं की टकसाल में भी नौकर थे। इनके नाम भी ताम्र-पत्रों में शामिल रहते थे।

अठकिन्सन स्वर्णकारों के बारे में यह लिखते हैं—"सन् १८८१ में २२११ कुमाऊँ में तथा ६२२ तराई में सुनार थे। ये लोग ज़ेवर बनाते हैं, और सोना चुराने के कारण बदनाम हैं। कुछ खेती करते हैं। इनके गोत्र भौम, काश्यप व भारद्वाज हैं। कुछ अपने को बनिये, कुछ राजपूत कहते हैं। ये खस-राजपूतों से संबंध करते हैं। और कुछ उनकी लड़कियों को भी ब्याहते हैं। ये शक्ति व ग्राम देवताओं को पूजते हैं।"

कोठयाली—अनाज रखने की जगह को 'कोठी' कहते थे, उसका कर्मचारी 'कोठयाली' कहाता था।

भंडारी—त्यौहारों का सामान, माल यानी तराई की आमदनी व कुमाऊँ की आमदनी रखने की जगह का नाम भंडार था, उसके निरीक्षक (अफ़सर) भंडारी कहाते थे।

ठटौला - गाय-भैंस रखने की जगह का नाम ठाठ था और उसका निरीक्षक (ठाठ+वाला=) ठठौला कहलाता था।

रोड़ा—मुहर को पहाड़ी बोली में 'रोड़ी' कहते थे जो 'रोड़ी' यानी मुहर को काग़ज़ों में लगाता था, उसको रोड़ा कहते थे। बाद को वह 'छापिया' भी कहलाया।

बलगौणियाँ—"वोलुग" एक क़िस्म की भेंट (नज़राना) है, जो कुमाऊँ की सारी प्रजा तथा हर ज्ञाति के कारीगर भाँदों की संक्रान्ति को राजा के पास ले जाते थे। उनको राजा के सामने पेश करनेवाला बलगौणियाँ कहता था। 'बोलगिया संक्रान्ति' के अलावा अन्य दिन भी डाली व नज़राने जो कोई राजा के वास्ते लाता था, उसे पेश करनेवाले बलगौणियाँ कहाते थे। 'वोलग' एक प्रकार की प्रदर्शिनी थी। लानेवाले को राजा से इनाम मिलता था।

जागी—थोड़ी रात बाक़ी रहे जो राजा व अन्य दरबार के लोगों को घड़ियाल बजाकर जगाता था, वह जागी कहा जाता था।

सुतारा—जब राजा कहीं दौरे में जाते थे, तो जो मनुष्य आगे पहुँचकर खेमे की ज़मीन को सूत से नापकर ठीक करता था, वह सुतारा कहा जाता था।

वलाल—जब दौरे में लश्कर की जगह सुतारा ने ठीक की, उसकी दुरुस्ती को देखनेवाला (ओवरसियर) वलाल कहा जाता था। यानी बाल भर भी जगह जो टेढ़ी न रक्खे वह वलाल।

फड़कुंडिया—फड़ यानी रसोई का छप्पर व और भी लश्कर के लिये छप्पर बनानेवालों को फड़कुंडिया कहते थे।

महरा उर्फ़ मेर—चंदो के समय मछली मारकर लानेवाले तथा बोझ उठानेवाले मेर कहे जाते थे।

सेलखणियाँ—बारूद, गोली वग़ैरह रखने की जगह का नाम सेलखाना था। उसके कर्मचारी सेलखणियाँ या सेलखनियाँ कहे जाते थे।

पटौलिया—राजा की पटराणी (जो पटौती रानी पर्वती में कहलाती थी) के खिदमतगार पटौलिया कहे जाते थे, ये दरबार के भीतर तथा दौरे का भी काम करते थे।

सौंका—राजाओं की बकरी (हेलवाण या बोकिया) रखने की जगह का नाम 'सीकर' रक्खा गया था। उसका रक्षक सीकरा उर्फ़ सौंका कहलाता था।

सारणा—गंज यानी 'ढुलाघर' से अनाज वग़ैरह के बोझ दरबार के भीतर अन्न-भंडार में ले जानेवाले को 'सारणा' कहते थे। (पर्वती भाषा में ले जाने को सारणा कहते हैं)

तबेलिया—तबेला यानी अस्तबल का प्रबंधकर्ता।

चकुवा—जब राजा किसी अपराधी को चाबुक यानी बेंत मारने का हुक्म देते थे तो जो बेंत या चाबुक मारता था, वह चाबकुवा उर्फ़ 'चकुवा' कहलाता था।

पज्याणी उर्फ़ पजाई—ईंट पकानेवाले, पजावा के कारिंदे पजाई कहे जाते थे।

पतारा—राजा के दरबार में रसोई के लिये पात यानी पत्ते लानेवाला, व पत्तल बनानेवाला पतारा कहा जाता था।

कुंडिया—कुंड यानी तालाब में हाथी को नहलानेवाला, हाथी के लिये घास लानेवाला कुंडिया कहा जाता था।

कुंड्याली—हाथी के नहाने यानी कुंड की रखवाली करनेवाला कर्मचारी कुंड्याली कहाता था।

ततरिया—गरम पानी लाकर राजा के हाथ-पैर धुलाने या नहलानेवाला ततरिया कहा जाता था।

ततरिया (जगरिया ?)—पहाड़ी रागों या गीतों में नंदादेवी की प्रशंसा करनेवाला भी ततरिया कहा जाता था। यह काम छ महीने ततरिया और छ महीने कुंड्याली पटौलिया करते थे।

कंडीवालो—राजाओं के खाना खाने के सोने व चाँदी के बरतन कंडी यानी पिटारे में धरे जाते थे, उनको 'ठाऊ' या रसोई की जगह में जहाँ राजा खाना खाते थे, जो हमेशा ले जाकर रखता था, वह 'कंडीवालो' कहा जाता था।

कमठना—काठ यानी लकड़ी जहाँ जमा रहती थी, उसका निरीक्षक 'कमठना' कहाता था।

पनैवालो—पान, सुपारी, इत्र, इलायची का ज़िम्मेदार यानी एक क़िस्म का पनवारी।

बमणजई—राजा का जब दौरा होता था, तो गुरु व पुरोहित की संध्या-पूजा के लिये बर्तन व देवता ले जानेवाला इस नाम से पुकारा जाता था।

चलसिया—कोई जानवर जब राजा के यहाँ मारा गया, तो चरसा व चरबी इस कर्मचारी के अधिकार में रहती थी। जब जिसको ज़रूरत होती थी, तो यह देता था। इससे चलसिया उर्फ़ चरसिया कहा जाता था।

धतिया उर्फ़ ढरौजी—जब राजा का हुक्म किसी आदमी को कचहरी में हाज़िर करने का होवे, तो जो 'धात' यानी पुकारकर उसे बुलाता था, वह धतिया उर्फ़ ढरोजी कहा जाता था।

चौकन्नी—नौवत बजानेवाला। अर्थात् सुबह व शाम चौकन्ना यानी खबरदार करनेवाला। ये बोहरा जाति में से भरती होते थे।

बुलेल—दरबार के भीतरी चाकरों का अफ़सर। यह सब ख़िदमतगारों

से काम लेता था। अतः यह बुतेल उर्फ़ बुलेल पद से पुकारा जाता था। 'बुती' के माने दैनिक कार्य के हैं। अक्सर यह पद कठायत-जाति को मिलता था।

पिरसूजिया—बत्ती जलानेवाले को पिरसूजिया कहते थे।

बरदारी—दरबार में भीतरी ख़िदमतगारों को उनकी 'पारी' यानी पहरे का समय बतलानेवाले को या उनके सुपुर्द उनका काम करनेवाले को 'बारीदार' या बरदारी कहते थे। यह काम भी अक्सर कठायत राजपूतों के ज़िम्मे था।

चौड़ा—जब रसोई हो चुके, तो रसोई के बरतनों को साफ़ करने के समय जो मनुष्य हाज़िर रहता था, ताकि उनकी चोरी न हो, वह चौड़ा कहाता था। वह भंडारी के सुपुर्द भी बरतनों को करता था। बरतनों की चौकी यानी पहरा देनेवाला चौड़ा कहलाया।

चोर मंडलिया—सेलखाना यानी मेगज़ीन का पहरा जो छिपकर देता था कि मेगज़ीन के अफ़सर अपनी नौकरी में होशियार है या नहीं। जब किसी को सुस्त या ग़ैरहाज़िर पाता तो उसकी रिपोर्ट दरबार में करता, उसको 'चोर मंडलिया' कहते थे। (C. I. D. ?)

कंडियाल—'कंडिलो' पर्वती भाषा में गुनगुने पानी को कहते हैं। अतः जो मनुष्य गुनगुना पानी लाकर राजा के हाथ पैर धुलवाये, वह कंडियाल कहाता था। पनेरू भी कहे जाते थे।

चनणियाँ—राजाओं के लिये जो चंदन, केसर, कपूर घिसते थे, वह चंदनियाँ उर्फ़ चनणियाँ कहे जाते थे।

देवतिया—पुरोहित की पूजा करने पर जो भस्म यानी होम की राख, अशिखा, पुष्प, चरणामृत राजा को देता था, वह देवतिया कहाता था।

पुज्याली—पूजा व यज्ञ के बरतन वग़ैरह की खबरदारी करनेवाला पुज्याली कहाता था। जब यज्ञ व होम होता था, तो आर्यस्थाली में (जिसमें होम रखने की चीज़ें रक्खी जाती हैं) जो चीज़ें बाक़ी रहती थीं, वह इसी की होती थीं।

सागिया—प्रत्येक क़िस्म के साग यानी तरकारी प्रत्येक मौसम में दरबार में हाज़िर करनेवाला 'सागिया' कहाता था।

चालोसिया—चंद-राजाओं के समय एक कर्मचारी का यह काम था कि जब रसोई सिमल्टिया पांडे बना चुकें और पाटणी पुनेठा खाने को चख चुकें और ठीक बतावें, तो राजा को खाना तैयार होने की खबर दिलावें। जब राजा ठाउ यानी रसोई में आकर बैठें, तो वह राजा, गुरु, पुरोहित, वज़ीर,

बक्सी, दीवान वग़ैरह छोटे-बड़े कर्मचारियों को तथा अन्य ब्राह्मण, राजपूत, साहू चौधरी वग़ैरह को अपने पदों के मुताबिक़ रसोंई में बिठावे। यदि कोई पंक्ति बदले, तो फौरन् उसको उसकी पंक्ति में बिठावे। पंक्ति में बैठने में 'चाला' यानी दग़ा न होने पावे इस बात की निगरानी 'चालोसिया' के अधिकार में थी। अगर किसी कारण चालोसिया किसी छोटे दर्जेवाले को बड़े दर्जे में बैठा देता या बड़े को छोटे में तो उसे ये बड़ी सख़्त सज़ा मिलती थी। कभी-कभी आँखें निकाली जाती थीं। रसोई में बैठने का तरीक़ा यह था—राजा के दाहिनी तरफ़ पहले गुरु, फिर पुरोहित, मंत्री आदि बैठते थे। बाईं तरफ़ देश से आये हुए राजा, कुंवर, रौतेले, राजपूत वग़ैरह बैठते थे।

मट्याणी—राज-दरबार में लीपने व पोतने को मिट्टी लानेवाला 'मट्याणी' कहा जाता था।

डंगरा उर्फ़ डङरा—चंद-राजाओं के समय यह दस्तूर था कि जब राजा तराई भावर में बरसात बाद जाते थे, तो गाय, बैल, भैंस इत्यादि डंगर घास दबाने के लिये भेजे जाते थे, जिससे घास दब जाती थी, तब राजा की सवारी जाती थी।

इस काम में चकाना हरन्वाल भी भर्ती होते थे। वह बतौर सफरमैना पल्टन के थी। 'डंगरा' कहलाते थे। संभव है यह डोंगरा का अपभ्रंश हो (—लेखक)।

बड़िया—राजाओं के समय बग़ीचों का नाम बाड़ी था। सात बाड़ियाँ अल्मोड़ा में थीं। उनकी रक्षा का भार जिस पर था, वह बड़िया कहाता था। ये माली के समान थे। जनेऊवाले होते थे।

देवचेरी उर्फ़ द्योचेली—राजा बाजबहादुरचंद गढ़वाल के इलाक़े में बधाणगढ़ को जीतकर वहाँ की सोने की मूर्ति को जो दो सौ अशरफ़ी की थी उठा लाये। तथा देवी के साथ देवीजी के टहलुवे स्त्री-पुरुष व उनके बाल बच्चे सहित सबको पकड़ लाये। अल्मोड़ा आकर मल्ला महल में मंदिर बनवाकर उस मूर्ति की स्थापना की बादको ट्रेल साहब ने मल्ला महल से (जहाँ पर इस समय कचहरियाँ हैं) मंदिर उठाकर वर्तमान जगह में बनाया। मंदिर की टहल करनेवाली औरतें देवचेली (देवीचेरी) या द्योचेली कहलाती थीं। ये विवाह न करती थीं। स्वतंत्रतापूर्वक अपने रूप-यौवन को यत्र-तत्र न्यौछावर करती रहती थीं।

हरन्वाल—द्योचेली को संतान हरन्वाल कहलाती थी। द्योचेली की

लड़की की शादी नहीं होती थी। अपनी मा के काम पर वह नियुक्त होती थी।

राजचेरी उर्फ़ राचेली—राजाओं के समय रनवास में सेवा करनेवाली स्त्रियों को राजचेरी उर्फ़ राचेली कहते थे। ये औरतें यत्र-तत्र से छोटी जातियों से मँगाई जाती थीं। जो देखने में सुंदर तथा युवती होती थीं विशेष कर वे ही बुलाई जाती थीं। उनमें से कोई-कोई तालीम पाकर गाना-बजाना भी सीखती थीं। रनवास में नाचने व गाने का काम ये ही करती थीं। जो नाचती-गाती न थीं, वे राजा व रानी का सब काम करती थीं। रसोई का काम आटा गूँदना, तरकारी काटना, रसोई व चौका ठीक करना, दाल-चावल वग़ैरह साफ़ करना, धोना इत्यादि। इस कारण उनके कई नाम थे। यथा—(१) राचेली, (२) सूना मैदा चेली, (३) मैदापाणी चेली, (४) मैदा चेली।

जब श्रीसरुली राजचेली की कुमंत्रणा से श्रीशकराम कारकी ने राजा विजयचंद को मारा, तो राजा त्रिमलचंद ने यह आज्ञा दी कि आधी राज-चेलियाँ कुमाऊँ की हों, आधी गढ़वाल की। ताकि वे कुमंत्रणा न करने पावें और उनको दरबार से बाहर जाने की आज्ञा न थी।

ऊपर लिखी राचेलियों की संतान को भी हरन्वाल कहते थे। हरन्वाल के मानी हर के यानी लूट से लाये हुए के हैं। ये राजचेलियाँ एक प्रकार हर के यानी ज़बर्दस्ती से लाई जाती थीं। इनकी लड़कियों का विवाह नहीं होता था।

शेउक उर्फ़ श्यौक की राजचेली—जब राजा कहीं को दौरा करते थे, तो लश्कर के साथ जो चेलियाँ राज-सेवा को चलती थीं, वे इस नाम से पुकारी जाती थीं। इनका दर्जा उपर्युक्त पाँच प्रकार की राजचेलियों से छोटा था। विवाह इनका भी नहीं होता था।

चकाना हरन्वाल—श्यौक राचेली की संतान को चकाना हरन्वाल कहते थे। जब गाँव में रक़म बाक़ी रह जावे या काशीपुर वग़ैरह में कपड़े का दस्तूर वसूल करना होवे, तो ये लोग भेजे जाते थे। अच्छी तरह वसूल न हो, तो ये लोग बेइज़्ज़ती करके भी असामी से रक़म वसूल कर लाते थे।

चौधरी या साउ (साहू)—जब यह राजा के दरबार में दफ़्तर में काम करता था, या फ़ौज में भर्ती हुआ, तो साउ कहा जाता था। जब लड़ाई में

ख़ैरख़्वाही के सबब कोट या क़िले में अफ़सर बनता, तो चौधरी कहा जाता था।

चौथानी—चूने का कारबार करनेवाले को चौथानी कहते थे। ये लोग मुन्स्यारी से चूना दरबार में लाते थे।

डागी—राजाओं की सवारी के आगे सोने-चाँदी की छड़ियाँ व आसा-बल्लम ले जानेवाले डागी कहे जाते थे। डाक ले जानेवाले यानी हरकारे भी डागी कहलाते थे।

चोपदार नक़्क़ारची वग़ैरह—राजा बाज बहादुरचंद ने कुछ मुसलमानों को मुरादाबाद से लाकर चोपदार, नक़्क़ारची वग़ैरह बनाया था। इनका सरदार मौलाबख़्श था। राजा अजीतचंद के समय मुसम्मात बिजुली खवासन ने पूरनमल गैड़ा विष्ट से मैत्री की। बाद को उससे एक लड़का उत्पन्न हुआ। वह मुसलमान चोपदार को दिया गया। वह गुमानी चोपदार के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसकी संतान चोपदारी के काम पर मुक़र्रर रही।

---

३६. जोगी जंगम

कुमाऊँ में जोगी या साधु बहुत हैं। ये लोग गुसाईं, जोगी, वैरागी, उदासी तथा साधु कहलाते हैं।

गुसाईं—(गो+स्वामी) शंकराचार्य के चार चेले थे, (१) पद्मपाद, (२) हस्तामलक, (३) सुरेश्वर अर्थात् मंडन, (४) त्रोटक।

पद्मपाद के दो चेले हुए (१) तीरथ, (२) आश्रय। हस्तामलक के दो (१) बन, (२) अरण्य। सुरेश्वर व मंडन के तीन, (१) सरस्वती, (२) भारती, (३) पुरी। त्रोटक के तीन (१) गिर या गिरि, (२) परबत, (३) सागर। ये सब दसनामी दंडी स्वामी कहलाये। इनके दसनामी अखाड़े होते हैं। ये एक दंड भी ले जाते हैं, इससे दंडी स्वामी भी कहलाते हैं। कुछ लोग अब विवाह करते हैं, कुछ नहीं। अखाड़ों को मठ कहते हैं। इनके नेता महंत कहलाते हैं। महंत के मरने पर यदि चेला पहले से मूँड़ा हुआ, तो वह गद्दी पर बैठता है, अन्यथा सब मिलकर महंत को छाँटते हैं। पहले साधुओं को विवाह करने की आज्ञा न थी, पर अब तो प्रायः सभी विवाह करते हैं।

जोगी कनफटे—ये भैरव के मंदिरों के पुजारी हैं। इनका आदि स्थान कच्छ देश में है, जो दनोदर कहलाता है। ये गेरुवा वस्त्र पहनते हैं, और कानों में बड़ी-बड़ी सींग की बालियाँ पहनते हैं, जिन्हें मुद्रा कहते हैं। कुमाऊँ

में ये बहुत हैं। ये बाममार्गी होते हैं, और तांत्रिक उपासना करते हैं। भैरवी चक्र को मानते हैं। पंच मकार, (१) मत्स्य, (२) मांस, (३) मद्य, (४) मैथुन तथा (५) मुद्रा को मानते हैं। नग्न स्त्री को पूजते हैं। इनके तंत्रों में लिखा है कि पूजा के लिये नर्तकी, वेश्या, दासी, धोबिन या नाइन उपयुक्त पदार्थ हैं। इनके सब काम गुप्त होते हैं। किन्तु कुमाऊँ में ये लोग जोगी कनफटे कहलाते हैं। यहाँ पर भैरव को तो पूजते हैं, पर भैरवी चक्र के अनुयायी कम हैं अथवा हैं ही नहीं कहें तो भी ठीक होगा।

जंगम—ये लिंगधारी भी कहे जाते हैं, क्योंकि ये एक छोटा-सा लिंग छाती या बाँह में पहनते हैं। वे अपने को शिव का आदि तथा शुद्ध उपासक मानते हैं। वे वेद तथा शंकराचार्य के मत को मानते हैं। पर महाभारत, रामायण तथा भागवत को ब्राह्मणों का गपोड़ा शंख समझते हैं। वे वासव-पुराण के मतानुयायी हैं। देवी-देवताओं को नहीं मानते। न व्रत, तपस्या, बलिदान, माला या गंगाजल किसी को ठीक समझते हैं। ये सब प्राणियों को समदृष्टि से देखते हैं। ये विवाह भी करते हैं। पर बाल-विवाह के विरुद्ध तथा विधवा-विवाह के पक्ष में हैं। इनमें भी भेद हैं:—

(१) वीर शैव—ये निराकार उपासक होते हैं, और पौराणिक मत के विरोधी हैं।

(२) आराध्य—ये वेद को मानते हैं। जनेऊ पहनते हैं। सूर्य की उपसना करते हैं, पर जंगम लोग इनको मूर्ति-पूजक कहकर इनकी निंदा करते हैं। ये अपने को वैदिक तथा इनको वेदवाह्य कहते हैं।

जंगम लोग शिव या सदाशिव के उपासक हैं, जो अदृश्य पर सर्वव्यापी हैं। जिसका रूप केदारनाथ में है। उनके यहाँ लिंग कोई अपवित्र विचारों का द्योतक नहीं है। वे माया या काली को नहीं मानते। वे सदाचार व व्यवहार को सर्वोपरि समझते हैं। वे काम, क्रोध, लोभ, मोह को जीतकर मुक्ति पाना मानते हैं। वे विवाह, जन्म, मृत्यु आदि के नियमों का पालन करते है। चेलों को भी मूँडते हैं। वे शान्त, गंभीर तथा श्रद्धालु होते हैं। वे मुर्दों को गाड़ते हैं, जलाते नहीं। वे ब्राह्मणों को पुरोहित नहीं बनाते।

उदासी—ये सिख हैं, जो देहरादून के गुरु रामराय के पंथ के हैं।

साध—ये उसी ढंग व चरित्र के होते हैं, जैसे चमारों व भंगियों के गुरु। ये बीरभान के मतानुयायी हैं। ये तमाखू नहीं पीते। सफ़ाई व स्वच्छता पर ज्यादा ज़ोर देते हैं।

पीर—कैड़ारौ पट्टी में काया में पीर हैं। ये नाथ हैं। इनको विवाह का

हुक्म नहीं है। ये पंचायत से छांटे जाते हैं। श्रीपन्नालाल लिखते हैं कि काया के पीर 'ढाँटियाँ' भी रखने लगे हैं, पर इनके लड़कों को गद्दी नहीं मिलती। यद्यपि अब मिलने लगी है।

औघड़—बिना कान छेदे हुए जोगियों को औघड़ कहते हैं। ये खेती करते हैं।

संयासी—ये शैव मत के है। गुसाइयों की तरह अनेक सम्प्रदायों में विभाजित हैं।

बैरागी - ये वैष्णव मत के हैं। ये कुमाऊँ में बहुत से वैष्णव मंदिरों के पुजारी हैं। इनकी बातें भी गुसाइयों से मिलती जुलती हैं। इनमें भी कई सम्प्रदाय हैं जैसे रामानंदी, राधाबल्लभी नियानंदी, रामानुज।

अघोरपथी—ये सबसे नीच मार्गी हैं। ये विष्टा व मनुष्य का मांस भी खाते हैं, ऐसा कहा जाता है। और मुर्दे की खोपड़ी में शराब व पानी पीते हैं। ये भूत प्रेत, शृगाल, कुत्ते व बाघ के उपासक होते हैं।

नाथ—कुमाऊँ में ज्यादातर तीन संप्रदाय के जोगी पाये जाते हैं। (१) कनफटा, (२) बिना कनफटा, (३) नाथ। अठकिन्सन साहब ने लिखा है—'नाथ लोग ज्यादातर खस-राजपूतों के मंदिरों की सेवा करते हैं या भैरव मंदिरों के उपासक हैं। नाथों में से कुछ लोग कान छिदवाकर कुंडल पहन कनफटे हो जाते हैं। गुसाईं, जंगम, बैरागी व नाथ आपस में कभी-कभी विवाह करते हैं और खेती भी करते हैं। नाथों के अठारह संप्रदाय हैं—(१) धर्मनाथ, (२) सत्यनाथ, (३) बैरागनाथ, (४) कफलानी, (५) दरयावनाथ, (६) मस्तनाथ, (७) रावल, (८) गुडार, (९) खंतार, (१०) रामनाथ, (११) ऐपंथी, (१२) निरंजनी, (१३) कंकाई, (१४) भुसाई, (१५) मुंडिया, (१६) मानपंथी, (१७) पावोपंथी, (१८) मुस्किनी।

सोमेश्वर के पुजारी भारती तथा बैजनाथ पुरी के हैं। ये दोनों आपस में विवाह करते हैं। बड़ा लड़का महन्त होता है, वह अयोग्य हुआ, तो पंचायत महन्त को छाँटती है। गणानाथ व पीनाथ के महन्त गिरी हैं। इनको विवाह करने की आज्ञा नहीं है।

---

३७. शक तथा किरांति जातियाँ

कुमाऊँ के उत्तर में बसनेवाली जातियों को नीचेवाले लोग 'शौक' कहते हैं। भोट में रहने से ये लोग भोटिया भी कहे जाते हैं। इनमें कुछ लोग तो

वास्तव में शक या मुग़ल जाति के हैं, पर कुछ लोग आर्य या खस-जाति के जाकर वहाँ बसे, जो बाद को उन्हीं में मिल गये।

इनमें जोहार उर्फ़ जीवार के रहनेवाले जोहारी कहे जाते हैं।

मिलम्वाल—अपने को धारानगर के क्षत्रिय पँवारवंशी राजपूत बताते हैं। हरिद्वार से आये। श्रीधामसिंह रावत व हीरू रावत बदरीनाथ यात्रा को आये। आरंभ में बुटौलगढ़ में, जो हरिद्वार के निकट है, रहने से बुटौले रावत कहे गये। बाद को गढ़वाल से मिलम में आये। मिलम में रहने से मिलम्वाल कहलाये।

इस खानदान में श्रीनैनसिंह पंडित सी० आई० ई० तथा रायबहादुर किशनसिंह साहब दो अच्छे नामी पुरुष हो गये हैं। इन्होंने तिब्बत-अन्वेषण में बड़ा नाम कमाया। (इस खंड की बातें हमने श्रीनैनसिंह पंडित की हस्त-लिखित पुस्तक से संकलित की हैं।—लेखक)

टोलिये—दो भाई गेलू व सामा कुँवर गढ़वाल से श्रीधामसिंह के साथ आये और जोहार में टोला गाँव में बसने से टोलिये कहलाये।

जंगपांगी—बुर्फू के बुर्फाल जंगपांगी तथा चरखमियाँ जंगपांगी अपने को नागवंशी बताते हैं।

ल्वांल—ल्वां गाँव के ल्वांल वहाँ के पुराने वाशिंदे हैं।

रलम्वाल-रालम के रलम्वाल भी पुराने वाशिंदे हैं, शादय ये शक-जाति के हों।

मरतोलिया—अपने को काशी के भट्ट की औलाद बताते हैं। श्रीबदरी-नाथ के पंडों की बही में लिखा है कि पुरुषोत्तम भट्ट काशी से बदरीनाथ आये। तीन वर्ष तक गढ़वाल में नृसिंह देवता के पुजारी रहे। इनके दो पुत्र हुए—(१) नारायण भट्ट, (२) शिबू भट्ट। नारायण भट्ट जोहार मरतोली में बसे, मरतोलिया कहलाये। शिबू भट्ट दानपुर में बसे। उनकी संतान चौड़ियाल कहलाई। मरतोलिये नृसिंह देवता को पूजते हैं।

ह्रसपाल—अपने को गढ़वाल का गमशाली बतलाते हैं। इनकी उत्पत्ति मच्छेन्द्रनाथ से मानी जाती है।

धुपवाल—अपने तईं पंत ब्राह्मण की संतान बताते हैं।

मपवाल, रिलकोटिये और बिलज्वाल अपने को डोटी आछम के कारकी होना कहते हैं।

धमसक्त पांगती बूढ़ाराठ	ये तीनों सम्प्रदाय अपने को गढ़वाल से आना कहते हैं। ये बुटौलागढ़ के रावत मध्ये बताये जाते हैं। आरंभ में कहा जाता है कि सब एक थे।

बाद को अलग-अलग हो गये। कुछ और पुरानी जातियाँ जोहार की ये हैं:—

शुमदू के शुमद्याल, गनाघर के गनघरिये, पाछू के पछवाल।

जोहारी लोग कुमावनी बोली बोलते हैं। जो बात छिपानी हो, तो उसे हुणियों की बोली में कहते हैं, जो इस प्रकार है:—

हुणियाँ बोली	हिन्दी बोली	हुणियाँ बोली	हिन्दी बोली
ग्र	खच्चर	सोंग	जाओ
स्यौक	आओ	तेलछार	आ गया.
डोजे	चलो	तेलमी होंग	नहीं आवेगा
तेलहोङ	आवेगा	तेलकानमेद	नहीं आना चाहता
तेल काना होद	आना चाहता है	टुगू	लड़का
चिफिला तेलमी हों	क्यों नहीं आता	टियासिंगमो	बहन
बमो	बेटी	नौ	छोटा भाई
आज्यो	बड़ा भाई	माँगबू	आदमियों
मी	आदमी	मेंः	आग
आनी मो	औरत	छलमा	भात
छीउ	पानी	पाःक्	तरकारी
तगरी	रोटी	स्यो	दही
हुमा	दूध	ता	घोड़ा
दारा	छाछ	काना डो	कहाँ जाना है
काना तेलहूँ	कहाँ से आया है	दोद	बैठ जाओ
साज्या साहुँगै	खाना खाते हो	चेरांग सुहिदा	तुम कौन हो
खंगबा काना होत	घर कहाँ है	स्यासाहुंगै	शिकार खाते हो
ज्याथुग	चाय पीओ	हगोत करी साहुंग	हमने रोटी खाई
छां थुंग	शराब पीते हो	डमजे	बामन
खे रांग लाग पाला ची होत	तुम्हारे हाथ में क्या है	मर	घी
अचरा	जोगी	डा	चावल
मरती	तेल	सींग	लकड़ी
बागफे	आटा	बुंग	गधा
खीं	कुत्ता	लुगु	बकरा

तिब्बती लोग जोहारियों को 'क्योनबा' कहते हैं। उनकी बोली में जोहार व कुमाऊँ का नाम 'क्योनम' है। वे दरमियों को श्योबा, ब्यासियों को 'ज्यांलबू', गढ़वालियों को 'गल्टिया' तथा अल्मोड़ा के आदमियों को 'रोंगबा' (नगर का

रहनेवाला), अँगरेज़ों को 'ग्याफिलिंग फीबा' तथा मुसलमान को 'खजी' कहते हैं।

जोहारी लोग अपने को भोटिया नहीं कहते, यद्यपि कुमय्ये इनको भोटिये कहते हैं। जो जातियाँ बाहर से आईं, उनमें 'रांगपांग' नहीं होता था, केवल जो वहाँ के पुराने बाशिन्दे थे, उनमें'रांगपांग' होता था। अब जोहार में यह प्रथा प्रायः बंद हो गई है।

जोहारियों का प्रायः सब काम हिन्दू-धर्म के अनुसार होता है। छट, नाम-कर्म, व्रतबंध वग़ैरह सब कुछ होते हैं। इनके पुरोहित पंत, पांडे आदि ब्राह्मण हैं। इनके यहाँ सब काम प्रायः नीचे के राजपूतों की तरह होता आया है। ये लोग खान-पान तथा विवाह आदि में स्वतंत्र होने के कारण तथा तिब्बतियों के साथ भोजन कर लेने के कारण कुछ कम माने जाते थे। नीचेवाले कट्टर-धर्मी इनके हाथ का पानी पीने में भी संकोच करते थे, यद्यपि इनकी छूत नहीं मानी जाती थी। इन्होंने विद्या, व्यवसाय-सभ्यता व शिक्षा में काफ़ी उन्नति की है। अब ये कुमाऊँ-समाज के एक प्रतिष्ठित अंग हैं। इनकी स्त्रियाँ भी शिक्षा प्राप्त कर उन्नति के मार्ग में आगे बढ़ रही हैं।

जब भोट प्रान्त तिब्बत के अधीन था, तो वे तीन प्रकार का टैक्स लेते थे—(१) सिंहथल (मालगुज़ारी), (२) याथल (धूप सेंकने का टैक्स), और (३) क्यूंथल (तिजारत में नफ़ा)। बाद को हिन्दू राजा सोने के चूरे के रूप में टैक्स लेते थे। गोरखों ने डांट कर, जड़-बूटी-कर, बाज, कस्तूरी, शहद व खेती पर भी टैक्स लगाया।

जोहार में इस समय कहा जाता है कि ब्राह्मण, राजपूत, खस-राजपूत तथा शिल्पकार (हरिजन) सब वर्ग के लोग उपस्थित हैं।

जोहारियों की पुरानी बोली इस प्रकार थी:—

पुरानी जोहारी बोली	हिन्दी	पुरानी जोहारी बोली	हिन्दी
यो	आओ	दी	जाओ
छम	चलो	चेंगरास	आ गया
अचरयाँ	अब आवेगा	मरा	नहीं आवेगा
रान नी हिनी	आना चाहता हैं	रानमनीसी	नहींआना चाहता
मी	आदमी	मीजन	आदमियों
कुछै	औरत	डूक कुछै	स्त्रियों
सेरी	बेटा	चिमै	बेटी
आया	मा	आपा	बाप

पुरानी जोहारी बोली	हिन्दी	पुरानी जोहारी बोली	हिन्दी
में	आग	ती	पानी
कलपा	रोटी	छकु	भात

३८. व्यांस-चौदांस के वासी

ह्यांकी राठ—ये कहते हैं कि चौदांस पहले मनुष्य-रहित था। एक आदमी उस देश में आसमान से गिरा। उसने सारा प्रांत आबाद किया। उसकी संतान बहुत बढ़ी। कई पुश्त तक उनके बदन से जख्म होने पर भी खून के बदले दूध निकलता था। ये उसकी संतान में से अपने को बताते हैं। यहाँ भी आस्पद गाँव के नाम से हैं:—

कुत्याल—कूटी गाँव के रहनेवाले।
गुंज्याल—गुंजी गाँव के रहनेवाले।
नव्याल—नावी गाँव के रहनेवाले।
नवलछ्यो—नवलछ्याल गाँव के रहनेवाले।
गर्व्याल—गर्व्यांग गाँव के रहनेवाले।
बुद्याल—बूदी गाँव के रहनेवाले।
तींकरी—तींकर गाँव के रहनेवाले।
दिगराल—द्यागुर गाँव के रहेनेवाले।

दार्मा के वाशिंदे अक्सर दरमियाँ कहलाते हैं, पर गाँवों के नाम से अलग-अलग क़िस्म के हो गये हैं।

ग्वाल—गो गाँव के वाशिंदे।
फिलमाल—फिलम गाँव के वाशिंदे।
बोनाला—बौन गाँव के वाशिंदे।
दत्वाल—दातु गाँव के वाशिंदे।
गुंज्याल—गुंजी गाँव के वाशिंदे। इत्यादि

३९. व्यांस-दार्मा के लोगों के रस्म रिवाज

रागपांग

इनके यहाँ 'रांगपांग' भी खेलते हैं। रांगपांग एक प्रकार का नाचना व गाना है। ये लोग जब मौज आई, तब मर्द व औरत एक घर में एकत्र होते हैं। शराब पीकर मस्त होते हैं, और वहाँ खूब नाचते व गाते तथा रंग-रेलियाँ उड़ाते हैं। कभी-कभी वहीं वैवाहिक संबंध भी स्थापित हो जाता है।

पाश्चात्य लोग इस प्रथा को देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं, पर जैसे जोहार में जोहारोपकारक सभा ने इस कुप्रथा को जोहार से उठा दिया, वैसे ही समाज-सुधारक यहाँ से भी इस प्रथा को उठाने के पक्ष में हैं। यह प्रथा भारतीय सभ्यता व संस्कृति के विरुद्ध समझी जाती है।

स्थानीय गज़ेटियर के लेखकों तथा श्री बैटन साहब ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि यहाँ के लोग तैमूरलंग बादशाह की फ़ौज के सिपाही हैं, जो चीन व तारतार को न लौटकर यहाँ बस गये। कहते हैं कि अताबेग ने तिब्बत के रास्ते आकर यह देश जीता था। कुछ कब्रें ईंटों की बनी हुई बागेश्वर व द्वाराहाट में पाई गई हैं, जिनको पुरातत्त्ववेत्ता इन मुगलों की कब्रें कहते हैं, किंतु यहाँ पर ये साधुओं की समाधियाँ मानी जाती हैं।

जन्म व विवाह

जब इनके लड़का पैदा होता है, तो सबसे बड़े लड़के का नाम वही रखते हैं, जो उसके दादा का नाम रहा हो। और लड़कों का नाम जो जी में आया, रख दिया। जब जनेऊ होता है, तो सिर्फ़ सिर मूँडते हैं। शिकार भात खाया, शराब पिया, बाक़ी कुछ नहीं करते। ब्याह का दस्तूर ऐसा है कि लड़के की तरफ़ से लड़की के बाप के घर (मंगजई) सगाई करने को स्त्रियाँ जाती हैं। एक घड़ा शराब व फाफर (उगल) की रोटियाँ ले जाती हैं। लड़की का बाप उस शराब व रोटियों को ले लेता है। और सगाई को आई हुई स्त्रियों व अपने बिरादरों को शिकार-भात खिला तथा शराब पिलाकर सगाई मंज़ूर कर लेता है। ब्याह के दिन भी दुलहे को लेकर स्त्रियाँ दुलहिन के घर जाती हैं। दुलहिन को स्त्रियों और उसके घर व बिरादरी के लोगों के साथ अपने घर लाती हैं। शिकार-भात खिला व शराब पिलाकर संतुष्ट करती हैं। ब्याह में यह दस्तूर था कि पुरुष ने बारात में न जाना और बेटीवालों के न तो रुपया न सामग्री बेटी के ऐवज़ लेना। लेकिन ये दोनों शर्तें अब नहीं मानी जाती हैं। ब्याह होने के बाद जब जवांई अपने ससुर के घर जाता है, तब दस्तूर है कि वह २०) नकद व एक थान कपड़ा सफ़ेद और १ घड़ा शराब ले जाकर अपने ससुर के सिर में रख देता है। ससुर इन चीज़ों को अपने काम में नहीं लाता, किन्तु बिरादरी में बाँट देता है।

पहले इस परगने के लोग अपने-अपने गाँवों के स्वामी थे। पीछे यह परगना हूणदेश यानी तिब्बत के अधिकार में आ गया। बहुत दिनों तक यह परगना तिब्बतियों के अधीन रहा। यद्यपि अब ये लोग कुछ-कुछ हिन्दू-रस्म

रिवाज बरतने लगे हैं, तथापि इनकी सूरत, क़द, बोली, नाचना, गाना, रस्म-रिवाज सब तिब्बतवालों के-से हैं। यह प्रान्त कुछ दिनों तक जुमला-राज्य के भी अधीन रहा। कुछ शताब्दियों से कुमाऊँ के अंतर्गत है। यद्यपि ये भी अब कुमाऊँ प्रान्त के भीतर होने से कुमय्यें हैं, तथापि ये लोग आर्य जाति के नहीं हैं, ये मुगल हूण या शक या किरान्ति जाति के कहे जाते हैं।

धागा काटना

ये लोग ब्याह अपने मामू की बेटी व पिता की बहन यानी फुफी की बेटी के साथ कर लेते हैं। जब वह न मिली, तो अन्य की बेटी के साथ करते हैं। छोटा भाई बड़े भाई की औरत से और बड़ा छोटे की औरत से मृत्यु होने पर विवाह कर लेता है।

जब औरत अपने बाप के घर में या पति के घर में दूसरे से व्यभिचार कर गर्भवती हो जाती है, तो ज़ार से दंड यानी जुर्माना ले लेते हैं। स्त्री बदस्तूर पति के घर में रहती है। किन्तु जब उपपति किसी की स्त्री को अपने घर में ले जाता है, तो उस स्त्री को उसका पति फिर अपने घर में नहीं लाता। पंचायत के रूप में विवाह का खर्च उपपति से लेकर धागा काटते हैं। जब औरत के बारे में पंचायत होती है, और विवाह का ख़र्च पंचों ने ठहरा दिया और उपपति ने दे दिया, तब कुछ मिठाई, शराब पंचायत में बाँटी जाती है। और तागा लाकर छूरी से काट देते हैं। तागा बजाय संबंध के समझा जाता है। तागा काटना से मतलब रिश्ता टूटना समझा जाता है। तागा कटने पर स्त्री दूसरे पति की पत्नी गिनी जाती है। जब तक तागा नहीं काटा जाता, तब तक वह स्त्री व उसका ज़ार पूर्व पति के सामने नहीं आते, न उनसे उत्पन्न संतान जाति बिरादरी में ली जाती है। इन बातों की सफ़ाई के लिये पंचायत में धागा काटा जाता है।

आंतड़ा बेड़ना

जब इन परगनावालों के आपस में किसी कारण शत्रुता हो जाती है और पीछे मैत्री स्थापित करनी होतीं है, तो 'आंतड़ा बेड़ने' की रस्म बरती जाती है, जिसके पश्चात् फिर मैत्री हो जाती है। पंचायत जुड़ती है, खाना पकता है, शराब मँगाई गई, बकरा मारा गया। उसका मांस पकाया गया। आंतें उसकी निकालकर साफ़ करते हैं, और उनको दो फ़रीक़ैनों के बदन में लपेटते हैं, जिनमें किसी कारण से दुश्मनी हो गई थी। मानो यह सूचित करते हैं कि वे दोनो एक आँत में लिपटे हुए आये। बाद को आँतों को फेंक देते हैं। आपस में भाई के नाते से बोलते हैं। पंचों के साथ

मद्य, मांस उड़ाते हैं। नाचते-कूदते हैं, और परस्पर में फिर मित्र बन जाते हैं।

ढोरंग

जब कोई आदमी मर जाता है, तब उसकी सद्गति के वास्ते 'ढोरंग या ढुरंग' की रीति बर्ती जाती है।

मनुष्य के मरने पर उसके मृतक शरीर को जला देते हैं। बाद तीसरे (कभी-कभी अब १५ दिन या महीने में) बिरादरी के सब लोग अपने-अपने घर से शराब लाते हैं। बकरा मारते व शिकार-भात खाते हैं। जब १ वर्ष हो जाता है, तब उसके भीतर सिर्फ़ कार्त्तिक के महीने 'ढोरंग' करते हैं। बिरादरी के लोग इकट्ठे होते हैं। एक चँवर गाय को मारकर उसके मांस से मनुष्य की आकृति-सी बनाते थे, किन्तु अब कहा जाता है कि चँवर-गाय को नहीं मारते, जंगल में छोड़ देते हैं। बकरा मारते हैं। उस कल्पित मांस के मनुष्य को स्व-सामर्थ्यानुसार कपड़े व ज़ेवर पहनाते हैं। बाद को एक जीती चँवर गाय के ऊपर उसे सवार कराकर फिराते हैं। पश्चात् अच्छा ज़ेवर व कपड़ा ज़मीन में गाड़ देते हैं। कम क़ीमती को मुर्दे के नाम पर फेंक देते हैं। उसको नीच जाति के लोग उठा ले जाते हैं। ३ दिन तक शिकार-भात खाते, और शराब पीकर मस्त हो नाचते हैं। शोक भी मनाते हैं। बिरादरी के लोग भी अपनी-अपनी तरफ़से बकरा व शराब लाते हैं। स्वर्ग वे भी ३ दिन तक खाते पीते व रोते हैं। इसी प्रकार मृतक आत्मा को प्राप्त होना समझते हैं। बोली भी इनकी कुमाऊँ वालों से भिन्न है। यथा—

चीम	घर	पुछम	चावल
बछे	प्रणाम	ती	पानी
ननु	छोट भाई	मेई	आग
प्यामाँ	ससुर	छम	चलना
हालो	दोस्त	खुई	कुत्ता
मीना	मा	वा	बाघ
चुमै	बेटी	लंग	बैल
पुपु	बड़ा भाई	बैना	गाय
सिग्स्यां	छोटी बहिन	माला	बकरा
मींची	भावज	छा	नमक
		मर	घी
स्यांगती	राजा व पधान	वसकचमे	औरत

इस ओर के भोट-निवासियों की सूरत लामाओं की तरह है, अर्थात् नाक मोटी, छोटी व चपटी, रंग गोरा, मुँह गोल, आँखें भी छोटी व भीतर को धँसी व सूजी हुई दिखाई देती हैं। किन्तु ये व विशेषकर इनकी स्त्रियाँ सुन्दर होती हैं। बोली इनकी बड़ी प्यारी लगती है। ये प्रायः मैले रहते हैं, यदि ये साफ, सुथरे रहने लगें, तो योरपवालों से कम उज्ज्वल न होंगे। बड़े परिश्रमी व मज़बूत होते हैं। सरल प्रकृति के पुरुष हैं।

---

४०. नायक-वर्ग

नायक लोग कुमाऊँ में यत्र तत्र बसे हैं। वे ज़्यादातर इन जगहों में रहते हैं:—

नैनीताल ज़िला—पट्टी रामगाड़ की सुन्दर व रमणीक घाटी में। हल्द्वानी के पास गरम व उपजाऊ भावर में भी इनके गाँव हैं।

अल्मोड़ा जिला—पट्टी गिंवाड़ व नया चौकोट के लगभग ३०-४० गाँवों में।

कटारमल—अल्मोड़ा से ८ मील की दूरी पर एक गाँव है, उसमें भी थे रहते हैं।

पिठौरागढ़—सोर परगने के सौन, सेटी महर पट्टियों के गाँव लीलू, चौपखिया, सिनचौड़, नैनी, नैकाना आदि गाँवों में।

काली कुमाऊँ—खिलफती व रौल गाँवों में तथा गंगोल, वल्दिया और मल्ला पाल बिलौन में।

गढ़वाल—पट्टी मल्ला तल्ला-कालीफाट, लंगूर और उदयपुर तल्ला में।

नायक लोगों में यह घृणित व निंदनीय प्रथा जारी है कि वे ज़्यादातर अपनी कन्याओं को वेश्या बनाते है। मल्ला पाल बिलौन, वल्दिया और गंगोल पट्टियों के नायक बराबर विवाह करते आये हैं। कालीफाट पट्टी (गढ़वाल) के नायक खूबसूरत कन्याओं को बाज़ार में रखते हैं, और बदसूरतों का विवाह करते हैं। कुछ वर्षों से नायकों में सुधारक सभायें स्थापित हो गई हैं, जिनके कारण बहुत से सुधारक-दल के नायक लोग अपनी कन्याओं का विवाह करने लगे हैं। किन्तु बहुत लोगों में अभी पुरानी प्रथा जारी है।

नायक सम्प्रदाय की उत्पत्ति—यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता है कि नायकों की उत्पत्ति कब व कैसे हुई? किन्तु कूर्माचल के इतिहास

में नायक-वर्ग का वर्णन सबसे प्रथम राजा भारतीचंद के समय आया है। इन्होंने सन् १४३७ से १४५० तक कुमाऊँ में राज्य किया। अठकिन्सन साहब तथा पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं—"राजा भारतीचंद की सेना १२ वर्ष तक डोटी में लड़ती रही। इतने दिनों बाहर रहने से सिपाहियों का आस-पास की स्त्रियों से नाजायज़ संयोग हो गया। यह बात पहले कभी नहीं हुई थी, और हिन्दू-धर्म-शास्त्र के विरुद्ध थी। ये औरतें 'कटकवाली' कहलाईं। अन्त में इनकी एक जाति (नायक) अलग बन गई। उस समय के हिन्दुओं की दृष्टि में यह बात ऐसी निन्दनीय समझी गई कि पहाड़ के राजपूत भी मामूली समझे जाने लगे यद्यपि वे कभी देश के ऊँचे राजपूतों की संतान रहे हों। इनकी सन्तानें यदि पुरुष हुईं, तो नायक (संस्कृत-शब्द नायिका से उत्पन्न=नायक) और कन्या हुई तो नायिका या पातर (पतित्) कहलाईं।"

डॉ० पातीराम रायबहादुर साहब ने इनकी गणना खस-राजपूतों में की है। रायबहादुर पं० गंगादत्त उप्रेतीजी ने नायकों को चौथे दरजे के राजपूत बताते हुए शूद्र कोटि का कहा है। मि० गूज ने भी नायक, लूल, रावत और सौनों को एक ही कक्षा में लिखा है। डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशी साहब ने इनको खस-जाति का बताया है। वे अपने खस-कुटुम्ब-शास्त्र (Khas Family Law)-नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में लिखते हैं—"यह सिद्धान्त ठीक प्रतीत नहीं होता है कि नायकों की उत्पत्ति राजा भारतीचंद के समय युद्ध-क्षेत्र में क्षणिक संयोग से हुई......और न यह निर्लज्ज प्रथा कि कन्याओं का विवाह करने के बदले वेश्या बनाया जाना उसी समय से चली हो। यदि ६०० वर्ष पूर्व खस-जाति की सामाजिक दशा वही थी, जो आज है, तो यह बात कि किसी कन्या को वर न मिले, और वह वर न मिलने से पेशा कराने को बाध्य हो, सहसा समझ में नहीं आती। ईसाई-संवत् से हज़ार वर्ष पूर्व लिखित महाभारत में कहा गया है कि खस-जाति की परिस्थिति नायकों के सदृश थी। अतः यह बात ठीक तौर पर नहीं कही जा सकती है कि नायक जाति ६ सौ वर्ष पूर्व से ही उत्पन्न हुई, या यह खस-जाति की ही बिगड़ी हुई या पतित संतानें हैं, जिन्होंने अपनी कन्याओं के लिए पाणिग्रहण करने का ठीक-ठीक विधान नहीं किया, और उनको प्रारंभिक पशु दशा में रहने दिया।"

रामगाड़ के नायक कहते हैं कि उनकी उत्पत्ति चंद-राजाओं के समय देवदासियों से हुई। कटारमल के नायक अपनी उत्पत्ति एक उपाध्याय ब्राह्मण से बताते हैं। वे कहते हैं कि एक ब्राह्मण कटारमल से दो मील आगे 'गैजोल' में

गा रहा था। लड़की भी सुर मिला रही थी। चंद-राजा उधर से आये। लड़की के गाने को सुनकर उस पर मोहित हो गये। उपाध्याय से कहा, तुम ब्राह्मण के योग्य नहीं, बल्कि नायक हुए। तीन तार उनकी जनेऊ में से निकाले गये। खिलफती के नायक अपनी उत्पत्ति देवदासी से बताते हैं।

चौपखिये के नायक अपने को आसाम से आया हुआ कहते हैं। मनीपुर में जो गाने-बजानेवाली जातियाँ हैं, उनमें से बताते हैं। सिनचौड़ के नायक कहते हैं कि 'गायक' से नायक हो गये। पालीपछाऊँ के नायक अपने को देवचेली (देवदासी) या ब्रह्मचेली की संतान बताते हैं।

नायक अपने को राजपूत कहते हैं। वे तीन पल्ले की जनेऊ पहनते हैं। हिन्दुओं की तरह देवी-देवताओं को पूजते हैं। धन देकर यत्र-तत्र से स्त्रियाँ लेते आये हैं। कभी-कभी अच्छे राजपूत घरों से भी कन्यायें ले आते हैं। लड़कियों का विवाह घड़े या पीपल से होता है। वेश्याएँ भी पूजा, व्रत तथा तुलसी-पूजन करती रहती हैं, कभी-कभी मंदिर, धर्मशालाएँ व 'नौले' (जलाशय) भी बनवाती हैं।

सन् १९१२–१३ से नायक-जाति में सुधार-कार्य होने लगा। आर्य-समाज ने सबसे प्रथम इस कार्य में अच्छा भाग लिया। उसी के उद्योग से रामगढ़ में एक सुधारक-दल पैदा हो गया। तत्पश्चात् सन् १९२५ से प्रयाग-सेवा-समिति ने विस्तृत व संघटित रूप से सुधार-कार्य अपने हाथों में लिया। भारत-सेवक-मंडल के मुख्य नेता पं० हृदयनाथ कुँजरू साहब ने तमाम कुमाऊँ प्रान्त का दौरा किया, और यत्र-तत्र सभायें कीं, स्कूल स्थापित किये और कार्यकर्ता नियुक्त किये। शिक्षा-प्रचार तथा प्रोत्साहन द्वारा इस प्रथा को दूर करने का निश्चय किया। पं० बदरीदत्त पांडेजी ने ठा० देबी-सिंह व पं० कृष्णानंद उप्रेतीजी के साथ गाँव-गाँव घूमकर सुधार का संदेश पहुँचाया। गढ़वाल, नैनीताल व अल्मोड़ा तीनों ज़िलों में सुधारक-संघ तथा शिक्षालय स्थापित किये, जिससे लोकमत का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। कूर्माचल के समाचार-पत्रों ('अल्मोड़ा अखबार' व 'शक्ति' पत्रिका) ने भी ख़ूब आन्दोलन इस कुप्रथा के विरुद्ध किया।

अब नायक-जाति बहुत चेत गई है। बहुत से विवाह यत्र-तत्र होने लगे हैं। स्वयं नायकों में सुधारक-दल उत्पन्न हो गया है, जिसका श्रेय सबसे पूर्व रामगढ़ ही को है, क्योंकि सुधार-कार्य का श्रीगणेश यहीं से हुआ।

इधर कौंसिल में भी सुधारकों ने एक बिल पास कराया। सन् १९२४ में रायबहादुर ठा० मसालसिंह ने प्रान्तीय कौंसिल में एक प्रस्ताव पेश किया कि

नायकों में कन्याओं को वेश्या बनाने का जो बुरा रिवाज है, वह क़ानून द्वारा बंद किया जावे। एक कमेटी इस विषय में क़ानूनी मसौदा तय्यार करे। सरकार ने २ नवंबर १९२४ को एक कमेटी बैठाई, जिसके सभापति कुमाऊँ के कमिश्नर श्री स्टाइफ़ बनाये गये। उसके सदस्य ठा० मसालसिंह, पं० गोविन्दबल्लभ पंत, मि० मुकुन्दीलाल, बा० ब्रजनंदनप्रसाद, कप्तान चामूसिंह-प्रभृति थे। कुछ नायक लोग बाबू चतुरसिंह तथा बाबू जंगबहादुरसिंह इसके नीम-सरकारी सदस्य बनाये गये। पर इस कमेटी की रिपोर्ट को सरकार ने बिलकुल ही पलट दिया, और राम-राम कर सन् १९२९ में एक क़ानून पास किया, जिसका नाम 'नायक बालिका रक्षा क़ानून' रक्खा गया, जिसमें यह विधान रक्खा गया है कि १८ वर्ष तक की कोई कन्या वेश्या न बनाई जावेगी, न वह वेश्याओं के साथ रहने दी जावेगी। अँगरेज़ी सरकार भारतीय समाज-सुधार के संबंध में उदासीन रहती है, अन्यथा यदि सरकार अच्छी तरह से कार्य करे, तो वेश्या बनाने की प्रथा नायकों में से उठ जावे।

वेश्याएँ सर्वत्र हैं और रहेंगी, जब तक कि मनुष्य-समाज में दुर्गुण होंगे। पर अन्यत्र में स्त्रियाँ गुंडों व बदमाशों द्वारा मार्ग-भ्रष्ट कर वेश्याएँ बनाई जाती हैं, पर कुमाऊँ के नायक लोगों में यह कुप्रथा है कि वे लोग अपनी कन्याओं को अच्छा व उपयोगी नागरिक बनाने के बदले वेश्या बनाते हैं। अन्य कोई बनावे तो बनावे, पर कम-से-कम माता-पिताओं को अपनी कन्याओं को वेश्या न बनाना चाहिए।

नायक-सुधार में इन सज्जनों का कार्य श्लाघनीय है—मुं० रामप्रसाद मुख़्तार (स्वामी रामानंद), श्रीस्टाइफ़, ठा० मसालसिंह, पं० हृदयनाथ कुँजरू, पं० गोविन्दबल्लभ पंत।

इन नायकों ने भी अच्छा काम किया—स्व० उदयसिंह, स्व० श्रीदेवीदास, श्रीचतुरसिंह, श्रीदीवानसिंह, डा० किशनसिंह, श्रीदीवानसिंह, (?), ठा० लाखनसिंह, श्रीहीरादेवी, ठा० जंगबहादुर, ठा० इन्द्रसिंह (चिनौनी), श्रीप्रेमलतादेवी, श्रीसुभद्रादेवी।

संस्थाओं में आर्य-समाज, कुमाऊँ-परिषद् तथा सेवा-समिति, प्रयाग ने प्रशंसनीय कार्य इस विषय में किया है।

---

४१. आर्य-समाज

आर्य-समाज कोई नया धर्म नहीं, यह हिन्दू-धर्म का एक अंग है। सनातनधर्मी लोग मूर्ति-पूजा, श्राद्ध, बलिदान तथा कर्मकांड पर विश्वास

करते हैं, किन्तु आर्य-समाजी इन्हें नहीं मानते। वे साकार ईश्वर की उपासना को ठीक नहीं समझते, निराकार के उपासक अपने को कहते हैं। वैदिक धर्म को मानते हैं। पौराणिक धर्म की अवहेलना करते हैं। स्वामी दयानंद सरस्वती ने यह मार्ग चलाया। और इसी के साथ बाल-विवाह, विधवा-विवाह, विदेश-यात्रा, खान-पान, ऊँच-नीच, छूआछूत आदि विषयक पुराने सनातनी विचारों का खंडन किया, और कहा कि बाल-विवाह न होना चाहिए। विधवा-विवाह की आज्ञा दी। विदेश-यात्रा का मार्ग खोल दिया। खान-पान की संकीर्णता को दूर किया, और छूआछूत के भूत के विरुद्ध भी आन्दोलन किया। जैसे मार्टिन ल्यूथर ने यूरोप में पोप धर्म के विरुद्ध घोर आन्दोलन कर प्रोटेस्टेन्ट-मार्ग अलग निर्धारित किया, ऐसे ही स्वामी दयानंद ने भी स्वयं पहले सनातनी पंडित होकर बाद को नक़ली सनातन-धर्म की पोल खोलकर सच्चे वैदिक धर्म का रास्ता बताया। सन् १८७४ में आर्य-समाज का जन्म भारत में हुआ, और कुमाऊँ में उसकी लहर जब-जब, जहाँ-जहाँ आई, उसका संक्षिप्त विवरण यहाँ पर दिया जाता है—

नैनीताल

सन् १८८२ में आर्य-समाज स्थापित हुआ। पं० रामदत्त त्रिपाठीजी मंत्री नियुक्त हुए।

हल्द्वानी

१३ नवंबर सन् १८६८ में महाशय रामप्रसाद मुख्तारजी (स्वामी रामानंद) ने आर्य-समाज स्थापित किया। वे प्रधान रहे, और हैं, तथा ला० चिरंजीलालजी पहले मंत्री बने। १७ नवंबर सन् १६०१ में आर्य-समाज मंदिर बना।

काशीपुर

सन् १८८१ में आर्य-समाज स्थापित हुआ। प्रथम प्रधान महाशय वृन्दावन तथा प्रथम मंत्री श्रीगौरीशंकर गुजराती बने। मंदिर १६१३ में बना। एक मकान दान में मिला।

रामनगर

यहाँ १६०४ में आर्य-समाज स्थापित हुआ।

जसपुर

यहाँ आर्य-समाज की स्थापना १८८० में हुई। महाशय सुखदेवजी नागर प्रधान तथा महाशय कन्हैयालाल मंत्री नियुक्त हुए। समाज-मंदिर सन् १६२७ में बना।

रामगढ़

१६१६ में श्रीनारायण स्वामीजी रामगढ़ में आये, तब से वैदिकधर्म की चर्चा होने लगी। आर्य-समाज-मंदिर की स्थापना सन् १६२७ में हुई।

रानीखेत

१६३२ में समाज स्थापित हुआ। प्रधान महाशय बदरीप्रसादजी नियुक्त हुए।

अल्मोड़ा

लाला चिरंजीलाल साहजी कुमय्याँ तथा महाशय महावीरप्रसादजी ने आर्य-समाज की स्थापना की। सन् १६१६ में आर्य-भूमि मोल ली गई। ला० मोतीलाल गोविन्दप्रसादजी ने आर्य-समाज-मंदिर बनवाया, जिसको सन् १६२६ में ला० मथुराप्रसादजी ठेकेदार ने एक सुविशाल मंदिर में बदल डाला। सन् १६३५ में चंदे से यह भवन प्रायः दूना हो गया।

आर्य-अनाथालय ता० २३ जून सन् १६२५ को डॉ० केदारनाथजी ने खोला।

---

४२. ईसाई-धर्म

इस धर्म को चले १६३७ वर्ष हुए। जेरूसिलम से यह धर्म चला। ईसा नये धर्म के प्रचार करने के लिये शूली पर चढ़ाये गये। वे ईश्वर के पुत्र माने गये। तब से ईसाई-धर्म चला। अब इसकी कई शाखाएँ हैं। मुख्य-मुख्य ये हैं:—रोमन कैथोलिक, प्रोटेस्टेन्ट, मेथोडिस्ट, प्रेस्बिटेरियन, ऐंग्लिकेन, कम्यूनियन आदि-आदि।

रोमन कैथोलिक मूर्ति-पूजक हैं, प्रोटेस्टेन्ट नहीं हैं। ईसाई-धर्म यहाँ तभी से फैला, जब से अँगरेज़ (१८१४) आये। पर ईसाई बनाने अर्थात् मूँडने का धर्म अल्मोड़ा में सन् १८५० से तथा नैनीताल में १८५७ से चला। सन् १८५० में पादडी बडन साहब ने अल्मोड़ा में स्कूल व गिर्जा खोला। और नैनीताल में पादड़ी बटलर व पादड़ी नोल्स साहबान ने शिक्षा तथा ईसाई-धर्म-प्रचार का कार्य जारी किया। ईसाइयों ने शिक्षा का अच्छा प्रचार किया। यद्यपि पहले-पहल इनकी मुंडन-नीति से कई स्थानों में ग़दर भी हुए। इन्होंने यत्र-तत्र विशेषकर अल्मोड़ा, पिठौरागढ़ में शिक्षालय, अस्पताल, अनाथालय व कोढ़ीखाने खोले। सन् १८७६ में द्वाराहाट में मिशन का अड्डा खुला, और १८८१ से स्कूल जारी हुआ और १८८४-८५ से पिठौरागढ़ में कार्य जारी हुआ। वहाँ से धारचूला, चौदांस व जोहार में फैला। इस समय इनके केन्द्र कत्यूर, रानीखेत, बेनीनाग व लोहाघाट में भी हैं। यद्यपि सबसे

बड़ी बस्ती अल्मोड़ा में है, जहाँ इनके हाथ में लगभग १ मील लंबी सुन्दर व रमणीक पहाड़ी है। पिठौरागढ़ में भी इनकी अच्छी बस्ती है।

साधारण लोगों के अलावा कई जोशी, पंत, पांडे तथा सनवाल खानदान के लोग ईसाई बन गये। पहले अल्मोड़ा में लंदन मिशन था, अब अमेरिकन मिशन है।

---

४३. मुसलमान जाति

मुसलमान लोग अल्मोड़ा में राजा बाजबहादुरचंद के समय आये। यद्यपि २-३ बार रोहिलों ने कुमाऊँ पर चढ़ाई की, तथापि उन्होंने यहाँ अपनी बस्ती नहीं बनाई। पर्वतों में वे बहुत कम थे, किन्तु अब उनकी बस्तियाँ यत्र-तत्र हो गई हैं। तराई भावर में वे नवाबी समय से रहते आये हैं। राजा बाज-बहादुरचंद के समय १०-१२ नक़ारची, चोपदार व कुत्तों के टहलुवे आये थे। बाद को कुछ तिजारती लोग आये।

सन् १८२१ में अल्मोड़ा में ७५ घर मुसलमानों के थे, जिनमें से ५७ घर तिज़ारत पेशावालों के थे और १८ घर नौकर-चाकरों के थे। अल्मोड़ा, रानीखेत, मनीहारगाँव, काठगोदाम, ढिकुली आदि स्थानों में सन् १८२१ में ४६४ मुसलमान थे। ट्रेल साहब कहते हैं कि तब आम में ताज़िये ले जाने की मनादी थी।

अब इस समय कुमाऊँ में मुसलमानों की संख्या इस प्रकार है:—

इनमें शेख, सय्यद, मुग़ल, पठान सभी हैं। शेख पर्वतों में ज़्यादा हैं और वे ज़िला बिजनौर में शेरकोट के ज़्यादातर हैं। तराई में कई रईस घरानों के ज़मीदार हैं, जो रामपुर के पठान हैं, जैसे दराव के पठान।

वैसे मुसलमानों के शिया, सुन्नी दो फ़िर्क़े हैं। किन्तु तराई में मुसलमान इन उप-फ़िर्क़ों में बँटे हैं—पठान, कुरेंसी, बनजारे, तुर्कों, फ़क़ीर, राई, तेली, बढ़ई, हेड़ी, मेवाती, धुने, जुलाहे। इनकी मसजिदें अल्मोड़ा, नैनीताल, रानीखेत, हल्द्वानी, काशीपुर, गदरपुर आदि स्थानों में हैं।

नगरों में ये लोग तिज़ारत करते हैं। मुसलमान खुदा को मानते हैं और पग़म्बर को भी याद करते हैं कि उसने ख़ुदा पाक का रास्ता बताया। वे मूर्तियों को नहीं मानते। यद्यपि बहुत से लोग ताजियों, पीरों व क़बरों की पूजा करते हैं। सिया लोग इनको भी नहीं मानते, सुन्नी मानते हैं। सिया मातम मनाते हैं, पर ताज़िये नहीं बनाते। न जुलूस में शामिल होते हैं। शिया-सम्प्रदाय के मिर्ज़ा घराने के लोग अल्मोड़ा में हैं।

४४. धर्म और सम्प्रदाय

हिमाञ्चल प्राचीन काल से ही देवी-देवताओं की भोग-भूमि है। शिव व पार्वती का तो यह खास निवास-स्थान माना जाता रहा है। पौराणिक व वैदिक काल में मार्कंडेय, गर्ग, च्यवन, कश्यप, अत्रि, भरद्वाजादि ऋषियों के इस तपोभूमि में आश्रम थे। शिव का प्रधान स्थान कैलास - पर्वत तथा 'शक्ति' का उत्पादक हिमालय पर्वत इस प्रदेश में होने से शिव व शक्ति की उपासना यहाँ प्राचीन काल से प्रचलित है। ओकली साहब होली हिमालय' में लिखते हैं कि शिव की पूजा की कल्पना हिमालय पर्वत से ही प्रारंभ हुई है। पौराणिक काल में दानपुर यानी दानवपुरी के मूल-निवासी तथा तिब्बत के प्राचीन निवासी दोनों यक्ष थे, पश्चात् इन्होंने बुद्ध-धर्म ग्रहण कर लिया। श्रोणितपुर का दानवराज बाणासुर शैव था। शुम्भ-निशुम्भ दानपुर के राजा थे। उनके भृत्य चंड-मुंड ने हिमाचल-कृताश्रया अम्बिका को देखा था। ऐसा अनेक पौराणिक विद्वानों का मत है।

"ततोम्बिका परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम्।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यो शुम्भ निशुम्भयो॥"

—मार्कंडेय पुराण

शिव का नाम भूतेश है। पिशाच उनके सहचर हैं। भूत, प्रेत, बैतालों की सेना के अध्यक्ष का नाम भैरव है। "भैरवो भूत नाथश्च" यह तंत्र-शास्त्र का कथन है। शुद्ध वैदिक मत इन पर्वतों में कब प्रचलित था, था या नहीं, कहा नहीं जाता। कोई प्रमाण नहीं मिलते। निराकार उपासना का स्थान केवल केदार ही माना जाता है। किन्तु तब वहाँ भी वही पौराणिक कर्म-कांड की पूजा होती है। उन ऊँचे व उदार वैदिक-ग्रंथों तथा उपनिषदों में प्रदर्शित हिन्दू-धर्म का कहीं भी लवलेश नहीं है। पूजा, मोलतोल तथा धार्मिक रिश्वत ही देखने में आती है। ऊँचे देवताओं की पूजा कम होती है। छोटे-मोटे, कुल-देवता, गृह-देवता तथा ग्राम-देवता पूजे जाते हैं। जादू-टोना तथा तंत्र-शास्त्र के बिगड़े हुए रूपों की ही यहाँ पर प्रधानता मानी जाती है। यों तो यहाँ पर वेदान्तमार्गी, शैव, स्मार्त तथा वैष्णव सभी सम्प्रदाय के लोग वर्तमान हैं, पर ज़्यादातर लोग जड़-पदार्थ, भूत-प्रेत, जादू-टोना, 'जागर' आदि पर ज़्यादा विश्वास करते हैं। दयावान्, ईमानदार, सच्चे तथा सदाचारयुक्त देवताओं की पूजा कम होती है; किन्तु डरानेवाले, भयभीत व त्रसित् करनेवाले तथा छल-कपट से लोगों के प्राण व सम्पत्ति हरण करनेवाले देवताओं का मान ज़्यादा है।

शंकराचार्य से पहले यहाँ बौद्ध-मत था। यह बात निर्विवाद है, क्योंकि कत्यूरी राजा पहले बौद्ध थे। बाद को वे शैव हो गये हैं। कत्यूरियों के पहले यहाँ कौन धर्म था, कह नहीं सकते; किन्तु दस्यु या शूद्रों का धर्म पेड़-पौधों तथा भूत-प्रेतों की उपासना रही है, जिसको अब भी यहाँ के अनेकानेक निवासियों ने ग्रहण कर रक्खा है। कत्यूरियों ने ज़्यादातर शिव-मंदिर बनाये, उनके बाद तो यहाँ 'जितने ककर उतने शंकर' की उक्ति चरितार्थ हो गई। तमाम में शिव-मंदिर ही हो गये। चंद-राज्य-काल में सूर्य, गणेश, शिव, दुर्गा, विष्णु इन पाँच देवताओं की पूजा प्रचलित हुई।

इसके बाद यहाँ पर ३३ करोड़ देवी-देवता कबसे माने जाने लगे, कहा नहीं जाता। वैष्णव-धर्म के लोग पहाड़ में नहीं आये। आये भी, तो इने-गिने। इसलिये वैष्णव-धर्म का प्रचार यहाँ पर ज़्यादा नहीं है। अतः माला, कंठी, उर्ध्वपुंड्र धारण करके वैष्णव को दीक्षा लेनेवाले वैष्णव कुमाऊँ में बहुत कम हैं। प्रायः सभी पंच देवोपासक स्मार्त हैं। शिव व शक्ति के मंदिर यहाँ अधिक हैं। हर ग्राम में प्रायः 'भूमियाँ' (क्षेत्राधिपति) या क्षेत्रपाल की स्थापना देखने में आती है। ग्राम-देवता भी यत्र-तत्र स्थापित हैं, जिनमें बकरे बलिदान में चढ़ते हैं।

चौथानी ब्राह्मणों में, जो कान्यकुब्ज, मैथिल या सारस्वतादि पंचगौड़ आदि हैं, वे देश की तरह यहाँ भी देवी तथा भैरव की पूजा में बलि चढ़ाते तथा मांस खाते हैं। महाराष्ट्रादि पञ्च-द्रविड़ दक्षिण में मांस नहीं खाते, अतः यहाँ भी पन्त तथा भट्ट मांस नहीं खाते। किन्तु वैवाहिक संबंध आपस में होता ही है। कत्यूरी, चंद तथा मणकोट राजा के समय के आये हुए चौथानी ब्राह्मणों ने अपना एक संगठन अलग बना लिया। उन्होंने प्राचीन पर्वतीय ब्राह्मणों से संबंध नहीं किये।

पचबीड़ी ब्राह्मणों में कोई जातियाँ मांस नहीं खातीं, ज़्यादा मांस खाने-वाली हैं।

पुराने ब्राह्मण प्रायः सब मांस खाते हैं। क्षत्री व वैश्य हर श्रेणी के प्रायः सब मांस खानेवाले हैं।

पूजा-उपासना—शालग्रामादि पञ्च देवताओं की प्रत्येक चौथानी ब्राह्मण के यहाँ नित्य पूजा होती है। सायं-प्रातः शंखध्वनि आरती के साथ की जाती है। हरएक मकान में एक वेदी पूजा के लिये बनाई जाती है, जिसे 'देवतेळ्या' या देवस्थान कहते हैं। स्त्रियाँ पर्वों और उत्सवों में 'ऐपण' स्वस्तिक, भद्रा आदि से उसे सजाती हैं। घर के बड़े-बूढ़े को नित्य जापू

करनी होती है । जो अँगरेज़ी शिक्षित पुरुष स्वयं नित्य पूजा नहीं करते, उनके घर की वृद्ध स्त्रियाँ देवार्चन करती हैं । ब्राह्मणों व वैश्यों में तो नित्य पूजा होती है । क्षत्रियों में भी प्रायः रोज़ देवार्चन होता है, किन्तु ज़मींदार यानी खस-राजपूतों में नित्य देव-पूजन का रिवाज कम है । यदा-कदा पुण्य तिथियों व त्यौहारों में कुछ थोड़ा-सा ग्राम-देवताओं का पूजन हो जाता है ।

कुल-देवता—गंगोली के ब्राह्मण महाकाली को, कुमाऊँ के पुण्यागिरी को, चौगर्खा के जागीश्वर को, सत्राली के गणानाथ को, ध्यानीरौ के बाराहीदेवी को, माला के मल्लिकादेवी को, द्योलिया पांडे ज्वालाजी को, अन्यान्य भैरव को इष्ट मानते हैं ।

ग्राम-देवताओं का पूरा-पूरा विवरण अन्यत्र है ।

सन्ध्या—प्रत्येक द्विज के लिये त्रिकाल-संध्या प्रातः, मध्याह्न तथा सायं सन्ध्या करने का नियम था । अब त्रिकाल-संध्या करनेवाले कम हैं, किन्तु प्रातः-सायं सन्ध्या कुछ लोग करते हैं, और पूजन के बाद चंदन लगाते हैं । सन्ध्या-बंधन में आचमन, शिखाबंधन, न्यास, ध्यान, प्राणायाम, मार्जन, अघमर्षण, सूर्यार्घदान, उपस्थान, गायत्री-जप करना होता है । अँगरेज़ी पढ़े-लिखे नवयुवक अब संध्या-पूजा में कम ध्यान देते हैं ।

---

४५. बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म कूर्माचल में अभी-अभी आठवीं शताब्दी तक था । बुद्ध-काल में लोग प्रार्थना व स्तुति करते थे, गाते-बजाते तथा फूल व सुगंधित पदार्थ निराकार परब्रह्म को चढ़ाते थे, और निर्वाण या मुक्ति के लिए प्रार्थना करते थे । ये बातें प्राचीन वैदिक युग के निराकार प्रकृति-पूजन से भी मिलती-जुलती थीं ।

बाद को बौद्ध पुजारियों ने सब लोगों को अपने धर्म में शामिल कराने की ग़रज़ से तांत्रिक बातें भी धर्म में चलाईं । पाशविक पूजा का प्रचार भी चलाया । इसीलिये स्वामी शंकराचार्य ने इस मत का खंडन किया । स्वामीजी ने बदरिकाश्रम में आकर बौद्ध मठ को उठाकर जोशी-मठ में ज्योतिर्मठ की स्थापना की । ऐसा ज्ञात होता है कि कत्यूरी राजाओं में महाराजाधिराज श्रीवासुदेव गिरिराज चक्रचूड़ामणि ने बौद्ध धर्म छोड़कर सनातन धर्म स्वीकार किया । कार्त्तिकेयपुर की राजधानी में राजधर्म सनातन था । शिव की पूजा ज्यादातर होती थी । इस प्रकार सनातन धर्म फिर चल पड़ा । यद्यपि

हिन्दुओं ने कई बातें बुद्ध धर्म की भी मान लीं। यथा उनका कर्म-सिद्धान्त यानी जो जैसा कर्म करेगा, वैसा फल पायेगा, और साथ ही निर्वाण पद सम्यक् आहार-विहार, सम्यक् निद्रा से ही प्राप्त होता है। बुद्ध को अवतार मानकर हिंदुओं ने उसे अपने धर्म में शामिल तो कर लिया, किन्तु उस धर्म को तिब्बत, चीन, जापान, ब्रह्मा, श्याम आदि देशों में शरण लेनी पड़ी।

---

४६. वेद व पुराण

यहाँ पर ४ वेद व १८ पुराण तथा श्रुति, स्मृति प्रधान ग्रन्थ माने जाते हैं। 'श्रुति-स्मृति पुराणोक्त फला वाप्तये' प्रत्येक संकल्प में कहा जाता है। ज्योतिष का प्रचार बहुत है। वेदपाठी ब्राह्मण अब कम देखने में आते हैं। कर्मकांडी तो बहुत देखने में आवेंगे, किन्तु वेदज्ञ हज़ारों में एक मिलेगा। यद्यपि ४०-५० वर्ष पूर्व वेद-पाठ की प्रथा यहाँ खूब प्रचलित थी, किंतु इस समय वेद-पुराणों की पुस्तकें बहुत कम लोगों के घरों में होंगी।

४ वेदों के नाम ये हैं—(१) ऋग्वेद, (२) यजुर्वेद, (३) साम-वेद, (४) अथर्ववेद। १८ पुराणों के नाम ये हैं—(१) ब्रह्म, (२) पद्म, (३) वैष्णव, (४) शैव, (५) भागवत, (६) नारदीय, (७) मारकंडेय, (८) आग्नेय, (९) भविष्य, (१०) ब्रह्मवैवर्त, (११) लिंग, (१२) वाराह, (१३) स्कंद, (१४) वामन, (१५) कूर्म, (१६) मत्स्य, (१७) गरुड़ और (१८) ब्रह्मांड।

बेद-मंत्रों को अब बहुत कम लोग पढ़ते हैं। केवल कर्म-कांड के भीतर जितने वेद-मंत्र आते हैं, उन्हीं का उच्चारण कुछ लोग जानते हैं। पुराणों में भागवत पुराण ज़्यादा पढ़ा जाता है। किसी धनी मनुष्य की मृत्यु पर गरुड़ पुराण १० दिन भीतर बाँचा जाता है।

उपनिषद् तथा वेदांत-धर्म के मार्गानुयायी कम देखने में आते हैं। यद्यपि आधुनिक आर्य-समाजी लोग अपने को निराकार, अलौकिक, अगोचर, सर्वव्यापी ब्रह्म का उपासक कहते हैं, तथापि जो वेद-उपनिषदों के मार्मिक पंडित हों, और केवल ज्ञान-कांड के उपासक हों, ऐसे पहले भारत में इने-गिने हैं, फिर कूर्माचल में तो नहीं के बराबर हैं। यहाँ पर ज़्यादातर लोग शैव अर्थात् शिवके उपासक हैं, और कुछ वैष्णव हैं, बल्कि शुद्ध शैव व वैष्णव भी यहाँ बहुत ही कम हैं। ज़्यादातर लोग स्मार्त हैं, यानी जो पंचदेवताओं को ही नहीं, बल्कि सब देवी-देवताओं को पूजते हैं। केवल शिव व विष्णु के उपासक भी बिरले ही मिलेंगे। इस समय तो सब देवालयों में

प्रायः सब मूर्तियाँ देखी जाती हैं, और शिव के पूजनेवाले विष्णु को भी पूजते हैं, साथ ही अन्य देवी-देवताओं को भी पूजते हैं। यहाँ तक कि शिव व विष्णु के उपासक भी बकरे मारते तथा मांस डकारते हैं।

कूर्माचल में क़रीब ३५० से ज़्यादा मंदिर हैं, जिनमें से २५० शैव तथा ३५ वैष्णव-मंदिर हैं। शैव-मंदिरों में से ६४ मंदिर शक्ति यानी स्त्री-योनि के हैं। और केवल ८ वैष्णव। १८ मंदिर काली के हैं। बाक़ी नंदा, दुर्गा, चंडिका आदि के हैं। गणेश के भी अनेक मंदिर हैं। कुछ हनुमान् के हैं। सूर्य के भी २-३ मंदिर हैं, पर पूजा सूर्य की नित्य प्रत्येक स्मार्त-घर में होती है।

कूर्माचल का व्यावहारिक धर्म तीन महा विभागों में विभाजित है—(१) बौद्ध, (२) भूत-प्रेत-पूजा और (३) सनातन धर्म।

बौद्ध धर्म कूर्माचल के उत्तरी भागों में कुछ-कुछ माना जाता है। शक-जाति के लोग ही थोड़ा बहुत इस धर्म के बिगड़े हुए रिवाजों को मानते हैं। यों तो सनातन धर्म में भी भूत-प्रेत-पूजा का कुछ-कुछ अंश आ गया है। शिव की एक उपाधि 'भूतेश' भी है। भूत के मानी हैं, जो चीज़ विद्यमान है या थी। 'भैरवो भूतनाथस्य' भैरव जो शिव की सेना के सेनापति हैं, वे तो साक्षात् भूतों के अधिपति हैं।

४७. स्मार्त देवता

कूर्माचल के लोग जिन देवी-देवताओं को पूजते तथा मानते हैं, उनके नाम यहाँ पर दिये जाते हैं:—

(१) शिव या महादेव

ये अनेक रूपों में पूजे जाते हैं। महाभारत में शिव या महादेव के ११००० नाम कहे गये हैं। दक्ष प्रजापति ने जब शिव के कोप का प्रायश्चित किया था, तो ८००० नामों का उच्चारण किया था। कलिकाल में १००० नाम महादेव के माने गये हैं। शिव के नाम चार प्रकार के हैं।

(अ) उन देवताओं के नाम से संबोधित किया जाना, जो वैदिक काल में शिव, रुद्र या महादेव के नाम से पुकारे जाते थे। जैसे पशुपतिनाथ, केदारनाथ, रुद्रनाथ आदि; किन्तु इस नाम के मंदिर कुमाऊँ में कम हैं।

(ब) जो उनके गुण, कर्म या शक्ति अर्थात् जो करामात उन्होंने दर्शाई, उसके बोधक हैं। जैसे कमलेश्वर (कमल के पति), क्रांतेश्वर (क्रांति यानी किरात जाति के ईश्वर) आदि।

(स) जो किसी जगह के नाम से प्रसिद्ध हैं—जैसे चौड़ महादेव, सल्ट महादेव।

(द) जो उन लोगों के नाम से प्रचलित हैं, जिन्होंने शिव को अपना इष्टदेव मानकर अपने नाम से मंदिर बनवाये। जैसे:—

दीपचंदेश्वर जिसे राजा दीपचंद ने बनवाया।
उद्योतचंदेश्वर जिसे राजा उद्योतचंद ,,
तुलारामेश्वर जिसे लाला तुलाराम साह ,,
लक्ष्मीश्वर जिसे राजा लक्ष्मीचंद ,,। इत्यादि।

(स) व (द) प्रकार के महादेव कूर्मांचल में बहुत हैं।

जागीश्वर— कूर्मांचल में सबसे बड़ा मंदिर, जिसमें बहुत-सी गूठें हैं, जागीश्वर † में है। इसकी मान्यता बहुत बड़ी है। मानसखंड में भी इसका वर्णन है। यहाँ अनेक देवता हैं, जिनके मंदिर अन्यत्र भी हैं। यथा—तरुण जागीश्वर, वृद्ध जागीश्वर, भांडेश्वर, मृत्युञ्जय, डंडेश्वर, गडारेश्वर, केदार, बैजनाथ, वैद्यनाथ, भैरवनाथ, चक्रवकेश्वर, नीलकंठ, बालेश्वर, विभेश्वर, वागीश्वर, वाणीश्वर, मुक्तेश्वर डुंडेश्वर, कमलेश्वर, हाटकेश्वर, पाताल-भुवनेश्वर, भैरवेश्वर, लक्ष्मीश्वर, पंचकेदार, ब्रह्मकपाल, क्षेत्रपाल या सैमद्यो। तथा ये शक्तियाँ भी पूजी जाती हैं—पुष्टि, चंडिका, लक्ष्मी, नारायणी, शीतला, महाकाली।

वृद्ध जागीश्वर ऊपर चोटी में चार मील पर हैं, और क्षेत्रपाल लगभग पाँच मील पर। यह मंदिर अल्मोड़ा व गंगोली के बीच में है। अल्मोड़ा से उत्तर की ओर १६ मील पर है। यहाँ महादेव ज्योतिर्लिंग के रूप में पूजे

---

† सौराष्ट्रे सोमनाथञ्च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालेऽङ्कारं परमेश्वरम्॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम्।
वाराणस्याञ्च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमी तटे॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।
सेतुबंधे च रामेशं घुश्मेशञ्च शिवालये॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत।
सप्तजन्म कृतं पापं स्मरणेन विनश्यति॥

[यहाँ पर 'नागेशं दारुकावने' जो शब्द है, उसका संबंध जागीश्वर से है, क्योंकि दारुकवन देवदारु की बनी में जागीश्वर का मंदिर होना मानसखंड में माना गया है। ह्वेनसांग ने भी इसका ज़िक्र किया है।]

जाते हैं। सबसे बड़े मंदिर जागीश्वर, मृत्युञ्जय तथा डंडेश्वर के हैं। कहते हैं कि सम्राट् विक्रमादित्य ने मृत्युञ्जय का मंदिर वहाँ आकर बनवाया था। एवं सम्राट् शालिवाहनने जागीश्वरका बनवाया। पश्चात् स्वामी शंकराचार्य ने आकर तमाम मंदिरों की फिर से प्रतिष्ठा कराई तथा कत्यूरी राजाओं ने भी इसका जीर्णोद्धार किया। मुख्य कुंड का नाम ब्रह्मकुंड है, जिसमें स्नान करके मुक्ति मिलती है। अन्य कुंड नारद, सूर्य, ऋषि, कृमि, रेतु और वशिष्ठ हैं। वैशाख व कार्त्तिकी पूर्णिमा को मेला लगता है। सावन में भी चतुर्दशी को पार्थिव-पूजन होता है। यहाँ पंचामृत से पूजा होती है—(१) दधि, (२) दूध, (३) घी, (४) मधु, (५) चीनी। गरम व ठंडे जलों से स्नान होता है। कमलेश्वर की तरह इस मंदिर की पूजा से पुत्र-लाभ की आशा की जाती है। यहाँ हाथ में दीप लेकर भी स्त्रियाँ रात-भर खड़ी रहती हैं। एक चाँदी की मूर्ति एक राजा की है, जो चिराग़ लिये हुए है। राजा दीपचंद व त्रिमलचंद की भी मूर्तियाँ हैं।

मंदिर के पास ऋद्धिपुरी गुसाईं की समाधि है, जिसने राजा उद्योतचंद के समय समाधि ली थी, यानी जो जीते जी क़ब्र में चले गये थे, जिनका वर्णन अन्यत्र भी है। यहाँ के पंडे बटुक (बड़वा) कहलाते हैं। स्वामी शकराचार्य ने यहाँ का इन्तज़ाम जंगम कुमारस्वामी को सौंपा था। उनके साथ एक दक्षिणी भट्ट था, जिसने एक पहाड़ी ब्राह्मण की लड़की से विवाह किया। उसकी संतान बटुक (बड़वा) कहलाई।

महारुद्र—इनके मंदिर पपोली दानपुर में तथा रंगोड़ के दनियाँ गाँव में हैं।

त्रिनेत्र—लखनपुर में सुआल गाँव में त्रिनेत्र का मंदिर है। पार्वती ने हँसी में एक बार शिव की आँखें अपने हाथों से बंद कर दीं। तमाम संसार में अंधकार हो गया। तब शिव का तीसरा नेत्र खुला, ज्योति दिखाई दी। इसी नेत्र से उन्होंने कामदेव को भस्म किया था।

त्रिमुखेश्वर—चौकोट में इस नामका शिव-मंदिर है।

गोकर्णेश्वर—इस नामका मधुराल सेटी सोर में एक मंदिर है। गोकर्ण पांचाल का राजा था, उसने मालावार में शिव का मंदिर बनवाया। वहाँ से नैपाल में उसी नाम का मंदिर बना। गोरखा-राज्य में सोर में भी बन गया।

नीलेश्वर—शिव नीलकंठ भी कहलाते हैं, क्योंकि उन्होंने विष निगल लिया था। नीलेश्वर नाम के मंदिर भी यत्र-तत्र हैं।

भूतेश्वर—इस नाम का एक मंदिर बड़ाऊ पट्टी के सीरी गाँव में है,

और दो बौरारौ में हैं। असुरेश्वर के नाम से गोरंग में मंदिर है। एकासुर व तड़ासुर नाम के भी मंदिर हैं।

भीमेश्वर—रुद्र का भीम नाम भी है। भीमताल में भीमेश्वर-मंदिर इस रूप से है।

पिनाकेश्वर या पीनाथ—पिनाक यानी धनुष के रखनेवाले। इस नाम का मंदिर बौरारौ में है।

सीतेश्वर व रामेश्वर के नाम के मंदिर भी हैं। रामेश्वर रामगंगा व सरयू के संगम में है।

मृत्युञ्जय—'मृत्यु को जीतनेवाले'। इस नाम के मंदिर जागीश्वर व द्वारा में हैं। एक काड़ाकोट में भी है।

बागीश्वर—यह पुराना व प्रसिद्ध मंदिर है। इसका वर्णन मानसखंड में आया है। तल्ला कत्यूर के गोमती-सरयू नदी के संगम में है।

कालीकुमाऊँ में गोरखनाथ तथा ढेरनाथ के भी मंदिर हैं। गोरखनाथ कनफटे साधुओं के गुरु हैं। ये शिव के अवतार माने जाते हैं। ये १५वीं शताब्दी में हुए। इनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ थे। ये बौद्ध कहे जाते हैं। बाद को सनातनी हो गये। ये नैपाल में ज्यादा पूजे जाते हैं।

पाताल-भुवनेश्वर—इसका वर्णन मानसखंड में हो गया है।

पंचेश्वर—यह मंदिर काली व सरयू के संगम में है।

गणनाथ—गणों व चंड-मुंडों के नाथ हैं। यह मंदिर मल्ला स्यूनरा में एक रमणीक गुफा में है।

बालेश्वर—चंपावत के मंदिर बहुत पुराने हैं, जो देखने योग्य हैं।

द्वाराहाट में अनेक मंदिर हैं, जो देखने योग्य हैं। सोमेश्वर-मंदिर भी बौरारौ में है। मंदिरों के अलावा ठौर-ठौर में बड़े-बड़े पाषाण भी शिव, भैरव, गोरिल व चौमू के नाम से पूजे जाते हैं। बड़े-बड़े मंदिर दसनामी गुसाइयों के हाथ हैं, जैसे गिरी, पुरी, भारती और सरस्वती। नागराज व भैरव-मंदिर जोगी या खस-राजपूतों के हाथ में हैं। बड़े मंदिरों में शिवरात्रि को और छोटों में संक्रान्ति को मेला होता है। कपिल ऋषि के नाम से भी कई कपिलेश्वर के मंदिर कुमाऊँ में हैं।

(२) विष्णु

विष्णु के मंदिर भी अनेक हैं। बदरीनाथ या बदरीनारायण भारत-मान्य हैं। बदरी विशाल भी कहलाते हैं। यह जगह विशालपुरी या परमस्थान भी कहलाती है। शंकराचार्य जब मानघाटी में आये, तो ५५

देवता पानी में पड़े थे। आकाशवाणी हुई—"ये कलियुग के देवता हैं। यहीं इनकी स्थापना करो।" अतः गंधमादन पर्वत के नीचे उन्होंने मंदिर बनवाया। यहीं नर-नारायण का भी आश्रम था। यहाँ बदरी का पेड़ था। यहाँ तप्त कुंड के रूप में अग्नि विष्णु की आज्ञा से रहती थी। यहाँ पर अनेक मंदिर व कुंड तथा शिलाएँ हैं, जो पवित्र माने जाते हैं। इनका उल्लेख केदारखंड में है। कुमाऊँ में विष्णु के मंदिर कम हैं। जो हैं भी, वे बहुत छोटे हैं। उनमें ज़्यादा गूँठें नहीं हैं। कुछ हाल ही के बने हैं, जिससे ज्ञात होता है कि महादेव की पूजा प्राचीन है, विष्णु की बाद को चली।

मुरली-मनोहर का एक मंदिर अल्मोड़ा में है। लक्ष्मीनारायण के तीन मंदिर कुमाऊँ में हैं। मूलनारायण का एक मंदिर पुंगराऊ में है। सत्यनाराण पट्टी नयां के मानिला में हैं। सालम के करकोट में नारायण-देवालय नाम का एक मंदिर है। राम का एक मंदिर गिवांड में है, और अल्मोड़ा में राम-पादुकाएँ हैं। एक मंदिर ओलीगाँव में भी है। बागेश्वर में वेणीमाधव का मंदिर भी विष्णु का है। मासी में भी एक विष्णु-मंदिर है, जो किसी पुराने मंदिर के ऊपर बना है। अल्मोड़ा में रघुनाथ व सिद्ध नरसिंह के मंदिर चंपावत से राजधानी अल्मोड़ा आने पर बने लगभग ३½ सौ वर्ष हुए। बागेश्वर के वैष्णव-मंदिर पुराने हैं, पर अब वे इतने विख्यात नहीं हैं।

(३) शक्ति-पूजा

शक्ति की पूजा अनेक नामों से होती है। यथा नंदा, उमा, अंबिका, पार्वती, गौरी, हैमवती, दुर्गा, ज्वाला, काली, चंडी, चंडिका, जयंती, मंगला, काली, भद्रकाली आदि।

उमा के मंदिर दो-एक गढ़वाल में हैं। कुमाऊँ में नहीं हैं।

नंदा—पार्वती के इस नाम कीपूजा कुमाऊँ व गढ़वाल दोनों में होती है। हिमाचल की एक ऊँची चोटी का नाम नंदादेवी है। वही पार्वती या गौरी का स्वरूप मानी जाती हैं। कहते हैं कि नंदाष्टमी को शिव-पार्वती का विवाहोत्सव मनाया जाता है। नंदा के मंदिर अल्मोड़ा में, रणचूलाकोट कत्यूर में, सनेती (नाकुरी) में, मागर मल्लादानपुर में हैं। और भी कुछ यत्र-तत्र हैं। एक कहानी यह भी कही जाती है कि पहले जहाँ कचहरी है, उस क़िले में मंदिर था। मि० ट्रेल कमिश्नर ने उसे हटाया, और जब वे नंदादेवी पर्वत में चढ़ने को गये, तो उनकी आँखें बंद हो गईं, और जब अल्मोड़ा

आकर उन्होंने नंदादेवी का मंदिर बनवाया, तब उनकी आँखें खुलीं। बर्फ से कभी आँखें खराब हो जाती हैं, किन्तु लोगों ने उसे देवी का कोप बताया। चंद-राजा नंदा को अपनी फूफी भी बताते हैं।

अम्बिका—इस नाम का मंदिर अल्मोड़ा में है, और ताकुले में इन्हीं के नाम से अम्बिकेश्वर महादेव भी हैं। यहाँ शिव व अम्बिका दोनों साथ पूजे जाते हैं। महर पट्टी के गैथाना तथा बौरारौ के माला गाँव में मल्लिका-देवी के मंदिर हैं, जो कहा जाता है कि अस्कोट के मल्लिकार्जुन की साथिनी हैं। जागीश्वर में पुष्टिदेवी का मंदिर है, जो एक शक्ति है, पर शिव की है या विष्णु की, कहा नहीं जा सकता।

दुर्गा—अग्नि की स्वरूपा हैं। सूर्य की कन्या कही गई हैं। शिव की रुद्ररूप से अर्धांगिनी होने तथा अग्निरूप होने से बड़ी विराट् गिनी गई हैं। इनके अनेक नाम हैं। अर्जुन ने इन नामों से स्तुति की थी:—

"सिद्धसेनानी, मंदरा, कुमारी, काली, कपाली, कपिला, कृष्णपिंगला, भद्रकाली, महाकाली, चंडा, चंडी, तारिणी, कात्यायनी, कराली, विजया, जया, निद्राकालरूपिणी।"

इनको कृष्ण की बहन भी कहा गया है, जो कहीं-कहीं कंस-मर्दिनी के नाम से पूजी जाती हैं। यद्यपि दुर्गासप्तसती में नौ दुर्गाओं के नाम ये हैं:— (१) शैलपुत्री, (२) ब्रह्मचारिणी, (३) चन्द्रघंटा, (४) कूष्मांडा, (५) स्कंदमाता, (६) कात्यायनी, (७) कालरात्रि, (८) महागौरी, (९) सिद्धदात्री।

तथापि इनकी पूजा इस लोक-प्रसिद्ध श्लोक से ज्यादा होती है:—

"जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोस्तुते॥"

जो-जो देवियाँ जहाँ-जहाँ की रक्षा करती हैं, उनके नाम दुर्गासप्तसती में दिये हैं। इनमें कई वैष्णवी व कई शैव शक्तियाँ हैं, जिनके बारे में वैष्णव-शैवों में मतभेद होता रहता है। दुर्गा के मंदिर दुनागिरी में, धूरा के डांडे में तथा लखनपुर के खोलागाँव में हैं।

त्रिपुरासुन्दरी—असुरों के त्रिपुर यानी तीन पुर या नगरों को, जो लोहे, चाँदी व सोने के थे, देवी ने नष्ट किये, इससे वे त्रिपुरासुन्दरी कहलाईं। इस नाम के मंदिर अल्मोड़ा व बेनीनाग में हैं। यह त्रिपुरा बंगाल के तिपरा का अपभ्रंश है।

भ्रमर का रूप धरने से भ्रामरी कहलाईं। इस नाम का मंदिर रणचूली कोट (कत्यूर) में है।

जया के नाम का मंदिर बेल के शैलाचल पर्वत में है। जयंती के नाम से वे बौरारौ के जयतकोट में पूजी जाती हैं। जयंती का मंदिर ध्वज पर्वत में भी है।

काली—इस नाम के अनेक मंदिर हैं। जिनमें वे भी शामिल हैं, जहाँ वह देवी के नाम से पूजी जाती है—

(१) भद्रकाली का मंदिर कमश्यार में है।

(२) धौलकाली का नैनी में।

(३) महाकाली के मंदिर देवीपुर कोटा में तथा दारुण में हैं। गंगोली-हाट की महाकाली की पीठ बड़ी उग्र बताई जाती है। यहाँ के पुजारी रावल ब्राह्मण हैं।

(४) कोट कांगड़ा की देवियाँ कई स्थानों में हैं।

(५) काली कलकत्तेवाली पुण्यागिरी पर्वत में हैं।

(६) अस्कोट में भी वह नदी के किनारे पूजी जाती हैं। रजबार साहब बड़े ठाट-बाट के साथ हर तीसरे साल पूजन को जाते हैं।

(७) उल्कादेवी के मंदिर अल्मोड़ा, छखाता, नौला व चौन में हैं।

(८) उग्रारीदेवी का मंदिर गिवांड़ में और श्यामा का स्याही पर्वत में है। वृन्दा का मंदिर तिखून में है।

(९) नैनादेवी के मंदिर नैनीताल, कत्यूर आदि में हैं। चंडिका व चंडी के मंदिर दो कुमाऊँ में हैं। एक गंगोली में और एक जागीश्वर में। काली, श्यामा, दुर्गा, चामुंडा ये उग्ररूप हैं।

शीतलादेवी के मंदिर भी कई हैं:—अल्मोड़ा, जागीश्वर बेलपट्टी में, महर के डोलागाँव में, द्वाराहाट में 'स्यालदे', जो शीतलादेवी का अपभ्रंश है।

कुछ स्थानीय नाम हैं:—जैसे अल्मोड़ा के पास बानणीदेवी, छखाता व सिलौटी में चन्द्रघंटा, खिलपती में अखिलतारिणी, हाट में खियालदेवी, कोश्यां में उपरदे। यत्त्नी व पुत्रेश्वरी अल्मोड़ा की न-जाने कौन देवियाँ हैं।

शिव व विष्णु की शक्तियों में बलिदान न होना चाहिए। केवल अग्नि की शक्तियों में बलिदान की प्रथा जारी है। पर कूर्माचल में बहुत कम देवी-मंदिर हैं, जिनमें बलिदान नहीं होता। यह कहना कठिन है कि कौन शैव व कौन वैष्णवी शक्तियाँ हैं।

मातृ-पूजा—ये आठ देवताओं की शक्तियाँ मातृ कहलाती हैं। ये भी देवी की तरह पूजी जाती हैं। इन्होंने मिलकर राक्षसों या असुरों का वध किया था:—

(१) ब्रह्मा की	शक्ति	ब्रह्माणी	वाहन	हंस
(२) शिव की की	,,	माहेश्वरी	,,	नांदी
(३) कार्त्तिकेय की	,,	कौमारी	,,	मयूर
(४) विष्णु की	,,	वैष्णवी	,,	चील
(५) हरि की	,,	वाराही	,,	भैंस
(६) नृसिंह की	,,	नारसिंही	,,	सिंह
(७) इन्द्र की	,,	ऐन्द्री	,,	ऐरावत हाथी
(८) देवी की	,,	चंडिका	,,	शव

यह अपराजिता या चामुंडा भी कही गई हैं। कोई चंडिका के बदले कुबेर की शक्ति कौबेरी का नाम लेते हैं।

वैष्णवी का मंदिर सेटी पट्टी में है। नारायणी का मंदिर सिलौटी छखाते में है। वाराही का एक देवीधुरे में है, दूसरा सालम के वासन गाँव में है। नारसिंही का मंदिर अल्मोड़ा में राजा देवीचंद का बनवाया हुआ है। चामुंडा के मंदिर ऊपर दर्शाये गये हैं। माहेश्वरी व ब्रह्माणी के मंदिर यहाँ नहीं हैं।

(४) कार्त्तिकेय

इनकी भी पूजा होती है। शिव के पुत्र हैं। षड़ानन भी कहे जाते हैं। कत्यूरी राजाओं के कुल-देवता थे। उनके नाम से कार्त्तिकेयपुर बसा था। पर इनका कोई मंदिर अब कुमाऊँ में नहीं है।

(५) गणेश

ये भी शिव के पुत्र हैं। सब पूजाओं में पहले पूजे जाते हैं। इनके मंदिर अल्मोड़ा व सैल में हैं। अन्यत्र भी हैं।

(६) सूर्य या आदित्य

इनके उपासक भी कुमाऊँ में हैं। यद्यपि वे भिन्न नहीं हैं। ज़्यादातर स्मार्त हैं। सूर्य के कई मंदिर कुमाऊँ में हैं।

वेलाड़ बेल में, रमक कालीकुमाऊँ में, आदित्यदेव महर में, नैनी लखनपुर में, और जागीश्वर में, बड़ादित्य कटारमल में, जिसे कत्यूरी राजा कटारमल्ल ने बनवाया था, भौमादित्य बेल में। पूस के रविवारों व संक्रान्ति को सूर्य के उपासक व्रत करते हैं।

(७) हनुमान

इनकी भी पूजा होती है। एक मंदिर अल्मोड़ा में है। इनके पुजारी भी वैष्णव हैं।

(८) गरुड़

इनकी पूजा कहीं-कहीं होती है। सर्पों या नाग-जाति के शत्रु तथा भगवान् विष्णु के वाहन होने से ये भी पूजे जाते हैं। गढ़वाल में इनके मंदिर हैं, पर कुमाऊँ में नहीं हैं।

(९) दत्तात्रेय

ये भी द्वारा व जागीश्वर में पूजे जाते हैं। वैष्णवी सम्प्रदाय के देवता माने जाते हैं।

(१०) अगस्त्य मुनि

इनकी भी कहीं-कहीं पूजा होती है। यह मुनि विन्ध्याचल की बाढ़ को रोकने को गये थे। विन्ध्याचल ने इन्हें प्रणाम किया। इन्होंने उसे वैसा ही रहने को कहा। आप कुमाऊँ को आये। यहाँ के सौन्दर्य को देखकर यहीं रम गये, तभी से क़िस्सा है—

न मुनिः पुनरायातिः न चासौ वर्द्धते गिरिः।

---

४८. स्थानीय देवता

वैष्णव, शैव व स्मार्तों के देवताओं के अलावा, जिनका ज़िक्र अन्यत्र किया गया है, कुमाऊँ में कुछ स्थानीय देवता भी माने जाते हैं। कुछ थोड़े से लोगों को छोड़कर ज़्यादातर कुमाऊँ में इन्हीं ग्राम-देवताओं का पूजन ज़्यादा होता है। यहाँ तक कि बहुत-से ब्राह्मण तथा राजपूत भी इनको पूजते हैं। 'जागर' भी लगाते हैं। भूत-प्रेतों में विश्वास अब भी अटल है। यद्यपि ज्ञान व विद्या की वृद्धि होती जा रही है, वेदान्तवाद, अनीश्वरवाद का ज़ोर बढ़ता जा रहा है, तथापि असंख्य लोग चुपचाप ग्रामों में ही नहीं, बल्कि शहरों में भी इनको पूजते हैं। देवता 'अतराते' हैं, और बकरे चढ़ाते हैं। इन देवताओं को संतुष्ट कर अपनी इष्ट-सिद्धि होना समझते हैं।

सत्यनाथ—यह संभव है कि सत्यनारायण से इनका संबंध हो। यह सिद्ध सत्यनाथ या सिद्ध भी कहलाते हैं। इनकी पूजा गढ़वाल में ज़्यादा होती है। कुमाऊँ में मानिला में ही एक मंदिर इस देवता का है।

भोलानाथ—'भ्बालनाथ' कहे जाते हैं। इनकी स्त्री बर्मी कहलाती हैं। पर इनको कुछ लोग महादेव का अंग तथा बर्मी को शक्ति का अंश समझते हैं। पर

इनके उत्पत्ति की कहानी इस प्रकार है—राजा उदयचंद (उद्योतचंद ?) की दो रानियाँ थीं, जिनमें से प्रत्येक के एक पुत्र था। जब दोनों बड़े हुए, तो बड़ा राजकुमार बुरी संगति में पड़ने से राज्य से निकाला गया। छोटा राजकुमार ज्ञानचंद के नाम से गद्दी पर बैठा। थोड़े दिनों में बड़ा राजकुमार साधु के भेष में अल्मोड़ा आकर नैल पोखर में ठहरा। वह पहचाना गया। राजा ज्ञानचंद ने यह समझकर कि कहीं गद्दी छीनने को न आया हो, एक बड़िया माली द्वारा उसको मय उसकी गर्भवती स्त्री के मरवा डाला। राजकुमार की स्त्री ब्राह्मणी थी। उससे उन्होंने नियोग कर लिया था। मृत्यु के बाद वह राजकुमार भोलानाथ के नाम से भूत बन गया। और उसकी स्त्री भूतनी हो गई। स्त्री के पेट का बच्चा भी भूत हो गया। ये तीनों भूत अल्मोड़ा के लोगों को सताने लगे, ज़्यादातर बड़िया लोगों को। तब अल्मोड़ा में आठ भैरव के मंदिर बनाये गये—(१) काल भैरव, (२) बटुक भैरव, (३) बाल भैरव, (४) शै भैरव, (५) गढ़ी भैरव, (६) आनंद भैरव, (७) गौर भैरव और (८) खुटकूनियाँ भैरव। ये अब तक हैं, और पूजे जाते हैं।

दूसरी कहानी यह है कि कोई फ़क़ीर किसी प्रकार दरवाज़ा बंद होने पर भी रनवास में चला गया, जहाँ राजा व रानी बैठे थे। राजा ने क्रोध में आकर उस फ़क़ीर को मार डाला। राजा को भूत चिपट गया। वह सो न सका, चारपाई से नीचे गिराया गया। चारपाई ऊपर हो गई। तब राजा ने पंडितों की राय से ये मंदिर बनवाये।

अठकिन्सन साहब कहते हैं—"उनसे कहा गया कि जब अँगरेजों ने गूँठें छीन लीं, तो वहाँ पूजा न हुई। अँगरेज़ों के तंबुओं में पत्थर बरसने लगे। जब अफ़सरों ने पूजा का यथोचित प्रबंध किया, तब शान्ति हुई।"

भैरव आठ प्रकार के होते हैं। वे शिव-नगरी के रक्षक कहे जाते हैं। यथा—

नाम भैरव	रंग	वाहन	शक्ति
१. गणनेत्र	स्वर्ण	हंस	ब्राह्मी
२. चंद	धूम्र	बकरा	माहेश्वरी
३. काप	रक्त	मोर	कौमारी
४. उन्मत्त	पीला	शेर	वैष्णवी
५. नय	नीला	भैंस	वाराही
६. कपाली	नीलम	हाथी	महेन्द्री
७. भीषण	काला	कौआ	चामुंडी

नाम भैरव	रंग	वाहन	शक्ति
८. शंकर	पीघला सोना	चूहा	काली

गंगानाथ—यह शूद्रों का प्रिय देवता है। डोटी के राजा वैभवचंद का पुत्र पिता से लड़कर साधु हो गया। घूमता-ग्रामता वह पट्टी सालम के अदोली गाँव में एक ब्राह्मण जोशी की स्त्री के प्रेम-पाश में फँस गया। जोशी अल्मोड़ा में नौकर था। जब उसे मालूम हुआ, तो उसने झपरुवा लोहार की सहायता से अपनी गर्भवती स्त्री तथा उसके राजकुमार रूपी साधु प्रेमी को मरवा डाला। भोलानाथ की तरह ये तीनों प्राणी भी भूत हो गये। अतः उन्होंने इनका मंदिर बनवाया। अदोली से यह मत सर्वत्र कुमाऊँ में फैला। तकुड़िया, ल्याली व नरई में इनके मंदिर हैं। तकुड़िया के बूढ़ा महेन्द्रसिंह ने यह पूजा चलाई।

कहते हैं, गंगानाथ ज़्यादातर बच्चों व ख़ूबसूरत औरतों को चिपटता है। जब कोई भूत-प्रेत से सताया जावे या अन्यायी के फंदे में फँस जावे, तो वह गंगा-नाथ की शरण में जाता है। गंगानाथ अवश्य रक्षा करते हैं। अन्यायी को दंड देते हैं। गंगानाथ को पाठा (छोटा बकरा), पूरी, मिठाई, माला, वस्त्र या थैली, जोगियों की बालियाँ आदि चीज़ें चढ़ाई जाती हैं। उसकी स्त्री भाना को अंग (आंगड़ी), चद्दर और नथ और बच्चे को कोट तथा कड़े व हँसुली। गंगानाथ के 'गणतुवा' (पुजारी) को अच्छी आमदनी होती है।

आई गड़ा बायो, डोटी का उठियों, काली तीर आयो।
जोगी रे गंगानाथ, काली तीर आयो॥

डंगरिया इन शब्दों का पूजा के समय उच्चारण करता है।

मसान, खबीस—ये श्मशान के भूत हैं, जो प्रायः दो नदियों के संगम में होते हैं। काकड़ीघाट तथा कंडारखुआ पट्टी में कोशी के निकट इनके मंदिर भी हैं। जिस किसी को भूत लगने का कारण ज्ञात न हुआ, तो वह मसान या खबीस का सताया हुआ कहा जाता है। मसान काला व कुरूप समझा जाता है। वह चिता-भस्म से उत्पन्न होता है। लोगों के पीछे दौड़ता है। कोई उसके त्रास से मर जाते हैं, कोई बीमार हो जाते हैं, कोई पागल। जब किसी को मसान लगा, तो 'जागर' लगाते हैं। कई लोग नाचते हैं। भूत-पीड़ित मनुष्य पर 'उर्द व चावल' ज़ोर से फेंकते हैं। बिच्छू घास भी लगाते हैं। गरम राख व अंगारे फेंकते हैं। भूत-पीड़ित मनुष्य कभी-कभी इन उग्र उपायों से मर जाता है। खबीस भी मसान ही-सा तेज़ मिज़ाजवाला होता है। वह अँधेरी गुफाओं, जंगलों में पाया जाता है। कभी वह भैंस की बोली बोलता है, कभी भेड़-बकरियों या जंगली सूअर की तरह चिल्लाता है।

कभी वह साधु-भेष धारण कर यात्रियों के साथ चल देता है। पर उसकी गुनगुनाहट अलग मालूम होती है। यह ज़्यादातर रात को चिपटता है।

ग्वाल्ल—इसको गोरिल, गौरिया, ग्वेल, ग्वाल्ल या गोल भी कहते हैं। यह कुमाऊँ का सबसे प्रसिद्ध व मान्य ग्राम-देवता है। वैसे इसके मंदिर ठौर-ठौर में हैं; पर ज़्यादा प्रसिद्ध ये हैं—बौरारौ पट्टी में चौड़, गरुड़, भनारी गाँव में, उच्चाकोट के बसोट गाँव में, मल्ली डोटी के तड़खेत में, पट्टी नया के मानिल में, कालीकुमाऊँ के गोल चौड़ में, पट्टी महर के कुमौड़ गाँव में, कत्यूर में गागर गोल, में थान गाँव में, हैड़ियागाँव, छखाता में, चौथान रानीबाग़ में, चितई अल्मोड़ा के पास।

ग्वाल्ल देवता की उत्पत्ति इस प्रकार बताई जाती है—चंपावत के कत्यूरी राजा झालराव काली नदी के किनारे शिकार खेलने को गये। शिकार में कुछ न पाया। राजा थककर और हताश होकर दूबाचौड़ गाँव में आये। जहाँ दो भैंसे एक खेत में लड़ रहे थे। राजा ने उनको छुड़ाना चाहा, पर असफल रहे। राजा प्यासा था। नौकर पानी को भेजा, पर पानी न मिला। दूसरा नौकर पानी की तलाश में गया। उसने पानी की आवाज़ सुनी, तो अपने को एक साधु के आश्रम व बग़ीचे में पाया। वहाँ आश्रम में जाकर देखा कि एक सुंदर स्त्री तपस्या में मग्न है। नौकर ने ज़ोर से पुकारा, और स्त्री की समाधि भंग कर दी। औरत से पूछा कि वह कौन है? स्त्री ने धीरे-धीरे आँखें खोलीं, और नौकर से कहा कि वह अपनी परछाईं उसके ऊपर न डाले, जिससे उसकी तपस्या भंग हो जाय। नौकर ने स्त्री से अपना परिचय दिया, और अपने आने का कारण बताया। तथा झरने से पानी भरने लगा, तो घड़े की छींटें स्त्री के ऊपर पड़ीं। तब उस तपस्विनी ने उठकर कहा कि जो राजा लड़ते भैंसों को न छुटा सका, उसके नौकर जो न करें, सो कम। नौकर को इस कथन पर आश्चर्य हुआ। उसने राजा के पास चलने तथा भैंसों को अलग करने को कहा। वह तपस्विनी राज़ी हो गई। तब देवता का नाम लेकर उस स्त्री ने उन दोनों भैंसों के सींग पकड़कर उन्हें अलग कर दिया। राजा को आश्चर्य हुआ। उसने स्त्री से पूछा कि वह कौन है? तपस्विनी ने कहा—"उसका नाम काली है, और वह राजा की लड़की है। वह तपस्या कर रही थी। नौकर ने आकर उसकी तपस्या भंग कर दी।" राजा उस पर मोहित हो गये, और उससे विवाह करना चाहा। उसके चाचा के पास गये। देखा, वह एक कोढ़ी था। पर राजा काली पर मोहित थे। उन्होंने उस कोढ़ी को

अपनी सेवा-सुश्रुषा से संतुष्ट कर लिया, और वह विवाह को राज़ी हो गया। अपने चाचा की आज्ञा से उस स्त्री ने राजा से विवाह कर लिया। काली रानी गर्भवती हुई। राजा ने रानी से कहा था कि जब प्रसव-पीड़ा हो, तो वह घंटी बजावे। राजा आ जावेगा। रानियों ने छल से घंटी बजाई। राजा आये, पर पुत्र पैदा न हुआ था। राजा फिर दौरे में चले गये। रानी के एक सुंदर पुत्र हुआ। अन्य रानियों ने ईर्षा के कारण पुत्र को छिपा लिया। काली रानी की आँखों में पट्टी बाँधकर उसके आगे एक कद्दू रख दिया, और कहा कि कद्दू जना है। रानियों ने लड़के को नमक से भरे पींजरे में बंद कर दिया। पर आश्चर्य है कि नमक चीनी हो गया। और बच्चे ने उसे खाया। इधर रानियों ने बच्चे को जीता देख पींजरे को नदी में फेंक दिया। वहाँ वह मछुवे के जाल में फँसा। मछुवे के संतान न थी। ईश्वर की देन समझकर वह सुंदर राजकुमार को अपने घर लाया। लड़का बड़ा हुआ, और एक काठ के घोड़े पर चढ़कर उस घाट में पानी पिलाने को ले गया, जहाँ वे दुष्ट रानियाँ पानी भरने को जाती थीं। उनके बर्तन तोड़कर कहने लगा कि वह अपने काठ के घोड़े को पानी पिलाना चाहता है। वे हँसीं, और कहने लगीं, क्या काठ का घोड़ा भी पानी पीता है? उसने कहा कि जब स्त्री के कद्दू पैदा हो सकता है, तो काठ का घोड़ा भी पानी पी सकता है। यह कहानी राजा के कानों में पहुँची। राजा ने लड़के को बुलाया। लड़के ने रानियों के अत्याचार की कहानियाँ सुनाईं। राजा ने सुनकर रानियों को तेल की कढ़ाई में पकाये जाने का हुक्म दिया। बाद को वह राजकुमार राजा बना। वह अपने जीवन-काल ही में पिछली बातों को जानने के कारण पूजा जाता था। मृत्यु के बाद तमाम कुमाऊँ में माना जाने लगा। वह लोहे का पींजरा गोरी-गंगा में फेंका गया था, इससे वह गोरिला या ग्वाल्ला कहलाया।

कहते हैं कि गढ़वाल में भी इसकी पूजा चली थी। एक दिन राजा सुदर्शनशाह के महल में गोल देवता नाच रहा था कि राजा ने मोटे बाँस से उस आदमी को खूब पीटा, जो 'गोल्ला' बनकर नाचा था। तबसे वहाँ इस देवता का नाचना बंद हो गया।

कहीं-कहीं गोल्ला देवता की रोज़ पूजा होती है, और कहीं दिन नियुक्त हैं। हैड़ियागाँव में पहले बड़ा मेला लगता था। चौड़ व सिलिंग में 'बगवाल' भी होती है। दोनों ओर से लोग पत्थर चलाते हैं। कत्यूर के थानगाँव के गोल्ले के यहाँ बीमार आदमी ज़्यादा जाते हैं। जेठ व मँगसिर

में खासकर पूजा होती है। जब किसी आदमी को भूत सताता है, तो एक कपड़े के टुकड़े में कुछ उर्द व चावल या तिल के साथ एक ताँबे का पैसा रखते हैं, और उसे बाँधकर बीमार आदमी के सिर पर तीन बार घुमाते हैं, और 'हे देवता! तू बता ठीक-ठीक केछ कैबेर' ऐसा कहते हैं। फिर उस पोटली को 'गणतुवा' के पास 'पूछ' के लिये जाते हैं कि वह बतावे कि कौन भूत लगा है। तब वह कुछ अस्पष्ट शब्दों का उच्चारण कर और चावलों को हाथ में नचाकर कहता है कि ग्वाल्ल, मसान, हरू या अन्य भूत ने उस पर कोप किया है। तब 'जगरिये', 'डंगरिये' बुलाये जाते हैं। घर के बहुत लोग नाचते हैं। उनमें से एक के बदन में देवता प्रकट होना कहा जाता है, वह भूत लगने का कारण बताता है। भाषा उसकी टूटी-फूटी होती है। 'कैं देखरे ऐस भौछी इत्यादि।' तब मिठाई चढ़ाई जाती है, और बकरा उस देवता के मंदिर में मारा जाता है। शिर व कहीं एक टाँग पुजारी लेता है। बाक़ी और लोग खाते हैं। कभी मंदिर बनाया जाता है या वर्तमान मंदिर की मरम्मत की जाती है। अगर आदमी बच गया, तो देवता फल गया; न बचा, तो 'कर्म-रोग' के अधीन होना कहा जाता है, जिस पर भूत का अधिकार नहीं होता। कभी पड़ोसी से या अन्य मनुष्य से अत्याचार, अन्याय होने पर इस देवता के मदिर में 'घात' डाली जाती है, और उससे प्रार्थना की जाती है कि वह अन्यायी के घर में घुसकर उसे दंड दे। उस घर में कोई बीमार हो गया, मर गया या तंग हो गया, तो उसे 'घात' लग गई कहते हैं। कभी-कभी डंगरिया-जगरिया तथा भूत-पीड़ित मनुष्य गरम लोहे से दागे जाते हैं, जो असभ्य जातियों में कई रोगों का इलाज समझा जाता है। कभी 'गणतुवा' कोई जड़ी-बूटी खाने को भी कह देता है, जिससे उसकी ख्याति बढ़ जाती है। अगर मनुष्य अच्छा न हुआ तो 'बिधना-बिन जाने नहिं कोई, कर्म लिखा सोई फल होई' पर विश्वास किया जाता है।

क्षेत्रपाल या भूमियाँ - यह खेतों का तथा ग्राम-सरहदों का छोटा देवता है। यह दयालु देवता है। यह किसी को सताता नहीं। हर गाँव में एक मंदिर होता है। जब अनाज बोया जाता है या नवान्न उत्पन्न होता है, तो उससे इसकी पूजा होती है, ताकि यह बोते समय ओले (डाल बयाल) या जंगली जन्तुओं से उनका बचाव करे, और भंडार में जब अन्न रक्खा जावे, तो कीड़े और चूहों से उसकी रक्षा करे। यह न्यायी देवता है। यह अच्छे को पुरस्कार तथा धूर्त को दंड देता है। गाँव की भलाई चाहता

है। ब्याह, जन्म या उत्सव में इसकी पूजा होती है। रोट व भेंट चढ़ाई जाती है। यह सीधा इतना है कि फल-फूल से भी संतुष्ट हो जाता है। जागीश्वर में क्षेत्रपाल का मंदिर है। वहाँ पर झाँकर-क्षेत्र का रक्षक समझा जाता है। और झाँकरसैम कहलाता है। (सैम शायद स्वयंभू शब्द का अपभ्रंश है, जो नैपाल में बुद्ध का नाम है।—अठकिन्सन) कभी यहाँ बकरे भी मारे जाते हैं। बौरारौ में भी एक मंदिर है। सैम व क्षेत्रपाल के कर्तव्यों में कुछ भेद है। पर है यह भी भूत-कक्षा में। कभी-कभी वह लोगों को चिपट जाता है, जिसका निशान यह है कि सिर के बालों की जटा बन जाती है। कालीकुमाऊँ में सैमचंद भूत हरू का अनुगामी माना जाता है।

ऐड़ी या ऐरी—कुमाऊँ के ज़मींदारों में एक जाति ऐड़ी या ऐरी है। इस जाति में एक मनुष्य बड़ा पहलवान व बली हुआ। उसको शिकार खेलने का बहुत शौक़ था। वह जब मरा, तो भूत हो गया। बालकों व स्त्रियों को चिपटने लगा। जब उनके बदन में नाचने लगा, तो कहने लगा कि "वह ऐड़ी या ऐरी है। उसको हलुवा, पूरी, बकरा वग़ैरह चढ़ाकर उसकी पूजा करो, तो वह बालकों व औरतों को छोड़ देगा।"

अतः तमाम लोगों में वह इस प्रकार पूजा जाने लगा। जगह-जगह में उसके मंदिर भी बन गये। कालीकुमाऊँ में इसके मंदिर बहुत हैं। लोग कहते हैं कि ऐड़ी डांडी में चढ़कर बड़े-बड़े पहाड़ों में शिकार खेलता है। ऐड़ी की डांडी ले जानेवाले 'साऊ भाऊ' कहे जाते हैं। जो उसके कुत्ते का भौंकना सुनेगा, वह अवश्य कुछ कष्ट पावेगा। ये कुत्ते ऐड़ी के साथ में रहते हैं, उनके गलों में घंटियाँ लगी रहती हैं। जानवरों को घेरने के लिये और भूत भी साथ चलते हैं, जिनको परी कहते हैं। ये 'आँचरी कींचरी' भी कहलाती हैं। इनके पैर टेढ़े-मेढ़े व पीछे की ओर होते हैं। परियाँ उसके साथ नाचती हैं। हथियार ऐड़ी का तीर व कमान है। कभी-कभी जंगल में बिना ज़ख्म का कोई जानवर मरा हुआ पाया जाता है, तो उसे ऐड़ी का मारा हुआ बताते हैं। यह भी कहते हैं कि कभी-कभी ऐड़ी का चलाया हुआ तीर आले (मकान से धुवाँ निकलने के छेद) में से मकान के भीतर घुस जाता है। जब किसी मनुष्य को वह लगता है, तो कहते हैं कि वह लुंज-पुंज हो जाता है। उसकी कमर टूट जाती है। बदन सूख जाता है। हाथ-पैर काँपने लगते हैं। इस बाबत पहाड़ी क़िस्सा है, "डालामुणि से जाणो, जाला मुणि नी सेणो।" पेड़ के नीचे सो जाना, पर आले के नीचे न सोना चाहिए।

ऐड़ी की सवारी कभी-कभी लोग देखते भी हैं। झिजाड़ गाँव का एक

किसान किसी काम को गाँव से बाहर गया था। चाँदनी रात थी। यकायक कुत्तों के गले में बँधी घंटी व जानवरों को घेरने की आवाज़ आई। किसान ने पहचाना कि वह ऐड़ी है। उसने उसकी डांडी पकड़ ली। छोड़ने को बहुत कहा, पर उस वीर किसान ने न छोड़ा। तब वरदान माँगने को कहा। उसने कहा कि यह वरदान माँगता हूँ कि देवता की सवारी उनके गाँव में न आवे। ऐड़ी ने स्वीकार किया। कहते हैं कि यदि किसी पर ऐड़ी की नज़र पड़ गई, तो वह मर जाता है, पर ऐसा कम होता है, क्योंकि ऐड़ी की आँखें सिर के ऊपर बताई जाती हैं। उसके चार हाथ होते हैं, जो अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित रहते हैं। ऐड़ी का थूक जिस पर पड़ गया, तो विष बन जाता है। इसकी दवा 'झाड़-फूँक' है। ऐड़ी को सामने-सामने देखने से मनुष्य तुरंत मर जाता है, या उसकी आँखों की ज्योति से भस्म हो जाता है, या उसके कुत्ते फाड़ डालते हैं, या परियाँ (आँचरी, कींचरी) उसके कलेजे को साफ़ कर देती हैं। अगर ऐड़ी को देखकर कोई बच जावे, तो वह धनी हो जाता है। ऐड़ी का मंदिर जंगल में होता है। वहाँ एक त्रिशूल गाड़ा रहता है, जिसके इधर-उधर दो पत्थर होते हैं, जिन्हें साऊ व भाऊ कहते हैं, और आँचरी, कींचरी भी रहती हैं। चैत्र की नवरात्रियों में दस दिन तक इसकी पूजा होती है। पूजनेवाले डंगरिये एक गेरू का रँगा कपड़ा सिर में बाँधते हैं। दो दफ़े नहाते व एक दफ़े भोजन करते हैं। किसी को छूने नहीं देते। इसको दूध, मिठाई, पूरी, नारियल व बकरा चढ़ाया जाता है। लाल वस्त्र खून में रँगाकर वहाँ पर झंडे के तौर पर गाड़ा जाता है। पत्थरों की पूजा होती है, तब सब लोग पूरी-प्रसाद उड़ाते हैं। कहीं-कहीं कुँवार (आश्विन) की नवरात्रियों में भी पूजन होता है।

कलविष्ट—लगभग २०० वर्ष की बात है कि केशव कोट्यूड़ी का पुत्र कलू कोट्यूड़ी नाम का एक राजपूत पाटिया ग्राम के पास कोट्यूड़ा कोट में रहता था। उसकी माता का नाम दुर्पाता (द्रोपदा) था। उसके नाना का नाम रामाहरड़ था। वह बड़ा वीर व रँगीला जवान था। वह किसान था, पर राजपूत होने पर भी ग्वाले का काम करता था। वह बिनसर के जंगल में गायें चुगाता था। कहते तो हैं कि वह गायों को चराने को कठधारा में तथा नदी में नहाने (खाल बैठने) को ब्रह्माघाट (कोशी) में जाता था।

उसके पास ये सामान बताया जाता है—"मुरली, बाँसुरी, मोचंग, पखाई, रमटा, घुंघरवालो दातुलो, रतना, कामली, झपुवा, कुत्तो, लखमा, बिराली, खनुवा, लाखो, रूमेली, घुमेली, गाईं, भगुवा, रांगो (भैंसा), नागुली, भागुली

भैंसी, सुनहरी दातुलो, सै लगी सै, बाखुड़ी भैंस।" कोई-कोई १२ 'बागुड़' भैंसों के तथा १२ भैंसें (जतिये) उसके पास होने कहते हैं।

कलविष्ट मुरली खूब बजाता था। बिनसर में सिद्ध गोपाली के यहाँ दूध पहुँचाता था, और साथ ही श्रीकृष्ण पांडेजी के घर में उसका आना-जाना था। उनसे मैत्री थी। श्रीकृष्ण पांडेजी की नौलखिया पांडेजी से लड़ाई थी। वे देश से 'भराड़ी'-नामक एक प्रकार के भूत को इस ग़रज़ से लाये कि वह श्रीकृष्ण पांडेजी के ख़ानदान को नष्ट कर दे। पर कलविष्ट एक वीर पुरुष था। वह भूतों को भगा देता था। 'भराड़ी' को भी उसने एक नदी (त्यूनरीगाड़) में एक पत्थर के नीचे दबा दिया, और हर तरह से श्रीकृष्ण की मदद करता था। बाद को प्रार्थना करने पर 'भराड़ी' को छोड़ दिया। वह नौलखिया के घर में चला गया। नौलखिया पांडे इस प्रकार अपने कार्य में सफलीभूत न होने पर रुष्ट हुआ, और उसने एक चाल चली, जिससे श्रीकृष्ण पांडे और कलविष्ट के बीच लड़ाई हो जावे। उसने यह झूठी खबर उड़ाई कि कलविष्ट श्रीकृष्ण पांडे की स्त्री से गुप्त तौर से मिला है। श्रीकृष्ण दिल में जानता था कि उसकी स्त्री निर्दोष है, तथापि लोकापवाद को दूर करने की ग़रज़ से उसने कलविष्ट को मारने की ठहराई। श्रीकृष्ण राजा का पुरोहित था। उसने राजा से कलविष्ट की शिकायत की, और उसे मारने को कहा। राजा ने चारों ओर को पत्र भेजे, तथा पाँच पान के बीड़े भेजे कि देखें कौन कलविष्ट को मारने का बीड़ा उठाता है।

किसी ने बीड़ा न उठाया, केवल जयसिंह टम्टा ने बीड़ा उठाया। राजा ने कलविष्ट को सादर दरबार में बुलाया। उस दिन श्राद्ध था, उससे दही-दूध लेकर आने को कहा। कलविष्ट बड़े बड़े बर्तनों (ठेकों व डोकों) में इतना दही-दूध लेकर गया कि राजा चकित हो गया। राजा ने कलविष्ट को देखा, उसके माथे में 'त्रिशूल तथा पैर में पद्म का फूल था।' वह बड़ा वीर तथा सच्चरित्र पुरुष ज्ञात हुआ। राजा ने कहा, वह उसे न मारेगा। उसने बड़ी-बड़ी करामतें राजा को दिखाईं। राजा ने एक दिन उसके तथा जयसिंह टम्टा के बीच कुश्ती ठहराई। नाक काटने की शर्त पर कुश्ती ठहरी। राजा, रानी तथा दरबारियों के सामने कुश्ती हुई। कलविष्ट ने जयसिंह टम्टा को चित कर दिया, और नाक काट डाली। दरबार में धाक बैठ गई। कलविष्ट से बहुत लोग जलने लगे। उन्होंने उसे मारने की ठहराई।

दयाराम पछाई (पालीपछाऊँ के रहनेवाले) ने कहा कि कलविष्ट अपने भैंसों को लेकर चौरासी माल (तराई भावर) में जावे, तो अच्छा हो,

वहाँ भैंसों के चरने के लिए अच्छा स्थान है। पर दिल में यह कपट था कि वह तराई-भावर में ख़त्म हो जावेगा, या वहाँ पर मुग़लों द्वारा मारा जावेगा।

कलविष्ट नथुवाखान, रामगाड़, भीमताल होकर भावर में गया। वहाँ १६०० 'मंगोली' सेना उसे मिली। उनके नेता सूरम व भागू पठान थे। साथ ही श्रीगजुवा ढींगा तथा भागा कूर्मी भी उक्त पठानों से मिल गये। सबों ने उसे मारने की ठहराई, ताकि कहीं वह वीर पुरुष उन्हें न मार दे। उन्होंने उसकी ताक़त अज़माने को उससे एक बड़ी बल्ली (भराणा) उठाने को कहा। उसने उठा दिया। उन्होंने प्रपंच रचा। मेला किया। गुप्त रूप से हथियार एकत्र किये। उसके बिल्ली-कुत्तों ने गुप्तचरों (सी० आई० डी०) का काम किया। उसको सूचना दे दी। मेले में कलविष्ट ने कहा कि वह पहाड़ी नाच दिखावेगा, उसने उस बड़ी बल्ली (भराणे) को उठाकर चारों ओर घुमाया, और अपने सब दुश्मनों को ठंडा कर दिया। तब वह चौरासी माल को गया। वहाँ पर देखा कि सारा जंगल शेरों से भरा है। उसके भैंसों को देखकर शेर भी डर गये। कलविष्ट ने वहाँ के सब शेरों को, जो ८४ संख्या में थे, मार डाला। बड़े शार्दूल (गाजा केसर) को 'खनुवा लाखे' ने मार डाला।

चौरासी से चलकर कलविष्ट पालीपछाऊँ दयाराम के यहाँ गया। उसने कहा कि चौरासी तो अच्छी है, पर 'ढड़वे' (शेर) बहुत हैं। दयाराम ने पूछ-ताछ की, तो सब शेर मरे हुए पाये गये। कलविष्ट ने दयाराम को दग़ा करने के लिये श्राप दिया कि उसने छल करके उसे चौरासी माल भेजवाया था, पर वह बच गया। अब यदि कपट से मारा जावेगा, तो वह भूत बनकर पालीपछाऊँ के लोगों को चिपटेगा। है भी ऐसा ही। इस समय कलविष्ट की पूजा पालीपछाऊँ में ज़्यादा होती है।

फिर कलविष्ट कपड़खान में आया। वहाँ कठधार में डेरा किया। वहाँ रात को 'दोष' एक प्रकार के भूत ने तंग किया। भैंसों को दुहने न दिया। रात-भर कलविष्ट से 'दोष' की लड़ाई हुई। 'दोष' प्रातःकाल हार गया। कलविष्ट ने उससे वचन लिया कि वह किसी को तंग न करे, बल्कि भूले-भटके को रास्ता बतावे।

जब अनेक प्रपंच करने पर भी वीर कलू कोस्यूड़ी न मरा, तो श्रीकृष्ण ने लखड्योड़ी-नामक उसके साढ़ को बहकाया कि वह किसी तरह छल (चाला) करके उसे मारे। लखड्योड़ी ने एक भैंस के पैर में कील ठोंक दी, तब

कलू कोस्यूड़ी से मिलने गया। कलू कोस्यूड़ी ने आने का कारण पूछा, तो उसने कहा कि वह भैंस माँगने को आया है। इसने कहा कि जितने चाहिए, लखड्योड़ी ले जावे। पर लखड्योड़ी ने कहा कि भैंस के पैर में क्या हो रहा है? देखा, तो मेख ठुकी हुई थी। कलू कोस्यूड़ी ने दाँत से मेख निकालनी चाही, तो लखड्योड़ी ने खुकरी से कलू कोस्यूड़ी के दोनों पर काट दिये। कोस्यूड़ी ने भी लखड्योड़ी को मार डाला और श्राप दिया कि उसने दग़ा-बाज़ी से मारा है, उसके खानदान में कोई न रहेगा। (कलविष्ट के एक डंगरिये ने यह कथा हमें लिखाई है। लेखक)

अठकिन्सन साहब लिखते हैं कि कलविष्ट बिनसर में खर्क (गौशाला) बनाकर रहता था। ब्राह्मण के घर घी, दही, दूध पहुँचाता था। कभी-कभी उस ब्राह्मण की स्त्री भी खर्क में जाती थी। कलविष्ट व ब्राह्मणी में मैत्री हो गई, पर गाँवों में पूछताछ करने से यह बात झूठी निकली।

पं० रुद्रदत्त पंतजी लिखते हैं कि ब्राह्मण ने कलविष्ट को मारा, और अठकिन्सन साहब उसका हिम्मत द्वारा मारा जाना लिखते हैं। पर गाँववाले लखड्योड़ी द्वारा मारा जाना बताते हैं। जो हो, कलू कोस्यूड़ी मरकर कलविष्ट-नामक ग्राम-देवता बन गया। वह पहले श्रीकृष्ण के लड़के को चिपटा। जब देवता नचाया गया, तो कहने लगा कि 'वह कलविष्ट है। उसका मंदिर बनाकर लोग उसकी पूजा करें, नहीं तो वह उनको सतावेगा।' कपड़खान में यह घटना हुई। वहीं पहला मंदिर बनाया गया। कलविष्ट अच्छा देवता माना जाता है। उसने केवल उन्हीं को सताया, जिन्होंने षड्यंत्र रचकर उसे मारा था। लखड्योड़ी के यहाँ तो 'कनज्योड़ी' भी न रही। अब यह प्रायः तमाम कुमाऊँ व गढ़वाल में पूजा जाता है, पर ज्यादा पूजा श्राप के मुताबिक़ पालीपछाऊँ में होती है। बिनसर में कहते हैं कि कलविष्ट के मुरली की मधुर तान तथा कलविष्ट के भैंसों को बुलाने की बोली अब तक सुनाई देती है। शूद्र-वर्ग के लोग कलविष्ट की क़सम सच्ची समझते हैं। कपड़खान में कलविष्ट का नाम ग्वाले लोग जंगली जानवरों से अपने डंगरों की रक्षा करने के निमित्त काम में लाते हैं, और सताये हुए लोग उसके यहाँ न्याय को दौड़ते हैं। 'घात' भी डालते हैं। जब सतानेवाले को वह चिपटने लगा, तो वह लोग यत्र-तत्र उसके नाम से मंदिर बनवाने लगे, जिससे उसका नाम तमाम में फैल गया, और प्रायः सारे कुमाऊँ में उसकी पूजा होने लगी।

चौमू—यह चौपायों की रक्षा तथा विनाश करनेवाला छोटा ग्राम-देवता

है। इसका आदि-स्थान स्यूनी तथा द्वारसौं के बीच है। १५ वीं शताब्दी के मध्य में एक ठा० रणवीर राना नांव देश्वर का लिंग लेकर चंपावत से अपने घर को आ रहे थे, जो रानीखेत के पास था। लिंग राना साहब की पगड़ी में बँधा था। घारीघाट के पास उन्होंने पानी के निकट पगड़ी उतारी। हाथ-मुँह धोकर पगड़ी उठाने लगे, न उठी। लोगों को बुला लाये। सबोंने मिलकर कठिनाई से लिंग व पगड़ी को उठाकर एक बाँझ के पेड़ के खंडहर में रक्खा, ताकि उसका मंदिर बनाया जावे; पर लिंग उस जगह से असन्तुष्ट होकर पहाड़ के ऊपर दूसरे पेड़ में चला गया। पहला पेड़ स्यूनी गाँव में था। दूसरा स्यूनी-द्वारसौं की सरहद में था। अतः दोनों गाँव के लोगों ने मिलकर वह मंदिर बनाया, और इसकी भेंट के हक़दार भी दोनों गाँव हैं। अल्मोड़ा के राजा रत्नचंद ने यह बात सुनी, और वे लिंग के दर्शन को जाने को थे कि अच्छा मूहूर्त न मिला। तब सपने में चौमू ने राजा से कहा—'मैं राजा हूँ, तू नहीं है। तू मेरी क्या पूजा करेगा ?"

चौमू के मंदिर में सैकड़ों घंटे चढ़ाये जाते हैं। असोज व चैत्र की नवरात्रियों में सैकड़ों दीपक जलाये जाते हैं, और बड़ी पूजा होती है। लिंग में दूध डाला जाता है। बक़रियाँ मारी जाती हैं। उनके सिर (मुनी) स्यूनी व द्वारसौं के लोग आपस में बाँट लेते हैं। चौमू के दरबार में क़समें ली जाती हैं। अब कलिकाल में पुराना चमत्कार तो नहीं रहा, तथापि जिनकी गायें या डंगर खो जाते हैं, वे चौमू की पूजा देने पर उन्हें पा जाते हैं। जिनकी गाय व भैंसें गाबिन हैं, वे चौमू की आराधना कर जीते बच्चे गाय-भैंस के हासिल करते हैं। जो बुरा दूध चौमू को चढ़ाते हैं, उनके डंगर मर जाते हैं। जो नहीं चढ़ाते या लिंग की पूजा नहीं करते, उनके दूध का दही नहीं जमता (चुपड़ा नहीं होता)। बच्चा होने पर १० रोज़ तक गाय का दूध चौमू को चढ़ाना मना है। शाम को भी गाय का दूध चढ़ाना बर्जित है। जिन्होंने ऐसा दूध चढ़ाया है, उनकी गायें मर गई हैं। जो लोग गायों को भावर में या अन्यत्र ले जाते हैं, उनको गायों के खूँटों (क़िलों) की पूजा चौमू की तरह करनी चाहिये, अन्यथा डंगरों की हानि होगी। स्यूनी द्वारसौं से गाय ख़रीदनेवालों को चौमू की पूजा अनिवार्य है। जो गाय चौमू को चढ़ाई हो, उसका दूध शाम को नहीं पिया जाता, पर और देवताओं को चढ़ाई हुई गायों का दूध पिया जा सकता है।

बधाण—चौमू की तरह यह भी गायों का देवता है। वह किसी को चिपटता नहीं है, और न पूजने पर भी वह सताता नहीं। गाय के बच्चा होने

के ११वें दिन उसका पूजन होता है। पहले जल से उसकी मूर्ति साफ़ की जाती है, फिर उसमें दूध चढ़ाया जाता है तब भात, पूरी, प्रसाद व दूध, नैवेद्य लगाया जाता है। तभी गाय का दूध पिया जाता है। यहाँ बलिदान नहीं होता।

हरू—एक अच्छी प्रकृति का देवता है, और कुमाऊँ के ग्रामों में बहुत पूजा जाता है। कहा जाता है कि वह चंपावत कुमाऊँ का राजा हरिश्चंद्र था। वह राजा राजपाट छोड़ हरिद्वार में जाकर तपस्वी हो गया। कहते हैं कि हरिद्वार की हर की पैड़ियाँ उसी ने बनाईं। हरिद्वार से कहा जाता है कि उसने चारों धामों (बदरीनाथ, जगन्नाथ, रामनाथ, द्वारकानाथ) की परिक्रमा की। चारों धामों से लौटकर चंपावत में राजा ने अपना जीवन धर्म-कर्म में ही बिताया, और अपना एक भ्रातृमंडल क़ायम किया। उसके भाई लाटू तथा उनके नौकर स्यूरा, प्यूरा, रूढ़ा कठायत, खोलिया, मेलिया, मंगलिया और उजलिया सब उनके शिष्य हो गये। सैम व बारू भी चेले बने। राजा उनका गुरू हो गया, और तपस्या, सदाचार तथा ध्यान व योग के कारण तमाम में पूज्य रहा। जहाँ-जहाँ वह जाता था, तमाम लोग दर्शनों को आते थे। उनकी कृपा से अपुत्र पुत्रवान्, निर्धन धनवान, दुःखी सुखी, अंधे दृष्टिवान्, लँगड़े चंगे तथा धूर्त सदाचारी हो जाते थे। जब हरिश्चंद्र मरे, तो वे अच्छे देवताओं में गिने गये, और उनके पूजन से इच्छित फल प्राप्त होना जाना गया। यह कहा जाता है कि जहाँ हरू रहते हैं, वहाँ सुख-संपदा विराजमान रहती है, भक्तों को वांछित फल मिलता है। इसीलिये कहावत है:—

"औन हरू हरपट, जौन हरू खड़पट।"

हरू के आने पर समृद्धि और जाने पर दुःख होता है।

कत्यूर के थान गाँव में हर तीसरे साल मेला लगता है। लाटू बलदिया के बड़वई गाँव में पूजा जाता है, और मेलिया महर पट्टी के भाटकोट गाँव में।

कत्यूरी राजा—कुमाऊँ में यत्र-तत्र पुराने कत्यूरी राजा भी पूजे जाते हैं। बि० कत्यूर के तैलीहाट गाँव में एक इन्द्र-चबूतरा है। इसमें एक शिलिंग का पेड़ भी है। वहाँ पर ग्वाल देवता का मंदिर भी है, और कुछ कत्यूरी राजाओं की मूर्तियाँ भी हैं, जिनमें हर तीसरे साल मेला लगता है। राजा धामदेव का मंदिर सालम पट्टी के कांडा में है। और पाली में राजा ब्रह्म तथा राजा धाम के कई मंदिर हैं। ये दो प्रसिद्ध कत्यूर-वंश के आख़िरी स्वतंत्र नृपति थे। उनके बाप मर गये, जब कि वे छोटे थे। उनकी माता महारानी जिया उनको राजधर्म सिखाने में असमर्थ रहीं,

क्योंकि वे अन्यायी, अत्याचारी व व्यभिचारी निकले। प्रजा के अप्रिय होने के कारण वे राजा विक्रमचंद द्वारा लड़ाई में हराये गये। चंद-राजा ने पाली व कत्यूर को अपने राज्य में मिला लिया। एक विराट् संग्राम हुआ, जिसमें धामदेव व ब्रह्मदेव दोनों भाई व मय अपने राजकुमारों (हरि, भरि, सूर, संग्रमी, पूर, प्रतापी) और अपने नौकरों (भीम कठायत, खेकादास उजलिया आदि) के मारे गये। उनकी लोथें पश्चिमी रामगंगा में फेंकी गईं। ये सब भूत हो गये। अतः ये पाली व कत्यूर में माने जाते हैं। हरू चंद-राजाओं का भूत होने से वहाँ नहीं जाता, जहाँ कत्यूरी भूत होते हैं, और न कत्यूरी भूत वहाँ जाते हैं, जहाँ हरू हों।

रूनियाँ—कुमाऊँ के उत्तरी परगनों में रूनियाँ नाम का एक ज़बरदस्त देवता (भूत) है, जो बड़े-बड़े पत्थरों के घोड़ों पर चढ़कर एक गाँव से दूसरे गाँव में फिरता रहता है। वह ज़्यादातर औरतों को चिपटता है। यदि कोई स्त्री उसके फंदे में पड़ गई, तो वह निर्बल हो (झुरती) जाती है, उसका अदृश्य प्रेमी उसके पास आता है, और वह मरकर प्रेतभूमि में उसकी स्त्री हो जाती है।

उत्तरी हिस्सों में अन्य भूत-प्रेत, जो देवताओं के नाम पर पूजे जाते हैं, ये हैं—

बालचन—इसका मंदिर जोहार के डोरगाँव में है।

कालचनभूसी—इसका मदिर दानपुर के तोलीगाँव में है। दानपुर व पोथिंग के लोग इसे बहुत मानते हैं।

नौलू—इसके मंदिर अस्कोट के जड़खनधार में तथा महर के भाटकोट में हैं।

कालसाईं—जोहार में मदकोट, दानपुर में कपकोट, महर में राम, अस्कोट में जड़खनधार गाँवों में इसके मंदिर है।

छरमल्ल—कत्यूर के तैलीहाट व थानगाँव में, जोहार के कुछ गाँवों में, अस्कोट के जड़खनधार में।

हरि—जोहार के मुन्स्यारी में।

हुस्कर या हुमिन्न—अस्कोट के धारचूला व जड़खनधार में।

नागथान—सौर फटक में (पट्टी सालम)।

छड़ोंजरव—छणोंज में (पट्टी सालम)।

वैद्यनाथ सिद्ध—चनौती में (परगना छखाता)।

पर्वतों की चोटियाँ भी पवित्र समझी जाती हैं। वहाँ पर किसी देवता,

सिद्ध या भूत-प्रेत का निवास-स्थान समझा जाता है। प्रायः हर चोटी में कुछ चीड़ या देवदारु के वृक्षों के बीच एक मंदिर ग्राम-देवता का विराजमान होगा।

छिपुलधुरा, जो अस्कोट के पास एक बड़ा १६००० फ़ुट ऊँचा पर्वत है, उसमें पर्वत-देवता का मंदिर है। वहाँ ६-१० कुंड हैं, जिनमें अनन्तचौदस को मेला लगता है, और लोग स्नान करते हैं।

नीतिगाँव में हिमालय पर्वत का मंदिर है। दुनागिरी के नीचे उसी पर्वत का मंदिर है।

पर्वतों की चोटियों में और अक्सर दो बटियों के पास 'कठबूड़ियादेवी' या 'कठपतियादेवी' पूजी जाती हैं।

"साकल्यः स्थापिता देवि याज्ञवल्केन पूजिताः।
काष्ठ पाषाण भक्षन्ति पथि रक्षां करोतु मे॥"

इस मंत्र द्वारा पत्थर या काठ उठाकर उसकी पूजा की जाती है, वास्तव में ये स्थान पथचिह्न (Sign board) हैं।

---

४९. अन्य भूत-प्रेत

जब मनुष्य मुर्दा-घाट से आते हैं, तो घाट के निकट एक चीर (कपड़े का टुकड़ा) पेड़ में बाँध देते हैं। यह उन भूतों के वास्ते वस्त्र हुआ। और वह भूत घर न आवे, इसवास्ते रास्ते में काँटा दबाया जाता है। उस पर पत्थर रख मृतक के नज़दीक़ी रिश्तेदार उस पर चलते हैं, ताकि प्रेत लौटकर न आवे।

सबसे विकट भूत वे होते हैं, जो गाड़-गधेरों में बसते हैं। वे ज़्यादातर आत्मघाती, या किसी से मारे हुए, या अन्य उल्कापातों से मरते हैं। ये अक्सर घूमते रहते हैं। जहाँ पर मरे, उस जगह फिर-फिर आते हैं, और वहाँ पर जो मिल गये, उन्हें चिपटते हैं, और कभी-कभी घरों में घुस पड़ते हैं।

अविवाहितों के भूत 'टोले' कहलाते हैं। ये रात में घूमते हैं। लालटैन या मशाल के तरह होने बताये जाते हैं। 'कहीं स्त्री है' ऐसा कहते हैं।

भूत-प्रेत, आंचरी-काचरी—कभी-कभी इनकी बरात जाती हुई लोगों को दिखाई देती है। कभी ये श्मशान में नाचते देखे जाते हैं। आँचरी ज़्यादातर लाल वस्त्रवाले पर कृपा करती है। कभी-कभी कोई भूत अच्छे और कोई बुरे होते हैं, जैसा कि यह संसार है।

---

५०. जादू-टोना

कहते थे कि कुछ लोग यहाँ पर जादू-टोना में सिद्धहस्त थे। पहले जादू-टोना करनेवाले शौके तथा बुकसाड़ के बोक्से थे। कहा भी है—"माल के बोक्सा की विद्या मारूँ, पर्वत के शौका की विद्या मारूँ।" पर अब पूछने पर वे इसका प्रतिवाद करते हैं। कहते हैं कि ये लोग मनुष्य को पशु बना देते थे। पर अब पूछने पर हँसते हैं। बोक्सों के जादू से जब लोग तंग आ गये, तो कहते हैं कि एक बार गढ़वाल के राजा सुदर्शनशाह ने बोक्सों को अपने यहाँ बुलाकर उनकी मुश्कें बाँध मय जादू की किताबों के उनको नदी में फेंक दिया। 'न रहे बाँस, न बजे बाँसुरी।' तांत्रिक लोग यहाँ पहले भी थे। कुछ अब भी हैं। ये लोग अनेक प्रकार की गुप्त विद्याओं द्वारा लोगों को ठगते रहते हैं। कुछ लोग पुरश्चरण करके भी लोगों का भला-बुरा करने की चेष्टा करते हैं। पर अब इनकी ज़्यादा नहीं चलती। क़ानून द्वारा भी अब जादू-टोना करनेवाला अपराधी ठहराया जाता है।

'वेद लगना'—एक घर का दूसरे घर को कभी-कभी 'वेद' भी लगता है, जिसके निवारण को छत में 'डांसी' पत्थर रक्खे जाते हैं, और 'घीकुवार' का पौधा भी छत में लगाया जाता है। इसका वर्णन ज्योतिष के वस्तु-शास्त्र में भी है।

---

५१. सगुन-असगुन

ये कई प्रकार के माने जाते हैं। कहीं जाने पर पानी का भरा घड़ा मिला, तो सगुन; यदि ख़ाली घड़ा मिला, तो असगुन समझा जाता है। छींकने पर भी असगुन होता है। बेचारी विधवा स्त्री हर मांगलिक कार्य में साक्षात् असगुन समझी जाती है।

दिशा शूल—इस श्लोक पर बहुत ध्यान दिया जाता है:—

उत्तरे बुध भौमे च रवि शुक्रे तु पश्चिमे।
पूर्वे शनि सोमे च दक्षिणे तु बृहस्पतिः॥

मंगल, बुधवार को उत्तर-यात्रा, रविवार व शुक्रवार को पश्चिम न जाना, शनिश्चर व सोमवार को पूर्व की यात्रा, बृहस्पति को दक्षिण-यात्रा का निषेध है।

'पैट-अपैट'—इस का भी बहुत विचार होता है। सोमवार को कपड़ा ख़रीदना मना है। श्राद्धों में नये कपड़े बनाना मानो श्राद्ध के लिये पिंड-वस्त्र

खरीदना है। रूढ़ि व अंध-विश्वासों से कूर्माचल के लोग ऐसे जकड़े हुए हैं कि उससे बाहर निकलना बड़े-बड़े पढ़े-लिखों के लिये कठिन है।

---

५२. बलिदान

अनेक देवताओं के मंदिरों में बलिदान होता है। वैष्णवों के बलिदान फल, फूल, नारियल आदि से होते हैं। शाक्तों के बलिदान में भैंसे या बकरे चढ़ते हैं। कहते हैं कि पहले पुण्यागिरि, गंगोलीहाट तथा कत्यूर के कोटमाई के मंदिर में नर-बलि भी होती थी, किन्तु अब यह प्रथा क़ानून द्वारा बन्द है। बलिदान के बकरे को रोली लगाते हैं। उसको पुष्प चढ़ाते हैं, और फिर उस पर पानी छिड़कते हैं। तब यह मंत्र बकरे के कान में पढ़ा जाता है:—

"अश्वं नैव गजं नैव सिंहं नैव च नैव च।
अज्ञा पुत्र बलिं दद्यात् देवो दुर्बल घातकः॥"

हे बकरे! तू न हाथी है, न घोड़ा, न शेर, तू सिर्फ़ बकरे का बच्चा है, मैं तेरी बलि चढ़ाता हूँ। देवता दुर्बल का नाश करते हैं।

पानी के छींटों से भीगने के कारण जब बकरा अपने को हिलाता है (आँगमुनी लेता है), तो कहा जाता है कि देवता ने बलि स्वीकार की है। तब खुकुरी या अन्य अस्त्र से वह मारा जाता है, और उसकी पूँछ काटकर उसके मुँह में डाली जाती है, ताकि वह परमात्मा से पुकार न कर सके। किसी-किसी देवी के मंदिरों में भैंसे चढ़ाये जाते हैं। अछूत उन्हें उठा ले जाते हैं, वे ही खाते हैं। अब वे भी परहेज़ करने लगे हैं।

---

५३. कुमाऊँ के नामी मंदिर

अब यहाँ पर कूर्माचल के प्रधान मंदिरों की एक तालिका दी जाती है:—

(१) शैव-मंदिर

स्थान	नाम मंदिर	वर्णन
अल्मोड़ा	नागनाथ	रोज़ पूजा होती है। कत्यूरी व चंदा की गूँठें हैं।
,,	रतनेश्वर	रोज़ पूजा होती है। गोरखा-राज्य के समय के दो गाँव हैं।

स्थान	नाम मंदिर	वर्णन
अल्मोड़ा	भैरव	६ भैरव हैं—शंकर, साह, गौर, काल, बटुक, बाल। रोज़ पूजा होती है।
,,	दीपचंदेश्वर	नित्य पूजा होती है। सन् १७६० में राजा दीपचंद ने बनवाया। ३ गाँव गूँठ में हैं।
,,	उद्योतचंदेश्वर	नित्य पूजन। राजा उद्योतचंद ने सन् १६८० में बनवाया।
,,	क्षेत्रपाल	राजा कल्याणचंद ने गूँठें चढ़ाईं।
,,	विश्वनाथ	श्मशान-वासी शिव हैं।
भटकोट बिसौद	कपिलेश्वर	उत्तरायणी को मेला होता है। दीपचंद ने गूठें चढ़ाईं।
बौरारौ	पिनाकेश्वर	राजा बाजबहादुरचंद ने गूँठें चढ़ाईं। कार्त्तिकी पौर्णमासी को मेला लगता है।
,,	सोमेश्वर	नित्य पूजन होता है। होली व शिवरात्रि को मेला लगता है।
,,	सुखेश्वर	चंद-राजाओं की गूँठें चढ़ाई हैं।
,,	रूपेश्वर	,, ,, ,,
खत्याड़ी स्यूनरा	बैतालेश्वर	फालुन बदी १४ तथा मेष संक्रांति को मेला लगता है।
भीमताल	भीमेश्वर	चंदों की गूँठें चढ़ाईं हैं। मिथुन संक्रांति को मेला जुड़ता है। होली में बगवाल होती है।
बिसुंग	ऋषेश्वर	चंदों के समय की गूँठें हैं। नवरात्रियों में मेला होता है।
बड़ाऊँ	पाताल-भुवनेश्वर	राजा जगतचंद ने गूँठें चढ़ाईं। गुफा के भीतर है। फाल्गन बदी १४ को मेला होता है।
,,	कोटेश्वर	चंद-राजाओं ने गूँठें चढ़ाईं। मेला कार्त्तिक बदी १४ को।
बेल	रामेश्वर	राजा उद्योतचंद ने गूँठ चढ़ाई। व शाख, कार्त्तिक, मकर संक्रांति तथा फाल्गुन बदी १४ को मेले जुड़ते हैं।

स्थान	नाम मंदिर	वर्णन
मह्र, सोर	जगन्नाथ	गूँठ हैं। अनंत चतुर्दशी को मेला लगता है।
वल्दिया, सोर	थलकेदार	गूँठ हैं। भादों सुदी १३ को मेला लगता है।
सीराकोट ,,	भागलिंग	मेला भादों सुदी १४ को।
सौन पट्टी	पचेश्वर	मकर की संक्रान्ति को मेला लगता है।
थल बड़ाऊँ	बालेश्वर	राजा उद्योतचंद ने गूँठ चढ़ाई। मेला मकरसंक्रान्ति को। वैशाख में तिजारती मेला भी होता है।
डिंडीहाट	पवनेश्वर	गूँठ है। कार्त्तिक सुदी तथा फाल्गुन बदी १४ को मेले होते हैं।
अस्कोट	मल्लिकार्जुन	रजबार अस्कोट ने गूँठें चढ़ाई हैं।
चंपावत	बालेश्वर	चंदों की गूँठें हैं। कर्क-संक्रान्ति को मेला जुड़ता है।
,,	नागनाथ	राजा दीपचंद की गूँठें हैं। चैत्राष्टमी को मेला लगता है। कनफटों के पीर पुजारी हैं।
चौकी चारआल	छटकू	राजा कल्याणचंद ने गूँठें चढ़ाई हैं। आषाढ़ सुदी ८ को मेला लगता है।
मलोली, नयां	नीलेश्वर	गोरखालियों की गूँठें हैं। शिवरात्रि को मेला होता है।
चौकोट	वृद्धकेदार	राजा रुद्रचंद ने गूँठें चढ़ाईं। कार्त्तिक व बैशाखी पौर्णमासी को मेले लगते हैं।
कुना, द्वारा	विभाण्डेश्वर	फाल्गुन बदी १४ तथा मेष-संक्रांति को मेले लगते हैं।
द्वारा	नागार्जुन	राजा उद्योतचंद ने गूँठ चढ़ाई।
बैजनाथ	बैजनाथ उर्फ़ वैद्यनाथ	राजा जगतचंद ने गूँठ चढ़ाई। फाल्गुन बदी १४ को मेला लगता है।
बागेश्वर	बाघनाथ	कत्यूरी व चंदों की गूँठें हैं। उत्तरायणी को बड़ा मेला होता है।
पपोली, नाकुरी	उग्ररुद्र	नागपंचमी को मेला लगता है।
सालम	अतेश्वर	चंदों के वक़्त की गूँठें हैं। शिवरात्रि को मेला लगता है।

स्थान	नाम मंदिर	वर्णन
दारुण	जागेश्वर (तरुण) वृद्ध जागेश्वर	कुमाऊँ में सबसे बड़ी गूँठें इस मंदिर में हैं। वैशाख व कार्तिक १४ को मेले लगते हैं।

(२) देवियों के मंदिर

स्थान	नाम मंदिर	वर्णन
अल्मोड़ा	नंदा	राजा उद्योतचंद के समय की गूँठें हैं। भादौं सुदी ७ से ६ तक मेला होता है।
,,	पुत्रेश्वरी	कत्यूरियों की गूँठें हैं। फाल्गुन बदी १४ को मेला लगता है।
,,	कोट कालिका	मेला नहीं लगता।
,,	यक्षनी	गूँठ है। नित्य पूजा होती है।
,,	अम्बिका	मेला नहीं होता।
तिखून	श्यामादेवी	गोरखों ने गूठें चढ़ाई हैं। आषाढ़ व चैत सुदी अष्टमी को मेला लगता है।
दुनागिरि	दुर्गा	आषाढ़ व चैत सुदी ८ को मेला लगता है।
उच्यूर	वृन्दा	पुरानी गूँठ है। मेला चैत्र सुदी ८ को।
धूरा, डांडा,	सालम दुर्गा	आषाढ़ अष्टमी को मेला लगता है।
अमेल, कोश्यां	उपहारणी	जेठ दशहरे को मेला होता है। नन्दा का दूसरा नाम है।
हाट, बेल	कालिका	चंद-राजाओं के वक़् की गूठें हैं। चैत्र व आश्विन ८ को मेले लगते हैं।
महर	मल्लिका	गूँठ है। मेला भी होता है।
सौन	आकाशभाजिनी	आखिर चैत में मेला लगता है।
अस्कोट	कालिका	गूँठ है। पूस सुदी १४ को मेला।
गिवांड़	उग्रारी	गोरखों की गूँठ। मेला।
कत्यूर	भ्रामरी	राजा जगतचंद की गूँठ। मेला चत्र नवरात्रि को।
,,	नन्दा	मेला आषाढ़ सुदी अष्टमी को।
पुंगराऊ	कोटगाड़ी	मेला आषाढ़ सुदी अष्टमी को। गोरखा-गूँठ।
देबीधुरा	बाराही	चंदों की गूँठ। मेला श्रावणी पूर्णमासी को।
नैनीताल	नैना	मेला भादों सुदी अष्टमी।

(३) वैष्णवमंदिर

स्थान	नाम मंदिर	वर्णन
अल्मोड़ा	सिद्ध नरसिंह उर्फ़ (बदरीनाथ)	गोरखों के समय की गूँठें हैं। आचार्य लोग पुजारी हैं।
,,	रघुनाथ	सन् १७८८ की गूँठें हैं। ब्रह्मचारी पुजारी हैं।
,,	रामपादुका	मेला चैत्र सुदी नवमी को।
गिवांड	रामचंद्र	मेला चैत्राष्टमी को।
बागेश्वर	वेणीमाधव	चंद-राजाओं की गूँठें हैं। मेला होता है।
,,	त्रियुगीनारायण	,, ,,
पुंगराऊ	काली नाग	मेला होता है। गोरखों की गूँठ है।
द्वारा	बदरीनाथ	पुराना मंदिर है।
अल्मोड़ा	मुरलीमनोहर	कुन्दनलाल साह की धर्मपत्नी ने बनवाया।
,,	हनुमानमंदिर	चंद-राजा के समय बना पर गूँठ नहीं है। रघुनाथ-मंदिर शामिल था, अब स्वतंत्र है। चौ० चेतराम बर्मा ने जीर्णोद्धार किया।
,,	रतनेश्वर-मंदिर	गोरखों के समय में बना। गिरि पुजारी हैं।
,,	तुलारामेश्वर	ला० तुलाराम साहजी ने बनवाया। नौला भी बनवाया, जो खज़ांची का नौला कहा जाता है।

---

५४. कुमाऊँ के मेले

(१) अल्मोड़ा ज़िला

परगना	स्थान	मेले का नाम	किस देवता के नाम पर	औसत जन-समूह
बारामंडल	अल्मोड़ा	जन्माष्टमी	कृष्ण-जन्मदिन	३०००
,,	,,	नंदाष्टमी	नंदा देवी	७०००
,,	देवथल	शिवरात्रि	शिव	३०००
,,	अल्मोड़ा	दशहरा	रामचंद्र	६०००
,,	गणानाथ	कार्त्तिकी ४	शिव	४०००
,,	,,	होली ४	शिव	५०००
,,	कुवाली काली गाड़	श्रावणी पौर्णमासी	बदरीनाथ	७०००
चौगर्खा	जागीश्वर	वैशाखी ,,	शिव	५०००
,,	झाँकरसैम	झाँकरसैम	स्थानीय देवता	३०००
गंगोली	रामेश्वर मंदिर	उत्तरायणी	शिव	७०००
,,	,,	वैशाखी पौर्णमासी	,,	५०००
,,	,,	कार्त्तिकी ,,	,,	५०००
,,	धौलनाग	नागपंचमी	धौलनाग स्थानीय देवता	३०००
,,	,,	नवरात्रि पंचमी	,, ,,	३०००
सोर	मोष्टमाणो	नागपंचमी	स्थानीय देवता	६०००
सीरा	बालेश्वर थल	वृष-संक्रांति	शिव	१००००
,,	भागलिंग देवचूला	नागपंचमी	भागलिंग स्थानीय देवता	४०००

परगना	स्थान	मेले का नाम	किस देवता के नाम पर	औसत जन-समूह
सीरा	भागलिंग देवचुला	अनंत चतुर्दशी	भागलिंग स्थानीय देवता	४०००
कालीकुमाऊँ	नरसिंह मंदिर फड़का	विजयादशमी	नृसिंह अवतार	५०००
,,	चमदेवल गुमदेश	चमदे व दशमी (वैशाख)	स्थानीय देवता	५०००
,,	गढ़मुक्तेश्वर, गुमदेश	कार्त्तिकी पौर्णमासी	शिव	४०००
,,	खिलपती	आषाढ़ी पौर्णमासी	अखिलतारिणीदेवी	३०००
,,	ऋषेश्वर महादेव लोहाघाट	महाष्टमी	शिव	६०००
,,	देवीधुरा	श्रावणी पौर्णमासी	बाराहीदेवी	६०००
दानपुर	बागेश्वर	उत्तरायणी	शिव	२००००
,,	रणचूला कोट	नंदाष्टमी	नंदा	८०००
पालीपछाऊँ	सोमनाथ, गिवांड (श्रीनाथेश्वर)	सामनाथ (वैशाख)	शिव	८०००
,,	विभांडेश्वर, दोरा	विषवत संक्रान्ति	शिव	५०००
,,	बूढ़ा केदार	कार्त्तिकी पौर्णमासी	शिव	५०००
,,	नीलेश्वर, भिकियासैंण (नौलेश्वर ?)	शिवरात्रि	शिव	५०००
,,	माम्लादेवी	विषवत संक्रान्ति	,,	४०००
,,	कपिलेश्वर महादेव मल्ला ककलासौं	शिवरात्रि	,,	७०००
अस्कोट	जौलजीवी	कार्त्तिक में	तिज्जारती मेला	६०००

(२) नैनीताल ज़िला

परगना	स्थान	मेले का नाम	सम्मान में	औसत जन-संख्या
छखाता	नैनीताल	डोल	श्रीकृष्ण	५०००
,,	,,	नंदाष्टमी	नंदादेवी	६०००
,,	रानीबाग़ चित्रशिला	उत्तरायणी	महादेव	१००००
,,	,,	शिवरात्रि	शिव	४०००
ध्यानीरौ	कैलाश	कैलाश (कार्त्तिक बदी १४)	शिव व ज्वालादेवी	१००००
कोटा पहाड़	तीरथ	शिवरात्रि	शिव	१०००
,,	सीतावनी	माघ अमावास्या	सीता	६०००
छखाता भावर	हल्द्वानी	दशहरा	रामचन्द्र	२५०००
,,	,,	जन्माष्टमी	श्रीकृष्ण	५०००
कोटा भावर	कालाढूँगी	दशहरा	रामचन्द्र	६०००
चिलकिया	रामनगर	दशहरा	,,	२५०००
काशीपुर	काशीपुर	चैती	बालसुंदरीदेवी	७००००
,,	,,	मोटेश्वर (शिवरात्रि)	महादेव	३०००
,,	,,	भादों	जहरऔलिया पीर	४००० (मुसलमानों का)
,,	,,	गुड़ासी (भादौंसुदी १२)	बूढ़ाबाबू	५०००
,,	,,	दशहरा	रामचंद्र	३००००
,,	टांडाउज्जैन	जहर औलिया	जहर औलियापीर	५००० भादों बदी ६

परगना	स्थान	मेले का नाम	सम्मान में	औसत जन-समूह
काशीपुर	जसपुर	जन्माष्टमी	श्रीकृष्ण	२०००
गदरपुर	गदरपुर	झाड़ी महादेव (शिवरात्रि)	महादेव	१०००
,,	,,	सरवरपीर	सरवरपीर	१००० कुँवार सुदी ६
बाजपुर	आलापुर	रामलीला	रामचंद्र	१००००
,,	झाड़खंडी	शिवरात्रि	महादेव	३०००
,,	रुद्रपुर	,, (झाड़ी महादेव)	महादेव	१०००
रुद्रपुर	अटरिया	अटरिया	महादेव	८००० चैत्र पूर्णमासी
,,	किछहा	जन्माष्टमी	श्रीकृष्ण	२०००
किलपुरी	किलपुरी	शिवरात्रि (झाड़ी महादेव)	महादेव	३०००
,,	झाड़ी	झाड़ी	महादेव	५०००
,,	बिजटी	बालेमियाँ	बालेमियाँ	३००० जेठ १ से ५ तक
,,	सिसई	सिसला	मिठ्ठनशाह	२००० माघ १ से ५ तक
,,	सितारगंज	रामलीला	रामचंद्र	५०००
नानकमता	नानकमता	दीपावली	नानकशाह	१०००
बिलारी	मेलाघाट	घाटमेला	शारदा	४०००० कार्तिक बदी १५
,,	चक्रपुरा	शिवरात्रि	महादेव	४०००

५५. कुमाऊँ के पर्वोत्सव व त्यौहार

जिन तिथियों में स्नान-दानादि कर्म होते हैं, वे पर्व कहलाती हैं। जिनमें आमोद-प्रमोद, हर्ष-आनंद मनाया जाता है, वे उत्सव कहे जाते हैं। यथा होली-दिवाली के त्यौहार उत्सव हैं। संक्रान्ति, पूर्णिमा, गंगा-दशहरा आदि पर्व हैं। जन्माष्टमी, शिवरात्रि आदि व्रत हैं। पर्वोत्सव अथवा व्रतोत्सव सभी त्यौहार कहलाते हैं। कुमाऊँ में निम्न-लिखित मुख्य त्यौहार माने जाते हैं—

(१) संवत्सर प्रतिपदा—चैत्र शुक्ल पड़वा वर्ष के आरंभ में होती है। इस दिन कहीं-कहीं नवदुर्गा की मूर्ति स्थापित की जाती है। हरेला भी बोया जाता है। देवी के उपासक नवरात्र-व्रत करते हैं। चंडी का पाठ होता है। संवत्सर प्रतिपदा को पंडितों से पंचांग का शुभाशुभ फल सुनते हैं।

(२) चैत्राष्मी—को देवी-भक्त व्रत तथा पाठ-पूजा करते-कराते हैं।

(३) रामनौमी—विधवा स्त्रियाँ तथा राम-भक्त लोग व्रत-पूजन स्वयं करते तथा पुरोहितों वा ब्राह्मणों द्वारा कराते हैं।

(४) दशाई या दशहरा—चैत्र सुदी दसमी को देवताओं में हरेला चढ़ाकर स्वयं सिर पर चढ़ाते हैं। नवरात्रि के व्रत को पूर्ण करके दान-दक्षिणा, ब्रह्म-भोज भी कराया जाता है।

(५) विषुवती उर्फ त्रिखौती—नागरिक द्विज लोगों में इस दिन साधारण पर्व संक्रान्ति का माना जाता है। यह संक्रान्ति मेष भी कही जाती है, पर देहाती ब्राह्मण, क्षत्रियों तथा शिल्पकारों में पूपन्न, मिष्ठान्न, पानादि से अच्छा उत्सव इस दिन मनाया जाता है। कई स्थानों में मेले भी होते हैं। हुड़का बजाकर पहाड़ी गाने गाये जाते हैं, तथा लोग नाचते हैं। यह यहाँ की मूल-निवासी जातियों के समय का प्राचीन उत्सव है। इस दिन मछली भी मारते हैं, और बड़े भी खाते हैं। जितने बड़े खाये, उतने ताले भी डाले जाते रहे हैं। किन्तु अब ताले डालने का रिवाज कम हो गया है (एक गरम लोहे की सलाख से पेट को दागना 'ताला डालना' कहा जाता है।)। इस दिन थल द्वाराहाट स्याल्दे, चौगड़ तथा लोहाखाय में मेले होते हैं।

(६) बैशाखी पूर्णिमा—स्नान-दानादि की पर्वी मानी जाती है। गंगा-सप्तमी भी पुण्य तिथि गिनी जाती है।

(७) नृसिंहचतुर्दशी—इसका व्रत वैशाख सुदी १४ को हरिभक्त लोग करते हैं।

(८) बट-सावित्री ३०—स्त्रियों का व्रत होता है। सती सावित्री तथा सत्यवान की कथा सुनी जाती है। बट-बृक्ष के तले मृतक सत्यवान, यमराज तथा सती सिरोमणि सावित्रीदेवी के चित्र लिखकर इनकी पूजा की जाती है। द्वादश ग्रंथ के डोर की प्रतिष्ठा करके स्त्रियाँ गले में बाँधती हैं।

(९) दशहरा—ज्येष्ठ सुदी १० को गंगा-दशहरा मनाया जाता है, यह भारत-व्यापी पर्व है। गंगा-स्नान, शरबत-दान इस दिन होता है। परंतु कुमाऊँ में "अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्च" इत्यादि तीन श्लोक एक काग़ज़ के पर्चे में लिखकर प्रत्येक घर में ब्राह्मणों के द्वारा चिपकाये जाते हैं। ब्राह्मणों को स्वल्प दक्षिणा पुरस्कार में दी जाती है। वज्रपात, बिजली आदि का भय इस 'दशहरे के पत्र' के लगाने से नहीं होता, यह माना जाता है।

(१०) हरेला, हरियाला या कर्क-संक्रान्ति—श्रावण की संक्रान्ति से १०-११ दिन पूर्व बंस-पात्रादि में मिट्टी डालकर क्यारी बना धान, मक्का, उड़द इत्यादि वर्षा काल में उत्पन्न होनेवाले अन्न बोये जाते हैं, इसे हरियाला कहते हैं। इसे धूप में नहीं रखते। इससे पौधों का रग पीला हो जाता है।

(क) हरकाली महोत्सव—गौरी महेश्वर, गणेश तथा कार्त्तिकेय की मिट्टी की मूर्तियाँ बना उनमें रंग लगा मासान्त की रात्रि को हरियाले की क्यारी में विविध फल-फूल तथा पक्वान्न व मिष्ठान्न से पूजा की जाती है। दूसरे दिन उत्तरांग पूजन का हरेला सिर में रक्खा जाता है। बहन-बेटियाँ टीका, तिलक लगाकर हरेला सिर पर चढ़ाती हैं। उनको भेंट दी जाती है। यह हरेले का टीका कहलाता है।

(ख) यह हरियाला अन्त्यज पर्यन्त सभी वर्ण और जाति के लोगों में बोया जाता है। संक्रान्ति के दिन अपने-अपने देवताओं पर चढ़ा, तब अपने सिर में चढ़ाते हैं। ग्राम-देवताओं की धूनी मठ में, जो 'जागा' कहलाते हैं, ग्रामवासी लोग हरू, शैम, गोल्ल आदि अपने ग्राम व कुल-देवता की पूजा रोट-भेंट, धूप-दीप, नैवेद्य, बलि इत्यादि चढ़ाकर करते हैं। प्रत्येक ग्राम की सीमा पर यह ('जागा') मंदिर बने होते हैं। यहाँ २२ रोज़ तक बैसी (बाईसी) का अनुष्ठान, नवरात्रियों में नवरात्र-अनुष्ठान ग्राम-देवताओं का किया जाता है। हरियाला चढ़ाकर इस दिन पूजा होती है। बैसी अर्थात् बाईसी का व्रत करनेवाले इस दिन से २२ रोज़ तक व्रत और त्रिकाल-स्नान और एक बार भोजन करके ब्रह्मचर्य-पूर्वक साधु-वृत्ति में रहते हैं। दिन-

रात घर में नहीं जाते। जागा के मठ में देवता का ध्यान-पूजन, 'धूनी' की सेवा करते हैं। रात्रि में देवता का 'जागा' अथवा 'जागर' द्वारा आवाहन किया जाता है। बहुसंख्यक दर्शक यात्री देव-दर्शनार्थ जाते हैं। धन, पुत्र आरोग्य आदि मनोकामना का आशीर्वाद माँगते हैं।

यह मूल-निवासी पूर्वकालीन जातियों के समय की प्राचीन पूजा-पद्धति है, क्योंकि यह रीति कुमाऊँ से अन्यत्र नहीं देखी जाती।

(११) हरिशयनी ११—यह प्रसिद्ध व्रत है। चातुर्मास्य नियम इस दिन से स्त्रियाँ धारण करती हैं। हरि-बोधिनी को व्रत पूर्ण होते हैं।

(१२) श्रावणी १५—इसे रक्षाबंधन भी कहते हैं। इस दिन यजुर्वेदी द्विजों का उपाकर्म होता है। उत्सर्जन, स्नान-विधि, ऋषि-तर्पणादि करके नवीन यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। रक्षा-बंधन भी इसी दिन करते हैं। ब्राह्मणों का यह सर्वोपरि त्यौहार माना जाता है। वृत्तिवान् ब्राह्मण अपने यजमानों को यज्ञोपवीत तथा रक्षा देकर दक्षिणा लेते हैं।

(१३) सिंह या घृत-संक्रांति—सिंह-संक्रान्ति को 'ओलगिया' भी कहते हैं। पहले चंद-राज्य के समय अपनी कारीगरी तथा दस्तकारी की चीज़ों को दिखाकर शिल्पज्ञ लोग इस दिन पुरस्कार पाते थे, तथा अन्य लोग भी फल-फूल, साग-भाजी, दही-दुग्ध, मिष्ठान्न तथा नाना प्रकार की उत्तमोत्तम चीज़ राज-दरबार में ले जाते थे, तथा मान्य पुरुषों की भेंट में भी ले जाते थे। यह 'ओलग' की प्रथा कहलाती थी। जिस प्रकार बड़े दिन को अँगरेज़ों को डाली देने की प्रथा है, वही प्रथा यह भी थी। अब भी यह त्यौहार थोड़ा-बहुत मनाया जाता है। इसीलिये यह संक्रान्ति 'ओलगिया' भी कहलाती है। इसे घृत या 'घ्यू' संक्रान्ति कहते हैं। इस दिन (बेड़िया) रोटियों के साथ खूब घी खाने का भी रिवाज है। यह भी स्थानीय त्यौहार है।

(१४) संकष्ट चतुर्थी—भाद्रकृष्ण ४ को संकष्टहर गणेशजी का व्रत तथा पूजन। चंद्रोदय होने पर चन्द्रार्घ्य-दान देकर भोजन होता है। यह व्रत प्रायः स्त्रियाँ करती हैं।

(१५) जन्माष्टमी—यह भारत-व्यापी त्यौहार है। भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म-दिवस सानंद मनाया जाता है। बहुत-से लोग व्रत करते हैं। डोल बनाते हैं। पट्टों में कृष्ण-चरित्र लिखे जाते हैं। उनकी पूजा होती है। कोई फलाहार, कोई निराहार व्रत करते हैं। स्मार्त पहले दिन तथा प्रायः वैष्णव दूसरे दिन व्रत रखते हैं।

(१६) हरितालो व्रत—भाद्र कृष्ण तृतीया को यह व्रत होता है।

स्त्रियाँ सौभाग्य के लिये वृत करती हैं। सामवेदी लोगों का इस दिन हस्त नक्षत्र में उपाकर्म होता है।

(१७) गणेश चतुर्थी—भाद्र शुक्ल ४ को गणेशजी का वृत-पूजन होता है। श्रीकृष्ण भगवान् को इस दिन चन्द्रमा का दर्शन करने से मणि की चोरी का कलंक लगा था। अतः इस दिन चन्द्रदर्शन वर्जित है।

(१८) ऋषिपंचमी—इसे नागपंचमी या पर्वती में "बिरुड़ पंचमी" भी कहते हैं। भाद्र शुक्ल पंचमी को स्त्रियाँ व्रत करती हैं। सप्तर्षियों का अरुन्धती-सहित पूजन होता है। यों नागपंचमी श्रावण शुक्ल में होती है, पर इसी दिन करने का नियम चल पड़ा है। इस दिन नागों की पूजा होती है। इस दिन स्त्रियाँ प्रायः कच्चा अन्न खाती है, और हल से उत्पन्न अन्न का भी निषेध है।

(१९) अमुक्ताभरण सप्तमी—भाद्र शुक्ल सप्तमी को स्त्रियों का प्रधान व्रत होता है। सप्त ग्रन्थियुक्त डोर के साथ उमा-महेश्वर का पजन कर स्त्रियाँ डोर को धारण करती हैं।

(२०) दूर्वाष्टमी—भाद्र शुक्ल अष्टमी को यह व्रत होता है। सुवर्ण, रौप्य, रेशम इत्यादि की दूर्वा बनाकर पूजा-प्रतिष्ठा कर स्त्रियाँ उसे धारण करती हैं। सौभाग्य-संतति प्राप्ति के लिये दूर्वादेवी से प्रार्थना की जाती है। इस दिन भी अग्नि-पक्व अन्न खाना मना है।

(२१) नन्दाष्टमी—भाद्र शुक्ल अष्टमी से लक्ष्मी-पूजा-वृत आश्विन कृष्ण ८ तक अनेक उपासक लोग करते हैं। नंदादेवी का पूजन चन्द॰ राजाओं के दरबार में परंपरा से बड़ी धूम-धाम से होता आया है। यह कुमाऊँ के जातीय उत्सवों से एक है। नंदा कुमाऊँ की रणचंडी है। यहाँ लड़ाई का मूल-मंत्र नंदादेवी की जय है। इसकी पूजा में भैंसे तथा बकरे का बलिदान होता है। अल्मोड़ा में अब भी पूजा ठाठ-बाट से होती है, और बड़ा मेला होता है। चन्द-वंश के अवतंस इसका पूजन करते हैं। नैनीताल में स्व॰ लाला मोतीराम साहजी ने यह मेला चलाया था। कत्यूर, रानीखेत तथा भवाली में भी मेले होते हैं। कुमाऊँ के राजाओं की यह कुल-देवी बताई जाती है।

(२२) अनन्त चौदस-व्रत—भाद्र शुक्ल चतुर्दशी को होता है। चतुर्दश-ग्रन्थि के डोर की पूजा-प्रतिष्ठा करके इस अनन्त को स्त्री-पुरुष पहनते हैं। रोट का नैवेद्य लगता है। यह व्रत खास-खास लोग करते हैं।

(२३) खतड़ुवा—कन्या-संक्रान्ति को फूल के झंडे बनाकर बालक

उत्सव मनाते हैं। 'भैल्लो भैल्लो' करके नाचते हैं। सूखी घास-फूस का 'खतड़वा' बनाकर होली के तुल्य जलाते हैं। ककड़ी, खीरा खाते हैं, तथा दूसरों पर मारते हैं। गढ़वाल-विजय की यादगार में यह उत्सव मनाना कहा जाता है। सरदार खतड़सिंह गढ़वाल के सेनापति थे, जो मारे गये।

(२४) श्राद्ध—आश्विन कृष्ण प्रतिपदा से अमावास्या-पर्य्यन्त श्राद्ध-पक्ष वा पितृपक्ष कहलाता है। पिता की मृत्यु-तिथि को इस पक्ष में पार्वण श्राद्ध किया जाता है। मातृश्राद्ध केवल नवमी को होता है। अमावास्या को पितृ-विसर्जन की तिथि मानते हैं। तर्पण करते हैं। सनातनधर्मी शिल्पकार हरिजन लोग भी इसी दिन श्राद्ध करते हैं। ब्राह्मणों में भात (चावल) के पिंड देने की रीति है। अन्य वर्ण जौ के आटे के पिंड बनाते हैं। ब्रह्मभोज के अतिरिक्त भाई-बांधव, अड़ोस-पड़ोस के लोगों को श्राद्ध में भोजन कराया जाता है। मृत पितरों की स्मृति का यह एक बड़ा पर्व माना जाता है।

(२५) दुर्गोत्सव—आश्विन सुदी प्रतिपदा से दुर्गापूजन-उत्सव मनाया जाता है। इसे नवरात्र-व्रत भी कहते हैं। हरियाले की क्यारी बोई जाती है। दुर्गापाठ करते-कराते हैं। प्रतिदिन अथवा अष्टमी को घर-घर में दुर्गापाठ करते हैं। कई लोग नौ दिन व्रत रखते हैं। इस अष्टमी को महाष्टमी भी कहते हैं। इस दिन देवी-मंदिरों में बलिदान होता है। गाँवों में यत्र-तत्र 'जागर' लगते हैं। कहीं-कहीं भैंसे, बकरे खूब मारे जाते हैं।

(२६) विजयादशमी—आश्विन शुक्ल दशमी को कुमाऊँ में 'दसाइ' कहते हैं। नवदुर्गाओं का विसर्जन इस दिन किया जाता है। देवी-देवताओं को हरेला चढ़ा, फिर तिलक लगाते तथा अपने सिर में हरेला रखते हैं। बहिन-बेटियाँ भी तिलक (टीका) करती हैं। नवरात्रियों में बहुत स्थानों में रामलीलाएँ होती हैं। दशहरे को मेला होता है।

यह क्षत्रियों का प्रधान त्यौहार है। चंद-राज्य के समय अश्व-पूजा, गज-पूजा, शस्त्रास्त्र, छत्र, चामर, मुकुट आदि राज-चिह्नों की पूजा होती थी।

(२७) कोजागर—आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को छोटी दिवाली मानी जाती है। स्त्रियाँ व्रत रखती हैं। रात्रि में लक्ष्मी-पूजा होती है। दीवाली जलाते हैं। पक्वान्न, मिष्ठान्न नैवेद्य लगाकर खाते हैं। द्यूत की कुप्रथा का श्रीगणेश भी इसी दिन से प्रारंभ होता है।

(२८) दीपोत्सव—कार्त्तिक कृष्ण ११ को हरिदीप, त्रयोदशी को यमदीप, चतुर्दशी को शिवदीप जलाया जाता है। तुलार्क पर्यन्त आकाश-दीप जलाने की प्रथा है।

(२९) नरक चतुर्दशी—चन्द्रोदय व्यापिनी चतुर्दशी के उषाकाल में तैलाभ्यंग-पूर्वक तप्तोदक (गरम पानी) से स्नान करने की विधि तथा प्राचीन रीति है। हलकी मृत्तिका, अपामार्ग तथा कटुतुम्बी को सिर पर उतारा जाता है। साम्प्रत में छोटे-छोटे असंस्कारी बच्चों को नरहर स्नान कराके पुरानी रस्म बरती जाती है। नरक यातना की निवृत्ति के निमित्त नरक चतुर्दशी-स्नान होता है।

(३०) दीपमालिका या दिवाली—कार्तिक कृष्ण ३० को महालक्ष्मी-पूजा का भारत-व्यापी त्यौहार है। सायंकाल में दीपमालिका (रोशनी या दिवाली) की जाती है। यह वैश्यों का मुख्य त्यौहार माना जाता है। लक्ष्मी का व्रत, पूजा और उपासना इसमें मुख्य है। जुये की कुप्रथा कुमाऊँ में खूब प्रचलित है। रावण को मारकर जब भगवान् रामचंद्र अयोध्या लौटे थे, उसकी यादगार में यह उत्सव मनाया जाता है।

(३१) गोवर्धन प्रतिपदा—कार्तिक शुक्ल १ को भगवान् कृष्णचंद्र ने गोवर्द्धन-पर्वत उठाकर इन्द्र के कोप से गोकुल की रक्षा की थी। इन्द्र-मख के बदले गोवर्द्धन और गोधन की पूजा जारी की, तबसे यह गो-पूजा उत्सव होता है। गाय-बच्छियों को पुष्प-माला पहनाकर तिलक लगाते हैं। गो-ग्रास देकर पूजा-आरती करते हैं। खीर, माखन, दही, दूध का नैवेद्य लगता है। भगवान् श्रीकृष्ण की भी पूजा होती है। इस दिन कहीं-कहीं जैसे पाटिया में 'बगवाल' भी होती है।

(३२) यम द्वितीया—कार्तिक शुक्ल २ को मनाई जाती है। भ्रातृ-टीका या भैया दूज नाम से प्रसिद्ध है। यमराज अपनी बहन यमुना के हाथ का भोजन इस दिन ग्रहण करते हैं, ऐसी पौराणिक कथा है। अतः बहन के यहाँ भोजन करने की रीति प्रचलित है। भगिनी टीका भी करती है। चिउड़े सिर में चढ़ाये जाते हैं। 'सिंङल' एक प्रकार का पक्वान्न विशेष इन दिनों बहुत बनाते हैं।

(३३) हरिबोधिनी ११—यह व्रत भी भारत-व्यापी है। हरिशयनी को सोये हुए भगवान् हरिबोधिनी को जागते हैं। इस दिन व्रत होता है, तथा द्वादशी के दिन चातुर्मास्य के व्रतों का उद्यापन किया जाता है।

(३४) वैकुण्ठ १४—कार्तिक शुक्ल पक्ष में होती है, प्रायः विधवा स्त्रियाँ व हरिभक्त लोग इस दिन उपवास, व्रत करते हैं। गणानाथ में बड़ा मेला होता है। पुत्र-कामनावाली स्त्रियाँ रात-भर दोनों हाथों में दीपक लेकर खड़ी रहती हैं।

(३५) कार्त्तिकी पौर्णमासी—गंगा-स्नान का पर्व माना जाता है। इस दिन गंगा-स्नान तथा वस्त्रदान का माहात्म्य समझा जाता है।

(३६) भैरवाष्टमी—मार्गशीर्ष कृष्ण ८ को काल भैरव की पूजा होती है। बड़े (भले) खाने का माहात्म्य है। बड़े (भले) बनाकर काल भैरव की पूजा होती है, और वे बड़े भैरव के वाहन काले कुत्ते को खिलाये जाते हैं।

(३७) मकर संक्रांति—इसको उत्तरायणी भी कहते हैं। इस दिन से उत्तरायण का प्रवेश होता है। प्रयाग में यह पर्व माघ-मेला कहा जाता है। बागेश्वर में बड़ा मेला होता है। वैसे गंगास्नान रामेश्वर, चित्रशिला व अन्य स्थानों में भी होते हैं।

कुमाऊँ में इस त्यौहार को 'घुघुतिया' भी कहते हैं। गुड़ मिलाकर आटे को गूँदते हैं, फिर 'घुघुते' एक पक्षी-विशेष की आकृति बना घी में पक्कान्न बनाकर उसकी माला गूँथते हैं। माला में नरंगी-फल आदि भी लगाते हैं। वे मालाएँ बच्चों के गलों में पहनाई जाती हैं। वे सुबह उठकर माला पहन 'काले-काले' कहकर कौवों को बुलाते हैं। पक्कान्न माला से तोड़कर उसे खिलाते हैं। यह प्रथा कुमाऊँ से अन्यत्र देखने में नहीं आती। यह यहाँ का प्राचीन त्यौहार ज्ञात होता है।

(३८) संकष्टहर व्रत—माघ कृष्ण चतुर्थी को गणेशजी का व्रत-पूजन करते हैं।

(३९) वसन्त पंचमी—माघ शुक्ल पंचमी को श्रीपंचमी भी कहते हैं। इस दिन जौ की पत्तियाँ खेतों से लेकर देवी-देवताओं को चढ़ाते तथा हरियाले की भाँति सिर में रखते हैं। बहन-बेटियाँ भी टीका करती हैं। पीले रूमाल व वस्त्र रँगाये जाते हैं। आज से होली गाने लगते हैं। नृत्य व गीत का चलन भी है।

(४०) भीष्माष्टमी—भाद्र शुक्लाष्टमी को शर-शय्या में पड़े हुए देवव्रत राजर्षि भीष्मपितामह ने प्राण-त्याग किया था। यह उनका श्राद्ध-दिवस है। इस पुण्य तिथि को उनका तर्पण किया जाता है। इसे भीष्म-तर्पण कहते हैं।

(४१) शिवरात्रि—फाल्गुन कृष्ण १४ को शिवशंकर का व्रत सारे भारतवर्ष में होता है। इस दिन व्रत रखते हैं, और यत्र-तत्र नदियों में गंगा-स्नान को स्त्री पुरुष जाते हैं। कुमाऊँ में कैलास, जागीश्वर, बागीश्वर, सोमेश्वर, विभांडेश्वर, चित्रेश्वर, रामेश्वर भिकियासैणां, चित्रशिला आदि में मेले होते हैं।

(४२) होली—फाल्गुन सुदी ११ को चीर-बंधन किया जाता है। कहीं-कहीं ८ अष्टमी कोचीर बाँधते हैं। कई लोग आमलकी ११ का व्रत करते हैं। इसी दिन भद्रा-रहित काल में देवी-देवताओं में रंग डालकर पुनः अपने कपड़ों में रंग छिड़कते हैं, और गुलाल डालते हैं। छरड़ी पर्यन्त नित्य ही रंग और गुलाल की धूम रहती है। गाना, बजाना, वेश्या-नृत्य दावत आदि समारोह से होते हैं। ग्रामों में खड़ी होलियाँ गाई जाती हैं। नकल व प्रहसन भी होते हैं। अश्लील होलियों तथा अनर्गल बकवाद की भी कमी नहीं रहती। कुमाऊँ में यह त्यौहार ६-७ दिन तक बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। सतराली, पाटिया, गंगोली, चम्पावत, द्वाराहाट आदि की होलियाँ प्रसिद्ध हैं। गाँवों में भी प्रायः सर्वत्र बैठकें होती हैं। मिठाई व गुड़ बाँटा जाता है। चरस व भंग की तथा शहरों में कुछ-कुछ मदिरा की धूम रहती है। फाल्गुन सुदी १५ को होलिका-दहन होता है। दूसरे दिन प्रतिपदा का छरड़ी मनाई जाती है। घर-घर में घूमकर होलिका मनाकर सायंकाल को रंग के कपड़े बदलते हैं। धन भी एकत्र करते हैं, जिसका देहातों में भंडारा होता है।

(४३) टीका २—चैत्र कृष्ण २ को दम्पति-टीका कहलाता है। जिस प्रकार 'वसंत, हरेला, दशाईं व बगवाली' को भ्रातृ-भगिनी का टीका होता है, उसी प्रकार इस दिन स्त्री-पुरुषों का टीका होता है। भावज या साली को भी टीका-भेंट दी जाती है।

इन व्रतों के अलावा एकादशी-व्रत प्रति पक्ष में किये जाते हैं। हरि-शयनी, हरिबोधिनी, आमलकी ये मुख्य व्रत हैं। इन एकादशियों का तथा चातुर्मास्य की एकादशियों का व्रत प्रायः बहुत लोग करते हैं। स्त्रियाँ जागरण, कथा-श्रवण करती हैं। निराहार-फलाहार दोनों प्रकार के व्रत होते हैं। कोई-कोई पक्वान्न खाते हैं। एकादशी को चावल वर्जित होते हैं।

वारों के व्रत—रविवार को सूर्य-व्रत होता है। पौष मास में अधिक लोग रविवार को व्रत तथा सूर्य-पूजा करते हैं। लवण-रहित पक्वान्न खाते हैं। सोमवार को शिव का व्रत स्त्रियाँ करती हैं। श्रावण, माघ तथा वैशाख में इसका अधिक प्रचार है। पूरी, रोटी अथवा फलाहार भोजन होता है। भौम-वार को मंगल का व्रत होता है। लवण-रहित अन्न भोजन करने की विधि है।

इन व्रतों के उद्यापन भी होते हैं। उद्यापन के बाद व्रत करने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। इनके अलावा स्त्रियाँ कार्तिक-स्नान, तथा लक्षवर्तिका, तुलसी-विवाह आदि-आदि भी यदा-कदा किया करती हैं।

---

५६. संस्कार तथा उत्सव

जातकर्म, नामकरण, व्रतबंध, विवाहादि संस्कार कहलाते हैं। और षष्ठी-महोत्सव, जन्मोत्सव, अक्षरारंभ आदि कर्म उत्सव हैं। इन कर्मों के करने की विधि दशकर्म-पद्धति में है। कूर्माचल में कट्टरता ज़्यादा है। इससे ये बातें बहुतायत से मानी जाती हैं। १६ संस्कारों के नाम ये हैं—

(१) गर्भाधान, (२) पुंसवन, (३) सीमन्तोनयन (४) जातकर्म, (५) नामकर्म, (६) निष्क्रमण, (७) अन्नप्राशन, (८) चूड़ाकर्म, (९) उपनयन, (१०) वेदारंभ, (११) समावर्तन (१२) विवाह, (१३) अग्न्याधान, (१४) दीक्षा (१५) महाव्रत, और (१६) संन्यास।

(१) गर्भाधान-संस्कार—सन्तान-प्राप्ति के निमित्त रजोदर्शन के पश्चात् देवपूजन कर तथा समय निर्धारित कर सहवास किया जाता था। अब यह संस्कार प्रायः नहीं होता। अब प्रथम रजोदर्शन के बाद जो गणेश-पूजन होता है, वही शायद इसका रूपान्तर हो।

(२) पुंसवन (३) सीमन्तोनयन—गर्भ-धारण के तीसरे महीने लगभग पुंसवन तथा आठवें महीने सीमन्तोनयन करने की विधि पहले होगी, किन्तु अब ये संस्कार नहीं होते।

(४) जातकर्म—नव-जात शिशु के उत्पन्न होने पर सचैल स्नान कर कुछ पूजन की विधि थी, पर अब यह प्रथा भी प्रायः उठ गई है।

(५) षष्ठी-महोत्सव—बालक के जन्म-दिन के छठे दिन रात्रि के समय यह उत्सव मनाया जाता है। षष्ठी-पूजन, राहु-बेधन नामक कर्म किये जाते हैं। पर ज़्यादातर पुत्र की छठ होती है। पुत्री की छठ बिरले धनीपुरुष करते हैं। यह कोई संस्कार नहीं, केवल उत्सव है। गीत-वाद्य, मंगल-गान, मंत्र-पाठ, तिलक करके ब्राह्मण तथा इष्ट-मित्र, बंधु-बांधवों को दावत दी जाती है। बड़ी धूम-धाम से यह उत्सव कुमाऊँ में मनाया जाता है।

(६) नामकर्म या नामकरण—संतान उत्पन्न होने के ११ वें दिन बालक का नाम रक्खा जाता है। सूतिकागृह को गोमूत्र व पंचगव्य से प्रातः स्नान के अनन्तर शुद्ध किया जाता है। पश्चात् हवन व अन्य कर्मों से सूतिका की अस्पृश्यता दूर की जाती है। नक्षत्रानुसार नाम स्थिर करके एक वस्त्र में लिखकर प्रतिष्ठा करके उस वस्त्र से वेष्ठित शंख से बालक के कान में पिता नाम का उच्चारण करता है। सूर्यावलोकन भी आज ही होता है। ब्राह्मणों और बान्धवादिकों को भोज कराके तिलक भेंट देकर नामकर्म का विधान पूर्ण होता है।

(७) अन्नप्राशन—यह संस्कार पुत्र का छठे या आठवें महीने, कन्या का पाँचवें अथवा सातवें महीने शुभ लग्न और अनुकूल मुहूर्त में किया जाता है। वस्त्र, शस्त्र, पुस्तक, लेखनी, सुवर्ण, रौप्यादि अनेक वस्तुएँ बालक के सामने रक्खी जाती हैं। जिस वस्तु को बालक छू ले, उसी वस्तु से उसको भविष्य में लाभ होने की संभावना होती है। जैसे पुस्तक के स्पर्श से विद्या-जीवी पंडित होना, लेखनी से लेखक, शस्त्र-स्पर्श से सैनिक, सुवर्ण से धनी व्यापारी आदि।

(८) जन्मोत्सव—यह जन्मवार भी कहा जाता है। यह जन्म-तिथि को प्रतिवर्ष मनाया जाता है। विशेषकर पुत्रों का उत्सव होता है, पुत्रियों का बहुत कम। ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, गणेश के अलावा मार्कण्डेय, बलि, व्यास, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, प्रह्लाद, हनुमान्, विभीषण आदि की पूजा की जाती है। स्त्रियों में गीत-वाद्यादि प्रातःकाल तथा सायंकाल दोनों वक्त होते हैं। 'पुवे' (गुलगुले) भी पकाये जाते हैं। इष्ट-मित्र, अड़ोसी-पड़ोसियों को भोजन भी कराया जाता है।

९ कर्णवेध—तीसरे या पाँचवें वर्ष में कान छेदने का भी विधान है, पर कूर्माचल में अब कोई-कोई करते हैं। ज्यादातर उपनयन-संस्कार के दिन कान छेदे जाते हैं।

१० चूड़ाकरण—इसका मुख्य काल तीसरा वर्ष है, पर यहाँ पर ज्यादातर चूड़ाकरण व्रतबंध के साथ करते हैं। बड़े-बड़े बाल उपनयन तक रक्खे जाते हैं, जिनमें बहुत-सा मैल जम जाता है।

११ अक्षरारम्भ—बालक की पाँच वर्ष की अवस्था प्रारंभ होने पर शुभ-मुहूर्त देखकर अक्षरारंभ-कर्म होता है। पहले पूजन वग़ैरह होता है। अब ऐसा कम होता है।

१२ उपनयन-संस्कार—इसे व्रतबंध तथा जनेऊ-संस्कार भी कहते हैं। बालक इसी दिन से द्विज कहलाता है। व्रत ग्रहण करने तथा व्रत से बंध होने के कारण यह संस्कार व्रतबंध कहा जाता है। गुरु के समीप उपनीत होने से उपनयन-संस्कार कहा जाता है। चुटिया, जनेऊ धारण करने तथा संध्या करने का अधिकारी इसी दिन से प्रत्येक बालक होता है। विद्यारंभ व वेदारंभ का यह समय समझा जाता है।

कुमाऊँ में यह संस्कार बड़े आडम्बर से दो दिन होता है। पहले दिन ग्रहयाग, दूसरे दिन उपनयन अनेकानेक कर्म किये जाते हैं। ८ से २५ वर्ष के कर्म दो दिन में किये जाते हैं। बहुत धन इस काम में खर्च होता है।

कहीं-कहीं 'गोठ' में, मकान के निचले खंड में, कहीं यज्ञशाला में यह संस्कार किया जाता है। इसी दिन गुरु-दीक्षा भी दी जाती है। दो-चार वेद-मंत्र पढ़ाये जाते हैं। काशी पढ़ने को भेजा जाता है, फिर लौटा लिया जाता है। प्राचीन पद्धति की एक नक़ल-मात्र की जाती है।

१३ विवाह-संस्कार—ज्योतिष के अनुसार जन्म-कुंडली मिला तथा लग्न ठहराकर विवाह होते हैं। माता-पिता विवाह करते हैं। अपने वर्ण तथा भिन्न गोत्र-कुल की कन्या से विवाह होता है। मातृकुल में, असपिंड पितृकुल में, असगोत्र कन्या से विवाह होता है। विवाहोक्त महीनों और शुक्र तथा गुरु के उदय में उत्तम मुहूर्त देखकर ज्योतिषशास्त्रज्ञ पंडित विवाह का लग्न स्थिर करता है। कुछ दिन पूर्व गणपति-पूजन करके तिल और गुड़ मिश्रित तथा चावल की पिट्ठी के लड्डू (लाड़ू), महालड्डू (समधिये) एवं सुआले (एक प्रकार की सुखाई हुई पूरी) बनाये जाते हैं। विवाह के दिन वर तथा कन्या-पक्ष में पूजनादि होता है। कन्या के माता-पिता व्रती रहते हैं। प्रायः सायंकाल के समय बरात चढ़ती है। कभी-कभी सुबह भी आती है। ब्राह्मणों तथा वैश्यों में ध्वजा (निशान) बरात में नहीं जाते। क्षत्रियों में जाते हैं। दरवाज़े में वाग्दान के संकल्प के बाद वरपक्ष को जनवासे में ठहराया जाता है। वर को कच्चा (दाल, चावल आदि) तथा बरातियों को पक्का भोजन कराया जाता है।

पुनः विवाह का मुहूर्त जब आता है, वर, आचार्यादि वर-पक्षी तथा कन्या-पक्षी विवाहशाला में अंतर्पट (पर्दा) डालकर बैठते हैं। स्त्रियाँ मांगलिक गीत गाती हैं। शाखोच्चरादि के पश्चात् कन्यादान-संकल्प होता है, और देवता तथा ब्राह्मणों से आशीर्वाद लेकर विवाह-संबंध स्थिर होता है। तत्पश्चात् शय्यादान के पश्चात् सप्तपदी मांगलिक हवन लाजा होम होता है। छोटी-मोटी पूजाएँ और भी होती हैं। विवाह की विधि पूरी करके प्रातःकाल जलपान, भोजनादि कराके, वर-वधू और बरातियों को तिलक करके बिदा कर दिया जाता है। वर-पक्ष के लोग बरातियों को दावत दे तथा तिलक लगाकर बिदा करते हैं। चतुर्थी कर्म चतुर्थ-रात्रि में होता है। पुनः १६ दिन के भीतर अथवा विषम वर्षों में द्विरागमन की रीति की जाती है।

साधारणतः विवाह इसी प्रकार होता है, किंतु इनके अलावा अन्य वर्गों में और भी दस्तूर हैं, जिनका सूक्ष्म विवरण अन्यत्र जातिखंड में आवेगा।

अग्न्याधान—सपत्नीक सायं-प्रातः श्रौताग्नि या स्मार्ताग्नि में हवन करने

की विधि है। यह संस्कार लुप्त हो चुका है। कूर्मांचल में एक कुटुम्ब अग्नि-होत्री त्रिपाठियों का अल्मोड़ा में चंद-राज्य के समय से ऐसा करता आया है। यह अभी विद्यमान है।

दीक्षा—वैदिक मंत्रों की दीक्षा लेकर वेद के उपासना कांड में शास्त्रीय विधि से प्रवृत्त करने का यह प्राचीन संस्कार है। पर अब यह विलुप्त हो चुका है। कुछ इने गिने लोग सूर्यग्रहणादि में किसी योग्य पंडित से मंत्र-दीक्षा लेकर गुरु बनाते हैं। स्त्रियाँ 'जप' लेती हैं। यही इस संस्कार का कपोता-विशेष है।

महाव्रत—गृहस्थाश्रम को त्यागकर निवृत्ति-मार्ग में प्रवृत्त हो वानप्रस्थाश्रम में प्रवृष्ट होने का प्राचीन नियम था। इस संस्कार को भी बिरले ही करते हैं।

संन्यास—वानप्रस्थाश्रम के पश्चात् विधि-पूर्वक संस्कार द्वारा गुरु-दीक्षा लेकर 'कुटीचर, हंस, परमहंस' की पूर्ण पदवी प्राप्त करने का नियम था। संसार की सब माया-मोह-रूपी वासना छोड़ केवल भगवान् की सेवा में सारा समय व्यतीत करने का नियम था। पर इसको भी अब इने गिने लोग करते हैं। वैसे जोगी-साधु बहुत बनते हैं, पर सब मतलब के साधु-संन्यासी हैं। संसार-त्यागी व लोकोपकारी साधु कम देखने में आते हैं।

---

५७. मृतक-कर्म की रीतियाँ

वृद्धावस्था प्राप्त हो जाने पर पुत्रवान् कुटुम्बी, आस्तिक धनी काशीवास कर लेते थे, अथवा अन्यत्र कहीं गंगा-तट पर निवास करके ईश्वर-भजन करते थे। पर अब लोग पुत्रादि के समीप रहना आवश्यक समझते हैं। मृत्यु के समय गीता और श्रीमद्भागवतादि का पाठ सुनना, रामनाम का जप करना स्वर्गदायक समझा जाता है। गोदान और दश-दान कराके, होश रहते-रहते मृतक को चारपाई से उठाकर ज़मीन में लेटा दिया जाता है। प्राण रहते गंगाजल डाला जाता है। प्राण निकल जाने पर मुख-नेत्र-छिद्रादि में सुवर्ण के कण डाले जाते हैं। फिर स्नान कराकर चंदन व यज्ञोपवीत पहनाये जाते हैं। शहर व गाँव के मित्र, बांधव तथा पड़ोसी उसे श्मशान ले जाने के लिये मृतक के घर पर एकत्र होते हैं। मृतक के ज्येष्ठ पुत्र, उसके अभाव में कनिष्ठ पुत्र, भाई-भतीजे या बांधव को मृतक का दाह तथा अन्य संस्कार करने पड़ते हैं। जौ के आटे से पिंड-दान करना होता है। नूतन वस्त्र के गिलाफ़ (खोल) में प्रेत को रखते हैं। तब रथी में वस्त्र बिछाकर उस

प्रेत को रख ऊपर से शाल, दुशाले या अन्य वस्त्र डाले जाते हैं। मार्ग में पुनः पिंडदान होता है। घाट पर पहुँचकर प्रेत को स्नान कराकर चिता में रखते हैं। श्मशान-घाट ज़्यादातर दो नदियों के संगम पर होते हैं। पुत्रादि कर्मकर्ता अग्नि देते हैं। कपाल-क्रिया करके उसी समय भस्म कर देते हैं। देश की तरह तीसरे दिन चिता नहीं बुझाते। उसी दिन बुझाकर जल से शुद्ध कर देते हैं। कपूतविशेष (कपोत यानी कबूतर के तुल्य) मृतक का शेष मांस कपड़ा लपेटकर जल के नीचे दबा दिया जाता है। कर्मकर्ता को नवीन वस्त्र का अँगोछा पगड़ी के तुल्य सिर पर बाँधना होता है। इसे 'छोपा' कहते हैं। मुर्दा फूँकनेवाले सब लोगों को स्नान करना पड़ता है। पहले कपड़े भी धोते थे। अब शहर में कपड़े कोई नहीं धोता। हाँ, देहातों में कोई धोते हैं। गोमूत्र के छींटे देकर सबकी शुद्धि होती है। देहात में बारहवें दिन मुर्दा फूँकनेवालों को 'कठोतार' के नाम से भोजन कराया जाता या सीधा दिया जाता है। नगर में उसी समय मिठाई, चाय या फल खिला देते हैं। कर्मकर्ता को आगे करके घर को लौटते हैं। मार्ग में एक काँटेदार शाखा को पत्थर से दबाकर सब लोग उस पर पैर रखते हैं। श्मशान से लौटकर अग्नि छूते हैं, खटाई खाते हैं।

कर्मकर्ता को एक बार हविष्यान्न भोजन करके ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहना पड़ता है। पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें या नवें दिन से दस दिन तक प्रेत को अंजलि दी जाती है, तथा श्राद्ध होता है।

मकान के एक कमरे में लीप-पोतकर गोबर की बाढ़ लगाकर दीपक जला देते हैं। कर्मकर्ता को उसमें रहना होता है। वह किसी को छू नहीं सकता। जलाशय के समीप नित्य स्नान करके तिलाञ्जलि के बाद पिंडदान करके छिद्रयुक्त मिट्टी की हाँडी को पेड़ में बाँध देते हैं, उसमें जल व दूध मिलाकर एक दंतधावन (दतौन) रख दिया जाता है और एक मंत्र पढ़ा जाता है, जिसका आशय इस प्रकार है—"शंख-चक्र-गदा-धारी नारायण प्रेत को मोक्ष देवें। आकाश में वायुभूत निराश्रय जो प्रेत है, यह जल-मिश्रित दूध उसे प्राप्त होवे। चिता की अग्नि से भस्म किया हुआ, बांधवों से परित्यक्त जो प्रेत है, उसे सुख-शान्ति मिले, प्रेतत्व से मुक्त होकर वह उत्तम लोक प्राप्त करे।" सात पुश्त के भीतर के बांधव-वर्गों को क्षौर और मुंडन करके अञ्जलि देनी होती है। जिनके माता-पिता होते हैं, वे बांधव मुंडन नहीं करते, हजामत बनवाते हैं। दसवें दिन कुटुम्बी बांधव सबको घर की लीपा-पोती व शुद्धि करके सब वस्त्र धोने तथा बिस्तर सुखाने पड़ते हैं।

तब घाट में स्नान व अञ्जलिदान करने जाना पड़ता है। १०वें दिन प्रेत-कर्म करनेवाला हाँडी को फोड़ दंड व चूल्हे को भी तोड़ देता है, तथा दीपक को जलाशय में रख देता है। इस प्रकार दस दिन का क्रिया-कर्म पूर्ण होता है। कुछ लोग दस दिन तक नित्य दिन में गरुड़पुराण सुनते हैं।

ग्यारहवें दिन का कर्म एकादशाह तथा बारहवें दिन का द्वादशाह कर्म कहलाता है।

ग्यारहवें दिन दूसरे घाट में जाकर स्नान करके मृतशय्या पुनः नूतन शय्यादान की विधि पूर्ण करके वृषोत्सर्ग होता है, यानी एक बैल के चूतड़ को दाग़ देते हैं। बैल न हुआ, तो आटे का बैल बनाते हैं। बदले में धन पुरोहित को देते हैं। कपिला-दान होता है। ३६५ दिये जलाये जाते हैं। ३६५ घड़े पानी से भरकर रक्खे जाते हैं। पश्चात् मासिक श्राद्ध तथा आद्य श्राद्ध का विधान है।

द्वादशाह के दिन स्नान करके सपिंडी श्राद्ध किया जाता है। इससे प्रेत-मंडल से प्रेत का हटकर पितृमंडल में पितृगणों के साथ मिलकर प्रेत का वसु-स्वरूप होना माना जाता है। इसके न होने से प्रेत का निकृष्ट योनि से जीव नहीं छूट सकता, ऐसा विश्वास बहुसंख्यक हिन्दुओं का है। इसके बाद पीपल-वृक्ष की पूजा, वहाँ जल चढ़ाना, फिर हवन, गोदान या तिल-पात्र-दान करना होता है। इसके अनन्तर शुक शान्ति तेरहवीं का कर्म ब्रह्मभोजनादि इसी दिन कूर्माचल में करते हैं। देश में यह तेरहवीं को होता है।

श्राद्ध—प्रतिमास मृत्यु-तिथि पर मृतक का मासिक श्राद्ध किया जाता है। शुभ कर्म करने के पूर्व मासिक श्राद्ध एकदम कर दिये जाते हैं, जिन्हें "मासिक चुकाना" कहते हैं। साल-भर तक ब्रह्मचर्य पूर्वक-स्वयंपाकी रहकर वार्षिक नियम मृतक के पुत्र को करने होते हैं। बहुत-सी चीज़ों को न खाने व न बरतने का आदेश है। साल-भर में जो पहला श्राद्ध होता है, उसे 'बर्षा' कहते हैं।

प्रतिवर्ष मृत्यु-तिथि को एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया जाता है। आश्विन कृष्ण पक्ष में प्रतिवर्ष पार्वण श्राद्ध किया जाता है। काशी, प्रयाग, हरिद्वार आदि तीर्थों में तीर्थ-श्राद्ध किया जाता है। तथा गयाधाम में गया-श्राद्ध करने की विधि है। गया में मृतक-श्राद्ध करने के बाद श्राद्ध न भी करे, तो कोई हर्ज नहीं माना जाता। प्रत्येक संस्कार तथा शुभ कर्मों में आभ्युदयिक "नान्दी श्राद्ध" करना होता है। देव-पूजन के साथ पितृपूजन भी होना

चाहिए। कर्मेष्ठी लोग नित्य तर्पण, कोई-कोई नित्य श्राद्ध भी करते हैं। हर अमावस्या को भी तर्पण करने की रीति है। घर का बड़ा ही प्रायः इन कामों को करता है।

शिल्पकार हरिजन जो सनातनधर्मी हैं, वे अमंत्रक क्रिया-कर्म तथा मुंडन करते हैं, और श्राद्ध ज़्यादातर आश्विन कृष्ण अमावस्या को करते हैं। जमाई या भांजे ही उनके पुरोहित होते हैं।

---

५८. कूर्मांचली-भाषा

हमने देखा है कि कूर्मांचल में दूर-दूर से लोग आये हैं। अतः यहाँ की बोली में भिन्न-भिन्न लोगों की बोलियों का सम्मिश्रण है। वैसे यहाँ की बोली कुमावनी बोली कहलाती है। पहाड़ी भी कहते हैं। इसका कोई व्याकरण नहीं है। यों एक कुमावनी दूसरे कुमावनी से पर्वती बोली में बोलता है, पर यहाँ की लिपि नागरी है, और अदालती व पढ़ाई की भाषा हिंदी है। कूर्मांचली बोली, जिसको श्रीग्रियर्सन साहब ने मध्य पहाड़ी बोली कहा है, हिंदी-भाषा का बिगड़ा रूप है। यद्यपि यहाँ की बोली प्राचीन दस्यु, खस, शक, हूण, आर्य सब जातियों की बोलियों के सम्मिश्रण से बनी है, तथापि खस-जाति की प्रधानता होने से खस-बोली का ज़्यादा अंश कूर्मांचली में हो, तो कोई संदेह नहीं। किन्तु किसी भी भाषाशास्त्री ने अभी तक ठीक-ठीक प्रकाश यहाँ की बोली-संबंधी विज्ञान में नहीं डाला है। आर्य लोगों ने अपनी लिपि तथा संस्कृत व हिंदी का प्रचार तो जारी रक्खा, पर यहाँ पर खस-बोली का प्राबल्य होने से उनको भी उसी बोली की शरण लेनी पड़ी। संस्कृत का प्रचार यहाँ बहुत रहा है। हिन्दी-भाषा का प्रचार भी सर्वत्र है, तथापि बोली यहाँ की देश से भिन्न है। यद्यपि नैपाली (गोरखाली), कूर्मांचली तथा गढ़वाली बोलियों में बहुत कुछ आपसी संबंध है, और ये सब पर्वती बोलियाँ हैं, तथापि कूर्मांचली-भाषा का लहज़ा गढ़वाली व नैपाली से भिन्न है। ख़ास कुमावनी-भाषा भी निम्न-लिखित परगनों की अलग-अलग ढंग से बोली जाती है। अल्मोड़ानगर, सोर, काली कुमाऊँ, पालीपछाऊँ, दानपुर, जोहार, भोट। स्व० पं० गंगादत्त उप्रेतीजी ने यहाँ की बोलियों के जो नमूने दिये हैं, उनका कुछ अंश हम यहाँ पर भी उद्धृत कर देते हैं—

१. हिन्दी बोली—एक समय में दो विख्यात शूरवीर थे, एक पूर्व दिशा के कोने में, दूसरा पश्चिम दिशा के कोने में रहता था। एक का नाम सुनकर

दूसरा जल-भुन जाता था। एक के घर-से दूसरे के घर जाने में १२ वर्ष का मार्ग चलना पड़ता था।

२. अल्मोड़िया बोली—कै समय में द्वी नामि पैक एक पूरब दिशा का कुण में दोहरो पछों का कुण में रौंछिया। याक को नाम सुणिबेर दोहरो रीस में भरियो रौं छियो, हौर एका का घर बटि दोहरा को घर १२ वर्ष को बाटो टाड़ छियो।

३. कालीकुमाऊँ की बोली—कै वक़् में द्वीजन बड़ा वीर छया। एक जन पूर्व का कुना में, दोसरो पछीम का कुनो में रौंछौ। एक को नाम सुनीबेर दोसरो भारी रीस को जलछौ। एक का घर है दोसरा का घर बार वर्ष का बाटा दुर छौ। (इनकी बोली में खन, ग्यान शब्द भी काम में आते हैं)—हमरी मौक माल खन नशि ग्याना। बोलने में बड़ी मीठी लगती है।

४. शोर की बोली—कै बखत में द्वी बड़ा जोधा छया, एक पूर्व का कोन में दूसरो पच्छिम का कोन में रौंछयो। एक को नाम सुनिबेर दुसरो जलछयो। एक को घर दुसरा का घर बटि १२ वर्ष को बाटो छयो।

५. पालीपछाऊँ—कै दिना में द्वी गाहिन पैक छिया। येक पूर्व का कूणा में रहं छियो, दूसर पच्छिम का कूणा में रहं छियो। येक येकक न सुणिबेर जल छियो। येकक ध्याल दुहरक ध्यालहैबेर १२ वर्ष क बाट में छि।

६. जोहार भोट—कै दिनन या द्वी बड़ा हामदार भअड़ छिया। एक पूर्व का काणा मा दुहरो पछिम का काणा मा रौं थी। एक क नौ सुणि बेर दुहरो जलं थी। हौर एक क कुड़ो वटि दुहरा को कुड़ो बार वर्ष टार थी।

७. दानपुर की बोली—पैल बखत मा ई दो देखवां भड़ छिलो। येक हाड़ि पुर्ब दिशाक छौड़ मा दुसरो पछिमाक दिशाक छोड़ मा रोनिलो। याकाक नाम सुण बेर लों दुसरो आग भै लागि जानी हाड़ि। याका क घर लो दुसराक घर बटी बार बर्ष क बाटो छिलो।

८. गोरखाली बोली—कसैइ दिन मां द्विवटा बलिया जोधा छे। ये वटा पूर्व दिशा मां अर्को पश्छिम दिशा मां रहन्थ्ये। एक को नाम सुनि अर्को रशि गरथ्यो। येवटा का घर अर्को का घर बाट बार वर्ष मां पुगथ्यो।

९. डोटयाली—कोई एक जुग मई दुये पैकेला नाऊं चल्याका थ्या। एक पूरुब दिशा का कोना थ्यो। दूसरो पैक्यालो पश्चिम दिशा का कोना मा रहनथ्यो। एक का नाऊं सुनीबेर दुसरो बहुतै रीस अरनथ्यो क्या। एक को घर हैबेर दूसरा को घर बार बरस को बाटो थ्यो क्या।

१०. अलमोड़ा के शिल्पकारों की बोली—कै जमाना माजी दुई

नामबर पैक जनूं थीणी भड़ कौनी छिया । एक पूर्व दिशा का कूंणा माजी दुंहरो पश्चिम दिशा का कूंणा माजी रौछियो । एक को नाम सुणीबेर दुहरो रांश का मारा जलन छियो । एक को घर बटी दुहरा को घर बार वर्ष का बाटा दूर माजी छियो ।

११. श्रीनगर-गढ़वाल की बोली—पहला जमाना मा द्विनामी वीर छया । एक पूर्व का दिशा का कोणा, दुसरो पश्चिम दिशा का कोणा मा रहंदो छयो । एक को नाम सूणीक दुसरो जल्दो छयो । एक को घर दुसरा का घर ते बारा वर्ष को बाटो छयो ।

१२. टिहरी गढ़वाल की बोली—पला एक जमाना मा द्वि ख्यात भड़ थया । एक पूरब का दिशा का कोण मा और दूसरो पछिम दिशा का कोण मा रहंदो थयो । एक को नऊं सुणीक दूसरो जल्दो थयो । एक को घर दूसरा का घर ते बार वर्ष का रस्ता पर दूर थया ।

१३. लोहबा गढ़वाल परगना चाँदपुर की बोली—कै जमाना मा दुई आदमि बड़ा नामि भड़ छया । येक पूर्व दिशा का कोणा मा रनछ्यो । दोशरो पश्चिम दिशा का कोणा मा रनछ्यो । येकाकौ नौ सुणि किन दोशरो जलछ्यो । येका डेरा ते दोशरो डेरो बार बरश का रास्ता प्रछ्यो ।

१४. बागसा (तराई) बोली—किशही जबानी मै दो याशाहर पैक अयानी बीर थे । येक पुरब दीसा के कौने में दुसरा पछम दीसा के कोने में रहहो । येको नाम सुनकर दूसर जर हो । येक के घर सै दुसरे का घर बार बरस राहो दुरे पर था ।

१५. थाड़ू बोली—एक समय में दो नामी देवता है । एक (ससुर) अगार की दिशा के कोने में राहत हो और एक पछार की दिशा के कोने में राहत हो । एक को नाम सुन कै दूसरो गुसा हु जात राहै । एक के घर से दूसरे को घर बार वर्ष की राह मैं हो ।

१६. भावर कुमाऊँ की बोली—यक तकम् द्वी परख्यात पैक छिय । यक पूरब का कुंनम्, दूसरो पछिम का कुंनम् रन छिया । यक को नौं सुनी दूसरो जली पाकी रंछियो । यक का घर हु दूसरो को कुड़ो बार वर्ष को बाटो छियो ।

प्रायः एक ही पर्वती-भाषा इस प्रकार नये नये लहजे से पर्वती प्रान्त में बोली जाती है । वैसे तो कहते हैं कि प्रत्येक १२ मील में बोलियाँ बदलती हैं, किन्तु अल्मोड़ा में (१) मुहल्ले, (२) बाज़ार (३) शिल्पकारों की बोली में थोड़ा-बहुत फ़र्क़ है । कुछ लोग उच्चारण में रावण को रावंड कहते हैं ।

हनुमान् को हंङूमान इत्यादि। सोर गंगोली की बोली यद्यपि एक ही है तथा गंगोली में 'हला' शब्द जोड़ा जाता है, जो संबोधन-सूचक है। गंगोली में कूनन, "करनन जानन" बोला जायगा, तो सोर में, "कूनान, करनान व जानान्' कहा जावेगा। पालीपछाऊँ व गढ़वाल की सरहद की बोली दोनों कुमय्याँ व गढ़वाली बोलियों का सम्मिश्रण होगा, "माल्शो हसा नी करो, म्हस करो" इसी प्रकार सोर व कुमाऊँ के हिस्सों में, जो नैपाल से मिले हैं, थोड़ी बहुत मिलावट गोरखा बोली की पाई जाती है। लिखने की बात दूसरी है, किन्तु कोई कोई इस प्रकार की बोली बोलते हैं कि यकायक समझ में नहीं आती। दारमा की तरफ़ के लोग बिगड़ी हुई तिब्बती बोलते हैं।

थाड़ू व बोक्सों को बोली देहाती रोहिलखंडी है। कोई-कोई शब्द पहाड़ी के उनमें आ जाते हैं।

शहर की व पढ़े-लिखे कुमावनियों की बोली में अब फ़ारसी, अरबी व अँगरेज़ी के शब्द भी आ जाते हैं। कुछ लोग कुमावनी-भाषा को असभ्य व जंगली भाषा कहकर उसका तिरस्कार करते हैं, किन्तु ऐसा नहीं है। कूमाचली-भाषा बड़ी मीठी है। कविताएँ भी इसमें बड़ी सुन्दर होती हैं।

---

५९. कुमाऊँ के मनुष्यों के गुण, स्वभाव व कर्म

जब कि नगर के लोग चतुर, चालाक व चंचल प्रकृति के होते हैं, देहात के लोग ज़्यादातर सीधे-सादे व सरल स्वभाव के पाये जाते हैं। पर कूर्माचल की साधारण जनता सामान्य शिक्षित होने पर भी काफ़ी समझदार है। अल्मोड़ा नगर के लोग तो सब प्रकार धनवान्, विद्वान्, गुणवान् व सम्पत्तिवान् हैं, पर उनमें 'स्व' की मात्रा ज़्यादा है। यदि ऐसा न होता, तो संसार भर के लोगों में वे किसी बात में कम न होते। यही एक कारण है कि यहाँ पर सभी प्रकार सम्पन्न होते हुए भी अभी तक ऐसे मनुष्य कम हुए हैं, जो अन्तरराष्ट्रीय ख्याति तो दूर रही, अखिल भारतवर्षीय या कहिये प्रांतीय ख्याति को पहुँचे हों। इसका कारण यह है कि साधारण कुमय्यों का उद्देश्य आज तक अनपढ़ों का खेती, स्वल्प पढ़ों का क्षुद्र चाकरी तथा ज़्यादा पढ़ों का नौकरी रहा है। वाणिज्य, व्यवसाय तथा कला-कौशल से ही प्रत्येक जाति उन्नत होती है, पर इनका अभी तक यहाँ पर अभाव है। यहाँ पर कुछ

थोड़े से लेखक, कवि, राजनीतिज्ञ तथा कुछ राजभक्त कर्मचारी व साधारण व्यापारी हुए हैं, किंतु ऐसे कम हुए हैं, जिनका नाम तमाम भारतवर्ष में प्रचलित हो। कूर्माचलियों ने सब काम किये हैं, किंतु छोटे दायरे में। इस समय तो कूर्माचली सर्वत्र फैले हैं। वे भारत के प्रायः अनेक प्रांतों में, पर विशेषतः संयुक्तप्रांत में अच्छे-अच्छे सरकारी पदों को सम्मानपूर्वक सुशोभित करते हैं, पर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उन्होंने अभी तक अपने ज्येष्ठ पर्वती भाई काश्मीरियों की तरह प्रसिद्धि नहीं पाई है। काश्मीरियों ने काश्मीर से बाहर निकलकर ही नाम कमाया है। जहाँ-जहाँ काश्मीरी पंडित हैं, वे साहित्य-सेवा, राज सेवा, समाज-सेवा और अब देश-सेवा के लिये प्रसिद्ध हैं।

सन् १९०६ में जब स्वर्गीय पं० भोलानाथ पांडेजी विदेश-यात्रा को गये, तभी से कहिये कूर्माचलियों की कूप-मंडूकता दूर हुई। देश-सेवा में कूर्माचल का नाम उज्ज्वल करनेवाले राष्ट्रीय नेता पं० गोविंदबल्लभ पंत हैं। वे ही एक कूर्माचली हैं, जिन्होंने अपनी विद्वत्ता, त्याग, तपस्या व देश-सेवा के कारण राजनीतिक क्षेत्र में अखिल भारतवर्षीय ख्याति पाई है। चिकित्सा में स्वनाम-धन्य डॉ० नीलाम्बर-चिन्तामणि जोशीजी ने कूर्माचलियों का नाम तमाम भारत में प्रख्यात किया है। हिंदी-जगत् में नाम कमानेवाले डॉ० हेमचंद्र जोशी तथा कविवर सुमित्रानंदन पंत हैं। उधर डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशीजी ने उच्च क़ानूनी शिक्षा प्राप्त कर कूर्माचल का मान बढ़ाया है। ६० लाख मनुष्यों में केवल ८-१० कुमय्यें होंगे, जिन्होंने समस्त भारत में ख्याति पाई हो। अतः कूर्माचली अभी तक प्रायः सभी बातों में मध्यम श्रेणी के पुरुष कहे जा सकते हैं। यद्यपि उत्तम जल-वायु में रहने से उनको प्रथम कोटि का होना चाहिए था। राज सेवा तथा राजभक्ति द्वारा कुछ लोगों ने स्थानीय गौरव पाया है, किंतु देश-सेवा, साहित्य-सेवा तथा प्रतियोगिता (Competition) की दौड़ में कुमय्यें पीछे रह गये हैं। कहने को यहाँ पर वकील, डॉक्टर, एडीटर, जज, बैरिस्टर, कवि, साहित्य-सेवक व व्यवसाय-कुशल पुरुष एक नहीं, अनेक हैं; किंतु भारत के विशाल व विस्तृत नभ-मंडल में सूर्य-चंद्रमा तो दूर रहे, तारागण की तरह भी चमकनेवाले व्यक्ति अभी बहुत ही कम हैं। वैसे स्वयं अपने को कौन कम समझता है। किन्तु जिस उन्नत भूमि, सुन्दर जल-वायु तथा प्राकृतिक सौंदर्य्य-परिपूर्ण भूमि में कूर्माचली रहते हैं, उसके अनुरूप उन्होंने ऐसा समुन्नत वायुमंडल उत्पन्न नहीं किया है कि यहाँ पर सब प्रकार के उदार-प्रकृति, सदाचारी, शिक्षित, सभ्य तथा विश्व-विदित महापुरुष उत्पन्न हों, जो संसार को अपनी प्रतिभा से चकित कर दें।

९५ क्या ९७-९८ फ़ीसदी लोग देहातों में रहते हैं। उनमें से बहुत-से होनहार बालक होंगे, किन्तु अभी तक वहाँ शिक्षा का काफ़ी अभाव है। पापी पेट को पालने तथा येन-केन प्रकारेण अपनी गुज़र करने की ही उनको चिन्ता है। समाज-सेवा, देश-सेवा, साहित्य-सेवा तथा कला-कौशल संबंधी ज्ञान से वे प्रायः अनभिज्ञ हैं। जो पढ़े-लिखे हैं, वे अपने अपढ़ भाइयों के बीच ज़्यादातर अपने अभिमान तथा गौरव को ही प्रकट करने में सिद्धहस्त रहे हैं। इसी से कूर्मांचल-ऐसी उत्तम व दिव्य भूमि में भी संघटन-शक्ति का पूर्णतया अभाव देखने में आता है। लोग घर-घर के राणा हैं। कूर्मांचली बहुत अभिमानी पुरुष है। वह स्वार्थी भी कहा जाता है। वह पंचमेली प्रकृति का नहीं। वह कपड़े का बड़ा शौक़ीन है। क़र्ज़ करके भी सर्ज पहनने का मर्ज़ कूर्मांचली को है। वैसे वह बात करने में बड़ा सभ्य तथा खातिर करने में भी उदार ज्ञात होगा, किन्तु जहाँ कहीं उसके कौटुम्बिक जात्याभिमान में चोट पहुँची, वह फ़ौरन् मित्र से शत्रु बन जाता है।

देहातों में शिक्षा, सफ़ाई, तन्दुरुस्ती की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। उनका दायरा संकीर्ण है। वायुमंडल संकीर्ण है। वहाँ रिश्वत का बाज़ार गर्म रहता है। छोटे-छोटे लड़के पटवारी, पेशकार व राजकर्मचारियों को मुक़द्दमों में रिश्वत लेते देखते हैं। छोटे-छोटे कर्मचारियों का वहाँ प्रभुत्व है। बालक उनके रोब में आ जाते हैं। शिक्षा-विभाग भी कर्मचारियों से दबता है। बालक भी पटवारी, पेशकार, पतरौल या अहलमद बन अपने भाइयों को सताकर धन बटोरने के फेर में लगे रहते हैं। वह धन फिर वकील व राज-कर्मचारियों के पापी पेट भरने में जाता है। यही दूषित चक्र बहुत दिनों से चलता आ रहा है। यह महात्मा गांधी के विश्वव्यापी आन्दोलन से भी अभी नहीं टूटा है। ग्राम-सेवा, ग्राम-संघटन तथा ग्रामों में शिक्षा हो, सफ़ाई हो, मल-मूत्र दूर रहे, खाद रखने का अच्छा प्रबंध हो, कुछ उद्योग-धंधे हों। एक पंचायत छोटे-छोटे झगड़ों को तय करे, और ग्राम में एक पाठशाला हो, समाचार पत्र आते हों, पुस्तकालय हों, जहाँ मनुष्य अर्वाचीन विज्ञान व शिक्षा से अपने को उन्नत कर सकें, ऐसे साधन कम हैं। अभी बहुत कम लोगों का ध्यान इस ओर गया है।

हिन्दू धर्म ने बाह्य व भीतरी सफ़ाई व स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया है। किन्तु खेद है कि आज हमारे हिन्दू भाई स्वच्छता के उच्च आदर्श से नीचे गिर गये हैं। आजकल गृह, आँगन व हाते की सफ़ाई तो दूर रही, बहुत-से लोग कपड़े भी नहीं धोते। लम्बी तीर्थ-यात्राओं में सैकड़ों

रुपये खर्च करते हैं, पर धोती व कपड़े धोने में आलस्य करते हैं। भोटिये व शौके भाई तो ऐसी उग्र जल-वायु में रहते हैं कि उन्हें नित्य स्नान का अवसर कम मिलता है। यों ठंडे देशों में शीतकाल में नहाना-धोना कम होता है, पर निचले प्रान्त के लोग क्यों मैले रहते हैं तथा स्नान से परहेज़ करते हैं, समझ में नहीं आता। इसी से ज्ञात होता है कि मानसखंड में जगह-जगह स्नान का माहात्म्य दर्शाया गया है। हर 'गाड़ गधेरे' में नहाने से स्वर्ग मिलना कहा गया है। प्राचीन पंडितों ने इसीलिये इतने गंगा-स्नान रक्खे होंगे, ताकि लोग नित्य स्नान व शुद्धि की महिमा को पहचानें और साफ़-सुथरे रहें। कुछ लोग कहते हैं कि वे ग़रीब हैं, इससे वे साफ़ कपड़े नहीं पहन सकते, किन्तु बहुत-से धन-सम्पन्न व सम्पत्तिशाली पुरुष भी मैले कपड़े पहनते हैं, तब यह दोष ग़रीबी का नहीं, बल्कि बुरी आदत का है। ग़रीब-से-ग़रीब आदमी भी नहा-धोकर साफ़ रह सकता है। किसी-न-किसी जड़ी-बूटी से अपने कपड़े साफ़ रख सकता है, पर वे ऐसा नहीं करते। यहाँ के लोग ज्यादातर ईमानदार व सच्चे होते हैं। छल-प्रपंच नहीं जानते। हाँ, अब इधर-उधर जाने से उनमें भी चालाकियाँ आने लगी हैं, पर फिर भी भारत के अन्य प्रान्तों के मुक़ाबिले में यह कहना होगा कि यहाँ के लोग कई दर्जे अच्छे व ईमानदार हैं।

किसी ज़माने में वे वीर ज़रूर रहे होंगे, क्योंकि मुग़लों के समय उन्होंने कई लड़ाइयों में असाधारण वीरता दर्शाई है। योरपीय महायुद्ध में भी कुमाऊँ-सेना ने टर्की में अदम्य साहस तथा अलौकिक वीरता का परिचय दिया था। किन्तु नेतृत्वहीन दशा में वे ऐसा कर सकेंगे या नहीं, ठीक कहा नहीं जाता। क्योंकि अस्त्र-शस्त्र-हीन पराधीन भारत में आज वीरता बहुत कम देखने में आती है। पर्वतों में स्वतंत्रता का वास रहता है, ऐसी कवियों की कल्पना है; पर आजकल तो यह बात देखने में नहीं आती। दैशिक स्वतंत्रता के लिये जो प्रेम पश्चिमोत्तर प्रान्त के पर्वती भाइयों में है, वह कूर्मांचल के पर्वतियों में कहीं भी देखने में नहीं आता। मसाला है, पर उनको उत्तेजित, उत्साहित तथा एकत्र करनेवाले चाहिए। व्यक्तिगत वीरता की बात नहीं कहते, किन्तु समस्त कूर्मांचली जाति वीर, साहसी व स्वतंत्रता-प्रेमी है, ऐसा कहना इस समय साहस का काम होगा। वर्षों की परतंत्रता से उनमें कार्पण्य दोष आ गया है। परमात्मा करे वह दिन शीघ्र आवे, जब यह पर्वती जाति दासत्व की शृंखलाओं को तोड़कर स्वतंत्रता व स्वाभिमान के सहारे चलनेवाली हो।

उत्तर के जोहारी तथा दार्मा व व्यांस चौदांस के लोग अच्छे व्यापारी

हैं। तिब्बत की अगम्य घाटियों में भेड़, बकरी व भूपुत्रों को हाँककर तिजारत करना इन्हीं का काम है। जोहार के लोग ज़्यादा सभ्य, शिक्षित व समझदार हैं। दानपुर के लोग वीर, साहसी तथा कष्ट झेलनेवाले हैं। अँगरेजी फ़ौज में ये भर्ती होते हैं और बड़े प्रसिद्ध सिपाही हैं। किन्तु शिक्षा से वंचित रहने के कारण स्वदेश, स्वधर्म व स्वजाति का ज्ञान इनमें उस उच्च कोटि का नहीं है, जैसा उच्च पर्वतवासियों में होना चाहिए। जिनको यह ज्ञान होता है, वे सेना में भरती नहीं किये जाते। कई प्रान्तों के लोग जैसे पाली पछाऊँ, चौगर्खा आदि के मुक़द्दमेबाज़ बहुत हैं। चौगर्खा में तो शिक्षा की कमी है; किन्तु पाली पछाऊँ के लोग विशेष शिक्षित व समझदार हैं, पर रात-दिन अदालतबाज़ी में लगे रहते हैं। अल्मोड़ा व आस-पास के लोग बड़े चतुर हैं, पर स्वार्थ-परायण भी बहुत हैं। कालीकुमाऊँ के लोग साथ देनेवाले (घड़ेल) होते हैं, पर वे बड़े सच्चे दोस्त तथा भयंकर शत्रु होते हैं।

कूर्मांचल के पुरुष विशेषकर उद्यमी नहीं हैं। वे सुस्त बताये जाते हैं। शिल्पकार व ब्राह्मण कम काम करते हैं। ज़मींदार लोग ज़्यादा कार्यदक्ष होते हैं। साधारण प्रकार से खाने-पीने-मात्र को ज़मीन सबके पास है। संपत्ति का बटवारा भी शहरों को छोड़कर देहातों में साम्यवाद के अनुसार ही है। बड़े ज़मींदार यहाँ पर बहुत कम हैं। छोटे-छोटे हिस्सेदार ही ज़्यादातर हैं। कृषक लोग हल जोतने व खेत की दीवारें लगाने के अतिरिक्त और काम कम करते हैं। बेचारी स्त्रियाँ बहुत काम करती हैं। खेत का व घर का जितना काम वे करती हैं, उतना पुरुष नहीं करते। इस पर भी खेद है कि स्त्रियों के साथ पुरुषों का व्यवहार अच्छा नहीं है। इसी से अनेक स्त्रियाँ यदा-कदा घर से भागती रहती हैं।

उद्योग-धंधे बहुत कम हैं। कूर्मांचली साझे के कारबार में अब तक फलीभूत नहीं हुए हैं। लोग आलसी हैं। कई महीने खाली बैठे रहते हैं। खाली बैठे तंबाकू पीना और कहीं दूकान में या अन्य स्थान में ग़प्पें उड़ाना या ताश खेलना यहाँ के लोगों को बहुत पसंद है। समय के सदुपयोग की तरफ़ अभी ध्यान नहीं गया है। साहित्य-सेवा, समाज-सेवा व देश-सेवा में यह प्रांत अभी पिछड़ा है।

धार्मिकता ज़्यादा होने से यहाँ के लोग शराब से परहेज़ करते थे, किंतु अब फ़ौजी सिपाही तथा अँगरेज़ी पढ़े-लिखे लोग तथा नगर के मजूर लोग ख़ूब शराब पीने लगे हैं। बीड़ी, सिगरेट, तंबाकू कुमावनी बहुत पीते हैं। चरस भी अच्छी मात्रा में पीते होंगे।

ग्राम्य देवी-देवताओं तथा मिथ्या धर्म (Suferstition) के चक्कर में पड़े हुए यहाँ के लोगों की अजब हालत है। हर बात में, व हर जगह उनको 'देवता' दिखाई देते हैं। हर जंगल में, हर टीले में, हर नदी में, हर सड़क में कहीं-न-कहीं कोई देवता (भूत-प्रेत) होगा, जिसका समाधान करना मनुष्य का कर्तव्य है। जीवन, मृत्यु, ब्याह, जनेऊ तथा रोग-व्याधि सब समय ग्राम-देवता को संतुष्ट करना पड़ता है।

समय का बहुत-सा हिस्सा इन्हीं बातों के सुलझाने में चला जाता है। जो समय उद्योग-धंधों, पठन-पाठन तथा सांसारिक बातों के ज्ञान के उपार्जन में खर्च होना चाहिए, वह मिथ्या धर्म की पूर्ति में लगाया जाता है। इसी-लिये लोगों को सच्चे धर्म का ज्ञान नहीं है।

छोटे-छोटे बच्चों के विवाह अब तक शारदा ऐक्ट के पास होने पर भी हो जाते हैं जिससे इस स्वास्थ्यदायक प्रदेश की संतानें भी जितनी बलवान् होनी चाहिए थीं, उतनी नहीं हैं। खान-पान, जाति-पाँति तथा ऊँच-नीच व छुआछूत के अनेक झगड़े यहाँ पर हैं। कुमाऊँ कट्टरता का क़िला है। लोग लकीर के फ़क़ीर हैं। इसी से बड़े-बड़े विद्वानों की हिम्मत समाज-सुधार के काम में हाथ डालने की नहीं होती। बिना राजनैतिक शक्ति के, बिना शासन-संबंधी भय के सुधार होने भी कठिन हैं।

इतने लोगों को शिक्षित, सभ्य व समझदार बनाना तथा स्वावलंबन का पाठ पढ़ाना कोई खिलवाड़ नहीं है। सर्वत्र अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा हो। उसके साथ-साथ उद्योग-धंधे व कला-कौशल की शिक्षा भी दी जावे। लोग नाना प्रकार के काम-काजों में नियुक्त हों, ताकि कोई आदमी खाली न बैठा हो, कोई आदमी अशिक्षित न हो, कोई आदमी भोजन व वस्त्र बिना तंग न हो और सब लोग स्वदेश, स्वधर्म, स्वजाति के प्रेम से परिपूर्ण हों और स्वकर्तव्यानुरागी हों। एक भाव, एक भाषा, एक भेष से विभूषित होकर भारत-माता को सुखी करें। ऐसे समय के लिए सब स्वदेश-प्रेमी पुरुष साञ्जलि प्रार्थना करते हैं। इसके वास्ते व्यायाम तथा सैनिक शिक्षा की भी आवश्यकता है। उक्त बातों के लिये साधन एकत्र करना देश, समाज तथा राष्ट्र-प्रेमियों का कर्तव्य है।

बंदे-मातरम्

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	१८	बणकट्टर	बणकट्टा
३८	१४	हुलघरियाजी	ठुलघरियाजी
५७	१	श्रीनेमिल	श्रीनेभिल
,,	६	की	का
५८	१४	फिरिश्तो	फिरिश्ता
६५	३	(२) व्य	(२) व्याँस
६६	१८	नहीं	नहीं करता
,,	१६	करता	—
७४	२२	लछाखियों	लदाखियों
७५	२६	खर	कोट
१२१	१९	टफूशिया	प्यूशिया
१२७	२५	घंट	घराट
१३१	१४	यूरोसतं	रियासतें
१३९	२०	ज्ञानिया	ज्ञानिमा
१५६	१२	कोप वित्र	को पवित्र
१८४	१०	settlled	settled
,,	१३	immulgrants	immigrants
२०३	१५	बगूले	बबूले
२३४	६	इलियर	इलियट
२३८	७	खड़ायन	खड़ायत
२८३	२६	में ड़े	में पड़े
२८७	३	poeltax	polltax
,,	२३	पंचू	पांछू
३०७	२३	बाल	वाल
,,	२४	,,	,,
३२२	१०	बनवा	बनवाए
३३६	२०	टूल	ट्रेल
३३७	३२	थी	था

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४६	२५	Suriously	Spuriously
,,	,,	Consin	Cousin
३७९	२३	छोटे	छींटे
३८५	१	unpratuotie	unpatriotic
३८६	१६, २३	लांमों	लांपो
३८६	५	अवध लश्कर	अवध का लश्कर
,,	६	का	—
,,	७, १६	टिकेटराय	टिकैतराय
४०१	१	Tenitional	Territorial
४०५	७, १७	पल्या	पल्पा
,,	२३	बहाँ	वहाँ
४०६	१	जिलेस्वी	जिलेस्पी
४०७	१३	,,	,,
४२६	११	में	—
४३२	२६	offored	opposed
,,	२७	Barvert	Bravest
४५६	२६	जुलाब	जुलाय
४६८	१४	पिपरसन	पियरसन
५००	१५	१६१२	१८६२
५२५	२२	Skythians	Scythians
,,	२८	क्लाइंगाइन	क्लाइंडाइन
५४४	२०	दन्यिां	दन्यां
५६०	२६	मानजी	मानली
५६१	१६	दोनाई	दोताई
,,	२३	पराडताभ्यां	पण्डिताभ्यां
५६२	२७	ड्यालगढ़ी	बड्यालगढ़ी
५६७	१६	सकतौली	सकनौली
५७१	५	राज्य	राज्य मिला
,,	७	मिला	—
६१८	१८	Spew	Spun
,,	३०	चुनाई	चिनाई

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६२०	१७	डुमगेला	डुमटोला
६३१	३२	काया	कामा
६३२	२	,,	,,
६३६	१६	स्वर्ग	—
,,	२०	प्राप्त	स्वर्ग प्राप्त
६४८	३२	जापू	पूजा
६५७	२७	खियालदेवी	सियालदेवी
६७०	१, ६, २८	स्यूनी	रयूनी
६८४	२१	पूपन्न	पूपान्न
,,	२८	लोहाखाय	लोहाखाम
६८७	२२	उत्सवों से	उत्सवों में से
६६६	२७	रशि	रीश
७०२	१८	६०	६—७